मगही-भाषा और साहित्य

डॉ० सम्पत्ति अर्याणी

एम्० ए० (हिन्दी, पालि), डिप्०-इन-एड्०, डी० लिट्०

प्राध्यापिका, हिन्दी-विभाग, साइन्स कॉलेज,

पटना-विश्वविद्यालय, पटना

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्

पटना-४
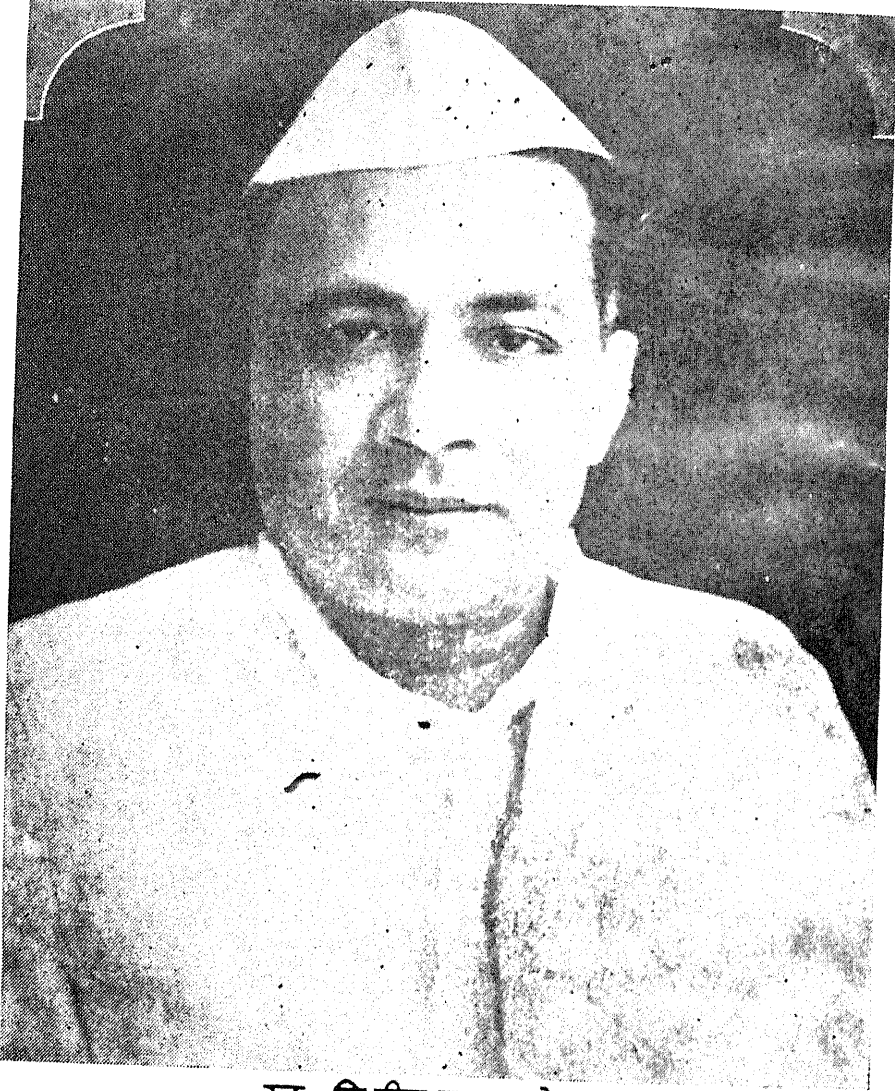
स्व॰ श्री वीर चन्द पटेल

भारतीय स्वातन्त्र्य के सजग सेनानी,
नूतन सामाजिक क्रान्ति के स्वप्नद्रष्टा,
ज्ञानशील साधना के मूर्त्त स्वरूप,
वाणी-मन्दिर के अनन्य आराधक
एवं
सर्वलोकप्रिय जननायक
स्व० श्रीवीरचन्द जी पटेल
(भूतपूर्व मन्त्री : स्वास्थ्य, वित्त, कृषि और राजस्व, बिहार-राज्य)
को
पुण्य स्मृति में ।

वक्तव्य

परिषद् स्वयं लोक-भाषाओ और लोक-साहित्य के संकलन-सम्पादन का कार्य प्रारम्भ से ही करती आ रही है। इसके लिए एक अलग ही विभाग यहाँ है—लोकभाषा-अनुसन्धान-विभाग। इस विभाग के तत्सम्बन्धी कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं, कुछ प्रकाशन-क्रम मे है। किन्तु इनके अतिरिक्त भी मान्य अधिकारी विद्वानों द्वारा सगृहीत-सम्पादित तथा लिखित लोकभाषा और लोक-साहित्य से सम्बद्ध अनुसन्धानपूर्ण पुस्तकों का प्रकाशन परिषद् की ओर से होता आया है। इस क्रम में 'भोजपुरी भाषा और साहित्य', 'भोजपुरी के कवि और काव्य', 'बाँसरी बज रही' आदि पुस्तकें निर्दशित की जा सकती है।

बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् का मुख्य उद्देश्य भी यही है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी के सर्वांगपूर्ण विकास और प्रगति के लिए उसके सभी अंगों, उपांगों तथा उपभाषाओं को अनुसन्धानपूर्ण एवं प्रतिपाद्य सामग्री से समृद्ध ग्रन्थों के सम्पादन-प्रकाशन द्वारा परिपुष्ट किया जाय। परिषद् अपने कर्त्तव्य को निष्ठापूर्वक सम्पन्न करने का प्रयास करती आ रही है।

उसी निष्ठा और कर्तव्य-पालन के क्रम में आज हम हिन्दी-संसार के सामने 'मगही-भाषा और साहित्य' पुस्तक लेकर उपस्थित हो रहे हैं। इस पुस्तक की लेखिका डॉ० सम्पत्ति अर्याणी पटना-विश्वविद्यालय मे हिन्दी की वरिष्ठ प्राध्यापिका है। आपने अपने शील, वैदुष्य और अध्यवसाय से यहाँ के साहित्यकारों तथा शिक्षको मे अपना एक विशिष्ट स्थान बना रखा है। आप आरम्भ से ही मगही-भाषा और साहित्य का अनुशीलन कर रही थी और फिर इसी विषय में आपने अपना शोध-प्रबन्ध उपस्थापित कर डी० लिट्० की उपाधि प्राप्त की थी। इस विषय मे आपको उचित लक्ष्य-निदेशन और मार्ग-दर्शन प्रसिद्ध भाषाशास्त्री प्राध्यापक (स्वर्गीय) डॉ० विश्वनाथ प्रसादजी से मिला था। अतएव आशा ही नही, विश्वास है कि यह अपने विषय का अवश्य ही प्रमाणभूत और अधिकृत ग्रन्थ प्रमाणित होगा। मगही-भाषा और साहित्य के सन्दर्भ-ग्रन्थ के रूप मे यह ग्रन्थ अनुसन्धित्सु छात्रों और विद्वज्जनों का ग्राह्य एवं अवश्य परामर्शनीय होगा। मगही-भाषा और उसका साहित्य अबतक लोकभाषा के रूप में ही पनपा और विकसित हुआ है। इसका प्राचीन लिखित साहित्य तो विशेष है नही, जो कुछ है, वह लोककण्ठ मे विद्यमान है।

विदुषी लेखिका ने अपने परिश्रम और लगन से लोककण्ठाश्रयी मगही-साहित्य को पत्राश्रित बनाकर स्वाध्यायशील एवं अनुशीलन-प्रवण जिज्ञासुओं के लिए सुलभ

बना दिया है। महाकवि भारवि के शब्दों में कहा जा सकता है कि "नदी के बँधे हुए घाटों से, धारा के ऊपर बने हुए सेतु से नदी की उद्वेलित तरङ्गों को पार करना सबके लिए सुगम और सुलभ हो सकता है, किन्तु, उन घाटों और सेतुओं का निर्माण करनेवाला क्रियाकुशल स्थपति कोई-कोई ही होता है" :

स तु विशेष दुर्लभः सदुपन्यस्यति कृत्यवर्त्म यः।

मगही-भाषा आचार्य भरत के काल से ही अपना विशिष्ट स्थान बनाये हुई है। भारतीय वाङ्मय के सभी आचार्यों ने भाषाओं के विश्लेषण और वर्गीकरण के सन्दर्भ में मागधी प्राकृत को प्रमुख स्थान दिया था। आर्य-परिवार की भाषाओं के संस्कृतोत्तर प्राकृत-कुल में पश्चिम की शौरसेनी प्राकृत तथा दक्षिण की महाराष्ट्री प्राकृत के साथ पूर्वांचल में मागधी प्राकृत अपने उच्च पद पर विराजमान थी। उसका साहित्य भी पर्याप्त समृद्ध था। भगवान् बुद्ध के समय की पालि और तीर्थंकर महावीर स्वामी की मागधी तथा अर्ध-मागधी इस मगही की मूल पूर्वज भाषा है। उसी मागधी-कुल-परम्परा की सुजाता कन्याएँ आज की बँगला, असमिया, उड़िया और बिहार की लोकभाषाओं के रूप में विद्यमान हैं।

इस मगही-भाषा के साहित्य की विच्छिन्न परम्परा को आज के लोककण्ठ से निकालकर सुधीजनों के समक्ष प्रस्तुत करने में लेखिका का अध्यवसाय स्तुत्य है। परिषद् इसे प्रकाशित कर लोकभाषा और साहित्य के संकलन-सम्पादन के अपने उद्देश्य की पूर्त्ति में एक कदम आगे बढ़ी है। हम हिन्दी-साहित्य के अनुसन्धित्सु विद्वानों और पाठकों से आशा करते हैं कि वे इस पुस्तक का उदारतापूर्वक स्वागत करेंगे तथा अपनी अमूल्य सम्मतियों और सहयोग द्वारा हमें अनुगृहीत करेंगे।

पटना

विषुव (मेष) संक्रान्ति, २०३३ वि०,
१८९८ शकाब्द; १३ अप्रैल, १९७६ ई०

हंसकुमार तिवारी
निदेशक

निवेदन

भारतीय चेतना के विगत चार-पाँच दशकों का काल सांस्कृतिक पुनर्जागरण का काल रहा है और भारतीय मनीषा स्वरूप की 'सम्पूर्णता' के अन्वेषण के प्रति दत्तचित्त हुई है। इस क्रम में उसका ध्यान जिसकी ओर सर्वाधिक आकृष्ट हुआ है, वह इस महान् राष्ट्र की आसेतु-हिमाचल परिसीमाओं में शताब्दियों से अनासक्त भाव से फलता-फूलता रहनेवाला 'लोक-साहित्य' ही है। अनुसन्धित्सु विद्वानों ने यह स्पष्टतया अनुभव किया है कि ''शिष्ट-साहित्य, जिसे अबतक हमने अपने सामाजिक जीवन का दर्पण मान रखा है, वस्तुतः वह हमारे समग्र जीवन का प्रतिनिधि न होकर समाज के कुछ सुविधाभोगी, अधिकार-सम्पन्न एवं साधन-बहुल विशिष्ट वर्गों के व्यक्तियों के सुख-दुःख की गाथा-मात्र है। अतः वह हमारे जीवन का भी खण्डित चित्र ही प्रस्तुत करता है। हमारे जीवन का सम्पूर्ण चित्र तो विराट् भारतीय लोक-साहित्य के सम्पूर्ण अध्ययन और अनुशीलन से ही प्राप्त हो सकता है। इस प्रकार प्राप्त होनेवाला हमारे जीवन का सांस्कृतिक चित्र न केवल 'सम्पूर्ण' होगा, वह प्रामाणिक और सच्चा भी होगा।'' सत्यानुभव-प्राप्त यह बोध इसलिए भी 'सहज सत्य' है कि 'लोक-साहित्य' उस 'लोक' का साहित्य है, जिसकी महिमा-व्याख्या ऋग्वेद 'सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्' के शब्दों में करता है और जिसके व्याख्या-सन्दर्भ में स्व० डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने कहा है: ''लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है, उसमें भूत, भविष्य, वर्त्तमान सभी कुछ संचित रहता है।''

लोक-साहित्य के उपर्युक्त सांस्कृतिक महत्त्व को ध्यान में रखते हुए विगत दशकों में भारतीय विद्वानों ने भारतीय लोक-साहित्य से सम्बद्ध पर्याप्त अनुसन्धान-कार्य किया है और इस सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित करने के लिए विभिन्न भारतीय भाषाओं के लोक-साहित्य का अत्यधिक अध्ययन, अनुशीलन, सम्पादन और प्रकाशन किया है। अन्य दृष्टिकोणों से भी यह सारा कार्य परमापेक्षित है। कारण, ज्यों-ज्यों शहरी सभ्यता का प्रसार होता चला जा रहा है, हम अपनी इस सांस्कृतिक विरासत से न केवल विमुख हुए चले जा रहे हैं, अपितु उसकी मौखिक परम्परा जिन वृद्ध जनों में पलती आ रही है, वे भी एक-एक कर काल-कवलित होते चले जा रहे हैं। यही नहीं, खड़ीबोली के निरन्तर प्रभाव-प्रसार से अपने मूल स्वरूप में विकृतियों को प्रश्रय देती लोकभाषाओं के वैज्ञानिक अध्ययन का मूल्य जिस तेजी से समाप्त होता जा रहा है, उससे संरक्षा के दृष्टिकोण से भी लोकभाषाओं के मौलिक स्वरूप एवं साहित्य का यथाशीघ्र सम्पूर्ण अध्ययन एवं संकलन-संरक्षण अनुपेक्षणीय है। उपर्युक्त आशंका की ओर संकेत करते हुए ही स्व० महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने (पुरातत्त्व-निबन्धावली, पृ० १९३-९४) कहा है—''खड़ी हिन्दी के सार्वत्रिक व्यवहार और उसीके द्वारा शिक्षा-प्रचार होने के कारण शिक्षित समाज खड़ीबोली में लिखने-बोलने लगा है। जो लिख-बोल नहीं सकते, वे भी उसे संस्कृति और भद्रता का चिह्न समझ बिना संकोच उसके शब्दों और मुहावरों को अपना रहे हैं, जिसके परिणाम-स्वरूप उनकी मातृभाषा बिगड़ती जा रही है। इसकी सत्यता की जाँच के लिए आप पटना की मगही और कायस्थों की भोजपुरी को लेकर देख सकते हैं। जिस तरह यह परिवर्त्तन हो रहा है, उससे तो यदि ये भाषाएँ नष्ट न हो जायँ, तो कम-से-कम थोड़े ही समय में इनके इतना बिगड़ जाने का डर तो जरूर है, जिससे कि इनका वैज्ञानिक

मूल्य बहुत कम रह जाय और आनेवाली पीढ़ियाँ मानव-तत्त्व की इस महत्त्वपूर्ण कड़ी को खो देने का इलजाम हम पर लगावे।"

विद्वच्चेतना की इस नवजागृति के फलस्वरूप विगत दशकों मे ब्रजभाषा, भोजपुरी, मैथिली, मालवी, राजस्थानी, अवधी, गढ़वाली, कुमायूँनी, पंजाबी, हरियाणी, गुजराती, मराठी, बँगला, उड़िया इत्यादि के लोकभाषा-स्वरूप एवं लोक-साहित्य पर विस्तृत एवं श्लाघनीय कार्य हुआ है, पर यह विस्मय की बात है कि भारतीय संस्कृति और राजनीति के कतिपय स्वर्णिम अध्यायों का एकाकी निर्माण करनेवाले मगह-क्षेत्र, मगही-भाषा और मगही-लोकसाहित्य नितान्त उपेक्षित रह गये हैं। इस उपेक्षा का कारण बहुत-कुछ ऐतिहासिक रहा है। कारण, जिन राजनीतिक हलचलों एवं ऐतिहासिक उत्कर्षों ने मगह-क्षेत्र को महिमाशाली बनाया है, उन्होंने इसके जीवन को अनेक प्रभावों से विकासात्मक अर्थ में विकृत, द्रुत, परिवर्त्तनशील एवं परभाषा-संस्कृतिवाही भी बनाया है। इस आधारभूत दोष के बावजूद इस क्षेत्र में अनुसन्धान, अध्ययन-अनुशीलन और संकलन-सम्पादन का अपरिमित अवकाश है। इतना अवश्य है कि अनेक प्रभाव-स्तरों के चट्टानी आवरण में निहित मणियों के अन्वेषण के लिए पर्याप्त समय-श्रम की अपेक्षा है और उसके अभाव में उपर्युक्त कार्य असम्भव-प्राय ही है।

मैं हर अर्थ मे 'मगह-पुत्री' रही हूँ। मेरा जन्म इसकी मिट्टी पर हुआ है, इसी की जलवायु मे पाली-पोसी गई हूँ और इसीके प्रभाव-अनुस्यूत परिवेश मे मेरे ज्ञान-चक्षु खुले है। मगह-जीवन, भाषा एवं लोक-साहित्य का संस्कार मुझे अपनी पूज्या जननी से जन्म के साथ ही प्राप्त हुआ है। अतः मगही-भाषा एवं उसके विकीर्ण साहित्य के अध्ययन-अनुशीलन की ओर मेरा नैसर्गिक प्रेम और आकर्षण रहा है। जबसे मैंने होश संभाला, तबसे ही मेरे हृदय मे एक आकांक्षा का अंकुर पल्लवित होता रहा है कि समर्थ होकर इस भाषा एवं साहित्य की अनुपेक्षणीय प्रभा को मैं विराट् मगह-जनसमुदाय और विद्वन्मण्डली के समक्ष रख सकूँ।

सन् १९५५-५६ ई० की बात है। मैं उन दिनों पालि-भाषा में एम्० ए० करने के लिए पालि-प्रतिष्ठान, नालन्दा में पालि-भाषा का अध्ययन कर रही थी। विश्वविख्यात बौद्ध त्रिपिटकाचार्य भिक्षु श्रीजगदीश काश्यपजी का 'आचार्य'-रूप मे आशीर्वाद एवं मार्ग-दर्शन सुलभ था। मैं पालि-भाषा के अध्ययन-क्रम में ही अनुकूल प्रसंगों में उसकी वर्त्तमान मगही-भाषा से संगति जोड़ती थी, व्याकरणिक रूपों के चार्ट तैयार करती थी, स्थानीय कथा-कहानियों के मगही-रूपान्तर करती थी और पूज्य आचार्यपाद को उन्हे दिखलाया करती थी। विभिन्न सांस्कृतिक कारणों से मेरा वह अनुराग देख आचार्यपाद भाव-विभोर हो जाते और सरल हास्य के साथ भूरि-भूरि प्रशंसा करते थे। एक दिन उन्होंने कहा—'एगो मगधपुत्री हलन संघमित्रा, ऊ बौद्ध धरम के परचार करेला अप्पन जीवन-दान कर देलन आउर लंका चल गेलन। तूहूँ तो मगधपुत्री हऽ। मगही ला संघमित्रा बनऽ।' (एक मगधपुत्री संघमित्रा थी। उन्होंने बौद्धधर्म के प्रचार के लिए अपना जीवन-दान कर दिया था और लंका चली गई थीं। आप भी तो मगधपुत्री हैं। मगही के लिए संघमित्रा बनिए।) पूज्य आचार्यपाद ने अपना प्रबोध-वाक्य मगही-भाषा में ही अवर्णनीय माधुर्य के साथ कहा था और उससे प्राप्त

आनन्दमयी प्रेरणा से मैं रोमांचित हो उठी थी। फिर तो मगही-भाषा एवं साहित्य के प्रति मेरे नैसर्गिक अनुराग ने कर्त्तव्य-संकल्प का रूप धारण कर लिया।

पालि-भाषा के अध्ययन-काल में मैंने जिन पुस्तकों का अध्ययन अपने लिए प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से उपयोगी पाया, उनमें महापण्डित राहुल साकृत्यायन की 'पुरातत्त्व-निबन्धावली' भी एक थी। इसके एक निबन्ध 'मागधी का विकास' (पृ० १८८-८९) को पढ़ते समय मेरी दृष्टि महापण्डित के निम्नांकित काव्य-सन्दर्भ पर पड़ी—''मगही में आज अखबार नहीं निकलते, लेख नही लिखे जाते, लेकिन आध करोड़ बोलनेवाले उसके स्वर में ही जिन्दा हैं। . . मगही आदि भाषाएँ सती-साध्वी कुलांगनाओ भी भाँति चुपचाप बैठी रही। आजकल तो जद्दो-जहद के विना कुछ मिलता नही। इसीलिए इनकी ओर किसी ने ध्यान न दिया कि इन मूक भाषाओं का भी अस्तित्व है। इधर ग्रामगीतो के प्रकाश ने यह बतला दिया है कि यह स्वभाव-सुन्दरी भी है।''

इस वक्तव्य को पढ़कर जहाँ मुझे मार्मिक वेदना हुई, वहाँ मेरे पूर्व-संकल्प मे घोर निश्चयता की भावना भर गई। मैने सन् १९५३ ई० से ही मगही-भाषा के स्वरूप एवं साहित्य में गहरी अभिरुचि लेना शुरू कर दिया था। सन् १९५७ ई० से इसके अध्ययन-अनुशीलन का कार्य व्यवस्थित रूप से चलने लगा, जो आज भी शिथिल नही पड़ा है। इसके बीच के कार्यो का इतिहास तो घोर श्रमों और साधनाओं का इतिहास है। जाने-अनजाने वैयक्तिक स्तर पर मैने एक ऐसा कार्य उठा लिया था, जो वस्तुतः एक संस्था का कार्य था। और, ऐसी स्थिति में कार्य की दुष्करता के सन्दर्भ में साधनहीन व्यक्ति को जो मानसिक एवं शारीरिक यातनाएँ झेलनी पड़ सकती है, वे सब मैंने झेली, पर अपने संकल्प को न छोड़ा।

परिणामस्वरूप मगही-भाषा एवं साहित्य से सम्बद्ध सामग्री का एक विशाल भाण्डार मेरे हाथ लगा, यद्यपि सम्भावित मगही-लोकसाहित्य के सन्दर्भ में यह नगण्य ही है। मगही-भाषा एवं साहित्य से सम्बद्ध मेरे दो ग्रन्थ सन् १९६४-६५ ई० में 'मगही-व्याकरण-कोश' एवं 'मगही-लोक-साहित्य' निकले। इनमें से पहले में डॉ० जॉर्ज ग्रियर्सन के बाद पहली बार मगही-भाषा के व्याकरण का विस्तृत एवं व्यवस्थित वैज्ञानिक स्वरूप प्रस्तुत किया गया था और दूसरे मे मगह-क्षेत्र के बारम्बार पर्यटन के फलस्वरूप लोककण्ठ से संचित मगही-लोकगीतो, लोककथा-गीतो, लोककथाओं, लोकनाट्यगीतों, लोकगाथाओं, मुहावरों, कहावतों एवं पहेलियों के कतिपय प्रतिनिधि नमूने अपने प्रकृत सौन्दर्य के साथ प्रस्तुत किये गये थे। इन दोनों ग्रन्थो की भारतीय विद्वानों ने, जिनमे स्व० महापण्डित राहुल सांकृत्यायन (इन्होंने पाण्डुलिपि देखी थी) एवं बहुभाषाविद् डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या के नाम विशेष रूप से उल्लेख्य है, भूरि-भूरि प्रशंसा की और विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत करने के लिए प्रोत्साहित किया। यह प्रोत्साहन मुझे पुष्कल मात्रा में प्रातःस्मरणीय आचार्यवर स्व० डॉ० विश्वनाथ प्रसाद (भूतपूर्व निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी-निदेशालय, नई दिल्ली), परम श्रद्धेय आचार्यवर प्रो० देवेन्द्रनाथ शर्मा (वर्त्तमान उपकुलपति तथा भूतपूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, पटना-विश्वविद्यालय) से भी प्राप्त हुआ है। इनके अतिरिक्त आदरणीय डॉ० उदयनारायण तिवारी, डॉ० सत्येन्द्र, डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय, डॉ० शिवनन्दन प्रसाद (वर्त्तमान हिन्दी-विभागाध्यक्ष, भागलपुर-विश्वविद्यालय), स्व० आचार्य

नलिनविलोचन शर्मा, स्व० श्रीकृष्णदेव प्रसाद, ऐडवोकेट आदि गुरुजनो का आशीर्वाद मिला है। इन सभी के प्रति मै हार्दिक आभार प्रकट करती हूँ।

अपने दृढ़ संकल्प और विद्वज्जनो से प्राप्त निश्छल प्रोत्साहन-अनुराग के बल पर 'मगही-भाषा और साहित्य' का यह सुविस्तृत अध्ययन प्रथम बार ही प्रस्तुत किया जा रहा है। इतना होते हुए भी मेरा उद्देश्य इसके क्षेत्र मे सम्भावित अनेकानेक शोधों एवं अनुसन्धानो के लिए एक पीठिका का निर्माण करना-भर रहा है। इस क्रम मे मेरा कार्य पद-चिह्न-शून्य वन्य प्रान्त में प्रथम बार मार्गान्वेषण एव रेखाकन-जैसा ही है, जिस पर भविष्य में भव्य राजमार्ग निर्मित हो सकेगा और अपनी उपलब्धियो एवं अभावो के साथ भविष्य के शोधार्थियो की दृष्टि में जो तीर्थकिवत् होगा।

प्रस्तुत कार्य गुरुतर उत्तरदायित्वो के निर्वाह की परिणति है और इसमें मुझे पूज्य पिता स्व० बाबू डेराशाह, स्व० ब्रह्मदेव नारायण ऐडवोकेट, पद्मश्री डॉ० दु:खन राम (भूतपूर्व प्राचार्य, पटना मेडिकल कॉलेज एवं उपकुलपति, बिहार-विश्वविद्यालय), डॉ० विन्ध्देश्वरी प्रसाद सिन्हा (अध्यक्ष, प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति-विभाग, पटना-विश्वविद्यालय एवं अध्यक्ष, मगही-मण्डल, बिहार), श्रीकामेश्वर प्रसाद अम्बष्ठ (भूतपूर्व रजिस्ट्रार, पटना-विश्वविद्यालय), आचार्य श्रुतिदेव शास्त्री (प्रकाशन-पदाधिकारी, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना), पं० रामनारायण शास्त्री (अनुसन्धान-पदाधिकारी, बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना) एवं श्रीचन्द्रशेखर प्रसाद सिन्हा (राजगृह) से पर्याप्त सहायता एवं सत्परामर्श मिले हैं। एतदर्थ मैं इन सभी का कृतज्ञतापूर्वक स्मरण करती हूँ। स्नेहमयी जननी शान्तिदेवी, परमादरणीय 'ज्वाल' जी, प्रिय बहनों—श्रीमती पुष्पा अर्याणी, कृष्णा अर्याणी एवं कौशल्या अर्याणी; अनुज श्रीदेवेन्द्रकुमार, श्रीरामविलास सिंह (अभियन्ता, बिहार-सरकार) एवं श्रीरामनाथ गुप्त तथा पुत्रियों—प्रतिभा अर्याणी, किरण अर्याणी और उषा अर्याणी से जो सहयोग प्राप्त हुआ है, उसके लिए उन्हें धन्यवाद देना स्वयं को धन्यवाद देने-जैसा लगता है।

यह ग्रन्थ पटना-विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत मेरी डी० लिट्० की थीसिस का अविकल प्रस्तुतीकरण नहीं है। उसके बृहत् कलेवर से अनेक अंश इस ग्रन्थ के अत्यधिक स्फीत हो जाने की आशंका से निकाल दिये गये हैं और अत्याधुनिक खोजों के प्रकाश में कई परिच्छेदों का पुनर्लेखन किया गया है। यह सब कुछ इतने विपुलांश में किया गया है कि इस ग्रन्थ की अपनी एक भिन्न रूपाकृति हो गई है। मैं पटना-विश्वविद्यालय के अधिकारियो की कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने मुझे अपने ग्रन्थ के प्रकाशन की कृपापूर्ण अनुमति प्रदान की है।

इस ग्रन्थ का प्रकाशन कर एवं इसे विद्वत्समाज के समक्ष प्रस्तुत कर बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना के विद्वान् निदेशक पं० हंसकुमार तिवारी एवं अन्य सुधी पदाधिकारियों ने जिस स्नेह-सहयोग-भाव का परिचय दिया है, उसके लिए मैं उनके प्रति हार्दिक आभार प्रकट करती हूँ।

अंत में मगह-क्षेत्र के उन अगणित शिक्षित-अशिक्षित ग्रामीण एवं नागरिक नर-नारियों के प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ, जिनके निश्छल सहयोग से मगही-लोकसाहित्य की अमूल्य निधि का संचय सम्भव हो सका है।

राजेन्द्रनगर, पटना
२ अक्टूबर, १९७५ ई०

सम्पत्ति अर्याणी

संकेत-सूची

(१)

ˈ (अ॑)—ह्रस्व विलम्बित अथवा उदासीन स्वर का संकेत-चिह्न। यथा—हम॑नी, देख॑ली, घर॑बा।

ऽ (अऽ)—यह दीर्घ विलम्बित स्वर का लिपि-चिह्न है। व्यंजनान्त अथवा स्वरान्त शब्द के अन्त मे आकर, उसका यह विलम्बित उच्चारण प्रकट करता है। यथा—नऽ, हँऽ, देखऽ।

ॉ (ऑ)—यह स्वर 'आ' का ह्रस्व रूप है। उच्चारण में प्रायः यह 'अ' की तरह सुनाई पड़ता है। यथा कॉटलक, लॉदलकइ।

ि॒ (इ॒)—अति ह्रस्व 'इ' स्वर।

ु॒ (उ॒)—अति ह्रस्व 'उ' स्वर।

ॅ (एॅ)—ह्रस्वोच्चरित 'ए' स्वर। इसका उच्चारण अँगरेजी शब्द मेट (Met) की 'इ' (e) की तरह होता है।

े॒ (ए॒)—अति ह्रस्व 'ए' स्वर।

ैॅ (ऐॅ)—ह्रस्वोच्चरित 'ऐ' स्वर। इसका उच्चारण अँगरेजी के ह्रस्वीकृत शब्द 'माइट' (Mite) के 'इ' (i) की तरह होता है।

ोॅ (ओॅ)—ह्रस्वोच्चरित 'ओ' स्वर। इसका उच्चारण अँगरेजी के ह्रस्वीकृत शब्द नोॅट (Note) के 'ओॅ' (o) की तरह होता है।

ौॅ औॅ)—ह्रस्वोच्चरित 'औ' स्वर। इसका उच्चारण अँगरेजी के ह्रस्वीकृत शब्द 'औॅल' (Owl) के औॅ (ow) की तरह होता है।

ं (अं)—यह अनुस्वार-चिह्न है, जिसका व्यवहार अपने वर्ग के किसी व्यंजन के पहले आनेवाले अनुनासिक व्यजन के बदले मे होता है। यथा—शंख (शङ्ख), बंधल (बन्धल)।

ँ (अँ)—यह अनुनासिक स्वर का संकेत-चिह्न है। यथा—गाँव, मेँ।

√ —यह धातु का चिह्न है। यथा—मगही √घर्, √कर्।

> —यह चिह्न शब्द के रूप-परिवर्त्तन को बताता है। जैसे—भींगल > भिँगावल; अंटा > आँटा।

< —से व्युत्पन्न हुआ है।

= —सम, समार्थ, अर्थ।

× —गुणात्मक।

अ०—अरबी
अं०—अँगरेज़ी
अ० त०—अर्ध तत्सम
अ० पु०—अन्यपुरुष
अ० भ्रं०—अपभ्रंश
अ० मा०—अर्धमागधी
अस०—असमिया
अधि०—अधिकरण कारक
उदा०—उदाहरण
कहा०—कहावत
क्रि०—क्रिया
क्रि० प्र०—क्रिया-प्रत्यय
क्रि० वि०—क्रियाविशेषण
टि०—टिप्पणी
दे०—देखिए
धा०—धातु
पु०—पुल्लिंग
स्त्री०—स्त्रीलिंग
प्रे०—प्रेरणार्थक
मुहा०—मुहावरा
यौ०—यौगिक
लो०—लोकोक्ति
वै० प्र०—वैकल्पिक प्रयोग
सं०—संज्ञा
स० क्रि०—सकर्मक क्रिया
अ० क्रि०—अकर्मक क्रिया
वर्त०—वर्तमान काल
भूत०—भूतकाल
भवि०—भविष्यत्काल
कृ०—कृदन्त
सामा०—सामान्य
उ० पु०—उत्तम पुरुष
ए० व०—एकवचन
ब० व०—बहुवचन
क० वा०—कर्मवाच्य

का०—कारक

भू० का० कृ०—भूतकालिक कृदन्त

भोज०—भोजपुरी

हि०—हिन्दी

म०—मगही

म० पु०—मध्यमपुरुष

मा०—मागधी

मै०—मैथिली

विका०—विकारी

म० व्या० को०—मगही-व्याकरण-कोश

अवि०—अविकारी

प्र०—प्रश्न

उ०—उत्तर

व्या० म०—सु० वि०—व्याकरण-मयंक—सुरेश्वर पाठक विद्यालकार।

सं० हि० व्या०—का० गु०—सक्षिप्त हिन्दी-व्याकरण, कामताप्रसाद गुरु।

पू० कृ०—पूर्वकालिक कृदन्त

अना०—अनादरवाचक

आद०—आदरवाचक

म० लो० सा०—मगही-लोक-साहित्य

विषय-सूची

खण्ड १ : मगही-भाषा

मगही का प्रकीर्ण लोक-साहित्य

●

मगही भाषाक्षेत्र
मापक
सूची
शा हा बा द
राँ ची
उ डी सा
प श्चि मी
बं गा ल
सं था ल
प र ग ना
प ला मू
मा ल दा
म यू र भंज

उपोद्घात

मगही-भाषा और साहित्य पर विचार करने के पूर्व यह आवश्यक ही नही, अनिवार्य-सा प्रतीत होता है कि जिस क्षेत्र से यह सम्बद्ध है, उसकी एक संक्षिप्त ऐतिहासिक पीठिका का अवलोकन कर लिया जाय। कारण, जिस 'क्षेत्र' से सम्बद्ध लोकभाषा एवं साहित्य का प्रकाशन यहाँ अभीष्ट है, उसकी पीठिका से अपरिचित रहने पर न तो उनके उद्भव एवं विकास की रूपरेखा सही-सही खिच सकेगी और न विषय के साथ न्याय करना ही सम्भव हो सकेगा।

मगध : ऐतिहासिक पीठिका

मगध की प्राचीनता और इसके प्राचीन निवासी

प्राचीन मगध का विस्तृत क्षेत्र उत्तर मे गंगा और दक्षिण में विन्ध्य की पहाड़ियो के बीच स्थित था। इसका विस्तार पूर्व में, मुद्‌गगिरि (आधुनिक मुँगेर) और पश्चिम में चरणाद्रि (आधुनिक चुनार) तक था। कर्मनाशा और चुनार के बीच का भू-भाग प्रायः काशी के साथ जुड़ा माना जाता था।

वैदिक साहित्य के अनुसार उस प्राचीन काल में बिहार के अन्तर्गत तीन भिन्न-भिन्न प्रान्त थे—गंगा के दक्षिण-पश्चिम मे 'मगधो' का राज्य था; पूर्व मे 'अंगो' का एवं उत्तर में 'विदेहो' का। विदेहो के राज्य की सीमा 'सदानीरा' (गण्डकी) थी, जो इसको कोशलों के राज्य से पृथक् करती थी।

वैदिक साहित्य के प्राचीनतम अंश ऋग्वेदसंहिता मे इन तीनो में से किसी का भी उल्लेख नहीं मिलता। उसके तीसरे अष्टक के तिरपनवें सूक्त की १४वी ऋचा मे 'कीकट' देश और उसके राजा 'प्रमगन्द' की चर्चा है—

किं ते कृण्वन्ति 'कीकटेपु' गावो नाशिरं दुहेन तपन्त घर्मम्।
आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदो नैचाशाखं मघवन्नन्धया नः॥[1]

निरुक्तकार यास्क इस कीकट देश को अनार्यों का निवासस्थान कहते हैं—

कीकटो नाम देशोऽनार्य्यनिवासः।

सायणाचार्य उन्हीं की व्याख्या का अनुसरण करते हुए अपने भाष्य में 'कीकट' शब्द का अर्थ तो वही देते हैं[2] और दूसरा अर्थ यह देते हैं कि 'कीकट' वे नास्तिक हैं, जो होम आदि क्रियाओं पर श्रद्धा नहीं करते।

बाद के साहित्य में 'कीकट' की चर्चा इस रूप में आती है—

बुद्धो नामा जिनसुतः कीकटेषु भविष्यति।

---

१. ऋग्वेद, खण्ड १, पृ० ५१०; सं० श्रीराम शर्मा आचार्य।

२. 'अनार्य्यनिवासेपु जनपदेपु।'

वायुपुराण में गया-माहात्म्य के प्रकरण में कहा गया है—

कीकटेषु गया पुण्या नदी पुण्या पुनः पुना।
च्यवनस्याश्रमं पुण्यं पुण्यं राजगृहं वनम्॥

अतएव, स्पष्ट है कि 'कीकट' दक्षिण बिहार, अर्थात् मगध का ही पुराना नाम है। महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने अपनी पुस्तिका 'मागधी साहित्य'[1] में 'कीकट' की विस्तृत विवेचना की है। वे भी इस बात को मानते हैं कि बाद में 'कीकट' 'मगध' के लिए ही प्रयुक्त हुआ।

वे इसे नहीं मानते कि 'प्रमगन्द' ही मगध-राज्य का संस्थापक था और 'मगध', 'मगन्द' का ही विकृत रूप है। मगध और अंग देशों के स्पष्ट उल्लेख अथर्ववेद में मिलते हैं। उस वेद के ५वें काण्ड के २२वें सूक्त में ऐसी चर्चा आई है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि 'मगध' वह स्थान है, जहाँ 'शीत' (मलेरिया) का प्रकोप है।[2] श्रीहरप्रसाद शास्त्री ने लिखा है[3] कि अथर्ववेद में मगध का बहुवचन रूप 'मगधों' आया है, जो एक 'जन' (Tribe) का द्योतक है। इस 'जन' के नाम से ही जनपद (स्थान) का नाम 'मगध' हुआ। यह 'जन' वैदिक आर्यों के प्रति मित्रभाव नहीं रखता था।

अथर्ववेद के १५वें काण्ड के दूसरे अनुवाक में व्रात्य महिमा प्रकरण में 'मागध' और 'व्रात्यों' का एक साथ वर्णन आया है।[4]

यजुर्वेद में 'अतिक्रुष्टाय मागधम्' आया है। अतएव, स्पष्ट है कि ये 'मागध' आर्यजन से भिन्न थे। डॉ० देवसहाय त्रिवेद का मत है[5] कि वैदिक आर्य जब प्राची देश में जाने लगे, तब उन्होंने वहाँ व्रात्यों को बसा हुआ पाया, जो सम्भवतः आर्यों के प्रथम आगत दल के सदस्य थे। ऋग्वेद में 'व्रात' शब्द आठ बार आया है। हर बार, व्यक्तियों के अनिश्चित संख्यावाले दल का बोध होता है। यह 'गण' और 'सार्ध' शब्दों से भिन्न है, जो क्रमशः निश्चित संख्या और संघ के लिए आये हैं।

वाजसनेय और तैत्तिरीय संहिताओं में, रुद्र के अध्याय में 'व्रात्य' के साथ 'व्रात्यपति' का भी प्रयोग हुआ है। ये लोग अस्थायी रूप से बसते थे; क्योंकि पंचविंश-ब्राह्मण में 'व्रात्याम् प्रवसतः' आया है। 'प्रवास' शब्द अस्थायी रूप से टिकने का द्योतक है। ये लोग ब्राह्मण-संस्कृति से दूर थे, खेती नहीं करते थे। ये लोग आरम्भ में खानाबदोशों के गिरोह थे।

म० म० पं० सकलनारायण शर्मा[6] के मतानुसार दक्षिणी बिहार के आदिवासी अनार्य और नास्तिक थे। उनके देश का नाम 'कीकट' (कुछ न करनेवाला) है। वे सूद पर लोगों

१. मगध लिटरेचर, कलकत्ता, १९२३ ई०।

२. अथर्ववेद, खण्ड १, पृ० २२८, सं० श्रीराम शर्मा आचार्य।

३. मगध लिटरेचर, वही।

४. अथर्ववेद, खण्ड २, पृ० ७२८, सं० श्रीराम शर्मा आचार्य।

५. प्राङ्मौर्य बिहार : डॉ० देवसहाय त्रिवेद।

६. जयन्ती-स्मारक ग्रन्थ : श्रीरामलोचनशरण बिहारी की स्वर्ण-जयन्ती, 'वैदिक काल का बिहार', पृ० ४७–५०।

को कर्ज देते थे। भारत में उनकी प्रसिद्धि धनिकों में थी। धन के कारण उनके देश का नाम 'मगध' हो गया। घृणाव्यंजक 'कीकट' नाम लुप्त हो गया। 'मग' शब्द का अर्थ 'सूद' है, उसका लेनेवाला 'मगध' है।

पतंजलि[1] के अनुसार 'व्रात्य' या 'व्रातीन' अनेक श्रेणियों में विभक्त थे। प्राचीन काल में बिहार में वे बड़े जनपद थे।[2] उक्त जनपदों के नाम करुष और मलद थे। वहाँ के निवासी बड़े भारी शैव थे। वाल्मीकिरामायण के अनुसार ये दोनों बक्सर से कुछ दूर पर थे। पतंजलि और म० म० पं० सकलनारायण शर्मा के वर्णनों को मिलाने से यही निचोड़ निकलता है कि व्रात्य ही शिवपूजक थे और निश्चित रूप से दक्षिण बिहार में रहते थे।

आज का सारन और आरा क्रमशः वैदिक काल का 'सारंगारण्य' और 'आरण्य' हो सकता है। आज की सोन नदी प्राचीन काल की 'मागधी' हो सकती है। वाल्मीकि-रामायण के इस वर्णन से—

सुमागधी नदी पुण्या मगधान् विश्रुता ययौ।
पञ्चानां शैलमुख्यानां मध्ये मालेव शोभते॥

यह निष्कर्ष निकल सकता है कि सोन नदी पहले पटना के पूरब राजगृह की पंच पहाड़ियों के मध्य से बहती थी और धीरे-धीरे पश्चिम की ओर हटते हुए (गुप्तकाल में यह आधुनिक पटना के पश्चिम छोर पर थी) आज की स्थिति में पहुँच गई है।

'मगधों' के 'जन' के नाम पर ही जगह का नाम 'मगध' हुआ। 'मागध' शब्द का अर्थ हुआ 'मगध' के रहनेवाले। कोई जरूरी नहीं है कि वे 'मगधों' के जन के ही व्यक्ति हों। महाभारत (५।३५।४६) में व्रात्यों को महापातकियों में गिना गया है। यथा— आग लगानेवाले, विष देनेवाले, कोढ़ी, भ्रूणहत्यारे, व्यभिचारी तथा पियक्कड़। पंचविंश-ब्राह्मण में व्रात्यों को चार श्रेणियों में बाँटा गया है—हीन, गरगिर, निन्दित, समनीच मेंध और उन 'स्तोमों' की चर्चा की गई है, जिनके द्वारा ये शुद्ध किये जाकर द्विज हो जाते थे। इनकी अपनी विशिष्ट सभ्यता और संस्कृति थी। कहा जा सकता है कि वैदिक संस्कृति और व्रात्य-संस्कृति का संघटन सर्वप्रथम मगध में ही हुआ। ऐसा भी विचार प्रकट किया गया है कि राजर्षियों की परम्परा मगध से ही आरम्भ हुई, जिसमें राजर्षि विश्वामित्र अग्रणी माने जा सकते हैं। वैदिक आर्यों की टोली से विद्रोह कर भागे हुए प्रतिभाशाली व्यक्तियों का या तो व्रात्य-परम्परा का जन्मदाता होने या इस परम्परा का नेता बनकर धीरे-धीरे इन दो संस्कृतियों के पारस्परिक विरोध का शमन कर एकरूपता लाने की बात भी सम्भव हो सकती है।

उपर्युक्त अधिकांश बातें, जहाँ एक ओर व्रात्यों को हेय, पतित और अवाञ्छनीय व्यक्तियों के रूप में प्रदर्शित करती हैं, दूसरी ओर ऐसे भी प्रकरण उपलब्ध हैं, जहाँ 'व्रात्य'

१. महाभाष्य, ५।२।२१।
२. जयन्ती-स्मारक ग्रन्थ : श्रीरामलोचनशरण।

शब्द श्रेष्ठ व्यक्ति और श्रेष्ठता का द्योतक है। अथर्ववेद (१५वाँ काण्ड) में तो व्रात्य को भ्रमणशील पुण्यात्मा यति का आदर्श माना गया है। चूलिकोपनिषद् 'व्रात्य' को ब्रह्म का एक अवतार गिनती है। तुलना करें : 'व्रात्य वा इदमग्रमासीत्' ।[1], 'व्रात्य' के ये दो परस्पर विरोधी पहलू एक बड़ी जटिल समस्या उपस्थित करते हैं, जिसका समाधान दुर्गम मालूम होता है।

मगध में आर्य

प्राचीन भारत के विविध राज्य

आर्यों के विस्तार से पूर्व भारत में अन्य जातियों का निवास था। आर्य लोग पश्चिम की ओर से भारत में प्रविष्ट हुए थे। ज्यों-ज्यों वे पूर्व की ओर बढ़ते गये, आर्यभिन्न जातियों से उनका सम्पर्क भी बढ़ता गया। आर्य जाति बहुत से छोटे-छोटे भागों में बँटी हुई थी, जिन्हें 'जन' कहते थे। 'जन' कबीला या अँगरेजी के 'ट्राइब' का पर्यायवाची माना जा सकता है। ये विविध 'जन' विविध प्रदेशों में बस गये। इन जनों के नाम पर विविध प्रदेश की संज्ञा 'जनपद' हुई, उदाहरण के लिए कुरु, पाञ्चाल, वत्स, शूरसेन, अंग, यौधेय, मद्र आदि जनपद।

'जन' शब्द केवल विशेष कबीले का द्योतक था। परन्तु, 'जनपद' में किसी विशेष प्रदेश के सभी रहनेवाले अन्तर्भूत हुए। अतएव, यह स्पष्ट है कि किसी जनपद में आर्य भिन्न जातियाँ पर्याप्त संख्या में बसती थीं। पूर्व भारत में इन आर्यभिन्न जातियों की संख्या पश्चिम के जनपदों की अपेक्षा बहुत अधिक थी।

आर्यवंशों में सबसे मुख्य मानव और ऐल वंश हैं। इन दोनों वंशों में अनेक शाखाएँ-प्रशाखाएँ हुईं। ये ही धीरे-धीरे सम्पूर्ण उत्तरी भारत में फैलकर राज्य करने लगे। ऐलवंश का संस्थापक राजा पुरूरवा था। इसी वंश में बाद में राजा 'तितिक्षु' हुआ, जिसने बिहार में प्रथम राज्य की स्थापना की। पौराणिक अनुश्रुति के अनुसार गंगा के किनारे एक राज्य कान्यकुब्ज था। वहाँ के एक राजा जह्नु का विवाह मान्धाता की लड़की से हुआ।[2] जह्नु की छठी पीढ़ी में राजा कुश हुआ। जिस समय 'तितिक्षु' बिहार में राज्य कर रहा था, उसी समय कान्यकुब्ज में आर्य राजा 'कुश' राज्य चला रहा था। उसका छोटा लड़का 'अमूर्त्त रयस' था, जिसका पुत्र प्रतापी राजा 'गय' हुआ, जिसने 'गया' नगरी बसाई। ऐसा लगता है कि मगध में आर्यों का यह पहला राज्य देर तक टिक न सका। इस समय मगध में जंगलों की भरमार थी, जिनमें आर्यों से पराजित अनार्य जातियाँ भागकर बस गई थीं। मौका पाकर, इन्हीं जातियों ने आर्यों के इस स्थापित राज्य को तहस-नहस कर डाला।

---

१. पैप्पलादशाखा, अथर्ववेद, १५.१।

२. सुलतानगंज (भागलपुर) में गंगा के बीच में एक टापू-सा है, जिसमें मन्दिर बने हैं। इस टापू के कारण गंगा की धारा दो भागों में विभक्त होकर फिर मिल जाती है। गंगा का नाम यहाँ पर जाह्नवी होता है। अगर इस स्थान का कोई सम्बन्ध राजा जह्नु से रहा हो, तो हम कान्यकुब्ज-राज्य की भौगोलिक स्थिति का अनुमान कर सकते हैं।

आर्यों के पूर्व की ओर प्रसार के सम्बन्ध में यह विचारणीय है कि उत्तर बिहार और दक्षिण बिहार (मगध) की परिस्थितियों मे क्या ऐसा कुछ मौलिक और स्थानिक अन्तर था, जिसके कारण इन दोनों क्षेत्रों में उनके विस्तार का इतिहास भिन्न-भिन्न प्रतीत होता है ।

शतपथब्राह्मण में आर्यों के राष्ट्रीय नायक विदेह माधव की कथा है। आर्यों और ब्राह्मणत्व के विस्तार की कथा आपस में जुड़ी है। यज्ञ की अग्नि के प्रसार की गाथा वैदिक संस्कृति के सरस्वती-तट (पश्चिम) से बढ़कर सदानीरा (गण्डकी नदी) के तट तक (पूरब की ओर) पहुँचने की कहानी है। यहाँ से उत्तर-पूर्व की ओर बढ़ने के लिए सदानीरा को पार करना था और दक्षिण-पूर्व की ओर बढ़ने के लिए गंगा को। बाद मे सदानीरा ही विदेह और कोशल-राज्यों के बीच की विभाजक रेखा हुई ।

आर्यों की यज्ञ-अग्नि के अधिष्ठाता अग्नि-वैश्वानर सुदूर सरस्वती के तट से चलकर, सघन अरण्यों को सपाट करते हुए, आर्यों के आधिपत्य को स्थापित करते हुए; सदानीरा के तट पर आकर कुछ देर के लिए ठिठक गये प्रतीत होते हैं। नदी के उस पार का अछूता प्रदेश, अपनी अगम्यता के कारण, अस्पृश्य घोषित किया गया। परन्तु, ज्यों ही कुछ साहसिक ब्राह्मणों ने नदी को लाँघकर आश्रमों की स्थापना की, पूरब का प्रदेश सब तरह प्रशंसनीय घोषित किया गया।

विदेह माधव इस साहसिक दल के अगुआ के रूप में जंगलो को जलाते, जमीन को कृषि-योग्य बनाते, आदिवासियों (अनार्यों) को खदेड़ते आगे का मार्ग प्रशस्त करते चले।

मिथिला का आर्यीकरण मगध के पहले हुआ। क्षेत्र की दुरूहता, शक्तिशाली अनार्यो की टोलियों का बाहुल्य, लड़ते-झगड़ते, दक्षिण की ओर हटते हुए, इनका झारखण्ड की अटवियों में शरण लेकर, मौका पाकर बार-बार आर्यो से लोहा लेना आदि सबने मिलकर मगध को एक लम्बे अरसे तक एक हौआ बना रखा। इस क्षेत्र के प्रति एक स्वाभाविक घृणा घर कर गई, जो एक लम्बे अरसे तक कायम रही और वर्त्तमान मे भी किसी रूप में कायम है। यही कारण है कि आज भी मिथिला के लोग पुण्य-तिथियों के अवसर पर गंगा के उत्तर तट पर ही स्नान करते हैं। मगध से सटा गंगा का दक्षिण तट आज भी अपवित्र माना जाता है।

मगध के प्रति प्राचीन आर्यों के उपेक्षा-भाव का एक और प्रबल कारण है। भारत मे प्रवेश करने के साथ-साथ ही आर्यों का यहाँ के आदिवासियों के साथ सम्पर्क हुआ। विजेता और विजित की पारस्परिक घृणा ने एक परम्परा का रूप लिया। आर्यो का एक दल आर्यरक्त की विशुद्धता को अक्षुण्ण बनाये रखने मे तत्पर रहा। वसिष्ठ को हम इस दल के नेता के रूप मे पाते हैं। आर्यो का दूसरा दल संस्कृति और रक्त के मिश्रण का पक्षपाती था। इस दल के नायकों के प्रति प्रथम दल के लोग असहिष्णु हो उठे और उन्हें खदेड़ने लगे। ये पूरब की ओर भागकर मगध में अनार्यो (आदिवासियों) के बीच बस गये और उनका नेतृत्व करने लगे। विश्वामित्र इस दूसरे दल के अग्रणी प्रतीत होते हैं। आरा जिले मे बक्सर के पास विश्वामित्र के आश्रम होने की परम्परा बड़ी सारगर्भित है। दूसरे दल के लोगों को एक ओर अपने ही लोगों के विरोध का सामना करना पड़ता था, दूसरी ओर

अनार्यों के उद्दण्ड नायकों से भी उनका संघर्ष चलता रहता था। जब आर्य-संस्कृति धीरे-धीरे मगध मे प्रवेश करने लगी, तब अपने ही व्यक्तियों के प्रति घृणा और उपेक्षा का भाव क्रमशः आश्चर्यमिश्रित सराहना के रूप में बदलने लगा। एक लम्बे अरसे के साहित्य में, भावनाओं का यह संघर्ष एक ग्रन्थि बन गया, जिसको सुलझाना अब भी कठिन हो रहा है। उदाहरण के लिए, अथर्ववेद का व्रात्य-काण्ड (पंचदश काण्ड) है, जिसकी विवेचना पूर्व प्रकरण में हो चुकी है।

मगध के प्रति प्राचीन उपेक्षा-भाव और उसके कारण[1]

वेद और वेदोत्तर कालों में मगध और मगध-निवासी के प्रति एक विचित्र और उत्कट घृणा तथा उपेक्षा का भाव स्पष्ट है। इसलिए, यह अलग विवेचना का विषय हो जाता है। 'कीकट', 'मगध', 'मागध' और 'व्रात्य' इन चार नामों के द्वारा मगध और मगध-निवासी की चर्चा हुई है। इनकी विवेचना पूर्वपृष्ठों में भरसक की जा चुकी है।

अथर्ववेद, काण्ड १५ मे 'मागध' और 'पुंश्चली' शब्द साथ-साथ आये हैं। यथा—

श्रद्धा पुंश्चली मित्रो मागधो विज्ञानम।

पुंश्चली का अर्थ वेश्या और व्यभिचारिणी लगाया गया है। मनुस्मृति के वर्णसंकर-प्रकरण में वर्णन आया है कि अमुक-अमुक वर्ण के संकर—संयोग से मागध उत्पन्न होते हैं। अतएव, विशुद्ध आर्य-मर्यादाओं से देखे जाने पर, मगध ऐसा क्षेत्र मालूम होता है, जहाँ आचरणों में सब तरह की छूट है। ऐसा लगता है कि अनार्य कन्याओं के वशीभूत हो कुछ आर्य पथभ्रष्ट होकर उन्हीं के साथ हिल-मिल जाते थे। मगध पहुँचते-पहुँचते आर्यों और अनार्यों का सम्बन्ध, विजेता और विजित-मात्र का न रहकर, दो संस्कृतियों एवं सभ्यताओं के मिश्रण का हो जाता था।

दूसरे, मगध, आर्य-स्पर्द्धा के पहले ही से सम्पन्न है। आर्यों की ललचाई दृष्टि उस ऐश्वर्य को भुला नहीं पाती है। एक ओर अपनी श्रेष्ठता का बोध, दूसरी ओर अनार्यों की समृद्धि, आर्यों के मन में ग्रन्थि गढ़ती है। ऋग्वेद मे उनका ऋषि स्पष्ट कहता है - 'किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावः', अर्थात् कीकट में लोग गौओं को लेकर क्या करेंगे? व्यंजना यह है कि आर्य ही इन गौओं का उत्तम उपयोग कर सकते हैं। 'कीकट' देश मगध और अंग के पास ही है। अंग ज्वरप्रधान और मगध व्यभिचारप्रधान है। घृणा और आकर्षण की खींचातानी में प्रथम घृणा को ही विजय मिलती है। देवल-स्मृति में लिखित—

---

१. प्रस्तुत विषय की विवेचना निम्नांकित सन्दर्भों के आधार पर की गई है—

(क) वैदिक सम्पत्ति : पं० रघुनन्दन शर्मा, 'मागध', पृ० ८३।

(ख) जयन्ती-स्मारक ग्रन्थ : श्रीरामलोचनशरण बिहारी की स्वर्ण-जयन्ती : 'वैदिक काल का बिहार'—(अ) म० म० पं० सकलनारायण शर्मा, पृ० ४७–५०; (आ) श्रीरामनाथ झा, एम्० ए०, पृ० ५१—५६।

(ग) प्राङ् मौर्य बिहार : डॉक्टर देवसहाय त्रिवेद।

(घ) The Glory of Magadh : J. N. Samaddar, 'The antipathy to Magadh.'

(ङ) Magadhan Literature : M. M. Her Prasad Shastri.

अङ्गवङ्गकलिङ्गेषु सौराष्ट्रमगधेषु च।
तीर्थयात्रां विना गत्वा पुनः संस्कारमर्हति ॥

के अनुसार, अबाधित स्थान से दूर रहने का सबसे उत्तम उपाय यही है कि उसको वर्जित घोषित कर दिया जाय।

श्रौतसूत्रों में भी मगधदेश-वासियों को बहुत नीचा स्थान दिया गया है। बौधायन धर्मसूत्र (१।२।१३) मे मगध और अंग देशों के निवासी संकीर्णयोनि कहे गये हैं। कात्यायन (२२।४।२२) और लाट्यायन (८।६।२८) के श्रौतसूत्रों मे कहा है कि दक्षिणा के समय व्रात्यों का धन मागधदेशीय ब्रह्मबन्धुओं को देना। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि इन श्रौतसूत्रों मे मागधदेशीय ब्राह्मण, ब्राह्मण न कहे जाकर 'ब्रह्मबन्धु' कहे गये हैं। यह व्यंजना निकलती है कि वे लोग हैं तो मूल से ब्राह्मण, परन्तु संस्कारच्युत हैं। कहीं-कहीं और कभी-कभी मगध में सद्ब्राह्मण के भी रहने की घटना से सिर्फ इतना ही निष्कर्ष निकलता है कि इन लोगों की संख्या विरल थी।

क्या कारण है कि आदि वैदिक काल मे मगध का स्थान बहुत ही हेय था। हो सकता है कि यह देश आर्य-संस्कृति के अन्तर्गत नहीं हो। परन्तु, उल्लेखों से यही स्पष्ट होता है कि मगध में आर्यों ने अपना अधिकार जमाया सही, आर्यों की संस्कृति भले ही यहाँ आई, किन्तु यहाँ के आदिवासियों का लोप नहीं हुआ। ब्राह्मणों की अधीनता स्वीकार करके भी यहाँ के अनार्य निवासियों ने अपना अस्तित्व कायम रखा। इसी कारण से ब्राह्मणों का प्राबल्य नहीं हो पाया। उपर्युक्त मत पण्डित वेबर का है।[१]

पार्जिटर साहब[२] का कथन है कि मगध में पूर्व की ओर से अनार्यों का आना-जाना बराबर जारी था। वे लोग जलमार्ग से यहाँ आते ही रहे। इसी कारण से यहाँ आर्यों का प्रभुत्व सुदृढ नही हो पाया।

ओल्डनबर्ग ने अपने 'बुद्ध' नामक ग्रन्थ मे इस प्रसंग की विशद विवेचना की है। उनके कथन का सारांश यह है कि संहिता-काल मे आर्य-सभ्यता का केन्द्र सरस्वती और दृषद्वती के बीच के देशों में था। मनु ने इसको 'ब्रह्मावर्त्त' कहा है। परन्तु, ब्राह्मणकाल में इस संस्कृति का केन्द्र कुरु तथा पंचाल और उसीके आसपास के देशों में था, जिसे मनु ने 'ब्रह्मर्षिदेश' कहा है। इस देश के प्रसंग में उन्होंने कहा है—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन्पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥

ऐतरेय ब्राह्मण में भी आर्यदेशों के लिए 'अस्या ध्रुवाया प्रतिष्ठाया' विशेषणों का प्रयोग किया गया है। शतपथब्राह्मण में तो बार-बार कुरु-पंचाल के ही ब्राह्मणों की प्रशंसा की गई है और स्पष्ट कहा गया है कि पहले ब्राह्मण लोग 'सदानीरा' (हाजीपुर की गण्डकी) को पारकर पूर्व की ओर नहीं गये थे।

इन प्राच्य देशों मे आर्यों का आना पीछे हुआ और कुरु-पांचाल के ब्राह्मण लोग,

---

१. Indische : Studies 1,52, 53. etc. On Indian Literature. 79, 111, 112 etc.
२. J. R. A. S. 1908, pp. 851—853.

जो आर्य-संस्कृति के नेता थे, इन प्राच्य देशों की ओर उसी दृष्टि से देखते थे, जिस दृष्टि से आगे बढ़े हुए लोग पिछड़े हुए लोगों को देखते हैं।

वेबर, पार्जिटर और ओल्डनबर्ग के विचारों को मिलाकर देखने से यही निष्कर्ष निकलता है कि यद्यपि मगध मे भी आर्यों ने अपना अधिकार स्थापित किया, तथापि आर्य-सभ्यता यहाँ जड़ जमाने नहीं पाई। मगधवासियों ने, कुरु-पाचालों की तरह आर्य-संस्कृति को नहीं अपनाया। यहाँ के निवासियों ने वैदिक धर्म के रहस्यों को नहीं समझा, अर्थात् मगध ने आर्य-सभ्यता को पूर्णरूपेण ग्रहण नहीं किया। यही कारण है कि वैदिक साहित्य में सर्वत्र मगध की केवल निन्दा ही मिलती है और इसीसे यहाँ बौद्ध प्रभृति वेद-विरुद्ध धर्मों का बड़ी प्रबलता से प्रसार हुआ। इन धर्मों के प्रसार के कारण भी बाद में मगध को ब्राह्मण-धर्म का अत्यधिक कोपभाजन बनना पड़ा।

समाद्दार ने एक विशिष्ट मत दिया है कि व्रात्य, ब्राह्मणों की शिष्ट भाषा न बोलकर, एक ऐसी बोली बोलते थे, जिसका रूप प्राकृत था। ये, आर्यब्राह्मण ही थे, जो मगध में आकर बस गये थे। ये मागधों के पुरोहित हो गये और चूँकि मागध अनार्य होने के कारण उपेक्षित थे, इसलिए उनके पुरोहित भी प्रारम्भ में उपेक्षित रहे।

शतपथब्राह्मण के अनुसार आरम्भ में न कोशल और न विदेह का पूर्ण रूप से आर्यीकरण हुआ। मगध इस दृष्टि से सर्वाधिक पिछड़ा था। जहाँ-तहाँ आर्यों की अग्र-टोलियाँ बस गई थीं, जो यहाँ के आदिवासियों से उलझ रही थीं। मगध का आर्यीकरण बल-प्रयोग से न होकर आर्य-संस्कृति की श्रेष्ठता के कारण हुआ। यहाँ आकर बसे आर्य उदार विचारोंवाले थे, अग्रणी थे और साथ-साथ उद्धत भी थे। प्रारम्भिक घृणा और उपेक्षा का मूल कारण यही है। पहले इन्हें त्याज्य घोषित किया गया। फिर, इनकी सफलताओं और समृद्धि को देखकर इन्हें प्रायश्चित्त कराके, अपना लेने का विधान हुआ और अन्त में इनके भीतर से ही स्वतन्त्र विचारवाले ऋषि-मुनि उद्भूत हुए, जिन्होंने अपना वेद रचा (अथर्ववेद)। अनेक शत वर्षों की प्रगति का यही समुचित सिंहावलोकन है।

प्राग्-ऐतिहासिक और ऐतिहासिक युगों का सन्धिकाल

पौराणिक और महाकाव्य-काल

महाभारत में सोलह प्रसिद्ध सम्राटों की तालिका दी गई है। उसमें बृहद्रथ का नाम आया है। वायुपुराण में राजगृह-माहात्म्य के अन्तर्गत बृहद्रथ को मगध का राजा और जरासन्ध का पिता कहा गया है।

मगध में प्रथम व्यवस्थित राज्य की स्थापना का वर्णन वाल्मीकिरामायण[1] में हुआ है। विश्वामित्र ने राम और लक्ष्मण के साथ मिथिला की यात्रा करते समय, पथ में 'शोण नदी' के तीर पर निवास किया। उस नदी के तीर पर बसे सुन्दर नगर को देखकर राम ने पूछा—'यह कौन देश है, जो धन-धान्य से समृद्ध एवं वनों से सुशोभित है।' विश्वामित्र ने बताया—'महातपस्वी ब्रह्मपुत्र कुश के चार लोकश्रेष्ठ पुत्र थे। चारों ने सुन्दर नगर

१. आदिकाल, अध्याय ३२।

बसाये। उनमें राजा वसु ने गिरिव्रज (वर्त्तमान राजगृह) नामक नगर बसाया। यह समृद्ध भूमि और पाँच पर्वत महात्मा वसु के ही हैं।'

राजा कुश के दूसरे पुत्र 'अमूर्त रयस' का लड़का 'गय' था। सम्भवतः, इसीने वर्त्तमान गया नगरी बसाई। इस प्रसंग की चर्चा पहले हो चुकी है। प्रतीत होता है कि मगध में आर्यों का यह प्रथम राज्य देर तक नहीं टिक सका। धर्मारण्य, उस समय में एक विशाल जंगल था, जिसमें शक्तिशाली राक्षस-जातियाँ निवास करती थीं। ऋषि विश्वामित्र ने जिन राक्षस-जातियों को नष्ट करने के लिए अयोध्या के राजा राम की सहायता ली थी, वे इसी जंगल में बसती थीं।

पूर्वी भारत मे आर्य लोग अपनी रक्तशुद्धता को कायम नहीं रख सके थे। मगध के बाद के राजाओं को भी असुर या शूद्र कहा गया है। जरासन्ध और महापद्मनन्द जैसे मागध सम्राट्, शुद्ध आर्य के स्थान पर, असुर या शूद्र कहे गये हैं। पूर्वी भारत के इन प्राचीन आर्यों मे बहुत प्राचीन काल से अनार्य रक्त का प्रवेश हो गया था। पूर्वी भारत में जाकर बसनेवाले तथा अपना पृथक् राज्य स्थापित करनेवाले आर्य ब्राह्मणों और क्षत्रियों ने, आर्यभिन्न जातियों की स्त्रियों से विवाह किया। इसीलिए, इन पूर्वी राज्यों में अनार्य-तत्त्व की अधिकता रही।

राजा वसु के पाँच लड़कों में एक बृहद्रथ मगध का पहला शासक नियत किया गया। बृहद्रथ की आठवी पीढ़ी मे जरासन्ध हुआ, जो महाभारत-काल का है। इसके बाद जरासन्ध का बेटा सहदेव मगध के सिंहासन पर आरूढ हुआ। फिर, सहदेव का लड़का सोमाधि मगध की राजगद्दी पर बैठा। पुराणों के अनुसार सोमाधि से शुरू कर रिपुंजय तक कुल २२ राजा मगध मे हुए। शासनकाल का कुल जोड़ ९४० वर्ष होता है।

रिपुंजय के बाद भट्टिय नामक एक व्यक्ति ने अपने लड़के बिम्बिसार को मगध की गद्दी पर बैठाया। इसके बाद उसका पुत्र अजातशत्रु मगध-सम्राट् हुआ। अजातशत्रु के पुत्र उदयी (लगभग ४८३–४६७ ई० पू०) ने पटना नगर बसाया।

ऐतिहासिक युग का उषःकाल और बाद के काल

बिम्बिसार और बुद्ध के साथ ऐतिहासिक युग का आरम्भ होता है। बाद के युगों को यथानिर्दिष्ट निश्चित कालो मे बाँटा जा सकता है—बौद्धकाल और जैनकाल, मौर्यकाल, शुङ्ग और मित्रकाल, गुप्तकाल, मध्ययुग, मुसलमान-काल, अँगरेज-काल और वर्त्तमान काल।

बिम्बिसार को शिशुनाग-वंश का कहा गया है। महानन्द इस वंश का अन्तिम राजा हुआ। इसके पुत्र महापद्मनन्द ने ई० पू० ३७२ में एक नये वंश की स्थापना की। इस वंश के अन्तिम राजा को मारकर चन्द्रगुप्त ने मौर्यवंश की स्थापना की।

मगध में व्यवस्थित एवं सुदृढ शासन की स्थापना का श्रेय महाराज बिम्बिसार को है। ये बुद्ध के समकालीन थे। बौद्धधर्म के प्रचार में इन्होंने अपनी पूरी शक्ति लगा दी। बुद्ध के व्यक्तित्व और धर्म-प्रचार की गहरी छाप ने मगध की प्रमुखता में पूर्ण योगदान

दिया। भारतीय दर्शन को बौद्धधर्म की चिन्ताधारा देने का श्रेय और सौभाग्य मगध को ही है, ऐसा कहे, तो अत्युक्ति न होगी। मगध ने मुद्गलायन और सारिपुत्र जैसे धर्म-सेनापतियों को बुद्ध को अर्पित किया। जैनदर्शन भी मगध-भूमि में पनपा। इस प्रकार, बौद्ध और जैनदर्शन ने वैदिक कर्मकाण्ड, याज्ञिक-हिंसा-प्रवृत्ति और धार्मिक पाखण्ड पर कुठाराघात करके नवीन चिन्तन का द्वार खोल दिया। इन कारणों से मगध को अभी तक ब्राह्मण-धर्म के कोप से मुक्ति नहीं मिली है।

पुरातत्त्ववेत्ताओं के अनुसार मगध-सम्राटों की बुद्धि, शक्ति, राज्यविस्तार की क्षमता और साम्राज्य-साधना ने मगध को इतना सशक्त बना दिया कि मौर्यराज्य तक पहुँचते-पहुँचते वह भारत की केन्द्रीय महाशक्ति के रूप में प्रतिष्ठित हो गया।

सम्राट् चन्द्रगुप्त और गुरु चाणक्य की जोड़ी शक्ति और बुद्धि का ऐसा समन्वय उपस्थित करती है, जिनकी तुलना विश्व-इतिहास में दुर्लभ है। प्रियदर्शी अशोक की धर्म-विजय विश्व-इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित है। उसने विश्व-संस्कृति को जो अनुपम और अद्वितीय देन दी, उसके फलस्वरूप अगले हजारों वर्षों तक मगध संसार की सांस्कृतिक प्रेरणाओं का केन्द्र रहा। भारत के ऐतिहासिक एवं सास्कृतिक महत्त्व में नालन्दा का योगदान अनुपम है।

मौर्यकाल के बाद मगध ने उत्थान और पतन के अनेक वर्ष देखे। ब्राह्मण और बौद्धधर्म के ह्रास और विकास की अनेक मनोरंजक कथाएँ इस काल के साथ जुड़ी हैं।

गुप्तों के साथ इतिहास की यवनिका फिर उठती है और एक ऐसा युग सामने आता है, जो भारतीय इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित है। चौथी शताब्दी के आरम्भ में चन्द्रगुप्त नाम का एक साधारण व्यक्ति मगध के इतिहास में चमक उठता है। उसका पुत्र समुद्रगुप्त दिग्विजय करता हुआ एक बार फिर विशाल मगध-साम्राज्य की स्थापना करता है। उसके पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय का काल, इतिहास का अनोखा काल है। ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल, व्यापार-वाणिज्य, देश-विदेश से सम्पर्क, साम्राज्य-विस्तार और सभी क्षेत्रों में विकास एवं सफलता दर्शनीय है। प्रसिद्ध चीनी यात्री फाहियान उस समय भारत में आया था। पटना में उसने दो वर्ष रहकर संस्कृत का अध्ययन किया। उसके यात्रा-वृत्तान्त से मालूम होता है कि देश में बड़ी शान्ति एवं सुख-समृद्धि विराजती थी।

चन्द्रगुप्त के पुत्र कुमारगुप्त (प्रथम) ने पटना और राजगृह के बीच नालन्दा के महाविहार की स्थापना की। नालन्दा पीछे सभ्यता और संस्कृति के एक महान् केन्द्र और विद्यापीठ के रूप में प्रसिद्ध हो गया।

गुप्तवंश के अन्तिम राजाओं के काल में हूणों के आक्रमण होने लगे। क्रमशः इस राजवंश की शक्ति क्षीण होने लगी और अन्ततः इन्हें पीछे हटना पड़ा। इस तरह लगातार एक हजार वर्ष तक भारतीय साम्राज्य की राजधानी के रूप में रहने के बाद मगध का महत्त्व घट गया।

इसके बाद बिहार-बंगाल को अपने अधिकार में करके वहाँ एक सुसंगठित एवं सुदृढ राज्य की स्थापना का श्रेय गोपाल (७४३ ई०) को है। इस तरह पालवंश का

आरम्भ हुआ, जिसका सक्रिय शासन १०२३ ई० तक रहा। गोपाल की राजधानी उदन्तपुर या उद्दण्डपुर (वर्त्तमान बिहारशरीफ) मे थी। उसने नालन्दा की प्रगति मे काफी सहयोग दिया। उसका लड़का धर्मपाल अपने पिता से बढ़कर प्रतापी हुआ। उसने राज्य-विस्तार के साथ विद्या और संस्कृति के विकास में पूर्ण योगदान दिया। पालवंश के शासनकाल में नालन्दा और विक्रमशिला के विद्वानो को अपने कार्य में किसी तरह की बाधा नही हुई थी। पर तुर्कों के आक्रमणो ने इन राजाओं की शक्ति छिन्न-भिन्न कर दी। यहाँतक कि सन् ११९९ ई० मे मुहम्मद-बिन-बख्तियार ने दो सौ सवारों के साथ उद्‌दण्डपुर पर हमला किया और नालन्दा के विहार को किला समझकर घेर लिया। उसने खोज-खोजकर एक-एक भिक्षु को कत्ल कर दिया; क्योंकि रक्षा का कोई उपाय न देखकर इन निरुपाय भिक्षुओं ने आत्मरक्षा के लिए शस्त्र उठाया था। युद्ध के बाद जब उसने विहार मे प्रवेश किया, तब वहाँ किताबों के ढेर के सिवा उसे कुछ न मिला। शताब्दियो से संगृहीत इस विहार का विशाल पुस्तकालय उसकी दृष्टि मे एक ऐसी पहेली बन गया कि उसको जलाकर खाक कर देने के सिवाय उसे और कुछ न सूझा।

मगध के इस ज्ञान-भाण्डार का सदा के लिए लुप्त हो जाना मगध के ज्ञान-विज्ञान, संस्कृति और भाषा-परम्परा के इतिहास की सबसे बड़ी दुर्घटना है।

इसके बाद से सारे पठान और मुगल-काल मे मगध में कुछ ऐसी अराजकता फैली रही कि स्थायी रूप से ज्ञान-विज्ञान की कोई शृंखला फिर से न बँध सकी। बारहवी शताब्दी के अन्त से लेकर बाद के ५०० वर्षो मे मगध के शासक और शासन इतनी शीघ्रता से बदलते रहे कि कोई भी स्थायी रूप दृष्टिगोचर नहीं होता। व्यापारियो के रूप में यूरोप की विभिन्न जातियो का प्रवेश और मराठो का अभ्युदय भी इस अराजकता को नहीं बदल सका।

सन् १७६५ ई० से बिहार-बंगाल में अँगरेजी सत्ता कायम हो गई। इस समय से सन् १८५७ के सिपाही-विद्रोह तक भी मगध की राजनीतिक विशृंखलता ज्यो-की-त्यों बनी रही।

इसके बाद अन्तिम १०० वर्षो मे राजनीतिक दृष्टि से जो गति सारे भारत की हुई, वही मगध की भी हुई। प्रगति की दृष्टि से विभिन्न क्षेत्रो मे सारे बिहार-प्रान्त के साथ मगध भी, बहुत-से प्रान्तों की तुलना में पिछड़ा ही रहा।

मगध का वर्त्तमान और भविष्य

बिहार मे राष्ट्रीय जागर्त्ति का प्रधान श्रेय आर्यसमाज और कॉंगरेस को है। दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटने पर गान्धीजी ने अपना पहला कार्य-क्षेत्र बिहार को ही चुना। असहयोग और सत्याग्रह के आन्दोलनों मे बिहार ने प्रमुख भाग लिया।

सन् १९११ ई० में बिहार बंगाल से अलग हुआ। बिहार, एक नया प्रान्त बना, जिसकी राजधानी पटना हुई। पटना के उत्कर्ष के साथ मगध के उत्कर्ष का पुनः आरम्भ हुआ। सन् १९१७ ई० में बिहार का पृथक् विश्वविद्यालय पटना मे ही स्थापित हुआ।

मगध-साम्राज्य के निर्माता आचार्य चाणक्य के अनुसार उत्तर-पश्चिमी हिमालय से समुद्र-पर्यन्त जो पृथिवी है, वह एक चक्रवर्त्ती-क्षेत्र है। स्वतन्त्र भारत इस स्वाभाविक

'चक्रवर्त्ती-क्षेत्र' की अक्षुण्णता को कायम नहीं रख सका। तो भी भारत एक विशाल देश है, और इसका भविष्य बहुत उज्ज्वल है। देश के उत्कर्ष के साथ, बिहार-प्रान्त का उत्कर्ष, प्रान्त के उत्कर्ष के साथ पटना का उत्कर्ष और पटना के उत्कर्ष के साथ मगध-क्षेत्र का उत्कर्ष निश्चित है।

भारत के दूसरे अनेक प्रान्तों की तरह बिहार के शिक्षित-समुदाय का अपने ग्रामों से सम्बन्ध टूटा नहीं है। इस दृष्टि से, मगध के जनपद के लोकजीवन के सब अंगों के अतीत अध्ययन के साथ भविष्य की अटूट शृंखला के बँधकर विकसित होने की सुनहली कल्पना सत्य होकर रहेगी, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

खण्ड १

मगही-भाषा

प्रथम अध्याय

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

१. मगही और आधुनिक भारतीय भाषाएँ

मगही, भाषाओं के 'भारोपीय परिवार'[1] के भारत-ईरानी वर्ग की भारतीय शाखा से जुड़ी है और अन्य आधुनिक भारतीय भाषाओं की भाँति इसका विकास भी संस्कृत > प्राकृत > अपभ्रंश से क्रमशः हुआ है। भारतीय भाषा-क्षेत्र में यह अपनी भगिनी भाषाओं—'मैथिली' एवं 'भोजपुरी' के साथ 'पूर्वी हिन्दी' तथा 'बँगला' के मध्य अवस्थित है।

विविध भारतीय आर्यभाषाओं में व्याकरण की भिन्नताओं और समानताओं के आधार पर डॉ० ग्रियर्सन ने 'आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं'[2] को तीन उपशाखाओं में विभक्त किया है—बाहरी, मध्य एवं भीतरी। इनके अन्तर्गत छह भाषा-समुदाय हैं। 'बिहारी बोलियाँ' बाहरी उपशाखा के पूर्वी समुदाय में आती हैं। इस 'बिहारी' के अन्तर्गत तीन बोलियाँ हैं—मगही, मैथिली एवं भोजपुरी।

डॉ० ग्रियर्सन का 'आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं' का भीतरी और बाहरी उपशाखाओं में वर्गीकरण डॉ० एफ्० ए० आर० हार्नले के सिद्धान्त पर आधृत है।

(L. S. I. Vol. 1, Part I, Page 120)
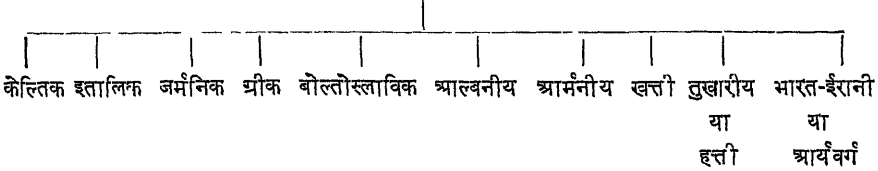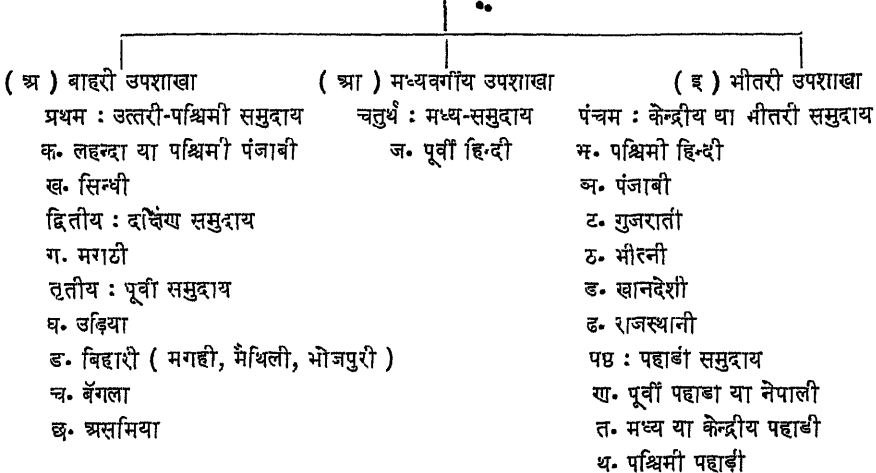
डॉ० हार्नले ने, सन् १८८० ई० में आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का अध्ययन करते हुए यह निष्कर्ष निकाला था कि भारत पर आर्यों के कम-से-कम दो बार आक्रमण हुए। पूर्वागत आर्य भारत में आधिपत्य स्थापित कर पंजाब में बस गये। इसके बाद नवागत आर्यों का दूसरा आक्रमण हुआ। इससे ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई कि पूर्वागत आर्यों को पूरब, दक्षिण और पश्चिम में फैलने के लिए बाध्य होना पड़ा। इन नवागत आर्यों ने सरस्वती, यमुना और गंगा के तट पर अपनी संस्कृति विकसित की। ये मध्यदेश[1] में बस गये। 'मध्यदेश' या केन्द्र में बसने के कारण नवागत आर्यों को केन्द्रीय या भीतरी आर्य की संज्ञा प्राप्त हुई। पूर्वागत आर्य मध्यदेश से हटकर चारों ओर फैल गये। अतः, उन्हें 'बाहरी आर्य' के नाम से अभिहित किया गया। विद्वानों का अनुमान है कि मगध का आर्यीकरण इन पूर्वागत आर्यों द्वारा ही सम्पन्न हुआ। पूर्वी क्षेत्रों में पहले अनार्य जातियाँ बसी थीं। जैसे—पुण्ड्र, राढ़, कोल आदि। इन्हें पराजित कर पूर्वागत आर्यों ने आर्यभाषा एवं संस्कृति का प्रसार किया। विद्वानों का अनुमान है कि ईसा-पूर्व छठी शती के बहुत पूर्व ही मगध आर्य-साम्राज्य में प्रविष्ट हो गया था।

डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने ग्रियर्सन के वर्गीकरण की आलोचना[2] करते हुए भाषाओं की विकास-परम्परा के आधार पर 'आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं' का वर्गीकरण किया है। वे डॉ० ग्रियर्सन के 'भीतरी एवं बाहरी आर्यों के भाषा सम्बन्धी सिद्धान्तों' से सहमत नहीं हैं। उनका इस सम्बन्ध में भिन्न दृष्टिकोण है। उन्होंने सम्पूर्ण आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं को पाँच वर्गों में बाँटा है—१. उदीच्य, २. प्रतीच्य, ३. मध्यदेशीय, ४. प्राच्य (पूर्वी) एवं ५. दाक्षिणात्य।[3] बिहारी 'प्राच्य' के अन्तर्गत आती है। इस

१. मध्यदेश की सीमा उत्तर में हिमालय, दक्षिण में विन्ध्य पर्वत, पश्चिम में सरहिन्द तथा पूरब में गंगा-यमुना के संगम तक थी। (मनुस्मृति)

२. **Ori. & Dev. of Bengali Language**, परिशिष्ट ५, पृ० १५० से १६६ तक।

३. आधुनिक भारतीय आर्यभाषा

(क) उदीच्य (उत्तरी)
- १. सिन्धी
- २. लहन्दा
- ३. पूर्वी पंजाबी

(ख) प्रतीच्य (पश्चिमी)
- ४. गुजराती
- ५. राजस्थानी

(ग) मध्यदेशीय
- ६. पश्चिमी हिन्दी

(घ) प्राच्य (पूर्वी)
- ७. कोशली या पूर्वी हिन्दी (मागधी से प्रसूत)
- ८. बिहारी (मगही, मैथिली एवं भोजपुरी)
- ९. उड़िया
- १०. बँगला
- ११. असमिया

(ङ) दाक्षिणात्य (दक्षिणी)
- १२. मराठी

—**Ori. & Dev. of Bengali Language**, परिशिष्ट ५, पृ० १५०–१६६।
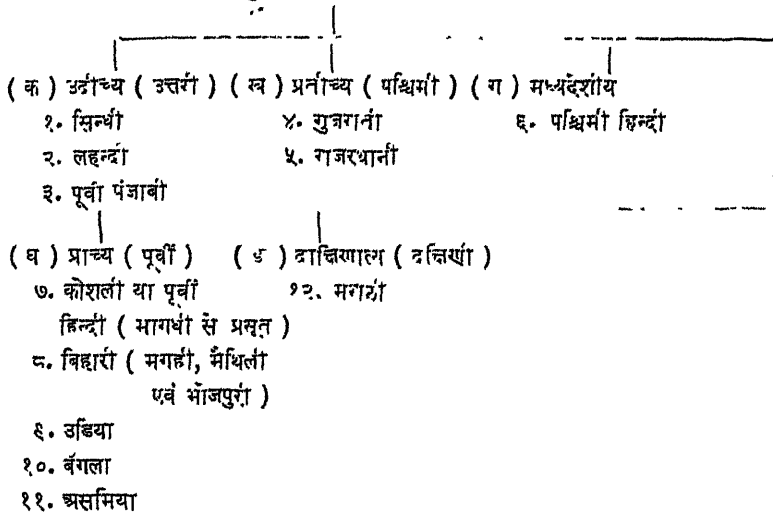
प्रकार, डॉ० चाटुर्ज्या के अनुसार 'मगही' आधुनिक भारतीय आर्यभाषा के प्राच्यवर्ग की एक सदस्य ठहरती है।

२. मगही के अध्ययन की प्राचीनकालीन सामग्री

पूर्वी भारत में 'मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा' के अध्ययन की जो सामग्री उपलब्ध होती है, वही मगही के अध्ययन की भी है। वह निम्नांकित है—

१. वेदों, ब्राह्मणो एवं अन्य प्राचीन संस्कृत-ग्रन्थों में वर्त्तमान छिटपुट शब्द और रूप, जो ध्वनि-विज्ञान की दृष्टि से 'प्राच्य' माने जा सकते हैं। यथा : ऋग्वेद के दशम-मण्डल की भाषा अन्य मण्डलों की भाषा से कुछेक बातो में भिन्न है। क्योंकि यहाँ 'र' की जगह 'ल' का व्यवहार अधिक मिलता है। उल्लेखनीय है कि 'र' के स्थान पर 'ल' का प्रयोग प्राच्य भाषाओं की विभेदक विशेषता है।

२. पूर्वी क्षेत्रों में पाये जानेवाले प्राचीनतम अभिलेख। उदाहरणार्थ : अशोक के तथा अन्य ब्राह्मी अभिलेख।

३. 'पालि-त्रिपिटक' मे वर्त्तमान मागधी के अनेक शब्द-रूप और ध्वनि-रूप। यथा : भिक्खवे, खुवे, पुरिसकारे आदि।

४. ईसा की पहली शताब्दी के बौद्ध नाटकों में प्राप्त प्राचीन अर्द्धमागधी और मागधी के नमूने।

५. संस्कृत नाटकों मे उपलब्ध मागधी-प्राकृत की विभाषाएँ। यथा : 'शाकारी' 'चाण्डाली' आदि के अवतरण। इस सम्बन्ध मे 'मृच्छकटिकम्' एवं 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' उल्लेख्य हैं।

६. वररुचि (५वी शताब्दी) से मार्कण्डेय (१७वीं शताब्दी) तक के प्राकृत वैयाकरणो की रचनाओं के वे स्थल, जहाँ वे पूर्वी बोलियो (मागधी-प्रसूत भाषाओ) का विवेचन करते हैं।

७. वस्तुओं, स्थानो और मनुष्यों के प्राचीनतम देशी नाम, जो प्रारम्भिक विवरण-पुस्तिकाओं में उपलब्ध होते हैं।

३. भारतीय आर्यभाषा

भारतवर्ष में आर्यों के आगमन-काल को लेकर विद्वानों में अभी तक मतैक्य नही हो सका है। परन्तु, अधिकाश विद्वानों[1] का अनुमान है कि २०००–१५०० ई० पू० भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमान्त-प्रदेश में आर्यो का प्रवेश होने लगा था। यह प्रदेश अनार्य जातियों से अधिकृत था। उन्हें आर्यो ने पराजित किया और सप्तसिन्धु (आधुनिक पंजाब) देश में अपना आधिपत्य जमा लिया। आर्य, यहाँ से ही क्रमशः पूर्व की ओर बढ़े और उन्होने मध्यदेश, काशी, कोशल, मगध, विदेह, अंग, वंग तथा कामरूप के मूल निवासियो को पराजित कर इन क्षेत्रों में अपने राज्य की स्थापना की। समस्त उत्तर भारत क्रमशः आर्य-साम्राज्य के अन्तर्गत आ गया।

---

१. भोजपुरी भाषा और साहित्य : डॉ० उदयनारायण तिवारी, उपोद्घात, पृ० २०।

भारत में आर्यों द्वारा साम्राज्य-स्थापन में कई शताब्दियाँ लग गईं। इस क्रम में इनकी भाषा के स्वरूप में भी अन्तर आ गया। भाषा के स्वरूप-परिवर्त्तन में 'काल' और 'स्थान' के साथ ही स्थानीय अनार्य जातियों के सम्पर्क का भी पर्याप्त हाथ था। विद्वानों ने, प्राचीन काल से आधुनिक काल तक के उपलब्ध साहित्य के आधार पर भारतीय आर्यभाषा के विकास-क्रम का पता लगाया है। उन्होंने इसी विकास-क्रम के आधार पर भारतीय आर्यभाषा के निम्नांकित वर्गीकरण किये हैं[१]—

१. प्राचीन भारतीय आर्यभाषा (वैदिक-संस्कृत)।

२. मध्यभारतीय आर्यभाषा (अशोक के अभिलेखों की भाषा) और (पालि, प्राकृत और अपभ्रंश)।

३. आधुनिक भारतीय आर्यभाषा (हिन्दी, बँगला, बिहारी, गुजराती, मराठी आदि)।

प्राचीन भारतीय आर्यभाषा : आर्यभाषाओं की भिन्न भिन्न परम्पराओं में भाषा का प्राचीनतम रूप 'वैदिक भाषा' में उपलब्ध होता है। वैदिक वाङ्मय में ऋग्वेद ही सबसे प्राचीन ग्रन्थ माना जाता है। भारत में जो आर्य आये थे, वे कर्मकाण्ड प्रधान संस्कृति के उपासक थे। आर्य ऋषि देवताओं की वन्दना में सूक्तों की रचना करते थे। ये सूक्त परम्परा के रूप में ऋषि-परिवारों में संरक्षित होते रहते थे। यहीं से ही इन सूक्तों का संकलन सम्भव हुआ और ऋग्वेदसंहिता के रूप में उपस्थित हुआ। क्रमशः वैदिक साहित्य विकसित होता गया। विद्वानों ने वैदिक साहित्य को तीन भागों में विभक्त किया है—संहिता, ब्राह्मण और उपनिषद्।

आर्यों ने भारत में विविध दलों के रूप में प्रवेश किया था। इन विविध दलों की भाषा में अन्तर अवश्य रहा होगा, फिर भी उनमें साहित्यिक भाषा का एक सर्वमान्य रूप विकसित हो गया था। ऋग्वेद की भाषा साहित्यिक भाषा थी, जो बोलचाल की भाषा से अवश्य भिन्न रही होगी। आज भी साहित्यिक और बोलचाल की भाषा में पर्याप्त अन्तर दीखता है। ऋग्वेद की भाषा धर्म और साहित्य की भाषा थी। आर्यों ने इसे एक विशिष्ट क्षेत्र में बद्ध कर रखा था। परिणामतः, बोलचाल की भाषा से सूक्तों की भाषा दूर पड़ने लगी। इस स्थिति में प्राचीन रूपों को सुरक्षित रखने के लिए, पदपाठ, संहितापाठ एवं प्रातिशाख्यों की रचना की गई।

इस सम्बन्ध में एक बात और ध्यातव्य है। वह यह कि ऋग्वेदसंहिता के सभी सूक्तों की रचना एक ही काल में नहीं की गई थी। कालभेद से सूक्तों की भाषा में भी 'भाषागत भिन्नताएँ' आ गई थीं। इसमें कुछ ऋचाएँ ऐसी हैं, जिनकी भाषा बहुत प्रौढ़ एवं प्रांजल है और कुछ ऐसी हैं, जिनकी भाषा अपेक्षाकृत बहुत सरल, सुबोध एवं प्रवाह-पूर्ण है। कहा जा चुका है कि ऋग्वेद की भाषा साहित्यिक थी। वह उस समय के शिक्षित और शिष्ट लोगों की भाषा थी। परन्तु, उस काल में भी इस साहित्यिक भाषा के अतिरिक्त

---

१. भोजपुरी भाषा और साहित्य : डॉ० उदयनारायण तिवारी, उपोद्घात, पृ० २१।

एक या अनेक विभाषाओं और बोलियों की कल्पना संगत है ।[1] वैदिक संस्कृत में एक ही शब्द के अनेक रूपों (जैसे गत्वा, गत्वी, गत्वाय) का प्रयोग इसी की ओर संकेत करता है ।

'ऋक्संहिता' के दशम मण्डल की भाषा[2] में अन्य मण्डलों की भाषा से कुछ भिन्नताएँ स्पष्ट परिलक्षित होती हैं । इसमें 'र' की जगह 'ल' का व्यवहार अधिक हुआ है । यथा : प्राचीन भाषा के मुच्, रभ्, रोमन् आदि की जगह पर म्लुच, लभ्, लोमन् का व्यवहार । प्राचीन वैदिक साहित्य में 'देवाः' (कर्त्ताकारक, बहुवचन) तथा 'देवैः' (करण० ब० व०) के अतिरिक्त 'देवासः' तथा 'देवेभिः' रूप बहुत आये हैं । लेकिन, नवीन वैदिक साहित्य में 'देवेभिः' तथा 'देवासः' जैसे रूपो का व्यवहार बहुत कम हो गया है । इस प्रकार, प्राचीन वैदिक काल के भाषा-रूप में क्रमशः भिन्नताएँ प्रविष्ट होती चली गईं ।

'ऋग्वेदसंहिता' के सूक्तों की रचना पंजाब-प्रदेश में हुई थी; परन्तु आर्यों के दल बराबर पूर्व की ओर बढ़ रहे थे । ये स्थानीय अनार्य जातियों को हटाकर उनके बीच अपनी भाषा और संस्कृति का प्रसार कर रहे थे । यजुर्वेदसंहिता और प्राचीन ब्राह्मणग्रन्थों की रचना के समय मध्यदेश आर्य-संस्कृति का केन्द्र हो चुका था । स्थानीय अनार्य जातियों के सम्पर्क और कालभेद से भाषा में भी परिवर्त्तन होते जा रहे थे । प्राचीन वैदिक भाषा और दशम मण्डल की भाषा मे जिन भिन्नताओं का ऊपर उल्लेख हुआ है, उनमें वृद्धि होती गई । यजुर्वेदसंहिता के गद्यभाग मे और प्राचीन ब्राह्मणग्रन्थों मे 'ल' का तथा मूर्द्धन्य व्यंजनो का प्रयोग बहुत वढ गया । शब्दरूपों और धातुरूपों की विविधता मे भी कमी होने लगी । अनेक प्राचीन शब्दों का लोप हो गया । इस प्रकार, प्राचीन वैदिक साहित्य मे इतना परिवर्त्तन हो गया कि उपनिषदों तथा सूत्रों की भाषा व्याकरण-रूपों की सरलता के कारण संस्कृत के बहुत निकट पहुँच गई ।

ईसा-पूर्व छठी शताब्दी या इससे पूर्व ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई थी कि पाणिनि ने अपने समय के शिष्ट समाज के व्यवहार••की भाषा को आदर्श मानकर अपने प्रसिद्ध व्याकरण-ग्रन्थ 'अष्टाध्यायी' की रचना की थी । यही भाषा 'संस्कृत' कहलाई । अष्टाध्यायी द्वारा संस्कृत-भाषा का रूप सदा के लिए स्थिर हो गया । पाणिनि ने वैदिक भाषा को 'छन्दस्' नाम से पुकारा है ।

व्याकरण के नियमों मे जकड़ जाने के कारण भाषावैज्ञानिक दृष्टि से संस्कृत का स्वाभाविक विकास रुक-सा गया । इसके विपरीत 'प्राकृत' (जनसामान्य अथवा प्रतिदिन की बोलचाल की भापा) निरन्तर विकसित होती चली गई । यही (बोलचाल की भापा) आगे चलकर देशी भापाओं की जननी बनी ।

प्राचीन भारत की प्राकृत-भापाओं से ही आधुनिक भारतीय आर्यभापाएँ निकली हैं । ये प्राकृत-भापाएँ जनसमाज के ही मुख से 'ऋग्वेद-काल' में मौलिक भाषाओं के रूप मे निःसृत हुई होंगी । साहित्यिक पृष्ठभूमि में इनका रूप अभिव्यक्त नही हो पाया था । परन्तु,

१. मैकडॉनल : हिस्ट्री ऑव संस्कृत लिटरेचर, सन् १९२८ ई०, पृ० २४, तथा डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या : भारतीय आर्यभापा और हिन्दी : पृ० ५२-५३ ।

२. हिन्दी-भापा का उद्गम और विकास : डॉ० उदयनारायण तिवारी, पृ० ५५–५७ ।

समस्त उत्तरापथ में आर्यों के प्रसार के साथ-साथ प्राचीन आर्यभाषा के स्वरूप में भी परिवर्त्तन विवर्त्तन होता चला गया। आर्यभाषा में स्थानगत भिन्नताएँ बहुत आ गईं। ईसा-पूर्व छठी शताब्दी तक आते-आते प्राचीन भारतीय आर्यभाषा का स्वरूप इतना परिवर्त्तित हो गया कि वह विकास की 'मध्य स्थिति' तक पहुँच गई।

४. मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा

पालि-प्राकृत-युग : भगवान् बुद्ध के जन्म (५०० ई० पू०) तक भारतीय आर्यभाषा अपने विकास के मध्यकाल में प्रविष्ट हो चुकी थी। ईसा-पूर्व १०००—६०० ई० तक का काल उत्तरापथ में आर्यों के प्रसार तथा जनपदों के निर्माण का काल था। इस समय तक उत्तर-पश्चिम में गान्धार-प्रदेश से पूर्व में विदेह (उत्तर बिहार) और मगध (दक्षिण बिहार)-पर्यन्त आर्यराज्य की स्थापना हो चुकी थी। अनार्य जातियाँ भी आर्यभाषा का व्यवहार करने लगी थीं। परन्तु, उनके मुख में आर्यभाषा का प्राचीन रूप विकृत हो जाता था। इसका कारण यह था कि उनके लिए आर्यभाषा नई भाषा थी। इसके अपनाने में उन्हें कठिनाई का अनुभव होता था। वैदिक मर्यादा और ब्राह्मणों की सामाजिक धार्मिक व्यवस्था का पालन भी वे नहीं कर पाते थे। ब्राह्मणों में इनकी और इनकी भाषा की निन्दा की गई है—

अदुरुक्तवाक्यं दुरुक्तमाहुः। अदीक्षिता दीक्षितं वाचं वदन्ति।[१]

अर्थात्, सरलता से बोले जा सकनेवाले वाक्य को वह उच्चारण में कठिन बताते हैं। अदीक्षित होते हुए भी दीक्षितों की वाणी का प्रयोग करते हैं।

ध्वनियों के उच्चारण में अनुभूत होनेवाली कठिनाइयों के कारण आर्यभाषा के स्वरूप में बहुत-कुछ परिवर्त्तन होने लगे। यथा : संयुक्त व्यंजन ध्वनियों का इस प्रकार समीकरण होने लगा—

क्त् > त्त ; त्क् > क्क आदि।

इसी प्रकार, पदान्त 'म्' ने 'अनुस्वार' का रूप धारण कर लिया। तीन 'ऊष्म' व्यंजनों (श, ष, स) के स्थान पर मागधी में तालव्य 'श' और अन्य बोलियों में दन्त्य 'स' का विशेष कर व्यवहार होने लगा। इतना ही नहीं, शब्द-रूपों में भी परिवर्त्तन होने लगे। यथा—

अश्वस्य > अस्वस्स ; मुनेः > मुनिस्स।

इन परिवर्त्तनों ने प्राचीन भारतीय आर्यभाषा को नवीन स्वरूप दे दिया। गौतम बुद्ध के समय तक उत्तर भारत में प्रचलित भाषा के निम्नलिखित रूपों की ओर डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने संकेत किया है[२]—उदीच्या, मध्यदेशीया और प्राच्या। उदीच्या अब भी वैदिक भाषा के निकटतम थी। प्राच्या उससे सर्वाधिक दूर चली गई थी। इसपर 'अनार्य प्रभाव' बहुत अधिक पड़ चुका था।

आर्ष या छान्दस्, जो वैदिक सूक्तों की प्राचीन भाषा थी, यह प्राचीनतम

१. ताण्ड्य, पंचविंशब्राह्मण, १७।४।
२. डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या : भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, पृ० ६४।

भारतीय आर्यभाषा का साहित्यिक रूप थी। इसका अध्ययन ब्राह्मण लोगों में अभी तक चल रहा था।

छान्दस् भाषा के अपेक्षाकृत नवीन रूप एवं उदीच्या विभाषा के प्राचीन रूप से विकसित भाषा। इस भाषा मे मध्यदेशीया तथा प्राच्या विभाषाओं के तत्त्वों का भी मिश्रण था। यह ब्राह्मणों मे प्रचलित परस्पर व्यवहार तथा शिक्षण की शिष्ट भाषा थी। उनके द्वारा यह वेदो के भाष्यटीका, धार्मिक कर्मकाण्ड तथा दार्शनिक विवेचनों मे प्रयुक्त होती थी। ब्राह्मण-ग्रन्थो में यही भाषा मिलती है।

प्राच्या विभाषा, छान्दस् तथा ब्राह्मणग्रन्थों की संस्कृत से बहुत भिन्न हो गई थी। उदीच्य प्रदेश से आनेवाले व्यक्ति को प्राच्य प्रदेश के लोगो की भाषा समझने मे कुछ कठिनाई का अनुभव होता था।[1] 'चुल्लवग्ग' मे एक कथा है कि बुद्ध के दो ब्राह्मण-शिष्यो ने उनके समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि तथागत के उपदेशो को प्राचीन भाषा 'छान्दस्' मे अनूदित कर लिया जाय। परन्तु, बुद्ध ने इसे अस्वीकार कर दिया। उन्होंने जनसामान्य की बोलियो को ही अपने उपदेश का माध्यम रखा। उनका यह अनुरोध था कि सभी जन उनके उपदेश को 'अपनी मातृभाषा मे ही' ग्रहण करें : [2]'अनुजानामि भिक्खवे सकाय निरुत्तिया बुद्धवचनं पुरियापुणितुं।' इससे इन विभाषाओं के साहित्यिक प्रयोग मे बहुत सहायता मिली।

वाणी और अभिव्यक्ति के स्वातन्त्र्य की दृष्टि से यह एक क्रान्तिकारी आन्दोलन था। इसने प्राचीन भारतीय आर्यभाषा को मध्यकालीन भा० आ० भाषा का रूप दे दिया। मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा-काल की मध्यम अवस्था मे अनेक जैनप्राकृतों एवं साहित्यिक प्राकृतों का उल्लेख तत्कालीन वैयाकरणों और आलंकारिको के ग्रन्थों में मिलता है। इनमें मुख्य हैं—शौरसेनी, मागधी, महाराष्ट्री, अर्द्धमागधी और पैशाची।

मागधी प्राकृत : प्राकृतो मे मागधी-प्राकृत का विशिष्ट स्थान है; क्योकि प्राच्य प्रदेश की अनेक भाषाओ की यही जननी है। परिवर्त्तन की गति मागधी-प्राकृत में सर्वप्रथम तीव्र हुई। इसके बाद अन्य प्राकृतो मे भी परिवर्त्तन हुए। 'मागधी' मगध-जनपद की भाषा थी। यह मूलतः उन आर्यो की भाषा थी, जिन्हे डॉ० हार्नले और डॉ० ग्रियर्सन ने बाहरी आर्यो के नाम से अभिहित किया है। मगध इन आर्यों का केन्द्रस्थल था। कहा जा चुका है कि बुद्ध के समय मे पूर्वी क्षेत्रों में प्राच्या विभाषा प्रचलित थी। मागधी इसी प्राच्या वर्ग की प्रधान भाषा थी, जो समस्त प्राच्य देश में प्रचलित थी। बुद्ध का भ्रमणक्षेत्र—काशी, कोशल, विदेह और मगध मे फैला था। यहाँ 'मागधी' ही लोक-व्यवहार की भाषा थी। इसी कारण विद्वानों का अनुमान है कि बुद्ध ने अपने उपदेश मागधी मे ही दिये होंगे, जिनका संग्रह बाद मे 'मागधी' भाषा में ही मूल त्रिपिटिक मे हुआ होगा। बाद में इनका अनुवाद पालि में तथा अन्य जनपदो की भाषा मे हुआ होगा। डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या लिखते हैं—"बुद्ध भगवान् के उपदेशों का प्रणयन सर्वप्रथम इसी पूर्वी बोली (मागधी) मे होकर

---

१. डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या : भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, पृ० ६४-६५।

२. वही।

बाद में उनका अनुवाद पालि-भाषा में, जो कि मध्यदेश की प्राचीन भाषा पर आधृत एक साहित्यिक भाषा थी, हुआ। इस मत की पुष्टि करते हुए पारिस के स्व० सिल्वाँ लेवी (Sylvain Levi) तथा बर्लिन के प्राध्यापक हाइनृरिव् ल्यूडर्स (Heinrich Lueders) सदृश ख्यातिप्राप्त विद्वज्जनों ने इसकी सत्यता के बहुसंख्य उदाहरण एवं प्रमाण दिये हैं।"[1]

इस विचार का मूलाधार यही है कि बुद्ध का भ्रमण-क्षेत्र काशी, कोशल, विदेह और मगध में विस्तृत था, जहाँ मागधी ही जन-समुदाय के व्यवहार की भाषा थी। बुद्ध के निर्वाण के बाद उनके वचनों के संग्रह के लिए बौद्धसभा हुई। इसमें भाग लेनेवालों में भिक्खु महाकस्सप प्रधान थे। यह मध्यदेश के निवासी थे। बहुत सम्भव है कि इन्होंने मध्य-देश की भाषा (प्राचीन शौरसेनी) में ही बुद्धवचनों का अनुवाद किया हो। विद्वानों का अनुमान है कि कुमार महेन्द्र ने मध्यदेश की भाषा में अनूदित त्रिपिटक का ही अध्ययन किया होगा; क्योंकि स्वयं उनकी मातृभाषा भी यही थी। इसी त्रिपिटक को वे सिंहल ले गये होंगे। अतः, मध्यदेश की भाषा ही पालि का आधार है।[2] "पालि-भाषा को गलती से मगध या दक्षिण विहार की प्राचीन भाषा मान लिया जाता है; वैसे यह उज्जैन से मथुरा तक के मध्यदेश के भू-भाग की भाषा पर आधृत साहित्यिक भाषा है; वस्तुतः इसे पश्चिमी हिन्दी का एक प्राचीन रूप कहना ही उचित होगा।"[3] विद्वानों के उपर्युक्त मत की पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि पालि में शौरसेनी के निम्नांकित दो प्रधान गुण वर्त्तमान हैं

१. 'श' के स्थान पर 'स' का व्यवहार।

२. 'ल' के स्थान पर 'र' का व्यवहार।

मागधी में ये दोनों गुण नहीं हैं। इसी कारण, पालि को प्राचीन मागधी का रूप नहीं माना जाता है। फिर भी, पालि-त्रिपिटक में अनेक मागधी-रूप मिलते हैं। यथा : भिक्खवे, सुवे, पुरिसकारे[4] आदि।

इसका कारण यही है कि मूल त्रिपिटक मागधी में ही रहा होगा। इस त्रिपिटक की प्रति अब उपलब्ध नहीं है। मागधी से अनूदित होने के कारण इसमें उसके अनेक रूप रह गये होंगे, जो अभी तक वर्त्तमान हैं।

ईसा-पूर्व चौथी शताब्दी में ही मागधी का अपना क्षेत्र सरयू से कोसी तथा कर्मनाशा से कलिंग तक था।[5] "बौद्ध तथा जैनमत के प्रचार की सर्वमान्य अधिकृत भाषा होने के अतिरिक्त यह पूर्वी (मागधी) बोली सम्राट् अशोक की राजभाषा भी बनी।"[6] राजभाषा होने के कारण मागधी समस्त उत्तर भारत में सम्मानित हुई। इसी सम्मान का फल था कि नाटककारों ने राजपुत्रों और अन्य महत्त्वपूर्ण पात्रों की भाषा को मागधी रखना शुरू किया।

---

१. डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या : भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, पृ० १७४-१७५।
२. डॉ० उदयनारायण तिवारी : हिन्दी-भाषा का उद्गम और विकास, पृ० ६६।
३. डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या : भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, पृ० १७५।
४. हिन्दी-भाषा का उद्गम और विकास, पृ० ६५।
५. राहुल सांकृत्यायन : पुरातत्त्व-निबन्धावली—'मागधी का विकास', पृ० १८८।
६. डॉ० सु० कु० चाटुर्ज्या : भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, पृ० १७४।

मागधी का प्राचीनतम नमूना, उड़ीसा, विहार और उत्तरप्रदेश मे प्राप्त सम्राट् अशोक के शिलालेख हैं। भारत के अन्य क्षेत्रो मे भी अशोक के जो अभिलेख मिलते हैं, उनमे प्राच्य प्रभाव वर्त्तमान हैं। यथा : उत्तर-पश्चिम मे मानसिरा-शिलालेख। प्राच्य भाषा के इस प्रभाव का कारण विद्वान् यह मानते हैं कि अशोक के ये अभिलेख पहले प्राच्य भाषा में ही लिखे गये होंगे और तब विभिन्न जनपदों में वहाँ की स्थानीय बोलियों में उनका रूपान्तर हुआ होगा। ऐसा स्वाभाविक भी था। अशोक मगध-सम्राट् था। मगध की भाषा ही उसकी मातृभाषा थी। उसी में उसका अपने धर्मोपदेशो को सर्वप्रथम लिखवाना स्वाभाविक था। परन्तु, उसका उद्देश्य अपने धर्म का प्रचार करना था—न केवल भारत में, अपितु उसके बाहर के देशों में भी। परिणामतः, वह मागधी में लिखवाये गये अपने धार्मिक उपदेशो का स्थानीय भाषाओं में रूपान्तर करा देता था, जिससे जनसाधारण अपनी ही भाषा मे धर्मोपदेश ग्रहण कर सकें।

१. ईसा की पहली शताब्दी तक की मागधी-भाषा का रूप रामगढ़ पहाड़ की गुफाओ (सरगुजा-राज्य) और बोधगया आदि के प्रकीर्ण लेखों में उपलब्ध होता है।

२. ईसा की दूसरी शताब्दी से छठी शताब्दी तक की मागधी-प्राकृत का रूप यत्र-तत्र संस्कृत-नाटकों में उपलब्ध होता है।

ईसा की दूसरी शताब्दी से छठी शताब्दी तक की साहित्यिक प्राकृतों के अध्ययन से उनमें हुए क्रान्तिकारी परिवर्त्तनों का पता चलता है। इस काल तक व्यंजन-ध्वनियों में बहुत परिवर्त्तन हो गये। शब्द और धातुरूपो मे सरलीकरण की प्रक्रिया चल रही थी। कारक और क्रिया का सम्बन्ध प्रकट करने के लिए संज्ञा शब्द के साथ 'कारकाव्यय' एवं कृदन्त-रूपो के प्रयोग की प्रवृत्ति भी चल पड़ी। इस विकास का कुछ अद्भुत परिणाम देखने मे आया। अब 'रामाय दत्तम्' न कहकर 'रामाए कए (कृते) दत्तम्' अथवा 'रामस्स केरक (कार्यक) घरम' कहा जाने लगा। ये ही कारकाव्यय आगे चलकर आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं मे अनुसर्ग या परसर्ग रूप मे विकसित हुए। इस प्रकार भारतीय आर्यभाषा संश्लेषणात्मक से विश्लेषणात्मक (Analytic) होने लगी। मध्यकाल के द्वितीय पर्व तक आते-आते प्रा० भा० आ० भाषा के शब्द और धातुरूपों की विविधता समाप्त हो गई।

प्राकृतों के विकास-क्रम मे समय पाकर वैयाकरणों ने साहित्यिक प्राकृतों के व्याकरण लिखने आरम्भ किये। व्याकरण के नियमो मे बँध जाने के कारण प्राकृतो का स्वाभाविक विकास रुक गया। इनकी भी वही अवस्था हुई, जो संस्कृत की हुई थी। इधर तो साहित्यिक प्राकृतो में साहित्य रचा जा रहा था और उधर जन-सामान्य की बोलचाल की भाषाएँ स्वाभाविक रूप से विकसित हो रही थी। साहित्यिक प्राकृतों के विकास के रुक जाने के बाद ये बोलचाल की भाषाएँ और भी आगे बढ़ी। इनकी ही संज्ञा 'अपभ्रंश' हुई।

मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा के इस रूप-विकास के बाद भी संस्कृत से सामान्य जनता का सम्बन्ध विच्छिन्न नहीं हुआ था। यह उनके लिए बोधगम्य थी और इसमें साहित्यिक रचनाएँ भी हो रही थीं।

अपभ्रंश-युग : 'मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा' के विकास के अन्तिम सोपान को

'अपभ्रंश' के नाम से अभिहित किया जाता है। अपभ्रंश मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा और आधुनिक आर्यभाषाओं के मध्य की कड़ी है। प्रत्येक 'आधुनिक आर्यभाषा' अपभ्रंश की कड़ी पार करने के पश्चात् ही वर्त्तमान अवस्था तक पहुँची है।

अपभ्रंशकालीन साहित्य के आधार पर विद्वान् इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि ईसा की छठी शती में ही अपभ्रंश का प्रारम्भ हो गया था। उस समय से ही अपभ्रंश में रचनाएँ उपलब्ध होने लगी थीं और तत्पश्चात् १२वीं शताब्दी तक वे सर्जित होती रहीं। इसी आधार पर ईसा की छठी शताब्दी से १२वीं शताब्दी तक के काल को अपभ्रंश-काल की संज्ञा दी जाती है। यों तो १५वीं तथा १६वीं शताब्दी तक अपभ्रंश-भाषा में साहित्यिक रचनाएँ निर्मित होती रहीं, पर १२वीं सदी के अन्त तक यह (अपभ्रंश) लोकभाषा न रहकर 'साहित्यिक भाषा' बन गई थी। लोकभाषा का स्थान देशी भाषा ने ले लिया था।

"अपभ्रंश का जो साहित्य मिलता है, उसमें भाषागत-भेद बहुत कम है। यह समस्त साहित्य एक ही परिनिष्ठित भाषा का है। परन्तु, वैयाकरणों ने और विशेषतया उत्तरकालीन वैयाकरणों ने अपभ्रंश के, देशभेद से अनेक भेद बताये हैं।"[१] डॉ० तगारे[२] ने अपभ्रंश के तीन भेद बताये हैं--दक्षिणी, पश्चिमी और पूर्वी।

यह पूर्वी अथवा मागधी अपभ्रंश 'मागधी प्राकृत' का ही विकसित रूप है। इस मान्यता के आधार 'सरह' और 'कण्ह' के दोहाकोश हैं। संक्षेप में पूर्वी अपभ्रंश की निम्नांकित विशेषताओं का उल्लेख किया जाता है। ये विशेषताएँ उनके दोहाकोशों में वर्त्तमान हैं। यथा—

१. कुछ संस्कृत-ध्वनियों का पूर्वी अपभ्रंश में परिवर्त्तन इस प्रकार होता है -

(क) क्ष ख--क्ख ; यथा : क्षण - खण। अक्षर—अक्खर।

(ख) त्व तु--त्त : यथा : त्वम् - तुहुँ। तत्त्व—तत्त।

(ग) द्व दु—यथा : द्वार--दुआर।

(घ) व ब—यथा : वज्र--वज्ज। वेद---बेअ।

२. संस्कृत का 'श' इसमें सुरक्षित रहता है।

३. लिंगभेदों का विचार इसमें लुप्तप्राय हो गया है। नपुंसकलिंग तो पूर्णतः अप्रचलित हो गया है। स्त्रीलिंग के रूप भी बहुत कम हो गये हैं। पुंल्लिंग रूपों की प्रधानता हो गई है।

४. इसमें विभक्ति-रहित संज्ञापदों की प्रधानता मिलती है। विभक्तियों के घिस जाने और लुप्तविभक्तिक पदों के कारण वाक्य में अस्पष्टता आने लगी है। इसको दूर करने के लिए परसर्गों का प्रयोग करने की प्रवृत्ति इसमें अन्य अपभ्रंशों से अधिक दिखाई पड़ने लगी है।

५. अन्य अपभ्रंशों की तरह, 'पूर्वकालिक' और 'क्रियार्थक' संज्ञा के प्रत्ययों में

---

१. डॉ० उदयनारायण तिवारी : हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास, पृ० १२३।

२. Historical Grammer of Apbhransh, Introduction, p. 95.

मिश्रण नहीं हुआ है। पूर्वकालिक प्रत्यय—'अइ' का प्रयोग इसमें क्रियार्थक संज्ञा के लिए भी हुआ है। जैसे : करइ = (क) करि, (ख) करना।

६. प्राचीन उपसर्ग एवं प्रत्ययों को हटाकर नये उपसर्गों एवं प्रत्ययों के प्रयोग की प्रवृत्ति इसमें सर्वाधिक दीख पड़ती है।

७. इसमें 'तिङन्त रूपों' के प्रयोग कम होने लगे हैं एवं कृदन्तज रूपों के प्रयोग प्राश्रय पाने लगे हैं। इससे काल-रचना की जटिलता और दुरूहता दूर हो गई है।

८. इसने तत्सम शब्दों के स्थान पर तद्भव और देशज शब्दों को खूब अपनाया। इससे यह प्राकृत से बहुत भिन्न दीख पड़ने लगी है।

यही पूर्वी अपभ्रंश या मागधी अपभ्रंश मगही की जननी है।

५. आधुनिक भारतीय आर्यभाषा

भारतीय आर्यभाषाओं के विकास-क्रम में मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा-काल के पश्चात् आधुनिक काल की देशी भाषाओं का समय आता है। डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने इसकी संज्ञा 'नव्य भारतीय आर्यकाल' (New Indo Aryan Period) दी है।[1] अन्य विद्वानों ने इसे 'आधुनिक भारतीय आर्यभाषा-काल'[2] कहा है। इस काल में भारत की आधुनिक प्रादेशिक भाषाओं की गणना की गई है।

परिवर्त्तन सृष्टि का नियम है। भाषाएँ भी इस परिवर्तन-चक्र से अलग नहीं रह सकती। यही कारण है कि "प्रादेशिक अपभ्रंशों की राह से होती हुई 'प्राकृतें' ही परिवर्त्तित होकर आधुनिक भारतीय भाषाएँ बन गईं।"[3] विविध अपभ्रंशों से ही भिन्न-भिन्न प्रादेशिक बोलियाँ उदित हुई हैं। शौरसेनी अपभ्रंश से व्रजभाषा, खड़ी बोली आदि भाषाएँ विकसित हुई हैं। अर्द्धमागधी से पूर्वी हिन्दी का विकास हुआ है। महाराष्ट्री अपभ्रंश से मराठी का सम्बन्ध जोड़ा गया है। व्राचड-अपभ्रंश से सिन्धी का सम्बन्ध स्थापित किया गया। इसी क्रम में मागधी-अपभ्रंश से निम्नांकित आधुनिक भा० भाषाओं का विकास माना जाता है—

मगही, मैथिली, भोजपुरी, बँगला, आसामी और उड़िया।

प्रान्तीय भाषाओं के विकास के बाद भी १३वीं-१४वीं शताब्दी तक अपभ्रंश के ग्रन्थों की रचना होती रही। अपने विकास के पूर्वकाल में प्रान्तीय भाषाएँ भिन्न-भिन्न अपभ्रंशों से बहुत प्रभावित दिखाई पड़ती हैं। इसी प्रकार, उत्तरकालीन अपभ्रंश-भाषा भी इन प्रान्तीय भाषाओं से पर्याप्त प्रभावित दिखाई देती है।

संस्कृत-भाषा अब भी मृत नहीं हुई थी। विद्वज्जन सब प्रकार के गम्भीर निबन्धों, प्रबन्धों और उच्च साहित्य के लिए संस्कृत का व्यवहार निर्बाध रूप से कर रहे थे। फिर भी,

---

१. डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या—भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, पृ० १०४।

२. (क) डॉ० धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी-भाषा का इतिहास, भूमिका, पृ० ४८।
   (ख) डॉ० उदयनारायण तिवारी : हिन्दी-भाषा का उद्गम और विकास, पृ० १५७।

३. डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या : भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी, पृ० १०५।

क्रमशः संस्कृत का मोह कम हो रहा था। तत्कालीन जन-जीवन की आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिए देशी भाषाएँ ही महत्त्वपूर्ण प्रमाणित हो रही थीं। देशी भाषाओं को अपने जन्मकाल से ही विदेशी आक्रमणकारियों का सामना करना पड़ा। ऐसी परिस्थिति में उनके व्यवहार को और अधिक महत्त्व दिया गया। कुछ क्षेत्रों में तो आधुनिक भारतीय भाषाओं का उपयोग गम्भीर साहित्य की सृष्टि के लिए उनके उदय-काल में ही होने लगा; क्योंकि जनता के निकट पहुँचने एवं अपने सिद्धान्तों के प्रचार के लिए आधुनिक भाषाएँ विशेष सबल साधन सिद्ध हुई। जैसे : "बंगाल में १०वीं शताब्दी के पश्चात् ज्योंही स्थानीय मागधी-अपभ्रंश का बँगला स्वरूप विकसित हुआ, त्योंही प्राचीन बँगला-गीति साहित्य के लिए उसका प्रयोग प्रारम्भ हो गया।"[१]

विदेशियों के आकस्मिक आक्रमणों, हिंसावृत्ति, बर्बरता और ध्वंसात्मक नीति के फलस्वरूप अधिकाश भारतीय विचारधाराओं की नियामक चिन्तन-परम्परा छिन्न-भिन्न हो गई। बहुत पण्डित मारे गये और बहुतों ने अज्ञात प्रदेशों में शरण ली। इससे कई क्षेत्रों में गम्भीर साहित्य-सृष्टि का कार्य सम्भव नहीं हो सका। जैसे : मगध-क्षेत्र की भाषा 'मगही' को अपने जन्म और विकास-काल में ही विषम राजनीतिक परिस्थितियों के बीच से गुजरना पड़ा, इसलिए इसकी साहित्यिक और सांस्कृतिक परम्पराएँ छिन्न भिन्न हो गईं।[२] परन्तु, आक्रमणों के दुष्प्रभाव से जो अपने को बचा सके, वे अपनी सभ्यता, साहित्य और संस्कृति के उपादानों के संरक्षण में लग गये। यही कारण है कि कई क्षेत्रों में विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं में साहित्यिक रचनाएँ भी हुईं। जैसे : बँगला में चण्डीदास का 'श्रीकृष्ण कीर्त्तन', मैथिली में विद्यापति की 'पदावली' आदि। इस प्रकार, जनता में उच्च आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विचारों के प्रसार के लिए लोक भाषाओं को माध्यम बनाने से उनके विकास में बड़ी सहायता मिली।

आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं में मगही को अपने जन्मकाल में ही भयंकर परिस्थितियों का सामना करना पड़ा, इसका पहले उल्लेख किया जा चुका है। मगध ही वह क्षेत्र है, जिसने अपनी सार्वभौम सत्ता और धर्म-विजय के लिए विश्व विश्रुत यश पाया था। परन्तु, परवर्त्ती युग में उसके उत्थान के वे दिन इतिहास के पृष्ठों में सुरक्षित होकर रह गये। इस युग में पतन के जो दिन उसे देखने पड़े, वे बड़े भयंकर सिद्ध हुए। दुर्भाग्य से जबतक मगही पनप रही थी, तबतक उसके उत्कर्ष के दिन स्मृतिशेष हो चुके थे और इसलिए जिन साहित्यिक परम्पराओं की उपलब्धि की उससे अपेक्षा थी, वह दृष्टिगत न हो सकी।

'मगही' के उद्भव, विकास आदि से सम्बद्ध विवेचनाएँ यथास्थान की गई हैं।

६. सिद्ध-साहित्य और मगही

सिद्ध-साहित्य का मगही से घना सम्बन्ध है। आरम्भिक मगही का स्वरूप इसमें सुरक्षित है। विद्वानों ने सिद्ध-साहित्य से अनेक आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का सम्बन्ध जोड़ा है। म० म० हरप्रसाद शास्त्री ने सिद्धों के साहित्य का कुछ भाग सन् १९१६ ई० में

१. डॉ सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या : भा० आर्यभाषा और हिन्दी, पृ० १०५--१०६।

२. दे० इसी ग्रन्थ में : 'मगध एक ऐतिहासिक पीठिका' तथा 'मगही-भाषा साहित्य-विकास की अवरोधक परिस्थितियाँ।'

नेपाल में प्राप्त किया था। इसमे तीन प्रकार की रचनाएँ सम्मिलित हैं—(क) चर्याचर्य-विनिश्चय, (ख) दोहाकोश और (ग) दाकार्नव।

इनमे 'दोहाकोश' मुख्यतः अपभ्रंश में है, किन्तु 'चर्यागीत' तथा 'दाकार्नव' प्रधानतः आधुनिक देशी भाषा मे। इनकी 'भाषा' किस आधुनिक भा० आर्यभाषा का प्राचीन रूप है, इसमे बड़ा विवाद है। 'बौद्धगान ओ दोहा'[१] शीर्षक से इनका संकलन प्रस्तुत करते हुए म० म० हरप्रसाद शास्त्री एवं डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने इन्हे पुरानी बँगला के उदाहरणो के रूप मे उपस्थित किया है। श्रीबरुआ[२] ने इन्हे पुरानी असमिया-भाषा का उदाहरण माना है। श्रीप्रहराज तथा श्रीप्रियरंजन सेन[३] ने इन्हें पुरानी उड़िया का उदाहरण माना है। डॉ० जयकान्त मिश्र[४] ने प्रथमतः इन्हे पुरानी मैथिली का नमूना माना है। उन्होने अपने विचार की पुष्टि के लिए सर्वश्री राहुल साकृत्यायन, श्री के० पी० जायसवाल, म० म० उमेश मिश्र एवं डॉ० सुभद्र झा के मतो का उल्लेख किया है।

परन्तु, सत्य तो यह है कि इन्हे सर्वप्रथम प्राचीन मगही का ही का नमूना स्वीकार किया जाना चाहिए।[५] कारण निम्नांकित है —

१. प्राचीन मागधी मगध-जनपद की भाषा थी। इसका विस्तार कभी समस्त उत्तर भारत मे था। आदि सिद्ध सरहपाद नालन्दा के रहनेवाले थे। यह क्षेत्र 'मगध'-जनपद के अन्तर्गत ही है। अतः, उनकी भाषा प्राचीन मगही थी, यह कहना औचित्यपूर्ण ही माना जायगा। "अन्य सिद्धो ने भी इसी (मगही) भाषा को कविता की भाषा बनाया।"[६]

२. चौरासी सिद्धो के निवास-स्थान की खोज करने पर, विद्वानो ने पता लगाया है कि अधिकाश सिद्ध मगध-क्षेत्र के ही थे। जो यहाँ के निवासी नही भी थे, उनमें अधिकांश

---

१. इस पुस्तक के पाँच संस्करण वर्त्तमान मे उपलब्ध हैं—
   (क) म० म० हरप्रसाद शास्त्री का (वंगीय साहित्य-परिषद्, सन् १९१६ ई०)।
   (ख) मुहम्मद शाहि-दुल्लाह का (ढाका-विश्वविद्यालय-जर्नल)।
   (ग) मनीन्द्रमोहन बसु का (कमल बुकडिपो, १५ बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, कॉलेज स्क्वायर, कलकत्ता, सन् १९४३ ई०)
   (घ) प्रबोधचन्द्र बागची का (जर्नल ऑव डिपार्टमेण्ट ऑव लेटर्स, कलकत्ता-विश्वविद्यालय-प्रेस, सन् १९३८ ई०)
   (ङ) डॉ० सुकुमार सेन का।

   सरहपाद के 'दोहाकोश' का सम्पादन महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने भी किया है, जो सन् १९५७ ई० मे 'बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना' से प्रकाशित हुआ है।

२. Barua : Early History of Kamrup, p. 318 and Bani Kanta Kakati: Formation of Assamese Language, pp- 8-9.

३. Praharaj : OCP VI, p. 371-381 and Priya Ranjan Sen (B. C.) Law Commemoration, voel. II, p. 897 FF.

४. Jaykanta : A History of Maithili Literature, Vol. I.

५. राहुल साकृत्यायन : पुरातत्त्व-निबन्धावली—'प्राचीनतम कवि', पृ० १३७।

६. राहुल सांकृत्यायन : वहीं।

का सम्बन्ध मगध, नालन्दा और विक्रमशिला से था। यही कारण है कि इनकी भाषा में प्राचीन मगही के अध्ययन की प्रचुर सामग्री वर्त्तमान है।[1]

३. वर्णरत्नाकर[2], जो आरम्भिक मैथिली-साहित्य का नमूना है, में इन सिद्धों का जिस पूर्णता के साथ उल्लेख हुआ है, उससे सिद्ध होता है कि ये मगध-क्षेत्र के ही थे एवं इसी कारण से मैथिली-साहित्यकारों का इनसे निकट का परिचय था।

४. दोहाकोश की भाषा अपभ्रंश का ही एक रूप है। मगही-भाषा से उसका अद्‌भुत साम्य है।

५. सिद्धों की भाषा और मगही-भाषा में अनेक व्याकरण सम्बन्धी समानताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। उदाहरणार्थ :

सरह भणइ बप उजु भइला। (सरह : चर्यापद)
घरेँ परेँ का बुज्झीले मारि खइब मइ दुठ कुँड़वाँ। (सरह : चर्यापद)
नाना तरुवर मौउलिल रे गअणत लागेलि डाली। (शबरपा : चर्यापद)
आइल गराहक अपने वहिआ। (विरूपा : चर्यापद)
तँह बुडिली मातंगी पोइआ लीलेँ पार करेइ। (डोम्बिपा : चर्यापद)
माँगत चढ़िले चउदिस चाहअ। (कमरिपा : चर्यापद)
सुअने मइँ देखिल तिहुअण सुण्ण। (कण्हपा : चर्यापद)

उपर्युक्त पंक्तियों में वर्त्तमान भूतकालिक कृदन्त-प्रत्यय- 'ल' अथवा 'इल' के प्रयोग देखे जा सकते हैं। ये प्रयोग आधुनिक मगही में अभी तक सुरक्षित हैं।[3]

इसी प्रकार, कण्हपा के निम्नांकित गीत में मगही के कई रूपों की स्पष्ट झलक मिलती है—

नगर बाहिरे डोम्बि तोहोरि कुडिआ।
छाइ छोइ जाइँ सो ब्राह्मण नाडिया॥
आलो डोम्बि तोए सम करिब म संग।
निघिण काण्ह कपालि जोई लाँग॥

इसका मगही रूपान्तर निम्नांकित है—

नगर बाहरे डोम्बी तोहर कुटिका।
छुइ छुइ जाइ से बाभन-लड़िका॥
अरे डोम्बी तोरे साथ करब न संग।
निरघिन कान्ह कपाल जोगि लंग॥

सिद्धों की गीतियों में ऐसे अनेक पद उपलब्ध हैं, जो सहज ही आधुनिक मगही में रूपान्तरित किये जा सकते हैं।

---

१. दे० इसी ग्रन्थ में अन्यत्र 'मगही का उद्‌भव और विकास' तथा 'मगही शब्द-परम्परा'।
२. पृ० ५७ (६६ ख)।
३. विशेष के लिए दे० इसी ग्रन्थ में अन्यत्र 'मगही का उद्‌भव और विकास' तथा 'मगही शब्द-परम्परा'।

उपर्युक्त विवेचन का यह अभिप्राय नहीं कि अन्य भाषाओं का सिद्धों की भाषा से कोई सम्बन्ध नहीं है। विद्वानों ने न केवल सिद्धों की भाषा से केवल प्राचीन बँगला, प्राचीन उड़िया, प्राचीन आसामी, प्राचीन मैथिली एवं प्राचीन भोजपुरी का सम्बन्ध जोड़ा है, अपितु प्राचीन हिन्दी का भी स्रोत इसे ही माना है। इन भाषाओं के ऐतिहासिक विकास-क्रम के अध्ययन के लिए सिद्ध-साहित्य मूलाधारवत् है। इसलिए, सिद्धों की भाषा उनके लिए भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है। एक बात ध्यातव्य है कि उपर्युक्त भाषाएँ जितनी ही पूर्ववर्त्ती युग की ओर उन्मुख होंगी, उनमें अधिकांश समानता मिलती जायगी।

सिद्धों की भाषा से आधुनिक मगही के रूप में भिन्नताएँ भी स्पष्ट हैं। इसका कारण यह है कि उनकी भाषा में 'प्रारम्भिक मगही' के ही रूप सुरक्षित हैं। सिद्धों की कविता की भाषा ८वीं शताब्दी से १२वीं शताब्दी तक की अपभ्रंश है। परन्तु, आधुनिक भारतीय भाषाओं की स्वतन्त्र सत्ता १४वीं शताब्दी के प्रारम्भ से दीख पड़ने लगती है। आधुनिक मगही ने भी अपना स्वतन्त्र रूप इसी समय ग्रहण किया होगा। अतः, कालभेद से भाषा में अन्तर आना स्वाभाविक ही है। आधुनिक मगही अपने अद्यावधि रूप-विकास की चरम स्थिति में है।

७. मगही का उद्भव और विकास

अपभ्रंश-युग की विशेषता थी कि संज्ञा शब्द के साथ विभक्ति जुड़ी रहती थी। परसर्गों का विकास नहीं के बराबर हुआ था। सविभक्तिक पद-प्रयोग का प्रचलन था। सविभक्तिक पदों से ही विविध कारकों के अर्थ की व्यंजना होती थी। यथा :

सविभक्तिक संज्ञापद :

१. जत्त बि पइसइ जलहि जलु तत्तइ समरस होइ (सरह : दोहाकोश)
२. गुरु-वअणें दिढ भत्ति करु, होइ जइ सहज उलालु। (सरह : दोहाकोश)
३. सायरु उप्परि तणु धरइ। (हेमचन्द्र)
४. जइ भग्गा घरू एन्तु। (हेमचन्द्र)
५. तबहु पिआजु पिआजु पइ। (कीर्त्तिलता)
६. जसु पत्थावे पुण्डु। (कीर्त्तिलता)

अधुनिक मगही में अभी तक सविभक्तिक संज्ञापदों के प्रयोग का प्रचलन है। यथा :

रामु अपना घरे हइ। (आ० म०)

कर्त्ताकारक 'राम' में 'उ' विभक्ति लगाकर 'रामु' बना है और अधिकरण कारक की व्यंजना के लिए 'घर' संज्ञा में 'ए' विभक्ति लगा कर 'घरे' (घर पर) की रचना हुई है।

राजा के बेटी **'राजे'** घर। (आ० म०)

'राजे' (राजा के ही) संज्ञा सम्बन्ध कारक में है। जोर देने के लिए इसमें 'ही' का अर्थ भी सन्निहित है।

परिनिष्ठित अपभ्रंश में निर्विभक्तिक पदों के व्यवहार का प्रचलन बहुत कम था।

जैसे-जैसे आधुनिक बोलियों का उद्भव होता गया, वैसे-वैसे निर्विभक्तिक पदों के प्रयोग की प्रवृत्ति भी बढ़ती गई। सिद्धों की भाषा में इनका व्यवहार बहुत कम हुआ है, किन्तु आगे चलकर 'उक्तिव्यक्ति', 'वर्णरत्नाकर' और 'कीर्त्तिलता' में निर्विभक्तिक पदों का बाहुल्य मिलता है। इन ग्रन्थों के प्रणयन-काल मे मगही में भी निर्विभक्तिक पद-प्रयोग विकसित हो गये होंगे, ऐसा अनुमान किया जा सकता है। इस अनुमान का आधार यह है कि यद्यपि मगही का उस युग का शिष्ट साहित्य अबतक उपलब्ध नहीं हो सका है, तथापि भाषा के विकास-क्रम के अध्ययन से प्रकट होता है कि तत्कालीन मगही भी विकास की उसी भूमि पर प्रतिष्ठित रही होगी, जिसपर 'उक्तिव्यक्ति', 'वर्णरत्नाकर' और 'कीर्त्तिलता' की भाषा प्रतिष्ठित दीखती है।

निर्विभक्तिक पद-प्रयोग :

१. **अन्धा अन्ध कढाव तिम, वेण्ण वि कूव पडेइ।** (सरह : दोहाकोश)

२. **जहि मण पवण ण संचरइ, रवि ससि णाह पवेस।**
तहि वढ़ **चित्त** विसाम करु, सरहे कहिअ उएस॥ (सरह : दोहाकोश)

३. केहउ मग्गण एहु। (हेम०)

४. **अहिर गोरू बाग मेलव।** (उक्ति०)

५. **वहुरि राम मायहि सिरु नावा।** (मानस)

६. **राम** अपन माय के गोर लॉगकइ। (आ० म०)

परसर्ग : अपभ्रंश के कारकों की विभक्तियों के अध्ययन-क्रम में कुछेक ऐसे स्वतन्त्र शब्द मिलते हैं, जो संज्ञा के साथ प्रत्यय की तरह सटे नहीं होते, परन्तु कारक-विभक्तियों का ही अर्थ सिद्ध करते हैं। प्राकृत-काल में ऐसे विभक्ति-बोधक स्वतन्त्र शब्दों की संख्या अत्यल्प थी।

अपभ्रंश मे ऐसे स्वतन्त्र शब्द सम्बन्ध कारक में सर्वप्रथम सहायक बने। इन शब्दों से परसर्ग का कार्य सम्पन्न किया गया है। यथा : अपभ्रंश-भाषा में 'केरअ', 'केर', 'कर' 'का', 'की', आदि का व्यवहार सम्बन्ध सूचित करने के लिए हुआ। अधिकरण कारक की व्यंजना के लिए 'मज्झे', 'मज्झ', 'मज्झु' और 'माँझ' का विपुल प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार, अन्य कारकों में भी परसर्गों का व्यवहार दीख पड़ता है।

संज्ञा और सर्वनाम में व्यवहृत परसर्गों के अध्ययन से इस तथ्य पर प्रकाश पड़ता है कि परसर्गों का व्यवहार संज्ञापदों के साथ अधिक हुआ है और सर्वनामों के साथ कम। इसका कारण यह है कि संज्ञापदों में सर्वनामों की उपेक्षा ध्वनि-परिवर्त्तन कम हुआ है। बहुत-से सर्वनामों में ध्वनि-परिवर्त्तन के फलस्वरूप इतना अन्तर आ गया है कि उनके तत्सम (संस्कृत) रूपों से उनका सम्बन्ध जोड़ना कठिन है। सर्वनाम के मूल रूपों के घिस जाने के कारण संलग्न विभक्तियों में भी रूप-परिवर्तन हो गया है। ऐसी स्थिति में क्षति-पूर्त्ति के लिए नये वाचक शब्दों का जन्म हुआ, जिनका व्यवहार आवश्यकतानुसार किया गया। परसर्गों के विकास-सम्बन्धी इतिहास के अध्ययन से विद्वान् इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि परसर्गों के उद्भव के मूल में विभक्ति-चिह्नों की असमर्थता ही निहित है।

परसर्गों में भी महत्त्वपूर्ण ध्वनि-परिवर्त्तन हुए हैं, जिनके फलस्वरूप अनेक (परसर्गों) की व्युत्पत्ति सन्दिग्ध बनी हुई है। परसर्गों में ध्वनि-परिवर्त्तन के मूल कारण पर प्रकाश डालते हुए श्रीज्यूल्स ब्लाश ने कहा है कि परसर्गों का व्यवहार सहायक शब्द के रूप में होता है। इसीसे मुख-सुख के लिए परसर्गों में रूप-परिवर्त्तन किया जाता है। प्रधान शब्द का उच्चारण झटके से होता है। ऐसी स्थिति में उसका प्रभाव परवर्त्ती परसर्ग पर भी पड़ता है। इसका परिणाम यह होता है कि वह परसर्ग मुख्य शब्द का ही एक शब्दांश (Syllable) बन जाता है।[1] उदाहरण के लिए, अनुमान किया जाता है कि मगही और मैथिली का परसर्ग 'क' इसी प्रकार उदित हुआ होगा—

अपभ्रंश	मगही	मैथिली
राम केर	राम क	रामक

सर्वनामों के साथ जुड़कर बहुत-से परसर्ग एकरूप हो गये। परन्तु, संज्ञापदों के साथ परसर्गों की ऐसी एकरूपता स्थापित न हो सकी। कारण यह है कि सर्वनाम प्रायः एकाक्षरिक (Monosyllabic) होते हैं और एक और अक्षर के रूप मे परसर्गों का उनके साथ जुड़ जाना स्वाभाविक है। परन्तु, संज्ञापदो के साथ ऐसी एकरूपता सम्भव नही। कारण संज्ञापद प्रायः एकाधिक अक्षरवाले होते हैं और इसीलिए उनके स्वरपात के प्रभाव में परसर्ग प्रायः नहीं आ पाते। परिणामतः, बड़े संज्ञा शब्दो से परसर्ग भिन्न ही रहते हैं।

अपभ्रंश से मगही के परसर्गों का क्रमिक विकास निम्नांकित है—

सम्बन्धकारक

केरअ—जसु **केरअ** हुँकारऽएँ। (हेम०)
केर—लोचन **केरा** बल्लहा। (कीर्त्ति०)
कर—वणिएँ **कर** धणु धर। (उक्ति०)
कइ—आस असवार **कइ**। (कीर्त्ति०)
क—जुबतिन्हि **क** उत्कंठा। (वर्ण०)

इनमें 'केर' और 'क' परसर्ग आधुनिक मगही में आज भी खूब प्रयुक्त होते हैं। यथा—

केर—सोना **केर** नइया रे मलहा, रूपे करुवार।
क—मालिक **क** बेटी, राजा घर।

इनके अतिरिक्त, आधुनिक मगही में सम्बन्धकारक के चिह्न के रूप में 'के' परसर्ग का व्यवहार होता है। यह आदर्श मगही में सम्बन्धकारक के चिह्न के रूप में विशेष प्रचलित है। 'के' परसर्ग सम्भवतः 'कइ' का रूपान्तर है। यथा—

कोयरिन **के** बेटी राजा घर में बैगन के टैगन कहे हे।

अधिकरणकारक

मज्झे—कोडिअ **मज्झे** एक्कु जइ, होइ णिरंजण-लीण। (कण्हपा : दोहाकोश)
जामहिं बिसमी कज्ज गति जीवहिं **मज्झे** एइ। (हेम०)

---

१. लॉग मराते, १९७।

मज्झ—कमल कुलिस वे बि मज्झ ठिउ, जो सो सुरत विलास।
(सरह : दोहाकोश)

माँझ—युवराजन्हि माँझ पवित्र। (कीर्त्ति०)

माँह—ज्यों जल माँह तेल की गागरि। (सूर०)

मँह—सरग आइ धरती मँह छावा। (पद्मा०)

मैं—झिलमिल पट मैं झिलमिली। (विहारी०)

में—हमरा सपना में भगवान के दरसन होवे हे। (आ० म०)

सम्भवतः, मगही मे 'मँह' के 'ह' का लोप हो गया है। फिर 'मँ' का रूपान्तर 'में' में हो गया है।

उप्परि—सायरु उप्परि तणु धरइ। (हेम०)

उपरि—भणइ लुइ आम्हे झाणे दिट्ठा। धमण चमण वेणि उपरि वइट्ठा।
(लुइपा : चर्यापद)

परि—रह परि चडिअउ। (हेम०)

पर—भगमान पर फूल चढ़ाव। (आ० म०)

मगही में कभी-कभी 'पर' मे 'ए' प्रत्यय जोड़कर 'परे' परसर्ग वनाया जाता है। ऐसा जोर देने के लिए किया जाता है—

भगत लोग रमायन के माथा परे चढ़ा के रखऽ हथ। (आ० म०)

कर्म-सम्प्रदान

कर्म और सम्प्रदानकारकों में प्रायः एक ही प्रकार का परसर्ग प्रयुक्त होता है।[1] हिन्दी में 'कर्म' कारक के चिह्न 'को' का सम्वन्ध विद्वानों ने संस्कृत के 'कृतं' एवं 'कक्षं' से जोड़ा है। पर, मगही में 'को' का प्रयोग कर्मकारक में नहीं होता। इसकी जगह हमेशा 'के' आता है, जो कर्म-सम्प्रदान का चिह्न माना जा सकता है।

कर्म-सम्प्रदान का चिह्न 'के' मगही में, केहिँ, केहँ, कहँ से ही विकसित होता हुआ आया है। यथा—

मन्दिल में चढ़ावे ला राम के फूल दऽ। (आ० म०)

सम्प्रदानकारक

'लागि' परसर्ग का व्यवहार परिनिष्ठित अपभ्रंश में नहीं मिलता, पर 'वर्णरत्नाकर' और 'कीर्त्तिलता' में इसका व्यवहार बहुत हुआ है। पूर्वी हिन्दी और बिहारी बोलियों में 'लागि' रूप सुरक्षित है। यथा—

जभि एहि आलिंगए लागि एक कृष्ण चतुर्भूज भए गेलाह। (वर्ण०)

तेसरा लागि तीनू उपेक्खिअ। (कीर्त्ति०)

'लागि' के अन्य रूपान्तर मगही में प्रचलित हैं—

लगि, ला (लेल, ले)।

---

१. हिन्दी-भाषा का इतिहास : धीरेन्द्र वर्मा, पृ० २६०-२६१।

करणकारक

'सहुँ' का सम्बन्ध संस्कृत 'सह' से है। अपभ्रंश में करणकारक के लिए प्रायः विभक्तिप्रत्यय ही प्रयुक्त होता था। उसके लिए परसर्ग का व्यवहार बहुत बाद में हुआ। अपभ्रंश मे करणकारक के लिए 'सहुँ' का प्रयोग एक स्थान पर मिलता है। जैसे—

जइ पवसन्ते सहुँ न गय। (हेम० ४।४१९)

'उक्तिव्यक्ति' में 'सहुँ' का दूसरा रूपान्तर 'सउँ' और 'सेउँ' मिलता है—

दूजने सउँ सब काहु तूट। (३७।२३)

धिएँ सँकरे सेउँ सातु। (२१।३१)

'वर्णरत्नाकर' और 'कीर्त्तिलता' में इसका रूप 'सञो' हो गया है—

मृत्यु सञों कलकल करइतें अछ। (वर्ण०)

मानिनि जीवन मान सञो। (कीर्त्ति०)

पूर्वी हिन्दी में 'सञो' का 'सों' मिल्ता है। यथा—

ओ विनती पंडितन्ह सों भजा (पद्मा०)

स्वर-परिवर्त्तन और निरनुनासिकता के फलस्वरूप 'सों' का रूप 'से' हो गया। इसका व्यवहार 'कीर्त्तिलता' के काल से ही होता आ रहा है।

आधुनिक मगही में 'करण' का चिह्न 'से' है। यथा—

फूल से देओता के सिंगार केल जाहे। (आ० म०)

'से' का व्यवहार करण और अपादान दोनों कारको में मिलता है। यथा—

विपक्ख केन मेन हेरि हिंसि हिंसी दाम से। (कीर्त्ति०)

निसान सद्द भेरि संग खोणि खुन्द तास से। (कीर्त्ति०)

इस प्रकार, अपभ्रंश से आधुनिक मगही तक आने के क्रम मे एक ही परसर्ग पूरी तरह घिसकर परिमार्जित हो गया है। यथा—

सहुँ > से ; कहुँ > के। महँ > मेँ; केरअ > केर > के आदि। इन परसर्गों का प्रयोग आधुनिक मगही में बहुत प्रचलित है।

सर्वनाम

मगही में मूलतः निम्नांकित सर्वनाम व्यवहृत होते हैं—

हम , तूँ , अपने , इ , उ , जे , से , कोई , कुछ , कौन और का या कि।

हम—अपभ्रंश में मूल या विकारी किसी रूप मे 'हम' सर्वनाम नहीं मिलता है। उसमें सर्वनाम 'आम्हे' और 'अम्हे' मिलते हैं, जो उत्तमपुरुष कर्त्ताकारक के रूप हैं। 'उक्ति-व्यक्ति' में भी उत्तमपुरुष, कर्त्ताकारक मे 'अम्हे' का प्रयोग मिलता है। विभिन्न विद्वानों ने खड़ी बोली के उत्तमपुरुष 'हम' का सम्बन्ध प्राकृत के 'हमुं' से जोड़ा है। परन्तु, 'हम' के पूर्वरूप के सन्धान के लिए अपभ्रंश के 'अम्हे' की उपेक्षा कर प्राकृत-काल में जाना युक्तिसंगत नहीं। 'अम्ह' से 'हम' का सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है। यथा— आम्हे > अम्हे > अम्ह > हम्ह > हम्म > हम।

भणइ लुइ आम्हे झाणे दिट्ठा। (लुइपा : चर्यापद)

भणइ गुन्डरी अम्हे कुन्दुरे वीरा। (गुण्डरीपा : चर्यागीति)
अम्हे थोवा रिउ बहुतु। (हेम०)
हम जो कहा यह कपि नहिं होई। (मानस)
हम मन्दिल में पूजा करे जइला। (आ० म०)

मगही में 'हम' का व्यवहार, उत्तमपुरुष एकवचन में होता है। 'हम' का एकवचन में व्यवहार बिहार-प्रान्त के खड़ी बोली बोलनेवाले भी करते हैं। शायद आत्मनेपद में उत्तमपुरुष मे बहुवचन का व्यवहार करने की प्राचीन परम्परा ही मगही आदि बिहार की बोलियों मे भी अपनाई गई है।

कुछ विद्वान्[1] मगही के 'हम' का सम्बन्ध अपभ्रंश के 'हँउ' से भी जोड़ते हैं। यथा—
हँउ किं वि न जाणमि मुक्खु मणे (स्वयम्भूदेव : रामायण, २३।१)
हँउ निरासी खमन भतारी। (कुक्कुरीपा : चर्यापद)
तू लो डोम्बी **हाँउ** कपाली। (कण्हपा : चर्यापद)
तू देओता, **हम** पुजारिन। (आ० म०)
तूँ—मगही में, मध्यमपुरुष सर्वनाम 'तूँ' का व्यवहार होता है। अपभ्रंश में इसके पूर्वरूप सुरक्षित हैं। यथा—
तूँ लो डोम्बी हाँउ कपाली। (कण्हपा : चर्यापद)
मइँ भणिय **तुहुँ**। (हेम०)
तुउँ करसि। (उक्ति०)
तूँ हमरा किताब दे दऽ। (आ० म०)
अप्पन, अपना—मगही के, निजवाचक सर्वनाम 'अप्पन' या 'अपना' का विकासक्रम निम्नांकित है—

अप्पण > अप्पन > आपन > अपना।

इन रूपों का प्रयोग अपभ्रंश-काल से अबतक चल रहा है। विद्वान् इसे संस्कृत 'आत्मन्' का अपभ्रंश मानते हैं। यथा—
पुण लइअ **अप्पण** चटारिउ। (शान्तिपा : चर्यापद)
अप्पण माँसे हरिणा बइरी। (भूसुकुपा : चर्यापद)
अप्पन रूप निरेखऽ। (आ० म०)
अपना मन के बात कहऽ। (आ० म०)
आगे चलकर मगही में, मध्यमपुरुष सर्वनाम में आदरार्थ 'अपना' का विकारी रूप 'अपने' का व्यवहार होने लगा। यथा—

अपने किताब पॅढ़थिन। (आ० म०)

यह या इ—निकटवर्त्ती निश्चयवाचक सर्वनाम के लिए अपभ्रंश में दो प्रकार के रूप मिलते हैं—'एह' वाले रूप और 'आय' वाले रूप। 'एह' का ही अन्य रूप है 'यह', जो पूर्वी क्षेत्रों में 'ई' हो जाता है। यथा—

१. हिन्दी-काव्यधारा : राहुल सांकृत्यायन, पृ० ४६३।

ई पिच्चइ नाअर मन मोहइ। (कीर्त्ति०)
ई बगीचा के फल सुन्नर हइ। (आ० म०)

वह या उ—दूरवर्त्ती निश्चयवाचक सर्वनाम 'वह' का व्यवहार अन्यपुरुष के लिए भी होता है। अपभ्रंश मे 'वह' रूप तो नही मिलता, पर 'ओइ' रूप मिलता है। यथा—

बड्डा घर ओई। (हेम० ४।३६४)
मगही में दूरवर्त्ती निश्चयवाचक सर्वनाम 'उ' का व्यवहार होता है—
उ महल बहुत पुरान हइ। (आ० म०)

जे—सम्बन्धवाचक सर्वनाम 'जो' तथा इसके अन्य विकारी रूप अपभ्रंश-काल से ही व्यवहृत हो रहे हैं—

जो एथु बूझइ सो एथु वीरा। (कुक्कुरीपा : चर्यापद)

मगही में सम्बन्धवाचक सर्वनाम 'जे' का व्यवहार होता है। यह अपभ्रंश के 'जो' का ही विकसित रूप है—

जे सेवा करी, से फल पाइ। (आ० म०)

से—सम्बन्धवाचक सर्वनाम 'जे' प्रायः अपने नित्यसम्बन्धी 'से' के साथ आता है। 'से' का पूर्वरूप 'सो' अपभ्रंश में मिलता है—

जो एथु बूझइ सो एथु वीरा। (कुक्कुरीपा : चर्यापद)
सो कइसे आगम-वेएँ वखाणी। (लुइपा : चर्यापद)
'सो' का परिवर्त्तित रूप 'से' मगही में व्यवहृत होता है—
जे धरम करी, से सरग जाइ। (आ० म०)

कउन—अपभ्रंश में प्रश्नवाचक सर्वनाम के रूप में 'कवणु' प्रचलित था। आधुनिक मगही मे इसका परिवर्त्तित रूप 'कउन' हो गया है। यथा—

एँहु संसारे कवणु फलु, वरु छड्डहु अप्पाण। (सरहपा : दोहाकोश)
इ संसार में रहला के कउन फल हे। (आ० म०)

का या कि—अपभ्रंश में प्रश्नवाचक सर्वनाम 'की' प्रचलित था। यह अभी तक आधुनिक मगही में सुरक्षित है। यथा—

वेज्ज देक्खि की रोग पलाइ ? (सरहपा : दोहाकोश)
बैद देखे से की रोग भागतइ ? (आ० म०)

मगही में प्रश्नवाचक सर्वनाम 'का' का भी व्यवहार होता है। यह 'की' सर्वनाम का ही परिवर्त्तित रूप है। यथा—

धन से का धरम जीतल गेल हे ? (आ० म०)

कोई, कुछ—अनिश्चयवाचक सर्वनाम 'कोई' और 'कुछ' भी अपभ्रंश-काल से ही यत्किंचित् रूपान्तर के साथ व्यवहृत हो रहे हैं। 'कोई' के साथ मगही में 'कोउ' रूप भी मिलता है।

कोई—गुरु-प्पसाएँ पुराण जइ, विरला जाणइ कोबि। (सरहपा : दोहाकोश)

देहु म मग्गहु कोई। (हेम०)
कोइ नहीं होइ विचारक। (कीर्त्ति०)
कोइ के मन के बात हम का जानीं। (आ० म०)

कोउ—राजा जइ कोउ। (उक्ति०)
कोउ कुच्छो कहइ, बाकि वात हइ सच। (आ० म०)

कुछ—बोलिए न जाए किछु धाइ। (कीर्त्ति०)
कुछ होवे, हम तो तीरथ जाम जरूर। (आ० म०)

विशेषण : संख्यावाचक विशेषण

पूर्णांकबोधक—मगही के प्रायः सभी पूर्णांकबोधक संख्यावाचक विशेपण संस्कृत मे व्यवहृत होनेवाले संख्यावाचक विशेपणों के ही रूपान्तर हैं। प्राकृत तथा अपभ्रंश की कुछ ध्वनि-सम्बन्धी प्रवृत्तियों के कारण मगही की पूर्णांकबोधक संख्याओं के रूप बहुत पहले ही बन चुके होंगे। भिन्नता इतनी ही है कि प्राकृत और अपभ्रंश के संख्यावाचक रूपों में जहाँ संयुक्त व्यंजनों और उद्वृत्त स्वरों की प्रधानता है, वहाँ मगही में क्षतिपूरक दीर्घीकरण, समीकरण, स्वरसन्धि आदि नियमों ने आकर उन्हें अपने उच्चारण के अनुरूप बना लिया। जैसे—अपभ्रंश के 'चउद्दह' और 'चोद्दह' को मगही ने 'चउदह' बना लिया। अपभ्रंश और मगही के कतिपय संख्यावाचक विशेषणों की तुलनात्मक रूप तालिका नीचे दी जाती है[1]—

अप०	मग०
एक्क-बीस	एक-बीस, एकइस
बावीस (द्वाविंशति-सं०)	बाइस, दू बीस
अट्ठावीस	अठाइस, आठबीस
चउतीस	चउँतीस, चौंतीस
अट्ठतीस	अड़तीस, आठतीस
छायालीस	छियालीस
पण-पण्णास	पचपन, पाँच पचास
छप्पण	छप्पन
सट्ठि	साठ
पंच-सत्तर	पचहत्तर, पछत्तर, पाँच सत्तर
चउरासी	चउरासी, चौरासी

सौ से ऊपर की संख्याएँ अपभ्रंश में संस्कृत के अनुसार 'उत्तर' लगाकर बनाई जाती हैं। मगही में अब भी ये विकल्प से प्रचलित हैं। यथा—

अप०	मग०
एकोत्तरसय	एकोतर सै
अट्ठोत्तर सय	अठोतर सै

---

१. डॉ० तगारे के हिं० ग्रा० अप० ११४ से अपभ्रंश-संख्याओं के रूप उद्धृत है।

कभी-कभी यह क्रम बदल भी जाता है। यथा—

अप०	मग०
चउदह-सय-छहुत्तर	चौदह सै छिहत्तर

आधुनिक मगही में प्रायः सौ के बाद की संख्याओं के ऐसे ही रूप प्रचलित हैं।

अपूर्णांकबोधक—अपभ्रंश में इसके अधिक रूप उपलब्ध नहीं होते। जो थोड़े-बहुत रूप उपलब्ध हैं, वे किंचित् रूपान्तर के साथ मगही में भी चलते है। जैसे—

अप०	मग०
अद्ध	आधा, आद्धा
दियड्ढ	डेढ़
अउट्ठ	अहुठ

क्रमवाचक

(क) अपभ्रंश में 'प्रथम' के लिए 'पढम' और 'पहिल' दो रूप आते हैं। मगही मे केवल 'पहिल' रूप ही सुरक्षित है। इसके ह्रस्व सबल, दीर्घ और अतिरिक्त रूप भी होते हैं। यथा—पहिला, पहिलका पहिलकवा।

(ख) अपभ्रंश में 'द्वितीय' के लिए 'विय' और 'दुइज्ज' रूप मिलते हैं। मगही में तिथियों की गणना में दुइज्ज > दूज हो जाता है।

(ग) अपभ्रंश में तृतीय के लिए 'तइज्ज' और 'तीज' रूप मिलते हैं। मगही में तिथि की गणना के लिए 'तीज' शब्द का व्यवहार होता है।

(घ) 'दूज' और 'तीज' के स्थान पर, 'सर' प्रत्ययवाले रूप, आधुनिक मगही मे मिलते हैं। जैसे—दोसर, तेसर।

(ङ) अपभ्रंश मे चतुर्थ के लिए 'चउट्ठ' और 'चौत्थअ' दो शब्द मिलते है। इनमे से मगही में चउट्ठ > चउठ, चौठ, चौठा रूप ही प्रचलित है।

आवृत्तिवाचक—मगही में पूर्णांकबोधक विशेषण के आगे 'गुना' लगाकर आवृत्तिवाचक विशेषण बनाये जाते हैं। जैसे—दुगुना, चौगुना। इनमें से दुगुना के मध्य के 'ग' के लोप होने से दुउना > दूना हो जाता है। अपभ्रंश में 'दूना' के लिए 'दोन' और 'चौगुना' के लिए 'चउग्गुण' शब्द मिलते हैं।

क्रिया :

अन्य आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं की भाँति मगही की क्रियाएँ भी 'तद्भव' हैं और परिणामतः उन्हे संस्कृत की सारी धरोहर प्राकृत और अपभ्रंश के माध्यम से प्राप्त हुई है।

कालरचना

व्युत्पत्ति की दृष्टि से मगही के विविध कालों में व्यवहृत होनेवाली क्रियाएँ संस्कृत-रूपो के अवशेष हैं। उन्हे वर्त्तमान रूप अपभ्रंश के माध्यम से प्राप्त हुआ है। यथा—

सहायक क्रिया—हे, हे तथा हइ।

ये तीनों 'वर्त्तमान काल अन्य पुरुष' के रूप हैं। इनका सम्बन्ध संस्कृत के √अस्[1] धातु के वर्त्तमानकालिक रूप 'अस्ति' से माना जा सकता है। 'अस्ति' और 'है' के बीच की विकास-अवस्थाएँ निम्नांकित हो सकती हैं—

अस्ति > अत्थि > अहइ > अहै > है—

हिन्दी—वह है।

मगही—ऊ है।

अस्ति > अत्थि > अहइ > हइ—मगही—ऊ हइ।

अस्ति > अत्थि > अहइ > हइ > हे—हिन्दी—वह है।

मगही—ऊ हे।

सहायक क्रिया—ही।

मगही में यह रूप वर्त्तमान काल के उत्तमपुरुष में व्यवहृत होता है। इसका सम्बन्ध संस्कृत के √अस् धातु के वर्त्तमानकालिक रूप 'अस्मि' से माना जा सकता है। 'अस्मि' और 'ही' के बीच की विकास-अवस्थाएँ निम्नांकित हो सकती हैं—

अस्मि > अम्हि > म्ही > ही। हिन्दी—मैं हूँ।

मगही—हम ही।

सामान्य वर्त्तमानकाल

अपभ्रंश मे 'सामान्य वर्त्तमानकाल' मे निम्नांकित रूप मिलते हैं—

उत्तमपुरुष	मध्यमपुरुष	अन्यपुरुष
करऊँ	करहि	करइ

ये रूप मगही में अब भी सुरक्षित हैं। इनके विकृत रूप भी मगही में प्रचलित हैं—

१. अउँ > उँ

मगही—हम राज करूँ।

२. अहि > ए

मगही—तूँ राज करे तो हमरा बड़ी खुसी होय।

३. अइ > ए

मगही—ऊ धरम करे तो हमरा अनन्द होय।

वर्त्तमान सम्भावनार्थ और आज्ञाबोधक क्रियारूप

मगही के 'वर्त्तमान सम्भावनार्थ' और 'आज्ञाबोधक' क्रियारूपों का सम्बन्ध संस्कृत की तद्बोधक क्रियाओं के वर्त्तमानकाल के रूपों से है। बीच की अवस्थाएँ निम्नांकित हैं—

ए० व०	सं०	प्रा०	अप०	मगही
उ० पु०	चलामि	चलामि	चलउँ	चलूँ
म० पु०	चलसि	चलसि	चलहि, चलइ	चलइ

---

१. डॉ० ग्रियर्सन ने सहायक क्रिया है, हे, हइ आदि का सम्बन्ध √अह् धातु से माना है। देखिए—
Seven Gr. of the dialects and Subdialects of Bihari Lang. : Part III.
विशेष के लिए देखिए—मगही-व्याकरण-कोश।

ए० व०	सं०	प्रा०	अप०	मगही
अ० पु०	चलति	चलइ	चलहि, चलइ	चलइ
ब० व०				
उ० पु०	चलामः	चलामो	चलहुँ	चलहुँ
म० पु०	चलथ	चलह	चलहु	चलहु
अ० पु०	चलन्ति	चलन्ति	चलहिं	चलथि

सामान्य भविष्यत्काल

अपभ्रंश में भविष्यत्काल के दो प्रकार के रूप मिलते हैं :

१. 'स' वाले रूप—

यथा—करिसइ, करिसहि, करसहुँ आदि ।

२. 'ह' वाले रूप—

यथा—करिहइ, करिहहिं, करिहहि, करिहहु, करिहउँ आदि ।

दोनो ही संस्कृत के 'ष्य' वाले रूप के अपभ्रंश हैं। इनमे 'ह' वाले रूप 'पूर्वी' और 'मगही' आदि बोलियों में प्रचलित हो गये हैं। यथा—

है हे सोइ जो राम रुचि राखा। (मानस)
ओही होइ जे भगमान करिहें। (मगही)

कृदन्त :

मगही की काल-रचना में 'वर्त्तमानकालिक कृदन्त' 'भूतकालिक कृदन्त', 'भविष्यत् कृदन्त' और 'पूर्वकालिक कृदन्त' के रूपों का व्यवहार होता है।

वर्त्तमानकालिक कृदन्त—के रूप धातु के अन्त में 'अत्' प्रत्यय लगाकर बनाये जाते हैं। इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के वर्त्तमानकालिक कृदन्त के 'शतृ' प्रत्ययान्त रूपो से मानी जाती है। यथा—

स०	प्रा०	हि०	मगही
पचत्	पचंतो	पचता	पचत्

भूतकालिक कृदन्त—के रूप धातु के अन्त में 'ल' प्रत्यय जोड़कर बनाये जाते हैं। विभिन्न विद्वान् इस 'ल' का सम्बन्ध म० भा० आर्यभाषा के 'इल्ल' तथा प्रा० भा० आर्यभाषा के 'ल' प्रत्यय से जोड़ते हैं। भूतकालिक कृदन्त में 'ल' प्रत्ययान्तवाले रूप अन्य बिहारी बोलियो और बँगला में भी वर्त्तमान हैं। डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या ने 'ओरिजन ऐण्ड डेवेलपमेण्ट ऑव बंगाली लैंग्वेज' मे इसपर विस्तार से विचार किया है।[1]

भविष्यत् कृदन्त—अपभ्रंश में कभी-कभी अव्व—तव्यत् प्रत्ययवाले रूप 'सामान्य भविष्यत्काल' का कार्य करते थे। यथा—

महु करिएव्वउँ किं। (हेम० ४।४३८)

१. भूमिका, पृ० ९२–९६।

अपभ्रंश के इस रूप का प्रचलन मगही, मैथिली, अवधी आदि अन्य पूरबी बोलियों में भी दिखाई पड़ता है। यथा—

वेद पढ़ब, स्मृति अभ्यासबि, पुराण देखब, धर्म करब।

(उक्ति०, १२)

झंख करिव्वउँ काह। (कीर्ति० ६४)

हम धरम करब। (मगही)

'करब' का समानार्थी रूप 'करम' भी मगही में मिलता है, जिसका सम्बन्ध संस्कृत के 'करिष्यामि' रूप से जोड़ा जा सकता है।

पूर्वकालिक कृदन्त—अपभ्रंश के 'इ' प्रत्यय का व्यवहार पूर्वकालिक कृदन्त में बहुत होता है। जैसे—कर् + इ = करि।

ओहु सेच्चान खोदि खा। (कीर्त्ति० ९६)

काम करि के तूँ फिर चल अइह। (आ० म०)

क्रियार्थक संज्ञा :

मगही मे बँगला, उड़िया आदि की तरह---'ब' लगाकर क्रियार्थक संज्ञा बनती है। इसका सम्बन्ध संस्कृत के कर्मवाच्य में भविष्यत्काल का बोध करानेवाले कृदन्त प्रत्यय—'तव्य' से माना जाता है। जैसे—

सं०	प्रा०	मगही
कर्त्तव्यम्	करेअव्वं, करिअव्वं	करब

कर्त्तृवाचक संज्ञा :

क्रियार्थक संज्ञा के विकृत रूप में 'वाला', 'हार' आदि प्रत्यय लगाकर कर्त्तृ-वाचक संज्ञाएँ बनाई जाती हैं। यथा—'जायेवाला', 'सुतनिहारे' आदि। मगही के 'वाला' प्रत्यय का सम्बन्ध हिन्दी की ही तरह सं० 'पालक' से जोड़ा जा सकता है। इसी प्रकार मगही 'हार' का सम्बन्ध सं० 'धारक' अथवा सं० 'कारक' से माना जा सकता है।[1]

अव्यय : क्रियाविशेषण

कुछ को छोड़कर अपभ्रंश के अधिकांश क्रियाविशेषण संस्कृत-क्रियाविशेषणों के तद्भव रूप हैं। किंचित् 'ध्वन्यात्मक परिवर्त्तन' के साथ उनमें से अधिकांश मगही में प्रचलित दीख पड़ते हैं। नीचे कतिपय ऐसे क्रियाविशेषणों की सूची दी जा रही है—

(क) कालवाचक— अज्जु (अद्य)—अजु, आज। एवहिं (अधुना)—अबहिं, अब। कइ यहँ (कदा)—कहिया। जइय (यदा)—जहिया। जब्बे (यदा)—जब। तइय (तदा) — तहिया। तब्बे (तदा) —तब। तो (ततः)—तो। पच्छए (पश्चात्)—पाछे।

---

१. हिन्दी-भाषा का इतिहास : धीरेन्द्र वर्मा, पृ० २९७।

(ख) **स्थानवाचक**—कहि (कुत्र) —कहँ, कहाँ। जहिं (यत्र)—जहँ, जहाँ। तहिं (तत्र) —तहँ, तहाँ। बहिर (बहिः)—बाहर।

(ग) **रीतिवाचक**—णहिं (नहि)—नाहि, नहिं। फुड्डु (स्फुटम्)—फुर्।

(घ) **विविध**—जणि, जणु (इव)—जनि, जनु।

समुच्चयबोधक—जइ (यदि) —जे। कि (वा)—अज्ज कि कल्लि।

यहाँ संज्ञादि पदों की एक संक्षिप्त तालिका दी जा रही है, जिनका विकासक्रम अपभ्रंश से मगही तक देखा जा सकता है[१]—

संज्ञा

अपभ्रंश	**मगही**	**अर्थ**
अक्खि[२]	आँखि	आँख
कवड़ी[३]	कौड़ी	कौड़ी
कूव[४]	कूँआ	कुँआ
खण[५]	छन, खन	क्षण
गुली-गुहाडा[६]	गुल-गुहाड़	हल्ला
गो माय[७]	गे माय	ओ माँ
घरिणी[८]	घरनी	गृहिणी
चेल्लु[९]	चेला	चेला
दरिसण[१०]	दरसन	दर्शन
दीवा[११]	दीया	दीपक
नाई[१२]	नइया	नाव

१. तुलनात्मक अध्ययन के क्रम मे अपभ्रंश-भाषा के पदो के उद्धरण महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के गवेषणा-ग्रन्थ 'हिन्दी-काव्यधारा' से दिये गये है।

२. **अक्खि** णिवेसी आसण बन्धी। (सरह : दोहाकोश)

३. **कवड़ी** न लेइ बोडी न लेइ सुच्छडे पार करइ। (डोम्बिपा : चर्यापद)

४. अन्धाँ अन्ध कढाव तिम, वेणण वि **कूव** पडेइ। (सरह : दोहाकोश)

५. **खण** आणंद भेउ जो जाणइ। (तिलोपा : दोहाकोश)

६. उमत शबरी पागल शबरी मा कर **गुली-गुहाडा**। (शबरपा . चर्यापद)

७. फिटल **गो माए**। अन्तउडि चाहि। (कुक्कुरीपा : चर्यापद)

८. तोहोँरि णिअ **घरिणी** नामे सरह सुन्दरी। (शबरपा : चर्यापद)

९. **चेल्लु** भिक्खु जे थविर उदेसेँ। (सरह : दोहाकोश)

१०. तरुफल **दरिसण** णउ अग्घाइ। (सरह : दोहाकोश)

११. घरही वइसी **दीवा** जाली। (सरहपा : दोहाकोश)

१२. चीअ थिर करि धरहु रे **नाई**। (सरह : चर्यापद)

अपभ्रंश	मगही	अर्थ
पण्डिअ[१]	पण्डित	पण्डित
पतवाल[२]	पतवार	पतवार
पड़िवेसी[३]	पड़ोसी	पड़ोसी
पाअ[४]	पाँव	पाँव, पैर
भिक्खु[५]	भिक्खु	भिक्षु
मगह[६]	मगह	मगह
रण्डी[७]	रण्डी	वेश्या
रायगिहु[८]	राजगीर	राजगृह
विस[९]	विस	विष
सरुअ[१०]	सरूप	स्वरूप
सासु[११]	सास	सास
सिस्स[१२]	सिग्य	शिष्य

सविभक्तिक शब्द-रूप

अपभ्रंश	मगही	अर्थ
गुरुवअणें[१३]	गुरुवचन से	गुरुवचन से
घरें घरें[१४]	घरे-घरे घर-घर में	घर-घर में
जलन्ते[१५]	जले सें	जलने से

१. बढ़ ! अणं लोअ-अगोअर तत्र, **पंडिअ** लोअ-अगम्म । (तिलोपा : दोहाकोश)

२. सद्गुरु वअणे धर **पतवाल** । (सरह : चर्यापद)

३. पइ देक्खइ **पड़िवेसी** पुच्छइ । (सरह : दोहाकोश)

४. जो गुरु **पाअ** पसरण......। (तिलोपा : दोहाकोश)

५. चेल्लु **भिक्खु** जे थवर उदेसें (सरह : दोहाकोश)

६. तहिं **मगह** देसु सुपसिद्ध अत्थि । (पुष्पदन्त : णायकुमारचरिउ)

७. **रण्डी**-मुण्डी अण्ण वि वेसें । (सरहपा : दोहाकोश)

८. तहिँ पट्टणु णामें **रायगिहु**...। (स्वयंभू : रामायण)

९. अमिअ अच्छन्तें **विस** गीलेसि रे चिअ पर रस-अपा । (सरह : चर्यापद)

१०. जत्र बि चित्तह विप्फुरई तज बि णाह **सरुअ** । (सरह : दोहाकोश)

११. **सासु** घरें घालि कोंचा—ताल । (गुण्डरीपा : चर्यापद)

१२. जाण ण आप जणिज्जइ, ताव ण **सिस्स** करेइ। (सरह : दोहाकोश)

१३. सङ्क-पास तोडु **गुरु-वअणें** । (सरहपा : दोहाकोश)

१४. **घरें-घर** सोअ सिधन्त पसिद्धो । (सरहपा : दोहाकोश)

१५. जलण **जलन्ते** णाउ सो डज्झइ । (सरहपा : दोहाकोश)

अपभ्रंश	मगही	अर्थ
दु:खें सुखें[१]	दुख-सुख को	दु:ख-सुख को
पाणीहि[२]	पानी में, पन्ही मे	पानी में
बाहिरे[३]	बहिरे, बाहर में	बाहर में
सुणह सिआलह[४]	कुत्ता-सियार को भो	शुनक-शृगाल को भी

सर्वनाम

अपभ्रंश	मगही	अर्थ
अम्हे[५]	हम	हम
अप्पण[६]	अप्पण	अपना
अप्पहि[७]	अपने हि	अपने ही
अप्पहि अप्पा[८]	अपन ही अपने	अपने-आप
अम्हारि[९]	हमर	हमारी
कवणु[१०]	कउन, कौन	कौन
का[११]	का	क्या
कि[१२]	की, का	क्या
कोबि[१३]	कोइ	कोई
जो[१४]	जे	जो
तइँ[१५]	तोहिं	तुम्हारे
तूँ[१६]	तूँ	तू

१. **दु:खें सुखें** एकू करिआ भुञ्जइ इन्दी जानी । (सरहपा . दोहाकोश)
२. लवणो जिमि **पाणीहि** विलिज्जइ । (सरहपा : दोहाकोश)
३. घरें अच्छई **बाहिरे** पुच्छइ (सरहपा . दोहाकोश)
४. जइ णग्गाविअ होइ मुत्ति, ता **सुणह सिआलह** । (सरहपा : दोहाकोश)
५. भणइ गुंडरी **अम्हे** कुंदुरे वीरा । (गुण्डरीपा : चर्यागीति)
६. पुण लइअ **अप्पण** चटारिउ (शान्तिपा : चर्यापद)
७. जाव ण **अप्पहि** पर परिआणसि । (सरह : दोहाकोश)
८. **अप्पहि अप्पा** बुज्झसि तब्बा । (सरह : दोहाकोश)
९. तो कवणु गहणु **अम्हारि** सेहि । (स्वयम्भू : रामायण)
१०. एहु संसारे **कवणु** फलु, बरु छड्डहु अप्पाण (सरह : दोहाकोश)
११. घरें परें **का** बुज्झीले मारि खइब मइ दुठ कुँडवाँ । (सरहपा : चर्यापद)
१२. मोक्ख **कि** लब्भइ पाणी न्हाई । (सरहपा : दोहाकोश)
१३. गुरु-प्पसाएँ पुराण जइ, विरला जाणइ **कोबि** । (सरहपा : दोहाकोश)
१४. **जो** एथु बूझइ सो एथु वीरा । (कुक्कुरीपा : चर्यापद)
१५. जोइनि **तइँ** विनु खनहि न जीवमि । (गुण्डरीपा : चर्यागीति)
१६. **तूँ** लो डोम्बी हाँउ कपाली । (कण्हपा : चर्यापद)

अपभ्रंश	मगही	अर्थ
तोहोर[1]	तोर	तुम्हारा
मोँहोर[2]	मोर	मेरा
मोर[3]	मोर	मेरा
हँउ[4]	हम	हम

क्रिया

अपभ्रंश	मगही	अर्थ
अच्छई[5]	असते	रहते हुए
अत्थि[6]	अहे > है	है
आइल[7]	आयल	आया
इच्छअ[8]	इच्छऽ	इच्छा कीजिए
उल्हसिउ[9]	हुलसइ	उल्लसित होता है
करह[10]	करहु	करो
कहमि[11]	कह ही	कहता हूँ
कहवि[12]	कहब	कहूँगा
खाहु[13]	खाहु	खाओ
गीलेसि[14]	गीलऽ हइ	निगलता है
गेल[15]	गेल	गया

१. **तोहोर** अन्तरें छाड़ि नड़ पेड़ा। (कण्हपा : चर्यापद)
२. **मोँहोर** विगोआ कहण न जाइ। (कुक्कुरीपा : चर्यापद)
३, पहिल विआण **मोर** वासना पूड़ा (कुक्कुरीपा : चर्यापद)
४, **हँउ** निरासी खमन भतारी। (कुक्कुरीपा : चर्यापद)
५, घरें **अच्छई** बाहिरें पुच्छइ। (सरह : दोहाकोश)
६, कई **अत्थि** अणेअ-भेअ भरिया। (स्वयम्भू : रामायण)
तहि मगहदेसु सुपसिद्ध **अत्थि**। (पुष्पदन्त : णायकुमारचरिउ)
७. **आइल** गराहक अपने बहिआ। (विरूपा : चर्यापद)
८. सुण्ण करुण तहि समरस **इच्छअ**। (तिलोपा : दोहाकोश)
९. बतिस जोइणी तासु अंग **उल्हसिउ**। (भूसुकुपा : चर्यापद)
१०, सद्गुरु बाहे **करह** सो निच्चल। (भूसुकुपा : चर्यापद)
११. ......तहि किं **कहमि** सु गोप्पु। (सरह : दोहाकोश)
१२. ......**कहवि** किम्पि गोप्पु। (सरह : दोहाकोश)
१३. देक्खहु सुणहु परीसहु **खाहु**। (सरह : दोहाकोश)
१४, अमिअ अच्छन्ते विस **गीलेसि** रे चिअ पर रस-अप्पा (सरह : चर्यापद)
१५, ससुरा निंद **गेल** बहुडी जागअ। (कुक्कुरीपा : चर्यापद)

अपभ्रंश	मगही	अर्थ
चढ़िले[१]	चढ़ल	चढ़ा
छेवइ[२]	छेवइ	काटता है
जाणियउ[३]	जनियउ	जानता हूँ
टानअ[४]	टानऽ	खींचो
डज्झइ[५]	डहइ	जलता है
तुट्टइ[६]	टूटइ	टूटता है
तोडहू[७]	तोड़हु	तोड़ो
देक्खहु[८]	देखहु	देखो
देक्खइ[९]	देखइ	देखता है
देखिल[१०]	देखली	देखा
पडिला[११]	पड़ल	पड़ा
पइठई[१२]	पइठइ	प्रवेश करता है
पइसइ[१३]	पइसइ	प्रवेश करता है
पलाइ[१४]	पलाइ	भागता है
परोसहु[१५]	परोसहु	परोसो
पुच्छहु[१६]	पुछहु	पूछो
बइठ्-उट्ठाहु[१७]	बइठ-उठाहु	बैठ-उठाइए

१. मॉगत **चढ़िले** चउदिस चाहश्र। (कमरिपा : चर्यापद)
२. **छेवइ** विदु-जन गुरु- परिमाणी। (कण्हपा : चर्यापद)
३. वायरणु कयाइ ण **जाणियउ**। (स्वयम्भू : रामायण)
४. हॅउ कि वि न **जाणमि** मुक्खु मणे। (स्वयम्भू : रामायण)
५. सद्गुरु-पाश्र-प (सा)ए **जाइब** पुनु जिनउरा। (डोम्बिपा : चर्यापद)
६. जब्बे मण श्रत्थमण जाइ, तणु **तुट्टइ** बंधण। (सरह : दोहाकोश)
७. सङ्क-पास **तोडहु** गुरु वश्रणें। (सरह : दोहाकोश)
८. **देक्खहु** सुणहु परोसहु खाहु। (सरह : दोहाकोश)
९. पइ **देक्खइ** पडिवेसी पुच्छइ। (सरह : दोहाकोश)
१०. सुश्रने मइँ **देखिल** तिहुश्रण सुण्ण। (कण्हपा : चर्यापद)
११. तिश्र-धाउखाट **पडिला** सबरो महासुहे सेज छाइली। (शबरपा : चर्यापद)
१२. जोमण-गोश्रर **पइठई,** सो परमत्थ ण होन्ति। (तिलोपा : दोहाकोश)
१३. श्रलिश्रो ! धम्म-महासुह **पइसइ**। (सरह : दोहाकोश)
१४. वेज्ज देक्खि की रोग **पलाइ**। (सरह : दोहाकोश)
१५. देक्खहु सुणहु **परोसहु** खाहु। (सरह : दोहाकोश)
१६. जइ तो मूढा श्रच्छसि भान्ती **पुच्छहु** सद्गुरु पावा। (भूसुकुपा : चर्यापद)
१७. जिग्घहु कमहुं **बइठ्-उट्ठाहु**। (सरह : दोहाकोश)

अपभ्रंश	मगही	अर्थ
बसइ[१]	बसइ	बसता है
बाहब[२]	बाहब	बहायेगा
बाहुडइ[३]	बहुरिहें	लौटेंगे
बुडिली[४]	बूड़ल	डूबा
बुज्झीले[५]	बूझिले	बूझा
बोलथि[६]	बोलथी	बोलते हैं
भागेॅल[७]	भाँगल	टूटा
मारह[८]	मारऽ	मारिए
मा कर[९]	मत कर	मत कर
मिलिल[१०]	मिलल	मिला
मोॅउलिल[११]	मौरल, मौलल	मुरझाया
लक्खइ[१२]	लक्खइ	देखता है
विलिज्जइ[१३]	विला जा हइ	विलीयमान हो जाता है
विसोहहु[१४]	सोधहु	सोधो
सुणहु[१५]	सुनहु	सुनिए
सोषइ[१६]	सोखइ	सोखता है
हक्कारइ[१७]	हँकारइ	पुकारता है

---

१. ऊँचा ऊँचा पावत तहिं **बसइ** सबरी बाली। (शबरपा : चर्यापद)
२. कडुआल नाहि के कि (नाविक) **बाहब** के पारअ। (कमरिपा : चर्यापद)
३. गेला जाम **बाहुडइ** कइसें। (कमरिपा : चर्यापद)
४. तेह **बुडिली** मातंगी पोइआ लीलें पार करेइ। (डोम्बिपा : चर्यापद)
५. घरें परें का **बुज्झीले** मारि खइब मइ दुठ- कुडवाँ (सरह : चर्यापद)
६. सअ-संवेअण **बोलथि** सान्ती। (शान्तिपा : चर्यापद)
७. वंगे जाया नीलेसि पारे, **भागेॅल** तोहोर विणाणा। (सरह : चर्यापद)
८. **मारह** चित्त णिबाणेँ हणिआ। (तिलोपा : दोहाकोश)
९. उमत शबरो पागल शबरो **मा कर** गुली-गुहाडा। (शबरपा : चर्यापद)
१०. बाटत **मिलिल** महासुह माँगा। (कमरिपा : चर्यापद)
११. नाना तरुवर **मोॅउलिल** रे गअणत लागेॅलि डालो। (शबरपा : चर्यापद)
१२. अलक्ख **लक्खइ** चिए महासुहे। (डोम्बिपा : चर्यापद)
१३. लवणो जिमि पाणीहि **विलिज्जइ**। (सरह : दोहाकोश)
१४. सहजें चित्त **विसोहहुं** चङ्ग। (तिलोपा : दोहाकोश)
१५. देक्खहु **सुणहु** परीसहु खाहु। (सरह : दोहाकोश)
१६. भाँग तरंग कि **सोषइ** साअर। (कण्हपा : चर्यापद)
१७. माहव-मासु याइ **हक्कारइ**। (स्वयम्भू : रामायण)

अव्यय

अपभ्रंश	मगही	अर्थ
अवर[1]	अउर	और
अइसन[2]	अइसन, ऐसन	ऐसा
जइ[3]	जे	यदि
जहि[4]	जहँ, जहिं	जहाँ
जब्ब[5]	जबे	जब ही, जभी
जहिं तहि[6]	जहँ-तहँ	जहाँ-तहाँ
जइसा[7]	जैसन	जैसा, की तरह
णाहि[8]	नाहि	नहीं
तहिं[9]	तहि	वहाँ ही
तइसो[10]	तैसन	तैसा
तक्खणे[11]	तखनी	उस समय
सो बि[12]	से भी	सो भी

८. मगही शब्द-परम्परा

मगही शब्द-भाण्डार के निर्माण में अपभ्रंश की देन प्रधानतः तद्भव शब्दों के क्षेत्र मे ही है। इसका प्रधान कारण यह है कि अपभ्रंश में ही प्रायः तत्सम शब्दो के बहिष्कार की प्रवृत्ति मिलती है। इस बहिष्कार के दो कारण सम्भावित हैं—

(१) धार्मिक प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप अपभ्रंश के जैन मुनियो और बौद्ध धर्मावलम्बी सिद्धो ने संस्कृत शब्दों की अपेक्षा लोकभाषाओं के शब्दों को ही विशेष प्राश्रय दिया।

(२) पूर्णतः लोक-व्यवहृत बोली होने के कारण अपभ्रंश भी तत्सम शब्दों के सायास प्रवेश से वंचित रही।

---

१. एक्कु खाइ **अवर** अण्ण वि पोडइ। (सरहपा : दोहाकोश)

२. **अइसन** चर्या कुक्कुरिपाए गाइउ। (कुकुरीपा : चर्यापद)

३. **जइ** णग्गाविअ होइ मुत्ति, ता सुणह सिआलह। (सरहपा : दोहाकोश)

४. **जहि** मण पवण ण सञ्चरइ, रवि ससि णाह पवेस। (सरह० : दोहाकोश)

५. णिअ मण **सब्बे** सोहिअ **जब्बे**। (सरह० : दोहाकोश)

६. सुण्णहि सङ्गम करहि तुहु, **जहिँ तहिँ** सम चिन्तस्स। (सरहपा : दोहाकोश)

७. वातावर्त्ते सो दिढ भइआ, आयें पाथर **जइसा**। (भूसुकुपा : चर्यापद)

८. जीवँते मइलें **णाहि** विशेशो। (सरहपा : दोहाकोश)

९. गअण-गिरी-णइ-जल पिअउ, **तहिँ** तउ वसउ सइच्छ। (सरहपा : दोहाकोश)

१०. जइसो जाम मरण वी **तइसो** जीवँते मइलें णाहि विशेशो। (सरहपा : दोहाकोश)

११. समरस जाइ **तक्खणे,** जइ पुणु ते सम चित्त। (कह्नपा : दोहाकोश)

१२. **सो बि** मणु तहि अमणु करिज्जइ। (सरहपा : दोहाकोश)

कारण और जो भी हों, पर यह एक स्वीकृत सत्य है कि अपभ्रंश में तत्सम शब्द नहीं मिलते।

मगही के तद्भव और देशी शब्द-समूह अपभ्रंश के शब्द-समूहों के ही विकसित रूप हैं। उदाहरणार्थ, सर्वप्रथम आचार्य हेमचन्द्र के 'प्राकृत-व्याकरण' में आये हुए उन शब्दों की तालिका देखी जा सकती है, जिनमें कुछ अपरिवर्त्तित रूप में और कुछ किंचित् ध्वनि-परिवर्त्तनों के साथ हिन्दी और उसकी अन्य बोलियों में भी वर्त्तमान हैं। वस्तुतः, आचार्य हेमचन्द्र के 'प्राकृत-व्याकरण' का विवेच्य सामान्यतया शौरसेनी प्राकृत ही है। पर, इसका यह तात्पर्य नहीं कि मागधी, शौरसेनी आदि प्राकृत भेदों के पृथक् अस्तित्व का आधार उनमें सर्वथा भिन्न शब्दावली का व्यवहार था। प्राकृत-भेदों की कल्पना का प्रमुख आधार उनका देशगत उच्चारण-वैशिष्ट्य ही था। वैसे परस्पर भिन्न स्वरूप रखनेवाले शब्द-व्यवहार ने भी इसमें सहयोग अवश्य दिया होगा। पर, ऐसे शब्दों की अपेक्षा स्वरूप-साम्य रखनेवाले शब्दों की संख्या काफी समृद्ध थी। वर्त्तमान मगही में प्रयुक्त होनेवाले उपर्युक्त विवेचन को स्पष्ट करने के लिए कतिपय ऐसे शब्दों की तालिका प्रस्तुत की जा रही है, जिनके प्राचीन रूप शौरसेनी, मागधी आदि प्राकृतों में समान रूप से प्रचलित थे। इससे मगही शब्द-भाण्डार की समृद्ध परम्परा का तुलनात्मक अध्ययन सम्पन्न हो सकेगा।

हेमचन्द्र के 'प्राकृत व्याकरण' से :

प्राकृत	सं०	मगही	हिन्दी
अन्त्रडी	४।४४५	अँतड़ी	अँतड़ी
उज्जोउगारा	१।१७७	उजागर	उजागर
कुम्पल	१।२६,२/५२	कोंपल	कोंपल
कोहण्डी	१।१२४	कोंहड़ा	कोंहड़ा
खोडि	४।४१९	खोंट	खोट (दोष)
छाही	१।२४९	छाँही	छाँही (छाया)
छुच्छ	२।२०४	छूँछ	छूँछ
ठाउ	४।३५८	ठाँव	ठाँव
तिक्ख	२।८२	तीखा	तीखा
दुवार	२।११२	दु आरि	दु आर (द्वार)
देउल	१।२७१	देकुली	(सं० देवकुल)
पहा	१।६	पोह	पौ (प्रभा)
पाओ	१।५	पाँव	पाँव
पिआस	४।४३४	पिआस	प्यास (पिपासा)
मउड़	१।१०७	मउड़	मोर (मुकुट)
माउसिआ	२।१४२	मउसी	मौसी
रस्सी	१।३५	रस्सी	रस्सी (रश्मि)

अपभ्रंश	मगही	अर्थ
उजोली[1]	अंजोर	प्रकाश
कहेमि[2]	कहि हम	मैं कहता हूँ
कणइलु[3]	कनफूल	कर्णफूल
काअर[4]	कातर	कातर
केयार[5]	केयारी	छोटा खेत
कोंचा-ताल[6]	कुंजी-ताला	ताला-ताली
कोइल[7]	कोइल	कोयल
खरी[8]	खरी	बिलकुल, पूरी
खाण्टि[9]	खाटी	अच्छी, नीकी
गमारि[10]	गमार	गँवार
गहिरु[11]	गहिर	गम्भीर
चउद्दिसि[12]	चऊदस	चतुर्दशी
चक्खइ[13]	चक्खइ	स्वाद लेता है, चखता है
छारू[14]	छार	छार
जीवमि[15]	जीवी	जीता हूँ
ढंखर[16]	ढंखार	वह जमीन, जो आबाद न हो, बंजर
ण[17]	न	न, नहीं

१. गअणहँ जिम **उजोली** चन्दे। (भूसुकुपा : चर्यापद)
२. रअणइ सहज **कहेमि**। (भूसुकुपा : चर्यापद)
३. दिण्णउँ **कणइलु** कावि वहइ। (पुष्पदन्त : आदिपुराण)
४. उच्छलइ साअर दीण **काअर**, वइर वड्ढिअ दीहरा। (कवि वृन्द)
५. जहिँ चुमचुमँति **केयार**-कीर। (पुष्पदन्त : जसहरचरिउ)
६. सासु घरेँ घालि **कोंचा-ताल**। (गुण्डरीपा : चर्यागीति)
७. कल-वाणिहि कल-**कोइल**-कुलं व। (स्वयम्भू : रामायण)
८. भोली तउ सखि **खरी** गमारि। (विनयचन्द्रसूरि : नेमिनाथ : चतुष्पादिका)
९. काअ नावाड्ढि **खाण्टि** मण केडुआल। (सरहपा : चर्यापद)
१०. भोली तउ सखि खरी **गमारि**। (विनयचन्द्रसूरि : नेमिनाथ : चतुष्पादिका)
११. कण्ण इव परावय-सद्द-**गहिरु**। (स्वयम्भू : रामायण।
१२. हुउ परिपुण्ण **चउद्दिसि** णिम्मलि। (स्वयम्भू : रामायण)
१३. छंडइ महियं, **चक्खइ** दहियं। (पुष्पदन्त : उत्तरपुराण)
१४. अम्ह आइसु हिय सीसि, तुह पउतउँ देषूँ **छारू**। (प्रबन्धचिन्तामणि)
१५. जोइनि तइँ विनु खनहि न **जीवमि**। (गुण्डरीपा : चर्यागीति)
१६. उज्जाणहं **ढंखर** ब्अ सोसिय कुसुमवण। (अब्दुर्रहमान : संनेहरायस)
२७. पर-ऊआर **ण** कीअउ......। (सरहपा : दोहाकोश)

अपभ्रंश	मगही	अर्थ
णिलज्ज[1]	निलज्ज	निर्लज्ज
तइँ बिनु[2]	तोहिं बिनु	तुम्हारे बिना
तुज्झ[3]	तोर	तुम्हारा
तुम्ह[4]	तूँ	तुम
तुलक[5]	तुरुक	तुर्क
थोरय[6]	थोर	थोड़ा
दुब्बरि[7]	दुब्बेर	दुबला
दोरु[8]	डोरी	डोरी
धण[9]	धन्न	धन्य
न्हाई[10]	नहाई	स्नान कर
निअड़ि[11]	नियर	निकट
पइंठइ[12]	पइठइ, पइसइ	पैठता है
पप्पडेहि[13]	पापर	पापड़
पिअउ[14]	पियहु	पियो, पीयो
पिबइ[15]	पियइ	पीता है
पुत्थियहि[16]	पोथी	पोथी
फिटल गो माए[17]	फूटल गे माए	हे माँ, फूटा

१. तो बि **णिलज्ज** भणइ हउँ पण्डिअ। (सरहपा : दोहाकोश)
२. जोइनि **तइँ बिनु** खमहि न जीवमि। (गुण्डरीपा : चर्यागीति)
३. ता **तुज्झ** होइ खेयरिय-सत्ति। (पुष्पदन्त : जसहरचरिउ)
४. जइ **तुम्ह** भूसुक अहेरी जाइब। मरिहसि पंच-जना। (भूसुकुपा : चर्यापद)
५. जिणइ णहि कोइ तुअ **तुलक**-हिन्दू। (जज्जल)
६. थिर **थोरय** ओहरि मयणयण उत्तरा-कणय-छवि उज्जलिय। (कनकामर मुनि : करकंडुचरिउ)
७. कआ भउ **दुब्बरि** तेज्जि गरास। (बब्बर)
८. कि कणय **दोरु** धोलइ विसालु। (स्वयम्भू : रामायण)
९. पालीरूअ पमाण पर, **धण** सामिहि घुम्मंति। (अब्दुर्रहमान : संनेहरासय)
१०. मोक्ख कि लब्भइ पाणी **न्हाई**। (सरहपा : दोहाकोश)
११. **निअड़ि** बोहि मा जाहु रे लंक। (सरहपा : चर्यापद)
१२. जो मण-गोअर **पइठई**, सो परमत्थ ण होन्ति। (तिलोपा : दोहाकोश)
१३. पेउव-**पप्पडेहि** सुपहुत्तेहि। (स्वयम्भू : रामायण)
१४. गअण-गिरी-णइ-जल **पिअउ**, तहि तड़ वसउ सइच्छ। (सरहपा : दोहाकोश)
१५. तिण ण छूपइ **पिबइ** ण पाणी। (भूसुकुपा : चर्यापद)
१६. चेल्ला-चेल्ली-**पुत्थियहिँ**, तूसइ मूढु णिभंतु। (योगीन्दु : परमात्मप्रकाश)
१७. **फिटल गो माए !** अन्तउडि चाहि। (कुक्कुरीपा : चर्यापद)

अपभ्रंश	मगही	अर्थ
बइल्लु[१]	बइल	बेल
वाणिज्जरउ[२]	बनजारा	व्यापारी
बिहाणु[३]	बिहान	विहान
बिआअल[४]	बिआयल	बियाइ
भअवाँ[५]	भगॅवा	भगवा
भल्ला[६]	भल	भला
भागेॅल[७]	भाँगल	फूटा
मइलि[८]	मइल	मैला
मज्झ[९]	में	मध्य
मा करगुली गुहाडा[१०]	ना करगुली-गुहाड़	शोर मत करो
मारह[११]	मारहु	मारो
मिरिआ[१२]	मिरिया	मिर्च
मेहलिय[१३]	मेहरी, मेहरारू	मेहरी
लड्डुव[१४]	लड्डू	लड्डू
लट्ठियाउ[१५]	लाठी	लाठी
लक्ख[१६]	लखल	देखा
लाँगा[१७]	लंगा	नंगा

---

१. हय हींसइ आरसइ करह वेगि **बहइ बइल्लु** । (अम्बदेवसूरि : समरराम)

२. वणि-**वाणिज्जारउ** जाणियउँ । (पुष्पदन्त : उत्तरपुराण)

३. घर आयहो॑ अब्भागय **बिहाणु** । (पुष्पदन्त : आदिपुराण)

४. बदल **बिआअल** गविआ बौंभे । (तन्तिपा : चर्यापद)

५. एकदण्डि त्रिदण्डी **भअवाँ** वेसेँ । (सरहपा : दोहाकोश)

६. **भल्ला** हुआ जोँ मारिआ, बहिणि ! महारा कंतु । (हेमचन्द्रसूरि : प्रा० व्याकरण)

७. वंगे जाया नीलेसि पारे, **भागेॅल** तोहोर विणाणा । (सरहपा : चर्यापद)

८. अप्पणा काये छदुबि पउ **मइलि** खाअइ-कालाघालेँ लेइ । (भूसुकुपा : चर्यापद)

९. कमल-कुलिस वे बि **मज्झ** ठिउ, जोसो सुरअ-विलास । (सरहपा : दोहाकोश)

१०. उमत शबरो पागल शबरो **मा कर गुली-गुहाडा** । (शबरपा : चर्यापद)

११. **मारह** चित्त पिबाणेँ हणिआ । (तिलोपा : दोहाकोश)

१२. अल्लय-पिप्पलि-**मिरिआ** मलयहि । (स्वयंभू : रामायण)

१३. **मेहलिय** मिलंतहोँ रहुवइहेँ, सुड्डु उप्पण्णउ जेत्तडउ । (स्वयम्भू : रामायण)

१४. **लड्डुव**-लावण-गुल-इक्खु-रसेँ हि । (स्वयम्भू : रामायण)

१५. णं णं बम्मह-धणु-**लट्ठियाउ** । (स्वयम्भू : रामायण)

१६. सअ-संवेअण-सरूअ विआरेँ अलक्ख **लक्ख** ण जाइ । (शान्तिपा : चर्यापद)

१७. सहज-निदालु कापिहला **लाँगा** । (कण्हपा : चर्यापद)

अपभ्रंश	मगही	अर्थ
वणारसि[1]	बनारस	बनारस
वाटे[2]	राहे, बाटे	राह में
विहूणहिँ[3]	विहून	विहीन
विजुरि[4]	बिजुरी	बिजली
सक्कर[5]	सक्कर	शक्कर
साँझे[6]	साँझ	साँझ
सामलि[7]	साँवरी	साँवली
सालण[8]	सालन	सालन, मांस
सुच्छड़े[9]	छुच्छे	खाली ही
सोज्झु[10]	सोझ	सीधा
सोयवत्ति[11]	सेवइ	सेवइ
हक्क[12]	हाँक	पुकारने की आवाज
हक्कारइ[13]	हँकारइ	पुकारता है
हिअअ[14]	हिया	हृदय

९. आधुनिक मगही का उदय

यह निश्चित रूप से ज्ञात नहीं है कि कब मगही भाषा अपना वर्त्तमान रूप ग्रहण कर सकी। मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं के अध्ययन से पता चलता है कि ७वीं शताब्दी के मध्य तक मागधी-प्रसूत भाषाएँ परस्पर अलग नहीं हुई थीं। ह्वेनसांग ७वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में पूर्वी भारत आया था। उसने लिखा है कि ७वीं शताब्दी के

१. एत्थु पआग **वणारसि,** एत्थु सेँ चन्द दिवाअरू। (सरहपा : दोहाकोश)
२. जें जें उजुवाटे गेला, अणण **वाटे** भइला सोइ। (शान्तिपा : चर्यापद)
३. वायरण-**विहूणहिँ** आरिसेहिँ। (स्वयम्भू : रामायण)
४. कणअ-पिअरि णच्चइ **विजुरि** फुल्लिआ णीवा। (बब्बर)
५. **सक्कर**-खंडेँहि पायस-पयमेँहि। (स्वयम्भू : रामायण)
६. पिटहु दुहिअइ ए तिनो **साँझे**। (तन्तिपा : चर्यापद)
७. जिँव जिँव वकिम लो अणहँ, णिरू **सामलि** सिक्खेइ। (हेमचन्द्रसूरि : प्रा० व्याकरण)
८. **सालण** एहि विवरण-विचित्तेहिँ। (स्वयम्भू : रामायण)
९. कवडी न लेइ वोडी न लेइ **सुच्छडे** पार करइ। (डोम्बिपा : चर्यापद)
१०. घरेँ-घरेँ कहिअइ **सोज्झु** कहाणा। (सरहपा : दोहाकोश)
११. मंडा-**सोयवत्ति** घी अउरेँहि। (स्वयम्भू : रामायण)
१२. **हक्क** तरासइ भिच्च-गणा, कोकर बब्बर सग्ग मणा। (बब्बर)
१३. माहव-मासु णाइ **हक्कारइ**। (स्वयम्भू : रामायण)
१४. दिसइ चलइ **हिअअ** दुलइ, हम इकलि बहू (बब्बर)

पूर्वार्द्ध में बिहार, बंगाल और पश्चिमी आसाम में एक ही भाषा बोली जाती थी। सम्भवतः, केवल आसाम में ध्वनि-रूपों में कुछ भिन्नता थी।[1]

आधुनिक मागधी-प्रसूत भाषाओं की प्राचीन सामग्री के अध्ययन से विद्वान् इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि पूर्ववर्त्ती मागधी-अपभ्रंश के प्रत्येक स्थानीय रूपों—मगही, मैथिली, भोजपुरी, बँगला, उड़िया और आसामी—ने ८वीं से ११वीं शताब्दी तक अत्याधिक स्वतन्त्र रूप से अपनी आवश्यकताओं की पूर्त्ति कर ली होगी। यद्यपि निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि किस शताब्दी में यह अलगाव सम्पन्न हुआ।[2] यह ऐसा युग था, जिसमें समस्त आर्यभारत में भाषा-निर्माण की स्थिति में होने के कारण अस्थिर थे। आधुनिक भारतीय आर्यभाषाएँ आरम्भिक स्थिति में थीं। इन भाषाओं की परस्पर भिन्नताएँ लक्षित हो रही थीं। भाषाओं की व्यक्तिगत विशेषताएँ निर्मित हो रही थीं, पर अभी इन विशेषताओं की पूर्ण स्थापना नहीं हो पाई थी। यह ऐसा काल था, जब आधुनिक भारतीय भाषाएँ पीछे मुड़कर मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा की ओर सहारा और सम्मति के लिए देख लिया करती थीं।

बारहवीं शताब्दी के अन्त तक अपभ्रंश का चरम विकास हो गया। परिनिष्ठित अपभ्रंश में आधुनिक देशी भाषाओं के मिश्रण का आभास हेमचन्द्र के 'प्राकृत-व्याकरण' के रचनाकाल (सन् ११४२ ई०) से ही मिलने लगा। हेमचन्द्र ने अपनी 'देशी नाममाला' में अनेक ऐसे देशी शब्दों का संग्रह[3] किया है, जो प्राकृत और अपभ्रंश-साहित्य में व्यवहृत नहीं हुए हैं। विद्वानों का अनुमान है कि ये शब्द बोलचाल के हैं। अपनी पुस्तक 'काव्यानुशासन' में हेमचन्द्र ने अपभ्रंश के दो रूपों का उल्लेख किया है—१. शिष्ट अपभ्रंश और २. ग्राम्य अपभ्रंश। यह ग्राम्य अपभ्रंश वही है, जिसमें स्थानीय बोलियों का अधिक-से-अधिक मिश्रण रहा होगा।

हेमचन्द्र के समय तक साहित्य में अपभ्रंश का रूप स्थिर हो गया था। यदि स्थिरता में कुछ अपूर्णता रह गई थी, तो हेमचन्द्र ने व्याकरण लिखकर उसे भी पूर्ण कर दिया। इसके बाद जिस साहित्य की रचना हुई, उसमें अत्यधिक स्थानभेद प्रकट हो गये। परवर्त्ती अपभ्रंश में स्थानीय विशेषताओं का खूब उभार दिखाई पड़ता है। स्थानीय भेदों की वृद्धि १६वीं शताब्दी तक जाते-जाते इतनी हो गई कि पूर्व और पश्चिम के प्रदेशों ने अपभ्रंश के ही सहारे अपनी-अपनी बोलियों के स्वतन्त्र रूप प्रकट कर दिये। अब परवर्त्ती अपभ्रंश के सहारे आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का स्वतन्त्र रूप सामने आ गया। १३वीं शताब्दी से इसमें प्रारम्भिक साहित्यिक ग्रन्थों की रचना भी होने लगी।

परवर्त्ती अपभ्रंश में आधुनिक देशी बोलियों का जितना प्रगाढ़ मिश्रण पूर्व के प्रदेशों में दिखाई पड़ता है, उतना पश्चिम में नहीं। देशी बोलियों के इस तीव्रतम उभार का परिणाम यह हुआ कि १३वीं शताब्दी तक प्राच्यवर्ग की मागधी-प्रसूत भाषाओं में से प्रत्येक ने

१. Orig. & Dev. of Beng. lang, Introduction (52) p. 91.

२. Orig. & Dev. of Beng. lang, Introduction (53) pp. 96-97,

३. देखिए इसी ग्रन्थ में 'मगही शब्द-परम्परा' पृ० ४९–५५।

अपने स्वतन्त्र अस्तित्व को अभिव्यक्त कर दिया। विकास की इस स्थिति पर पहुँचने के बाद यह स्पष्ट हो गया कि अब ये सामान्य मागधी की बोलियाँ-मात्र नहीं रह गई हैं।[1]

चौदहवीं शताब्दी के आरम्भ से ही गुजराती, मराठी; बँगला, आसामी, उड़िया, मैथिली आदि आधुनिक भारतीय भाषाओं की स्वतन्त्र सत्ता उनके साहित्यिक ग्रन्थों में दिखाई पड़ने लगती है। चौदहवीं शताब्दी की मैथिली का नमूना ज्योतिरीश्वर ठाकुर के 'वर्णरत्नाकर' (१४वी शताब्दी ईसवी का पूर्वार्द्ध) मे मिलता है। विद्यापति का काल (सन् १३६०–१४४८ ई०)[2] १४वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध और १५वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध पड़ता है। उन्होंने अपनी रचनाएँ 'अवहट्ठ' और विशुद्ध मैथिली, दोनों भाषाओं में की। 'कीर्त्तिलता' (१४वी शताब्दी का उत्तरार्द्ध) की रचना 'अवहट्ठ' में हुई है, और पदों की रचना विशुद्ध मैथिली में। १४वी शताब्दी की बँगला का नमूना 'श्रीकृष्ण-कीर्त्तन' में मिलता है। उड़िया का नमूना पुरी के अभिलेखों (१५वीं शताब्दी) में उपलब्ध होता है। इन भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट पता चलता है कि ये एक दूसरे से बहुत भिन्न हो चुकी हैं और विकास की लगभग उस स्थिति पर पहुँच गई हैं, जहाँ ये आधुनिक समय में हैं।[3]

भारतीय आर्यभाषा में घटित होनेवाला यह क्षेत्रीय भेद, प्राकृत-काल के क्षेत्रीय भेद से निश्चय ही भिन्न प्रतीत होता है। वैयाकरणों द्वारा निरूपित महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी, पैशाची आदि प्राकृतों मे मुख्य भेद उच्चारण-सम्बन्धी ही है। व्याकरण-भेद नाममात्र के लिए ही है। लेकिन यही बात बँगला, उड़िया, आसामी, मगही, मैथिली, राजस्थानी, खड़ीबोली आदि के विषय मे नही कही जा सकती। इन भाषाओं में परस्पर ध्वनि, रूप, व्याकरण-सम्बन्धी भिन्नताएँ पूर्णरूप में वर्त्तमान हैं।

जिस काल में (१४वीं शताब्दी) मगही की भगिनी भाषाएँ अपने साहित्यिक कोश को समृद्ध और अभिवृद्ध कर रही थीं, उस काल में मगध-साम्राज्य अनेक बाह्य और आन्तरिक कारणों से छिन्न-भिन्न हो चुका था। उसकी प्राचीन गरिमा, बौद्धिक और साहित्यिक परम्पराएँ विनष्ट हो चुकी थीं। विद्वान् पुरुष मारे जा चुके थे और जो बचे थे, वे नेपाल में, अपने साथ ले जा सकनेवाली पाण्डुलिपियों (manuscript) के साथ भाग चुके थे। इस कारण उस काल का मगही-साहित्य अनुपलभ्य है।[4] परन्तु, अन्य पूरबी बोलियों से मगही का जो सादृश्य है, उसके आधार पर यह सहज ही अनुमेय है कि समानान्तर रूप से १४-१५वीं शताब्दी तक मगही में भाषातत्त्व-सम्बन्धी वे समस्त विशेषताएँ आ गई होगी, जो आधुनिक मगही में वर्त्तमान हैं। इस प्रकार आधुनिक मगही के उदय का भी वही काल ठहरता है, जो उपर्युक्त अन्य भारतीय आर्यभाषाओं का है।

---

१. Origin & Development of Beng. Language, Introduction (53)p.p.96 97.
२. Maithili Literature : डॉ० जयकान्त मिश्र, पृ० १३९–१४५।
३. Origin & Development of Beng. Language, Introduction (53)p.p.96-97.
४. Origin & Development of Beng. Language, Introduction (55)p.p.100-102

कहने की अपेक्षा नहीं कि आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का उदय जितना आकस्मिक दिखाई पड़ता है, उतना है नहीं। भाषा के इतिहास में आकस्मिक परिवर्त्तन नहीं होता है। प्रायः धीरे-धीरे होनेवाले छोटे-छोटे परिवर्त्तन जब शताब्दियों में एकत्र हो जाते हैं, तब भाषा एकदम बदली हुई लगने लगती है। मगही, मैथिली, बँगला आदि समस्त भाषाओं के विकास के सम्बन्ध में यही नियम लगता है। सभी आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का विकास अपभ्रंश से धीरे-धीरे होता आ रहा था। एक ओर साहित्यिक अपभ्रंश के रूप क्रमशः अप्रचलित होते गये एवं दूसरी ओर आधुनिक भा० आ० भाषाओं के नये रूप प्रचलित होते चले गये। क्रमशः प्राचीन रूपों के ह्रास और नवीन रूपों के विकास की प्रक्रिया से ही आधुनिक भा० आ० भाषाओं का उदय हुआ। आधुनिक भाषाओं के ये रूप निश्चय ही उनकी प्रादेशिक बोलियों से आते रहे हैं। अतः, मगही के विकास की भी यही प्रक्रिया रही होगी, यह सहज अनुमेय है।

१०. मगही का नामकरण

पहले इस तथ्य पर प्रकाश डाला जा चुका है कि मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा में ध्वनियों के सरलीकरण की प्रवृत्ति बहुत प्रबल हो उठी थी। आर्यराज्य की प्रतिष्ठा, स्थानीय अनार्यों पर विजय प्राप्त करके, हुई थी। अनार्यों ने अपने विजेताओं की नवीन भाषा को अपनाया तो सही; परन्तु उनकी वाणी में आर्यभाषा का प्राचीन रूप सुरक्षित न रह सका। उसमें विकृति आ गई। इससे आर्यभाषा में बहुत कुछ रूप-परिवर्त्तन हो गया। ध्वनियों, शब्दरूपों एवं धातुरूपों में प्रविष्ट परिवर्त्तनों ने प्राचीन आर्यभाषा को नवीन रूप दे दिया।

ध्वनि-विकार का ही परिणाम हुआ कि 'मागधी' का नाम-रूप परिवर्त्तित होकर 'मगही' हो गया। संस्कृत के अनुकरण पर अपभ्रंश में लोप, आगम और विकारादि का का विधान होता था। इसी के नियमानुसार मा > म में परिवर्त्तित हो गया। 'ग' ध्वनि सुरक्षित रह गई। वर्ण-विकार के कारण 'ध' ध्वनि 'ह' में परिवर्त्तित हो गई। 'ध' के साथ आई 'ई' ध्वनि सुरक्षित रह गई। इस प्रकार, मागधी > मगही हो गई। मगध-भूमि का वर्णन पुष्पदन्त कवि ने (सन् ९५९—९७२ ई०) निम्नांकित पंक्ति में किया है—

तहिं मगह-देसु सुप्रसिद्ध अत्थि।[1]

यहाँ कवि ने 'मगध' के लिए 'मगह' शब्द का प्रयोग किया है। इस प्रकार, स्थान के लिए 'मगह' और भाषा के अर्थ में 'मगही' शब्द व्यवहृत होने लगा।

'ध' का 'ह' में परिवर्त्तन कदाचित् प्राकृत-काल से ही होने लगा था। अपभ्रंश-काल में तो आरम्भ से ही ऐसे वर्ण-विकार मिलते हैं। यथा : सं० साध > 'अ' साह; सं० विविध > अ० विविह। 'ध' का 'ह' में परिवर्त्तन 'सरहपा' (८वीं शताब्दी) के यथानिर्दिष्ट पद में भी मिलता है—

---

१. णायकुमारचरिउ, पृ० ६।

णिअ सहाव णउ केण वि साहिउ[1] (साधेउ)।
णिअ मण सब्वे सोहिअ (शोधिय) जब्वें[2]।

उद्भव की दृष्टि से, मगही, मैथिली, भोजपुरी, आसामी, उड़िया और बँगला-भाषाएँ मागधी-प्राकृत और मागधी-अपभ्रंश से समान रूप में सम्बद्ध हैं। परन्तु, उत्तराधिकार के रूप में केवल 'मगही' को ही अपनी जननी का नाम किञ्चित् ध्वनि-परिवर्त्तनों के साथ प्राप्त हुआ है।

११. मगही का अपनी भगिनी भाषाओं से सम्बन्ध

उत्पत्ति की दृष्टि से, बँगला, उड़िया, आसामी, मैथिली और भोजपुरी, मगही की सगी बहनें हैं। कहा जा चुका है कि इनका प्रादुर्भाव मागधी-प्राकृत और अपभ्रंश से हुआ है। परन्तु, उपर्युक्त भाषाओं में, 'बिहारी'-वर्ग के अन्तर्गत आनेवाली तीन भाषाओं—मगही, मैथिली और भोजपुरी—का घना सम्बन्ध, युगों से उत्तर-पश्चिम से रहा है। इस कारण बिहारी भाषाओं पर पश्चिमी प्रभाव दिखाई पड़ता है।[3] भोजपुरी पर तो यह प्रभाव सर्वाधिक है; क्योंकि उसका क्षेत्र उत्तरप्रदेश के कुछ हिस्सों तक विस्तृत है।

बिहार का राजनीतिक और सांस्कृतिक सम्बन्ध, बंगाल, उड़ीसा और आसाम की अपेक्षा उत्तरप्रदेश से अति प्राचीन काल से अधिक रहा है। परिणामतः, बिहारी बोलियों पर, उत्तरप्रदेश की हिन्दी का बहुत प्रभाव पड़ गया है। मगही पर तो यह प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। यद्यपि मगही में मूल भाषा की प्रायः सभी विशेषताएँ अभी तक वर्त्तमान हैं, तथापि ध्वनि-सम्बन्धी कुछ भिन्नताएँ भी आ गई हैं।

ऊष्म वर्ण श्, ष्, स् का उच्चारण मूल भाषा में 'श्' था। पर, मगही में तीनों ऊष्म वर्णों के लिए दन्त्य 'स्' का व्यवहार होता है। डॉ० ग्रियर्सन ने इस ध्वनि-परिवर्त्तन का कारण पश्चिमोत्तर प्रदेश का राजनीतिक प्रभाव बतलाया है।[4] अन्य विद्वानों ने भी अशोक के प्राच्य अभिलेखों के आधार पर यह प्रमाणित किया है कि श्, ष्, स् के स्थान पर दन्त्य 'स्' का व्यवहार मगध की बोली में उस (अशोक) के युग से ही होता था। तीनों ऊष्म व्यंजनों के स्थान पर 'श्' व्यंजन का व्यवहार जनसाधारण में प्रचलित था। परन्तु, पाटलिपुत्र की राजसभा की शिष्ट भाषा में 'श्' का व्यवहार न कर 'स्' ही अपनाया गया।[5] इसीसे अशोक के प्राच्य अभिलेखों में भी 'श्' का व्यवहार नहीं मिलता। परन्तु, मिर्जापुर जिले के रामगढ़ पर्वत के जोगीमारा-गुफा में एक छोटा-सा अभिलेख मिला है। इसमें प्राच्य भाषा की सभी विशेषताएँ वर्त्तमान हैं। श्, ष्, स्

---

१. सरह : दोहाकोश।

२. वही।

३. डॉ० उ० ना० ति० : हिन्दी-भाषा का उद्गम और विकास, पृ० १६४।

४. डॉ० उ० ना० ति० : भारत का भाषा-सर्वेक्षण (लि० सर्वे ऑव इण्डिया, वाल्यूम १, पार्ट १ का अनुवाद), पृ० २७४।

५. डॉ० उ० ना० ति० : हि० भा० का उ० और विकास, पृ० १०५।

व्यंजनों के स्थान पर भी 'श्' व्यंजन का ही व्यवहार हुआ है। इस अभिलेख की पंक्तियाँ निम्नांकित हैं—

शुतनूक नम देवदशिकि।
तं कमयिथ वलनशेये देवदिने नम लूपदखे।

संस्कृत-अनुवाद निम्नांकित है—

सुतनूका नाम देवदासिकातो अकामयिष्ट वाराणसेयः देवदत्तः नाम रूपदक्षः।

इस अभिलेख के 'शुतनूका' शब्द पर इसका नाम 'सुतनूका'-अभिलेख पड़ गया है। स्, ष् के स्थान पर 'श्' के अतिरिक्त इसमें 'र्' की जगह 'ल्' का व्यवहार हुआ है। ये प्राच्यभाषा की विशेषताओं को स्पष्ट कर देते हैं।[1]

अशोक के बाद के इतिहास के अध्ययन से ज्ञात होता है कि अशोक के बाद मागधी के विकास पर ध्यान नहीं दिया गया। इसका व्यवहार निम्नश्रेणी के लोग करने लगे। नाटकों में निम्नश्रेणी के पात्र ही मागधी का व्यवहार करते हैं।[2] सम्भवतः, उस युग की शिष्ट भाषा का स्थान शौरसेनी ने ही ले लिया था और विद्वान् इसी भाषा का व्यवहार करने लगे थे।[3] विद्वानों का अनुमान है कि अकेले शौरसेनी अपभ्रंश ने ही मागधी और अर्द्धमागधी भाषाओं का साहित्यिक क्षेत्र अधिकृत कर लिया। इस अनुमान का आधार यह है कि केवल शौरसेनी-अपभ्रंश में ही साहित्य उपलब्ध होता है। महाराष्ट्री, मागधी, अर्द्धमागधी और प्राकृत के अपभ्रंश-रूप का साहित्य अब उपलब्ध नहीं है। विद्वानों का अनुमान है कि या तो इन भाषाओं का साहित्य ध्वस्त हो गया या इनके साहित्य का विस्तृत निर्माण ही नहीं हुआ। इन अपभ्रंशों में साहित्य-निर्माण न होने का कारण यही हो सकता है कि अकेले शौरसेनी-अपभ्रंश ने इनका साहित्यिक क्षेत्र अधिकृत कर लिया हो और केवल उसमें ही विस्तृत रूप में साहित्य की रचना हुई हो।[4]

इस तथ्य की पुष्टि इस बात से भी होती है कि अपभ्रंश-काल में पूर्वी क्षेत्रों के कवि अपनी क्षेत्रीय बोलियों की उपेक्षा कर शौरसेनी-अपभ्रंश का व्यवहार साहित्यिक उद्देश्यों के लिए करते थे। यह परम्परा पूर्वी क्षेत्रों में मध्यकालीन आर्यभाषा युग तथा पूर्ववर्ती आधुनिक आर्यभाषा-युग तक चली आई। यही नहीं, यह परम्परा पूर्वी भाषाओं के स्वतन्त्र रूप से विकसित होने के बाद तक चलती रही। उदाहरणार्थ: मैथिल कवि विद्यापति ने अपनी स्थानीय भाषा मैथिली में तो रचना की ही, साथ ही उन्होंने अवहट्ट या अपभ्रंश में भी 'कीर्त्तिलता' की रचना की, जिसमें शौरसेनी-अपभ्रंश का परवर्त्ती रूप प्राप्त होता है।[5]

---

१. हिन्दी-भाषा का उद्गम और विकास, पृ० १०५-१०७।
२. **Origin & Development of Beng. Lang. Introduction (51), p. 91.**
३. वही, पृ० ९१।
४. **Origin & Development of Beng. Lang., Introduction (50), p. 87.**
५. **Origin & Development of Beng. Lang., Introduction (51), p, 91.**

शौरसेनी के इस व्यापक प्रभाव का ही परिणाम है कि न केवल मगह-क्षेत्र में, अपितु तीनों बिहारी बोलियों में 'श्' और 'ष्' के स्थान में 'स्' का व्यवहार होता है। विद्वानों का विचार है कि ऐसे बिहारी-भाषाभाषियों ने भी 'स्' के उच्चारण को बढ़ावा दिया, जो अपने को पूर्व का नहीं मानते थे। परन्तु 'स्' का यह व्यवहार केवल बोलचाल तक ही सीमित है। मगही की अपनी लिपि कैथी लिपी है। इसमें श्, ष्, स् तीनों ऊष्म व्यंजनों के स्थान पर 'श्' ही लिखा जाता है।[१] पूर्वी मगही में, जहाँ मगही और बँगला का मिश्रण हो जाता है, 'श्' का ही व्यवहार बोलचाल तथा लिखित रूप—दोनो ही में होता है। इस प्रकार, प्रकारान्तर से मगही मे 'श्' ध्वनि वर्त्तमान है।

बहुत दिनों तक शौरसेनी-अपभ्रंश और हिन्दी के सम्पर्क मे रहने के कारण, मगही के कतिपय शब्द रूप और क्रियारूप भी इससे प्रभावित हो गये हैं। यथा—

हिन्दी—मुझे जल्दी घर जाना है, भोजन करना है और फिर लौटना है।

मगही (प्रभावित)—हमरा घर जाना है, भोजन करना है, आउर फिनु लौटना है।

मगही (शुद्ध)—हमरा घर जायला हे, भोजन करेला हे, आउर फिनु लौटेला हे।

शौरसेनी के इस प्रभाव के बाद भी यह सत्य है कि मगही-भाषा पुत्री है मागधी-अपभ्रंश की ही। उसकी सगी बहनें बँगला, आसामी, उड़िया, मैथिली और भोजपुरी ही हैं। हिन्दी-भाषा से भी उसका सम्बन्ध है, पर वह सम्बन्ध दूर का है। हिन्दी की जननी शौरसेनी-अपभ्रंश है। हिन्दी और मगही का उद्भव दो पृथक् प्राकृतों से हुआ है। मागधी-प्रसूत बोलियो की निकटता का यह प्रमाण है कि यदि हम बँगला, क्षेत्र में एक अपढ़ मगहीभाषी को भेजें, तो वह सहज ही शुद्ध बँगला बोलने लगता है, पर वही मगही-भाषी बहुत परिश्रम करने के बाद भी शुद्ध हिन्दी बोलने का दावा नहीं कर सकता। इतना ही नहीं, साधारण शिक्षित मगहीभाषी, प्रयास के बाद भी शुद्ध हिन्दी बोलने में कठिनाई का अनुभव करते हैं।

इतना होने पर भी इस समय मगह-क्षेत्र में साहित्यिक माध्यम और राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी ही स्वीकृत है। परन्तु, मगहीभाषी जनता दैनिक जीवन के व्यवहारों में, अपने हर्ष-विषाद की अभिव्यक्तियो और उत्सवों एवं पर्वो में अपनी मातृभाषा मगही का ही व्यवहार करती है।

१२. मगही-भाषा और साहित्य के विकास की अवरोधक परिस्थितियाँ

बिहार की अन्य भाषाओ की भाँति मगही-भाषा में भी वर्त्तमान में मौलिक साहित्य सर्जन का कार्य चल रहा है और वह पर्याप्त वैविध्यपूर्ण एवं मगही-भाषा की

१. भारत का भाषा-सर्वेक्षण : डा० उदय नारायण तिवारी, पृ० २७४।

उत्कट साहित्यिक क्षमताओं का विज्ञापक प्रमाणित हो रहा है। पर, जब हम इसके प्राचीन साहित्य का अन्वेषण करते हैं, तब निराश होना पड़ता है। कम-से-कम वर्त्तमान स्थिति तो ऐसी ही है। भोजपुरी का लिखित साहित्य १५वीं शती के आसपास से मिलने लगता है।[1] मैथिली का साहित्य तो १४वीं शती से ही सिलसिलेवार रूप में प्राप्त होता है।[2] पर, मगही का नहीं। इसका कारण क्या हो सकता है? यहाँ तीन सम्भावनाएँ एक साथ उठती हैं—

१. मगही का साहित्यिक विकास अवरोधक परिस्थितियों के कारण नहीं के बराबर हुआ।

२. इसका लिखित साहित्य बाह्याक्रमणों से नष्ट-भ्रष्ट हो गया।

या

३. यह अभी तक कहीं प्रच्छन्न पड़ा है।

सत्य तो यह है कि वर्त्तमान में इसके लिखित साहित्य के अप्राप्य होने के पीछे ये तीनों ही सम्भावनाएँ वर्त्तमान हैं। इनपर हम बाद में विस्तार से विचार करेंगे। प्रथम इसकी पृष्ठभूमि के रूप में मगही के अभ्युदय-काल के पूर्व, समकालीन एवं बाद की धार्मिक सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों पर[3] एक विहंगम-दृष्टि डाल लेना उपादेय होगा।[4]

कहा जा चुका है कि मगही, मगध-क्षेत्र की भाषा है। प्राचीन काल में मगध-क्षेत्र में पटना और गया जिले के क्षेत्र शामिल थे।[5] भारत के यह पूर्वीय भाग में पड़ता था। ऋग्वेदकालीन आर्यों का कार्यक्षेत्र प्रमुखतया सिन्धुघाटी में ही रहा। अपने समय में वे विश्व के सर्वाधिक सभ्य मानवसमूह थे और प्रायः जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उन्होंने स्पृहणीय प्रगति की थी। सम्पूर्ण समाज को उन्होंने चार वर्णों में बाँट दिया था—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र। वर्णों की यह व्यवस्था 'कर्मणा' थी, 'जन्मना' नहीं। पर, बाद में इसमें रूढिवादिता ने घर कर लिया और वर्ण-व्यवस्था 'जन्मना' निर्धारित की जाने लगी। ब्राह्मण-पुत्र ब्राह्मण-धर्मों का पालन न कर भी स्वयं को अन्य वर्णों से श्रेष्ठ मानने लगा। इसके विपरीत, क्षत्रियों ने ब्राह्मण-कर्मों का सम्पादन कर 'ब्रह्मत्व-पद' का दावा करना शुरू किया, जिसने इन दोनों वर्णों के मध्य एक ऐसे संघर्ष को जन्म दिया, जो भारत के नवीन इतिहास-निर्माण का आधार बना।

भारतवर्ष में, आर्यों के आगमन के पूर्व, द्रविड़ तथा अन्य अनार्य जातियों का प्राधान्य था। आर्यों का प्रवेश उत्तर-पश्चिम के पहाड़ी भागों से इस देश में हुआ।

---

१. भोजपुरी के कवि और काव्य : श्रीदुर्गाशंकरप्रसाद सिंह।

२. **A History of Maithili Literaturo, Vol. I & II.**

३. देखिए, अधिक जानकारी के लिए, इसी ग्रन्थ में—'मगध : एक ऐतिहासिक पीठिका', पृ० ३।

४. यहाँ 'मगही-भाषा और साहित्य के विकास की अवरोधक परिस्थितियों' के क्रमबद्ध विवेचन के लिए ऐतिहासिक तथ्यों की पुनरावृत्ति के लिए बाध्य होना पड़ा है।—लेखिका

५. बौद्धधर्म और बिहार : पं० हवलदार त्रिपाठी 'सहृदय', पृ० ४।

उन्होंने सिन्धुघाटी में फैली अनार्य जातियों को खदेड़ना आरम्भ किया। इनमें कुछ ने तो दक्षिण भारत की पहाड़ी शृंखलाओं में शरण ली और कुछ ने देश के दलदल एवं जंगलों से भरे पूर्वी भाग में। चूँकि, देश के पूर्वी भाग में अनार्य जा बसे थे, इसलिए आर्यों ने उसे 'निषिद्ध देश' घोषित और किया और उसके निवासियों को घृणा के साथ देखना शुरू किया। मगध इन निषिद्ध प्रदेशों में सर्वप्रमुख था, कारण इसकी रत्नगर्भा वसुन्धरा पर बसकर अनार्य-संस्कृति काफी प्रबल हो उठी थी और वह संघर्ष होने पर कई बार आर्यों के दाँत खट्टे कर चुकी थी।

वेदों, ब्राह्मणों आदि ग्रन्थों के अध्ययन से पता चलता है कि पूर्वीय देशों को आर्य कितनी हेय दृष्टि से देखते थे।[1] ब्राह्मण-क्षत्रिय वर्णों के मध्य श्रेष्ठत्व के लिए संघर्ष बढ़ता ही जा रहा था।[2] ब्राह्मणों का प्रभुत्व विशेषतः उत्तर-पश्चिम भारत में ही था। वे पूर्वीय भागों की यात्रा न स्वयं करते थे और न दूसरों को करने देते थे। यात्रा करनेवालों को पुनः अपने संस्कारों को शुद्ध करना होता था। क्षत्रियों ने ब्राह्मणो के विरोध में, अपने प्रभुत्व का केन्द्र पूर्वी क्षेत्रों को ही बनाया, जो उस समय सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़ा था एवं जिसमें अंग-वंग-मगध के भू-भाग शामिल थे।[3] लिच्छवि-कुल के राजकुमार वर्द्धमान एवं शाक्यकुल के वंशप्रदीप गौतम का धार्मिक अभियान भी क्षत्रियों को ब्राह्मणो से श्रेष्ठतर प्रमाणित करने का ही एक शालीन प्रयास था। इस काल तक वैदिक वर्णाश्रम-व्यवस्था अपनी तात्त्विक गरिमा खो चुकी थी और जिस प्रकार ब्राह्मण अपने को जन्मना श्रेष्ठ समझने लगे थे, वैसे ही क्षत्रिय भी।[4] उन्होंने ब्राह्मणों को सम्मान देना छोड़ दिया था।[5] मगध में क्षत्रियों को पनपने का अच्छा अवसर मिला, कारण यह प्रदेश धनधान्य एवं प्राकृतिक सुषमा से परिपूर्ण था।[6]

बौद्धधर्म एवं जैनधर्म दोनों को ही, मगध के राजाओं ने प्राश्रय दिया और उनके व्यापक प्रचार-प्रसार में सोत्साह योगदान भी। एक तो मगध को प्रारम्भ से ही ब्राह्मणों ने हेय दृष्टि से देखना शुरू किया था, बाद में जब यहाँ के राजाओं ने बौद्ध-जैन-धर्मों को फलने-फूलने का अवसर दिया, तब इस प्रदेश के प्रति उनका घृणाभाव और बढ़ा। कारण, कर्मकाण्ड एवं हिंसावृत्ति के विरोधी तथा वेदों एवं ईश्वर को कोई मान्यता न देनेवाले, कर्मणा श्रेष्ठत्व के समर्थक इस बौद्धधर्म द्वारा, ब्राह्मण-धर्म पर जबरदस्त धक्का पहुँचता था। साथ ही, स्मरणीय है कि बौद्धधर्म को विश्वव्यापी विस्तार देनेवाला सम्राट अशोक मगध का ही शासक था।

बाद की कई शताब्दियों तक मगध-क्षेत्र बौद्ध धर्म एवं ब्राह्मण-धर्म की पारस्परिक

---

१. देखिए इसी ग्रन्थ मे 'मगध : एक ऐतिहासिक पीठिका', पृ० ३।

२. वही।

३. वौद्धधर्म और बिहार : पं० हवलदार त्रिपाठी 'सहृदय', पृ० ८।

४. वही, पृ० १०।

५. वह।

५. देखिए इसी ग्रन्थ में 'मगध : एक ऐतिहासिक पीठिका', पृ० ३।

प्रतिस्पर्द्धा की भूमि रहा। इस द्वन्द्व मे कभी बौद्धधर्म प्रभावशाली हो जाता और कभी ब्राह्मण-धर्म। बौद्धधर्म में क्रमशः विकृतियाँ आने लगीं। सातवीं-आठवीं शताब्दी तक वह वज्रयानी, नाथपन्थी आदि धार्मिक शाखाओं के रूप में अवशेष होने लगा था। वज्रयानी चौरासी सिद्धों द्वारा सर्जित साहित्य वर्त्तमान मगही के उद्‌भव और विकास के अध्ययन के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, इसकी चर्चा यथास्थान हो चुकी है।

मगही आदि भाषाओं के अभ्युदय के पूर्व की धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति पर उपर्युक्त पंक्तियों में अत्यन्त संक्षेप में विचार किया गया है। इसके साथ राजनीतिक स्थिति पर भी एक दृष्टि डाल लेना उपादेय होगा।

मगध की गद्दी पर महापद्मनन्द ३६६ ई० पूर्व बैठा था। बैठने के बाद उसने अनेक राजवंशों से संघर्ष कर, उन्हें पराजित किया। इस समय मगध-क्षेत्र में राजनीतिक शान्ति का प्रभाव था। यहाँ चाणक्य की सहायता से चन्द्रगुप्त ने राजकीय विद्रोह खड़ा किया। संघर्ष के बाद चन्द्रगुप्त मगध-सम्राट् हुआ। इसने भारत में प्रथम बार केन्द्रीय शासन व्यवस्था की स्थापना की। उसके बाद उनका पौत्र अशोक महान् प्रतापी सम्राट् हुआ। उसकी कलिंग-विजय ने मगध-क्षेत्र मे व्यापक रूप से बौद्धधर्म को फैलने का अवकाश दिया। इस समय कुछ महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाएँ घटीं, जिसने मगध की गौरव-वृद्धि के साथ ही शान्तिमयी स्थिति के आगमन में सहायता पहुँचाई। पर, यह शान्तिकाल चिरस्थायी न था। अशोक की अहिंसावादी नीति ने मौर्य-साम्राज्य की सैन्यशक्ति निर्बल कर दी। २१० ई० पू० मगध में सैनिक विद्रोह हो गया। इसका इतना व्यापक प्रभाव पड़ा कि सेनापति पुष्यमित्र मगध के राजसिंहासन पर आरूढ हो गया।

पुष्यमित्र के राज्यकाल में प्रायः उत्तर-पश्चिम से यवनों के हमले हो रहे थे। इसके बाद तो और भी विप्लव हुआ। शकों एवं हूणों के आक्रमणों ने मगध-साम्राज्य को छिन्न-भिन्न-सा कर दिया। एक राजवंश के बाद दूसरे राजवंश का मगध पर शासन हुआ।[1] राजवंशों का यह परिवर्त्तन हमेशा युद्धों एवं षड्यन्त्रों का आश्रय लेकर ही होता था। अतः, इस क्षेत्र की सतत वर्त्तमान राजनीतिक अशान्ति का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

उपर्युक्त राजवंशों के बाद मगध पर गुप्तवंशी राजाओं का शासन हुआ। समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त आदि के समय में राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि दृष्टियों से मगध का उत्कर्ष हुआ, परन्तु मगध के अधीनस्थ रजवाड़ों के विद्रोह और शकों-हूणों आदि के आक्रमणों ने मगध की शक्ति छिन्न-भिन्न कर दी। गुप्तवंश, जिसकी छत्रच्छाया में मगध गौरवशाली बना हुआ था, ८वीं शती के मध्य में सदा के लिए अस्त हो गया। फिर, मगध के भी गौरव के वे प्राचीन दिन नहीं लौटे।

उपर्युक्त परिस्थितियों को पृष्ठभूमि के रूप में रखते हुए, हम भाषा और साहित्य के विकास की परिस्थितियों का अवलोकन कर सकते हैं।

ह्वेनसांग के अनुसार ७वीं शती के मध्य में बिहार, बंगाल तथा पश्चिमी आसाम में

---

१. देखिए, इसी ग्रन्थ में 'मगध : एक ऐतिहासिक पीठिका', पृ० ३।

एक ही भाषा बोली जाती थी।[1] केवल आसाम में सम्भवतः ध्वनिरूपों में कुछ भिन्नता थी। मागधी-प्रसूत भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन से पता चलता है कि बँगला और आसामी व्यवहारतः एक ही भाषा है। बंगाली और आसामी से उड़िया-भाषा भी घनिष्ठ रूप में सम्बद्ध है। मैथिली तथा बँगला-आसामी-उड़िया में भी बहुत अंशों में साम्य है। यही बात मैथिली-मगही के भी सम्बन्ध में कही जा सकती है। इसका कारण यह है कि बंगाल, आसाम तथा उड़ीसा में ले जाई गई प्राकृत तथा अपभ्रंश बोलियाँ, अंग-मगध तथा मिथिला-क्षेत्र की ही थीं। कारण, अंग एवं मिथिला के क्षेत्र, जहाँ बंगाल से सटे हैं, वहाँ बंगाल ई० पूर्व चौथी शती में मगध-साम्राज्य का ही अंग था। कम-से-कम व्यापारिक सम्बन्धों से अवश्य बँधा था। पूर्व मौर्य तथा मौर्यकाल के सिक्के, जैसे मगध में मिलते हैं, वैसे ही दक्षिण-पश्चिम और पश्चिम-उत्तर बंगाल में, जो उपर्युक्त सम्बन्ध पर प्रकाश डालते हैं। अतः, बंगाल, आसाम तथा उड़ीसा मे आर्यभाषा का वहन करनेवाले लोग, बहुत सम्भव है, मगध के निवासी, राज्यकर्मचारी, सेना, ब्राह्मणगण, बौद्ध तथा जैन साधु, व्यापारी-वर्ग, कलाकार तथा भाग्य बनाने की धुन मे निकल पड़े साहसिक जन ही रहे होंगे। छठी शती तक अपभ्रंश को साहित्यिक मान्यता मिल चुकी थी एवं आठवीं शती तक उसके अवान्तर भेदों के विभेदक चिह्न स्पष्ट नहीं हुए थे।[2] ह्वेनसाग (७वीं शती का पूर्वार्द्ध) को बिहार, बंगाल तथा पश्चिम आसाम मे बोली जानेवाली जो एक ही भाषा मिली थी, उसका रहस्य यही था।

विद्वानों का अनुमान है कि लगभग ८वीं शती से ११वीं शती के बीच आधुनिक भारतीय भाषाओं ने अपना स्वतन्त्र रूप प्रकट कर दिया होगा। मागधी-प्रसूत भाषाओं ने भी स्वतन्त्र रूप से अधिकाधिक अपनी आवश्यकताओं की पूर्त्ति इसी समय की। वस्तुतः, यह वह काल था, जिसमें समस्त आर्यभारत मे भाषा-निर्माण की स्थिति छाई थी, जिसमे स्थैर्य का अभाव था। इस समय मगही, मैथिली, भोजपुरी, बँगला और आसामी भाषा अपने प्रारम्भिक रूपों का निर्माण एवं उसमें सन्तुलन स्थापित कर रही थीं। यह सही है कि उक्त काल में, उनकी स्वतन्त्र सत्ता की पूर्ण स्थापना नहीं हो पाई थी। परन्तु, उनके विकास की गति तीव्र थी। फिर, इस समय तक वे भाषाएँ पीछे मुड़कर मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा की ओर भी अपेक्षित साहाय्य के लिए देख लिया करती थीं।

पर, १४वीं शती की मैथिली (जो कि इसका प्राचीनतम नमूना है) की तुलना १४वीं शती की बँगला (जैसा कि 'श्रीकृष्णकीर्त्तन' में है) तथा १५वीं शती की उड़िया (जैसा कि पुरी के अभिलेखों में प्राप्य है) से करें, तो ज्ञात होगा कि इस समय तक ये भाषाएँ बहुत-कुछ भिन्न हो चुकी थीं और विकास की लगभग उस स्थिति तक पहुँच

१. **Origin & Development of Beng. Language, Introduction.**

२. काव्यों का भाषाधारित भेद-निरूपण करते हुए आचार्य भामह (छठी शती) ने अपभ्रंश काव्य-निर्देश किया, जो यह सूचित करता है कि छठी शती तक अपभ्रंश को साहित्यिक मान्यता मिल चुकी थी। इसके बाद आचार्य रुद्रट (८वीं शती) ने उक्त प्रसंग मे प्राकृत के अवान्तर भेदों के आधार पर काव्यभेद तो निरूपित किये है, पर अपभ्रंश के अवान्तर भेदों के आधार पर नही, जो उपर्युक्त मान्यता की पुष्टि करता है।

चुकी थीं, जिस स्थिति में ये वर्त्तमान में हैं। विकास के इस क्रम में उड़िया सबसे पीछे थी और बँगला सबसे आगे। मागधी की ज्येष्ठा पुत्री होने के कारण विकास की ये रेखाएँ, मगही के साहित्य-सर्जन में भी अवश्य स्पष्ट हुई होंगी, वैसे उनकी मात्रा जो भी रही हो। इसके गम्भीर अध्ययन के लिए, मगही का लिखित साहित्य आज हमें प्राप्त नहीं है, जो अपने महत्त्वपूर्ण रूपतत्त्वों को प्रकट किये बिना विनष्ट हो गया एवं थोड़े-बहुत अंशों में नेपाल तथा मगध-क्षेत्र के अन्तर्गत प्राप्य मठों, मन्दिरों एवं विहारों में अन्धकाराच्छन्न होकर पड़ा है।

मगही-साहित्य की लुप्त विकास-रेखाओं का अनुमान, थोथा अनुमान नहीं है। लिखित साहित्य तो मैथिली, भोजपुरी, बँगला, आसामी और उड़िया का भी १३–१४–१५वीं शताब्दियों से पूर्व का नहीं मिलता। अभिशप्त मगही का इस काल का साहित्य यदि प्राप्य नहीं है, तो विस्मय की बात ही क्या। वैसे इसके साथ गहरी खेदजनक स्थिति यह रही कि उपर्युक्त शताब्दियों के बाद का लिखित साहित्य भी इसे प्राप्त नहीं है। इसके पीछे कई एक कारण-समूह हैं, जिनकी संश्लिष्ट स्थिति को इन थोड़े से पृष्ठों में स्पष्ट नहीं किया जा सकता। वैदिक काल से ही मगध-क्षेत्र को, जिस धार्मिक उपेक्षा एवं सांस्कृतिक विगर्हणा का सामना करना पड़ा था, उसका संकेत प्रारम्भ में ही किया जा चुका है। आठवीं शती के मध्य तक यह राजनीतिक विद्रोहों एवं बाह्याक्रमणों का अखाड़ा बना रहा।

इसके बाद भी इस क्षेत्र में शान्ति नहीं रही, बल्कि इसकी स्थिति और दयनीय हो गई। 'अव्यवस्था के इस काल में मगध पर अनेक राजाओं ने आक्रमण किये।'[1] कन्नौजराज, यशोवर्मा, कश्मीरनरेश, मुक्तापीड, ललितादित्य एवं उसके प्रतापी पुत्र जयापीड आदि आक्रामक राजाओं में प्रमुख हैं। बाद, पालवंशी राजाओं का अभ्युदय हुआ, पर इन्होंने अपनी राजधानियाँ भिन्न-भिन्न स्थानों में बनाईं और मगध उपेक्षित-सा हो गया। पर, मगध का चरम दुर्भाग्य तो इसके बाद आनेवाला था। १२वीं शती के उत्तरार्द्ध में शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी ने भारत पर आक्रमण किया। उसके दुर्दान्त एवं बर्बर सेनापतियों में एक मुहम्मद-बिन-बख्तियार खिलजी था। उसने काशी से बढ़कर मगध पर आक्रमण किया। "मुहम्मद-बिन-बख्तियार को रोकने का प्रयत्न यदि किसी ने किया, तो वे उदन्त-पुर (बिहारशरीफ) के विहार में रहनेवाले भिक्खु थे। उदन्तपुर का यह विहार, उस समय बौद्धधर्म और शिक्षा का बड़ा केन्द्र था। वहाँ सैकड़ों स्थविर और भिक्खु निवास करते थे। वे अन्त तक अफगान-सेनापति से लड़ते रहे। जब सब भिक्खु कतल हो गये, तब मुहम्मद-बिन-बख्तियार ने उदन्तपुर के विहार पर कब्जा कर लिया। वहाँ उसे पुस्तकों के अनन्त भाण्डार के सिवा और कोई मूल्यवान् वस्तु नहीं मिली। कहा जाता है, उसकी आज्ञा से सदियों के ज्ञान और विद्या का यह अपूर्व भाण्डार अग्नि को अर्पित हो गया।"[2]

वर्त्तमान में मैथिली-भोजपुरी की अधिकांश सामग्री मठों एवं मन्दिरों से ही प्राप्त हुई है। कारण, इनमें ज्ञानोपासना करनेवाले विद्वान् ही इनके सर्जक-संरक्षक थे। जैसा कि ऊपर

१. पाटलिपुत्र की कथा : डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार पृ० ५६८।

२. वही, पृ० ६०२।

दिखाया जा चुका है, १३वीं शती के बहुत पूर्व ही मैथिली-मगही आदि भाषाओं ने अपनी स्वतन्त्र सत्ता का विकास कर लिया था और वे मागधी-प्रसूत बोलियाँ-मात्र नहीं रह गई थी, बल्कि उनका अपना सुनिश्चित साहित्य भी सर्जित हो चुका था। मगही का इस काल का साहित्य उदन्तपुर के महाविहार एवं वैसे ही अन्य शिक्षा-संस्थानों में ही संचित रहा होगा कि वह अनभ्र वज्रपात हुआ। वह आग उदन्तपुर के महाविहार के पुस्तकालय में नहीं लगाई गई थी, मगही-भाषा की कोख में लगाई गई थी, जिसकी साहित्य-सन्तति को अपेक्षित अवसर पर, शिक्षित जगत् के लिए ज्ञान विकीर्ण करने के पूर्व ही दहकती लपटों में झोंक दिया गया। तेरहवीं शती पूर्व के मगही-साहित्य के न मिलने का मूल रहस्य यही है। इतना ही नहीं, "इस समय बहुत-से पण्डित मगध से भागकर उत्तर में नेपाल और तिब्बत की ओर चले गये और बहुतो ने सुदूर दक्षिण में जाकर आश्रय लिया, जहाँ अभी तक मुसल्मानों के आक्रमणों का कोई भय नहीं था। यही कारण है कि इस समय संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंश के बहुत-से प्राचीन ग्रन्थ नेपाल, तिब्बत, चीन और सुदूर दक्षिण में मिलते हैं, पर उत्तरी भारत में उनका सर्वथा लोप हो गया।"[1]

इस अतुलनीय बर्बरता ने मगही के साहित्यिक क्षेत्र में, जिस अराजकता का सूत्र-पात किया होगा, उसकी कल्पना सहज ही की जा सकती है। बाद की कई शताब्दियों में तुर्क-अफगान एवं मुसलमानों के शासनकाल में दिल्ली ही राजधानी बनाई जाती रही। मगध-क्षेत्र उपेक्षित हो गया। शेरशाह, जिसकी मृत्यु सन् १५५५ ई० में हुई थी, के समय इसकी कुछ प्रगति अवश्य हुई, पर पुराने गौरव की तुलना में वह नगण्य थी। फिर, मुस्लिम-संस्कृति के प्रवाह ने इसकी रही-सही सास्कृतिक परम्परा भी छिन्न-भिन्न कर दी। सम्पूर्ण मगध-क्षेत्र पर उर्दू का बोलबाला हो गया। राजनीति की क्रीडाभूमि मे ऐसा होना स्वाभाविक था। उर्दू का यह प्रभुत्व कितना प्रभावशाली था, इसका अनुमान इसीसे किया जा सकता है कि 'अंग' की संज्ञा 'बिहार' हो गई, पाटलिपुत्र की 'पटना' और उन्दतपुरी की 'बिहारशरीफ'। इस काल में राजनीतिक अशान्ति के कारण, प्रारम्भ में मगही-साहित्य को खुलकर विकसित होने का मौका न मिला एवं अधिकाश साहित्यसेवियों, जिनमें प्रायः पश्चिम के ब्राह्मण, कायस्थादि थे, ने राज्याश्रय एवं पुरस्कारादि के प्रलोभन में आकर उर्दू एवं व्रजभाषा में काव्य-रचना शुरू कर दी। कारण, मुसलमानी दरबारों में इन्हीं दोनों की पूछ थी। प्रमाण मे हिन्दी का समस्त रीतिकाव्य ही देखा जा सकता है। उपर्युक्त परिस्थितियों में, मगही-भाषाक्षेत्र मे महान् साहित्यिक व्यक्तित्व भी नहीं खड़ा हो सका, इसलिए वह केन्द्र नहीं बन सका, जिसकी चारों ओर साहित्यिक विकास की परम्परा कायम हो सके।

सामान्य जनता स्वभावतः रूक्ष एवं सांस्कृतिक विकास के प्रति अनुत्साहपूर्ण हो चली थी। मगह-क्षेत्र के ब्राह्मण तथा कायस्थादि प्रशिक्षित जनसमुदाय ने पुरानी गरिमा से संन्यास लेकर स्वयं को कृषि-कर्म आदि में नियोजित कर दिया था। मगही की कोई पूछ थी नहीं और जहाँतक संस्कृत, उर्दू या व्रजभाषा की शरण में जाने का प्रश्न था,

१, डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार : पाटलिपुत्र की कथा, पृ० ६१७।

मगही के साहित्यिक विकास का उनसे कोई सीधा सम्बन्ध नहीं था। परिणाम यह हुआ कि मगही का साहित्यिक विकास मुसलमान-काल मे पूर्णतः अवरुद्ध हो गया। वह दैनन्दिन व्यवहार की भाषा के रूप में ही फलती-फूलती रही। इससे एक लाभ भी हुआ। वह यह कि इसके लोक-साहित्य का भाण्डार काफी समृद्ध हो गया, जो परिमाण में किसी भी भाषा के लोक-साहित्य से आगे निकल जा सकता है। विशेष कर मगही की लोककथाएँ बड़े ही उच्च स्तर की हैं और उनमें साहित्यिक गरिमा की भी झलक मिलती है। इसके काव्य-साहित्य का स्तर कितना समुन्नत हो गया था, इसका अनुमान निम्नांकित पद्य-सन्दर्भ से हो सकेगा—

साधो लोक से पराइ, गुनगाइ गाइ बहुरी न आवइ एना।
ककरे बले विपया में, लग्गइ पेसल मनमा।
कउन जे ढुलकावे, उत्तम जोड़ी में परनमा।
ककरे बले अंकुरइ, कंठ में बचनमा।
कउन देव देलक मोरा कान आउ नयनमा।
कनमों के कान साधो, मनमों के मनमा।
वचनों के वाक से, उ परनमों परनमा।
अँखियों के आँख, भिन्न-भिन्न रूप धारी।
ओकरे प्रतापे ओही में रहें सनचारी।
साधो, ओकरे दरस ओट टारी जीवन; मुकुती पावइ एना।

रे प्यारे! लोक से परे उस सर्वेश्वर के गुण गाओ, क्या जाने, फिर आना पड़े, या नहीं। अच्छा, वह कौन है, जो कामनाओं में मन को नियोजित कर देता है? दम्पति-युगल में कौन प्राणों का संचार करता है। किसकी प्रेरणा से कण्ठ से बोल फूटते हैं। किसके दिये हुए हमलोगों के कान और नयन हैं। कौन कानों का कान है और मन का भी मन है। कौन वचनों का भी वचन हैं और प्राणों का भी प्राण है। कौन आँखों की आँख है और भिन्न-भिन्न रूप धारण करनेवाला भी है। किसके प्रताप से सब एक नियम से काम करते रहते हैं।

स्पष्ट है कि ऊपर की पंक्तियों पर केनोपनिषद् के मन्त्रों का प्रभाव छाया हुआ है—

केनेषितं पतति प्रेषितं मनः
केनः प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः।
केनेषितां वाचमिमां वदन्ति
चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति।
श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्,
वाचो ह वाच ँ स उ प्राणस्य प्राणः।
चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः
प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति॥

—केनोपनिषद्, खण्ड १, मं० १-२।

खेद है, इस तरह की सारी सामग्री विलुप्त हो गई। कुछ है भी, तो मठों एवं विहारों में अन्धकार-सेवन कर रही है। तेरहवी शती के बाद का लिखित मगही-साहित्य क्यों नहीं मिलता, इसका कारण उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है। इसके समर्थन में कुछ और बातें लक्षित होती हैं। यथा—

१. ब्रिटिश-शासनकाल में भी मगध-क्षेत्र में शान्तिपूर्ण स्थिति कायम न हो सकी। जबतक ईस्ट इण्डिया कम्पनी का बोलबाला रहा, पटना युद्धभूमि बना रहा। सिराजुद्दौला के शासनकाल मे मीरजाफर के लड़के मीरन को साथ लेकर अँगरेजो ने पटना पर आक्रमण किया। सन् १७६१ ई० की २५ जून को अँगरेज सेनानायक एलिस ने इसपर पुनः आक्रमण किया और उसकी सेनाओं ने इसे खूब लूटा। सन् १७६२ ई० मे पटना पर आक्रमण फिर से दुहराया गया। सन् १७६२ ई० में भयंकर सूखा पड़ा, जिसके फलस्वरूप बंगाल-बिहार दोनों मे भीषण अकाल पड़ा। कहते हैं, उस समय भुखमरी के कारण पटना में प्रतिदिन १५० व्यक्ति मर रहे थे। पटना का स्पष्ट विवरण इसलिए दिया जा रहा है कि उसपर होनेवाले आक्रमणो से केवल वही नहीं प्रभावित होता था, अपितु समस्त मगह-क्षेत्र प्रभावित होता था, प्रभाव की मात्रा में स्थानानुसार भिन्नता जो भी हो। अशान्ति एवं अरक्षणीयता के इस काल मे जब कि उर्दू, ब्रजभाषा एवं क्रमशः फैलती अँगरेजी का बोलबाला था, मगही का साहित्यिक विकास सम्भव था या नही, यह विचारणीय विषय है। वारन हेस्टिंग्स के शासनकाल में इस क्षेत्र का और ह्रास होता गया। बाद मे सन् १८५७ ई० के गदर की लपटों में देश के जो-जो भाग सर्वाधिक उत्पीडित किये गये, उनमें पटना भी एक था। इसके बाद भी यहाँ राजनीतिक अशान्ति बनी ही रही।

२. सरसरी निगाह से देखने पर पता चलेगा कि मगही को राज्याश्रय कभी नही मिला। आठवीं शती तक यहाँ प्रभावशाली राजवंशो की परम्परा थी, पर उस समय इन भाषाओं का स्वरूप भी स्पष्ट नही हुआ था। बाद मे कुछ राजवंशों का उदय अवश्य हुआ, पर उनका स्थायित्व-काल क्षणिक था एवं राज्याश्रय संस्कृत को मिला हुआ था। मगह-क्षेत्र के संस्कृत-पण्डितों ने अपनी मातृभाषा की उपेक्षा-सी की और समय की माँग के अनुसार, अवधी, ब्रजभाषा आदि को ही अपनाया। मुसलमान-काल मे राज्याश्रय उर्दू को मिला एवं ब्रिटिश-काल मे प्रभुत्व अँगरेजी का रहा। राज्याश्रय न मिलने से जहाँ मगही दैनन्दिन वाग्व्यवहार तक ही सीमित रह गई, वहाँ इसमें साहित्य-सर्जन को भी प्रोत्साहन नहीं मिल सका। पुनश्च, राज्याश्रय किसी भाषा को तभी मिलता है, जब सम्बद्ध राजा भाषा-विशेष में अभिरुचि लेता हो। पर, मगध-क्षेत्र के शासकों में ऐसा एक भी राजा नहीं दीखता।

३. बाह्याक्रमणों के सातत्य ने इस क्षेत्र के जातीय संगठन को छिन्न-भिन्न कर दिया और राजनीतिक उथल-पुथल के अनुसार, यह हमेशा आवागमन की भूमि बना रहा। इस स्थिति को व्यापक रूप देने में, इस क्षेत्र के व्यापारिक उत्कर्ष ने भी सहायता पहुँचाई। आज भी इस क्षेत्र के निवासियों में जो जातीय संगठन का अभाव दीखता है, उसका मूल कारण यही है।

४. मगध-क्षेत्र की अराजकता ने मगध-क्षेत्र को यहाँ के संस्कृतज्ञ पण्डितों के लिए

भयप्रद स्थान बना दिया और वे या तो उत्तर में नेपाल की ओर चले गये या फिर सुदूर दक्षिण की ओर। इससे मगही के पक्ष में बड़ा घाटा हुआ। उसके साहित्य-सर्जन को संस्कृत का सबल आधार न मिल सका, जो अन्य मैथिली आदि भाषाओं को मिलता रहा।

उपर्युक्त विवेचन के सन्दर्भ में मैथिली एवं भोजपुरी भाषाओं को देखने पर उनके सौभाग्य की सराहना करनी पड़ती है। मैथिली का यह सौभाग्य रहा कि बहुत प्रारम्भ में उसे विद्यापति ठाकुर जैसा श्रेष्ठ कवि मिल गया, जिनकी रचनाएँ ग्रन्थाकार रूप मे कम एवं लोककण्ठ में ज्यादा संरक्षित रहीं, कारण उनके बाद हुए कई एक प्रमुख साहित्यकारों का कोई साहित्य मैथिलीभाषियों को उपलब्ध नहीं है। विद्यापति संस्कृत के निष्णात पण्डित थे एव संस्कृत-साहित्य की सम्पूर्ण परम्पराओं तथा उपलब्धियों से भी परिचित थे। उनकी कई रचनाएँ संस्कृत में भी हैं। पर, इतना होने पर भी उनमें अपनी मातृभाषा के प्रति सहज अनुराग था, जिसका अभाव मगध-क्षेत्र के संस्कृत-पण्डितों में दीखता है। वैसे यह आरोप मगध के विप्लव के अन्धकार-धूम में धूमिल पड़ जाता है। शायद अन्य भाषाओं के महान् कवियों की भी वही दुर्दशा होती, जो मगध-क्षेत्र के पण्डितों की हुई—यदि वे मगध-क्षेत्र में हुए होते।

पुनश्च, मैथिली की प्रसव-भूमि, गंगा के उस पार व्यवस्थित मिथिला की स्थिति मगध-क्षेत्र से पर्याप्त भिन्न थी। मगध एवं बंगाल की विजय के बाद भी इसने अपनी स्वतन्त्रता कायम रखी। तुर्की आक्रमण की पहली बाढ़ से भी मैथिली-क्षेत्र अप्रभावित ही रहा, जिससे उसका प्राचीन वैभव सुरक्षित रह गया। मुसलमानी आक्रमणों द्वारा देशी राजाओं की विजय के बाद भी न तो वहाँ के शैक्षणिक संस्थानों को ही ध्वस्त किया गया, न मन्दिर ही तोड़े गये और न विद्वानों को ही कत्ल किया गया। मैथिल विद्वान् अपनी संस्कृत-सम्बन्धी प्रौढ विद्वत्ता के लिए प्रसिद्ध हैं। पर, इसके साथ ही अपनी मातृभाषा के लिए उनके हृदय में अपार अनुराग संचित है। इस परम्परा को वे अभी तक निबाहते जा रहे हैं।[1]

पर, मैथिली के विकास में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण योग, इस प्रदेश पर शासन करने-वाले राजाओं ने किया। प्रायः वे संस्कृत के भी ज्ञाता होते थे, एवं मैथिली की रचनाओं के स्पृहणीय आस्वादक भी। मैथिली को उन्होंने उन अर्थों में राज्याश्रय दिया, जिन अर्थों में संस्कृत को प्राप्त था। यानी, मैथिली उनके शासनकाल में दैनन्दिन वाग्व्यवहार या साहित्य-सर्जन के माध्यम तक ही सीमित न रही, बल्कि इसका उपयोग राजकीय कार्यों में होने लगा। प्रायः मैथिली में शासकवर्ग सगर्व वार्त्तालाप करते। उन्होंने जिन मैथिल-कवियों को राज्याश्रय में फलने-फूलने का अवसर दिया, उनकी एक लम्बी तालिका प्रस्तुत की जा सकती है।

आदि महाकवि विद्यापति ठाकुर को ही करीब आठ राजाओं की छत्रच्छाया प्राप्त थी। ये हैं—सर्वश्री कीर्त्तिसिंह, देवसिंह, शिवसिंह, हरिसिंह, पद्मसिंह, विश्वासदेवी, धीरसिंह एवं भैरवसिंह।[2] अन्य कवियों को भी सदा राज्याश्रय मिलता रहा।

१. संस्कृत के आधुनिक सुप्रसिद्ध कवि, कविशेखर पं० बदरीनाथ झा ने संस्कृत में जहाँ 'राधापरिणय-महाकाव्यम्' लिखा है, वहाँ मैथिली में 'एकावलीपरिणय महाकाव्य'।

२. मैथिली साहित्यक इतिहास : प्रोफेसर श्रीकृष्णकान्त मिश्र।

आधुनिक-मैथिली साहित्य के पोषण में दरभंगा-नरेशों की परम्परा का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। श्रीरमेश्वर सिंह, श्रीलक्ष्मीश्वर सिंह एवं श्रीकामेश्वर सिंह—इन तीनों ही ने मैथिली-साहित्य के विकास में अविस्मरणीय योगदान दिया है। इनकी संरक्षकता में मैथिली-साहित्य-विकास को बल देनेवाले कतिपय महत्त्वपूर्ण विद्वानों एवं साहित्यसेवियों के नाम हैं—सर्वश्री म० म० पं० परमेश्वर झा, चन्दा झा, विन्ध्यनाथ झा, चेतनाथ झा, सर गंगानाथ झा आदि।

इस दृष्टि से भोजपुरी इतनी सौभाग्यशालिनी नहीं है; पर मगही की तुलना में उसका भाग्य अच्छा रहा। भोजपुरी-क्षेत्र आक्रमणों से प्रभावित हुआ भी, पर मगध-क्षेत्र की तरह तबाह नहीं हुआ। फिर, इस भाषा के कई कवियों को राजकीय संरक्षण भी मिला। यथा—

खड्गबहादुर मल्ल : मझौली (गोरखपुर) महाराज की छत्रच्छाया में।
हरिहरप्रसाद सिंह : शाहाबाद जिले के महाराज की छत्रच्छाया में।
रामचरित्र तिवारी : डुमराँव महाराज के दरबारी कवि।
सैयद अली मुहम्मद 'शाह' : बादशाही खानदान के आदमी।
(सरकार से खाँ बहादुर का खिताब)

स्पष्ट है, मगही को उपर्युक्त दोनो भाषाओं की तरह राजकीय संरक्षण नहीं मिला और न वे अनुकूल परिस्थितियाँ ही मिलीं, जिनमें किसी भाषा के साहित्य का अप्रतिहत गति से विकास होता है। इसके बाद संस्कृत-उर्दू-व्रजभाषा एवं अँगरेजी के राजकीय सम्मान ने मगही को ऊपर उठने का अवसर ही न दिया। फिर, राज्यविद्रोह एवं बाह्याक्रमणों के कारण उसके पोषक पण्डितों एवं साहित्यकारों की परम्परा बराबर छिन्न-भिन्न होती रही। इसका व्यापक निदर्शन उपर्युक्त पंक्तियों में हो चुका है। परिमाणतः, मगही, लोक-साहित्य की अपरिसीम समृद्धि के कारण, जहाँ एक स्पृहणीय भाषा हो गई, वहाँ शिष्ट साहित्य की दृष्टि से अत्यन्त दुर्बल, जिसे प्रकृति-प्रदत्त अभिशाप ही कहा जा सकता है।

फिर भी, वर्त्तमान में मगह-क्षेत्र में साहित्य-निर्माण-सम्बन्धी पर्याप्त जागरण दिखाई दे रहा है (देखिए इसी ग्रन्थ में साहित्य-खण्ड)। मगह-क्षेत्र के विद्वान् मगही-भाषा एवं साहित्य के अनुसन्धान, संचयन, शोध एवं सम्पादन के कार्य में उत्साह दिखा रहे हैं। बहुत सम्भव है कि इस प्रयास से मगही-साहित्य के प्रच्छन्न भाण्डार को प्रकाश में लाया जा सके एवं विकास की टूटी श्रृंखलाएँ जोड़ी जा सकें।

द्वितीय अध्याय

आधुनिक मगही-भाषा का सर्वेक्षण

मगही-भाषा की सीमाएँ

मगही की उत्तरी सीमा पर गंगा के उस पार तिरहुत में विभिन्न रूपों में मैथिली बोली जाती है। इसकी पश्चिमी सीमा पर, शाहाबाद और पलामू में भोजपुरी बोली जाती है। उत्तर-पूर्वी सीमा पर मुँगेर, भागलपुर और सन्तालपरगना में 'छिका-छिकी' मैथिली[1] बोली जाती है। दक्षिण-पूर्वी सीमा पर मानभूम[2] और पूर्वी सिंहभूम में बँगला बोली जाती है। मगही की दक्षिणी सीमा पर राँची में 'सदानी' भोजपुरी बोली जाती है।

उपर्युक्त सीमाओं के अन्तर्गत आये हुए क्षेत्र में मगही अपने विशुद्ध रूप में बोली जाती है, जिसको **आदर्श मगही** की संज्ञा दी गई है।

मगही का विस्तार 'आदर्श मगही' के उपर्युक्त क्षेत्र की सीमाओं के बाहर भी है। परन्तु अन्य भाषाओं, जैसे बँगला, उड़िया के सम्पर्क में आने के कारण इन अतिरिक्त स्थानों में बोली जानेवाली आदर्श मगही के विशुद्ध स्वरूप में स्थानीय विशेषताएँ आ गई हैं। आदर्श मगही के इन किंचित् परिवर्त्तित रूपों को 'पूर्वी मगही' की एक व्यापक संज्ञा दी गई है।

पूर्वी मगही का कोई शृंखलित क्षेत्र नहीं है, इसलिए इसकी सीमाओं का निर्धारण सम्भव नहीं है।

आदर्श मगही अपनी अन्य सीमाओं पर विविध भगिनी-भाषाओं, जैसे भोजपुरी, मैथिली आदि से मिलकर अपने विशुद्ध रूप को खो बैठी है। मगही और इन भगिनी भाषाओं के मिश्रण के परिणामस्वरूप कई एक सीमावर्त्ती बोलियाँ निकल आई हैं, जिन्हें 'मिश्रित मगही' की एक व्यापक संज्ञा दी जा सकती है।

मगही-भाषाक्षेत्र

आदर्श मगही : आदर्श मगही का क्षेत्र प्राचीन मगध-प्रदेश[3] तक ही सीमित नहीं है। प्राचीन मगध-प्रदेश का विस्तार वर्त्तमान पटना जिला और गया जिला के उत्तरार्द्ध तक ही था। परन्तु, आदर्श मगही का क्षेत्र इससे कहीं अधिक विस्तृत है। आदर्श मगही

---

१. 'छिका-छिकी मैथिली' दक्षिणी भागलपुर, उत्तरी सन्तालपरगना और गंगा के किनारे-किनारे दक्षिणी मुँगेर में बोली जाती है। 'छिका-छिकी' मैथिली पर मगही का बहुत प्रभाव है। इसी कारण आदर्श मैथिली से इसमें बहुत अन्तर है।

—डॉ० उ० ना० ति० : भोज० भा० और सा०, पृ० २०५।

२. आधुनिक धनबाद और पुरुलिया।

३. दे० मगध : ऐतिहासिक पीठिका।

प्राचीन मगध-प्रदेश के अतिरिक्त दक्षिण की ओर गया जिला के शेषांश और हजारीबाग में भी बोली जाती है। पश्चिम में पलामू जिले के उत्तर-पूर्व में भी, जहाँ पलामू जिला की सीमा गया और हजारीबाग से मिलती है, यह बोली जाती है।[1] पूर्व में गंगा के दक्षिण में स्थित मुँगेर[2] के हिस्से के पश्चिमी भाग में और भागलपुर[3] के दक्षिण-पश्चिम कोने के एक छोटे हिस्से में भी आदर्श मगही बोली जाती है। पटना जिले के उत्तर की ओर गंगा नदी की प्राकृतिक सीमा ही मगही की सीमा है। बिहार में गंगा के उत्तरी भाग को उत्तर बिहार

---

१. **पलामू जिले** की भाषा का सर्वेक्षण निम्नांकित है—

(क) पलामू का वह हिस्सा, जो गया से सटा है, आदर्श मगही बोलता है। यथा—जपला, हरिहरगंज थाना, जमुआ, गढ़गाँव।

(ख) पलामू का वह हिस्सा, जो हजारीबाग और राँची से सटा है, आदर्श मगही बोलता है। जैसे—लतेहार, चँदवा, चकला, शेरगढ, दाहाँ, बालूमठ। यहाँ के आदिवासी अपनी भाषा बोलते हैं।

(ग) पलामू का शेषांश मिश्रित मगही बोलता है। यथा—

अ. विश्रामपुर, छतरपुर, पाटन, पाँकी, लेसलीगंज थानों में मगही और भोजपुरी-मिश्रित भाषा बोली जाती है। यहाँ मगही-प्रभाव अधिक मिलता है।

आ. डाल्टेनगंज की मिश्रित मगही में मगही-भोजपुरी दोनों मिलती है। यहाँ भी मगही का प्रभाव अधिक है।

इ. भवनाथपुर, गढवा, मझियाँवा—इन तीन थानों में भोजपुरी का प्रभाव अधिक है, मगही का कम।

(घ) पलामू की एक सीमा मध्यप्रदेश भी है। गढवा से जैसे ही हम दक्षिण-पश्चिम की ओर बढते हैं, मगही-भोजपुरी का प्रभाव कम होता चला जाता है और मध्यप्रदेश की भाषा का प्रभाव बढ़ता जाता है। ऐसे क्षेत्र रनका, रनपुरा और भण्डरिया थाना है।

पलामू के भाषा-सर्वेक्षण के आधार कहा जा सकता है कि यहाँ के अधिकांश निवासी मगही-भोजपुरी-मिश्रित भाषा बोलते हैं। इनपर आदिवासी प्रभाव भी स्पष्ट लक्षित होता है।

—अपने व्यक्तिगत सर्वेक्षण के आधार पर।

२. **मुँगेर जिले** की भाषा का सर्वेक्षण निम्नांकित है—

(क) किउल नदी के दक्षिण-पश्चिम पूरा मगही क्षेत्र है।

(ख) कजरा से आगे उत्तर की ओर बढने पर कुछ-कुछ मैथिली प्रभाव मिलने लगता है। गंगा के दक्षिण मुँगेर में मगही पर मैथिली का प्रभाव क्रमशः बढ़ता चला जाता है। फिर भी, मगही की ही प्रधानता है। गंगा पार उत्तरी मुँगेर के भागों पर भी मगही का प्रभाव देखने को मिलता है। जैसे—बेगूसराय और खगड़िया।

(ग) दक्षिणी मुँगेर के हिस्से में भी मगही-मैथिली का मिश्रण मिलता है। जैसे—जमालपुर, खडगपुर, तारापुर, चकाई, झाझा और गिद्धौर।

दक्षिणी मुँगेर में जहाँ-कहीं भी मैथिली का मिश्रण है, वहाँ मगही का प्रभाव ही अधिक है। उत्तरी मुँगेर में क्रमशः मैथिली का प्रभाव बढ़ता जाता है और मगही का कम होता जाता है।

३. **भागलपुर** का भाषा-सर्वेक्षण निम्नांकित है—

(क) भागलपुर के दक्षिण-पश्चिम कोने के एक छोटे हिस्से में आदर्श मगही बोली जाती है। जैसे—चन्दा, भलुआ और जमदाहा।

(ख) गंगा के दक्षिण भागलपुर के हिस्से में मिश्रित मगही बोली जाती है।

और दक्षिणी भाग को दक्षिण बिहार कहते हैं। इस दृष्टि से, मगही दक्षिण बिहार की बोली है। उपर्युक्त सम्पूर्ण क्षेत्र में इस बोली का लगभग एक ही रूप है, जिसमें स्थानीय भिन्नताएँ नहीं के बराबर हैं। इसीलिए, इस सम्पूर्ण क्षेत्र में बोली जानेवाली मगही की प्रचलित संज्ञा 'आदर्श मगही' है।

आदर्श मगही राँची, सिंहभूम, सरायकेला और खरसावाँ के कुछ हिस्सों में भी बोली जाती है। यह राँची जिले के दक्षिण हिस्से तक फैलती चली गई है। यह राँची जिले के दक्षिण-पूर्व-स्थित सिंहभूम जिले के उत्तरी हिस्से सरायकेला और खरसावाँ में उड़िया के साथ-साथ बोली जाती है। सिंहभूम जिला का धालभूम भी इसका क्षेत्र है।

हजारीबाग और राँची जिले के पूर्व में स्थित मानभूम जिले के सदर सबडिवीजन में भी इसका विस्तार है। पुरुलिया (मानभूम) भी इसके क्षेत्र में पड़ता है। इस ओर यह बँगला के साथ-साथ बोली जाती है।

गया के दक्षिण और दक्षिण-पूर्व में पठार की ओर बढ़ते हुए हजारीबाग जिला मिलता है। यहाँ भी गया की ही भाषा बोली जाती है, जो मगही है। परन्तु, इस जिले में जो मुण्डा और द्रविड जातियों के लोग हैं, वे अपनी-अपनी भाषाएँ बोलते हैं। हजारीबाग के पश्चिम में पलामू जिला है। उसकी पूर्वी सीमा पर मगही बोली जाती है।

दक्षिण में हजारीबाग जिला राँची जिले के छोटानागपुर पठार से निकलनेवाली 'दमुदा' और इसकी सहायक नदियों से विभाजित है। छोटानागपुर पठार के इस हिस्से की बोली मगही नहीं है, बल्कि भोजपुरी का एक रूप है। यद्यपि इस क्षेत्र के उत्तर में मगही उन लोगों के द्वारा बोली जाती है, जो हजारीबाग से आकर बसे हैं। सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि छोटानागपुर के इन दो पठारों में उत्तर पठार या हजारीबाग पठार की भाषा मगही है तथा दक्षिण पठार या राँची पठार की भाषा भोजपुरी।

राँची की दक्षिणी सीमा से आदर्श मगही 'पूर्वी मगही' के रूप में राँची पठार के पूर्वी किनारे-किनारे बँगला-भाषाभाषी मानभूम जिले के बीच से होकर गुजरती है। अन्त में यह पश्चिम की ओर मुड़ती है और उसी पठार के दक्षिणी किनारे के नीचे-नीचे उड़िया-भाषी सिंहभूम जिले के उत्तर में फिर आदर्श मगही के रूप में प्रकट होती है। इस तरह स्पष्ट है कि मगही-भाषी जनता की एक मेखला (Belt) राँची पठार को उत्तर, पूर्व और दक्षिण—तीनों ओर से घेरे हुई है।

पूर्वी मगही : 'पूर्वी मगही' का कोई *शृंखलित* क्षेत्र नहीं है। वैसे यह बोली हजारीबाग के दक्षिण-पूर्व भाग, मानभूम, राँची जिले के दक्षिण-पूर्व भाग, खरसावाँ और दक्षिण में मयूरभंज तथा बामरा तक बोली जाती है। दूसरे भाषा-क्षेत्र में अवस्थित मालदा जिला के पश्चिम भाग में भी पूर्वी मगही बोली जाती है।

पूर्वी मगही का विस्तार

पहले कहा जा चुका है कि खरसावाँ में आदर्श मगही भी बोली जाती है। इस तरह यह स्पष्ट है कि खरसावाँ में आदर्श मगही और पूर्वी मगही दोनों प्रचलित हैं। प्राप्य विभिन्नता स्थान के कारण नहीं, जाति के कारण है। अन्य भाषाओं से पूरी तरह घिरे

रहने के कारण पूर्वी मगही बोलनेवाले विभिन्न स्थानों को पूर्वी मगही का क्षेत्र न कहकर, गढ़ (Enclaves) कहना समुचित होगा।

राँची पठार से सटे राँची जिले के पूर्वी छोर पर मानभूम से लगे उपपठार में सिली, वरण्ड, रहे, बुन्डु और तमर नाम के पाँच परगने हैं। इनमें पूर्वी मगही बोली जाती है। अन्य भाषाओं से पूरी तरह घिरे रहने के कारण इसको राँची उपपठार के पाँच परगनों का 'गढ़' कहा जा सकता है। इस गढ़ के अतिरिक्त पूर्वी मगही के तीन और गढ़ हैं—मयूरभंज का गढ़, बामरा का गढ़ और मालदा का गढ़। कुल मिलाकर, पूर्वी मगही के चार गढ़ माने जा सकते हैं।

राँची के गढ़ में बोली जानेवाली पूर्वी मगही की संज्ञा 'पँचपरगनिया' या 'तमरिया' है। मयूरभंज के गढ़ मे इसकी संज्ञा 'कुरमाली' और बामरा के गढ़ में 'सद्रीकोल' है। मालदा के गढ़ (पश्चिमी मालदा) में इसकी संज्ञा 'खोण्टाइ' है।

राँची का गढ़ आदिवासियों की बोलियों से, मयूरभंज और बामरा का गढ़ उड़िया से और मालदा का गढ़ उत्तर और पश्चिम मे मैथिली से एवं पूर्व तथा दक्षिण में बँगला से घिरा है।

मानभूम तथा धालभूम की भाषा-विवेचना

ऊपर कहा जा चुका है कि मानभूम में पूर्वी मगही बोली जाती है। सन् १९५१ ई० की जनगणना[1] के अध्ययन से पता चलता है कि मानभूम का 'चास थाना' प्रधानतः बिहारी भाषा-भाषी है; क्योंकि इसकी अधिकाश जनसंख्या ने अपनी मातृभाषा हिन्दी लिखाई है। रघुनाथपुर, कासीपुर और पारा के थानों की ३०% जनसंख्या ने अपने को हिन्दी-भाषाभाषी घोषित किया है और लगभग ५०% जनसंख्या ने अपने को बँगला-भाषाभाषी लिखाया है। मानबाजार और बाराभूम की ४२% प्रतिशत जनसंख्या ने अपनी भाषा को बँगला घोषित किया है। ३०% से भी कम जनसंख्या ने हिन्दी को और शेष जनसंख्या से सन्ताली एवं अन्य जातीय (Tribal) बोलियों को अपनी भाषा कहा है। पुरुलिया थाना के अधिकांश लोगो ने अपनी भाषा बँगला घोषित की है। पुरुलिया सब-डिवीजन के आँकड़ों से पता चलता है कि वहाँ ५२% प्रतिशत बँगला बोलनेवाले हैं। बँगला बोलनेवालों की कुल संख्या ८ लाख बतलाई गई है। परन्तु, अपने सर्वेक्षण के आधार पर डॉ० विश्वनाथ प्रसाद और डॉ० सुधाकर झा ने बताया है कि उपर्युक्त क्षेत्रो के आँकड़े बिलकुल भ्रमात्मक हैं। उनके भाषा-सर्वेक्षण से स्पष्ट है कि पुरुलिया सब-डिवीजन के आठ लाख बँगला-भाषी कहे जानेवालों में ७ लाख ५० हजार, कुरमाली, खोट्टा, मुचियाली, मगही और अन्य बिहारी भाषा-भाषी हैं। वे वस्तुतः बँगला बोलनेवाले नहीं है।

उपर्युक्त विद्वानों ने अपने नमूनो के विश्लेषण के आधार पर उचित ही स्थापना की है कि कुरमाली वस्तुतः मगही का ही एक रूप है। इसकी संज्ञा 'कुरमाली' इसलिए

---

१. Linguistic Survey of Sadar Subdivision of Manbhum and Dhalbhum (Singhbhum). —By Dr. Bishwanath prasad and Dr. Sudhakar Jha, p. 1.

हुई है कि इसका सम्बन्ध कुरमियों से है, जो अपने नाम के साथ 'महतो' जोड़ते हैं और जो इसके बहुसंख्य बोलनेवाले हैं। परन्तु, 'कुरमाली' कुरमियों तक ही सीमित नहीं है। यह बोली सब जातियों और वर्गों के द्वारा बोली जाती है। जैसे—रजवाड़, कुल्हू, लोहार, भुइया, कुम्हार, मोची, मुसलमान, भूमिज, जोलहा, मैथिल ब्राह्मण और भूमिहार ब्राह्मण। यही बोली डॉ० ग्रियर्सन के समय की जनगणना के अनुसार मगही, मगहिया, थार, पँचपरगनिया या तमरिया, सद्रीकोल, खोरठा, खोट्टा या खट्टाही के नामों से अभिहित हुई थी।

डॉ० विश्वनाथ प्रसाद और डॉ० सुधाकर झा ने अपने भाषा-सर्वेक्षण के आधार पर इस तथ्य की पुष्टि की है कि उपर्युक्त सभी बोलियों का मूल ढाँचा मगही के अनुरूप है। इसीलिए, डॉ० ग्रियर्सन ने 'कुरमाली' को 'पूर्वी मगही' के अन्तर्गत रखकर ठीक ही किया है।

परन्तु, कुरमाली के मुख्य बोलनेवाले 'कुरमी' द्रविड वंश के एक आदिवासी जाति-समुदाय के अन्तर्गत आते है। डॉ० ग्रियर्सन के इस सिद्धान्त से उपर्युक्त विद्वान् सहमत नहीं हैं। इनके अनुसार बिहार के 'कुरमी' और मानभूम तथा सिंहभूम के कुरमाली बोलनेवाले कुरमी-महतों में सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से बहुत साम्य है। वस्तुतः, बंगाल में 'कुरमी जाति' के नाम से कोई जाति-समुदाय नहीं है, अतः मानभूम के कुरमियों का पश्चिमी बंगाल में रहनेवालों के साथ किसी भी प्रकार का सामाजिक-सांस्कृतिक सम्बन्ध वा जातीय एकरूपता प्रमाणित करना सम्भव नहीं है। यद्यपि भाषा के साथ जाति का कोई बुनियादी सम्बन्ध नहीं है, तथापि साधारणतः यह पाया गया है कि भाषा का मानचित्र जातीयता के मानचित्र में बिलकुल बैठ जाता है।

मानभूम के 'कुरमी' करीब-करीब वही भाषा बोलते हैं, जो पटना गया और हजारीबाग जिलों के कुरमी लोग बोलते हैं। परन्तु, स्कूलों में अपनी भाषा में पढ़ाने की सुविधा न होने; सांस्कृतिक तथा व्यावसायिक कार्यों के लिए किसी दूसरे भाषा-माध्यम के प्राप्त न होने एवं इनके साथ ही पड़ोसी रूप में सुशिक्षित और प्रभावशाली बंगालियों के सम्पर्क में आने के कारण कुछ ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई कि कुरमियों में से अधिकांश बँगला के माध्यम से पढ़ने-लिखने लगे। लेकिन, घर में वे अपनी ही भाषा बोलते रहे।

इन क्षेत्रों की भाषा 'कुरमाली' को लेकर पर्याप्त भाषा-विवाद चल पड़ा था। कुछ लोगों ने 'कुरमाली' को बँगला के अन्तर्गत मान लेने का प्रस्ताव भी किया था। इसका प्रधान कारण यह था कि एतद्भाषी लोग इसे चिरकाल तक बँगला-लिपि में लिखते रहे। परन्तु, अब वस्तुस्थिति बदल रही है। कुरमाली अब स्थानीय महतो के द्वारा नागरी-लिपि में लिखी जाने लगी है। पुरुलिया के राजकीय पुस्तकालय और दुमका के अभिलेख-कक्ष में कितने ही ऐसे मसविदे मिले हैं, जो हिन्दी और कैथी-लिपियों में लिखे हुए हैं।[1] इससे स्पष्ट है कि बँगला के प्रचार के पहले वास्तविक वस्तुस्थिति क्या थी।

'कुरमाली' मगही बोली-समूह के अन्तर्गत है। यह इस बात से भी प्रमाणित है कि इसमें बँगला-बोलनेवालों के साथ पारस्परिक बोधगम्यता का अभाव है। इसके विपरीत,

१. Ling. Survey of S.S. of M. and Singhbhum, p. 4.

मगही और बिहारी बोलियों के बोलनेवालों के साथ इसकी पारस्परिक बोधगम्यता, व्याकरण की एकता (विशेष कर 'विभक्ति' और 'क्रियारूपों' में) तथा प्रधानतः शब्दकोश की एकरूपता है। यह सत्य है कि कुरमाली में और उससे अधिक खोट्टा मे भी कुछ ऐसे तत्त्व हैं, जो बँगला में भी पाये जाते हैं। लेकिन, इन समान तत्त्वों के पाये जाने के कारण दो हैं—

१. यह प्रमाणित तथ्य है कि मगही, जो कुरमाली और खोट्टा का आधार है, ऐतिहासिक दृष्टि से उसी भाषा-वर्ग की है, जिसके अन्तर्गत बँगला, उड़िया और आसामी भाषाएँ आती हैं। सबका उद्गम मागधी-प्राकृत से हुआ है, इसीलिए इनकी विभक्ति और क्रिया-पद्धतियों में समानता है।

२. इसके काफी प्रमाण प्राप्त होते हैं कि बँगला का प्रसार सोद्देश्य किया गया है।[1] इसलिए, व्यवहार की कुछ नवीनताएँ और व्याकरण के रूप स्थानीय बोलियों में घुस गये हैं, जो बँगला के अनुरूप हैं या उससे मिलते-जुलते हैं। बँगला-रूपों के मिश्रण से भाषा की बनावट में जो परिवर्त्तन हुए हैं, वे पश्चिमी बंगाल की सीमा मे स्वाभाविक समझे जायेंगे, लेकिन इस सीमा के बाहर अन्य क्षेत्रों में हुए परिवर्त्तन को 'सरकारी वृत्त'[2] के बढ़ते हुए प्रभाव के परिणामस्वरूप समझना ही उचित होगा। यह प्रभाव काफी समय से कार्य कर रहा है, जिसके फलस्वरूप बँगला शब्द और व्याकरण-रूपों का स्थानीय बोलियों में प्रवेश उत्तरोत्तर बढ़ता चला गया है। वर्षों से झुण्ड-के-झुण्ड बंगाली वकील, कानूनदाँ, किरानी और सरकारी नौकर इन क्षेत्रों में बाहर से लाकर भरे गये हैं;[3] क्योंकि स्थानीय शिक्षितों का अभाव रहा है। यह तो स्पष्ट ही है कि छोटानागपुर के उन क्षेत्रों में भी, जहाँ जनगणना के अनुसार ७५% हिन्दी बोलनेवाले हैं, एक भी ऐसा स्कूल नहीं था, जिसमें हिन्दी की पढ़ाई होती हो या जहाँ हिन्दी के माध्यम से शिक्षा दी जाती हो। इसलिए, स्कूल जानेवाले लड़कों को विवश होकर निजेतर भाषा को ही अपनी शिक्षा के माध्यम के रूप में स्वीकार करना पड़ा। अपने भाषा-सर्वेक्षण में डॉ० विश्वनाथ प्रसाद और डॉ० सुधाकर झा को मानभूम के पारा थाने मे जो नमूने मिले हैं, वे सब-के-सब 'कुरमाली' के हैं। काशीपुर थाना मे भी बड़े-बूढ़ो से 'कुरमाली' के ही नमूने मिले है। लेकिन, नई पीढ़ी के लोगो से कुरमाली के स्थान पर खोट्टा के नमूने मिले हैं। इससे यह प्रमाणित होता है कि नई पीढ़ी के लोग, जो वस्तुतः कुरमाली बोलनेवाले हैं, बँगला के प्रभाव के कारण 'कुरमाली' से बदलकर खोट्टा बोलने लगे है।

मगही (बिहारी) और हिन्दी

डॉ० विश्वनाथ प्रसाद और डॉ० सुधाकर झा ने जो सर्वेक्षण किया है, उसमें सब थानों में वहाँ के लोगो ने अपने को हिन्दीभाषी बतलाया है। कुरमी, भुइया, कुम्हार, मुसलमान और पढ़े-लिखे बूरिस (Borius) सबने अपनी भाषा हिन्दी ही बताई है। इस प्रसंग मे यह उल्लेखनीय है कि मगही और उसकी विभाषाएँ हिन्दी की ही उपभाषाएँ है।

१. Linguistic S. of S. S. of M. and Dhalbhum, p. 5.

२. वही, पृ० ५।

३. वही, पृ० ६।

इसी बात को ध्यान में रखकर मगही-भाषी प्रायः अपने को हिन्दीभाषी घोषित करते हैं। मानभूम आदि क्षेत्रों के कुरमाली-भाषियों ने अपने को हिन्दीभाषी इसी अर्थ में घोषित किया है।

इस दृष्टि से हिन्दी का क्षेत्र बड़ा व्यापक हो जाता है। हिन्दी के प्रचलन और प्रभाव के विषय में डॉ० ग्रियर्सन[१] ने कहा है—"बंगाल और पंजाब के बीच के विस्तृत क्षेत्र में हरएक व्यक्ति, जिसने थोड़ी भी शिक्षा पाई है, द्विभाषी है। अपने घर में या अपने पड़ोस मे वह वहाँ की बोली का एक रूप बोलता है। लेकिन, जब यह किसी अपरिचित से बात करता है, तब महान् राष्ट्रभाषा हिन्दी (या हिन्दुस्तानी) बोलता और समझता है। इस विस्तृत क्षेत्र में प्रयोग में आनेवाले शब्दकोश, जिनके भीतर व्यवहार में आनेवाले लगभग सभी शब्द आ जाते हैं, उच्चारण के विभेद को छोड़कर, एक हैं। इसलिए, बंगाल और पंजाब के बीच, गंगा के पठार के सारे क्षेत्र में विश्वासपूर्वक यही कहा जा सकता है कि एक ही भाषा हिन्दी प्रचलित है। विभिन्न स्थानीय बोलियाँ हैं, लेकिन भाषा एक ही है।"

हिन्दी के इस विशेष प्रभाव और शीघ्रतम बढ़ते प्रचार के कारण ही सन् १९३१ ई० की जनगणना-रिपोर्ट मे डॉ० हटन (Hutton) ने सारे बिहार को हिन्दी-भाषी क्षेत्र माना है। बिहार के सब क्षेत्रों की गणना के फलस्वरूप इसकी भाषा एकमात्र हिन्दुस्तानी ही कही जा सकती है। हिन्दी की इसी व्यापकता के कारण भारतीय संविधान ने पूर्वी पंजाब और राजस्थान से लेकर बिहार के पूर्वतम हिस्से और उत्तरप्रदेश के उत्तरी हिस्से से लेकर मध्यप्रदेश के मध्य तक हिन्दी को ही संस्कृत-भाषा के रूप में स्वीकार किया है। कई स्थानीय बोलियों में समृद्ध साहित्य (बोली गई और लिखी गई) के होते हुए भी उनको स्वीकृत भाषाओं की तालिका के अन्तर्गत नहीं रखा गया है।

इस प्रकार, हिन्दी-भाषा का क्षेत्र पश्चिम में जेसलमेर, उत्तर-पश्चिम में अम्बाला, उत्तर में सिमला से लेकर नेपाल के पहाड़ी हिस्से के दक्षिण भाग, पूरब में बिहार के पूर्वतम हिस्से, दक्षिण में रायपुर और दक्षिण-पश्चिम में खण्डवा तक फैला हुआ है।[२] भोपाल को छोड़कर इस विस्तृत क्षेत्र के अन्तर्गत १० प्रदेश आ जाते हैं—पंजाब, राजस्थान, अजमेर, दिल्ली, उत्तरप्रदेश, बिहार, हिमाचल-प्रदेश, मध्यप्रदेश, विन्ध्यप्रदेश और मध्यभारत।

आदिवासी बोलियों को छोड़कर, इस सारे क्षेत्र में कुल मिलाकर लगभग १८ भाषाएँ और बोलियाँ[3] बोली जाती हैं। लेकिन, सभी के बीच प्रधान आदान-प्रदान की भाषा हिन्दी ही है। उपर्युक्त भाषाओं और बोलियों के अन्तर्गत—

राजस्थानी—अपनी मारवाड़ी-मेवाड़ी, जयपुरी-हरोती, मालवी और मेवाती बोलियों के साथ;

पहाड़ी—अपनी गढ़वाली, कुमाउँनी और नेवाड़ी बोलियों के साथ;

१. L. S. I. vol. I, p. 22.

२. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी-भाषा का इतिहास, पृ० ६० ।

३. Ling. S. of S. S. of M. and Dhalbhum, p. 7.

पश्चिमी हिन्दी—अपनी खड़ी बोली, ब्रजभाषा, बॉंगरू, कन्नौजी और बुन्देली बोलियों के साथ;

पूर्वी हिन्दी—अपनी अवधी, बघेली और छत्तीसगढ़ी बोलियों के साथ और

बिहारी—अपनी भोजपुरी, मगही और मैथिली बोलियों के साथ आती हैं।

इनमें से राजस्थानी, खड़ीबोली, ब्रजभाषा, अवधी और मैथिली में अपने-अपने समृद्ध साहित्य हैं।

इस प्रसंग मे यह उल्लेखनीय है कि बिहार की तीन प्रमुख बोलियों को डॉ० ग्रियर्सन ने एक ही 'बिहारी' वर्ग मे रखा है। इसका कारण उनकी आन्तरिक एकता और पूर्वी हिन्दी तथा बँगला से उनकी भिन्नता है। विभिन्न बोलियो या भाषाओं को बोलनेवाले विभिन्न दलों के व्यक्तियों को एक ही विशेष सर्वसाधारण भाषा-समुदाय के अन्तर्गत करने के क्रम में तीन बातें ध्यान में रखनी होती हैं—

१. व्याकरण का प्रायः एक ही ढॉंचा हो, जिसमे बहुत विभेदक अन्तर प्राप्य न हों।

२. उनमे पारस्परिक बोधगम्यता का गुण वर्त्तमान हो।

३. भावनाओं और रुचियों की एक ही सौन्दर्यमूलक इच्छाशक्ति वर्त्तमान हो। इसको वॉस्लर (Vossler) ने आन्तरिक भाषा-रूप कहा है।

१. 'बिहारी' बोलियों का सामान्य व्याकरण एवं उसका ढॉंचा यद्यपि एक नहीं है, तथापि बुनियादी रूप से हिन्दी से भिन्न भी नही है। 'बिहारी' के स्थानीय रूप मिलकर हिन्दी के ही भीतर कहे जा सकते हैं। केलॉग (Kellog) के 'हिन्दी-व्याकरण' में इस बात की विवेचना की गई है।

२. उनमें पारस्परिक बोधगम्यता का गुण पर्याप्त मात्रा मे वर्त्तमान है।

३. भाव और रुचि की एकता एक ही प्रकार की निर्माणात्मक इच्छाशक्ति के विकास से प्रकट होती है। इसकी इस बात से भी पुष्टि होती है कि 'बिहारी' लेखक और कवि भोजपुरी, मैथिली और मगही भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से आते हुए भी हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में ही अपना स्थान रखते हैं।

मगही और कुरमाली बोलनेवाले लोग जब बौद्धिक, राजनीतिक, साहित्यिक और सामाजिक क्षेत्रों में अपनी संस्कृति का विकास करते हैं, तब हिन्दी को ही अपनाते हैं। इतना अधिक बँगला के प्रभाव के होने पर भी इन स्थानीय बोलियों का हिन्दी के साथ इतना अपनापन है कि बूरिस (Bouris) जैसी पिछड़ी जाति के लोग भी स्वयं हिन्दी को विना कठिनाई के ही अपना लेते हैं, यद्यपि उनमें 'खोट्टा' का भी व्यवहार चलता है। 'खोट्टा' शब्द (जो हिन्दी शब्द 'खोटा', अर्थात् 'खराब' का अपभ्रंश मालूम पड़ता है) का अर्थ होता है—साहित्यिक दृष्टिकोण से किसी बोली का भ्रष्ट और अशुद्ध रूप। मानभूम, सिंहभूम और उसके आसपास के क्षेत्रों में बोली जानेवाली कई मिश्रित बोलियों को उनके मिश्रित रूप के कारण इस नाम से पुकारा जाता है। पश्चिमी बॅगला की चर्चा करते हुए ग्रियर्सन साहब[1] ने लिखा है—

१. L. S. I., Vol II. p. 69.

"इस बोली की पश्चिमी सीमा पर बहुत-सी मिश्रित बोलियाँ हैं, जिन्हें खोट्टा या अशुद्ध बँगला कहते हैं। यह निश्चय करना कठिन हो जाता है कि इन्हें बँगला की बोलियाँ कहें या पड़ोसी बिहारी की।"

दूसरी जगह ग्रियर्सन[१] ने संकेत किया है कि —'खोट्टा' को कई नामों से जनगणना मे अभिहित किया गया है—

खोट्टा, खोरठा, खट्टाही, मगही, मगहिया, कुरमाली और थार। लेकिन, वास्तव में ये एक ही बोली (मगही) के रूप हैं।

फिर, ग्रियर्सन[२] लिखते हैं—"सीमा पर भाषाएँ मिश्रित हो ही जाती हैं, जिनकी सीमा-रेखा खींचनी कठिन है। उदाहरण के लिए, मालदा और बर्दवान तथा वीरभूम जिले के पश्चिम हिस्से की बँगला बोलियों में कितनी ऐसी विशेषताएँ हैं, जो बिहारी के समान हैं। ठीक उसी तरह बिहारी बोलियाँ, जो खोट्टा के नाम से पुकारी जाती हैं, बँगला-भाषा के लक्षण प्रदर्शित करती हैं।"

इस सिलसिले में स्मरणीय है कि मालदा, वीरभूम, दिनाजपुर, मुर्शिदाबाद, मिदनापुर और जलपाईगुड़ी में हिन्दी और बिहारी बोलनेवालों की संख्या काफी है। इनकी बिहारी एकरूपता पर ध्यान देना आवश्यक है। यही हाल सम्बलपुर और मयूरभंज के कुछ हिस्सों की बोलियों का है, जिनमें उड़िया और बिहारी का सम्मिश्रण हुआ है। धालभूम के उड़िया कहे जानेवाले नमूने भी इस तथ्य पर प्रकाश डालते हैं और बिहारी, बँगला और उड़िया के संयुक्त सम्मिश्रण का काफी प्रमाण उपस्थित करते हैं। मानभूम के खरियाओं द्वारा बोली जानेवाली खरियाली, जिसको ग्रियर्सन ने भूल से बँगला बोली के अन्तर्गत रखा है, मगही के साथ इतनी अधिक मात्रा में मिले-जुले रूप दिखलाती है कि इसको पूर्वी मगही की बोली कहना तर्कयुक्त मालूम पड़ता है। उदाहरण के लिए—

मय घर जाम।
मय अदहन चैशांञ्जाम।

इन दोनो वाक्यों में 'मय' सर्वनाम हिन्दी के 'मैं' से कुछ भिन्न नहीं है। इसी तरह क्रियारूप 'घर जाम' मगही है।

भाषाओं के इस तरह के स्वाभाविक मिश्रण ने हमारी भारतीय भाषाओं और बोलियों के विकास में प्रमुख भाग लिया है। लेकिन, मानभूम या धालभूम के पूर्वी मगही या कुरमाली बोलनेवालों पर, बँगला का लादा जाना इस स्वाभाविक मिश्रण की क्रिया से बिलकुल भिन्न है। परन्तु, इसके कारण मानभूम और धालभूम की बोलियों में कुछ उलट-फेर होने पर भी खोट्टा और कुरमाली ने अपनी विशेषता नहीं खोई है। इनकी निचली बिहारी सतह ज्यों-की-त्यों है, जो इनकी लोकबोली के रूप-विशेष से स्पष्ट है।[१]

उल्लेखनीय है कि मानभूम के कुरमी और मोची खोट्टा नहीं बोलते। यही बात

---

१. L. S. I. Vol. V, part II, p. 146.
२. ,, Vol. I, p. 70 and Vol. II, p, 2,
१. ,, Vol, V, part I, p. 31.

सन्तालों और माँझियों के साथ भी है। वे भूमिज, जो खोट्टा बोलते हैं, घर में मुण्डारी जरूर बोलते हैं। यह पाया गया है कि साधारणतः वे ही लोग, जिनका सम्बन्ध शहर के व्यापारियों से है, अपने घर के बाहर खोट्टा बोलते पाये जाते हैं। उदाहरण के लिए, पढ़े-लिखे रजबाड़ अपने घर के बाहर खोट्टा बोलते हैं, परन्तु घर में कुरमाली बोलते हैं। इसके अलावा गरीब जाति के लोग, उदाहरण के लिए, बूरिस, जो बंगाली परिवारों में नौकरी करते हैं, खोट्टा बोलते हैं। ध्यान देने की बात यह है कि बंगाली बासिन्दे स्वयं शुद्ध बँगला बोलते हैं, खोट्टा नहीं। दूसरी ओर मानभूम और धालभूम के अशिक्षित, असली बासिन्दे बँगला नहीं बोलते। अतः, यह स्पष्ट है कि यहाँ के मूल बासिन्दों की बोली बुनियादी रूप में बिहारी है।

सन् १९५१ ई० की जनगणना के अनुसार धालभूम के ३०% बासिन्दे बँगला बोलते हैं। बँगला बोलनेवालों की संख्या के अन्तर्गत जमशेदपुर के सब बंगाली और उससे भी अधिक संख्या में ऐसे लोग, जो बंगाली नहीं हैं, परिगणित कर लिये गये हैं। इनमें कुरमी, ग्वाला, मगहिया, कुम्हार वगैरह सभी हैं, जो वास्तव मे अपनी-अपनी मातृभाषा ही बोलते हैं। कुम्हारी-कथा, महतो-बोली, घरीगुजरी, डोमभाषा और खोट्टा तथा थार के समान कितनी मिश्रित बोलियाँ उदाहरणार्थ देखी जा सकती हैं।

धालभूम के बिहारी बासिन्दे आधे दर्जन से अधिक बोलियाँ बोलते हैं और इन सभी बोलियों का आधार कुरमाली है। इन मिश्रित बोलियों का शब्दकोश प्रधानतः 'बिहारी' है।

भाषाविज्ञान का यह सर्वसम्मत सिद्धान्त है कि किसी विशेष वर्ग के शब्दकोश के साथ तद्रूपता उस वर्ग के साथ किसी बोली के पुराने सम्बन्ध की ओर संकेत करती है। इसी कसौटी पर उपर्युक्त मिश्रित बोलियों को 'बिहारी वर्ग' (मगही) के अन्तर्गत रखना उचित प्रतीत होता है। ध्वनि-विज्ञान की कसौटी पर कसने से भी उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है। इन बोलियों के नमूनों से पता चलता है कि कहीं भी दन्त्य 'स' तालव्य 'श' के जैसा उच्चरित नहीं होता है। तालव्य 'श' बँगला उच्चारण की विशेषता है। 'लक्ष्मी' और 'रक्ष' शब्द सिवाय सीमा पर के क्षेत्रों के पढ़े-लिखे लोगों को छोड़कर, हमेशा मगही के ढंग से उच्चरित होते हैं। जैसे : 'लक्ष्मी' या 'लखमी' और 'रच्छा' या 'रक्छा'।

सबसे मुख्य बात तो यह है कि इन बोलियों के गानों के छन्द-रूप, जिनके नमूने कुरमाली और खोट्टा में मिलते हैं, हूबहू 'बिहारी' के-से हैं। बँगला में उनकी चर्चा भी नहीं है। उदाहरण के लिए, इन बोलियों के झूमर, सोहराइ, चौमासा इत्यादि देखे जा सकते हैं। संस्कार-सम्बन्धी गान, जैसे बीहा (विवाह)-गीत, दरवाजा लगाने के गीत, परिछन के गीत, मगही-परम्परा के अनुकूल हैं। इसी तरह तीज और करमा के गीत हैं, जो मगही-क्षेत्र में ही नहीं, बल्कि सारे बिहार में महिलाओं के द्वारा बड़ी उमंग और श्रद्धा के साथ गाये जाते हैं और जिनका बंगाल में प्रचलन नहीं है। रोपनी के गीत की भी यही स्थिति है। नचारी के गाने हूबहू मैथिली के-से हैं। भजन या प्रार्थना के गाने

निश्चित रूप से बिहारी का प्रभाव प्रदर्शित करते हैं। इन गानों की भाषा, तान, लय और विषय सब-के-सब बिहारी परम्परा के अनुकूल हैं।

ऊपर की सम्पूर्ण विवेचनाएँ इसी निष्कर्ष पर पहुँचती हैं कि कुरमाली और खोट्टा बोलनेवालों की भाषा और रीति-रिवाज का सम्बन्ध 'मगही' से ही है, जो बिहारी की एक 'बोली' है। बिहारी की बोलियाँ 'हिन्दी'-भाषा के अन्तर्गत आती हैं, अतः कुरमाली और खोट्टा का सम्बन्ध भी 'हिन्दी' से ही प्रमाणित होता है।

मगही-भाषी जनसंख्या

मगही-भाषी जनसमुदाय मगही क्षेत्रों के अतिरिक्त अ-मगही क्षेत्रों में भी बसा है। डॉ० ग्रियर्सन ने सन् १९०१ ई० की जनगणना के आधार पर मगही-भाषियों के आँकड़े दिये हैं। ये आँकड़े इस प्रकार हैं—

मगही-भाषी क्षेत्रों में मगही-भाषी जनसंख्या	—	६,२३९,९६७
अन्य अ-मगही क्षेत्रों में	—	२,३१,४८५
आसाम के निचले भागों में	—	३३,३६५
		कुल जोड़—६५,०४,८१७

अन्तिम जनगणना सन् १९५१ ई० में हुई थी। इसमें कुल एक लाख मनुष्यों ने ही अपनी मातृभाषा के रूप में बिहारी बोलियों के नाम दिये, जिनमें मगही बोलनेवालों की संख्या सिर्फ ३,७२८ दी गई है, एवं करीब-करीब उन सब लोगों ने, जिनकी मातृभाषा भोजपुरी, मगही या मैथिली है, अपने को हिन्दीभाषी घोषित किया। इसका यह अभिप्राय नहीं कि बिहार में अब बिहारी बोलियाँ मृत हो चुकीं। वास्तविकता यह है कि आज भी बिहार में जनसंख्या का अधिकतम भाग घरेलू बोली ही बोलता है। अतः, सन् १९०१ ई० के मगही-भाषियों के आँकड़ों के आधार पर, सन् १९५१ ई० के आँकड़े, जनगणना के आधार पर, आनुमानिक रूप में दिये जाते हैं।

सन् १९०१ ई० की जनगणना के अनुसार कुल बिहारी बोलनेवालों की संख्या लगभग २,३०,००,००० (भोजपुरी ६७,००,०००; मैथिली १,००,००,०००; मागधी ६२,००,०००) थी। सन् १९५१ ई० की जनगणना के अनुसार बिहार में कुल हिन्दी बोलनेवालों की संख्या लगभग ३,५०,००,००० (इसके अन्तर्गत, हिन्दी, बिहारी एवं उर्दू बोलनेवालों की भी संख्या है)। इस तरह, स्पष्ट है कि पचास वर्षों में बिहारी बोलनेवालों (सन् १९५१ ई० की गणना में बिहारी भाषा-भाषियों ने अपने को हिन्दी-भाषाभाषी घोषित किया था। बिहार में मातृभाषा के रूप में हिन्दी-भाषा बोलनेवालों की संख्या बहुत कम है; यहाँ के उर्दू-भाषी भी घरों में प्रायः बिहारी भाषा का ही प्रयोग करते हैं) की संख्या २,३०,००,००० से बढ़कर ३,५०,००,००० हो गई। यदि यह मान लिया जाय कि यह वृद्धि जनसंख्या की आनुपातिक वृद्धि के कारण हुई है, तो यह आँकड़ा निकलता है कि मगही क्षेत्रों में मागधी बोलनेवालों की संख्या ६२,००,००० से बढ़कर सन् १९५१ ई० में करीब ९४,३५,००० हो गई होगी। इसी हिसाब से कुल मागधी बोलनेवालों

की संख्या करीब ६५,००,००० से बढ़कर सन् १९५१ ई० मे ९८,९०,००० हो गई होगी। अगर इस गणना को ठीक मान लिया जाय, तो कुल बिहार की जनसंख्या में मगही बोलनेवालों की संख्या २३.४ प्रतिशत[1]; मगही-क्षेत्र मे कुल हिन्दी बोलनेवालों में मगही बोलनेवालों की संख्या ६५.२ प्रतिशत और मगही क्षेत्र में कुल जनसंख्या मे मगही बोलने-वालों की संख्या ५१.२ प्रतिशत होती है। ऊपर की सारी गणनाएँ सन् १९५१ ई० की जनगणना पर आधृत हैं।

सन् १९०१ ई० की जनगणना के अनुसार कुल बिहारी बोलनेवालों में मागधी बोलनेवालो की संख्या २७.१ प्रतिशत होती है। सन् १९५१ ई० की आनुमानिक गणना से यह संख्या २३.४ प्रतिशत आती है। इससे ऊपर की गणना को आधार मिलता है।

विविध क्षेत्रों की मगही के रूप और उनका वर्गीकरण

आदर्श मगही : विविध क्षेत्रों मे बोली जानेवाली आदर्श मगही के रूपों में बहुत साम्य[2] है। यद्यपि कहीं-कही व्याकरण-रूपों की भिन्नताएँ[3] भी मिलती हैं, तथापि वे इतनी व्यापक एवं महत्त्वपूर्ण नहीं है कि उनके आधार पर आदर्श मगही को भिन्न-भिन्न वर्गों में विभक्त किया जाय। भाषा के सम्बन्ध मे एक कहावत प्रचलित है—

तीन कोस पर पानी बदले, सात कोस पर बानी।

---

१. देखिए हिन्दी-साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग १६, मगही-लोकसाहित्य, पृ० ३९—८१।

२. (क) डॉ० ग्रियर्सन ने भी पटना, गया, हजारीबाग, पलामू, मुँगेर और भागलपुर की मगही का रूप एक ही माना है। केवल पटना नगर की मगही को वे उत्तर-पश्चिम के मुहावरो से प्रभावित मानते है। —लिं० स० इ०, जिल्द ५, खण्ड २।

(ख) डॉ० उदयनारायण तिवारी भी डॉ० ग्रियर्सन के मत से सहमत है—'समस्त क्षेत्र मे मगही का रूप एक ही है और इसमें कहीं भी अन्तर नही पड़ता। केवल पटना के आसपास उर्दू-भाषी मुसलमानों के प्रभाव के कारण इसके मुहावरों मे अवश्य कुछ अन्तर आ गया है।' —भोजपुरी भाषा और साहित्य, पृ० २१७।

३. मगही-भाषा और साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् स्वर्गीय श्रीकृष्णदेव प्रसाद ने मुझसे वार्त्ता-क्रम में मगही के निम्नांकित भेदों की ओर संकेत किया था—

(क) आदर्श मगही—यह गया जिले में बोली जाती है।

(ख) शुद्ध मगही—यह राजगृह से लेकर बिहारशरीफ के उत्तर चार कोस बयना स्टेशन तक एवं पटना जिले के अन्य हिस्सो में भी बोली जाती है।

(ग) टलहा मगही—पूरा मोकामा, बड़हिया थाना, बाढ़ सबडिवीजन के गंगा के इस पार के कुछ पूर्वी भाग, लक्खीसराय थाना के कुछ उत्तरी भाग, गिद्धौर और पूर्व मे फतुहा तक बोली जाती है।

(घ) सोनतटिया मगही—सोन के किनारे-किनारे पटना और गया मे बोली जाती है।

(ङ) जंगली मगही—राजगीर, गया और छोटानागपुर के जंगलो में बोली जाती है।

अन्यत्र 'मगही-भाषा और साहित्य' शीर्षक अपने निबन्ध मे उन्होने पटना जिले की मगही के

स्पष्ट है कि कुछ दूरी के बाद 'भाषा' बदल जाती है। परिणामतः, एक ही भाषा-क्षेत्र में कुछ-कुछ दूरी पर स्थानीय विशेषताएँ परिलक्षित होने लगती हैं। ये विशेषताएँ उच्चारण-सम्बन्धी, शब्दसमूह-सम्बन्धी या व्याकरण-सम्बन्धी हो सकती हैं। यथा : पटना जिले के देहातों और पटना नगर की भाषा में ही स्पष्ट भेद दीख पड़ता है। पटना नगर के आसपास की आदर्श मगही मे उत्तर-पश्चिम प्रान्तों के मुहावरों का मिश्रण है। मुगलकालीन नवाबों और पश्चिम के निवासी खत्रियों और अग्रवालों के पटना मे बस जाने के कारण यहाँ की मगही इनकी भाषा से प्रभावित हो गई है। एक ओर इसपर शुद्ध उर्दू-भाषी मुसलमानों का प्रभाव दीखता है, दूसरी ओर पश्चिम के निवासियों की खड़ी बोली का। इसके विपरीत पटना जिले के ग्रामों को मगही इन बाह्य प्रभावों से बची है। गया जिले की मगही की शुद्धता बहुत अधिक सुरक्षित है। इस विशुद्धता के अक्षुण्ण रहने के कारण निम्नांकित हैं—

१. गया पर बाहरी प्रभाव नहीं के बराबर पड़ा है।
२. यह हिन्दू-धर्म का सांस्कृतिक केन्द्र रहा है। इसकी प्राचीन परम्पराएँ अखण्डित-सी रह गई हैं।
३. इसकी स्थिति मगही क्षेत्र में केन्द्रवर्त्ती है।

आदर्श मगही-क्षेत्र में कुछ-कुछ दूरी पर परिलक्षित होनेवाली अनतिमहत्त्वपूर्ण स्थानीय विशेषताओं के आधार पर उसके अवान्तर भेदों की कल्पना लाभप्रद नहीं मानी जा सकती, कारण वे भेद प्रायः वैकल्पिक ही प्रमाणित होंगे। फिर, ये स्थानीय विशेषताएँ मगही-भाषा के परस्पर भिन्न होनेवाले व्यवहार में यदि कहीं परिलक्षित भी होती हैं, तो उसके क्रिया-रूपों में ही। शब्दरूप, सर्वनाम, विशेषण एवं पदादि में परिलक्षित होनेवाली विभेदक विशेषताएँ अत्यल्प एवं अनुल्लेख्य हैं।

उपर्युक्त कथन के स्पष्टीकरण, साथ ही प्रमाणीकरण के लिए आदर्श मगही के उन्न

भी पाँच अवान्तर भेदों का उल्लेख किया है। यथा : उत्तर में टाल, तरियानी और जल्ला—ये तीन भेद एवं दक्षिण में पूर्वी पटना और पश्चिमी पटना—ये दो भेद हैं। सम्भवतः, टालक्षेत्र के अन्तर्गत बख्तियारपुर, बाढ़ और मोकामा के क्षेत्र सम्मिलित किये गये हैं। जल्ला के अन्तर्गत पटना नगर, पुनपुन और फतुहा के क्षेत्र; तरियानी के अन्तर्गत दानापुर, मनेर और बिहटा के क्षेत्र। पूर्वी पटना के अन्तर्गत तेलहारा, एकंगरसराय, बिहारशरीफ, नालन्दा, राजगृह, इस्लामपुर और सिलाव के क्षेत्र एवं पश्चिमी पटना के अन्तर्गत नौबतपुर, विक्रम, मसौढ़ी और पालीगंज के क्षेत्र सम्मिलित किये गये हैं।

अपने वर्गीकरण की पुष्टि में उन्होंने निम्नांकित उदाहरण प्रस्तुत किये हैं—

१. टालक्षेत्र —कहो हथिन—कहो हथुन—कहते हैं।
२. तरियानी-क्षेत्र—कहऽ हखिन—कहो हथुन—कहते हैं।
३. जल्लाक्षेत्र—कहऽ हीव—कहता हूँ।
४. पूर्वी पटना—कहऽ हियो—कहता हूँ।
५. पश्चिमी पटना—कहित हियो—कहता हूँ।

रूपों की तालिका दी जा रही है, जिनमे ऐसी विभेदक विशेषताएँ वर्त्तमान हैं।[1]

क्रिया-रूप[2]

अपूर्णार्थक सहायक क्रिया

वर्त्तमानकाल—(मैं हूँ)

गया	पटना	मुँगेर	पलामू	हजारीबाग	राँची
(हम) ही	(हम) ही—हिकूँ, हकीँ	(हम) ही	(हम) ही	(हम) ही	(हम) ही

स्पष्ट है कि उपर्युक्त सम्पूर्ण आदर्श मगही क्षेत्र में अपूर्णार्थक सहायक क्रिया के वर्त्तमानकाल के उत्तमपुरुष के रूपों में प्रायः समानता है। केवल पटना जिले के पूर्वी क्षेत्रों मे वैकल्पिक रूप से निम्नांकित विशेष रूपों का व्यवहार होता है—

अनादरवाचक		आदरवाचक	
वर्त्तमानकाल		वर्त्तमानकाल	
उ० पु०	हकीँ, हिकूँ	म० पु०	हकी, हकिन
अ० पु०	हकइ, हकउ	अ० पु०	हखिन, हखुन
भूतकाल		भूतकाल	
म० पु०	हला	म० पु०	हलहो
		अ० पु०	हलखिम, हलखिनी

सम्पूर्ण आदर्श मगही क्षेत्र में 'पूर्णार्थक सहायक क्रिया' के निश्चयार्थ, भूतकाल और भविष्यत् काल के तीनों 'पुरुषो' में समान सहायक क्रियाओ का व्यवहार होता है। परन्तु, पूर्वी पटना में वैकल्पिक रूप से निम्नांकित सहायक क्रिया-रूपों का भी व्यवहार होता है—

पूर्णार्थक सहायक क्रिया[3]

	भूतकाल-रूप १		भूतकाल-रूप २	
	अना०	आदर०	अना०	आदर०
म० पु०	होला	होलहो	भेला	भेलहो
अ० पु०	—	होलखिन, होलखिनी	—	भेलखिन,-खिनी

भविष्यत् काल

	अनादर०	आदर०
म० पु०	होबा	होबहो
अ० पु०	—	होखिन

---

१. विश्लेषण के आधार-स्वरूप विभिन्न क्षेत्रों मे प्रचलित लोककथाओं के भाषा-व्यवहार को अपनाया गया है। ये लोककथाएँ म० लो० सा० मे संकलित है।

२. 'मगही-व्याकरण-कोश' मे यथासम्भव वे सभी रूप दिये गये है, जो आदर्श मगही क्षेत्र मे व्यवहृत होते हैं। देखिए—'क्रिया'-प्रसंग (म० व्या० को०)।

३. देखिए 'मगही-व्याकरण-कोश' के अन्तर्गत 'क्रिया'-प्रसंग।

सम्भावनार्थ

भविष्यत् काल

	अनादर०	आदर०
म० पु०	—	हो हो
अ० पु०	—	होखिन, होखुन

सामान्य संकेतार्थ

	अनादर०	आदर०
म० पु०	होता	होतहो
अ० पु०	होता	होतखिन, होतखुन, होतखिनी

उपर्युक्त सहायक क्रिया-रूपों में जो 'खिन'वाले रूप हैं, वे मुँगेर और भागलपुर जिलों में भी व्यवहृत होते हैं।

साधारण काल

सम्पूर्ण आदर्श मगही क्षेत्र में साधारण काल में जिन क्रिया-रूपों का व्यवहार होता है, उनका विस्तृत विवरण 'मगही-व्याकरण' के क्रियावाले प्रसंग में दिया गया है। जिन विशेष रूपों का व्यवहार पूर्वी पटना में वैकल्पिक रूप से होता है, उनका विवरण निम्नांकित है—

साधारण काल

निश्चयार्थ : सामान्य भूतकाल

	अनादर०	आदर०
म० पु०	देखला	देखलहो
अ० पु०	देखला, देखलका	देखलखन,-खिन,-खुन

निश्चयार्थ : भविष्यत्काल

	अनादर०	आदर०
म० पु०	देखबा	देखबा, देखबहो
अ० पु०	देखता	देखखिन, देखखुन

सम्भावनार्थ : भविष्यत् काल

	अनादर०	आदर०
म० पु०	—	देखहो
अ० पु०	—	देखिन,-खुन, देखखिन,-खुन

आज्ञार्थ

वर्त्तमान प्रत्यक्ष-विधि

	अनादर०	आदर०
म० पु०	—	देखहो
अ० पु०	—	देखखिन,-खुन

संज्ञा-रूप[1]

सम्पूर्ण आदर्श मगही क्षेत्र में संज्ञा-रूपों के व्यवहार में समानता है। केवल निम्नांकित विशेषताएँ तत्तत् क्षेत्रों में वर्त्तमान हैं—

१. पूर्वी पटना, मुँगेर तथा भागलपुर जिलों में संज्ञाओं के सबल रूपों का व्यवहार अधिक होता है।

यथा—घर > घरा; फल > फला; घन > घना; साँप > सँप्पा; मरद > मरदा।

२. कुछ विशेष संज्ञा-रूप विशेष क्षेत्र में ही वर्त्तमान हैं। जैसे : हिन्दी-'लड़का' का पर्याय निम्नांकित रूपों में मिलता है—

गया—लड़का, बाबू; पूर्वी पटना—बुतरू; दानापुर-मनेर—लड़का; धनबाद—गीदर आदि।

३. अधिकरण कारक के चिह्न 'में' का रूप पूर्वी पटना में विकल्प से 'ने' हो जाता है।

सर्वनाम

१. सम्पूर्ण आदर्श मगही क्षेत्र मे उत्तमपुरुष एकवचन के दीर्घ रूप कर्त्ताकारक में 'हम' पद का व्यवहार प्रचलित है; पर पूर्वी पटना और मुँगेर जिले में 'हम' तथा 'हम्मे' दोनों रूपों का व्यवहार होता है। गया जिला में 'हम्मे' पद का व्यवहार नहीं मिलता।

२. प्रश्नवाचक सर्वनाम 'क्या' का रूप गया में 'का' है। पर, पूर्वी पटना, मुँगेर और भागलपुर में इसके स्थान पर 'की' का व्यवहार होता है।

यथा : राधा की खैलकइ ? अथवा

सम्बोधन—अगे राधा।

उत्तर—की-ऽ-ऽ-ऽ-।

३. पूर्वी पटना में मध्यमपुरुष सर्वनाम 'तूँ' की जगह 'तो' का विशेष प्रयोग होता है।

अव्यय

निषेधात्मक विधि के रूप में गया जिला तथा पटना नगर में प्रायः 'न' एवं 'नहीं' पदों का व्यवहार होता है। पूर्वी पटना, मुँगेर एवं भागलपुर जिलों में 'नई' का व्यवहार होता है। मनेर में 'ने' का व्यवहार होता है।

उपर्युक्त विवेचन के क्रम में आदर्श मगही क्षेत्र में प्रचलित व्याकरण-रूपों में जो विभिन्नताएँ दिखलाई गई हैं, स्पष्ट है कि वे विभेदक कोटि की न होकर सामान्य हैं। अतः, उनके आधार पर इसका विविध वर्गों मे विभाजन अपेक्षित नहीं।

मैथिली-मिश्रित मगही

इसमें यथानिर्दिष्ट विशेषताएँ वैकल्पिक रूप से मिलती हैं—

---

१. देखिए 'मगही-व्याकरण-कोश' के अन्तर्गत 'संज्ञा'-प्रसंग।

१. समूह निर्देशक संज्ञा (Noun of multitude)—'आर' का व्यवहार यथा :
मिश्रित मगही—हम्मेँ आर > आदर्श मगही—हम सब।

२. सहायक क्रिया - (वर्त्त०) 'छिकै' एवं (भूत०) 'छेँलै' का व्यवहार। यथा :
मि० मगही—लड़ाय केँ जड़ छिकै।
आदर्श मगही—लड़ाइ के जड़ हइ।
मि० मगही—रहे छेँलै।
आदर्श मगही—रहऽ हलइ।

३. निषेधात्मक विधि—'नै' का व्यवहार।
मि० मगही—तोहर बाल टेढ़ा नै होतौन्ह।
आदर्श मगही—तोहर बाल टेढ़ा न होतो।
मैथिली-मिश्रित मगही का स्वतन्त्र व्याकरण डॉ० ग्रियर्सन ने प्रस्तुत किया है।[1]

पूर्वी मगही

'आदर्श मगही' का एक ही नाम है; क्योंकि उसके विभिन्न रूपों में बहुत कम भिन्नता है। इसकी चर्चा ऊपर की जा चुकी है। परन्तु, 'पूर्वी मगही' विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न नामों से पुकारी जाती है। प्रत्येक क्षेत्र की पूर्वी मगही की अपनी विशेषताएँ हैं। विभिन्न नामों से पुकारी जानेवाली ये बोलियाँ 'आदर्श मगही' की ही विकृत रूप हैं। इनकी स्थानीय विकृतियाँ समीपवर्त्ती अन्य भाषाओं के संसर्ग का परिणाम हैं। पूर्वी मगही के इन विभिन्न नामों में किसी में भी इतनी व्यापकता नहीं है कि वह आदर्श मगही के सभी विकृत रूपों का प्रतिनिधित्व एक साथ ही कर सके। इसलिए, इन सभी बोलियों के समुदाय को डॉ० ग्रियर्सन ने 'पूर्वी मगही'[2] की संज्ञा दी है।

मगही की पूर्वी सीमा पर 'बँगला' भाषा है। यहाँ ये दोनों भाषाएँ मिश्रित नहीं होतीं। यहाँ दोनों भाषा-भाषी अपनी-अपनी भाषा का पृथक् व्यवहार करते हैं। इस तरह, यह द्वि-भाषी क्षेत्र है। सामीप्य के कारण दोनों भाषाओं का एक दूसरों को प्रभावित करना स्वाभाविक है। अतएव, इस क्षेत्र की मगही में कुछ स्थानीय विशेषताएँ आ गई हैं। इन्हीं विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए इस क्षेत्र की मगही को ग्रियर्सन ने 'पूर्वी' विशेषण प्रदान किया है।

उन स्थानों में जहाँ बिहारी और बँगला-भाषाओं का संगम है, दो अवस्थाओं में से एक अवस्था पाई जाती है। गंगा के उत्तर में प्रायः दो भाषाएँ क्रमशः एक दूसरे से मिल गई हैं। फलतः, एक बीच की बोली निकल आई है। यथा : पूर्वी पूर्णिया की 'सिरपुरिया' बोली। इसे किसी एक भाषा का नाम नहीं दिया जा सकता है।

---

१. Seven Grammars of the dialects and subdialects of the Bihari Languages, Part VI.

२. लिं० स० ग्रि०, जि० ५, खण्ड २।

बोली जाती है, जिसको यद्यपि अन्य बहुत-से नामों से पुकारा जाता है, सामान्यतः 'कुरमाली' कहते हैं। मानभूम जिले में उच्च वर्गों के द्वारा विशुद्ध मगही बोली जाती है। राँची के उपपठारवाले पाँच परगनों में अनार्य-'मुण्डारी' भाषा के अतिरिक्त मगही की एक बँगला-मिश्रित बोली, जिसका स्थानीय नाम 'पँचपरगनिया' या 'तमरिया' है, बोली जाती है। यह बोली विशुद्ध मगही के बहुत निकट है। इसकी तुलना में मानभूम के कुरमियों द्वारा बोली जानेवाली बोली में बँगला का अधिक मिश्रण है।

मगही का कुछ ऐसा ही बँगला-मिश्रित (मिश्रण की मात्रा स्थान के साथ बदलती रहती है) रूप, हजारीबाग जिले के दक्षिण पूर्व, मानभूम की सीमा, गोला और कश्मर के थानों, रामगढ़ थाना के एक हिस्से और सुदूर मालदा जिले में बोला जाता है। राँची पठार के तीन तरफ मगही बोलनेवालों की एक मेखला है—उत्तर दक्षिण में मगही का विशुद्ध रूप है और पूर्व में बँगला-मिश्रित रूप पूर्वी मगही के विभिन्न नामों में किसी एक नाम से हमेशा एक ही तरह के मिश्रण का बोध नहीं होता। उदाहरण के लिए, कुरमाली बोलनेवाले मानभूम में बँगला, सिंहभूम में उड़िया एवं पूर्वी सरायकेला में कहीं बँगला बोलनेवालों की अगल-बगल बसते हैं।

पूर्वी मगही के सम्बन्ध की अबतक की सारी विवेचनाओं को, स्पष्टता के लिए, नीचे की दो तालिकाओं में प्रस्तुत किया जाता है, जिनके आधार पर पूर्वी मगही के विभिन्न रूपों को समझने में सुविधा हो सकेगी। पहली तालिका यह व्यक्त करती है कि किस स्थान में पूर्वी मगही किस नाम से पुकारी जाती है। दूसरी तालिका से पूर्वी मगही बोले जानेवाले बहुभाषा-भाषी क्षेत्रों में बोली जानेवाली अन्य भाषाओं का ज्ञान हो सकेगा।

पहली तालिका[1]

जिला या राज्य का नाम		सन् १९०१ ई० की जनगणना के अनुसार पूर्वी मगही के विभिन्न नाम
मानभूम[2]	—	मगही, मगहिया, कोरठा (खोरठा), कुरमाली ठार, खट्टा या खट्टाही
खरसावाँ	—	कुरमाली
हजारीबाग	—	बँगला
राँची	—	पँचपरगनिया या तमरिया
बामरा	—	सद्रीकोल
मयूरभंज	—	कुरमाली
मालदा	—	हिन्दी (खोण्टाई)

१. L. S. I. Vol. V, Part II.

२. झरिया, कतरास और नवगढ़ के जमीन्दार और मगहिया ब्राह्मण विशुद्ध मगही बोलते रहे हैं।

दूसरी तालिका[1]

जिला		बोली जानेवाली भाषाएँ
हजारीबाग	—	मगही, कुरमाली, मुण्डा और द्रविड-भाषाएँ
मानभूम	—	बँगला, खड़ियाथार, कुरमाली, मगही (शुद्ध मगही झरिया, कतरास और नवगढ़ के जमीन्दारों एवं मगहिया ब्राह्मणों द्वारा बोली जाती है), मुण्डा और द्रविड-भाषाएँ
राँची	—	मगही, पँचपरगनिया, नगपुरिया-भोजपुरी बँगला, मुण्डा और द्रविड-भाषाएँ।
सिंहभूम	—	मगही, बँगला, उड़िया, मुण्डा और द्रविड-भाषाएँ।
सरायकेला	—	मगही, बँगली, उड़िया और मुण्डा भाषाएँ
खरसावाँ	—	मगही, कुरमाली, उड़िया और मुण्डा-भाषाएँ।

ऊपर कहा जा चुका है कि मानभूम के कुरमी पूर्वी मगही बोलते हैं। इसके अतिरिक्त दूसरी जातियाँ भी इसी को बोलती हैं। यही बोली बामरा मे भी बोली जाती है, जहाँ इसका नाम 'सद्रीकोल' है। बामरा क्योझर के पश्चिम में पड़ता है। बामरा की मुख्य आर्यभाषा उड़िया है। अधिकाश आदिवासी मुण्डा-भाषाएँ बोलते हैं। लेकिन, कुछेक विकृत आर्यभाषा बोलते हैं, जिसका स्थानीय नाम 'सद्री' या अधिक उपयुक्त नाम 'सद्रीकोल' है। छत्तीसगढ़ी मे बोली जानेवाली उपबोली का नाम 'सद्रीकोरबा' है। 'सद्री' शब्द का व्यवहार तब होता है, जब कोई आदिवासी जाति अपनी भाषा छोड़कर आर्य-भाषा अपनाता है।

'ठार' शब्द का अर्थ है—ढंग या रूप। 'कुरमाली ठार' का अर्थ हुआ 'कुरमाली' ढंग से बोली जानेवाली आर्यभाषा। इसका नाम 'कोरठा' भी है। उत्तर-पश्चिम मानभूम में इसका नाम 'खट्टाह' और मानभूम के पश्चिम में 'खट्टाही' है।

सरायकेला और खरसावाँ से प्राप्त, मगही के नमूनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि गया और हजारीबाग की मगही से इस मगही की समानता है। केवल 'सम्बन्ध कारक' के 'विकारी रूप' में थोड़ी अनियमितता दीख पड़ती है। उदाहरणार्थ, 'ओकरा' के स्थान पर 'ओकर' का प्रयोग होता है।

'सद्रीकोल' बामरा में बोली जानेवाली उड़िया-भाषा की बोली नहीं है, बल्कि पूर्वी मगही बोली का एक रूप है। इसके सटे पूरब में क्योझर और मयूरभंज मे पूर्वी मगही का एक रूप व्यवहृत होता है, जिसको 'कुरमाली' कहते हैं। सद्रीकोल इससे उतना नहीं

१. L. S. I. Vol. V, Part II.

मिलता है, जितना मानभूम और खरसावाँ के कुरमाली ठार से। सद्रीकोल और कुरमाली ठार लगभग एक जैसे हैं। उच्चारण भी समान ढंग से ही किया जाता है। उड़िया की तरह इनमे 'अ' का उच्चारण अँगरेजी के 'Hot' शब्द के 'ओ' की तरह होता है। इनके नमूनों से उड़िया के प्रभाव का पता चलता है। जैसे : सम्बन्धकारक—'माल-जालर' (धन का); बहुवचन—'सुअर माने' (सुअर सब), 'हमरेमान' (हमलोग)।

ऊपर कहा जा चुका है कि हजारीबाग जिले के दक्षिण-पूर्व में मानभूम की सीमा पर गोल और कस्मर के थानो मे एवं रामगढ़ थाना के कुछेक हिस्सों मे 'पूर्वी मगही' बोली जाती है। यद्यपि मानभूम के 'कुरमाली ठार' से भी अधिक सामीप्य इसका आदर्श मगही से है, तथापि इसकी विभिन्नता यह है कि इसको 'द्विभाषीय भाषा' कहा जा सकता है। मतलब यह है कि यह मुख्यतः मगही है, लेकिन इसने बँगला के शब्द, मुहावरे, इतना ही नहीं, वाक्य-के-वाक्य हू-ब-हू अपना लिये हैं। जैसा कि गंगा के दक्षिण में भी साधारणतः देखा जाता है, ये दोनों भाषाएँ मिश्रित हो गई हैं। उनका एकीकरण नहीं हुआ है। बँगला-तत्त्वो के स्पष्ट मिश्रण से एवं 'कुरमाली ठार' की तरह ही इसके बॅगला-लिपि में लिखे जाने से भ्रम होता है कि यह बँगला है। लेकिन, इसके अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि यह 'मगही' ही है। ग्रियर्सन के शब्दो में—"इसमे बँगला-तत्त्व ठीक उसी तरह प्रविष्ट हुए हैं, जिस तरह अँगरेजी बोलनेवाले अपनी भाषा में फ्रेंच-मुहावरों का प्रयोग करते हैं।"[१]

राँची का पूर्व और दक्षिण-पूर्व भाग आर्यभाषा के तीन रूपों का संगम-क्षेत्र है। दक्षिण पूर्व की मुख्य भाषा 'नगपुरिया' है। आर्यभापा के इसी रूप की प्रधानता राँची के बचे हुए हिस्से मे है; लेकिन जैन माँझी, खुशहाल कृषक और व्यापारी-वर्ग के लोग बँगला का 'सराकी' रूप बोलते हैं। सिली, बरण्ड, रहे, बुन्दु और तमर के पाँच परगनों में मुख्य आर्यभाषा 'पूर्वी मगही' का एक रूप है। लेकिन, इस क्षेत्र में भी तमर-परगना में बँगला 'सराकी' का पुट वर्त्तमान है। इस क्षेत्र में कुछ व्यक्ति नगपुरिया भी बोलते हैं। पूर्वी मगही का वह रूप, जो उपर्युक्त पाँच परगनों में बोला जाता है, 'पँचपरगनिया' कहलाता है। चूँकि, इसका प्रभाव तमर-परगने मे सबसे अधिक है, इसलिए यह तमरिया भी कहलाता है। मानभूम के 'कुरमाली ठार' से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। दोनों का बाहरी अन्तर उनकी लिपियों की विभिन्नता का फल है। मानभूम में 'लिपि' बँगला की है, इसीलिए भाषा का रंग 'बँगला' का मालूम होता है और इसीलिए शब्दों का उच्चारण भी ठीक उसी तरह किया जाता है, जिस तरह बंगाली लोग करते हैं। मानभूम की अन्य जगहों की तरह इस क्षेत्र में भी खासकर 'ओ' का उच्चारण 'अ' की तरह होता है। इसके विपरीत पाँच परगनो में कैथी-लिपि का प्रयोग होता है। भाषा पर हिन्दी का रंग है और 'ओ' का उच्चारण 'ओ' की तरह ही होता है। 'सराकी' बॅगला का प्रभाव 'जन' (व्यक्ति) के स्थान पर खींचकर बोले जानेवाले 'झान' से सिद्ध होता है।

बँगला में 'अ' का उच्चारण 'ओ' होता है। पाँच परगनों में कैथी-लिपि में प्राप्त

---

१. L. S. I, Vol. V, p. 2.

नमूनों में 'कहल' के स्थान पर 'कोहल' (कहा हुआ), 'रहे' के स्थान पर 'राहे' (वह था), 'कतना' के स्थान पर 'कोतना' (कितना) लिखा जाता है। इन उदाहरणों से उसपर बँगला का प्रभाव स्पष्ट झलकता है।

संज्ञा-रूप, मगही के भी ऐसे ही होते हैं। सिर्फ एक ही अपवाद मिलता है— 'चाकर' का बहुवचन 'चाकर गुलागे' होता है।

'मैं' सर्वनाम 'मोएँ' या 'मएँ' की तरह उच्चरित होता है। आदरवाचक सर्वनाम 'आप' के लिए 'राउर' का व्यवहार किया जाता है। यह नगपुरिया से लिया गया है।

'मैं हूँ' के लिए 'हेको' आता है, जो मगही 'हिकूँ' का विकृत रूप है। 'कुरमाली ठार' की तरह 'मैं हूँ' का 'आहो', 'तू है' का 'आहिस', 'वह है' का 'आहे' इत्यादि रूप भी मिलते हैं। इनके अतिरिक्त, इस तरह के रूप भी मिलते हैं—'वह दिया करता था' के लिए 'देतोए'; 'मैं मर रहा हूँ' के लिए 'मोरोतो हो'।

भविष्यत् काल में 'उत्तमपुरुष—एकवचन रूप का अन्त 'मुँ' से होता है। जैसे : 'मैं कहूँगा' के लिए 'कहमुँ'। बँगला बोलियो और 'नगपुरिया' की तरह 'इ', जो अति ह्रस्व ध्वनि है, का प्रयोग होता है। यथा : 'करके' स्थान पर 'कइर'। 'सब' की जगह पर 'सऑब' का व्यवहार होता है। पूर्वकालिक कृदन्त 'कोहन' या 'कहन' जोड़कर बनता है। जैसे : 'उठकर' के लिए 'उठ कहोन' या 'उठ कहन'। 'सद्रीकोल' मे पूर्वकालिक कृदन्त 'खन' जोड़कर बनता है।

ग्रियर्सन ने इस तथ्य को स्पष्ट कर दिया है[1] कि नगपुरिया मे कुछ ऐसे शब्दों और वाक्यों का प्रयोग होता है, जिनका प्रयोग हू-ब-हू 'पँचपरगनिया' या 'तमरिया' में भी होता है। इस एकरूपता के कारण ऐसा भ्रम हो सकता है कि 'पँचपरगनिया' या 'तमरिया' 'नगपुरिया भोजपुरी' का ही एक रूप है। परन्तु, बात ऐसी नही है। 'पँचपरगनिया' या 'तमरिया' मगही का ही एक रूप है।

उड़ीसा के देशी राज्यों में बसनेवाले प्रायः सभी कुरमी पश्चिमी बँगला का ही एक रूप बोलते हैं, यद्यपि उस क्षेत्र के दूसरे आर्यभाषा-भाषी बासिन्दों की मातृभाषा उड़िया है। उड़ीसा के अन्तर्गत मयूरभंज और क्योंझर के कुछ कुरमी अपनी बोली को 'कुरमाली' की विशेष संज्ञा देते हैं। परन्तु परीक्षण से पता चलता है कि यह पूर्वी मगही का ही एक रूप है। इसमें विकृतिकारक तत्त्व बँगला की अपेक्षा उड़िया से अधिक आये हैं। चूँकि, इसके नमूने उड़िया-लिपि में ही लिखे प्राप्त हुए हैं, इसलिए इनमें उड़िया भाषा के उच्चारण की समानताएँ आ गई हैं, जो असल में इनकी अपनी विशेषता नहीं हैं। उड़िया से आये प्रभाव का बाहुल्य है, परन्तु कुछ विचित्र ढंग के विकृत रूप मिलते हैं। उदाहरण के लिए 'था' का पर्यायवाची 'हेलेक' मगही 'हलेक' का ही विकृत रूप है। मगही के प्रथम शब्दांश का 'अ' उड़िया 'हेला' के प्रभाव से बदलकर 'ए' हो गया है और बँगला के प्रभाव से अन्तिम शब्दाश 'ऐक' से बदल कर 'एक' हो गया है। कुल मिला-

---

१. L. S. I. Vol. V, Part 2, p. 326

कर, यह बोली मानभूम के 'कुरमाली ठार' से बहुत-कुछ मिलती-जुलती है। इसमे भी 'ओ' ध्वनि का उच्चारण 'अ' की तरह होता है और सहायक क्रिया का मूल 'अह' भी समान ही है। पूर्वी मगही का अन्तिम क्षेत्र उत्तरी गंगा के क्षेत्र का मालदा .जिला है। यहाँ पूर्वी मगही कुरमियों के द्वारा नहीं बोली जाती है, बल्कि दक्षिणी बिहार की रहनेवाली अन्य जातियों के द्वारा बोली जाती है, जो गंगा पारकर मालदा जिले में बस गई हैं।

जैसा कि अन्य क्षेत्रों मे भी पाया गया है, यह स्पष्ट रूप से मगही का ही एक रूप है। परन्तु, यह स्पष्ट नहीं होता है कि बोली का यह रूप किस तरह मालदा मे बोला जाने लगा। मालदा के उत्तर में पूर्णिया और दक्षिण में भागलपुर एवं सन्ताल परगना में 'बिहारी' भाषा की जो शाखा बोली जाती है, वह मैथिली है। फिर, पूर्वी मालदा की मुख्य भाषा बँगला का एक रूप है, जो इस जिले के दक्षिण में भी बोला जाता है।

ग्रियर्सन ने एक परम्परा की चर्चा की है, जो इसका एक अनोखा कारण बतलाती है। परन्तु, उस परम्परा का कोई आधार अवगत नहीं है। कहा जाता है कि गया और पटना का एक विजेता जनसमूह आगे बढ़ता हुआ मुँगेर, भागलपुर, सन्तालपरगना और मालदा के जिलो को अधिकृत करते हुए इन सभी जगहो में बस गया। मुंगेर और भागल-पुर में वह अपने से मिलती-जुलती मैथिली बोलनेवाली जाति में पच गया, जो पहले से ही इन जिलों में बसी थी, और उसी की भाषा अपना बैठा।

यही हाल सन्तालपरगना के उत्तरी-पश्चिमी अर्द्धांश मे भी हुआ, जहाँ यह जनसमूह उस जिले के मध्य के पहाड़ों के कारण बँगालियों से अलग रहा। चूँकि, ये बंगाली दक्षिण-पूर्व से प्रविष्ट हुए थे, अतः ये पहाड़ के इस ओर ही रह गये। लेकिन, मालदा में वह एक विजाति (बँगला बोलनेवाली जाति) के स्पर्श में आया, जिसमें वह मिल न पाया और और जिसकी भाषा को अपनाने के लिए वह तैयार भी नहीं था। वैसे समय के प्रभाव से उसकी बोली में बँगला के कुछ प्रभावशाली रूप प्रवेश कर गये। इस बोली का स्थानीय नाम 'हिन्दी' या 'खोटाई' है। यह मुख्यतः नागर और उससे मिलते-जुलते वर्णों (Casts)-वाले व्यक्तियों के द्वारा पश्चिमी मालदा में, बोली जाती है। प्रत्येक वर्ण की बोली में थोड़ा-थोड़ा अन्तर भी पाया जाता है।

समूचे मालदा जिले में बोलियों का एक विचित्र मिश्रण मिलता है। एक ही गाँव में रहनेवाले भिन्न-भिन्न वर्णों और जातियों के लोग अपनी-अपनी भाषा बोलते हैं। जैसे : सन्ताली, बिहारी और बँगला। इन तीनो भाषाओं के रूप भी भिन्न-भिन्न वर्णों मे अलग-अलग हैं। इस जगह से प्राप्त पूर्वी मगही के नमूने बँगला-लिपि में प्राप्त हुए हैं। इसी से शब्दों के उच्चारण में उन लोगों को कुछ भिन्न वा विचित्र अनुभूति होगी, जो उसी भाषा को देवनागरी-लिपि में पढ़ने के अभ्यस्त हैं। एक शब्द 'होयछि' द्रष्टव्य है, जो पूर्णिया के पड़ोसी मैथिली से लिया गया है।

मगही-क्रियारूपों की विशेषताएँ

मगही बोली में क्रिया के रूप कर्त्ता एवं कर्म के वाच्यरूप पर आधृत होते हैं। प्रत्येक पुरुष में कर्त्ता एवं कर्म के लिए अभिव्यक्त आदर अथवा अनादर से सम्बद्ध भाव

के अनुसार क्रियारूपों में अन्तर हो जाता है। इसीलिए, तीनों पुरुषों में भिन्न-भिन्न निम्नांकित क्रियारूप होते हैं। यथा—

१. उत्तमपुरुष

कर्म के प्रति आदर और अनादर-भाव के अनुसार उत्तमपुरुष में क्रिया के दो रूप होते हैं—

१. अनादरवाचक कर्म—हम ओकरा[1] देखलिक, देखलियइ।
२. आदरवाचक कर्म—हम उनखा[2] देखलिन, देखलिअइन।

२. मध्यमपुरुष

कर्त्ता एवं कर्म के प्रति सम्मान-असम्मान-भाव के अनुकूल मध्यमपुरुष मे क्रिया के चार रूप होते हैं—

१. अनादरवाचक कर्त्ता : अनादरवाचक कर्म—तूँ नौकरवा के दे`खलें, दे`खल्हीं।
२. अनादरवाचक कर्त्ता : आदरवाचक कर्म—तूँ राजा के दे`खलहिन।
३. आदरवाचक कर्त्ता : अनादरवाचक कर्म—तूँ नौकरवा के दे`खलहु; अपने नौकरवा के दे`खलथी।
४. आदरवाचक कर्त्ता : आदरवाचक कर्म—तूँ राजा के दे`खलहुन; अपने राजा के दे`खलथिन; दे`खलिन, दे`खलकथिन।

३. अन्यपुरुष

कर्त्ता एवं कर्म के प्रति आदर और अनादर-भाव के अनुसार अन्यपुरुष मे क्रिया के चार रूप होते हैं—

१. अनादरवाचक कर्त्ता : अनादरवाचक कर्म—ऊ नौकरवा के दे`खलक, दे`खलकइ।
२. अनादरवाचक कर्त्ता : आदरवाचक कर्म—ऊ राजा के दे`खलकइन।
३. आदरवाचक कर्त्ता : अनादरवाचक कर्म—उ नौकरवा के दे`खलथि, दे`खलकथि।
४. आदरवाचक कर्त्ता : आदरवाचक कर्म—राजा उनखा दे`खलथिन, दे`खलकथिन।

प्रत्येक पुरुष में आदरवाचक कर्म की विशेषता यह है कि इससे सम्बद्ध क्रिया का अन्त सर्वदा 'न' से होता है। 'न' का पूर्ववर्त्ती स्वर प्रायः 'इ' या 'उ' रहता है।

उपर्युक्त क्रियारूपो के अतिरिक्त इस बोली मे ध्वन्यात्मक स्तर पर अर्थ-व्यंजना करने की विशेषता से युक्त कुछ ऐसी क्रियाएँ भी हैं, जिनसे न केवल कर्त्ता और कर्म के प्रति सम्मान-असम्मान-भाव की सूचना मिलती है, अपितु उस व्यक्ति के प्रति भी आदर-अनादर-भाव की व्यंजना हो जाती है, जिसको कोई सूचना दी जाती है। यथा—

१. उत्तमपुरुष

१. अनादरवाचक कर्म के विषय में अनादरवाचक व्यक्ति से कथन—
हम नौकर के दे`खलुक, दे`खलऊँ, दे`खलिअउ।
२. आदरवाचक कर्म के विषय में, आदरवाचक व्यक्ति से कथन—
हम राजा के दे`खलिउन।

१, उसको।
२. उन्हें।

३. अनादरवाचक कर्म के विषय में, आदरवाचक व्यक्ति से कथन—
हम नौकर के दे॑खलिवऽ, दे॑खलमऽ ।

४. आदरवाचक कर्म के विषय में, आदरवाचक व्यक्ति से कथन—
हम राजा के दे॑खलियो ।

२. अन्यपुरुष

१. अनादरवाचक कर्त्ता—कर्म के विषय में, अनादरवाचक व्यक्ति से कथन—
ऊ नौकर के दे॑खलकउ ।

२. आदरवाचक कर्त्ता—कर्म के विषय में, अनादरवाचक व्यक्ति से कथन—
ऊ राजा के दे॑खलकउन ।

३. अनादरवाचक कर्त्ता—कर्म के विषय में, आदरवाचक व्यक्ति से कथन—
ऊ नौकर के दे॑खलकवऽ, दे॑खकवऽ, दे॑खको ।

४. आदरवाचक कर्त्ता—कर्म के विषय में, आदरवाचक व्यक्ति से कथन—
ऊ राजा के दे॑खकथुन, देखलकथुन ।

मगही-भाषा-सम्बन्धी भ्रान्त धारणा का निराकरण

मगही-भाषा और साहित्य के विकास मे एक महान् अवरोधक तत्त्व इसके प्रति हीन-भावना का प्रसार भी रहा है। वर्त्तमान में भी बिहारी भाषाओं में श्रेष्ठत्व की चर्चा छिड़ जाने पर कुछ मगहीतर-भाषी व्यक्ति इसके विषय मे हीन भावना व्यक्त करनेवाली कुछेक मनगढ़न्त किंवदन्तियों को उदाहृत करने से नहीं चूकते। ऐसी किंवदन्तियो का एक आधार डॉ० ग्रियर्सन से ग्रहण किया जाता है।

डॉ० ग्रियर्सन ने[1] मगही के प्रसंग में निम्नांकित पंक्तियो को उद्धृत किया है—

मगध देश है कंचनपुरी,
देस भला पै भाखा बुरी।
रहलूँ मग्गह कहलूँ रे,
तेकरा ला का मरबे रे?

उपर्युक्त पंक्तियो का अर्थ करते हुए डॉ० साहब लिखते हैं—"Magah is a land of gold. The country is good, but the language is vile. I lived there and I have got into the habit of saying 'Re' why 'Re' do you beat me for doing so? अर्थात्, 'मगह देश स्वर्णभू के समान है। यह देश भला है, पर भाषा बुरी है। मैं मगह में रहा, इसलिए 'रे' कहने का अभ्यासी हो गया हूँ। इसके लिए क्या तू मुझे मारेगा रे?'

डॉ० ग्रियर्सन द्वारा उपर्युक्त पाठ्य-सन्दर्भ का उद्धरण यह संकेत करता है कि वे भी इस तथ्य से कि 'मगही-भाषा में शिष्टता का अभाव है', सहमत हैं। मगही पर तथाकथित अशिष्टता का आरोप करनेवाले वक्ता भी इस पाठ्य-सन्दर्भ को उदाहृत करते देखे जाते हैं, अतः इसका शव-परीक्षण आवश्यक है।

---

१. Linguistic Survey of India, Part II, Vol. V.

थोड़ी सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर पता चलेगा कि उपर्युक्त पद्य-सन्दर्भ किसी मगही-वासी की आत्मस्वीकृति न होकर किसी अन्य क्षुब्ध व्यक्ति की आत्मतुष्टिकर अभिव्यक्ति है; क्योंकि किसी स्थान-विशेष का निवासी व्यक्ति अपने से सम्बद्ध क्षेत्र की प्रशंसा कर, फिर अपनी भाषा की बुराई करे और अपनी तद्गत हेय प्रवृत्तियों पर प्रामाणिकता की मुहर भी लगाये, यह असंगत ही नहीं, नितान्त अस्वाभाविक भी है। व्यक्ति का स्वाभाविक संस्कार आत्मश्लाघा का है, आत्मनिन्दा का नहीं। बुरा भी अपनी बुरी वस्तु को बुरी नहीं कहना चाहता। 'अपने दही को कौन खट्टा कहेगा' जैसे मुहावरे इसी तथ्य की पुष्टि करते हैं। अतः, उपर्युक्त कथन किसी मगहवासी की आत्मस्वीकृति नहीं हो सकता।

सूक्ष्म विवेचन करने पर उपर्युक्त पद्य-सन्दर्भ आद्यन्त विरोधाभास से आतंकित है। 'मगह देस है कंचनपुरी' से जो अर्थ उपलब्ध होता है, उसका संकेत है कि 'मगहवासी-समृद्धि-शाली हैं।' इसी तरह, 'देस भला' का अर्थ हुआ, 'इस प्रदेश के निवासी बड़े ही भद्र हैं। व्यक्ति को 'भद्र' विशेषण की प्राप्ति 'भद्र' बनाम 'शिष्ट' व्यवहारों के बल पर होती है और 'भद्रवचन' भद्र व्यक्ति का प्रथम लक्षण है; क्योंकि सर्वप्रथम वास्ता उसी से पड़ता है। ऐसा तो होता नहीं कि दो व्यक्ति जब मिलते हों, तब आतिथेय के द्वारा अतिथि के भोजन-शयन की व्यवस्था पहले की जाती हो और सम्भाषण का क्रम बाद में आता हो। दूसरी पंक्ति का यह विरोधाभास ही उपर्युक्त पद्य-सन्दर्भ को अप्रामाणिक एवं किसी अन्य कच्चे चिड़चिड़े मस्तिष्क की उपज प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है।

अन्तिम दो पंक्तियों से यह स्पष्ट ध्वनित होता है कि वक्ता मगहवासी नहीं है। वह किसी दूसरे प्रदेश का निवासी है और मगह-क्षेत्र में आकर रहने लगा है। वह स्वयं भी स्वीकार करता है कि मगह में वह आकर रहने लगा है और 'एकार' मारने ('रे' बोलने) की आदत का शिकार हो गया है।

यहाँ यह प्रश्न उठता है कि क्या वस्तुतः मगही क्षेत्र के निवासियों में 'रे' के खुले आम प्रयोग का संस्कार वर्त्तमान है। तटस्थ होकर काफी छान-बीन के बाद भी इस प्रसंग में निराशा ही हाथ लगती है। जातीय संस्कारों की परम्परा इतनी जल्द नहीं धुलती। बड़े एवं आदरणीय व्यक्ति के सम्बोधनार्थ न केवल 'अजी, अहो, हो' वगैरह आदरवाचक सम्बोधन-पद मगही में वर्त्तमान हैं, अपितु आदरवाचक क्रियाएँ एवं प्रत्यय भी हैं। उदाहरण के लिए, नीचे के वाक्यों को देखें—

१. अपने का करऽ हऽ हिआँ ? (यहाँ आप स्वयं क्या करते हैं ?)

२. ऊ का करऽ हथिन ? (वे क्या करते हैं ?)

जहाँतक 'रे' सम्बोधन का प्रश्न है, यह मगही में वर्त्तमान अवश्य है, पर उसके प्रयोग की पीठिका वही है, जो संस्कृत, हिन्दी, मैथिली, भोजपुरी आदि भाषाओं में है, अर्थात् किसी छोटे या तुच्छ व्यक्ति के सम्बोधन के लिए ही इसका उपयोग होता है या फिर वाग्युद्ध में शिष्टाचार की सीमाओं का उल्लंघन कर जाने पर। संस्कृत-काव्य मे 'रे' का कोटिशः प्रयोग दीख पड़ता है—

रे रे चातक सावधानमनसा मित्रं क्षणं श्रूयताम् ।

—भर्तृहरि : नीतिशतक, श्लोक-सं० ५१ ।

रे चेतः कथयामि ते हितमिदं वृन्दावने चारयन्

—जगन्नाथ : भामिनीविलास, शान्तविलास, श्लोक-सं० १६ ।

हिन्दी में कोमल सौन्दर्य के बहुश्रुत कवि सुमित्रानन्दन पन्त की रचनाओं में, 'रे' का प्रचुर प्रयोग मिलता है । प्रमाण मे केवल 'गुंजन' संग्रह की रचनाओं को देख जाना ही पर्याप्त होगा । अतः, यदि 'रे' सम्बोधन की वर्त्तमानता किसी भाषा के गर्हितत्व का आधार हो, तो अन्य भाषाएँ तो दूर, सुरवाणी से भी हाथ धो देना पड़ेगा ।

अतः, उपर्युक्त निष्कर्षों को दृष्टिपथ में रखते हुए उद्भूत पद्य-सन्दर्भ का मनोवैज्ञानिक अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि उसके पीछे किसी घटना का हाथ है, तो उसका सम्बन्ध अवश्य ही 'वाग्युद्ध' से होगा, जैसा कि चौथी पंक्ति के 'मरबे रे' से ध्वनित भी होता है । सम्भावना यह प्रतीत होती है कि किसी अन्य प्रदेश का व्यक्ति इस क्षेत्र में आया हो और किसी व्यक्तिगत स्वार्थ के पोषण के लिए जब किसी मगहवासी व्यक्ति से उसी मैत्री न निबह सकी हो, तब 'तू-तू, मैं-मैं' का बाजार गरम हो गया हो । पर, इसी आधार पर किसी 'भले देश' को लांछित बनाने की योजना एक अवांछनीय कार्य है ।

उपर्युक्त लांछन की पुष्टि के लिए जिन दो अन्य पंक्तियों को उदाहृत किया जाता है, वे हैं—

हलिअउ देहाती कहलियो रे,
एकर लगी तूँ मरमे रे।

पर, विश्लेषण करने पर ये पंक्तियाँ भी अपनी सार्थकता प्रमाणित नहीं कर पातीं । यदि 'वक्ता' को इतनी समझ है कि वह देहाती है एवं श्रोता आदरणीय, तो वह अशिक्षित होने के कारण सहज ही उसके प्रभाव में आ जायगा, जो आदरभाव के रूप में अभिव्यक्त होगा, न कि अनादर भाव के रूप में । या फिर जैसा कि दूसरी पंक्ति में 'तूँ' सर्वनाम पद से पता चलता है, श्रोता कोई तुच्छ व्यक्ति है, पर अपनी हेंकड़ी जमाना चाह रहा है । इन मनगढ़न्त प्रयोगों के आधार पर किसी शिष्ट भाषा को लांछित करने का प्रयास किसी भी दृष्टिकोण से औचित्यपूर्ण एवं अभिनन्दनीय नही माना जा सकता ।

बिहारी बोलियों की आन्तरिक एकता

कहा जा चुका है कि बिहारी (मगही, मैथिली और भोजपुरी), बँगला, उड़िया और असमिया भाषाओं की उत्पत्ति मागधी-प्राकृत एवं मागधी-अपभ्रंश से हुई है । इस कारण इनमें व्याकरण, वाक्य-गठन एवं शब्द-प्रयोग-सम्बन्धी बहुत कुछ समानताएँ मिलती हैं । 'बिहार' की तीन भाषाएँ—मगही, मैथिली और भोजपुरी, जिन्हें डॉ० ग्रियर्सन ने 'बिहारी' की संज्ञा दी है, परस्पर और भी निकट हैं; क्योंकि अत्यन्त प्राचीन काल से ही इन तीनों का घना सम्बन्ध रहा है । इनमें भाषागत साम्य भी बहुत अधिक है और इसी कारण विद्वानों नें इन्हें एक ही वर्ग 'बिहारी' के अन्तर्गत रखा है ।

'बिहारी' की सभी बोलियों मे प्रायः समान रूप से निम्नांकित विशेपताएँ वर्त्तमान हैं—

उच्चारण :

१. हिन्दी के मूर्द्धन्य 'ड़्' और 'ढ़्' का उच्चारण 'बिहारी' की सभी बोलियों में 'र्' और 'र्ह' हो जाता है। यथा—

हि०—पड़ा > बि०—परल, परब
हि०—बढ़इ > बि०—बर्ही

२. हिन्दी 'ल्' बिहारी में आकर 'र्' और 'न्' हो जाता है। यथा—

हि०—फल > बि०—फर
हि०—गाली > बि०—गारी
हि०—लंगोट > बि०—लंगोट और नंगोट
हि०—लंगोटी > बि०—लंगोटी, नंगोटी

बँगला में भी ऐसा ही ध्वनि-परिवर्त्तन लक्षित होता है। यथा—

हि०—लक्ष्मी > बँ०—लक्खी और नक्खी
हि०—लंगोटी > बँ०—नेंगूटी

३. 'बिहारी' की सभी बोलियों में एवं 'बँगला' में भी ह्रस्व स्वर एँ, ऐं, ओं, औं वर्त्तमान हैं। यथा—

हि० बेटी > बि०—बेॅटिया
ऐंठा > बि०—ऐॅंठल
ओकरी > ओखरो—ओॅखर
औरत > बि०—औॅरतिया
एक > बँ०—ऍक
व्यक्ति > बँ०—बेॅक्ति
गेहूँ > बँ०—गोॅम

शब्दरूप :

१. हिन्दी के आकारान्त शब्द 'बिहारी' बोलियों में अकारान्त हो जाते हैं। यथा—

हि० घोड़ा > बि० घोड़
तोड़ा > बि० तोड़
जोड़ा > बि० जोड़

२. हिन्दी का सर्वनामपद 'जो' 'बिहारी' में 'जे' हो जाता है।

३. **खड़ी बोली** में उत्तम + मध्यमपुरुष के व्यक्तिवाचक सर्वनाम के सम्बन्धकारक के एकवचन का रूप आदि व्यंजन के साथ 'ए' स्वर रखता है, किन्तु 'बिहारी' में 'ओ' स्वर। यथा—

हि०—मेरा > बि० मोर। हि० तेरा > बि०—तोर।

४. हिन्दी में कर्त्ता और तिर्यक् के रूप ही मिलते हैं, परन्तु 'बिहारी' में करण और अधिकरण के रूप भी मिलते हैं। यथा—

बिहारी—डण्टे (डण्डे से)

घरे (घर में)

५. हिन्दी की तरह 'बिहारी' की तीनों बोलियों में कर्त्ताकारक के संज्ञापदों वा सर्वनामपदों के साथ 'ने' चिह्न नहीं लगता।

हि०—(उसने) किया > बि०—(उ) कैलक।

६. व्यंजनान्त संज्ञापदों के विकारी रूप 'बिहारी' मे 'अ' अथवा 'ए' जोड़ करके बनते हैं। यथा—

हि०—घर से > बि०—घर से; घरें से।

७. 'बिहारी' में 'ल' से अन्त होनेवाले क्रिया-रूप भी मिलते हैं। हिन्दी में ऐसे रूपों का अभाव है। यथा—

हि०—(वह) गया > बि०—(उ) गेल।

८. 'बिहारी' की तीनों बोलियों मे प्रायः समान 'अनुसर्गों' का व्यवहार होता है। केवल यत्र तत्र किंचित् अन्तर पाया जाता है।[1]

९. मागधी-प्रसूत भाषाओ में अनेक स्थलों पर परस्पर साम्य मिलता है। यथा—'बिहारी' और 'बँगला' के सम्बन्धकारक के अनुसर्गों मे पूर्ण साम्य है। यथा—

हि०—उसका घोड़ा > बि०—ओकर घोड़ा

बि०—उहार घोड़ा

क्रियारूप :

१. 'बिहारी' में वर्त्तमानकाल-बोधक क्रियापदों के रूप 'लान्त' होते हैं। यथा—

हि०—देखता हूँ > बि०—देखिला (मगही)

२. 'बिहारी' में भूतकालिक क्रियापद 'अल्' प्रत्यय जोड़कर बनाये जाते हैं। यथा—

हि०—रहा (था) भोज०—रहल

मगही—हल

मैथिली—हल

बँगला मे भी ऐसा प्रयोग-साम्य मिलता है। यथा—बँ०—रोँहिलो।

३. 'बिहारी' की सभी बोलियों में (और बँगला में भी) भविष्यकाल के क्रियारूप—'अब' प्रत्यय संयुक्त करके बनाये जाते हैं। यथा—

हि०—करूँगा > बि०—करब

बँ०—कोरिबो

---

१. दे० 'भोजपुरी भाषा और साहित्य' मे बिहारी अनुसर्गों की तालिका—'उपोद्घात', पृ० १८४ (डॉ० उ० ति० ना०)।

४. 'बिहारी' की सभी बोलियों के क्रियापदों के प्रायः सभी रूपों में निकट का सम्बन्ध स्पष्ट रूप से लक्षित होता है।

५. 'बिहारी में 'णिजन्त (प्रेरणार्थक क्रिया) के रूप साधारण क्रियापदों में 'आव्' प्रत्यय जोड़कर बनाये जाते हैं। यथा—

हिन्दी—कराया > बि०—करावल

६. 'बिहारी' में सकर्मक क्रियापदों में कर्त्तरि प्रयोग ही होता है। मागधी-प्रसूत सभी भाषाओं मे कर्त्तरि प्रयोग चलता है। यथा—

हि०—मैंने घोड़ा देखा; मैंने घोड़ी देखी।

बि०—हम घोड़ा देखली; हम घोड़ी देखली।

७. 'बिहारी' में निषेधात्मक अर्थबोध के लिए जिन, जनि तथा मति शब्दों का व्यवहार होता है।

८. 'बिहारी' की तीनो बोलियों में सम्प्रदान कारक के अनुसर्ग के रूप मे 'बदे', 'खातिर', 'लागि', 'लेल' एवं 'ले' पदो का व्यवहार होता है।

उपर्युक्त पंक्तियों मे 'बिहारी' की तीनों बोलियों के मध्य वर्त्तमान कतिपय साम्य-मूलक तत्त्वों का अत्यन्त संक्षेप में उल्लेख किया गया। इसका उद्देश्य बिहारी बोलियो की आन्तरिक एकता की हल्की झाँकी-भर देना था।

'बिहारी' बोलियो की इस आन्तरिक एकता पर कतिपय विद्वानों ने आक्षेप किये हैं और उसके खण्डन का यथासम्भव प्रयास भी किया है। ऐसे आक्षेपकर्त्ताओं में कतिपय विद्वानों के दृष्टिकोण ध्यातव्य हैं।

यहाँ सर्वश्री डॉ० जयकान्त मिश्र[1], डॉ० सुभद्र झा[2] एवं प्रो० कृष्णकान्त मिश्र[3] के विचारों का सारांश दिया जा रहा है—

१. बिहार की तीनों बोलियों—मगही, मैथिली और भोजपुरी—को एक ही 'बिहारी'-वर्ग मे रखना उचित नहीं है।

२. भोजपुरी हिन्दी के अधिक निकट है। मैथिली-मगही एवं भोजपुरी के बीच गहरी विषमताएँ वर्त्तमान हैं।

३. मगही का स्वतन्त्र अस्तित्व अमान्य है। वह मैथिली की उपबोली है।

अपने विचारो के समर्थन के लिए इन विद्वानों ने डॉ० ग्रियर्सन का आश्रय लिया है। डॉ० ग्रियर्सन[4] ने भाषा और जातीय दृष्टि से 'बिहारी' की तीन बोलियो—मैथिली, मगही और भोजपुरी का दो वर्गों में विभाजन किया है—

पूर्वी वर्ग—मगही, मैथिली

पश्चिमी वर्ग—भोजपुरी

---

१. A History of Maithili Literature. Vol. I, page 57-59.

२. The Formation of the Maithili Language—Introduction.

३. मैथिली साहित्यक इतिहास।

४. L. S. I. Vol V, Part II.

इस प्रकार के वर्गीकरण के लिए उन्होने आधारभूत निम्नांकित तर्क दिये हैं—

१. उच्चारण—मैथिली और (कुछ ही अंश कम) मगही का उच्चारण 'वर्त्तुलाकार' है। भोजपुरी का उच्चारण 'वर्त्तुलाकार' नहीं है।

२. संज्ञा—संज्ञा के रूपों मे, भोजपुरी मे सम्बन्धकारक का एक तिर्यक् रूप भी मिलता है। इसका अन्य दोनो बोलियों में अभाव है।

३. मध्यमपुरुष आदरवाचक सर्वनाम का वह रूप, जो दैनन्दिन वाग्व्यवहार में आता है, मैथिली तथा मगही मे 'अपने' है। परन्तु, भोजपुरी मे आदरवाचक सर्वनाम पद 'रउरे' है।

४. मैथिली में सहायक क्रिया 'है' के लिए 'छै' तथा 'अछि' रूप आता है। मगही मे 'है' का परिवर्त्तन 'हइ' मे हो जाता है।, परन्तु भोजपुरी में इसके रूप 'बाटे', 'बाड़े' या 'हौवे' होते हैं।

५. आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं की भाँति ही इन तीनों बोलियो में भी वर्त्तमानकाल बनाने के लिए सहायक क्रिया में वर्त्तमानकालिक कृदन्त का रूप संयुक्त करना पड़ता है। यथा : मैथिली—देखैत अछ; मगही—देखइत है; भोजपुरी—देखत बाटे।

६. मैथिली और मगही के क्रियापदों की रूप-रचना की पद्धति बड़ी जटिल है, पर भोज-पुरी की क्रियाओं के रूप बॅगला और हिन्दी की तरह बिलकुल सरल हैं।

७. व्याकरण-रचना की दृष्टि से भी मैथिली और मगही में बहुत साम्य है।

८. मैथिली और मगही ऐसी जातियों की बोलियाँ हैं, जो रूढिवादिता की चरम सीमा तक पहुँच चुकी हैं।

९. मगही और मैथिली भाषाओ को बोलनेवाले लोग परस्पर बहुत सम्बद्ध हैं। भोजपुरी बोलनेवालो से इन दोनों की पर्याप्त भिन्नता देखी जाती है।

१०. भोजपुरी और मगही-मैथिली बोलनेवालो में जातीय भिन्नताएँ स्पष्ट हैं। लेकिन, मैथिली और मगही और इनके बोलनेवाले लोगों में भोजपुरी की तुलना में पारस्परिक साम्य बहुत अधिक है।

उपर्युक्त तर्को के आधार पर मगही-मैथिली के साम्य को सिद्ध करते हुए डॉ० ग्रियर्सन ने मगही के सम्बन्ध में निम्नांकित निष्कर्ष दिया है—

'मगही को एक स्वतन्त्र बोली मानने की अपेक्षा आसानी से मैथिली की एक उपबोली के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है।'[1]

मगही के सम्बन्ध में डॉ० ग्रियर्सन के निष्कर्ष पर यथास्थान विचार किया जायगा। पर, बिहार की तीनों बोलियों को जो उन्होने एक ही बिहारी-वर्ग में रखा है और फिर बाद में उनका पूर्वी और पश्चिमी उपवर्गों मे विभाजन किया है, उसके लिए उनके आधारभूत तर्क निम्नाकित हैं—

१. मैथिली, मगही और भोजपुरी में बहुत अधिक साम्य दृष्टिगोचर होता है। ऐतिहासिक, सामाजिक और सास्कृतिक दृष्टि से भी इनका पारस्परिक सम्बन्ध प्राचीन काल

१. 'मगही, indued might very easily be classed as a subdialect of Maithili rather than as a separate dialect.'–L. S. I. Vol. V, Part. II, page 4.

से ही सुदृढ रहा है। उत्पत्ति की दृष्टि से भी तीनों का सम्बन्ध एक ही 'मागधी'-प्राकृत एवं अपभ्रंश से ही है, अतः तीनों को एक ही 'बिहारी'-वर्ग में रखना उचित है।

२. भोजपुरी का क्षेत्र उत्तरप्रदेश में भी पड़ता है। यह आरम्भ से ही अपनी पश्चिमी पड़ोसिन भाषा 'अवधी' (अर्द्धमागधी प्राकृत अपभ्रंश-प्रसूत) के प्रभाव से प्रभावित रही है। इसीलिए, भोजपुरी पर पश्चिमी प्रभाव भी दीख पड़ता है। मगही-मैथिली के साथ ऐसी बात नहीं है। व्याकरण की दृष्टि से मगही-मैथिली का पारस्परिक सम्बन्ध भोजपुरी की अपेक्षा अधिक है। अतः, भोजपुरी को पश्चिमी वर्ग मे और मगही-को पूर्वी वर्ग में रखना उचित है।

डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या[1] ने आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का वर्गीकरण करते हुए मागधी-प्रसूत भाषाओं—मैथिली, मगही और भोजपुरी को सर्वप्रथम 'प्राच्य'-वर्ग के अन्तर्गत रखा है। पुनः कुछ समानताओं और विभिन्नताओं के आधार पर इन तीनों भाषाओं को दो वर्गों मे विभाजित किया है—

१. केन्द्रीय मागधी—मैथिली, मगही।

२. पश्चिमी मागधी—भोजपुरिया (नगपुरिया या सदानी के साथ)।

प्राच्य-वर्ग की तीनों बोलियों को दो उपवर्गों मे विभाजन का आधारभूत मुख्य दृष्टिकोण यह है—

१. मैथिली और मगही की व्याकरण-पद्धति में बहुत समानता दीखती है। उनके धातु-रूप बहुत समान हैं। फिर, दोनों की व्याकरण-पद्धति बड़ी पेंचीली है, जो बाद का विकास मालूम पड़ती है। पूर्ववर्त्ती मैथिली परवर्त्ती मैथिली के पेंचीलेपन से मुक्त है। इसके समर्थन में साहित्यिक प्रमाण भी हैं। मगही के पूर्ववर्त्ती रूपों के अध्ययन के वैसे प्रमाण नहीं उपलब्ध हो सके हैं, फिर भी मैथिली से जो उसकी समानता दीखती है, उस आधार पर उसके सम्बन्ध में भी वैसे ही निष्कर्ष निकाला जा सकता है।

२. इसके धातु-रूपों में मगही-मैथिली से स्पष्ट भेद है। भोजपुरिया, मैथिली-मगही से भिन्न भूमि पर खड़ी होती है। इसका कारण यह है कि आदिकाल से ही उसका सम्बन्ध अपनी पश्चिमी पड़ोसिन 'अवधी' भाषा से रहा है। वह उससे प्रभावित हो गई है।

डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या के मत से डॉ० विश्वनाथ प्रसाद[2] का मत मिलता-जुलता है। वे लिखते हैं—

'भोजपुरी प्राच्य-भाषावर्ग के अन्तर्गत आती है, जिसके पश्चिमो रूप अर्द्ध-मागधी और पूर्वी रूप मागधी—इन दोनों के बीच के प्रदेश से सम्बद्ध हाने के कारण उसमें कुछ-कुछ अंशो में दोनों के लक्षण पाये जाते हैं।'

---

१. Origin and Development of Bengali Language—Introduction. para 52, p. 9.92.

२. सम्पादक : डॉ० विश्वनाथ प्रसाद : 'भोजपुरी के कवि और काव्य' (ले० श्रीदुर्गाशंकरप्रसाद सिंह) 'सम्पादक का मन्तव्य', पृ० ५७।

इस प्रसंग मे डॉ० उदयनारायण तिवारी[1] ने गम्भीरता से विचार किया है। उनके विचारों का साराश नीचे प्रस्तुत किया जाता है—

१. डॉ० ग्रियर्सन ने 'बिहारी' वर्ग में जो मैथिली, मगही और भोजपुरी को रखा है, वह ठीक है; क्योंकि तीनों बोलियों में व्याकारण, शब्द-गठन, वाक्य-योजना आदि की दृष्टि से बहुत साम्य है।

२. तीनो बोलियाँ मागधी-प्रसूत हैं। भोजपुरी को मागधी के टाट से अलग करना ठीक नही।

उपर्युक्त पंक्तियो में 'बिहारी'-वर्ग और भोजपुरी के सम्बन्ध में विद्वानों के विचार प्रस्तुत किये गये हैं। इनसे उन विद्वानों के तर्कों का उत्तर स्वयं मिल जाता है, जो भोजपुरी को मागधी के टाट से अलग करना चाहते हैं और 'बिहारी'-वर्ग में मगही, मैथिली और भोजपुरी को एक साथ रखने से अस्वीकार करते हैं।

अब दूसरा प्रश्न विचारणीय है कि मैथिली-मगही में जो साम्य है, उसके आधार पर मगही को मैथिली की 'उपबोली' माना जा सकता है अथवा नहीं। डॉ० ग्रियर्सन का इस सम्बन्ध मे जो विचार है, उसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। अब उन विद्वानों के मतों का विस्तृत उल्लेख किया जाता है, जो मगही को एक स्वतन्त्र भाषा के रूप मे स्वीकार करना नही चाहते।

डॉ० जयकान्त मिश्र[2] ने अपने पक्ष में निम्नाकित तर्क दिये हैं—

१. मगही का ढाँचा (Texture) मैथिली के ढाँचे से हू-ब-हू मिलता है।
२. दोनों में ऐसी क्रियाएँ हैं, जो अर्थबोध की दृष्टि से सर्वनामों को उनके अभाव में भी अन्तर्भुक्त करती चलती हैं। उदाहरणार्थ : देखलिऔक— देखलथिन्ह—देखलथुन्हि।
३. डॉ० ग्रियर्सन के मतानुसार मगही व्याकरण और मैथिली व्याकरण में निकट का साम्य है। दो ही भिन्न करनेवाली प्रमुख विशेषताएँ हैं : दो कालों (Tenses) का व्यवहार—

(क) अनिश्चित वर्त्तमान—(Present indefinite)
मैथिली—देखइ छी
मगही—देखऽ ही

(ख) अनिश्चित भूत—(Past indefinite)
मैथिली—देखलहुन
मगही—देखहलुन

सहायक क्रिया का रूप मगही में 'ही' और मैथिली में 'छी' (मैं हूँ) है। परन्तु, विचार करने से यह विभिन्नता विशेष महत्त्व की नहीं मालूम पड़ती। 'कारण, बोलचाल में मैथिली 'छी' या 'अछी' का उच्चारण 'अही' या 'ही' हो सकता है। यह एक स्वाभाविक

१. 'भोजपुरी भाषा और साहित्य' तथा 'हिन्दी-भाषा का उद्‌गम और विकास' में 'बिहारी बोलियों की आन्तरिक एकता' शीर्षक निबन्ध।

२. A History of Maithili Literature. Vol. I.

ध्वन्यात्मक परिवर्त्तन-मात्र है। उसी तरह मगही का क्रियारूप—'देखहलुन' मैथिली के 'देखलहुन' का ही अपढ़ लोगों द्वारा विकृत किया गया रूप है। विशुद्ध मैथिली क्षेत्र में भी ये विकृत रूप अपढ़ लोगो द्वारा प्रयुक्त होते हैं और मगही के सम्बन्ध मे तो ग्रियर्सन ने कहा भी है—

'मैथिली और मगही की मुख्य विभिन्नता यही है कि मैथिली उन लोगो के द्वारा सैकड़ों वर्षों से बोली जाती रही है, जो अपनी विद्वत्ता के लिए प्रसिद्ध रहे हैं, जब कि मगही ऐसे लोगों की भाषा रही है, जो वैदिक काल से ही जंगली कहे जाते रहे हैं।"[1]

मिश्रजी का उपर्युक्त तर्कों के आधार पर मत है कि मगही को मैथिली की ही एक उपबोली मानना उसे एक भिन्न बोली मानने की अपेक्षा अधिक सहल है।

प्रो० कृष्णकान्त मिश्र[2] ने भी इसी तरह, निम्नांकित तर्क देते हुए मगही को मैथिली में अन्तर्भूत करना चाहा है—

'मगही नाम की एक उपभाषा प्राचीन मगध-साम्राज्य के केन्द्र-स्थान में बोली जाती रही है।.. बहुत कुछ भेद रहते हुए भी भारतीय भाषाओं के (विशेष कर मागधी के) इतिहास, मैथिली के साथ इसके अत्यन्त साम्य एवं आधुनिक काल मे इसके कोई अपने स्वतन्त्र अस्तित्व के अभाव को देखकर यही उचित मालूम होता है कि मगही भाषी लोगो को हिन्दी-भाषी प्रान्त (भोजपुरी) के साथ मिलाने की अपेक्षा मैथिली-भाषी प्रान्त के संग मिलाने में अधिक सुविधा होगी।'

वे आगे लिखते हैं—

'मगही को साहित्यिक भाषा का रूप अवश्य दिया जाय, लेकिन जब मैथिली साहित्यिक भाषा के रूप में वर्त्तमान है, तब मगही–मैथिली दो बहिनों के रूप मे रहें।"

फिर, ग्रियर्सन का सहारा लेते हुए उन्होंने कहा है—

'...ठीक से विचारने के बाद ग्रियर्सन कहते हैं— 'यथार्थ मे मगही मैथिली का एक प्रभेद है।' (कारण कि) मैथिली-मगही में केवल निम्नांकित भेद वर्त्तमान हैं—

१. मगही में काल के दो विशेष भाग और दिखाई पड़ते है। यथा—

   सामान्य वर्त्तमान—जैसे—'देखही', अर्थात् 'देखैत छी' (मैथिली) तथा

   सामान्य भूत—जैसे–'देखहलूँ', अर्थात् 'देखलहुँ, (मैथिली)।

२. दूसरी बात यह है कि मैथिली क्रिया मे 'छी' लगाता है, किन्तु उसी स्थान मे मगही मे 'ही' लगाता है।

पुनः प्रो० साहब लिखते हैं—

"अब यहाँ यह कहा जा सकता है कि उक्त दोनों भेद मैथिली से मगही को भिन्न नहीं कर सकते; क्योंकि १. क्रिया के अन्त में 'छी' या 'अछि' के साथ-साथ 'अहि' का भी मैथिली में व्यवहार होता है। (यथा—ई पोथी हमर अहि)। 'अछि' से 'अहि' और

१. L. S. I. Vol. V, Part II, page 34.

२. मैथिली साहित्यक इतिहास।

उससे भी 'हि' मात्र रहने से कोई भेद नहीं हो जाता। [वास्तव में—देखिए 'अस्ति' (सं०) 'है' (हिन्दी)]। २. 'देखहलूँ' के स्थान मे मैथिली 'देखलहुँ' है, उसमें भी कोई भेद नहीं है। 'देखलहुँ' का ही परम स्वाभाविक उच्चारण-विपर्यय है—'देखहलूँ'। यह अन्तर किसी भाषा की उपभाषा से होता ही है। इसके अतिरिक्त, यह बात बड़ी स्पष्ट है कि मिथिला के केन्द्र मे जैसी परिशुद्ध 'मैथिली' उच्च जाति के लोग बोलते हैं, वैसी शूद्रादि नीच जाति के लोग नहीं बोलते। इस प्रसंग में ग्रियर्सन के कथनानुसार हम भी कहना चाहते हैं कि 'मैथिली' पण्डित-समाज के अधीन रही, इसीसे परिशुद्ध है। किन्तु, वैदिक काल से ही मगही जाति (Nation) और उसकी भाषा असभ्य नाम से पुकारी जाती रही है। अतः, दोनो मे इतना अन्तर होना स्वाभाविक ही है।

इसी प्रकार, हम मगही को मिथिला के केन्द्र के बीच शूद्रादि की भाषा जैसी स्वीकार करके मैथिली का अंग समझते हैं।"

मगही को मैथिली में पचा जाने के लिए दिये गये उपर्युक्त विद्वानो के सम्पूर्ण तर्कों का साराश निम्नांकित सूत्रो मे प्रस्तुत किया जाता है—

१. मगही-मैथिली के व्याकरण-रूपो मे बहुत अधिक समानता दीखती है।
२. दोनो की जातीय परम्पराएँ बहुत कुछ समान हैं।
३. मगही-भाषी एवं मैथिली-भाषी जनता अनेक दृष्टियो से महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध सूत्रों से संयुक्त है।
४. भोजपुरी के व्याकरणो से मगही-मैथिली के व्याकरण-रूपों में पर्याप्त भिन्नता दीख पड़ती है।
५. मगही-मैथिली मे जो थोड़ी-बहुत व्याकरणगत विभिन्नताएँ मिलती हैं, वे विशेष महत्त्व-पूर्ण नहीं। कारण वे सामान्य 'ध्वन्यात्मक परिवर्त्तनो' के परिणाम-मात्र हैं।
६. जहाँतक इन ध्वन्यात्मक परिवर्त्तनो का प्रश्न है, इनके पीछे कोई विशिष्ट 'विभेदक' कारण नहीं, अपितु वह सहज प्रवृत्ति है, जो प्रायः अशिक्षित जनसमुदाय के मध्य पाई जाती है।
७. इस सम्भावना का आधार यह भी है कि मैथिली विद्वानों की भाषा रही है, जब कि मगही प्रारम्भ से ही गर्हित एवं अशिक्षित जंगली लोगो की।
८. वर्त्तमान मे भी 'मगही' का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं दीखता।
९. मगही-मैथिली में जो सामान्य विभिन्नताएँ प्राप्य हैं, उस स्तर की विभिन्नताएँ किसी भी 'भाषा' एवं उसकी 'उपभाषा' के मध्य प्राप्य होती हैं।
१०. मिथिला के केन्द्र में जैसी परिशुद्ध मैथिली उच्च जाति के लोग बोलते हैं, वैसी शूद्रादि नीच जातियो के लोग नहीं। वैसे डॉ० ग्रियर्सन के अनुसार (मैथिल विद्वानो का यह मत है कि) मैथिली पण्डित-समाज के अधीन रही, इससे परिशुद्ध है; किन्तु मगही जाति एवं उसकी भाषा प्रारम्भ से ही गर्हित एवं उपेक्षितप्राय रही। अत, दोनों (मगही-मैथिली) में जो अन्तर मिलते है, वे उपर्युक्त दृष्टिभेद के फलस्वरूप हैं और उक्त रहस्य के खुलते ही 'मगही' को आसानी से 'मैथिली' का एक प्रभेद मान लिया जा सकता है।

उपर्युक्त तर्कों का समाधान बड़ी ही सरलता से प्रस्तुत किया जा सकता है—

१. व्याकरण-रूपों की समानता न केवल मगही-मैथिली के बीच है, अपितु भोज-पुरी के बीच भी वर्त्तमान है।[1] सच तो यह है कि मागधी-प्रसूत सभी बोलियों में कुछ-न-कुछ व्याकरण-साम्य है। डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या का कथन है कि मागधी-प्रसूत सभी भाषाओं की तुलना करने पर पता चलता है कि 'बँगला' और 'असमिया' व्यवहारत. एक ही भाषा है तथा 'उड़िया' भी 'बँगला' और 'असमिया' से घनिष्ठ रूप मे सम्बद्ध है। इतना ही नहीं, मैथिली तथा बँगला-असमिया-उड़िया में भी कुछ अंशो मे सादृश्य है।[2] जहाँतक मैथिली और बँगला के सम्बन्ध का प्रश्न है, इसपर उपर्युक्त सभी विद्वान् सहमत हैं कि मैथिली और बँगला का परस्पर व्याकरणगत साम्य बहुत अधिक है। दोनों की लिपि मे भी बड़ी समानता है। मैथिली और बँगला के मध्य बहुत अधिक साम्य का एक बड़ा प्रमाण यह भी है कि विद्यापति और गोविन्ददास मैथिली के कवि होते हुए भी बँगला के कवि के रूप मे माने जाते रहे हैं। दोनो भाषा-भाषियो मे इन दोनो कवियो को लेकर बहुत दिनो तक पर्याप्त खीचतान भी चलती रही है।

तो क्या उपर्युक्त आधारो पर हम बँगला को मैथिली या मैथिली को बँगला की 'उपभाषा' कह सकते हैं? क्या उपर्युक्त अन्य भाषाएँ एक-दूसरे की उपभाषाएँ कहला सकती हैं? वस्तुतः, मागधी-प्रसूत सभी भाषाओं मे साम्य है। इस क्रम मे हम जितना ही पीछे (प्राचीन युग) की ओर बढ़ते चले जायेंगे, सभी भारतीय आर्यभाषाओं में अधिकाधिक समानताएँ मिलती चली जायेंगी। भोजपुरी, जिसे डॉ० ग्रियर्सन ने 'पश्चिमी वर्ग' में एवं डॉ० चाटुर्ज्या ने 'पश्चिमी मागधी' के अन्तर्गत रखा है, भी मागधी-प्रसूत होने के कारण उच्चारण, संज्ञा-क्रियापद आदि की दृष्टि से मैथिली और मगही से पर्याप्त साम्य रखती है। अतः, एतादृश साम्य कोई ऐसा आधार नही कि जिसके कारण मगही को मैथिली की 'उपबोली' मान लिया जाय।

२. जातीय परम्पराएँ न केवल मगही-मैथिली की, अपितु मागधी-प्राकृत-प्रसूत सभी भाषाओं की बहुत दूर तक मिलती-जुलती-सी हैं। शौरसेनी-प्रसूत हिन्दी से भी उपर्युक्त भाषाओ की जातीय परम्पराएँ बहुत-कुछ मिलती-जुलती हैं। पर, क्या इसी आधार पर उन सभी भाषाओ को उनमे से किसी एक भाषा की उपभाषाओ के रूप में स्वीकार किया जा सकता है?

३. मगही-भाषी एवं मैथिली-भाषी जनसमुदाय मे अन्य दृष्टियो से जो अनेक महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध-सूत्र प्राप्त होते हैं, उनका कारण दोनो की भौगोलिक स्थिति है। सामान्यतया गंगा के उस पार (उत्तर में) मैथिली-भाषी क्षेत्र पड़ता है और इस पार (दक्षिण में) मगही-भाषी क्षेत्र। पर यह कोई ऐसा आधार नहीं, जो दोनों भाषाओं के पृथक् अस्तित्व का विघातक हो।

---

१. भोजपुरी भाषा और साहित्य, 'बिहारी बोलियों की आन्तरिक एकता'।

२. Orig. & Dev. of Bengali Language–Introduction, para 52. page 91-92.

४. इस आपत्ति का बड़ा ही सटीक निराकरण डॉ० उदयनारायण तिवारी ने 'बिहारी बोलियो की आन्तरिक एकता'[१] शीर्षक निबन्ध में किया है।

५. मैथिली-मगही में भी व्याकरणगत कतिपय स्पष्ट विभिन्नताएँ महत्त्वपूर्ण इसलिए हैं कि इनके ही कारण मगही और मैथिली अलग-अलग भूमि पर खड़ी होती हैं। मगही और मैथिली में सबसे बड़ी भिन्नता उनके ध्वन्यात्मक रूपो मे परिलक्षित होती है। एक मैथिली वक्ता के उच्चारण से ही पता चल जायगा कि वह गंगा पार (उत्तर में) रहनेवाला 'मैथिल' है और मगही वक्ता के उच्चारण से स्पष्ट ज्ञात होगा कि यह मगध का रहनेवाला है। यह ठीक है कि सभी का मूल (Root) एक ही है, फिर प्रत्येक भाषा मे जो अपनी क्षेत्रीय विशेषताएँ विकसित हो जाती है, उनकी हम अवहेलना नहीं कर सकते। जबतक ये विशेषताएँ किसी भाषा में जीवित हैं, तबतक उसके किसी अन्य भाषा की उपभाषा बनने का प्रश्न ही नहीं उठता। यही दृष्टिकोण मगही के स्वतन्त्र एवं मान्य अस्तित्व का भी आधार है।

नीचे कुछ उदाहरण दिये जाते है, जिनसे 'बिहारी' बोलियों की पारस्परिक विभिन्नताओ का पता चल सकेगा—

मगही, मैथिली और भोजपुरी की पारस्परिक विभिन्नताएँ[२]

अनुसर्ग[३] (Post positions)

	हिन्दी	मगही	मैथिली	भोजपुरी
कर्म	को	के	कें, कै, को, कौ	कें
सम्प्रदान		ले	ले	ले
करण	से	से, सें, सती	सै, सैं, सों, सं	से, सें
अपादान				
सम्बन्ध	का, की के	केर्	कर्	कें, कर्
अधिकरण	में	मे	मो	में

संज्ञा :

वचन—मैथिली और भोजपुरी संज्ञापदों के साथ 'सभ्' 'सबहि', 'लोकनि', 'लोगनि' को संयुक्त कर बहुवचन के रूप[४] बनाये जाते हैं। यथा—

मैथिली—ए० व० नेना—ब० व०—नेना सभ; नेना सबहि, नेना लोकनि।

भोजपुरी—ए० व० लड़का—ब० व०—लड़का सभ; लड़का लोगनि।

---

१. भोजपुरी भाषा और साहित्य, पृ० १७६–२०१।

२. केवल ऐसे ही उदाहरण दिये जा रहे है, जिनसे तीनों की भिन्नताएँ लक्षित होती है।

३. मगही के अनुसर्गों के विस्तृत अध्ययन के लिए देखिए 'म० व्या० को०'।

४. भोजपुरी भाषा और साहित्य, पृ० १८७।

मगही मे—संज्ञापदो के अन्त में आये दीर्घ स्वर को ह्रस्व कर तथा 'न्' संयुक्त कर एकवचन से बहुवचन के रूप बनाये जाते हैं। यथा : घोरा—ब० ब० घोरन्; घर्—घरन्। इसके अतिरिक्त 'सब' तथा 'लोग' पदों को भी संयुक्त करके बहुवचन के रूप बनाये जाते हैं। यथा—घोरा सब; राजा लोग।

सर्वनाम

आदरसूचक सर्वनाम :

निम्नांकित आदरसूचक सर्वनाम तीनों भाषाओं मे व्यवहृत होते हैं—
मगही—अपने
मैथिली—अहाँ, अहें
भोजपुरी—रउरॉ, राउर

उत्तमपुरुष सर्वनाम

हि०—मैं

मगही—हम, हम्में
मैथिली—हमे, हम्मे
भोजपुरी—मयँ, हम्

मध्यमपुरुष सर्वनाम

हि०—तू

मगही—तूँ, तों
मैथिली—तोह, तोहें
भोज०—तें

निश्चयवाचक सर्वनाम

हि०—निकटवर्त्ती—यह

मगही—ई
मैथिली—इअ, ऐ, ऐं, एँ, हइ, है, इहै, इहाय
भोजपुरी—हई, एह, एहि, ए, इहाँ

हि०—दूरवर्त्ती—वह

मगही—ऊ
मैथिली—उअं, औ, ओ, इऊ, हौ, वे, वैं, वहाय
भोजपुरी—उन्हि, हुन्हि

सम्बन्धवाचक सर्वनाम

हि०—जो

मगही—जे, जऊन, जौन
मैथिली—जें, जैं
भोजपुरी—जवन

सह-सम्बन्धवाचक सर्वनाम

हि०—सो

मगही—से, तउन, तोन्
मैथिली—तैं, तें
भोजपुरी—ले, तवन

प्रश्नवाचक सर्वनाम

हि०—कौन

मगही—के, को, कऊन, कौन
मैथिली—कें
भोजपुरी—कें वन, कवन

हि०—कोई

मगही—केहू, केऊ, कोई, कउनों, कौनों
मैथिली—कोय, केओ
भोजपुरी—कवनो, कोनो

सर्वनामजात विशेषण

परिणामबोधक विशेषण

हि०—इतना

मगही—एत्तेक, एतना, एत्ता
मैथिली—एतवाय, एतबे, एत्ते
भो०—अतेक, अतहत, इतइत, अतना

इसी प्रकार—'उतना', 'जितना', 'तितना', 'कितना' के रूप में भी भिन्नताएँ हैं।

प्रकारवाचक विशेषण

हि०—ऐसा

मगही—अइसन, ऐसन
मैथिली—एहिन, एहनु, एहन, ऐन्ह, एन्ह, एना, इना, अहिन, ईरंग।
भोजपुरी—अइसन।

इसी प्रकार—'वैसा', 'जैसा', 'तैसा', 'कैसा' के रूपों में भी भिन्नताएँ हैं।

क्रिया

वर्त्तमानकाल

हि०—(मैं) हूँ

मगही— १. ही, हीं।
२. हकी, हिकूँ, हिए, हिअइ

मैथिली—१. छी, छिऐ, छियेन्हि, छिअहु (स्त्री० लि०) छहि।
२. थिकहू, थिकिए, थिकिएन्हि, थिकिअहु।
भोजपुरी—१. बाटी, बाड़ी, बानी।
२. हईं, हवीं।

हि०—(तू) है

मगही—१. हें, हहिन् , ह, हहुन्।
२. हँ, हे, है, हहीं, हकीं, हकिन, हहू, हहो, हहूँ, हखुन।
मैथिली—१. छह, छहुन्हि, छी, छिए, छिऐन्हि, छे, छैं, छहक् , छहिक।
२. थिकह, थिकहुन्हि, थिकहू, थिकिए, थिकिएन्हि, थिकें, थिकैं, थिकहक् , थिकहीक (स्त्रीलिङ्ग) थिकीह, थिकीहि।
भोजपुरी—१. बाट, बाड़, बाटे, बाड़े।
२. हव , हवे।

हि०—(वह) है

मगही—१. है, हहिन् , हैं, हइन।
२. ह, हे, हो, हस, हकै, हखिन, हथ, हथी, हथिन।
मैथिली—१. अछि, छै, छैन्ह, छथि, छथीन्ह, छिक, छहु, छथुन्हि।
२. थिक् , थिकै, थिकैन्हि, थिकह, थिकथीन्हि।
थिकहु (स्त्री० लि०) थीकि, थिकीह, थिकीहि।
भोजपुरी—१. बाड़े, बाड़ें, बाटे, बा, बाय, बाटे, बड़ुए।
२. हवे, ह।

भूतकाल

हिन्दी—(मैं) था

मगही—हलूँ, हली, हली, हलिए।
मैथिली—छलहु, छलिए, छलिऐन्हि।
भोजपुरी—रहलीं।

हि०—(तू) था

मगही—हले, हलहिन, हलहुन, हलें, हला, हलहीं, हलह, हलइ, हलहो, हलहूँ।
मैथिली—छलह, छलहून्हि, छलहु, छलिए, छलिऐन्हि।
भोजपुरी—रहल (अ), रहले।

हि०—(वह) था

मगही—हल, हलन, हलथिन, हलइ, हलखिन, हलथी, हलथिन।
मैथिली—छल, छले, छलेन्हि, छलह, छलथीन्हि।
भोजपुरी—रहले, रहल्।

भविष्यत् काल

हि०—(मैं) हूँगा

मगही—होब, होबइ, होबउ।
मैथिली—होएब।
भोजपुरी—होइबि।

हि०—(तू) होगा

मगही—(अना०)—होबॅ, होबें, होबा, होबे, होबही।
(आद०)—होथी, होखी, होखिन, होथिन, होएब, होअब, होअम, होएम।
मैथिली—अना०—होएबह।
आदर०—होएब।
भोजपुरी—अना०—होइबे।
आद०—होइव, होइबि।
(स्त्री०)—होई।

हि०—(वह) होगा

मगही—(अना०)—होई, होत, होतइ, होतउ।
(आदर०)—होथी, होखी, होखिन, होथिन, होतन।
मैथिली—(अना०)—होएत।
(आदर०)—होएताह्।
भोजपुरी—(अना०)—होई।
(आदर०)—होइहें, होइबि।

मगही-मैथिली के व्याकरणगत रूपों में जो सामान्य एवं महत्त्वपूर्ण विभिन्नताएँ प्राप्त होती हैं, उनका संक्षिप्त तुलनात्मक अध्ययन ऊपर प्रस्तुत किया गया। इनपर विस्तार से विचार करने का अवकाश यहाँ नहीं। पर, उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर ही यह कहा जा सकता है कि न केवल मगही-मैथिली में, अपितु भोजपुरी में जहाँ अनेक व्याकरणगत समानताएँ उनके एक ही स्रोत से निस्सरण का द्योतन करती हैं, वहाँ अनेक ऐसी विभिन्नताएँ भी वर्त्तमान हैं, जो उनके पृथक् अस्तित्व को सुदृढ करती हैं। अतः, बिहारी बोलियों में प्राप्य आन्तरिक एकता को उन्हीं मे से किसी एक के पृथक् अस्तित्व के अपहरण-हेतु किसी भाषा द्वारा साधन न बनाया जाय, तो वही औचित्यपूर्ण एवं मान्य होगा।

उपर्युक्त वक्तव्य मैथिली-प्रेमी विद्वानों के निरपेक्ष दृष्टि के अभाव को ही सूचित करता है। मगध के इतिहास[1] के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि मगध-क्षेत्र प्रारम्भ से ही सभी दिशाओं में प्रगतिशील रहा। इसकी विगर्हणा का मूलभूत कारण ब्राह्मणधर्म की अपेक्षा बौद्धधर्म को प्राश्रय[2] प्रदान करना था, न कि विद्वत्परम्परा का अभाव। "मगही

१. दे०—इसी ग्रन्थ में 'मगध : एक ऐतिहासिक पीठिका'।
२. वही।

साहित्य की अवरोधक परिस्थितियाँ"[1] इस सन्दर्भ में अवलोकनीय हैं। जब मगध-क्षेत्र हीन संस्कृति से अनुप्राणित ही नहीं रहा, तब उक्त आधार पर ध्वन्यात्मक परिवर्त्तनों का स्वीकरण स्वतः असिद्ध हो जाता है।

७. यह सम्भावना अपने-आप में बड़ी हल्की है। कारण जिस समय तक मगही, मैथिली आदि भाषाएँ अपने-अपने पृथक् अस्तित्व में प्रकट हुई, उसके शताब्दियों पूर्व ही मगध-क्षेत्र बौद्धधर्म एवं बौद्ध संस्कृति जैसी उत्कृष्ट एवं क्रान्तिपूर्ण विचारधारा से आप्लावित हो रहा था। फिर, मैथिली, भोजपुरी और मगही की जननी भी तो मागधी थी। वह राजभाषा थी, राष्ट्रभाषा थी। विद्वानों का अनुमान है कि मूल बौद्ध साहित्य मागधी में रहा होगा। फिर, बाद में पालि में उसका अनुवाद हुआ होगा।[2] उस 'मागधी' की ज्येष्ठ पुत्री 'मगही' ही है। इसे स्वयं डॉ० जयकान्त मिश्र[3] भी स्वीकार करते दीखते हैं : 'मगही प्राचीन मागधी-प्राकृत का प्रथम अवशेष है।' इसने अपनी जननी की गरिमा सर्वाधिक पाई है। अतः, इसके गर्हित और जंगली लोगों की भाषा होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

८. वर्त्तमान में मगही के स्वतन्त्र अस्तित्व का अस्वीकरण अपनी अनभिज्ञता का ही परिचय देना होगा। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन एवं डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय[4] के सम्पादन में निकले 'हिन्दी-साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग १६' के अवलोकन से यह भ्रान्त धारणा सहज ही निर्मूल हो जाती है।

९. यह तर्क सारहीन है। उपर्युक्त विवेचन के आलोक में इसके उत्तर देने की अपेक्षा नहीं रह जाती।

१०. अन्तिम तर्क-सन्दर्भ मे प्रथम वक्तव्य का उत्तर ऊपर दिया जा चुका है। जहाँ तक डॉ० ग्रियर्सन के वक्तव्य एवं उनके आधार पर विशिष्ट निष्कर्ष निकालने का प्रश्न है, कतिपय तथ्य ध्यातव्य हैं—

(क) मैथिल विद्वान् डॉ० ग्रियर्सन द्वारा भोजपुरी को 'बिहारी'-वर्ग[5] में सम्मिलित

१. दे० इसी ग्रन्थ मे, पृ० ६१–७१।

२. दे० इसी ग्रन्थ में 'मगही भाषा : एक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि'।

३. A History of Maithili Literature, Vol. I, p. 28 (Maghi is in a way the most direct remnant of the Ancient Magadhi Prakrit.)

४. दे० हिन्दी-साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग १६ मे 'मगही लोक-साहित्य'।

५. डॉ० जयकान्त मिश्र ने (A History of Maithili Literature, Vol. I, p. 57) इस सम्बन्ध में एक पत्र डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या को लिखा था—

'व्यवहारतः मैथिली और मगही मे सारी विशेषताएँ समान रूप से मिलती है।...अतः, यदि हम 'बिहारी' पद का प्रयोग करना ही चाहते है, तो ऐसा मगही एवं मैथिली के सम्मिलित बोध के लिए ही किया जाय।'

इसके उत्तर में डॉ० चाटुर्ज्या लिखते है—

"अगर वैसा सम्भव हो सके (वह यह कि यदि मगही-भाषी, साहित्यिक माध्यम के रूप में मैथिली को स्वीकार कर सकें), तो बिहार की भाषा-सम्बन्धी स्थिति बड़ी ही सरलीकृत हो जाय

करना अप्रामाणिक एवं अनौचित्यपूर्ण मानते हैं, पर स्वानुकूल वक्तव्य (कि 'मगही' को 'मैथिली' की उपभाषा मान लिया जा सकता है) को अपने अभीप्सित अधिकार का घोषणापत्र, ऐसा क्यों ? क्या प्रथम की तरह डॉ० ग्रियर्सन का यह निष्कर्ष भी उपर्युक्त विवेचन के आलोक में भ्रामक एवं अप्रामाणिक नहीं माना जा सकता ?

(ख) इस सम्भावना का पुष्ट आधार यह भी है कि उस समय डॉ० ग्रियर्सन को जो सूचनाएँ प्राप्त हुई थीं, वे वैसा निष्कर्ष देने के लिए पर्याप्त नहीं थी। मगही भाषा एवं साहित्य की दिशा मे हुए नवीन अन्वेषणो से कम-से-कम वर्त्तमान में तो ऐसा ही प्रतीत होता है।

(ग) स्वयं डॉ० ग्रियर्सन ने जिस आधार पर उक्त निष्कर्ष निकाला था, उसका ऊपर यथावसर खण्डन प्रस्तुत किया जा चुका है।

(घ) यदि मगही-मैथिली में किसी एक को शेष का प्रभेद मानने की आवश्यकता अनुभूत भी हो, तो मागधी-प्राकृत से सीधा सम्बन्ध रखने के कारण मगही को 'उपभाषा' के रूप में स्वीकृत करने का प्रस्ताव करना औचित्यपूर्ण नहीं होगा।

(ङ) जहाँतक ध्वन्यात्मक रूपों के साम्य और असाम्य का प्रश्न है, नीचे मगही, मैथिली, भोजपुरी एवं बँगला की एक-एक 'कहानी' दी जा रही है, जिनका अध्ययन ही प्रत्येक के पृथक् अस्तित्व को प्रमाणित कर देगा।

मगही

एगो बूढा हल। ओकरा चार गो बेटा हलन। उ लोग अपने में खूबे झगड़ा करते हलन। जब बूढ़ा के मरे के दिन नगीच अलई, तो उ अप्पन चारों लड़कन के बोलैलक। घबड़ा के चारो बेटा बाप के पास पहुँचल। बड़का लड़कवा पुछलक—अपने काहे ला बोलैली हे ? मन तो ठीक हे न ? बूढ़ा कहलक—तू जाके लकड़ी के एगो बोझा ले आओ। बड़का लड़कवा ओही कैलक। तब बूढ़ा, अलगे-अलगे लड़कन के लकड़ी के गट्ठर तोड़े ला कहलक। लकड़ी न टूटल। तब उ कहलक—लकड़ी के गट्ठर खोल दऽ। आउर एक-एक लकड़ी ले के तोड़ऽ। लकड़ी टूट गेल। बाप कहलक—मिल के रहे से तोरा कोई बरबाद न कर सकत। हमरा बाद तूँ लोग मिल के रहिहऽ। सरम से सिर झुका के बेटा सब बाप के वचन देलन—हम सब मिल के रहब।

और मैथिली एवं मगही मिलकर 'बिहारी' भाषा का निर्माण करें। पर, मुझे भय है कि जबतक मैथिली नाम, वहाँ वर्त्तमान है, वैसा करने में मगही-भाषी जन उत्साह नहीं दिखलायेंगे। (अतः) मैथिली के विद्वानों को, जो पटने में वर्त्तमान हों, शीघ्र ही मगही-विद्वानों से इस विषय में सम्पर्क स्थापित करना चाहिए और फिर दोनों मिलकर मगही-मैथिली को एक भाषा 'बिहारी' की संज्ञा से अभिहित कर सकते हैं। ...भोजपुरी, अपनी कुछ खास मौलिकता रखती है और केन्द्रीय मागधी से एक सीमा तक दूर जा पड़ी है। ......इसीलिए मैंने इसे 'पश्चिमी मागधी' के रूप में वर्गीकृत किया है।" (डॉ० चाटुर्ज्या ने प्रत्युत्तर के मध्यभाग में जो 'भय' प्रकट किया हैं, वह भी 'मगही' के स्वतन्त्र अस्तित्व को ही पुष्ट करता है।)

मैथिली

एक बूढ़ छल। ओकरा चारि गोट बेटा छलेक। ओ सभ अपना में बहुत झगड़ा करैत छल। जखन ओही बूढ़क मरबाक समय समीप आएल ते ओ अपन चारू बेटा कें बजओलक। चारु बेटा हड़बड़ाए कें बापक समक्ष आएल। जेठका बेटा पुछलकैक—अहाँ हमरा किएक बजाओल अछि? मोन तँ बढ़ियाँ अछि किने? बूढ़ बाजल—तो जाइ आ जाकए जारनिक एक बोझ लएने आबह। जेठका बालक ओहिना कएलक। तखन ओ बूढ़ फुटा-फुटा कए प्रत्येक बेटा कें जारनिक बोझ तोड़ए कहलकि। ओ बोझ नहि टुटि सकल। तखन ओ जरनिक बोझ खोलि देयए कहलकेक। ओ एक-एक जारनिक काठी तोड़ए कहलेकेक। जारनि टुटि गेलेक। बाप कहलके—मिली कए रहला सँ तोरा सभके केओ नाश नहि कए सकेत छौ। हमरा मुइला पर तों सभ मिलीजुलि कए रहबऽ। लाज सँ नतमस्तक भए ओ सभ बाप के वचन देलक जे हम सभ हिलि-मिलि कए रहब।

भोजपुरी

एगो बूढ़ा रहल। ओकरा चार गो बेटा रहलन स। उ लोग आपस में खूब झगड़ा करत रहे। जब बूढ़ा के मरे के दिन निकट आइल त उ अपना चारो लड़कन के बुलवलन। घड़बड़ा के चारों पुत्र पिता के नजदीक अइलन। बड़का लड़का पुछलस—रउवाँ काहे खातिर बुलवनि हों? तबियत त ठीक बा नऽ? बूढ़ा कहलन—तू जाइ के लकड़ी के एगो बोझा ले आवऽ। बड़का लड़का ओइसही कइलन। तब बूढ़ा अलगे-अलगे लकड़ी के गठरी तोड़े के कहलन। लकड़ी ना टूटल। तब उ कहलन—लकड़ी के गठरी खोल दे अवरु एक-एक गो लकड़ी ले के तोड़। लकड़ी टूट गइल। पिता कहलन—मिलके रहला पर तहनी लोग के केहू बरबाद ना कर सकि। हमरा बाद तहनी लोग मिल के रहिहऽ। लज्जा से सिर नवा के लड़का लोग पिता के वचन दिहल कि उ लोग मिल के रही।

बँगला

एकटी वृद्ध छिल। ताहार चार छेले छिल। ताहार निजेदेर मध्ये भीषण झगड़ा कोरित। जखन ताहार मरिवार दिन निकटे आसिल तखन से छेलेदेर डाकिल। भय पाइया चारि छेलेइ पितार काछे आसिल। बड़ छेले बलिल—'आपनि केन डेकेछेन? शरीर भाल आछे तो? वृद्ध बलिल—तूमि जाइया काठेर एकटी बोझा निये एसो। बड़ छेले ताहाइ करिल? तखन वृद्ध आलादा-आलादा छेलेदेर काठेर बोझाटि भाँगिते बलिल। बोझाटि भाँगिल ना। तखन बलिल—काठेर बोझा टि खुलिया फेलो एवं एकटी-एकटी काठ भाँग। काठ भाँगिया गेलो। तखन पिता बलिल—मिलिया मिलिया थाकिले केह तोमादेर नष्ट करिते पारिबे ना। आमार परे तोमरा मिलिया मिशिया थाकिबे। लज्जाय माथा हेंठ करिया छेलेरा पिता के बलिल जे ताहारा मिलिया मिशिया थाकिबे।

उपर्युक्त पंक्तियों में मगही से मैथिली और भोजपुरी की जो व्याकरणगत भिन्नताएँ दिखाई गई हैं, उनका उद्देश्य चर्चित प्रत्येक भाषा के स्वतन्त्र अस्तित्व को मान्य प्रमाणित

करना-मात्र है, 'बिहारी' बोलियों की मूलभूत एकता पर किसी प्रकार का व्याघात पहुँचाना नहीं। इस सम्बन्ध में डॉ० विश्वनाथ प्रसाद एवं डॉ० सुधाकर झा[1] के विचार ध्यातव्य हैं–

"यद्यपि बिहार की बोली जानेवाली तीन बोलियो—भोजपुरी, मगही और मैथिली ने अपने मे भाषा-सम्बन्धी कुछ ऐसी विशेषताएँ विकसित की हैं, जो उनके बोलने की पद्धति को एक विशेष छाप (स्वतन्त्र अस्तित्व) देती हैं। लेकिन, उनके स्थानीय रूपों में कोई टूट (Break) नहीं है। उनके शब्दकोश और व्याकरण-पद्धति में इतनी मूल एकता है और पारस्परिक बोधगम्यता और व्यापकता इतनी स्पष्ट है कि उनको एक ही वर्ग 'बिहारी' के अन्तर्गत करना अपेक्षित है। ग्रियर्सन ने भी ऐसा ही किया है।"

मगही बोली या भाषा

एक प्रश्न उठ सकता है—मगही बोली है या भाषा? भाषाविज्ञान के विद्वानों के मतानुसार भाषा उसे कहते हैं, जिसके द्वारा मनुष्य-समाज के प्राणी परस्पर भावों और विचारो का आदान-प्रदान लिखकर या बोलकर करते हैं।[2] इस दृष्टि से विचार करने पर मगही 'भाषा' ही सिद्ध होती है, कारण मनुष्य समाज का एक विशिष्ट भाग इसके माध्यम से परस्पर भावों और विचारों का आदान-प्रदान लिखकर या बोलकर करता है। यहाँ शंका की जा सकती है कि यदि मगही एवं हिन्दी दोनों ही पृथक् अस्तित्व रखनेवाली भाषाएँ हैं, तो दोनों के मध्य सम्बन्ध क्या है? इसका समाधान यथास्थान प्रस्तुत किया जायगा।

डॉ० मनमोहन गौतम ने भाषा के विभिन्न रूपो पर विचार करते हुए उसके इन भेदों की चर्चा की है—भाषा-सामान्य, बोली, विभाषा, भाषा, राष्ट्रभाषा, राज्यभाषा साहित्यिक भाषा (विशुद्ध साहित्यिक भाषा तथा साहित्यिक भाषा) एवं कृत्रिम भाषा। इनमें 'भाषा-सामान्य' बोली, विभाषा एवं भाषा पर प्रस्तुत किये गये दृष्टिकोण विचारणीय हैं। 'भाषा-सामान्य' में उन्होने व्यापक स्तर पर भाषा के स्वरूप का विचार किया है और कहा है—'सामान्य रीति से भावों के व्यक्तीकरण (के माध्यम) का नाम भाषा है।'[3] तत्पश्चात् 'बोली', 'विभाषा' एवं 'भाषा' मे उन्होने निम्नाकित ढंग से अन्तर बतलाया है—'घर या सीमित क्षेत्र मे बोली का व्यवहार होता है। इसे स्थानीय भाषा कह सकते हैं। विभाषा का क्षेत्र बोली की अपेक्षा विस्तृत होता है। बोली ही धीरे-धीरे विभाषा बन जाती है। इसका स्वरूप परिमार्जित एवं शिष्ट होता है। कई विभाषाओं में व्यवहृत होनेवाली एक शिष्ट-परिगृहीत विभाषा ही भाषा कहलाती है। बोली विभाषा बनती है और विभाषा भाषा।'[4]

---

१. Linguistic Survey of Sadar Subdivision of Manbhum & Dhalbhum. p. 8.

२. भोजपुरी के कवि और काव्य, पृ० १५।

३. भाषाविज्ञान : डॉ० मनमोहन गौतम, एम्० ए०, पी-एच्० डी०, पृ० ६६।

४. भाषाविज्ञान, पृ० ६७।

इस दृष्टि से हिन्दी भाषा है एवं मगही, मैथिली, भोजपुरी आदि[1] की नाईं विभाषा। मगही बोली नहीं कही जा सकती, कारण यह घर की बोलचाल तक ही सीमित नहीं है। इसका क्षेत्र अपेक्षाकृत विस्तृत एवं इसका स्वरूप परिमार्जित तथा शिष्ट है।

फिर, भाषाविज्ञान में 'भाषा' के साथ 'बोली' पद का प्रयोग उतने हल्के स्तर पर नहीं किया जाता, जिससे व्युत्पन्न ध्वनि 'घर की बोलचाल' तक ही उसे सीमित कर दे। वस्तुतः, ये दोनों सापेक्ष सम्बन्ध रखनेवाले पद हैं। जॉर्ज ग्रियर्सन ने दोनों के मध्य स्थित सापेक्ष सम्बन्ध का विश्लेषण बड़े अच्छे ढंग से किया है। उनके अनुसार "भाषा और बोली में प्रायः वही सम्बन्ध है, जो पहाड़ तथा पहाड़ी में है। यह निस्संकोच रूप से कहा जा सकता है कि एवरेस्ट पहाड़ है और हालबार्न पहाड़ी है, किन्तु इन दोनों के बीच की बिभाजक रेखा को निश्चित रूप से बताना कठिन है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी 'दार्जिलिंग' के पहाड़ को, जो ७५०० फुट ऊँचा है, पहाड़ी और 'समोडन' को, जो केवल ३५०० फुट ऊँचा है, पहाड़ कहते हैं। भाषा और बोली का प्रयोग भी प्रायः इसी प्रकार से शिथिल रूप में होता है।"[2]

उपर्युक्त विश्लेषण के आलोक में कहा जा सकता है कि मगही एक 'भाषा' है, पर हिन्दी का विचार करते समय उसकी 'विभाषा' के रूप में मान्यता है। जिस तरह पहाड़ एवं पहाड़ी के सारभूत तत्त्व एक ही होते हैं, पर क्षेत्र-विस्तार एवं स्थिति के अनुसार उनका पहाड़-पहाड़ी नामकरण किया जाता है, उसी प्रकार मगही मे 'भाषा' कहलाने के आधारभूत तत्त्व प्रायः सभी-के-सभी विद्यमान हैं, पर क्षेत्र-विस्तार एवं स्थिति के अनुसार वह हिन्दी की विभाषा मान्य होती है।[3]

किसी भाषा के 'भाषा' कहलाने के आधारभूत तत्त्व निम्नांकित होते हैं—

१. क्षेत्र-विस्तार ;
२. तद्भाषी जनसमुदाय ;
३. अभिव्यक्ति की पर्याप्त क्षमता ;
४. समृद्ध लोक-साहित्य ;
५. सांस्कृतिक साहित्य ;
६. जातीयता एवं तज्जन्य संस्कारों तथा परम्पराओं के बोधक लक्षणों की संवहन-क्षमता ;
७. व्याकरणिक संगठन ;

---

१. ये है— मैथिली, मगही, भोजपुरी, अवधी, बघेली, छत्तीसगढी, बुन्देली, ब्रज, कनउजी, राजस्थानी, मालवी, कौरवी, पंजाबी, डोगरी, कॉगड़ी, गढ़वाली, कुमाऊँनी, नेपाली, कुलुई एवं चम्बियाली। विशेष के लिए : हिन्दी-साहित्य का बृहद् इतिहास, १६वाँ भाग देखिए।

२. भारत का भाषा-सर्वेक्षण : जॉर्ज ग्रियर्सन; अनु० डॉ० उदयनारायण तिवारी, पृ० ४२।

३. "इस प्रकार, यह कहा जाता है और सामान्य लोगों का विश्वास भी यही है कि गंगा के समस्त कॉठे मे, बंगाल और पंजाब के बीच, अपनी अनेक स्थानीय बोलियों-सहित, केवल एकमात्र प्रचलित भाषा हिन्दी ही है। एक दृष्टि से यह ठीक है और इसे अस्वीकार नही किया जा सकता।" —वही, पृ० ४२।

८. उच्चारण-पद्धति ;
९. साहित्यिक अभिव्यक्ति की सुगमता ;
१०. अपनी लिपि आदि ।

मगही में इन आधारभूत तत्त्वों का अन्वेषण करने पर वह 'भाषा' ही सिद्ध होती है, कारण ये सभी तत्त्व उसमे मिल जाते हैं ।

क्षेत्र-विस्तार की दृष्टि से मगही भाषा ही मानी जायगी, कारण यह पर्याप्त विस्तृत क्षेत्र में परस्पर विचारों के आदान-प्रदान के माध्यम का काम करती है । "यह समस्त गया जिला, समस्त पटना जिला एवं हजारीबाग, पलामू, मुँगेर तथा भागलपुर के बड़े भागों में बोली जाती है । छोटानागपुर के उत्तरी पठार में भी मगही प्रचलित है । राँची पठार के पूर्वी किनारे से मानभूमि तक पूर्वी मगही का क्षेत्र है । यहाँ से वह पश्चिम की ओर मुड़ जाती है और राँची के दक्षिण किनारे होती उड़िया-भाषी सिंहभूमि के उत्तर में पहुँचकर पुनः आदर्श मगही के रूप में परिणत हो जाती है । सन्तालपरगना के उत्तर गंगा पार बँगलाभाषी मालदा जिला है, जिसके पश्चिमी हिस्से पर मगही का अधिकार है । सरायकेला और खरसावाँ, बामरा और मयूरभंज मे भी पूर्वी मगही बोली जाती है ।"[१]

तद्भाषी जनसमुदाय की दृष्टि से मगही-भाषियों की वर्त्तमान अनुमित संख्या ९८,९०,००० है, जो बिहारी की कुल आबादी का ३३'४% है ।[२] अभिव्यक्ति की इसमें पर्याप्त क्षमता वर्त्तमान है । कोई ७वीं ८वीं शती से ही यह मगध-जनपद के पारस्परिक विचारों, आकांक्षाओं एवं सुख-दुःख की अभिव्यक्ति का माध्यम बनी रही है ।[३] इसका लोक-साहित्य पर्याप्त समृद्ध है[४], विशेषकर इसकी लोककथाएँ तो अपना सानी नहीं रखतीं । शैली एवं विषय दोनों ही के वैविध्य की दृष्टि से वे स्पृहणीय हैं । इसका सांस्कृतिक साहित्य 'बौद्ध सिद्धों' के साहित्य के रूप में सुरक्षित है और अपनी जातीयता[५] तथा तज्ज्जन्य संस्कारों

---

१. हिन्दी-साहित्य का बृहत् इतिहास : षोडश भाग (हि० का लो० सा०), मगही लोक-साहित्य, पृ० ३९ ।

२. वही, मगही लोक-साहित्य, पृ० ४० ।

३. कोई भाषा 'भाषा है या बोली' इसके दो आधार स्व० कृष्णदेव प्रसाद, एडवोकेट ने बतलाये है—पात्रता एवं योग्यता । पात्रत्व की दृष्टि से मगही 'भाषा' कहलाने की अधिकारिणी है । उनके ही शब्दो मे "सिद्धों की कृतियाँ प्रायः प्राचीन मगही में है । बौद्ध सिद्धों का समय आठवीं शताब्दी का आरम्भ माना जाता है । उस समय के सिद्धों ने 'मगही' को अपने भावों तथा विचारों को प्रकाशित करने का माध्यम बनाया था, जिससे प्रकट है कि मगही सिद्धयुग से पहले भी मगधप्रदेश की जनता की भाषा रही होगी और अपने विचारों को जनता तक पहुँचाने के उद्देश्य से ही सिद्धो ने उसे अपनाया था । इसलिए, मेरी समझ में मगही अति प्राचीन प्राकृत (से प्रादुर्भूत) होने के नाते 'भाषा' कहलाने की पात्री है ।" —पंचदश भाषा-निबन्धावली, पृ० २२ ।

४. विशेष के लिए देखिए—
(क) मगही भाषा और साहित्य (पं० लो० निबन्धावली, बि० रा० भा० परिषद्, पटना)
(ख) मगही लोक-साहित्य (हि० सा० बृ० इतिहास, षोडश भाग)
(ग) मगही लोकगीतों में जनचेतना ('समाज' पत्र; बनारस से प्रकाशित)

५. 'एक अन्य तथ्य भी इस भेदकरण को प्रभावित करता है । यह जातीयता है ।'
—भारत का भाषा-सर्वेक्षण : जार्ज ग्रियर्सन, पृ० ४४ ।

तथा परम्पराओं के बोधक लक्षणों की संवहन-क्षमता उसमें पर्याप्त मात्रा में है। यह उस मगध-जनपद की भाषा रही है, जिसकी जातीयता का अपना इतिहास है और वैदिक काल से अद्यावधि वह सुरक्षित है।

व्याकरणिक संगठन एवं उच्चारण-पद्धति के निजी वैशिष्ट्य के कारण भी मगही का भाषात्व सिद्ध है। व्याकरणिक संगठन में शब्दरूपों—धातुरूपों की प्रवृत्तियों, शब्दों के पारस्परिक सम्बन्ध, पारस्परिक बोधगम्यता, क्रियापद, सहायक शब्दादि का विचार किया जाता है। इस दृष्टि से हिन्दी-मगही में जो अन्तर है, उसकी हल्की झाँकी स्व० कृष्णदेवप्रसाद ने यत्र-तत्र अपने लघु निबन्ध 'मगही-भाषा और साहित्य' में दी है।[1] उच्चारण-पद्धति में उसका निजी वैशिष्ट्य ही विभिन्न भाषा-भाषियों में मगही-भाषी की पृथक् सत्ता के द्योतन मे समर्थ हो पाता है।

साहित्यिक अभिव्यक्ति की सुगमता का किंचित् अनुमान वर्त्तमान मे उसमें हो रहे साहित्य-सर्जन के वैविध्य एवं उच्च स्तर से लगाया जा सकता है।[2] मगही-भाषा की अपनी लिपि है, जिसे 'कैथी' लिपि कहते हैं। वैसे, सुविधा के लिए इसके विद्वानों ने देवनागरी लिपि को ही प्राश्रय दिया है।

---

१. यथा—"हिन्दी से मगही मुहावरो का बडा अन्तर है। जैसे 'गाली' शब्द को लें। खडी बोली में प्रयोग है—'गाली देता है।' मगही में—'गारी बक्र हइ।' 'गारी पढना' अथवा 'गारी पाडना' का विशेष अर्थ है। जैसे—किसी की मौसी को किसी ने पूछा कि क्या वह तुम्हारी भाभी है? यदि जानकर पूछता है, वह 'गारी पाडता है।' और अनजाने, तो वह कहेगा कि "हत्। हमरा गारी पड़त।'

—'पंचदश लोकभाषा-निबन्धावली', पृ० १५।

उसी तरह उसी पृष्ठ पर 'र' और 'ल' को लेकर परिलक्षित होनेवाली विचित्रताएँ भी द्रष्टव्य है।

२. देखिए 'मगही का उच्चतर साहित्य' (हिन्दी-साहित्य का बृहत् इतिहास—'मगही लोक-साहित्य,' पृ० ७६–७८)

तृतीय अध्याय

मगही शब्द-भाण्डार

मगही शब्द-भाण्डार अर्थव्यंजना और अपने शब्दों के निरुक्ति-क्रम में मूल स्रोतों के भाषावैज्ञानिक अध्ययन के दृष्टिकोण से स्पृहणीय महत्त्व रखता है। इस भाषा में जिन शब्दों के बहुल प्रयोग उपलब्ध होते हैं, उनके उद्गम-स्रोत अनेक हैं। इस दृष्टि से उनका मुख्य तीन वर्गों के अन्तर्गत अध्ययन किया जा सकता है—

(क) प्रथम वर्ग मे वे शब्द आते हैं, जो संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि से होते हुए परम्परागत रूप में मगही में आये हैं। यथा —

धर्म > धम्म > धरम; सर्प > सप्प > साँप आदि।

(ख) दूसरे वर्ग में वे शब्द आते हैं, जो मूलतः वेदों में मिलते हैं, पर संस्कृत > प्राकृत > अपभ्रंश > हिन्दी आदि में उनकी विकास-परम्परा अभी तक खोजी नहीं जा सकी है। यथा—गाय के सद्यः जात शावक को वेद में 'धरुण' कहते हैं, पर मगही में उसके लिए 'लेरू' या 'लेरुआ' शब्द का प्रयोग होता है। इसी तरह वेद में गर्भघातिनी गाय को 'बेहद' और मगही में 'लड़ायल' तथा भोजपुरी में 'लड़ाइल' कहते हैं। वेद में बाँझ गाय को 'वशा' तथा मगही में 'बहिला' कहते हैं। इसी भाँति संस्कृत का 'सुगृहिणी' शब्द मगही में 'सुगही' और 'सुग्गी' के रूप में मिलता है, जिसकी मार्मिक व्यंजना अपूर्व है।

(ग) तीसरे वर्ग में वे 'स्थानीय' शब्द आते हैं, जिनका सम्बन्ध वेदो से नहीं जोड़ा जा सकता। ऐसे शब्दों की संख्या बड़ी समृद्ध है। केवल विविध जातियों के पास जाकर यदि उनके पेशे से सम्बद्ध शब्द एकत्र किये जायँ, तो विराट् शब्दकोश तैयार हो जायगा।

उपर्युक्त वर्गों में अध्येय शब्दों को व्याकरणिक अध्ययन की दृष्टि से 'तद्भव' शब्द ('क' और 'ख' वर्ग के शब्द) एवं देशज शब्द (वर्ग 'ग' के शब्द) माना जा सकता है। इनके अतिरिक्त वर्त्तमान मगही में 'तत्सम' पदों का प्रयोग भी बहुलता के साथ सुलभ है। यही नहीं, इसमें अन्य प्रान्तीय भाषाओं से आये, अनार्य एवं विदेशी भाषाओं से आये शब्दों का भी पुष्कल प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। इस दृष्टिकोण से मगही शब्द-भाण्डार में सम्मिलित पदों का अध्ययन निम्नांकित वर्गों के अन्तर्गत किया जा सकता है—

१. तद्भव ;
२. तत्सम ;
३. देशज ;
४. भारतीय अनार्य भाषाओं से आये शब्द ;

५. अन्य प्रान्तीय भाषाओं से आये शब्द ;
६. विदेशी भाषाओं के शब्द और
७. अन्यान्य ।

१. तद्भव

कहा जा चुका है, मगही शब्द-समूह के वे शब्द, जो प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं से चलकर मध्यकालीन भा० आ० भाषाओं में अद्यावधि प्रयुक्त होते चले आ रहे हैं, वे 'तद्भव' कहलाते हैं यथा—

राजा > राय, राव, भ्राता > भाई, क्षेत्र > खेत, दक्षिण > दहिन, प्रसार > पसार, पर्वत > परबत, हल > हर, प्राण > परान, गल > गर, पिप्पली > पीपरि, गालि > गारि, श्रृंगाल > सियार, घोटक > घोड़ा, पर्पट > पापड़, कीट > कीड़ा, प्रस्तर > पत्थल, पक्ष > पख, दण्ड > डाँड़, कर्दम > किदोड़ा, सर्पण > ससरन, अन्यस्थ > अनकर ।

हिन्दी के तद्भव शब्दों में अकारान्त शब्दों का प्रायः हलन्त उच्चारण होता है। मगहीभाषी कुछ क्षेत्रों[1] मे हिन्दी की ही परम्परा अपनाई जाती है, परन्तु कुछ क्षेत्रों[2] में अकारान्त शब्दों के अन्त्य स्वर का दीर्घीकरण[3] हो जाता है—

सं०	हि०	गया जिला और पश्चिमी पटना	पूर्वी पटना और दक्षिणी मुँगेर
हस्त	हाथ्	हाँथ्	हँत्था
कर्ण	कान्	कॉन्	काना
भक्त	भात्	भात्	भत्ता
ग्राम	गाँव्	गॉव्	गामा
धर्म	घाम्	घाँम्	घामा
जल	जल्	जल्	जला

कहा जा चुका है कि मगही में तद्भव शब्दों का ही बाहुल्य है । कारण, मगही में शिष्ट साहित्य की रचना बहुत कम हुई है । यह मगही-भाषी जनता के प्रतिदिन के व्यवहार की भाषा है, अतः इसमें साहित्यिक कृत्रिमता का पूर्ण अभाव है । इसमें 'कृष्ण' के स्थान पर 'किसुन' या 'कान्हा' के प्रयोग को ही प्राथमिकता दी जाती है ।

मगही में व्यवहृत तद्भव शब्दों में बहुत-से ऐसे शब्द भी हैं, जिनका सम्बन्ध प्राचीन भारतीय आर्यभाषा के साहित्यिक रूप (संस्कृत) से जोड़ना मुश्किल हो जाता है । इस कोटि के शब्द प्रायः मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषाओं में से होकर मगही में आये हैं । यथा : प्राकृत के शब्द—

पेट, बाप, ऊँघना, कोट आदि ।

---

१. गया जिला और पश्चिमी पटना ।
२. पूर्वी पटना और दक्षिणी मुँगेर ।
३. मगही भाषा और साहित्य—पंचदश लोकभाषा-निबन्धावली, पृ० १२—२२ ।

२. तत्सम

मगही में तत्सम, अर्थात् संस्कृत के विशुद्ध शब्दों की संख्या बहुत कम है। तत्सम शब्दों का व्यवहार प्रायः शिक्षित और उच्चवर्ण के लोगों में सीमित है। सामान्य जनता केवल कुछ प्रचलित तत्सम शब्दों का व्यवहार करती है। यथा—देह, दिन, राणा आदि।

मगह-क्षेत्र में इन दिनों शिष्ट साहित्य की रचनाएँ भी तेजी से हो रही हैं। कुछ पुस्तकें[1] प्रकाशित हुई हैं और पत्रिकाएँ भी प्रकाशित हो रही हैं। इनमें परिनिष्ठित मगही का रूप देखने को मिलता है। गम्भीर निबन्धों, कथा-कहानियों, नाटकों और कविताओं में तत्सम प्रधान भाषा का पर्याप्त व्यवहार मिलता है। परन्तु, यह व्यवहार केवल लिखित रूप में ही सुरक्षित है। उच्चारण मे आकर तत्सम शब्द पूर्णतः मगही ध्वनियों को अपना लेते हैं, अथवा यों कहें कि तत्सम शब्दों का मगहीकरण हो जाता है। यथा—

इन्द्र > इन्नर, गृह > गिरही, कर्म > करम, देवेन्द्र > देमिन्नर आदि।

३. देशज

देशज शब्द को भारतीय वैयाकरणों ने 'स्थानीय शब्द' की संज्ञा दी है। ये शब्द देश के क्षेत्र-विशेष मे स्वयं ही निर्मित हो जाते हैं। इनका मूलरूप न संस्कृत में प्राप्त होता है, न प्राकृत में। ये स्वतन्त्र होते हैं। ग्राम में कृषि, मजदूरी, कारखानों, कल-पुरजों, यातायात के साधनों, पशुओं, घरों के भागों, औजारों और पेड़-पौधों के बोध से सम्बद्ध ऐसे अनेक स्वतन्त्र शब्द मिलते हैं, जिनका सम्बन्ध संस्कृत या प्राकृत से नहीं जुड़ पाता।

मगही में ऐसे देशज शब्दों की संख्या बहुत है। सामाजिक रीति-रिवाजों, धार्मिक उत्सवों, देवी-देवताओं, व्यावसायिक साधनों, दैनिक कार्य-व्यापारों आदि से सम्बद्ध अनेक शब्द 'मगही' में मिलते हैं, जो क्षेत्रीय हैं और जिनका उद्गम ग्रामों में ही माना जा सकता है।

देशज शब्दों को दो श्रेणियों मे विभक्त किया जा सकता है—

(क) सामान्य देशज शब्द, जो प्रायः सम्पूर्ण मगही-भाषी क्षेत्र में प्रचलित हैं ; और

(ख) स्थानीय देशज शब्द, जो क्षेत्र-विशेष के मगही-भाषियों में प्रचलित हैं।

क. सामान्य देशज शब्द :

थोथा, थेथर, थूथन, तेवइया[2], छाती, पहुँचा[3], छकब, डोंगी[4], डाभ[5], डम्हक[6], घोघरमूँहा, टेढ़ा, थपकन, थुथ्थुर आदि।

१. दे० इसी ग्रन्थ में—'मगही का मुद्रित साहित्य।'
२. स्त्री।
३. कलाई।
४. नाव।
५. कच्चा नारियल, जिसमें पानी भरा रहता है।
६. पका।

घर बनाने के क्रम में आनेवाले उपकरणों में से कुछ के नाम—पाटा[1], रूसा[2], कूँची[3], बँसुली[4], कदनी[5], साहुल[6], बिलायती कदनी[7], चीप्स[8], गेंती[9], भाड़ा[10] सुतरी[11], बल्ला[12], बाकल[13], टोना[14], कालिफ[15], थोक[16], कड़ाही[17], बेलचा[18],

---

१. लकड़ी का एक औजार, जो जमीन या दीवार समतल करने के काम में आता है।

२. लकड़ी का एक समतल टुकड़ा, जिसकी पीठ पर हैण्डल लगा रहता है, और जिसे पकड़कर पलास्तर चिकना किया जाता है। इस चिकनाने के काम को 'रसियाना' कहते हैं।

३. नारियल के रेशे या खजूर के डण्ठल को थकूचकर बनाया गया एक मोटा ब्रुश, जो पलास्तर पर पानी छीटने और उसे झाडने के काम में लाया जाता है।

४. लोहे का एक औजार, जिसके अग्रभाग मे मजबूत लोहे की एक पत्ती लगी रहती है। इस औजार मे लकड़ी का बेंट लगा रहता है। यह ईंटा तोड़ने, गढ़ने आदि के काम में लाया जाता है।

५. बरगद के पत्ते की शकल का लोहे का एक औजार, जिसमें लकड़ी का बेट लगा रहता है। इसकी मदद से दीवार की जोड़ाई, पलस्तर आदि कार्य किये जाते है।

६. एक छोटा-सा पीतल का गोलाकार औजार, जिसका निचला छोर नुकीला होता है और जिसके ऊपरी-छोर के मध्य मे एक छेद होता है, जिससे एक डोरी लटकाई जाती है। लकड़ी की एक पतली पट्टी, जिसके मध्य मे छेद होता है, और जिसके एक छोर छिद्र के केन्द्र के बीच की दूरी गोले की त्रिज्या (**radius**) के बराबर होती है, इस डोरी मे पहनाई रहती है। यह ईंटे की जोडाई को ऊँचाई की लाइन को ऊर्द्ध्व (**vertical**) रखने में सहायक सिद्ध होती है।

७. बरगद के पत्ते की शकल का लोहे का एक औजार, जिसमे लकड़ी का एक बेंट लगा रहता है। यह कमरे की जमीन चिकनी करने तथा मुजेक बनाने मे काम आता है।

८. पत्थर या ईंट के छोटे टुकड़े, जो बालू तथा सीमेण्ट के साथ मिलाकर ढलाई के काम मे लाये जाते है।

९. लोहे का एकमुँहा नुकीला औजार, जिसमे लकड़ी का बेंट लगा होता है। यह जमीन कोड़ने के काम में लाया जाता है।

१०. बाँसो की मदद से तैयार किया हुआ मचान, जिसपर जुड़ाई का सामान रखकर, राज मजदूर मकान उठाते है।

११. पटुआ, नारियल, मूँज इत्यादि की बनी पतली रस्सी, जो मचान आदि बाँधने के काम में आती है।

१२. लकड़ी की मोटी, गोलाकार तथा लम्बी वस्तु, जो ढलाई किये जानेवाली छत की आधार होती है।

१३. लकड़ी का चीरा तख्ता, जो कालिफ करने के काम मे आता है।

१४. बाँस का छोटा-छोटा टुकड़ा, जो भाड़ा बाँधने में काम आता है। इसे 'डगरला' भी कहते है।

१५. बल्लों और बाकलो के आधार पर, मिट्टी का बिछावा हुआ समतल, जिसपर छत की ढलाई होती है।

१६. लकड़ी या बाँस का लम्बा आधार, जो बल्लो को नीचे से सहारा देकर कालिफ और छत के बोझ को सँभालने मे सहायक होता है।

१७. लोहे की चादर का बना करीब-करीब अर्ध-गोलाकार बरतन, जो मिट्टी, बालू, सीमेण्ट आदि सामान को ढोने के काम मे आता है।

१८. सूप की आकृति का लोहे का एक औजार, जिसमें हैण्डल लगा रहता है। इससे पत्थर के टुकड़े, बालू आदि उठाये जाते है।

कुदार[१], छैंटी[२], छर्री[३], खरचाल[४], हथौड़ी[५], छेनी[६], आरी[७], खनती[८], नहला[९], टिपकारी[१०], फुलबाँस[११], चाली[१२], खेल[१३], धुरमिस[१४], सुम्भी[१५], फट्ठी[१६] ।

इस श्रेणी में कुछ अनुकरण वाचक शब्द भी सम्मिलित हैं। यथा—खटखट, चटपट, लटपट, हड़हड़, पटपट, धड़धड़ आदि ।

इस वर्ग में कुछ ऐसे वर्णवाले शब्द भी मिलते हैं, जिनका द्वित्व हो जाता है। यथा—सकत > सक्कत, अतर > अत्तर, गप > गप्प, ठाठ > ठट्ठर, बड़ा > बड्डी, मूका > मुक्का, चूटी > चुट्टी, जूता > जुत्ता आदि ।

---

१. लोहे का एक चौड़ा औजार, जिसमें बेंट लगा रहता है और जो मिट्टी कोड़ने तथा मसाला बनाने के काम में आता है। इसे 'कुदाल' या 'चपरा' भी कहते हैं।
२. बाँस या बेंत की बनी अर्द्ध्व गोलाकार टोकरी, जो मकान बनाने के सामानों को ढोने के काम में आती है।
३. पत्थर या झामा (जला हुआ ईंटा) के छोटे-छोटे टुकड़े, जो छत या जमीन की ढलाई के (सीमेण्ट और बालू के साथ) काम में आते है।
४. लकडी के फ्रेम में लगा लोहे का जाल, जो बालू, छर्री आदि के चालने के काम में आता है।
५. लकडी का बेंट-लगा लोहे का एक औजार; जो काँटी आदि ठोकने के काम में आता है। भारी 'हथौड़ी' को 'हथौडा' कहते है।
६. लोहे का एक औजार, जो लम्बा, मोटा और मुँह पर पतला या नुकीला होता है। यह लोहा काटने या लोहे के चदरे मे छेद करने के काम में आता है।
७. लोहे का लम्बा, पतला और दाँतवाला औजार, जो लकड़ी चीरने के काम में आता है। बड़ी 'आरी' को 'आरा' कहते है। लोहा काटने की भी 'आरी' होती है।
८. लोहे के मोटे छड़ का लम्बा औजार, जो मुँह पर पतला होता है। यह जमीन खनकर छेद करने में काम आता है।
९. कढनी के आकार का छोटा औजार, जो पलास्तर या दीवार का कोना चिकनाने के काम में आता है।
१०. ईंटों के जैन (joints) को सीमेण्ट से नहला द्वारा भरने की क्रिया।
११. छोटा और पतला बाँस, जो चाली बनाने के काम में आता है।
१२. फुलबाँसों की मदद से बाँधकर तैयार किया हुआ चटाई की शकल का एक तख्त, जो भाड़ा पर रखा जाता है। इसी पर चढकर दीवार की जोड़ाई तथा पलास्तर का काम किया जाता है।
१३. लकड़ी के समतल पाट के मध्य में स्थित शीशे के भीतर पारा बन्द किया हुआ एक औजार, जिसकी मदद से जमीन को समतल किया जाता है। जब पारा मध्य में स्थित एक लकीर के बीच आ जाता है, तब जमीन का समतल होना ज्ञात होता है। 'खेल' अँगरेजी शब्द 'लेवल' (level) का अपभ्रंश है।
१४. खड़ा बेंट लगा हुआ लोहे का एक भारी टुकड़ा, जिसका निचला हिस्सा समतल होता है। यह जमीन पीटकर कड़ा करने के काम में आता है।
१५. लोहे का बना दोमुँहा औजार, जिसमें लकड़ी का बेंट लगा रहता है। यह जमीन कोड़ने के काम में आता है।
१६. बाँस को फाँककर बनाये गये लम्बे और पतले टुकड़े। यह छप्पर, टट्टी वगैरह बनाने के काम में आता है।

ख. स्थानीय देशज शब्द :

कहा जा चुका है कि इनका प्रयोग क्षेत्र-विशेष में प्रचलित है। जैसे—पटना जिला के राजगृह में 'बुतरू' (लड़का), दानापुर में 'लइका' (लड़का) प्रचलित है, जब कि गया जिले में इनका बिलकुल व्यवहार नहीं मिलता। गया जिले में 'बुतरू' या 'लइका' के स्थान पर 'बाबू' (लड़का) शब्द का व्यवहार होता है।

इनके अतिरिक्त कुछ और ऐसे शब्द हैं, जो क्षेत्र-विशेष के बाहर सुनाई नहीं पड़ते। यथा—गया जिले में 'अंग्या'[1], 'बिज्जे'[2] जैसे शब्द। पटना में इनका व्यवहार नहीं होता। इसी प्रकार, गया जिले में 'हँसुआ' को 'चिलोई', 'अरुई'[3] को 'पेपची', 'भतुआ' को 'भूरा' कहते हैं।

इस प्रकार, ऐसे अनेक शब्द मगही में मिलते हैं, जो सच्चे अर्थों मे स्थानीय हैं, जो एक ही भाषा-क्षेत्र के एक भाग मे प्रचलित हैं, दूसरे भाग में नहीं।

४. भारतीय अनार्य भाषाओं के शब्द

मगही में कुछ ऐसे शब्द भी वर्त्तमान हैं, जिनका आगम भारतीय आर्यभाषा से नहीं हुआ है। ये अनार्य भाषाओं से आये शब्द हैं, जो हिन्दी तथा बिहारी की सभी बोलियों में वर्त्तमान हैं। यथा—

द्राविड—पिल्ला
मुण्डा — कोड़ी, कौड़ी

द्राविड 'पिल्ला' का व्यवहार पुत्र के अर्थ में होता है। परन्तु, मगही में हिन्दी की ही भाँति 'पिल्ला' का अर्थ 'कुत्ते का बच्चा' होता है। 'कोड़ी' शब्द 'बीस' की संख्या का बोधक है।

५. प्रान्तीय भाषाओं के शब्द

कुछ ऐसे शब्द भी मगही में आ गये हैं, जो भारत के अन्य प्रान्तों की भाषाओ के हैं। जो प्रान्त मगह-क्षेत्र के निकट-सम्बन्ध में रहे हैं, उनसे पर्याप्त शब्द इस भाषा में आ गये हैं। यथा—मगध और बंगाल का बहुत दिनों तक सामाजिक, राजनीतिक और सास्कृतिक सम्बन्ध रहा है। उद्गम की दृष्टि से भी दोनों क्षेत्रों की भाषाएँ एक ही स्रोत से सम्बद्ध हैं। इसलिए, मगही में बँगला के भी बहुत-से शब्द प्रविष्ट हो गये हैं।

यथा—बासा, भाजा, रसगुल्ला, सन्देस, चमचम, टाना-टानी, बाड़ी, मूड़ी, सिद्ध-चाउर आदि।

इसके अतिरिक्त मराठी भाषा के शब्द भी मगही में मिलते हैं। यथा—चलतू, टिकाऊ, बजारू, लागू आदि।

---

१. निमन्त्रण।

२. भोजन के लिए निमन्त्रित व्यक्तियों को पुनः बुलाना।

३. अरुई—एक प्रकार की तरकारी।

६. विदेशी भाषाओं के शब्द

मगही शब्द-समूह में ऐसे अनेक शब्द हैं, जो देशान्तर की भाषाओं से आकर घुल-मिल गये हैं।

शताब्दियों तक भारत विदेशियों के शासन में रहा है, इसलिए स्वाभाविक रूप मे विदेशी भाषाओं का प्रभाव भारतीय भाषाओं पर पड़ा है। मगही भी इसका अपवाद नही। इसमे भी विदेशी भाषाओ के अनेक शब्दो का समावेश हो गया है।

विदेशी शब्द दो प्रधान स्रोतों से आये हैं—

१. इस्लामी और २. यूरोपीय सम्पर्क।

इन शब्दो मे एक प्रकार के वे शब्द हैं, जो कचहरी, पुलिस, सेना, यातायात तथा आदान-प्रदान के साधनों, शिक्षा-संस्थाओं तथा अन्य विदेशी संस्थाओ में व्यवहृत होते हैं। दूसरे प्रकार के वे शब्द हैं, जो विदेशी प्रभाव से आई हुई नवीन वस्तुओं, नूतन वस्त्राभूषण, शृंगार-प्रसाधन, भोजन-मनोरंजन, मशीनों-कारखानों तथा दैनिक प्रयोग के अन्य पदार्थों के नाम के रूप मे व्यवहृत होते हैं।

इनमें से अधिकाश शब्द आवश्यकतानुसार मगही मे गृहीत हो गये थे। इनका व्यवहार आजतक हो रहा है। परन्तु, ये शब्द ऐसे घुल-मिल गये हैं कि सहसा विदेशी नहीं प्रतीत होते। मगही के ध्वनि-समूह और व्याकरण से वे शासित हैं। अतः, उनका कलेवर ही बदल गया है।

विद्वानों ने विदेशी शब्दों को दो श्रेणियों में रखा है—तत्सम और तद्भव।

तत्सम :

विदेशी शब्दों के तत्सम रूप केवल कुछ शिक्षितों द्वारा ही लिखित एवं उच्चरित होते हैं। यथा—

दारोगा, नज़र, मैजिस्ट्रेट, बैंक, स्कूल, कोर्ट, स्टेशन, टाइम, नम्बर, डाक्टर, बोटल आदि।

तद्भव :

सामान्य जनता विदेशी शब्दों के तद्भव रूपों को ही अपनाती है। यथा— दरोगा, नजर, मजिट्टर, जज, कलट्टर, निस्पिट्टर, टीसन, टेन, टैम, लैन, बंक,[1] ललटेम, इस्कूल, कचहरी, लम्बर, डकदर, बोतल, मउअत[2], हरगिस्सो[3], अदमी, नगीचे, सेलाव, तलाओ, बगइचा आदि।

इसी प्रकार, 'सय्यद यूसुफपुर' के लिए 'सदीसोपुर'[4], 'कमरउद्दीन गंज' के लिये 'कर्बुदीगंज'[5], 'तुरबते औलिया' के लिये 'तिरपोलिया'[6] एवं 'केवाँ सिकोह' के लिए 'कोआखोह'[7] का व्यवहार होता है।

---

१. बैंक। २. मौत। ३. हरगिज। ४. ५. ६ और ७. पटना नगर के विविध मुहल्लों के नाम।

खण्ड २

मगही-साहित्य

प्रथम अध्याय

विषय-प्रवेश

लोक-साहित्य का सामान्य परिचय

'लोक-साहित्य' का अर्थ है—'लोक का साहित्य'। यहाँ 'लोक'[1] पद से तात्पर्य अथवा अभिप्रेत अर्थ 'विराट् सामान्य जन-समुदाय' का ही है, जिसमें मानव-सभ्यता के विकास के अतीत, वर्त्तमान और सम्भावित चरण-विक्षेप समाहित होते हैं और जो उन समस्त नैसर्गिक प्रवृत्तियों एवं प्रक्रियाओं को प्रतीकित करता है, जो विराट् जन-समुदाय की गतिविधि की परम्पराओं के परिणाम-स्वरूप होती हैं। ऋग्वेद के पुरुषसूक्त के १०।९० मन्त्र मे 'विराट् पुरुष' की व्याख्या में निःसृत उद्गार—

---

१. सिद्धान्तकौमुदी (पृ० ४१७, वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, १९८९) के अनुसार 'लोक' शब्द की निष्पत्ति संस्कृत के 'लोकृ' धातु से 'घञ्' प्रत्यय के मिलने से हुई है। इस धातु का अर्थ होता है—देखना—'लोकृ दर्शने'। इसका लट् लकार मे प्रथम पुरुप (अन्य पुरुष) एकवचन का रूप 'लोकते' होता है। अतः, 'लोक' शब्द का अर्थ हुआ 'देखनेवाला। ऐसी स्थिति में, वह समस्त 'जन-समुदाय', जो 'देखने का कार्य' करता है, 'लोक' कहलाता है।

'लोक' शब्द का व्यवहार अत्यन्त प्राचीन काल से ही जन-सामान्य के अर्थ में होता चला आ रहा है। वेदो मे 'जन' शब्द इसके पर्यायवाची के रूप में व्यवहृत हुआ है। यथा : ऋग्वेद (३।५३।१२) में मन्त्र आया है—

य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टवं।
विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनं॥

ऋग्वेद के पुरुषसूक्त के १०।९०।१४ मन्त्र में 'लोक' शब्द का व्यवहार जीव एवं स्थान दोनों के लिए हुआ है—

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्त्तत।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकान् अकल्पयन्॥

अर्थात्, 'नाभि से अन्तरिक्ष उत्पन्न हुआ, मस्तक से द्युलोक, पैरों से भूमि एवं दिशाएँ तथा श्रोत्र से लोकों का निर्माण हुआ।'

जैमिनीय उपनिषद्-ब्राह्मण (३।२८) में 'लोक' की व्यापकता पर इस मन्त्र द्वारा प्रकाश डाला गया है—

बहु व्याहितो वा अयं बहुतो लोकः।
क एतद् अस्य पुनरीहतो अयात्॥

अर्थात्, 'यह लोक अनेक प्रकार से फैला हुआ है। प्रत्येक वस्तु में यह परिव्याप्त है। प्रयत्न करने पर भी कौन इसे पूर्ण रूप में जान सकता है?'

महर्षि व्यास ने (महाभारत, आ० प०, १।८४) महाभारत की विशेषताओं के वर्णन-प्रसंग में 'लोक' शब्द का 'साधारण जनता' के अर्थ मे व्यवहार किया है। यथा—

अज्ञानतिमिरान्धस्य लोकस्य तु विचेष्टतः।
ज्ञानाञ्जनशलाकाभिर्नेत्रोन्मीलनकारकम्॥

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।

अर्थात् 'वह विराट् पुरुष है, जिसे हजारों सिर, हजारों आँखें एवं हजारों पैर हैं।' उपर्युक्त लोक के विराट् स्वरूप को ही दृष्टिपथ में रखकर कहा गया प्रतीत होता है। कारण 'विराट् लोकपुरुष' को छोड़ परमात्मा के 'पुरुष-रूप' विभ्राट् स्वरूप के तो अन्यत्र दर्शन ही सम्भव नहीं हो सकते हैं। इस विराट् लोक-पुरुष के आचार-व्यवहार, मान्यताओं, धार्मिक आस्थाओं एवं भौतिक गतिविधियों से अनुस्यूत नैसर्गिक संवेदनामयी अभिव्यक्ति ही लोक-साहित्य है, कारण अपने तत्तत् गुणों के उत्कर्ष एवं मार्मिकता में वह बहुत-कुछ

अर्थात्, 'यह ग्रन्थ (महाभारत) अज्ञान-रूपी अन्धकार से अन्धे होकर व्यथित लोक (साधारण जनता) की आँखों को ज्ञानरूपी अंजन की शलाका लगाकर खोल देता है।'

श्रीमद्भगवद्गीता में 'लोक' एवं 'लोकसंग्रह' आदि शब्दों का व्यवहार बहुत स्थलों पर हुआ है। उसमे भी 'लोक' का अर्थ साधारण जनता एवं 'लोकसंग्रह' का अर्थ साधारण जनता का व्यवहार, आचरण एवं उसका आदर्श है।

आधुनिक भारतीय साहित्य मे भी इस शब्द के अर्थ पर विचार किया गया है। यथा : पं० हजारीप्रसाद द्विवेदीजी के अनुसार 'लोक' शब्द का अर्थ 'जनपद' या ग्राम्य नही है, बल्कि नगरों और ग्रामों मे फैली हुई वह समूची जनता है, जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नही है। ये लोग नगर में परिष्कृत, रुचिसम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जानेवाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते है और परिष्कृत रुचिवाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती है, उनको उत्पन्न करते है।'

—जनपद : वर्ष १, अंक १, पृ० ६५।

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दो में—'लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है, उसमें भूत, भविष्य, वर्त्तमान सभी कुछ संचित रहता है। ··अर्वाचीन मानव के लिए लोक सर्वोच्च प्रजापति है। लोक, लोक की धात्री सर्व-भूतमाता पृथ्वी और लोक का व्यक्त रूप मानव, यही हमारे नये जीवन का अध्यात्मशास्त्र है। इसका कल्याण हमारी मुक्ति का द्वार और निर्माण का नवीन रूप है। लोक-पृथिवी-मानव, इसी त्रिलोकी में जीवन का कल्याणतम रूप है।'

—सम्मेलन-पत्रिका : लोक-संस्कृति-विशेषांक : २०१०, पृ० ६५।

डॉ० श्याम परमार के अनुसार—'आधुनिक साहित्य की नवीन प्रवृत्तियों में 'लोक' का प्रयोग गीत, वार्त्ता, कथा, संगीत, साहित्य आदि से युक्त होकर साधारण जनसमाज, जिसमें पूर्वसंचित परम्पराएँ, भावनाएँ, विश्वास और आदर्श सुरक्षित है तथा जिसमें भाषा और साहित्यगत सामग्री ही नही, अपितु अनेक विषयो के अनगढ़ किन्तु ठोस रत्न छिपे है, के अर्थ में होता है।'

—भारतीय लोक-साहित्य, पृ० ११।

अँगरेजी मे 'लोक' का पर्यायवाची शब्द 'फोक' है। 'फोक' (Folk) शब्द की उत्पत्ति 'फोक' (Folc) से हुई है। यह ऐंग्लो सेक्सन शब्द है, जो जर्मनी में Volk के रूप में व्यवहृत होता है। अँगरेजी मे 'फोक' शब्द असंस्कृत और मूढ़ समाज या जाति का द्योतक है। परन्तु, सर्व-साधारण एवं राष्ट्र के अन्य सभी लोगों के लिए भी इस शब्द का व्यवहार होता है। अतः, आंग्ल भाषा में इसके संकुचित और विस्तृत दोनों ही अर्थ मिलते हैं।

कुछ लोक 'जन' या 'ग्राम' शब्द को भी 'फोक' के पर्यायवाची के रूप में व्यवहृत करते हैं। परन्तु, प्रयोग एवं परम्परा को दृष्टिपथ में रखते हुए आधुनिक 'फोक' की अनुरूपता के लिए 'लोक' शब्द ही अधिक उपयुक्त है। ये दोनों शब्द एक दूसरे के लिए प्रतिबिम्ब भाव रखनेवाले हैं।

'लोक' का जीवन ही लोक-साहित्य की आधारशिला है। उसी का साहित्य लोक-साहित्य है।

शिष्ट साहित्य के गुणों को तो आयत्त कर ही लेती है, रसानुभूति में उससे भी कहीं अधिक मार्मिक सिद्ध होती है।

इस लोक-साहित्य के नैसर्गिक निर्माण का इतिहास भी बड़ा मनोरंजक है। कभी मानव प्रकृति-प्रेमी था और प्राकृतिक जीवन व्यतीत करता था। तब वह आडम्बर और कृत्रिमता से दूर रहकर सरल जीवन को अपनाता था। अपने अनुरंजन के लिए उस समय भी वह साहित्य की रचना करता था, पर उसमे न तो रूढियों एवं वादों का झमेला था, न अलंकारों का बोझ और न छन्दों की पीटी जाती लकीर ही। न वह कथाओ के शिल्प-विधान (टेकनिक) पर अपना ध्यान रखता था, न नाटकीय नियमों का पालन करने का बन्धन ही उसे था। वह तो स्वाभाविकता, स्वच्छन्दता एवं सरलता को अपना कर साहित्य की सर्जना करता था। उसका साहित्य विना प्रयास के वैसे ही रचित होता था, जैसे जंगल में पुष्प विना सिंचन और रखवाली के स्वाभाविक ढंग से खिलता है। उसके साहित्य में वही स्वच्छन्दता थी, जो गगनविहारी पक्षी में होती है और वैसी ही पवित्रता एवं स्वच्छता थी, जैसी गंगा की धारा में होती है।

इसमे स्वाभाविक रूप से मानव की आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, लाभ-अलाभ, जीवन-मरण आदि के भाव व्यंजित हुए हैं। इसीसे कहा जाता है कि 'लोक-साहित्य जनता का वह साहित्य है, जो जनता द्वारा जनता के लिए लिखा गया हो, ('द पोयट्री ऑव पीपुल, बाइ द पीपुल, फॉर द पीपुल')।

लोक-साहित्य, परिनिष्ठित साहित्य से कहीं अधिक व्यापक है। इसीलिए, यह परिनिष्ठित साहित्य के लिए उपजीव्य साहित्य का कार्य करता है। इसे ही ध्यान में रख-कर विद्वानों ने लोक-साहित्य की तुलना बहती हुई नदी से की है और परिनिष्ठित साहित्य की किनारों में बँधे हुए जलाशय से। जब जलाशय का पानी सूखने लगता है, तब नदी के पानी से उसकी पूर्त्ति की जाती है; और परिनिष्ठित साहित्य जब विकास की गति में पीछे पड़ने लगता है, तब लोक-साहित्य के अध्ययन से उसे सहायता मिलती है।

परिनिष्ठित साहित्य नियमों के कटघरे में बँधा होता है। उसकी निश्चित अभिव्यंजना-प्रणाली होती है। उसमें रमणीयता लाने के लिए सप्रयास रस, अलंकार, गुण आदि साहित्यिक तत्त्वों की योजना की जाती है। पर, कहा जा चुका है कि लोक-साहित्य इन बन्धनो से मुक्त और स्वच्छन्द होता है। परिनिष्ठित साहित्य वैयक्तिक उद्गारो में सीमित होता है। उसके रचयिता होते हैं और वह लिखित रूप में जीवित रहता है। पर, लोक-साहित्य सामाजिक उद्गारों का प्रतिनिधित्व करता है। उसके रचयिता का पता नहीं चलता और वह मौखिक परम्परा मे ही जीवित रहता है। इसी कारण कुछ विद्वानों ने इसे 'अपौरुषेय' भी कहा है। वेदों को भी 'अपौरुषेय' कहने का सम्भवतः यही रहस्य है। इस दृष्टिकोण को स्वीकृत कर लेने पर भारतीय साहित्य का बहुत बड़ा हिस्सा लोक-साहित्य में अन्तर्भुक्त हो सकता है।

लोक-साहित्य एवं लोकवार्त्ता

लोक-साहित्य की विवेचना करने के पहले लोकवार्त्ता पर प्रकाश डालना आवश्यक है; क्योंकि लोक साहित्य उसी का अंग है।

'लोकवार्त्ता' शब्द अँगरेजी के 'फोकलोर' (Falklore) के पर्यायवाची पद के रूप में प्रचलित है। हिन्दी मे इसके मुख्य रूप से प्रचार करने का श्रेय श्रीकृष्णानन्द गुप्त एवं डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल को है। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने हिन्दी में वैष्णवों के वार्त्ता-सम्बन्धी ग्रन्थों (चौरासी वैष्णवो की वार्त्ता, घरू वार्त्ता आदि) के अनुरूप फोकलोर का 'लोकवार्त्ता' पर्याय स्वीकार किया है।[1] डॉ० सत्येन्द्र[2] भी 'लोकवार्त्ता को ही 'फोकलोर' का पर्यायवाची पद मानते हैं। उनके अनुसार 'लोकवार्त्ता' शब्द विशद अर्थ रखता है। इसके अन्तर्गत उन समस्त आचार-विचारो की सम्पत्ति आ जाती है, जिसमें मानव का परम्परित रूप प्रत्यक्ष हो उठता है और जिसके स्रोत लोकमानस होते हैं, वे लोकमानस, जिनमें परिमार्जन अथवा संस्कार की चेतना काम नहीं करती होती।' वस्तुतः, लौकिक-धार्मिक विश्वास, धर्मगाथाएँ तथा कथाएँ, लौकिक गाथाएँ तथा कथाएँ, कहावतें, पहेलियाँ आदि सभी लोकवार्त्ता के अंग हैं। फोकलोर का प्रचलित अर्थ है—जनता का का साहित्य, ग्रामीण कहानी आदि। पर, उसका विशिष्ट अर्थ है—जनता की वार्त्ता। जनता जो कुछ कहती-सुनती है या उसके सम्बन्ध में जो कुछ कहा या सुना जाता है, उन सबको लोकवार्त्ता कहते हैं, जिस प्रकार प्रत्येक देश की अपनी भाषा होती है, उसी प्रकार उसकी अपनी लोकवार्त्ता होती है। लोकवार्त्ता का उद्गम-स्थल जनता का मानस होता है। इस प्रकार, यदि प्रत्येक देश की लोकवार्त्ता का विधिवत् संग्रह किया जाय, तो प्राचीन से अर्वाचीन काल तक की वहाँ की बौद्धिक, नैतिक, धार्मिक और सामाजिक अवस्था का एक सम्पूर्ण चित्र हमारी आँखों के सम्मुख आ सकता है।

'फोकलोर' के सम्बन्ध में वॉटकिन के विचार द्रष्टव्य हैं—'लोकवार्त्ता बहुत दूर की या कोई बहुत प्राचीन वस्तु नहीं है, बल्कि वह हमलोगों के बीच का ही एक गतिशील एवं जीवित सत्य है। कारण, यहाँ अतीत वर्त्तमान से और अशिक्षित समाज उस समाज से कुछ कहना चाहता है, जो अपने मौलिक, मौखिक एवं लोकतान्त्रिक संस्कृति के मूल और प्रारम्भिक रूपों के मनन से अपनी कलाओं की जड़ तक पहुँचना चाहता है और जिससे उसकी कलाओ के ऐतिहासिक विकास पर प्रकाश पड़ता है।'[3]

'फोकलोर' के पर्याय के सम्बन्ध में विद्वानों में कुछ मतभेद भी है।[4] डॉ० सुनीति-

---

१. भा० लोक-सा०, पृ० १४।

२. ब्र० लो० सा० अ०, पृ० २।

३. Folklore is not something far away and long ago, but real and living among us.. Here the past has something to say to the present and bookless world to a world that likes to read about itself, concerning our basic, oral and democratic culture as the root of arts and as a side light on history.

—अमेरिकन फोकलोर (पाकेटबुक) की भूमिका, पृ० १५।

४. डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने—हिन्दी-साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग १६, प्रस्तावना, पृ० ९–१२ में इसपर विस्तार से विचार किया है।

कुमार चाटुर्ज्या[1] ने 'फोकलोर' के लिए 'लोकायन,' आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी[2] एवं डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय[3] ने 'लोक-संस्कृति' शब्द के प्रयोग का सुझाव दिया है। श्री म० म० पोतदार ने मराठी में इसके लिए 'लोकविद्या', श्री गो० म० कालेलकर ने 'लौकिक दन्तकथा' का व्यवहार किया है। मराठी के पारिभाषिक शब्दकोश में इसके लिए 'जनश्रुति' शब्द मिलता है। अन्यत्र इसके लिए 'लोक-वाङ्मय' और 'लोक-साहित्य' जैसे पर्यायों के प्रयोग भी मिलते हैं। श्रीतिवारी द्वारा 'फोकलोर' के लिए लोकशास्त्र, लोकविज्ञान, लोकपरम्परा, लोकप्रतिभा, लोकप्रवाह, लोकपथ, लोकविधान, लोकसंग्रह, लोकायन आदि शब्दों की ओर भी संकेत किया है, परन्तु विशेष आग्रह 'लोकायन' के प्रति दीखता है।[4]

'फोकलोर' के लिए व्यवहृत अनेक पर्यायों में 'लोकवार्त्ता' शब्द हिन्दी में बहुत प्रचलित है। इसने अपना निश्चित स्थान बना लिया है। अतः, प्रस्तुत ग्रन्थ में 'फोकलोर' के लिए 'लोकवार्त्ता' शब्द का ही व्यवहार किया गया है।

लोकवार्त्ता का महत्त्व और विस्तार

लोकजीवन की धारा अनन्तकाल से अप्रतिहत गति से प्रवाहित होती आ रही है। इसके बीच 'लोकवार्त्ता' विकसित हुई है। 'लोक' की अपरिमित भावनाएँ, शक्ति, साहस, आस्था-विश्वास, ईर्ष्या-द्वेष, राग-विराग, परम्पराएँ, टोने-टोटके, अनुष्ठान, कथाएँ, वेश-भूषा आदि सभी सम्मिलित रूप से इसके गतिशील चेतन अस्तित्व की घोषणा करते हैं।

लोकवार्त्ता के विषय-विस्तार पर शार्लट सोफिया बर्न ने अत्यन्त वैज्ञानिक ढंग से प्रकाश डाला है। उनके ही आधार पर डॉ० सत्येन्द्र[5] ने भी इसपर विचार प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार 'लोकवार्त्ता' शब्द जातिबोधक शब्द के रूप में प्रतिष्ठित हो गया है। इसमें पिछड़ी जातियों मे प्रचलित या अपेक्षाकृत समुन्नत जातियों के असंस्कृत समुदायों मे अवशिष्ट विश्वास, रीति-रिवाज, कहानियाँ, गीत तथा कहावतें आती हैं। प्रकृति के चेतन तथा जड जगत् के भूत-प्रेतों की दुनिया, मानवो के सामाजिक आचार-व्यवहार, जादू, टोना, सम्मोहन, वशीकरण, ताबीज, भाग्य, शकुन, रोग तथा मृत्यु आदि के सम्बन्ध में आदिम एवं असभ्य विश्वास लोकवार्त्ता के क्षेत्र मे आते हैं। इनके अतिरिक्त विवाह, उत्तराधिकार, बाल्यकाल एवं प्रौढ जीवन की सामाजिक प्रवृत्तियाँ, त्योहार, युद्ध, आखेट, मत्स्य-व्यवसाय, पशुपालन आदि विषयों से सम्बद्ध विभिन्न व्यवहार एवं अनुष्ठान ये सभी इसी के अन्तर्गत आते है। इतना ही नहीं, धर्मगाथाएँ, अवदान (लीजेण्ड), बैलेड, किंवदन्तियाँ, पहेलियाँ तथा लोरियाँ भी इसीके विषय हैं। संक्षेप में, लोक की सहज मानसिक परिधि के अन्तर्गत जो भी वस्तु आ सकती है, वह सभी इसके क्षेत्र में परिगणनीय है।

---

१. राजस्थानी कहावतें, भाग १, कलकत्ता, भूमिका, पृ० ११।

२. सम्मेलन-पत्रिका, लोक-संस्कृति-अंक, सं० २०१० (चैत्र-आषाढ) : डॉ० भोलानाथ तिवारी।

३. हिं० सा० बृ० इ०, प्रस्तावना, पृ० ११।

४. सम्मेलन-पत्रिका (लो० सं० वि०), लोकायन और लोक-साहित्य, पृ० ४३६।

सहज इसलिए कि लोकवार्त्ताकार को किसान के हल की आकृति अपनी ओर आकृष्ट नहीं करती, प्रत्युत वे उपचार एवं अनुष्ठान आकृष्ट करते हैं, जिन्हें कृषक हल को भूमि जोतने के काम में लाते समय करता है। लोकवार्त्ताकार जाल या वंशी की बनावट से नहीं, बल्कि उन टोटकों से प्रभावित होता है, जिन्हें मछुआ समुद्र को प्रसन्न करने के लिए करता है।

वास्तव में 'लोकवार्त्ता' आदिम मानव की सहज सामाजिक अभिव्यक्ति है, चाहे वह दर्शन, धर्म, विज्ञान तथा औषध के क्षेत्र में सम्पन्न हुई हो, चाहे सामाजिक संगठन या अनुष्ठानों के क्रम में।

सोफिया बर्न ने 'फोकलोर' के विषय को तीन श्रेणियों में विभक्त किया है, जिन्हें डॉ० सत्येन्द्र ने निम्नांकित रूप से प्रस्तुत किया है[1]—

१. लोकविश्वास एवं अन्धपरम्पराएँ, जो निम्नांकित से सम्बद्ध हैं—

(क) पृथ्वी एवं आकाश से
(ख) वनस्पति-जगत् से
(ग) पशु-जगत् से
(घ) मानव से
(ङ) मनुष्य-निर्मित वस्तुओं से
(च) आत्मा तथा दूसरे जीवन से
(छ) परा-मानवी व्यक्तियों से
(ज) शकुनों-अपशकुनों, भविष्यवाणियों, आकाशवाणियों से
(झ) जादू-टोनों से
(ञ) रोगों तथा स्थानों की कला से।

२. रीति-रिवाज तथा प्रथाएँ—

(क) सामाजिक एवं राजनीतिक संस्थाएँ।
(ख) व्यक्तिगत जीवन के अधिकार, व्यवसाय, धन्धे तथा उद्योग।
(ग) तिथियाँ, व्रत तथा त्योहार।
(घ) खेल-कूद तथा मनोरंजन।

३. लोक-साहित्य—

(क) कहानियाँ—(अ) जो सच्ची मानकर कही जाती हैं।
(आ) जो मनोरंजन के लिए होती हैं।
(ख) गीत सभी प्रकार के
(ग) कहावतें तथा पहेलियाँ
(घ) पद्यबद्ध कहावतें तथा स्थानीय कहावतें।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि लोकवार्त्ता का क्षेत्र बहुत व्यापक है। लोक-साहित्य

१. ए हैण्डबुक ऑव फोकलोर, पृ० ४ तथा ब्र० लो० सा० अ०, पृ० ६–७।

लोकवार्त्ता का ही एक महत्त्वपूर्ण अंग है, जिसमें अनायास भाव से प्राप्त साहित्यिक सौन्दर्य से मण्डित जनमानस की गद्यपद्यात्मक अभिव्यक्तियाँ अन्तर्भावित हैं।

मगही-लोकसाहित्य और उसका वर्गीकरण

अन्य भाषाओं के लोक-साहित्य की तरह मगही भाषा का लोक-साहित्य भी विषय-वैविध्य की दृष्टि से पर्याप्त विस्तृत एवं अनायास भाव से प्राप्त उच्च काव्यात्मक मूल्यों के कारण स्पृहणीय रूप से समृद्ध है। साथ ही, विशाल मगह-क्षेत्र के विस्तृत जन-जीवन के सूक्ष्म पर्यालोचन के लिए यह ऐसे संवेदनशील दर्पण के समान है, जिसमें उनके समस्त आचार-व्यवहार, हर्ष-विषाद, रूढ़ियाँ-आकांक्षाएँ, प्रवृत्तियाँ एवं संस्कार प्रतिबिम्बित हो उठे हैं।

सोफिया बर्न के उपर्युक्त वर्गीकरण में लोक-साहित्य की सामान्य रूपरेखा ही उपलब्ध हो पाई है, किसी स्थान-विशेष के लोक-साहित्य पर विचार करने के लिए वह पर्याप्त नहीं है। भारतीय विद्वानों ने भी अपने-अपने ढंग से लोक-साहित्य के वर्गीकरण किये हैं। जैसे :

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय[1] ने भोजपुरी-लोकसाहित्य का अध्ययन निम्नांकित चार वर्गों के अन्तर्गत प्रस्तुत किया है—

१. लोकगीत (Folk lyrics)
२. लोकगाथा (Folk ballads)
३. लोककथा (Folk tales)
४. प्रकीर्ण साहित्य

डॉ० सत्यव्रत सिन्हा[2] का वर्गीकरण डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय के अनुरूप है।

डॉ० सत्येन्द्र[3] ने ब्रज-लोकसाहित्य को प्रथमतः दो वर्गों में विभक्त किया है—

१. परम्परित और
२. रचित।

इन विद्वानों के विभाजनों को दृष्टिपथ में रखते हुए सम्पूर्ण मगही-साहित्य को निम्नांकित वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

१. परम्पराप्राप्त और
२. मुद्रित।
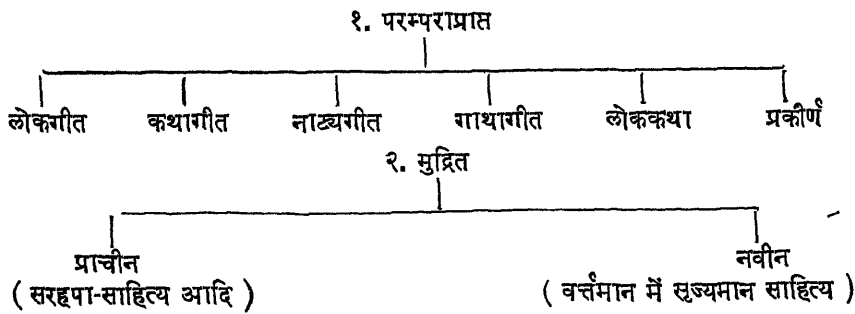
१. भो० लो० सा० अ०, पृ० १४।
२. भोजपुरी लोकगाथा, वक्तव्य (ढ)।
३. ब्र० लो० सा० अ०, पृ० ८१।

१. परम्पराप्राप्त—इस वर्ग मे वह साहित्य आता है, जो परम्परा से चला आया है। इसके रचयिताओं के स्थिति-कालादि का कोई विवरण आज हमें उपलब्ध नहीं।

लोकगीत—लोककवि द्वारा सर्जित ये वे गीत हैं, जिनमें गेयतत्त्व की प्रधानता होती है। इनमें प्रायः विस्तृत कथानकों का अभाव रहता है। इनमें विशेष क्षणों में प्राप्त भावातिरेक की ही प्रधानता होती है। लोकगीतों में मुक्तक-काव्य के कई एक गुण वर्त्तमान मिलते हैं। जिस प्रकार मुक्तक काव्य 'तारतम्य' के बन्धन से मुक्त रहता है एवं उसका प्रत्येक पद स्वयं मे पूर्ण होता है, वैसा ही लोकगीतों में भी होता है। जिस प्रकार मुक्तकों में भी क्रम-विन्यास होता है, पर उनके एक पद दूसरे की अपेक्षा नहीं रखते, उसी प्रकार लोकगीतों में भी कथानक का एक क्रम तो होता है, पर उनका प्रत्येक पद स्वयं में पूर्ण होता है। गेय- पदो (मुक्तकों) की तरह इनमें संगीत-तत्त्व प्रधान रहता है। संगीत यदि इन लोकगीतों का शरीर है, तो विशिष्ट भावातिरेक उनकी आत्मा। इस भावातिरेक का सम्बन्ध सुख-दुःख दोनों से हो सकता है।

लोकगीत प्रायः छोटे होते हैं, पर आकार की संक्षिप्तता के साथ ही भाव की एकतानता उनमे वर्त्तमान रहती है। लोकगीतों में वर्णन की विविधता भी दीखती है, पर वह प्रायः एक ही केन्द्रीय भाव की पुष्टि के लिए प्रस्तुत होती है। केन्द्रीय भाव प्रायः टेक के रूप में वर्त्तमान होता है और वह बार-बार दुहराया जाता है। इस प्रकार, उसका प्रभाव घनीभूत होता चलता है।

गीति-मुक्तको से अनेक गुणात्मक साम्य रखने के बावजूद उनसे लोक-गीतों की भिन्नताएँ भी स्पष्ट हैं—

क. लोकगीतों के रचयिताओं का नाम अज्ञात होता है।

ख. लोककवि सामाजिक लोकभावना में अपने भाव निर्वैयक्तिक स्तर पर मिला देता है। यही कारण है कि लोकगीतों में साधारणीकृत भावों की प्रधानता स्पष्ट होती है।

ग. लोकगीतों के इन साधारणीकृत भावों का सम्बन्ध प्रायः अवसर-विशेष (होली, विवाह, जन्मोत्सव आदि) से होता है।

घ. लोकगीतों में यत्र-तत्र पल्लवित होनेवाली कल्पना की भी अपनी सामाजिकता होती है। यथा : मगही में एक गीत[1] है, जिसका सारांश निम्नांकित है—

'एक हरिणी के पति को राजा दशरथ ने मार दिया था। हरिणी, कौशल्या के पास गई। वे पीढ़े पर बैठी थीं। हरिणी बोली—हरिण का मांस तो रसोईघर में पक रहा है, पर मुझे कम-से-कम खाल दे दो। मैं उसे पेड़ पर टाँगकर देखा करूँगी और समझूँगी कि वह मानो अब भी जीता ही है। माता कौशल्या ने उत्तर दिया—'इससे मेरे राम के लिए खँजड़ी बनेगी।' राम के लिए खँजड़ी बनाई गई, पर जब-जब खँजड़ी बजती थी, तब-तब हरिणी कान उठाकर सुनने लगती थी और उसी ढाक के नीचे खड़ी आँसू बहाती थी।'

इस गीत का कवि अज्ञात है। पर उसने अपनी कल्पना में करुण रस को पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया है। इसमें पल्लवित कल्पना की अपनी सामाजिकता भी स्पष्ट है।

---

१. रामनरेश त्रिपाठी : कविता-कौमुदी, भाग, ५ पृ० ५०–५५।

लोककथा-गीत—लोककथा-गीत में गेयता के साथ-साथ एक सुगठित कथा का भी तारतम्य चलता रहता है। इस दृष्टि से इसे भी गाथागीत की ही श्रेणी में अन्तर्भावित किया जा सकता है। परन्तु, गाथागीतों से इसका क्षेत्र सीमित होता है। इसमें जीवन की वह अनेकरूपता नहीं मिलती, जो गाथागीतों में होती है। इसमें साहित्यिक खण्डकाव्यों की भाँति एक ही प्रधान घटना की सामग्री संकलित रहती है। संगीत-तत्त्व इसमें भी अनिवार्य रूप से वर्त्तमान रहता है।

लोक-नाट्यगीत—'लोक-नाट्यगीत' मे कतिपय तत्त्वों का अन्वेषण सहजभाव से किया जा सकता है। यथा—

क. संगीत-तत्त्व;

ख. कथा-तत्त्व और

ग. अभिनय-तत्त्व।

इन नाट्यगीतों मे खुला मैदान या घर का आँगन ही रंगमंच बन जाता है। गानेवाली रमणियाँ पुरुष और स्त्री दोनो पक्षों का अभिनय करती हैं। दर्शक केवल स्त्रियाँ होती हैं। इन नाटकों के आधार छोटे-मोटे कथानक होते हैं।

लोकगाथा—लोकगाथा वह कथाप्रधान गीतिकाव्य है, जिसमें अपेक्षाकृत बड़े आकार में जाति में प्रतिष्ठित और लोकप्रिय नायक के उदात्त कार्यों द्वारा जातीय भावनाओं, आदर्शों एवं आकाक्षाओं का उद्घाटन किया जाता है। इसके तत्त्वों का निरूपण निम्नांकित रूप में किया जा सकता है—

क. संगीत-तत्त्व

ख. कथातत्त्व—इसमें जीवन की अनेकरूपता चित्रित होती है। इस दृष्टि से यह प्रबन्धकाव्य के निकट माना जा सकता है। जैसे : प्रबन्धकाव्य में पूर्वापर सम्बन्धों का तारतम्य होता है, वैसे ही लोकगाथा मे भी।

ग. चरित्र—यह लोकसामान्य के स्तर पर अपने उदात्त कार्यों के कारण चर्चित नायक होता है। कतिपय अन्य गौण चरित्र भी होते हैं।

घ. उद्देश्य—जातीय आकांक्षाओं, भावनाओं एवं आदर्शों का उद्घाटन होता है, जिसके लिए लोककवि कृत्रिम रूप से सचेष्ट नहीं होता।

ये प्रायः मंगलाचरण से आरम्भ किये जाते हैं। इनका अन्त भी देवी-देवताओं के स्मरण से किया जाता है।

लोककथा—लोककथाओं में सामान्यतः निम्नांकित विशेषताएँ मिलती हैं—

क. ये अपने-आप में पूर्ण होती हैं।

ख. इनमें तथ्यविशेष के प्रतिपादन को अग्रसर करनेवाली घटना या घटनाओं का अपेक्षित उत्थान-पतन के साथ समावेश होता है।

ग. इनमें वर्णन, कथा के पात्रों के चरित्र पर प्रकाश डालता चलता है।

घ. ये कथाएँ मौखिक परम्परा में जीवित रहनेवाली होती हैं।

ङ. इनके रचनाकारों से सम्बद्ध कोई विवरण उपलब्ध नहीं होता।

प्रकीर्ण साहित्य—इसके अन्तर्गत कहावतों, मुहावरों एवं पहेलियों का अपार भाण्डार आता है। इनका प्रयोग जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आबालवृद्ध सभी करते पाये जाते हैं। (इनका विस्तृत विवेचन विभिन्न अध्यायों में अन्यत्र प्रस्तुत किया गया है।)

२. मुद्रित साहित्य

इस साहित्य के दो वर्ग हैं—प्राचीन एवं नवीन। प्राचीन रचनाएँ वे हैं, जो किसी लेखक के नाम से प्राचीन काल से चली आ रही हैं। नवीन रचनाओं के अन्तर्गत आधुनिक काल में सर्जित होनेवाली पुस्तकों एवं पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होनेवाली विविध विधात्मक रचनाओं पर विचार किया गया है।

●

द्वितीय अध्याय

मगही-लोकगीत

मगही-लोकसाहित्य में लोकगीतों का महत्त्वपूर्ण स्थान है, कारण मानव-जीवन का ऐसा कोई पक्ष नहीं, जो इनसे अछूता रह गया हो। मानव के मातृगर्भ में स्थान पाने के साथ ही इन गीतों का आरम्भ हो जाता है एवं अन्त उसकी मृत्यु के पश्चात् होता है।

इन गीतों में मानव के बाह्य जीवन की घटनाएँ तथा परिस्थितियाँ तो वर्णित होती ही हैं, उसके अन्तर्जगत् की विपुल भावराशि भी अपने सहज स्वाभाविक रूप में अभिव्यक्त होती है। परिणामतः, गीतों का अपार भाण्डार मिलता है, जिनमें विषय की दृष्टि से एक व्यापक वैविध्य दीख पड़ता है।

मगही-लोकगीत, लोकगीतों की भारतीय परम्परा के सहज-स्वाभाविक विकास हैं, अतः इनके विस्तृत विवेचन के पूर्व इस परम्परा पर विहंगम दृष्टि डाल लेना अपेक्षित होगा।

लोकगीतों की भारतीय परम्परा

लोकगीतों की रचना का आरम्भ कब हुआ, इसका तिथि-निरूपण असम्भव है। इतना ही कहा जा सकता है कि जबसे पृथ्वी पर मानव बसने लगा, तभी से उसके मुख से गीत भी फूटने लगे। ये गीत उसके हर्ष-विषाद, जीवन-मरण आदि के साथ अभिन्न रूप से मुखरित होते रहे हैं। यह अवश्य है कि युग-परिवर्त्तन के साथ आदिमानव के गीतों की बाहरी काया भी परिवर्त्तित होती गई, पर उनके मूल भावों की व्यंजना में कोई अन्तर नहीं पड़ा। नैसर्गिक भावावेश के क्षणों में फूटनेवाले इन लोकगीतों की धारा विविध भाषाओं में प्राप्त परम्पराओं के रूप में अद्यावधि प्रवाहित होती चली आ रही है। इसकी गति अविच्छिन्न है। यह अनन्त काल तक इसी रूप में प्रवाहित होती रहेगी।

वेद :

हमारे प्राचीनतम लिखित साहित्य वेद हैं। उनके पारायण से ज्ञात होता है कि विविध संस्कारों के अवसर पर लोकगान होता था। ये गीत 'गाथाओं' के नाम से प्रसिद्ध थे।

ब्राह्मण एवं आरण्यक ग्रन्थों में 'गाथाओं' का उल्लेख अनेक बार हुआ है। अतएव, ब्राह्मण में ऋक् एवं गाथा में अन्तर दिखलाते हुए कहा गया है कि 'ऋक्' दैवी होती है और गाथा मानुषी। गाथाओं का व्यवहार मन्त्ररूप में नहीं होता था। सामान्यतया प्राचीन काल में किसी विशिष्ट राजा के सत्कृत्यों को संक्षेप में प्रस्तुत करनेवाले जो गीत समाज में अधिकता से गाये जाते थे, उन्हें ही 'गाथा' नाम से साहित्य के पृथक् अंग के रूप मे माना जाने लगा।

ऐतिहासिक गाथाओं की परम्परा महाभारत-काल में देखने में आती है। दुष्यन्त-पुत्र भरत के सम्बन्ध में महाभारत में अनेक गाथाएँ मिलती हैं।

ये गाथाएँ विशेषकर राजसूय यज्ञ के अवसर पर गाई जाती थीं। पर, मैत्रायणी संहिता में विवाह के अवसर पर भी इनके गाये जाने का विधान मिलता है। इसी नियम के अनुसार पारस्कर गृह्यसूत्र में विवाह-विषयक गाथाएँ मिलती हैं। आश्वलायन गृह्यसूत्र में सीमन्तोन्नयन के अवसर पर वीणा पर गाथागीत गाने की प्रथा का उल्लेख प्राप्त होता है।[1]

पालि :

पालि-जातकों में कहानियों के बीच-बीच मे गाथाओं के व्यवहार मिलते हैं, जैसा कि आधुनिक भारतीय भाषाओं की अनेक लोकगाथाओं में आज भी होता है। पालि-भाषा में उपलब्ध जातक-गाथाओं में उस काल की विख्यात लौकिक कहानियों का साराश भी प्रस्तुत किया गया है। जातक मे गौतम बुद्ध के पूर्वजीवन से सम्बद्ध कथाएँ हैं। ये कथाएँ इन्हीं गाथाओं के पल्लवीकरण से उद्भूत हुई हैं। गाथाओं के अध्ययन से प्रतीत होता है कि ये लोकगीतों के पूर्वरूप हैं।

महाकाव्य एवं पुराणयुग :

महाकाव्य एवं पौराणिक युग में भी लोकगीतों की विद्यमानता के प्रमाण मिलते हैं। आदिकवि वाल्मीकि ने अपनी रामायण में भगवान् राम के जन्म के अवसर पर गन्धर्वों के मधुर गान एवं नाचने, गाने तथा बजानेवाले सूत, मागध एवं बन्दीजनों का उल्लेख किया है।[2] भागवतकार व्यास ने भी श्रीमद्भागवत में कृष्णजन्म के अवसर पर रमणियों द्वारा सम्मिलित गान गाये जाने का वर्णन किया है।[3] बड़े होने पर कृष्ण भी व्रज-रमणियों के बीच स्वयं गाते और उनका गान सुनते पाये जाते हैं।[4] इससे पता चलता है कि उस समय भी शुभ संस्कारों एवं आनन्द-विलास के अवसर पर लोकगीतों के गान की प्रथा वर्त्तमान थी।

महाकवि कालिदास ने अपने रघुवंश महाकाव्य में ग्रामीण स्त्रियों द्वारा महाराज रघु के यश गाये जाने का वर्णन किया है—

ईक्षुच्छायानिषादिन्यस्तस्य गोप्तुर्गुणोदयम्।
आकुमारकथोद्घातं शालिगोप्यो जगुर्यशः॥

—रघुवंश, सर्ग ४, श्लोक २०।

अर्थात्, 'ईख की छाया में बैठी हुई धान की रखवाली करनेवाली किसानों की पत्नियों ने सबकी रक्षा करनेवाले उन रघु महाराज की शूरता, उदारता आदि गुणों से

१. आ० गृ० सूत्र, १।१२।
२. वाल्मीकिरामायण, बालकाण्ड, कुम्भकोणम्, मद्रास, श्लो० सं० १६, १७, १८।
३. भागवत, दशम स्कन्ध।
४. वही।

प्रकट हुए यश का, जिसकी चर्चा किशोर और बालक तक करते थे, (अथवा जिसमें उनके द्वारा कुमारावस्था में ही प्राप्त इन्द्र-विजय आदि का उल्लेख होता था) गान किया।

परवर्त्ती कवियों में 'किरातार्जुनीयम्' महाकाव्य के प्रणेता भारवि (६०० ई०)[१] एवं 'शिशुपालवधम्' महाकाव्य के प्रणेता माघ (६५०–७०० ई०)[२] ने अपने काव्य-ग्रन्थों में ऐसे वर्णन किये हैं कि 'धान के खेतों की रखवाली करती ग्रामीण वधुएँ इतने मनोहर स्वर में गीत गाती थीं कि उन्हें (धान के पौधों को) खाने के लिए आये मृग स्वर-संगीत से विभोर होकर खाने की सुध-बुध भूल जाते थे और यों ही खड़े रहते थे।'

प्राकृत-युग :

विक्रम-संबत् की तीसरी शती तक प्राकृत-भाषा विकसित हो चली थी। इस समय लोकगीतों की बड़ी उन्नति हुई। इसके प्रमाण राजा हाल या शालिवाहन के संग्रह 'गाथासप्तशती' में मिलते हैं। इस युग में अनेक गाथाएँ प्रचलित थीं, पर केवल चुनी हुई सात सौ गाथाओं को ही इस संग्रह में स्थान मिला। इस संग्रह की अनेक गाथाएँ गीतिकाव्य के उत्कृष्ट नमूनों के रूप में देखी जा सकती हैं।[३]

अनेक स्थलों पर ऐसे प्रमाण मिलते हैं, जिनमें स्त्रियाँ अपनी थकावट को हल्का करने के लिए श्रमगीत गाती हुई दीख पड़ती हैं। बारहवीं शताब्दी की प्रसिद्ध कवयित्री विज्जका ने धान कूटनेवाली महिलाओं का बड़ा ही मनोहारी वर्णन प्रस्तुत किया है।[४]

महाकवि श्रीहर्ष ने स्त्रियों द्वारा जनता के साथ गीत गाये जाने का उल्लेख किया है।[५]

---

१. डॉ० शान्तिकुमार, नानूराम व्यास : सं० सा० की रूपरेखा, पृ० ६२।

२. वही, पृ० ७२।

३. **गेहिन्या महानसकर्ममसीमलिनितेन हस्तेन।**
स्पृष्टं मुखमुपहसति चन्द्रावस्थां गतं दयितः॥

अर्थात्, रसोई बनाते समय कालिख-लगे हाथ से छूने के कारण कालिमा-लगे गृहिणी के मुख को देखकर उसका स्वामी उसकी हँसी उडा रहा है—अहा! अब तो तुममें और चाँद में कोई फर्क नहीं रहा।

४. **विलासमसृणोल्लसन्मुसललोलदोः कन्दली**
परस्परपरिस्खलद्वलयनिःस्वनोद्बन्धुराः ।
लसन्ति कलहुङ्कृतिप्रसभकम्पितोरःस्थल-
त्रुटद्गमकसङ्कुलाः कलमकण्डनीगीतयः॥

अर्थात्, 'धान कूटनेवालियों का गान बडा ही मनोहारी प्रतीत होता है। वे बडी सुन्दरता से हाथ में मूसल लिये हुई है। मूसल के उठाने तथा गिराने के कारण चूड़ियाँ खनक रही हैं। उन चूडियों की खनक के साथ मिलकर वह गान और सुन्दर हो गया है। जब वे मूसल गिराती है, तब उस समय उनके मुँह से हुंकार निकलता है और वक्षःस्थल कम्पित हो उठता है : वही गान की सुरभि बन रहा है।'

५. नै० च०, २।८५।

अपभ्रंश-युग :

अपभ्रंश-काल भी लोकगीतो से खाली नहीं। उस समय के अनेक कथाग्रन्थों में नाना प्रकार की गाथाओं का उद्धरण उपलब्ध होता है। 'भविसयत्तकहा'[1] में ऐसी अनेक गाथाएँ उपलब्ध होती हैं।

स्त्रियो द्वारा अनेक अवसरों पर गीत गाये जाने का उल्लेख अनेक आधुनिक काव्यग्रन्थों में भी मिलता है। यथा : महाकवि तुलसीदास ने स्त्रियो द्वारा गीत गाये जाने का वर्णन किया है—

चली संग लइ सखी सयानी।
गावत गीत मनोहर बानी॥

रामचन्द्र के विवाह के अवसर पर स्त्रियों द्वारा गाली गाये जाने का भी उल्लेख उन्होंने किया है—

नारिवृन्द सुर जेंवत जानी।
लगी देन गारी मृदुबानी॥

पण्डित रामनरेश त्रिपाठी लोकगीतो की इस परम्परा पर टिप्पणी करते हुए लिखते हैं—

"वाल्मीकि, भागवतकार, विज्जका और तुलसीदास, इनमे से किसी ने यह नहीं बताया कि वे गीत कौन-से थे? अवश्य ही वे वही कण्ठस्थ गीत रहे होंगे, जो आज भी हैं। समय के अनुसार उन्होने भाषा का जामा बदल लिया है। जैसे : हिन्दू लोग पहले पीताम्बर ओढ़ते थे। मुसलमानी राज में कुरते पहनने लगे और अँगरेजी राज में कोट। पर कपड़ों के अन्दर शरीर है हिन्दू ही का। इसी प्रकार, गीतो का सिलसिला प्राचीन काल से एक-सा चला आ रहा है। भाव पुराने हैं। भाषा नई है।"[2]

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि लोकगीतों की भारतीय परम्परा बहुत प्राचीन है और वह कभी विच्छिन्न नहीं हुई। उसका नैसर्गिक प्रवाह आज भी उसी स्वच्छन्दता के साथ जारी है।

भारतीय भाषाओं के लोकगीतों का संग्रह

(क) यूरोपीय विद्वानों द्वारा

लोकगीतों के संग्रह को अनेक दृष्टियों से उपयोगी मानकर पाश्चात्य विद्वानों ने इस दिशा में स्पृहणीय प्रयास किये हैं। पाश्चात्य देशों में 'फोकसॉंग सोसायटी' जैसी संस्थाओं के तत्त्वावधान मे विद्वान् संग्रहकर्त्ता लोकगीतों का संग्रह करते हैं। इस दिशा में डॉ० चाइल्ड के प्रयत्न स्तुत्य हैं।

भारतीय लोकगीतों के संग्रह के क्षेत्र में यूरोपीय विद्वानों ने सर्वप्रथम कार्यारम्भ किया। यहाँ कुछ विद्वानों के कार्यों पर विहंगम दृष्टि डाल लेना अपेक्षित होगा—

डॉ० सर जी० ए० ग्रियर्सन ने 'रॉयल एशियाटिक सोसायटी' की पत्रिका में कुछ

१. गायकवाड़ ओरियण्टल सीरीज, बड़ौदा से प्रकाशित।

२. क० कौ०, भाग ५।

बिहारी लोकगीतों का संग्रह प्रकाशित किया।[1] इनमें भोजपुरी एवं मगही के गीत हैं, जिनका अँगरेजी-अनुवाद भी दिया गया था। इसी पत्रिका में 'भोजपुरी लोकगीत' नाम से ग्रियर्सन का एक दूसरा लेख प्रकाशित हुआ है।[2] इसमें संक्षेप मे भोजपुरी-भाषा की विशेषता, उसका साहित्य एवं संगृहीत गीतो के छन्द आदि पर अच्छी विवेचना हुई है। इन्होंने बंगाल की एशियाटिक सोसायटी की पत्रिका में 'विजयमल' के गीत को भी प्रकाशित किया है।[3] इसमे विजयमल की संक्षिप्त कथा, गीत के साथ अँगरेजी-अनुवाद, स्थान-स्थन पर पाद-टिप्पणियाँ एवं संग्रह-क्षेत्र का उल्लेख भी है। इसी पत्रिका के दूसरे अंक मे इन्होंने 'राजा गोपीचन्द' के गीत के दो विभिन्न पाठ (Versions) प्रकाशित किये हैं।[4] एक पाठ बिहार-प्रान्त के मगध-प्रदेश एवं दूसरा पाठ भोजपुरी-प्रदेश का है। दोनों पाठो के अन्तर को स्पष्ट करते हुए इन्होने गीत के अन्त मे उसका अँगरेजी-अनुवाद और पाद-टिप्पणियाँ भी हैं। इसी पत्रिका के एक अन्य अंक में डॉ० ग्रियर्सन ने 'मानिकचन्द का गीत' शीर्षक एक लेख लिखा है।[5] यह लेख १०४ पृष्ठों का है। मानिकचन्द राजा गोपीचन्द के पिता थे। इनकी जन्मभूमि, आविर्भाव-काल, कथा, गुरु-परम्परा आदि के सम्बन्ध में तथा इनकी स्त्री मयनावती और पुत्र गोपीचन्द के सम्बन्ध मे अनेक महत्त्वपूर्ण बातें मिलती हैं। उन्होंने 'इण्डियन एण्टिक्वेरी' नामक बम्बई से प्रकाशित होनेवाली पत्रिका में 'आल्हा के विवाह-गीत' को प्रकाशित किया है।[6] लेख के आरम्भ मे 'आल्हा के गीत' के विभिन्न पाठों का उल्लेख एवं आल्हा की ऐतिहासिकता पर विचार है। इसी पत्रिका मे अन्य स्थान पर लेखक ने 'आल्हाखण्ड' का सम्पूर्ण कथानक अँगरेजी में अनूदित करके प्रस्तुत किया है।[7]

डॉ० ग्रियर्सन ने लन्दन का 'प्राच्यविद्या-परिषद्' की पत्रिका में 'उत्तरी भारत का लोक-साहित्य' नामक एक लेख प्रकाशित किया है।[8] इसमे तुलसीदासजी की रामायण, बिहारी सतसई, सूर के पद एवं विद्यापति की पदावली से उदाहरण देते हुए आल्हा के सुप्रसिद्ध गीत का कुछ अंश उद्धृत किया गया है। भगवती देवी एवं बस्तीसिंह के प्रसिद्ध गीत भी संगृहीत किये गये हैं। 'लाइट ऑव इण्डिया' के प्रसिद्ध कवि सर एडविन आरनाल्ड-कृत भगवती देवी के गीत का अँगरेजी-अनुवाद भी दिया गया है।

ह्यूज फ्रेजर एक अँगरेज सिविलियन थे, जो गोरखपुर जिले के डिस्ट्रिक मैजिस्ट्रेट के पद पर अधिष्ठित थे। इन्होने बंगाल की एशियाटिक सोसायटी की पत्रिका में गोरखपुर

१. जे० आर० ए० एस्०, खण्ड १६ (१८८४), पृ० १९६—'सम बिहारी फोक सॉंग्स'।
२. वही, खण्ड १८ (१८८६), पृ० २०७–२१४—'सम भोजपुरी फोक सॉंग्स।'
३. जे० ए० एस्० बी०, भाग ५३ (१८८४), खण्ड ३, पृ० ९४—'दि सॉंग ऑव विजयमल'।
४. वही, भाग ५४ (१८८५), खण्ड १, पृ० ९४—'टू वरशन्स ऑव दि सॉंग ऑव गोपीचन्द'।
५. जे० ए० एस्० बी०, भाग ५३ (१८७८), खं० १, नं० ३—'दि सॉंग ऑव मानिकचन्द'।
६. इण्डियन एण्टिक्वेरी, भाग १४ (१८८५) पृ० २०९– 'दि सॉंग ऑव आल्हाज मेरेज'।
७. वही, पृ० २५५—'ए समरी ऑव दि आल्हा खण्ड'।
८. बुलेटिन ऑव दि स्कूल ऑव ओरियण्टल स्टडीज, लन्दन, भाग २, खण्ड ३ (१९२०), पृ० ८७—'दि पापुलर लिटरेचर ऑव नार्दर्न इण्डिया'।

जिले में प्राप्त भोजपुरी-गीतों का संग्रह प्रकाशित किया है।[1] इसका अँगरेजी-अनुवाद भी दिया है, जिसका सम्पादन डॉ० ग्रियर्सन ने किया है।

जे० बीम्स भी एक सिविलियन थे। इन्होंने 'बंगाल एशियाटिक सोसायटी' की पत्रिका में 'भोजपुरी-भाषा' पर टिप्पणियाँ लिखी है।[2] इसमें उदाहरणार्थ अनेक भोजपुरी-गीत भी दिये गये हैं।

ए० जी० शिरेफ अँगरेज-सिविलियन थे। इन्होंने 'हिन्दी फोक सॉग्स' नामक एक पुस्तक को सम्पादित किया है। इसमे बिहारी बोलियों के गीतों का संग्रह है।[3]

डब्ल्यू० जी आर्चर का लोकगीतों के संग्राहक के रूप में बड़ा नाम है। इन्होंने छोटानागपुर एवं बिहार के अन्य क्षेत्रों की विविध जातियो के लोकगीतो का संग्रह कर प्रकाशन किया है। इस संग्रह का एक भाग 'लील खो रआ खे खेल' नाम से उपलब्ध है, जिसमें छोटानागपुर में रहनेवाली उराँव नामक जंगली जाति के गीत हैं। इनका 'ब्ल्यू ग्रोम' नामक दूसरा गीत-संग्रह है।

इन्होंने बिहार उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, पटना की पत्रिका के विभिन्न अंकों में भोजपुरी-गीतों का प्रकाशन किया था। 'भोजपुरी-ग्राम्य गीत' इन्हीं गीतों का संग्रह है। इसमे कुल ३७७ गीत हैं, जो बिहार-प्रान्त के शाहाबाद जिले के कायस्थ-परिवार से संग्रह किये गये हैं। इनका संग्रहकाल सन् १९३९–४१ ई० है।

(ख) भारतीय विद्वानों द्वारा

भारतीय विद्वानों ने भी लोकगीतों के संग्रह एवं प्रकाशन की दिशा में पर्याप्त प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया है। कुछेक विद्वानों के कार्यो का परिचय निम्नांकित है—

हिन्दी में लोकगीतों के संग्रह के क्षेत्र में पं० रामनरेश त्रिपाठी के प्रयत्न स्तुत्य हैं। इन्होंने सारे भारत का भ्रमण कर कई हजार गीतो का संग्रह किया। इनमें से अनेक गीत 'कविता-कौमुदी, भाग ५, ग्रामगीत' में संगृहीत हैं। इस पुस्तक के आरम्भ में उन्होंने १३८ पृष्ठों में 'ग्रामगीतों' की भूमिका दी है। इस पुस्तक मे संगृहीत गीत प्रधानत: उत्तर प्रदेश के पूर्वी भाग एवं बिहार के विविध क्षेत्र के हैं, इसलिए इसमें अनेक मगही गीत भी हैं। इनका दूसरा संग्रह 'सोहर' नाम से प्रकाशित है, जिसमें जन्म से सम्बद्ध अनेक सुन्दर गीत हैं। त्रिपाठीजी ने 'हमारा ग्राम-साहित्य' नाम से तीसरा संग्रह प्रकाशित किया है, जिसमें उत्तरप्रदेश के गीतों का संग्रह है। इस पुस्तक के आरम्भ से ग्राम-साहित्य का संक्षिप्त परिचय दिया गया है, जिसमे विविध दृष्टियों से ग्राम-साहित्य के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है।

त्रिपाठीजी के कार्यों का इस दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्व है; क्योंकि उन्होंने शिक्षित समाज का ध्यान सर्वप्रथम ग्राम-साहित्य की ओर आकृष्ट किया।

---

१. जे० ए० एस्० बी, भाग ५२ (१८८३), पृ० १–३२—'फोकलोर फ्रॉम ईस्टर्न गोरखपुर'।

२. वही, भाग ३, एन्० एस्० (१८६८), पृ० ४८३—'नोट्स ऑन दि भोजपुरी डायलेक्ट ऑव हिन्दी स्पोकेन इन वेस्टर्न बिहार।'

३. हिन्दी फोक सॉग्स, हिन्दी-मन्दिर, इलाहाबाद, १९३६ ई०।

देवेन्द्र सत्यार्थी ने लोकगीतों के संग्राहक के रूप मे बड़ा प्रशंसनीय कार्य किया है। भारत के अनेक प्रान्तों का भ्रमण करके इन्होंने हिन्दी की विविध बोलियों के गीतों का संग्रह किया है। इनके निम्नांकित प्रसिद्ध गीत-संग्रह प्रकाशित हैं—

१. बेला फूले आधी रात।
२. धरती गाती है।
३. गाये जा हिन्दुस्तान।
४. दीवा बले सारी रात।
५. धीरे बहो गंगा।

इनके अतिरिक्त 'मैं हूँ खानाबदोश', 'गिद्धा' आदि लोकगीतों से सम्बद्ध इनकी अन्य पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं।

इन्होंने अपने संग्रह में गीतों को किसी विशेष क्रम से प्रस्तुत नहीं किया। इनके गीत भावात्मक व्याख्याओं के साथ संगृहीत हैं।

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने भोजपुरी-गीतों के संकलन के क्षेत्र मे स्तुत्य प्रयत्न किया है। इनके गीत-संग्रह मौलिक एवं वैज्ञानिक-क्रम-युक्त हैं। निम्नाकित गीत-संग्रह इन्होंने प्रकाशित किये हैं—

१. भोजपुरी लोकगीत (प्रथम भाग)। इसमे २७१ गीतों का संग्रह है। इसकी भूमिका में पं० बलदेव उपाध्याय ने 'भोजपुरी-भाषा और साहित्य' पर पर्याप्त प्रकाश डाला है।

२. भोजपुरी लोकगीत (द्वितीय भाग)। इसमें कुल ४३० गीतों का संग्रह है। इसके भूमिका-लेखक हैं डॉ० अमरनाथ झा।

इन दोनों संग्रहों मे प्रत्येक गीत का प्रसंग या सन्दर्भ देकर गीत दिया गया है, फिर गीत की प्रत्येक पंक्ति का अर्थ खड़ी बोली मे दिया गया है। पाद-टिप्पणियों में कठिन शब्दों के अर्थ दिये गये हैं।

दुर्गाशंकरप्रसाद सिंह ने 'भोजपुरी-लोकगीत में करुण रस' के नाम से गीतो का संग्रह प्रकाशित किया है। इस पुस्तक मे गीतों के प्रसंग एवं कठिन शब्दों के अर्थ नहीं दिये गये हैं। इसमें केवल करुण रस के गीत नहीं हैं, बल्कि विविध रसों के गीत हैं। पुस्तक के आरम्भ में ८० पृष्ठो की भूमिका संग्रहकर्त्ता ने दी है, जिसमें भोजपुरी-भाषा और साहित्य पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

श्रीरामइकबाल सिंह 'राकेश' ने मैथिली-लोकगीतों का संग्रह 'मैथिली-लोकगीत' नामक पुस्तक मे प्रकाशित किया है। इसकी विद्वत्तापूर्ण भूमिका डॉ० अमरनाथ झा ने लिखी है। इसमे 'मैथिली-साहित्य' पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। इस गीत-संग्रह में विषयों का उचित क्रम है। प्रत्येक गीत के साथ खड़ी बोली में अर्थ दिये गये हैं।

डॉ० विश्वनाथ प्रसाद के सम्पादन में बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना से 'मगही-संस्कार-गीत' नामक गीत-संग्रह प्रकाशित हुआ है। इसमे मगही के कई सौ संस्कार-गीतो का संग्रह है। गीतों को वैज्ञानिक क्रम से प्रस्तुत किया गया है। यथा : सोहर, मुण्डन, जनेऊ, विवाह और मृत्युगीत। प्रत्येक गीत के आरम्भ में विशेष टिप्पणी के साथ गीत का साराश दिया गया है। पाद-टिप्पणियों में कठिन शब्दों के अर्थ भी दिये गये है।

इस पुस्तक की भूमिका में विद्वान् सम्पादक ने 'मगही-भाषा और साहित्य' पर यथोचित प्रकाश डाला है।

डॉ० सम्पत्ति अर्याणी ने 'मगही-लोकसाहित्य' में नमूने के रूप में कुछ चुने हुए 'मगही-गीत' संगृहीत किये हैं। प्रत्येक गीत के आरम्भ में सन्दर्भ और अन्त मे भावात्मक व्याख्या दी गई है। कठिन शब्दों के अर्थ पाद-टिप्पणियो मे दिये गये हैं।

इनके अतिरिक्त कुछेक गीत-संग्रहो एवं उनके संग्राहकों का परिचय निम्नांकित है :

श्रीनरोत्तमदास स्वामी, श्रीसूर्यकरण पारीक और ठाकुर रामसिह ने 'राजस्थान के लोकगीत' का संग्रह और सम्पादन दो भागों मे किया है। 'राजस्थान के ग्रामगीत' के सम्पादक श्रीनरोत्तमदास स्वामी हैं। श्रीसूर्यकरण पारीक ने 'राजस्थानी-लोकगीत' में गीतों के संक्षिप्त विवेचन के साथ कुछ गीतों का संग्रह भी किया है। नरोत्तमदास स्वामी का 'बीकानेर के गीत' नामक गीत-संग्रह प्रकाशित है।

मारवाड़ी-लोकगीतों के कई संग्रह प्रकाशित हुए हैं। यथा : खेताराम माली का 'मारवाड़ी गीतसंग्रह', मदनलाल वैश्य का 'मारवाड़ी-गीतमाला', निहालचन्द्र शर्मा का 'मारवाड़ी-गीत', ताराचन्द ओझा का 'मारवाड़ी-स्त्रीगीत-संग्रह', जगदीश सिह गहलोत का 'मारवाड़ के ग्रामगीत'।

श्रीकृष्णानन्द गुप्त ने 'ईसुरी की फागें' में प्रसिद्ध बुन्देलखण्डी लोककवि के गीतो का संग्रह प्रकाशित किया है। श्रीश्याम परमार ने 'मालवी-लोकगीत' में मालवी लोकगीतों का संग्रह प्रकाशित किया है। राहुलजी ने कुरुप्रदेश (आधुनिक खड़ीबोली के प्रदेश का प्राचीन नाम) के लोकगीतों एवं कहानियों का संग्रह 'आदि हिन्दी की कहानियाँ और गीत' नामक पुस्तक में किया है। डॉ० श्यामाचरण दुबे ने 'छत्तीसगढ़ी-लोकगीतों का परिचय' में छत्तीसगढ़ी-लोकगीतों का संग्रह किया है। श्रीदानेश्वर शर्मा का 'छत्तीसगढ़ के लोकगीत' भी अच्छा गीत-संग्रह है। पं० रामनारायण उपाध्याय ने 'निमाड़ी-ग्रामगीत' में इस भाषा के गीतों का संग्रह प्रस्तुत किया है।

इनके अतिरिक्त अन्य विद्वानों ने भी इस क्षेत्र में कार्य किया है।

हिन्दी की विविध बोलियो के गीतों के संग्रह के अतिरिक्त अन्य भारतीय भाषाओं में भी इस दिशा में कार्य हो रहा है। इनमें बँगला एवं गुजराती में किये गये कार्य उल्लेखनीय हैं—

बँगला—डॉक्टर दिनेशचन्द्र सेन के तत्त्वावधान में कलकत्ता-विश्वविद्यालय ने पूर्वी बंगाल के, विशेष कर मैमनसिंह जिले के गीतों का संकलन करवाया है। इन गीतो का बृहदाकार प्रकाशन 'पूर्वबंग-गीतिका' के नाम से चार भागों मे हुआ है। इनका अनुवाद भी चार भागों में 'ईस्टर्न बंगाल बैलेड्स' के नाम से प्रकाशित हुआ है। इन गीतों का सम्पादन डॉ० सेन ने बड़ी वैज्ञानिक पद्धति से किया है। कलकत्ता-विश्वविद्यालय से 'हारामणि' नामक एक अन्य-गीत-संग्रह भी प्रकाशित हुआ है।

गुजराती—श्रीझवेरचन्द्र मेघाणी ने 'सोरठ नुं तीरे-तीरे' में सौराष्ट्र के नाविक-गीतों का संग्रह विशेष आलोचनाओं के साथ प्रकाशित किया है। 'ऋतुगीत' में ऋतु-सम्बन्धी

गीतों का संग्रह है। 'रढियाली रात' चार भागो में प्रकाशित हुआ है, जिसमें गुजराती-लोकगीतों का अच्छा संग्रह है। 'सौराष्ट्र ना खण्डेरोमा' में पर्वतीय प्रदेशो में रहनेवाली जातियो के गीतों का संग्रह इन्होने किया है। श्रीनर्मदाशंकर लाल 'शंकर' ने 'नागर स्त्रियों मां गवातां गीत' नामक संग्रह मे गुजरात के नागर ब्राह्मणों की स्त्रियो में प्रचलित गीतों का संग्रह किया है।

मगही-लोकगीतों का वर्गीकरण[1] :

अन्य भाषाओं की तरह मगही-लोकगीतों मे भी विषय-दृष्टि से एक व्यापक वैविध्य दीख पड़ता है। उसके आलोक में इनका वर्गीकरण निम्नाकित रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है—

मगही लोकगीत

संस्कार-गीत	क्रियागीत	ऋतुगीत	देवगीत	बालगीत	विविध गीत
(सोहर, मुण्डन, जनेऊ, विवाह आदि)	(जँतसार, रोपनी आदि)	(होली, चैती आदि)	(पौराणिक देवता-सम्बन्धी, ग्रामदेवता-सम्बन्धी)	(लोरी, खेलगीत, चकचन्दा आदि)	(झूमर, बिरहा, अलचारी, गोदना, निर्गुन, सामयिक आदि)
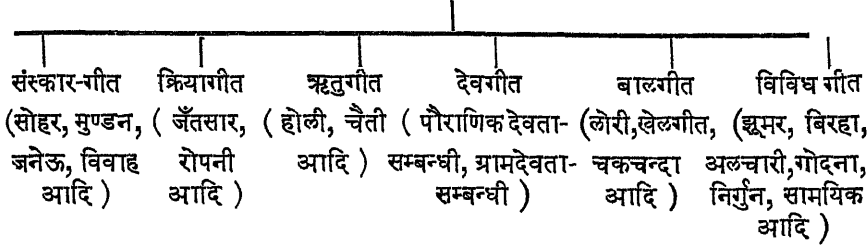
विभिन्न विद्वानों द्वारा किए हुए वर्गीकरणों का अन्तर्भाव इस वर्गीकरण में हो गया है।

१. अनेक विद्वानो ने अपने-अपने ढंग से लोकगीतो के वर्गीकरण किये है। उदाहरणार्थ, कुछेक के वर्गीकरण प्रस्तुत है—

(क) डॉ० सत्येन्द्र ने ब्रज के लोकगीतो को उनके उद्देश्यो के आधार पर दो भागो मे बाँटा है—

१. अनुष्ठान-आचार-सम्बन्धी। इसके अन्तर्गत वे गीत आते है, जिनके लिए कोई स्मार्त्त व्यवहार निश्चित नही होता। इसके समस्त कार्य स्त्रियाँ गीतो के साथ करती है।

२. मनोरंजन-सम्बन्धी—इस वर्ग मे वे गीत आते है, जो किसी-न-किसी प्रकार मनोरंजन का कार्य सिद्ध करते है। —ब्र० लो० सा० अ०, तीसरा अध्याय।

(ख) डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने उपलब्ध लोकगीतो को छह दृष्टियो से विभक्त किया है—

१. संस्कारो की दृष्टि से, २. रसानुभूति की दृष्टि से, ३. ऋतुओ एवं व्रतों के क्रम से, ४. विभिन्न जातियो के प्रकार से, ५. क्रियागीत के आधार पर और ६. प्रकीर्ण।

—भो० लो० सा० अ०, अध्याय ४।

(ग) पं० रामनरेश त्रिपाठी ने ग्रामगीतो को ग्यारह वर्गों में बाँटा है—

१. संस्कार-सम्बन्धी, २. चक्की-चरखे-सम्बन्धी, ३. धर्मगीत, ४. ऋतुगीत, ५–७. खेती, भिखमंगो तथा मेले के गीत, ८. जातिगीत, ९. वीरगाथा, १०. गीतकथा एवं ११. अनुभव के वचन। —क० कौ०, भाग ५, पृ० ४५।

(घ) श्रीसूर्यकरण पारीक ने लोकगीतों का विभाजन उनतीस भागो मे किया है।

—राजस्थानी लोकगीत, पृ० २२–२५।

(ङ) श्रीश्याम परमार ने श्रीभास्कर रामचन्द्र भालेराव के मत का उल्लेख करते हुए उनके द्वारा प्रतिपादित लोकगीतो के भेदो का उल्लेख किया है—

१. संस्कार-विषयक गीत, २. माहवारी गीत, ३. सामाजिक-ऐतिहासिक गीत, ४. विविध।

—भारतीय लोक-साहित्य, पृ० ६४–६५।

(च) डॉ० विश्वनाथ प्रसाद ने विषय की दृष्टि से उनका वर्गीकरण किया है।

—मगही-संस्कारगीत (निवेदन, पृ० ख), बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना।

(अ) **मगही-संस्कारगीत :**

मगही-संस्कारगीतों की पृष्ठभूमि—'संस्कार' सभी धर्मों एवं सम्प्रदायों के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। इनका उद्भव मानव-ज्ञान-चेतना के साथ ही हुआ होगा, जो कालान्तर में परिवर्त्तित होते हुए वर्त्तमान रूप में जीवित हैं। जहाँतक हिन्दू-संस्कारों का प्रश्न है, इनका उल्लेख वेदो, ब्राह्मण-ग्रन्थों, गृह्य तथा धर्मसूत्रो, स्मृतियो एवं परवर्त्ती निबन्ध-ग्रन्थों में प्राप्त होता है। इससे ज्ञात होता है कि समाज ने इनका महत्त्व बहुत पहले ही स्वीकार कर लिया था। उपर्युक्त ग्रन्थों की रचना विविध युगों एवं स्थानों में हुई, अतः संस्कारों के सम्बन्ध मे विविध मानवीय उद्‌गार अनेक विधि-विधानो एवं पद्धतियों के साथ इनमें वर्त्तमान है।

इन 'संस्कारों' का भारतीय जीवन में बड़ा महत्त्व है। इसका कारण यह है कि उन्हें शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक गुणाधान की प्रक्रिया के रूप में ग्रहण किया है।[1] उनके द्वारा मानव-शरीर से प्रकृत भावों को हटाकर सुन्दर गुणों का आधान किया जाता है। इससे तन-मन दोनों अभिनव सौन्दर्य से मण्डित हो जाते हैं।[2] जैसे सोना-चाँदी आदि धातु आग में तपाये जाने पर विशुद्ध होकर चमकने लगते हैं, वैसे ही शिशु के जन्मजात दोष संस्कारों के द्वारा दूर हो जाते हैं। मानव, इन संस्कारों द्वारा जन्मजात अपवित्रताओं से छुटकारा पाकर, सच्चे मनुष्यत्व की उपलब्धि करता है। संस्कारों के विधान के पीछे यही दृष्टिकोण रहता है।[3]

इस सम्बन्ध में एक दूसरा तथ्य भी द्रष्टव्य है। वह यह कि ये संस्कार जहाँ एक ओर मानव एवं अदृश्य आध्यात्मिक शक्तियों के बीच माध्यम के रूप में काम देते रहे हैं, वहीं दूसरी ओर सामाजिक तत्त्वो से सम्बन्ध स्थापित कराने में भी सहायक होते रहे हैं। ऐसा जनविश्वास रहा है कि कुछ अदृश्य शक्तियाँ मानव-जीवन में हस्तक्षेप कर, उसे प्रभावित करती रहती हैं। इसीलिए, विविध अवसरों पर तदनुकूल संस्कारो के आयोजन से उन्हें सन्तुष्ट करना आवश्यक समझा जाता रहा है। संस्कारो के इन धार्मिक वृत्तों में क्रमशः अनेक सामाजिक तत्त्व प्रवेश करते चले गये हैं, जिनसे सामाजिक व्यवस्था का

---

१. **संस्कुर्वन्त्यनेन इति संस्कारः (सम् + कृ + घञ्)।**

२. (क) **संस्कारो नाम स भवति, यस्मिञ्जायते पदार्थो भवति योग्यः कस्यचिदर्थस्य।**
—शाबरभाष्य, जैमिनीय न्यायमाला, ३।१।३।

(ख) **योग्यतां चादधानाः क्रियाः संस्कारा इत्युच्यन्ते—तन्त्रवार्त्तिक।**

(ग) **संस्कारो हि गुणाधानेन वा स्याद् दोषापनयनेन वा।**
—वेदान्तसूत्र, शांकरभाष्य, १।१।४।

३. **गार्भैर्होमैर्जातकर्मचौडमौञ्जीनिबन्धनैः।**
गार्भिकं बैजिकं चैनो द्विजानामपमृज्यते॥ —मनु०, पृ० ८१।
वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम्।
कार्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च॥ —मनु० २।२६-२७।

पोषण होने लगा। साथ ही संस्कारों के माध्यम से प्राचीन समाज के आदर्शों एवं महत्त्वाकांक्षाओं को अभिव्यक्ति भी मिलने लगी है। इस प्रकार, संस्कारों का उद्देश्य व्यक्तित्व के विकास द्वारा मानव-कल्याण एवं समाज तथा विश्व की दृश्य और अदृश्य शक्तियों से उसका सामंजस्य स्थापित करना हो गया।

कहा जा चुका है कि वेदो से ही संस्कारों का उल्लेख मिलने लगता है। वैदिक साहित्य में ब्रह्मचर्य, विवाह एवं अन्त्येष्टि-संस्कार के वर्णन मिलते हैं, पर बाद के श्रौतसूत्रों एवं गृह्यसूत्रों में उनका विशेष रूप से उल्लेख मिलता है। गृह्यसूत्रों मे विवाह, गर्भाधान, जातकर्म आदि संस्कारो का विशेष रूप से विधान मिलता है। फिर, धर्मसूत्रों में इनका विस्तृत विवेचन मिलता है। गृह्यसूत्रो मे संस्कारों की पद्धति और विधान उपलब्ध होते है, पर धर्मसूत्रों मे उनके सामाजिक पक्ष का विवेचन मिलता है। इनके बाद मनु, याज्ञवल्क्य आदि के स्मृतिग्रन्थो मे संस्कारों का विस्तृत वर्णन एवं सामाजिक दृष्टि से महत्त्व-प्रतिपादन मिलता है।

स्मृतियो के युग मे इन संस्कारो की अपरिहार्य अनिवार्यता-सी हो गई थी। इन संस्कारो मे कई विधियाँ (जन्म, विवाह, मृत्यु-सम्बन्धी) संगीत मे लय और ध्वनि के समान, मानव-जीवन मे प्रवाहित होने लगी थीं। जीवन के विभिन्न अवसरों पर उनकी पुनरावृत्ति आवश्यक थी। इससे व्यक्ति की भावना उद्बुद्ध होती थी और उसके तथा अवसर-विशेष के बीच एक प्रकार का रहस्यमय सम्बन्ध स्थापित हो जाता था। विधियों का क्रम ऋत, सत्य और अनिवार्यता का प्रतीक था। इसका अतिक्रमण व्यक्ति नहीं कर सकता था; क्योंकि ऐसा करने से उसको यह अनुभव होता था कि इससे जीवन की संगति और भावना के प्रवाह को धक्का लग रहा है। अतिक्रमण कर बैठने पर उसे प्रायश्चित्त करना पड़ता था और ऐसा न करने से उसका सामाजिक बहिष्कार होता था। इस प्रकार व्यक्ति और समाज के मध्य एक पारिवारिक बन्धन का सद्भाव हो जाता था, जो दोनों को चिरस्थायी बन्धन में बाँध देता था।

आधुनिक समय में प्रचलित प्रायः सभी संस्कार स्मृतियों तथा परवर्त्ती निबन्ध-ग्रन्थो के आधार पर प्रतिष्ठित हैं। पर, संस्कारों की संख्या में भिन्नता दीखती है।[1] आश्वलायन गृह्यसूत्रो में ग्यारह संस्कारों, याज्ञवल्क्यस्मृति में बारह संस्कारों एवं पारस्कर गृह्यसूत्र तथा मनुस्मृति मे तेरह संस्कारों का उल्लेख हुआ है। पर, व्यासस्मृति में सोलह संस्कारो का निरूपण किया गया है, जिन्हें आगे चलकर आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी स्वीकार किया है। 'सूरसागर' आदि ग्रन्थों मे भी सोलह संस्कारो का ही स्वीकारात्मक उल्लेख मिलता है।

एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य ध्यातव्य है। हमारे समाज मे चिरकाल से अशास्त्रीय रीति-प्रथाओं का प्रवाह चला आ रहा है, जो आज के लोक-साहित्य का मूल स्रोत है। स्मृतियो एवं गृह्यसूत्रों मे कुछ ऐसी प्रथाओ एवं परम्पराप्राप्त रीति-रिवाजों के संकेत मिलते हैं, जो संस्कारों में परिगणित न होकर भी, उनके साथ जुड़े हैं। इन अशास्त्रीय

---

१. दे० हिन्दू-संस्कार, पृ० २१–२६।

प्रथाओं में से कुछ काल एवं स्थानविशेष से सम्बद्ध मानी जा सकती हैं और कुछ वंशशाखा-विशेष से सम्बद्ध। आश्वलायन गृह्यसूत्र मे स्पष्ट उल्लेख है—

अथ खलूच्चावचा जनपदधर्मा ग्रामधर्माश्च तान् विवाहे प्रतिपादयेत् ।

अर्थात् 'और निश्चय ही महत्त्वपूर्ण या गौण कतिपय ऐसे जनपदीय या ग्रामीण धर्म भी होते है, जिनको विवाह-संस्कार के समय सम्पन्न करे।'

इसी प्रकार, आपस्तम्बधर्मसूत्र में भी कहा गया है—

यत् स्त्रिय आहुस्तत्कुर्युः ।

अर्थात्, 'जो स्त्रियाँ कहे, सो करें।'

इस तरह, हमारे सम्मुख संस्कारों के दो वर्ग आते हैं— १. शास्त्रीय एवं २. लौकिक।

१. संस्कारो के शास्त्रीय रूप के अन्तर्गत अनेक विधान अब वर्त्तमान नहीं हैं। यथा : गर्भाधान, पुंसवन तथा सीमन्तोन्नयन के संस्कार अब लुप्तप्राय हो चुके हैं। जातकर्म संस्कार के रूप में बहुत सारी विकृतियाँ आ गई हैं। शिशुजन्म के छह दिन के बाद होनेवाली 'छठी-पूजा' 'जातकर्म' का ही अवशिष्ट रूप है। अन्नप्राशन और निष्क्रमण-संस्कार स्थान-स्थान पर कतिपय रूपान्तरों के साथ प्रचलित हैं। चौल, उपनयन, वेदारम्भ एवं समावर्त्तन-संस्कार मगह तथा बिहार के अन्य क्षेत्रों मे प्रायः एक ही दिन और एक ही मण्डप मे सम्पन्न कर दिये जाते हैं। फिर, प्रायः उसी दिन सायंकाल मे या दूसरे दिन विवाह-संस्कार सम्पन्न होता है। चूडाकर्म या मुण्डन प्रथम, तृतीय या पंचम वर्ष मे कभी पृथक् और कभी उपनयन के साथ ही सम्पन्न किया जाता है। गोदान या केशान्त का विधान भी अब नहीं है, पर गाँवों में यत्र-तत्र इसके अवशेष के रूप में अब भी ऐसी प्रथा मिलती है कि पहली बार किशोर की दाढी-मूँछ बनाये जाने पर नाई को यथाशक्ति दान दिया जाता है। विवाह-संस्कार के कृत्यों में मधुपर्क, संकल्प, गोत्रोच्चारण आदि अनेक शास्त्रीय विधियाँ अब भी वर्त्तमान हैं, पर इनमें भी अनेक लोकाचारों का समावेश हो गया है।

यद्यपि प्राचीन शास्त्रीय संस्कारों का बहुत कुछ ह्रास हो गया है और उनमें कई लोकतत्त्वो का समावेश हो गया है, तथापि उनकी विधियाँ अब भी शास्त्रनिर्दिष्ट मन्त्रो के साथ पुरोहित द्वारा ही सम्पन्न कराई जाती हैं। पुरोहित द्वारा सम्पन्न किये जाने-वाले सारे अनुष्ठानों के साथ मन्त्रों का उच्चारण आवश्यक माना जाता है। शास्त्रीय संस्कारों में पुरुष-पक्ष की प्रधानता होती है।

२. संस्कारों के लौकिक रूप, उनके शास्त्रीय रूपो से कही अधिक जटिल, प्रभावशाली एवं व्यापक हैं। इन संस्कारों का आधार प्राचीन धर्मग्रन्थ नहीं है, न इन्हें पुरोहित ही सम्पन्न कराते हैं। इनकी मुख्य कर्त्री रमणियाँ हैं। आपस्तम्बधर्मसूत्र में कहा भी गया है कि संस्कारों का लोकतात्त्विक पक्ष मुख्यतः स्त्रियों द्वारा सम्पन्न होता है। स्त्रियों

द्वारा सम्पन्न किया जानेवाला विधि-विधान, शास्त्रीय विधान से बहुत जटिल होता है। 'संस्कार-विषयक गीत' इन्हीं विधि-विधानों के साथ रमणियो द्वारा गाये जाते हैं।

मृत्यु-सम्बन्धी संस्कार-गीतों को छोड़कर अन्य संस्कार-विषयक गीतो में हार्दिक उल्लास एवं आनन्द की व्यंजना होती है। इन गीतों के साथ ढोलक और कंसी का मिला हुआ स्वर सारे वातावरण को मंगलमय बना देता है।

इन लोकगीतो की लोकाचारों से सम्बद्धता भी दो रूपों में उपलब्ध होती है— १. आनुष्ठानिक एवं २. औपचारिक। १. आनुष्ठानिक गीतों के साथ कोई निश्चित स्मार्त्त व्यवहार नही जुड़ा होता। इन संस्कारों के प्रत्येक विधि-विधान को स्त्रियाँ गीतों के साथ स्वयं सम्पन्न करती हैं। इन गीतों का महत्त्व मन्त्रों से कम नहीं होता; क्योंकि ये इस आचार-विशेष के लिए उतने ही मंगलकारी, अनिवार्य एवं सगुन समझे जाते हैं, जितना पुरोहित द्वारा कराये जानेवाले अनुष्ठानो के साथ मन्त्रोच्चारण। इन गीतों के साथ वार्त्ता का अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। जैसे : विवाह मे 'रतजगे के गीत'। अनुष्ठानो के अंग के रूप में गाये जाने के कारण ही इन गीतों को मन्त्रों का माहात्म्य एवं गरिमा मिल जाती है। जनविश्वास है कि इनके गाने से सुख-समृद्धि की वृद्धि और न गाने से अनिष्ट और अमंगल होता है। २. औपचारिक गीत केवल मांगलिक मूल्य रखते हैं। औपचारिक गीत प्रायः किसी स्मार्त्त आचार के साथ गाये जाते हैं।

धर्मशास्त्रों में वर्णित सोलह संस्कारों मे लोक ने जन्म, विवाह और मृत्यु को ही विशेष महत्त्व दिया है। कारण कि इन तीनों संस्कारों का सम्बन्ध जीवन की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटनाओं से है। इनके द्वारा मानव-जीवन के साधारण प्रवाह-क्रम में व्यतिक्रम उपस्थित होता है। जन्म, विवाह और मृत्यु प्रकृति के अपने परिवर्त्तन-चक्र के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। इनमें 'जन्म और विवाह' आनन्द और प्रसन्नता के अवसर हैं, पर 'मृत्यु' शोक का।[1]

उपर्युक्त तीन संस्कारों मे प्रथम दो संस्कारों का सम्बन्ध सृष्टि के विकास से है। अतः, इनसे सम्बद्ध गीतों की संख्या बहुत है। मृत्यु-सम्बन्धी गीत बहुत कम मिलते हैं। यों शास्त्रीय एवं लौकिक अनुष्ठानों की दृष्टि से मृत्यु-संस्कार भी कम महत्त्वपूर्ण नही है।[2] पर इसके साथ शोक का भाव इतना गहरा रहता है कि गीत सामान्यतया कोमल कण्ठों से फूटते नहीं। भारत के ही कुछ क्षेत्रों मे गाकर रोने की प्रथा है। यथा : मथुरा की चतुर्वेदी स्त्रियाँ मृत्यु पर गाकर रोती हैं। पंजाब आदि कुछ पश्चिमी भागों में भी मृत्यु पर स्त्रियाँ गाकर रोती हैं। पंजाब आदि कुछ पश्चिमी भागो में मृत्यु पर दस दिनों तक 'स्यापा' गाने का प्रचलन है।

---

१. कुछ देशो मे जन्म के अवसर पर शोक और मृत्यु के अवसर पर हर्ष मनाया जाता है। यथा : ब्रह्मा और चीन की सीमा पर 'मचीना' नामक नगर है। यहाँ के लोग जन्म के अवसर पर शोक इस विश्वास से मनाते है कि एक जीव बन्धन मे पड गया और मृत्यु पर हर्ष इसलिए मनाते हैं कि एक जीव बन्धन-मुक्त हो गया।

२. वेदो में मृत्यु-सम्बन्धी कुछ ऋचाएँ आई है। यथा : ऋग्वेद, १०।१४।७ तथा १०।१४।८।

मगध तथा बिहार के अन्य क्षेत्रों में भी मृत्यु से सम्बद्ध गीत केवल कुछ विशेष वर्गों में ही प्रचलित हैं। पर, इन गीतों को उस अर्थ में लोकगीत नहीं कह सकते, जिस अर्थ मे अन्य संस्कार-सम्बन्धी गीत हैं। शिवनारायणी सम्प्रदाय के चमारों में शवयात्रा के साथ सम्मिलित स्वर में निर्गुण गाये जाते हैं। 'शिवनारायण-कृत' 'सन्तविलास' नामक एक पुस्तक ही है, जिसमें ये गीत संगृहीत हैं। इन गीतों के साथ प्रायः बाजे भी बजाये जाते हैं। इस गीत-संग्रह में मृत्यु संस्कार से सम्बद्ध सारे गीत कबीर आदि सन्तों के हैं। इन गीतों का मुख्य स्थायी भाव निर्वेद है।

जन्म और विवाह—ये दो अवसर बड़े महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं; क्योंकि इनमें एक कार्य है और दूसरा कारण। इन दोनों अवसरों पर लोकमानस दो प्रकार के भावों से परिचालित होता है—१. सुख एवं आनन्द के भावों से और २. आशंकाओं एवं भय के भावों से। आनन्द और सुख वर्त्तमान के लिए होता है, जब कि आशंका और भय का सम्बन्ध भविष्य से होता है। अतः, इन दोनों को प्रतिबद्ध करने के लिए लोकमानस ने अनुष्ठानों के रूप में ढाल दिया है।

इस प्रकार, संस्कार-विषयक समस्त लोकगीतों की पृष्ठभूमि विवेक-चेतन-पूर्ण मानस (Pre-conscious Psyche) से संयुक्त रहती है। इस मनःस्थिति के दो रूप हमें मिलते हैं[१]—

१. ढुनिहाई मानस (Magic Psyche)। इसके दो प्रकार हैं—

(अ) सहानुभूतिक (Sympathetic)

(आ) अंगांगी (Contigious)

२. प्रहेलिका (Riddle)

सहानुभूतिक—मंगल-गान के पीछे एक टोने की भावना वर्त्तमान रहती है। यथा: 'आज यदि आनन्द-मंगल होगा, तो इस अवसर की परम्परा में वह सदा बना रहेगा।' यह सामान्य सहानुभूतिक टोने का ही रूपान्तर है। ऐसे मंगलगानों में, मंगलमय अवसरों पर किये जानेवाले कृत्यो, अनुष्ठानों तथा नेगों का उल्लेख रहता है। यह उल्लेख और गणना केवल शुभ अवसर पर किये जानेवाले अनुष्ठानो के स्मरण के लिए नहीं होती, वरन् इसमें भी टोने का भाव रहता है। किसी के पूर्वजो ने जो अनुष्ठान किये, उन्हे मानसिक बिम्ब द्वारा ठीक वैसे ही वह करता है। इस प्रकार, पूर्वज-परम्परा से सम्बन्ध जोड़कर पूर्वजों के पुण्य-प्रताप के फल की भी आकांक्षा की जाती है।

अंगांगी—किसी-किसी गीत में एक ही नेग या आचार का वर्णन होता है। फिर, उसमें एक के बाद एक नातेदार का नाम लेकर दुहराया जाता है। यह 'अंगांगी' होने का ही रूप है। नाम, नामी से अभिन्न होता है। नाम, नामी को वश में करने के एक साधन के रूप में काम देता है। अतः, नाम लेकर नामी से भी मनसा रूपेण वह अनुष्ठान करा लिया जाता है। नामी अपने मन में कैसा भी भाव रखता हो, गीत के आह्वान से

१. मगही संस्कार-गीत, प्रस्ता०, पृ० ४०-४१।

उसका सहयोग प्राप्त कर लिया जाता है। इस प्रकार, इस अंगांगी प्रक्रिया में उसके सम्मिलित रहने का भाव निश्चय ही लक्षित होता है।

प्रहेलिका--गीतों में नेग और लेन-देन को लेकर झगड़े का प्रायः चित्रण होता है। यथा : ननद, भाभी से नेग-विशेष के लिए झगड़ती है, पर भाभी न स्वयं देने को राजी होती है, न किसी के समझाने पर। अन्त मे, ननद कुछ ऐसी बात बोल देती है कि भाभी को ननद की माँग पूरी करनी पड़ती है। फिर, सब उलझनें सुलझ जाती हैं और झगड़े का अन्त हो जाता है। सभी प्रसन्न हो जाती हैं।

ननद के इस झगड़े में सर्वदा भाभी से कुछ लेने या ठगने का ही उद्देश्य नहीं रहता। वह अनेक बार मनोरंजन के लिए भी झगड़ा ठानती है। इस प्रकार, यह सब झगड़ा, नेग लेना या न लेना, फिर मेल और आनन्द आदि 'प्रहेलिका' का-सा लगता है। किसी बात पर अड़ने से जो गाँठ पड़ जाती है, यही प्रहेलिका की जटिलता है। अनेक विफल प्रयत्नों के बाद एक के सफल प्रयत्न से गाँठ खुल जाती है अथवा यों कहें कि प्रहेलिका बूझ ली जाती है। यह प्रहेलिका भी अनुष्ठान का एक अंग है। इसके पीछे मूल भावना यह रहती है—गृह-सम्बन्धों में जो असामान्य और दुर्गम स्थितियाँ भविष्य में कभी आ पड़ें, वे इस गाँठ के खुलने की भाँति ही आगे भी हँसी-खुशी के साथ खुल जायें।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि ये लोकगीत संस्कारो के ही अपरिहार्य अंग नहीं हैं, जीवन के भी हैं। यही कारण है कि ये सभी क्षेत्रों एवं जनपदों मे व्यापक रूप से पाये जाते हैं। लोकगीतों की मूल प्रेरणाएँ उपर्युक्त संस्कारो से ही ग्रहण की जाती हैं। विश्लेषण करने पर पता चलता है कि समस्त 'घरू वार्त्ता' या 'घरेलू अनुष्ठान' के मूल में यही उद्देश्य रहता है कि जीवन में आनेवाले अमंगलो, संकटों और दुःखों का निवारण हो। इसके लिए ही विविध संस्कार किये जाते हैं और उनके साथ मंगलगान गाये जाते हैं।

संस्कार जीवन के विभिन्न अवसरों को महत्त्व एवं पवित्रता प्रदान करते हैं। वे इस बात पर जोर देते हैं कि जीवन के विकास का प्रत्येक चरण केवल शारीरिक क्रिया नहीं है। इसका सम्बन्ध मनुष्य की बुद्धि, भावना और उसकी आत्मिक अभिव्यक्ति से है। वे अनुपेक्षणीय हैं। यदि व्यक्ति इनके प्रति उदासीनता या अवज्ञा प्रदर्शित करने लगता है, तो फिर ये संस्कार उसकी तन्द्रा और अवज्ञा का निराकरण करते हैं एवं जीवन के विकास के क्रमों के महत्त्व का स्पष्टीकरण सामूहिक तथा सामाजिक स्तर पर करते हैं। संस्कारों के अभाव में जीवन की घटनाएँ, शरीर की दैनिक आवश्यकताओं और आर्थिक व्यापारो के समान अनाकर्षक, चमत्कारहीन और जीवन के भावुक संगीत से रहित हो जाती हैं। संस्कारों की एक विशेषता यह है कि उनके साथ मूल्यगर्भित विश्वास और विचार लगे रहते हैं। इन्हीं के लिए मनुष्य जीना चाहता है। इन्ही विश्वासो एवं विचारों मे समाज की नीव है और यहीं से उसे पोषण मिलता है। सामाजिक विनय, शक्ति और स्वतन्त्रता सभी का स्रोत इन्हीं मे है।

इन संस्कारो से सम्बद्ध लोकगीतों मे समाज एवं व्यक्ति की आशाओं, आकांक्षाओं, जीवन की समस्त विचारधाराओं एवं गतिविधियो की अभिव्यक्ति को पूर्ण अवकाश प्राप्त होता है।

१. सोहर[1]

शिशु-जन्म से सम्बद्ध गीतों को 'सोहर' की संज्ञा दी जाती है। इन गीतो मे आनन्द-उछाह की भावना परिपूर्ण दिखाई देती है। इसका एक कारण यह है कि सृष्टि में मानव के अमर होने की बलवती कामना सन्तान की परम्परा द्वारा ही फलवती होती है। मानव इस अनित्य संसार से विदा लेते हुए अपनी सन्तान को प्रतीक के रूप में छोड़ता जाता है। इस प्रकार उसका रक्त उसकी सन्तान मे सदा प्रवाहित होकर उसे अमरत्व प्रदान करता है। दूसरा कारण यह है कि नारीत्व का पूर्ण विकास मातृत्व मे ही होता है। इस सम्बन्ध में किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

नारी के इस भग्न हृदय में, कौन शान्ति सरसाता।
यदि आधार न उसका बनकर, शिशु मुस्काता आता॥
जीवन-मरु के नीरस पथ पर कैसे नारी चलती।
शिशु की प्यार-भरी चितवन यदि नहीं सुधा-रस भरती॥

नारी के गर्भ-धारण करने के बाद से सोहर-गीतों में आनन्द-उल्लास व्यंजित करने का जो वातावरण छाता है, उसका अन्त शिशु-जन्म के बाद 'बरही' या 'बिसौरी' के संस्कार के साथ होता है।

इसके पूर्व कि सोहर-गीतों की विवेचना प्रस्तुत की जाय, शिशु-जन्म के उपलक्ष्य में होनेवाले विविध विधि-विधानों का अवलोकन अपेक्षित है।

शिशु-जन्म के उपलक्ष्य में सम्पन्न होनेवाले विधि-विधान :

स्त्री के गर्भवती होते ही उसके नैहर-ससुराल में आनन्दोल्लास का वातावरण छा जाता है। सभी परिजन उसे तृप्त रखने की चेष्टा करते हैं। 'हिन्दू संस्कार' के अनुसार

---

१. 'सोहर' शब्द की व्युत्पत्ति के मूल मे संस्कृत का 'शुभ्' धातु है, जिसमें शोभन, शोभा आदि तत्सम शब्द बने है। हिन्दी में सोहना, सुहावना; भोजपुरी में 'सोहल'; मगही में 'सोभल'; ब्रज मे 'सोभर' आदि इसके तद्भव रूप है। इनका व्यवहार 'अच्छा लगने' एवं 'सुहावना लगने' के अर्थ में किया जाता है। 'सोहर' जन्मोत्सव के अवसर पर गाये जानेवाले गीत हैं। अतः, 'सोहर' को बहुत शुभ्र एवं सुहावना मानना उचित ही है। उत्तरप्रदेश के पश्चिमी भागों में 'सोहर' के अन्य पर्याय भी प्रचलित है। यथा : सोभर, सोहला, सोहिलो, सोभिलो, सोहिले आदि। संस्कृत के 'शोकहर' शब्द से भी 'सोहर' की व्युत्पत्ति मानी जा सकती है। यथा : शोकहर>सोअहर> सोहर। सन्तानाभाव के शोक को हरण करनेवाले उल्लासमय प्रसंग से ही इसका सम्बन्ध है। इसीलिए 'सोहर' का पर्याय 'मंगल-गीत भी है। यथा : मगही गीत की निम्नांकित पंक्ति में 'मंगल' का व्यवहार 'सोहर' के लिए हुआ है—

आजु ललना के बधइया, गावहूँ सखि मंगल हे।

'रामचरितमानस' में रामचन्द्र के जन्म के अवसर पर 'मंगल-गीत' गाये जाने का उल्लेख महाकवि तुलसीदास ने किया है—

गावहिं मंगल मंजुल बानी। सुनि कलरव कलकंठ लजानी॥

यहाँ 'मंगल' शब्द का व्यवहार 'सोहर' के अर्थ में ही हुआ है।

शिशु-जन्म के पूर्व तीन-संस्कारों का सम्पन्न होना अनिवार्य माना जाता था—१. गर्भाधान, २. पुंसवन और ३. **सीमन्तोन्नयन** । पर, मगध-क्षेत्र में आधुनिक समय मे ये संस्कार नहीं किये जाते । उत्तरप्रदेश में 'साध' पूजने, 'चौक' या गोद-भराई की रस्म गर्भावस्था के सातवें महीने में मनाई जाती हैं । वहाँ इस अवसर पर 'सोहर' भी गाये जाते हैं । मालवा और राजस्थान में पुंसवन-संस्कार 'खोलभरई' या 'अगरणी' अथवा 'साधपुरवा' के रूप में वर्त्तमान है । इस अवसर पर गर्भवती स्त्री अपने पति के साथ चौक पर हल्दी लगाकर बैठाई जाती है । इसका तात्पर्य है—'साध' (इच्छा) 'पुरवा' (पूरी करना), अर्थात् इच्छा पूरी करना । 'धनबऊ' (धन्यबहू) के गीत इस अवसर पर गाये जाते हैं ।

मगध मे शिशु-जन्म के पूर्व इतने व्यापक रूप में कोई संस्कार नही मनाया जाता । परन्तु गर्भ के सातवें महीने से नवे महीने के बीच मे एक हल्का संस्कार अवश्य होता है, इसे **सधोर** कहा जाता है । इस अवसर पर वधू के नैहर से नये कपड़े एवं विशेष पकवान भेजे जाते हैं । ससुराल में उसकी इच्छा के अनुसार अच्छे-अच्छे पकवान बनाये जाते हैं । फिर, वधू को नैहर के नवीन वस्त्र पहनाकर एवं उसकी गोद भरकर, उससे गृह-देवता की पूजा कराई जाती है । फिर, सर्वप्रथम उसे स्नेह से भोजन कराकर घर के अन्य परिजन भोजन करते हैं । इस संस्कार के मूल में 'साधपुरवा' (इच्छा पूरी करना) की भावना रहती है । मगध-क्षेत्र मे ऐसा जन-विश्वास है कि गर्भवती की 'साध' पूरी न होने से शिशु आजीवन अतृप्त रहता है । जन्म के बाद किसी शिशु के मुख से अधिक 'लार' टपकता है, तो उसे लोग यह कहकर चिढ़ाते हैं कि इसकी माँ का 'सधोर' नहीं हुआ था । जिस दिन घर में 'सधोर' का उत्सव होता है, उस दिन 'सोहर' भी गाये जाते है ।

प्रसव-वेदना—इधर वधू को प्रसव-वेदना आरम्भ होती है, उधर घर, सोहर-गीतों के मधुर झंकार से गुंजायमान होने लगता है । प्रसविनी की वेदना को विस्मृत करा देना ही इन गीतों का उद्देश्य होता है । घर की कुछ अन्य महिलाएँ शिशु-जन्म के लिए उचित प्रबन्ध में लग जाती हैं । कोई अनुभवी महिला प्रसविनी की परिचर्या में लगी रहती है । घर का कोई पुरुष 'डगरिन' या 'चमइन' को बुलाने के लिए चला जाता है । इस समय प्रसविनी को एक अलग खाली कोठरी मे रखा जाता है ।

शिशु-जन्म—पुत्र-जन्म होते ही थाली बजाई जाती है । इससे सारे ग्राम को सूचना मिल जाती है कि पुत्र का जन्म हुआ है । पुत्री के जन्म लेने पर प्रायः थाली नहीं बजाई जाती । शिशु-जन्म के बाद उस सामान्य कोठरी का नाम 'सौरीघर' (सूतिकागृह) एवं वधू का नाम 'परसौती' (प्रसूती) या 'अलमाती' हो जाता है । शास्त्रीय विधान के अनुसार शिशु के जन्म लेने के साथ ही मधु-घृत मिलाकर उसे स्वर्णशलाका से गायत्री-मन्त्र के पाठ के साथ बालक की जिह्वा पर रखना चाहिए । परन्तु, अब लोकाचार में इस विधान पर कोई ध्यान नहीं देता । शिशु-जन्म के साथ ही 'नार' काटने की क्रिया होती है, जिसमें छुरी, कैंची और देहातो में हँसिया आदि का प्रयोग होता है । इधर महिलाएँ सोहर में सोने-चाँदी की छुरी से डगरिन द्वारा 'नार काटने' का उल्लेख करती रहती हैं । इसके बाद शिशु को स्नान कराकर पुराने कपड़े मे लपेटकर माँ की बगल में सुला दिया जाता है । सारा घर आनन्द एवं उल्लास से भर जाता है ।

सौरी घर, परसौती एवं शिशु को नजर (कुदृष्टि) एवं भूत-प्रेतादि से बचाने के लिए अनेक टोने-टोटके किये जाते हैं। यथा—

१. सौरी के द्वार पर एक बोरसी (मिट्टी का चौड़े मुँहवाला पात्र) में सर्वदा गोयठे की आग जलती रहती है। उसमे धान की भूँसी देकर निरन्तर धुँआ किया जाता है। बीच-बीच में 'सतंजा'[1] का धुँआ भी किया जाता है। सौरीघर में आवश्यक महिलाएँ ही प्रवेश पाती हैं। वे भी आती-जाती हुई आग में धान की भूँसी या 'सतंजा' देकर धुआँ करती जाती हैं। प्रायः गीतों मे सोने की बोरसी मे चन्दन की लकड़ी एवं अन्य सुगन्धित द्रव्यों के जलाने का वर्णन पाया जाता है।

२. सौरीघर के द्वार पर एक काले कपड़े मे लहसुन, कालिख, भड़भूजा का बालू एवं 'उलटा सरसों' की छोटी पोटली बनाकर टाँगी जाती है। दरवाजे के दोनो ओर कोने से लगाकर 'मुठिया सीज'[2] खड़ा किया जाता है। परसौती की खाट के कोने में एक छुरी खोंसी जाती है।

३. एक बूढ़ी औरत चौबीस घण्टे परसौती के साथ रहती है। इसे 'सौरी अगोरना' कहते हैं। यह एक मुहावरे के रूप में भी प्रयुक्त होने लगा है। इसका अर्थ है— सतर्कता के साथ किसी वस्तु की रक्षा में संलग्न रहना। 'सौरीघर' में बिल्ली नहीं घुसने दी जाती। इसे बहुत अशुभ माना जाता है।

४. जबतक परसौती सौरीघर में रहती है, उसके बाल खुले रहते हैं। वह स्नान, शृंगार एवं अलंकरण नहीं कर सकती। छह दिनों के अन्दर ब्राह्मण से पूछकर कोई शुभ दिन निर्धारित किया जाता है। उस दिन परसौती और बच्चा दोनों को नीम के पानी से स्नान कराया जाता है। सौरीघर के साथ ही सारे घर की सफाई-धुलाई होती है।

प्रथम स्नान में जच्चा-बच्चा को पवित्र नहीं माना जाता है। सभी उनका स्पर्श नहीं कर सकते। केवल परिचारिका ही छूती है, जो घर के सारे कामों से अलग रहती है।

उपर्युक्त टोने-टोटके के अतिरिक्त जच्चा-बच्चा के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए जच्चा को भोजन के सम्बन्ध में विशेष नियमों को अपनाना होता है। प्रथम स्नान के पूर्व जच्चा को सामान्य भोजन नहीं दिया जाता। उसे कहीं कच्ची आदी, कच्ची हलदी, सोठ और गुड़ का पतला हलवा बनाकर खिलाया जाता है; कहीं जलेबी, मखाना और दूध दिया जाता है। प्रथम स्नान के दिन उसे 'खिचड़ी' (चावल-दाल को एक साथ सिझाकर बनाया गया भोजन) खिलाई जाती है। फिर, क्रमशः वह सामान्य भोजन करने लगती है।

छठी के दिन दूसरा स्नान होता है। इस दिन नाइन या सवासिन[3] 'अछुमानी' या 'बत्तीसा'[4] का हलवा या लड्डू बनाती है। इसे नियमित रूप से परसौती को 'बिसौरी'

१. इसमें 'उलटा सरसों' (वह सरसों, जो उलटी छीमी में फलती है), मेथी, जमाइन, लहसुन, राई, मिरचाई और जौ का मिश्रण रहता है।

२. एक काँटेदार पौधा।

३. बेटी, वधू की ननद।

४. एक प्रकार का हलवा, जिसमें बत्तीस प्रकार की जड़ी-बूटी, मेवा आदि का मिश्रण रहता है।

तक खिलाया जाता है। अछुमानी के साथ उसे दूध भी पिलाया जाता है। इससे जच्चे को दो लाभ होते हैं—१. उसका स्वास्थ्य अच्छा हो जाता है और २. शिशु के लिए उसके स्तनों में दूध भर आता है।

छठी—बालक जब छह दिन का होता है, तब 'छठी' नामक संस्कार किया जाता है। जन्म के बाद यही प्रथम संस्कार का अवसर होता है। ऐसा जन-विश्वास है कि ब्रह्मा इसी दिन आकर बालक का भाग्य लिखते हैं। रात्रि में छठी की रस्म होती है। इस दिन बालक और उसकी माँ को स्नान कराकर शुद्ध किया जाता है। सारा घर लीप-पोतकर पवित्र किया जाता है। इसके बाद निम्नांकित विधान किये जाते हैं—

१. इस दिन परसौती का सुन्दर श्रृंगार-प्रसाधन किया जाता है। वह नवीन वस्त्र धारण करती है। बालक को भी इसी दिन पहली बार नवीन वस्त्र पहनाये जाते हैं। उसके सिर पर टोपी अवश्य पहनाई जाती है।

२. वधू के नैहर से इस दिन कपड़े, मिठाइयाँ, आभूषण आदि आते हैं। प्रायः वधू इस दिन नैहर के ही कपड़े पहनती है। शिशु भी ननिहाल के कपड़े पहनता है।

३. सामान्य पूजा-विधान के बाद परसौती बच्चे के साथ घर-कुटुम्ब के गुरुजनों का चरण-स्पर्श करती है।

४. इस दिन घर मे अनेक पकवान बनते हैं। परिजनों को श्रद्धापूर्वक खिलाया जाता है।

५. छठी के दिन बहुत 'सोहर'-गीत गाये जाते हैं। इनमें पति-पत्नी के प्रेम-मिलन एवं ननद-भावज के हास-परिहास के गीतों की मात्रा अधिक रहती है।

६. आज की रात जच्चा और बच्चा जिस खाट पर सोते हैं, उसके माथे के पौए की बाईं ओर घी का एक चिराग जलाकर रखा जाता है। चिराग इस प्रकार रखा जाता है कि बालक की दृष्टि उसपर न पड़े। जन-विश्वास है कि इस दीपक पर दृष्टि पड़ने से बच्चे की आँखें बगडेरी (वक्र) हो जाती हैं। दीये के सिर पर कजरौटी औंध देते हैं, जिसमें काजल पड़ जाता है। बच्चे की बुआ इसी काजल को बालक की आँखों में लगाती है, जिसे 'आँख-अँजाई' कहते हैं। इस अवसर पर ननद, भावज से नेग माँगती है।

७. इस दिन मगध के कुछ क्षेत्रों में (विशेषकर 'गया' जिले के कुछ भागों में) छुतका से मुक्त होने के लिए घर के मर्द बाल भी मुड़ाते है। घर के सभी पुरुष-नारी नाखून अवश्य बनवाते हैं।

८. जो बालक 'सतइसा' में पड़ जाता है, उसका पिता 'सतइसा' के दिन तक बाल नहीं मुड़ाता और नाखून भी नही कटाता।

बरही—शिशु-जन्म के बारह दिनों के बाद 'बरही-संस्कार' किया जाता है। उस दिन घर की सफाई का तीसरा अभियान चलता है। परसौती आज भी पूर्ण पवित्र नही हो पाती। वह रसोई नही छू सकती।

'बरही' के दिन पिता नवजात बालक का मुख प्रथम बार देखता है। पिता और घर के सभी मर्द बालक को गोद लेते और रुपये देते हैं। इस दिन ज्योतिषी को बुलाकर बालक की जन्मकुण्डली बनवाई जाती है और उसका नामकरण होता है।

बिसौरी—शिशु-जन्म के बीस दिन बाद 'बिसौरी' का विधान होता है। इस दिन स्नान-पूजा एवं अन्य विधि-विधानो के बाद परसौती पवित्र, समझी जाती है। बिसौरी के पहले वह कुँआ नहीं छू सकती। पर, बिसौरी के दिन वह विशेष कर 'इनारा' (इन्दरा, कुँआ) की पूजा करती है। इनारे के ऊपरी कोर पर पश्चिम की ओर, भकरा सिन्दूर को घी में घोलकर, पाँच टीका लगाती है, जिससे पूर्व से उगते हुए सूर्य की प्रथम किरणें उसपर पड़ें। आज का दिन जच्चा-बच्चा के पूर्ण शुद्धीकरण, गान, उत्सव, भोजन आदि के साथ सानन्द समाप्त होता है।

कहीं-कहीं बिसौरी के दिन बालक को 'जन्तर' पहनाया जाता है। यह ताँबे का होता है। जोगी जाति के लोग दूधिया मोती की माला बनाकर उसमें ही 'जन्तर' को गूँथकर देते हैं। जन्तर के भीतर लाल कपड़े मे 'उलटा सरसो', लहसुन आदि बाँधकर डाल देते हैं।

कहीं-कहीं सवा महीने के बाद 'परसौती' और बालक को पवित्र माना जाता है।

सतइसा—ज्योतिषी से पत्रा दिखाने पर कोई-कोई बालक सतइसा के ग्रह में पड़ा मिलता है। इस ग्रह को अशुभ माना जाता है। सतइसा में पड़े बालक का पिता 'सत्ताइस' दिनों तक बालक का मुँह नही देखता। सत्ताइसवें दिन एक उत्सव होता है। उसमें बालक का पिता बालक के मुख को प्रथम बार तेल में देखता है। फिर, प्रत्यक्ष देखता है। उस दिन पूजा-पाठ करने के पश्चात् बालक पर से उस अशुभ नक्षत्र की छाया हटी-सी मानी जाती है।

इन लोकाचारो के साथ बालक के जन्म के सारे उत्सव समाप्त होते हैं।

उपर्युक्त सभी विधि-विधानों मे स्त्रियो का ही प्रमुख हाथ रहता है। केवल बच्चे की जन्मपत्री बनाने एवं नामकरण करने में पुरोहित का सहयोग प्राप्त होता है। 'सतइसा' में पौरोहित्य संस्कार द्वारा अशुभ नक्षत्र की शान्ति कराई जाती है। स्त्रियों द्वारा सम्पन्न सभी विधि विधानो एवं आचारो के साथ गीत गाये जाते हैं।

पुत्र-जन्मोत्सव पर नृत्य-आयोजन :

पुत्र-जन्म के उपलक्ष्य में अनेक समृद्ध घरो मे नृत्य-गीत का आयोजन होता है। इनमें भाग लेनेवाले कलाकार निम्नांकित होते हैं—

१. पँवरिया,

२. बक्खो-बखाइन और

३. खेलनी।

इनमें प्रथम दो प्रायः मुसलमान जाति के होते हैं, जिनका व्यवसाय ही होता है—नृत्य एवं गान द्वारा जीविकोपार्जन। 'खेलनी' हिन्दू-जाति की महिलाएँ हैं, जो नृत्य-गान करके जीविका चलाती है। प्रायः इन गायकों के गानों में रामचन्द्र के जन्म का उल्लेख रहता है। यथा—

सिरी रामचन्दर जलम लेलन चैत रामनवमी।

यह पंक्ति उनके गीत में टेक के रूप में प्रयुक्त होती है।

'वाल्मीकीयरामायण' में भी राम के जन्म के अवसर पर गन्धर्वों के गाने एवं अप्सराओं के नाचने का उल्लेख हुआ है । यथा—

जगुः कलं च गन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवृष्टिश्च खात्पतत् ॥[1]

पुत्रजन्म के अवसर पर नृत्य-गान के आयोजन की वर्त्तमान प्रथा प्राचीन काल का ही अवशेष है । अब यह प्रथा धीरे-धीरे उठ रही है एवं परिणामतः हमारा समाज इस प्रसंग में उपर्युक्त व्यवसायी जातियो द्वारा प्रदान किये जानेवाले लोक-साहित्य के महत्त्वपूर्ण दाय से क्रमशः वंचित होता जा रहा है ।

मगही-सोहरों के वर्ण्य विषय :

मगही सोहरों के वर्ण्य विषय अति व्यापक हैं । पति-पत्नी के प्रेम-मिलन, गर्भ की स्थापना, गर्भिणी की विविध स्थितियाँ, शिशुजन्म एवं तत्सम्बन्धी उत्सव, प्रसूती के नैहर एवं ससुराल के विविध सम्बन्धियो आदि से सम्बन्ध प्रभृति के सुन्दर वर्णन सोहर-गीतों में उपलब्ध होते हैं ।

परन्तु, इन गीतो का विशेष आनुष्ठानिक महत्त्व नही है । अधिकांश सोहर सामान्यतः जन्म के प्रसंग में किसी भी अवसर पर गाये जाते हैं । कुछ ही सोहर ऐसे निकलेंगे, जिनका सम्बन्ध किसी विशिष्ट 'अवसर', 'विधि' या 'अनुष्ठान-विशेष' से है । यथा : प्रसव-वेदना, नार-कटाई, प्रसूती के स्नान, आँख-अँजाई आदि से सम्बद्ध गीत । पर, इन्हें अनिवार्य रूप से उसी अवसर, विधि या अनुष्ठान के समय नही गाया जाता ।

सोहर-गीत तो मंगलगान के रूप में जन्मोत्सव-सम्बन्धी सभी अवसरों, विधियों एवं अनुष्ठानों के समय सामान्य रूप से गाये जाते है । ऐसी स्थिति में आनुष्ठानिक की दृष्टि से इन गीतों का अध्ययन प्रस्तुत करना सम्भव नहीं है । मगही के विपरीत 'व्रज' में जन्मोत्सव-सम्बन्धी प्रत्येक आचार के साथ गीतों का घनिष्ठ सम्बन्ध है ।[2]

वर्ण्य विषय की दृष्टि से मगही सोहरो को यथानिर्दिष्ट रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है—

---

१. वा० रा०, बालकाण्ड–१८।१६ ।
२. ब्र० लो० सा० अ०, पृ० १२२–१२३ ।
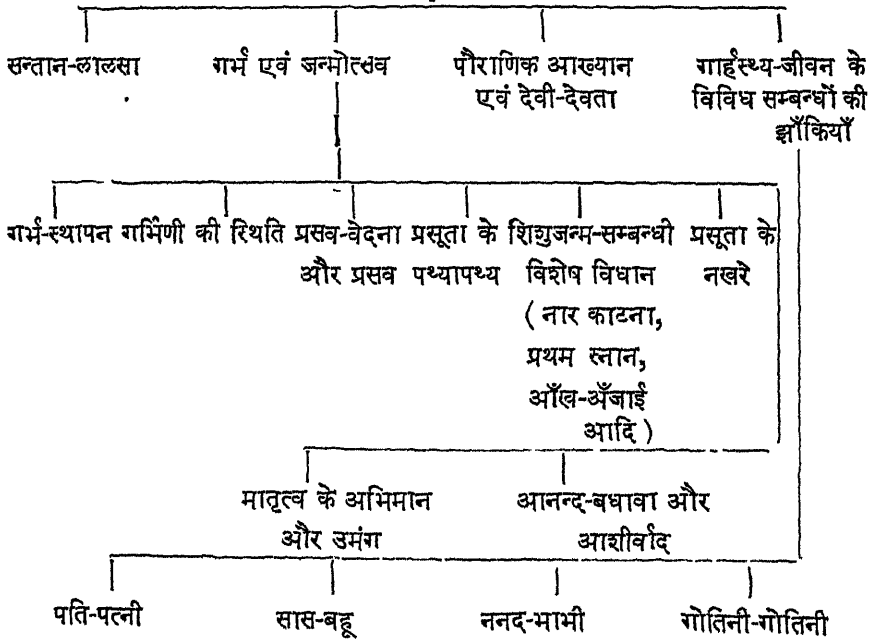
सन्तान-लालसा-सम्बन्धी सोहर :

इस वर्ग के सोहरों में प्रायः सन्तान के लिए दम्पति-विशेष की आन्तरिक लालसा एवं विकलता दरसाई जाती है। चूँकि सोहरों की गायिका स्त्रियाँ ही होती हैं, इसलिए इनमें विशेषतः नारी के भावचित्र ही मिलते हैं। मनोवैज्ञानिक, पारिवारिक और सामाजिक दृष्टि से नारी के लिए सन्तान की आवश्यकता भी है। सन्तान नारी की ललित कामनाओं की चरम परिणति है और इसीलिए उसका हृदय और मन निरन्तर सन्तान की कामना से उद्वेलित होता रहता है। परिवार एवं समाज में सन्तानवती नारी ही आदृत होती है। सन्तानहीना नारी किसी मांगलिक विधान में भाग तक नहीं ले सकती। उसे सर्वव्यापी सामाजिक विगर्हणा का भाजन होना पड़ता है। इन्हीं कारणों से सन्तान-लालसा की तीव्र व्यंजना सोहरों में मिलती है।

वन्ध्या स्त्री सन्तानवती होने के लिए अनेक उद्योग करती है। यथा—देवपूजन, गुरुजनों की सेवा-वन्दना, साधु-फकीर से जड़ी-बूटी-भभूत आदि की प्राप्ति एवं अन्य उपचार। इनमें सोहर-गीतों मे देवपूजन को विशेष महत्त्व दिया जाता है। सन्तान-प्राप्ति के लिए सूर्य, गंगा आदि देवताओं की पूजा का विस्तृत वर्णन सोहरों में मिलता है। गुरुजनों की सेवा-वन्दना का भी वर्णन मिलता है। अन्य उपचारों के वर्णन अत्यल्प हैं।

उदाहरणार्थ, मगही के कुछ ऐसे सोहर गीतों को प्रस्तुत किया जाता है, जिनमें सन्तान-कामना से विह्वल स्त्री की करुण दशा का वर्णन हुआ है।

एक स्त्री घर लीप-पोतकर शुद्ध करती है, फिर भी उसका कपड़ा मैला नहीं हो पाता, उसकी गोद में बालक जो नहीं है—

कोठरिया जे लिपली ओसरा से अउरो देहरिया से।
ललना, तइयो न चुनरिया मइल भेल, एक रे होरिलवा बिनु।

× × × ×

देहिया में दस सै सारी अउरो चोली हे।
ललना तइयो न देहिया सोहामन लगे एक रे होरिलवा बिनु।[1]

सन्तानहीन नारी का हृदय कोयल-सा कुहुँकता और बोरसी-सा सुलगता रहता है—

जइसे बन के कोइलिया, बने बने कुहुँकइ हे।
तयसहीं जियरा मोरा कुहुँकइ एक रे बलकवा बिनु हे॥
जइसे बोरसी के अगिया सले सले सुलुगई हे।
तयसहीं जियरा मोरा सुलुगई एक रे बलकवा बिनु हे॥

कितनी घनी व्यथा बसी है इस निवेदन मे। इस गीत का भोजपुरी प्रतिरूप भी मिल्ता है।[2]

एक सन्तानहीना स्त्री अपने पति से कहती है—'मुझे आम का मीठा फल खाने की इच्छा है।' निष्ठुर पति का उत्तर है—'तुम भी पुत्र उत्पन्न करती, तो मैं सोहर सुनता।' इस अप्रत्याशित उत्तर से मर्माहत वह स्त्री सभी गुरुजनों के पास पुत्र-प्राप्ति का आशीर्वाद लेने जाती है। पर परिवार के सभी परिजन उससे निराश हो चुके हैं। वे उपेक्षा से कहते हैं—

पुरुब के चनमा पछिम होय, सुरुज पछिम उदै हे।
बहुआ तरसि तरसि जीउ जयतो, पुतर कहाँ पयबऽ हे।[3]

अन्त में, स्नान करके पवित्र शरीर-मन से यह स्त्री सूर्य-पूजन करती है। सूर्य की कृपा से उसे पुत्ररत्न उपलब्ध होता है। फिर, वह समस्त पारिवारिक उपेक्षाओं एवं भर्त्सनाओं को विस्मृत कर सबका उचित सम्मान करके अपनी सज्जनता, शिष्टता एवं कुलीनता का परिचय देती है।[4]

एक सन्तानहीना स्त्री गंगा के तीर पर खड़ी रो रही है। वह गंगा माता से एक लहर माँगती है, जिसमें डूबकर वह वैयक्तिक दुःख और पारिवारिक-सामाजिक विगर्हणा से मुक्ति पा सके। पर, देवी-देवता मानव के प्रति मानव से अधिक सहानुभूति रखते हैं। गंगा माता उसे आशीर्वाद देकर लौटा देती हैं। वह भी गंगा माता के आशीर्वाद के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती है—

---

१. मगही सं० गी०, पृ० ३३।
२. भो० लो० सा० अ०, पृ० १६३।
३. म० सं० गी०, पृ० २६।
४. वही।

गंगा मइया के ऊँची अररिया, तिवइया एक रोवल हे।
मइया, अपना लहर तुहूँ दीहऽ, सेहि में समायब है।।'

× × ×

चुपु-चुपु तिवइ अपन घर जाहु लहर नहिं माँगहु हे।
आज के नौमां महिनमा बलकवा गोदी खेलइ हे।।
गंगा मइया पियरि पेन्हायब, बलकवा जवे पायव हे।
मइया! देहु तूँ भगीरथ पूत, जगत जस गावइ हे।।

यही गीत कुछेक रूपान्तरों के साथ श्रीरामनरेश त्रिपाठी[1], डॉ० सत्येन्द्र[2] एवं श्रीरामइकबाल सिंह राकेश[3] द्वारा भी उद्धृत किये गये हैं।

एक मगही सोहर-गीत इस प्रकार है कि एक वन्ध्या स्त्री अपने पति द्वारा घर से निकाल दी जाने पर जंगल में जाकर बाघिन से खाने को कहती है। बाघिन का उत्तर है—'मैं तुम्हे खाऊँगी, तो मैं भी बाँझ हो जाऊँगी।' फिर, यह अभागिन स्त्री सर्पिणी से डँसने को कहती है। वह भी वन्ध्या का स्पर्श करना अशुभ समझकर डँसने से इनकार कर देती है। फिर, वह माँ के पास नैहर पहुँचती है। माँ कहती है—'बेटी! तुम्हें शरण दूँगी, तो तुम्हारी छाया पड़ने से हमारी बहुएँ बाँझ हो जायेंगी।' तब वह धरती माता से कहती है—'माँ। तुम तो दया करो। तुम फट जाओ। मैं समा जाऊँ।' धरती माँ का उत्तर है—'तुम्हे अपने गर्भ में लूँगी, तो मैं भी ऊसर हो जाऊँगी।'

कितनी दयनीय स्थिति है! वन्ध्या की न केवल घर-समाज में उपेक्षा होती है, उसके लिए समस्त विश्व ही उपेक्षा प्रदर्शित करता दीखता है।

इसी आशय का एक सोहर राजस्थानी[4] में भी मिलता है—

मा, सहस-तलाबाँ में गई जे
रीता ए समँद-तलाब, हंसा बुगला उड़ रह्या जे।
मा, बाग-बगीचाँ में गई जे,
मा, काचा ए दाड़म दाख, कोयल कागा उड़ गया जे।

बिचारी पुत्रविहीना सरोवर के किनारे गई, तो उसे देख हंस, बगुला आदि पक्षी उड़ गये। वह बगीचे मे गई, तो वृक्षों पर उसने फलों को कच्चा पाया। बाग के पक्षी उसके अशुभ दर्शन से उड़ गये। आगे विवरण है कि उसके जाने पर बाजार में दूकानें बन्द हो गई। रसोईघर मे जाने पर देवर-जेठ घिनाकर उठ खड़े हुए। रंगमहल में पति ने स्वागत नहीं किया। वह सबके द्वारा अस्पृश्य एवं अदर्शनीय मानी गई।

पर, बाद में सौभाग्य से वह पुत्रवती हो गई, तो फिर सारे संसार का व्यवहार अनुकूल हो गया—

---

१. कविता-कौमुदी, पृ० ४।
२. ब्र० लो० सा० अ०, पृ० १२४–१२५।
३. मै० लो०, पृ० ५१।
४. राजस्थानी मे 'सोहर' को 'हालरा' कहते हैं।

सन्तान-कामना-सम्बन्धी सोहर अन्य सोहरों के समान सन्तान-जन्म के बाद ही गाये जाते हैं। इनका सम्बन्ध किसी विशिष्ट विधान या अनुष्ठान से नहीं है।

गर्भ एवं जन्मोत्सव-सम्बन्धी सोहर :

इस वर्ग के सोहरों में गर्भ-स्थापन, गर्भिणी की क्रमशः परिवर्त्तित होती हुई शारीरिक अवस्था, प्रसव-पीडा, प्रसव, प्रसूता के पथ्यापथ्य, प्रसूता के नखरो, पुत्रोत्पत्तिजन्य उल्लास, सम्बन्धियों एवं परिजनों की परस्पर सम्पन्न बधाइयों तथा शुभकामनाओं, 'प्रसूता' में मातृत्व की गरिमा, विविध आनन्दोत्सवों, अनुरागमय-आमन्त्रणों, मनुहारों, उपालम्भों आदि का छोटे-छोटे कथोपकथन एवं विविध स्थितियो के विवरण-क्रम उनकी रोचकता की वृद्धि करते हैं एवं उनमें नाटकीयता ला देते हैं।

जन्मोत्सव के गीतों में दो वर्ग मिलते हैं—१. सामान्य एवं २. विशेष।

१. सामान्य वर्ग में प्रसव-पीडा एवं तद्विषयक मनोभाव, पुत्रजन्म का आनन्द, जन्म के अवसर पर नेग आदि के लिए डगरिन, ननद आदि से झगड़ा, आनन्द-बधाई आदि विषयों का समावेश होता है।

२. विशेष वर्ग के गीत में राम या कृष्ण, सीता या रुक्मिणी आदि देव-देवी को आश्रित कर जन्म-सम्बन्धी कोई सामान्य बात कही जाती है। वस्तुतः, ये देव-देवी सामान्य मानव का ही प्रतिनिधित्व करते हैं। यथा : राम या कृष्ण अपने साधारणीकृत रूप में किसी भी पुरुष का एवं सीता या रुक्मिणी किसी भी स्त्री का नाम हो सकता है। लोकमानस 'सामान्य' और 'विशेष' में कोई अन्तर नहीं रखना चाहता। विशेष वर्ग के अन्तर्गत आनेवाले देव-विषयक सोहरों पर यथास्थान विचार प्रस्तुत किया गया है।

यहाँ गर्भ एवं जन्मोत्सव-सम्बन्धी सोहरो के वर्ण्य विषय द्रष्टव्य हैं।

गर्भ-स्थापन—इस प्रसंग पर प्रकाश डालनेवाले गीतों में यौवन की परिपूर्णता, उल्लास, पति-पत्नी का हास-विलास, प्रेम-शृंगार आदि के उल्लासमय एवं नाटकीय वर्णन मिलते हैं। यथा निम्नांकित मगही नृत्य-गीत में वधू के गर्भाधान का आनन्दमय प्रसंग अति प्रतीकात्मक रूप में वर्णित हुआ है—

'पारहिं ऊपर कसैलिया एक बोयली,
हे गोरी के लाल, फुलवा फूले हे कचनार।
फूल लोढ़े गेलन छौंरो अलबेलिया,
हे गोरी के लाल, फुलबे गरभ रहि जाय॥'[१]

एक ओर उपवन में कचनार के फूल लद रहे हैं, दूसरी ओर अलबेली नारी का यौवन पूर्णावस्था को पहुँचा हुआ है। कचनार के लदबद फूल गोरी के गदराये यौवन के प्रतीक हैं। फूल में छिपा हुआ भँवरा प्रियतम का प्रतीक है। रसलोभी भँवरा फूलों में विलास करता है। अलबेली का प्रियतम यौवन-रस का पान करता है। परिणामतः, गर्भ-स्थापन हो जाता है।

---

१. दे० म० लो० सा०, पृ० ३३-३४।

दूसरे मगही-गीत में एक दोहदवती अपने गर्भाधान की घटना को बड़े शिष्ट और संयत ढंग से प्रस्तुत करती है—

अगहन मासे बाबा मोरा बिआहलन, माघ मासे बिदा कयलन हे।
ललना हे सामन मासे स्वामी चरन छुअली, देहिया मोरा भारी भेलई हे।[1]

गर्भाधान एवं गर्भधारण से सम्बद्ध ऐसे अनेक मगही-गीत उपलब्ध होते हैं।

गर्भवती की स्थिति—गर्भ की स्थापना के बाद नारी के शरीर-मन में क्रमशः परिवर्त्तन लक्षित होने लगते हैं। उसका मुख पीला पड़ने लगता है, सामान्य भोजन से उसे अरुचि हो आती है, चित्त खिन्न रहने लगता है, घर का काम नही होता, आम-इमली आदि खट्टी चीजें अच्छी लगने लगती हैं।

गर्भिणी की इन शारीरिक एवं मानसिक स्थितियों का उल्लेख करनेवाले अनेक मगही गीत हैं। यहाँ एक गीत का साराश कुछेक उल्लेख्य पंक्तियों के साथ उद्धृत किया जाता है।[2] इससे नव मास में होनेवाले परिवर्त्तनों का संक्षिप्त ब्योरा उपलब्ध हो जायगा। इस गीत की नायिका रुक्मिणी है, जो भगवान् कृष्ण की पत्नी है। वस्तुतः, इस रुक्मिणी के सारे मनोभावों एवं शारीरिक परिवर्त्तनों के चित्रण ऐसे हैं कि इनसे किसी भी समान्य गर्भवती नारी का प्रतिनिधित्व हो जाता है।

गीत के आरम्भ में प्रबन्ध-काव्य के समान सरस्वती एवं गणपति की स्तुतियाँ हैं—

सुरसत गनपत मनाइब, चरन पखारब हे।
अहे रुकमिनी भइल राजा जोग, केसव बर पावल हे।

रुक्मिणी युवती हुई। उसे केशव-से पति मिले। दोनो का प्रेमपूर्ण मिलन हुआ। रुक्मिणी गर्भवती हो गई। दूसरे महीने से ही गर्भ के लक्षण शरीर पर विराजने लगे। रुक्मिणी की सहेलियाँ ठिठोली करती हैं, तो वह क्रोध करके गाली देने की धमकी देती है—

जाहु नारी देम गारी मोहि खेल न भावहिं॥

तीसरे मास मे उसे चक्कर आने लगता है। भोजन देखकर मिचली आती है। छप्पन प्रकार के भोजन आते हैं। सब छोड़ देती है। पर, चुगकर चूल्हे की सोंधी मिट्टी खाती है—

सभ छोड़ि चुल्हवा के माटि के रुकमिनी चुपके चाटे।

चिन्तित कृष्ण पूछते हैं कि—

कउन कारन भेल तोहिं के, कहि के मोहिं सुनावहू।
कउन चीज मन भावत, ओहि के बतावहू॥

मगही-गीतों में 'दोहद' का वर्णन अनेक स्थलों पर हुआ है।[3] पति प्रायः इस दोहद की पूर्त्ति करता हुआ पाया जाता है।

---

१. दे० म० लो० सा०, पृ० ३३।
२. मगही सं० गी०, पृ० ५६-५८।
३. **अमवा जे फरलइ घउद सयँ, इमली झबद सयँ हे।**
परभु जी, नरियर फरले बहुत सयँ, ओही मोरा मन भावे हे।

छठे महीने में दासी सोने के कटोरे में दूध भरकर लाती है। पर रुक्मिणी सब छोड़कर आम्ररस का खट्टापन चखना चाहती है। गर्भिणी को खट्टी चीजें बहुत रुचती हैं—

सभ छोड़ि अमरस चाटल मधुर रस तेजल हे।
अलफी सलफी सभ फेकल मन फरियायल हे॥

अब उसका चित्त इतना खिन्न रहने लगा कि उसने सारे साज-शृंगार उतार फेंके। सातवें महीने में उसका मुख पीला पड़ गया—

सतमें मास आयल चइत, सत बाजन बाजये हे।
अहे रुकमिन चिहुँकी के उठथि बदन पियरायल हे॥

आठवें महीने में अपने पीले मुख को दर्पण मे देखकर वह खिन्न होती है—

अठमें महीने जब आयल बइसाख नियरायल हे।
अहे फेरि फेरि देख मुँह अयनमा, कइसन मुँह पीयर हे।

नवें महीने में रुक्मिणी व्याकुल हो उठी—

नौमा महीना जब जेठ के दुपहर हे।
लुहवा चलऽ हइ धूरि उठऽ हइऽ से रुकमिन व्याकुल हे॥

दसवें महीने में सोचती है कि किस प्रकार पार उतरेगी—

कउन विधि उतरब पार, चितय रानी रुकमिन हे॥

इसके बाद उसके गर्भ से प्रद्युम्न ने जन्म लिया और महल में सोहर उठने लगे। चारों ओर अन्न-धन बँटने लगा—

मोती मूँगा सो चानी सोना लुटवल जे किछु माँगल हे।
सखी सभ मंगल गावहिं, सुध बुध बिसरहिं हे॥

रुक्मिणी की क्रमशः बढ़ती हुई शारीरिक-मानसिक खिन्नता, खट्टी एवं सोंधी भोज्य वस्तुओं के प्रति रुचि, अन्य भोज्य पदार्थों के प्रति अरुचि, पति द्वारा पत्नी की दोहद-कामनाओ का पूछा जाना, अन्त मे सकुशल उबरने की चिन्ता आदि विभिन्न स्थितियाँ सभी गर्भवती नारियों के सम्बन्ध में समान रूप से सत्य हैं।

प्रसव-वेदना और प्रसव :

प्रसव-वेदना के क्षण स्त्री के लिए बड़े भयावह एवं कष्टपूर्ण होते हैं। पल-पल उसकी जान की आशंका बनी रहती है, अतः एक ओर तो महिलाओं का एक दल सोहर सुनाकर उसे भुलाने की चेष्टा करता रहता है, तो दूसरा दल उसकी परिचर्या में संलग्न रहता है। पति या घर के अन्य पुरुष डगरिन को बुलाने के लिए चल पड़ते हैं। सारा घर इस समय व्यस्त दिखाई देता है।

इस वर्ग के सोहरों में स्त्री की प्रसवजनित पीडा, उसकी प्रेम-शृंगार में भविष्य में भाग न लेने की प्रतिज्ञा, घर के लोगों की परिचर्या, डगरिन का आगमन, शिशु का जन्म, आनन्द, उत्साह आदि के यथातथ्यपूर्ण चित्रण मिलते हैं। उदाहरणार्थ, मगही के कुछ गीतांश देखिए—

एक स्त्री प्रसव-वेदना से पीडित है। सावन का महीना है। दादुर, मोर, पपीहे, झींगुर आदि के सम्मिलित स्वर 'शहनाई' का काम कर रहे हैं। वर्षा के कारण चतुर्दिक् कादो-कीच भी छाया है—

सावन के सहनइया, भदोइया के किच किच हे।
सुगा-सुगइया के पेट, वेदन कोई न जानये हे।
सुगा-सुगइया के पेट, कोइली दुख जानये हे।

इन पंक्तियों में शुकी की गर्भवेदना से गर्भिणी नारी की वेदना की अभिव्यक्ति की गई है। हिन्दी-साहित्य मे मानव-दम्पति के लिए शुक-शुकी का प्रतीक प्रसिद्ध है। शुकी की वेदना की जानकार कोयल, गर्भिणी नारी की सहेली या चेरी है। वह पत्नी की प्रसव-वेदना का समाचार पति को पहुँचाती है। पति आनन्द-विह्वल होकर हाथ का पासा, बेल और बबूल के वृक्ष के नीचे छोड़ 'गजओबर' मे पत्नी के पास पहुँचकर कुशल-समाचार पूछता है। वह कहती है—

डाँड़ मोरा फाट हे करइली जाके, ओटिया चिल्हकि मारे हे।
राजा का कहूँ दिल के बात, धरती मोर अन्हार लागे हे॥[1]

ऐसी घड़ी में बड़ी-बूढ़ी औरतें बड़े काम की होती हैं, अतः पति अपनी माँ को बुलाने जाता है—

मइया, तोर पुतहू दरद बेयाकुल, तोरा के बोलहट हे।[2]

अन्त में, रात्रि मे शिशु का जन्म होता है, महल में बधावे बजते हैं। सोहर का स्वर गूँजने लगता है। चेरी चतुर्दिक् 'सोठउरा' बाँटती है।

एक गीत मे वर्णित है कि पति, पत्नी की वेदना देखकर डगरिन को बुलाने जाता है। डगरिन चलनेके लिए वह पालकी माँगती है, जिसपर उसकी बहू ससुराल आई थी—

लेइ आबऽ रानी सुख पालकी ओहि रे चढ़ि जायब हे।

फिर, वह शिशु-जन्म के पहले ही नेग लेने का वचन ले लेती है। पति कहता है—

डगरिन जब मोरा होय तो त बेटवा, त कान दुनु सोना देबो हे।
डगरिन जब होयत मोरा लछमिनियाँ, पटोर पहिरायब हे॥

अन्त में, पुत्रजन्म के बाद मुँहमाँगा इनाम लेकर डगरिन घर जाती है।

एक स्त्री वेदना-कातर होकर पति, पुत्र आदि सबके सुख का त्याग करने का संकल्प करती है और सेज लगानेवाली चेरी को 'बैरिन' कहती है—

---

१. तुल० कपारा त हमरो टनकेला ओदारा चिलिकेला ए।
राजा दुनियाँ भइले अनसुन, कवन कहीं कुसल ए॥
—भो० लो० सा० अ०, पृ०१६४।

२. म० सं० गी०, पृ० १०–११।

कउन बैरिन सेजिया डँसावल, दियरा बरावल हे।
अरे कउन बैरिन भेजले दरदिया करेजे मोरा सालय हे।

× × × ×

अब नहिं पिया संग सोयबो, न बबुआ खेलायब हे।
ललना, अब नहीं नयना मिलायब, दरद करेजे सालय हे।

पर, आधी रात में शिशु-जन्म के बाद उसकी मनःस्थिति बदल जाती है। फिर, उसे पति-पुत्र सभी प्रिय लगने लगते हैं—

अब हम पिया संघे जायब, नयन जुड़ायब हे।
ललना, अब हम बबुआ खेलायब, हम तो सहब दुःख हे॥

कितना सुन्दर मनोवैज्ञानिक भाव-परिवर्त्तन है।

कई स्थलों पर प्रतीकात्मक शैली में गर्भाधान, गर्भ-वेदना आदि की व्यंजना की गई है। एक स्त्री पके फलों को देखकर गर्भ-वेदना से व्याकुल हो उठती है—

लटकल देखलू लेमुआ त, पकल अनार देखलू हे।
गोले गोले देखलू नौरंगिया, जच्चा रे दरद बेयाकुल हे॥

पूर्ण विकसित एवं पके फलों को देखकर जच्चा प्रसव-वेदना से व्याकुल होती है। संकेत यह है कि नवें महीने में शिशु के गर्भ में पूर्णरूपेण परिपक्व होने पर गर्भवेदना आरम्भ होती है। प्रसविनी वृक्ष है, शिशु उसमे लगा फल है। फल पकने पर तोड़ा जाता है, शिशु विकसित होने पर जन्म लेता है। इस प्रकार, यह प्रतीक-विधान बहुत ही स्वाभाविक, मनोरम एवं मार्मिक बन पड़ा है।

कहीं प्रसव-वेदना से पीडित पत्नी पति को 'निरमोहिया' कहकर उसके प्रति अपना क्रोध व्यक्त करती है; क्योंकि उसके विचार में वह सुख के क्षण में तो उसका साथी होने आया था, पर इस दुःख के क्षण को बाँटने नहीं आता—

निरमोहिया लाल बड़ी दरदे उठी।

प्रसव-वेदना के वर्णन के बाद प्रायः गीतों मे प्रसव या शिशु-जन्म का उल्लेख निम्नांकित शैली में होता है—

आधी राती गेल पहर राती, होरिला जलम लेल हे।
ललना बजे लागल आनन्द बधावा, महल उठे सोहर हे॥

इस प्रकार, मगही-सोहर गीत प्रायः प्रसव-वेदना से प्रारम्भ होकर, शिशु-जन्म और तत्सम्बन्धी आनन्द-उल्लास आदि से अन्त होते हैं।

पुत्रजन्म से घर में जो उल्लास का वातावरण छाता है, वह पुत्रीजन्म से नहीं। बल्कि इससे घर में विषाद का गहरा वातावरण-सा छा जाता है। प्रसविनी की उपेक्षा होने लगती है। एक प्रसविनी बड़े मार्मिक शब्दों में पुत्रीजन्म के बाद अपने प्रति की जानेवाली पारिवारिक उपेक्षा का वर्णन करती है—

सासु जी, तरबो चटइया नहीं देलन, पलंग मोर छीन लेलन हे।
हम तो जानली राम जी बेटा देतन, बेटिया जलम लेलक हे।

ननदी मोरा गरियावे, गोतिनी घुघुकावय हे।
से हो-सुनि परभु रिसियायल, मुँहो नहीं बोलल हे।
एक डगरिनियाँ मोर माय, जे कोर पइसी बइठल हे।[1]

मगही, मैथिली, भोजपुरी, राजस्थानी, मालवी आदि अधिकाश भारतीय भाषाओं के लोकगीतों में पुत्रीजन्म पर ऐसे ही विषादपूर्ण वातावरण के छाने का वर्णन मिलता है। यह इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि भाषा-रूप के बाह्य आडम्बर की भिन्नता के होते हुए भी उपर्युक्त भाषा-भाषी अंचलो मे सामाजिक दृष्टिकोण की एकता वर्त्तमान है।

प्रसूता के पथ्यापथ्य—प्रसूता की स्वास्थ्य-रक्षा और शिशु के लिए अपेक्षित उसके दुग्ध की वृद्धि के लिए उसे बत्तीसा, अछुमानी, सोंठउरा, आदी, गुड़, हलदी, मेवा का हलवा, दूध-जलेबी, पीपल और जीरे का काढ़ा आदि भोज्य पदार्थ दिये जाते हैं। सोंठउरा, बत्तीसा का हलवा, आदी, गुड़ आदि परिजनो और पड़ोस के घरों में भी बाँटा जाता है। मगही मे इस विषय से सम्बद्ध अनेक गीत मिलते हैं। यथा :

एक नारी शिशु-जन्म की खुशी में सबको सोठउरा देने का आदेश चेरी को देती है—

अँगना बहारइत चेरिया त, सुनहऽ बचन मोरा हे।
चेरिया झट दए बाँटऽ नऽ सोंठउरा से होरिला जलम लेले हे।

एक भाई, अपनी बहन के पुत्रवती होने पर उसके घर ऐसे वस्त्र और सोंठउरा भिजवाने की इच्छा प्रकट करता है कि जिन्हें देखकर सभी जलने लगें—

मइया अइसन भेजिहऽ पियरिया कि देखि के हिरदय साले हे।
भउजो अइसन भेजिहऽ सोंठउरवा, जे गोतिनी के हिरदय साले हे।

एक स्त्री को पुत्री उत्पन्न होने पर उसे उचित भोज्य पदार्थ नहीं दिये जाते—

हम त जनली राम जी बेटा देतन, बेटिया जलम लेलक हे।
सेहो सुनि ससुर जी रोसायल आउर गोसायल हे।
सोंठवा हरदिया न किनथिन, मुँहमा फुलायल हे।

इसके विपरीत पुत्र होने पर सास तथा अन्य परिजन बहू की पीपल[2] पीने के लिए खुशामदें करते हैं, पर वह तीखेपन के कारण पीना नहीं चाहती—

पिपरी लेके सासु खड़ी, पिपरिया पीले बहू।
हो जयतो होरिलवा ला दूध, पिपरिया पीले बहू।
पिपरी पीते मोरा होठ जरे, मोरा कंठ जरे।
हिरदय कमलवा के फूल,, पिपरिया मैं न पीऊँ।

---

१. भोजपुरी मे भी ऐसे गीत मिलते है, जिनमे प्रसूता के पुत्री उत्पन्न होने पर उसकी बड़ी उपेक्षा होती है। —भो० लो० सा० अ०, पृ० १६५।

२. पिपरी (=सं० पिप्पली)—पीपल-लता की जड या कलियाँ, जो प्रसिद्ध औषध का काम देती है। बच्चा होने पर प्रसूता को पीपल का चूर्ण, मधु या गुड़ मे मिलाकर दूध के साथ दिया जाता है। इससे जच्चा के स्तनो में दूध की वृद्धि होती है।

इसी भाँति पीसा हुआ जीरा पीने का आग्रह बहू टालती है—

हम बाबा के अलरी-दुलारी।
हमरा न जीरा ओल्हाय, जीरा कइसे पीऊँ।

शिशुजन्म-सम्बन्धी विशेष विधान—कहा जा चुका है कि सामान्यतया सोहरों का आनुष्ठानिक महत्त्व नहीं होता। फिर भी, कुछ ऐसे सोहर हैं, जिनमें किसी प्रसंग या विधान-विशेष का ही वर्णन होता है और उन्हें उस विधान-विशेष के अवसर पर अवश्य गाया जाता है। यथा—

(क) नहावन—जच्चा को प्रथम बार स्नान कराकर, उसका शृंगार किया जाता है। उस अवसर पर स्नान और शृंगार के गीत गाये जाते हैं। यथा—

नारंगी दामन वाली जच्चा, गोद में बच्चा ले।
माँग जच्चा के टीका सोभे, मोतिया लहरा ले रे जच्चा,
मोतिया लहरा ले।

जच्चा का विविध वस्त्रों एवं आभूषणों से शृंगार हो रहा है। वहीं पर 'हजरिया' और 'केसरिया' दुल्हा बैठा है, जो हँस-हँसकर पान के बीड़े जच्चा को देता है और वह लेती है—

हजरिया बैठा पास में, केसरिया बैठा पास में हँस हँस के बीड़ा दे।

(ख) नार काटना तथा शिशु को नहाना—शिशु के जन्म के बाद उसके 'नार काटने' एवं 'पहली बार नहाने' का कार्य 'डगरिन' करती है। इस प्रसंग से सम्बद्ध कई गीत मगही में मिलते हैं। एक गीत में वर्णित है कि राजा दशरथ राम के जन्म के बाद डगरिन को डोली लेकर बुलाने गये—

डगरिन चढ़ि चलू मोर महलिया, होरिला के नार काटहुँ हे।
डगरिन चढ़ि चलू मोर महलिया, होरिला के नहवावहुँ हे॥

डगरिन की माँगें थीं—

हम लेबो हँथिया से घोड़वा, अउरी गजमोतिया हे।
तमकि के बोलऽ हइ डगरिन, तबे नार काटब हे।
तमकि के बोलऽ हइ डगरिन, तबे नहवायब हे॥

राजा सब कुछ देने पर राजी हो गये। तब बधाई देती हुई डगरिन अपना कार्य करने आई—

धन धन राजा दसरथ, धन कोसिला माता हे।
ललना धन धन डगरिन भाग, जे नार काटे आयल हे।
ललना धन धन डगरिन भाग, जें राम नेहवावल रे॥

मगही-सोहर गीतों में नार काटने के लिए सोने का हँसुआ, नहाने के लिए सोने की चौकी, देह पोंछने के लिए पीत वस्त्र और पहनाने के लिए पीताम्बर का भी उल्लेख मिलता है—

सोना के हँसुआ बनावल, गोपाल नार छीलल हे।
ललना सोना के चौकिया बनावल, गोपाल नेहायल हे।

पियरे बस्तर अंग पोछल, पीतांवर पेन्हायल हे।
गोरवा में पइजनी पेन्हायल, गोपाल नेहायल हे।

(ग) छठी-पूजन : छठी-पूजन मे ननद का प्रधान भाग रहता है। वही जच्चा के लिए चौक पूरती है, भाभी का श्रृंगार करती है, ललना को नये कपड़े पहनाती है एवं पहली बार उसकी आँखों में काजल लगाती है। ऐसी स्थिति मे वह भाभी से बड़े-बड़े 'नेग' माँगती है। इस नेग के कारण ननद-भावज के बीच कभी झूठा और कभी सच्चा झगड़ा भी चल जाता है, पर होरिला के प्रति ननद के प्रेम में किंचित् बाधा नहीं आती। यद्यपि गीतों में ननद बड़ी-बड़ी माँगें—जैसे सोने-हीरे के गहने, लाख रुपये आदि—रखती है, तथापि वास्तविक जीवन में भाभी यथाशक्ति ही नेग उसे देती है। इसे प्रसन्नता से लेकर वह होरिला, भाई और भाभी के प्रति शुभकामनाएँ व्यक्त करती हुई जाती है। छठी में ननद से सम्बद्ध गीत ही प्रायः गाये जाते हैं। यथा—

छठिया पूजे ला ननदी ठाढ़ अँगनमा, हमरा के भउजो का देबऽ ना।
छठी पुजइया ननदो साठ रुपइया, हमरो से ननदो झट ले लेहु ना।
साठ रुपइया भउजी घर दऽ पउतिया, लाख रुपइया त पुजइया लेबो ना।
जब त ननदिया होरिला ले के चललन लाख रुपइया झट फेकि देलन ना।

(घ) न्योछन : बच्चे की रक्षा के लिए यह एक टोटका है। जन-विश्वास है कि राई, नोन, मिरचाई आदि से न्योछने से बच्चे को नजर नही लगती और यदि लग भी जाती है, तो न्योछने से छूट जाती है। इस प्रसंग के कई गीत मगही मे मिलते हैं। जैसे—

आज होरिलवा को देखन चलूँ।
मोर होरिलवा हइ पुनियाँ के चाँद।
अप्पन होरिलवा के खेलावन चलूँ।
राई, नोन लेके निहुछन चलूँ।
अपन अपन नजरी बचा के चलूँ।

(ङ) आँख-अँजाई—छठी के दिन पहली बार प्रसूता की ननद बच्चे की आँख में काजल लगाती है। इस अवसर पर ननद-भावज के बीच 'नेग' के कारण अनेक बार प्रेम-कलह हुआ करते हैं। इस प्रसंग के कई गीत मगही में मिलते हैं। एक गीत में ननद भाभी से आँख-अँजाई के लिए बेसर माँग रही है—

काजर के कजरोटी, काजर भल सोभइ हे।
ललना अँजवो बबुआ के आँख, बेसरिया हम लेबो हे।

एक दूसरे गीत में बहन, भाई से और बड़ी-बड़ी चीजें माँगती है—

घोड़वा चढ़ल आवे भइया, बहिनी धयलन लगाम गे माई।
छठी पूजन भइया साठ रुपइया, आँख अँजन सोने थारी माँगब।
पान सबैया पनवट्टा माँगब, पिरकी बिगन उगलदान।
आपु चढ़न भइया डोला माँगब, स्वामी चढ़न घोड़ा गे माई।

भाई ने कहा—

जेकरा जे अगे बहिनी एतना न होवे से कइसे बहिनी बोलावे गे भाई।

भाभी ने कहा—

यदि मैं जानती, तुम्हारी मॉंगे इतनी बड़ी होंगी, तो मै नैहर मे बच्चे को जन्म देती। ननद चट उत्तर देती है—

जब तोहें भउजी नइहर जे जयतऽ, नइहर आके नचइती गे माई।

'नइहर आके नचइती' से स्पष्ट है कि ननद जितना नेग लेने को आतुर नहीं है, उतना भाभी को तंग करने को। उसे तो भाभी को चिढ़ाने में और उससे विनोद करने में आनन्द आता है।

(च) बरही-पूजन : छठी अथवा बरही-पूजन के दिन प्रसूता के नैहर से 'डाले' आते हैं। इस दिन अनेक सामान्य सोहरों के अतिरिक्त 'बरही-पूजन' से सम्बद्ध गीत भी गाये जाते हैं। एक गीत में बरही-पूजन के दिन भाई के न आने से प्रसूता बहुत खिन्न हो गई है। यहाँतक कि बरही-पूजन भी नहीं करना चाहती—

हम नहीं पुजबइ बरहिया, भइया नहीं अयलन हे।

फिर चेरी से कहती है—

चेरिया, देखि आबऽ हमरो बीरन भइया, कहुँ चलि आवत हे।

इसी बीच उसके भाई आ गये। उसका मन उल्लास से भर गया। उसने सास से कहा—

अब हम पुजबो बरहिया, भइया मोर आयल हे।
सासु जी कहँमाहि धरियइ दउरिया, कहाँ रे सोठाउर हे।
सासु जी कहाँ बइठइयइ बीरन भइया, देखतो सोहामन लगे हे।

सास नेक थीं। पोते को पाकर उनका हृदय हर्षोत्फुल्ल भी था। उन्होंने कहा—'भाई और उनकी लाई वस्तुओं को उचित सम्मान दो। कोठी के कन्धे पर दौरी रखो, कोठी में सोंठाउर रखो। अपने आँचल की छाया में उन्हे बैठाओ।'

पर, विनोद-भरी ननद ने चिढ़ाते हुए कहा—क्या लाया है तुम्हारा भाई? केवल कूड़ा-करकट। उसपर देखने मे भी उतना ही कुरूप है—

ओहरी बइठल दुलरइतिन ननदी मुँह चमकावल हे।
जे कछु कोठिया के झारन, अँगना के बाढ़न हे।
भउजी सेहे ले के अयलन बीरन भइया देखते गिलटावन ह।

प्रसूता के नखरे—पुत्र-गर्विता नारी परिवार के लोगों के सामने बड़े नाज-नखरे दिखाती है। उसके सुख-सौभाग्य की वृद्धि से सभी परिजन इतने आनन्दित रहते हैं कि उनके मान-अभिमान, नाज आदि सर-आँखों उठाने में किंचित् पीछे नहीं हटते, बल्कि

हर्ष का अनुभव करते हैं। प्यार, मान-सम्मान आदि पाने में जो सुख है, उसे सहज ही सौभाग्य-सम्पन्न रमणियाँ छोड़ना भी नहीं चाहतीं। मगही में इस विषय से सम्बद्ध अनेक लोकगीत उपलब्ध होते हैं। यथा—

एक ननद भाभी से मनमाना नेग चाहती है, पर भाभी पति के सामने नखरे-भरे शब्दों में देने से इनकार करती है—

ननदिया माँगे फुलझड़ी हे, हम न देबइ।
झलाही माँगे मोती लड़ी हे, हम न देबइ।
राजा जी सुतहऽ कि जागऽहऽ, हम न देबइ।
अप्पन बहिनी के बरजऽ, हम न देबइ।

बहू को 'पिपरी' पिलाने के लिए सास, ननद, ससुर और पति सभी आते हैं, पर वह लाड़ दिखाती हुई पीने से इनकार करती जाती है—

पिपरी पीते मोरा आँख जरे, नयना लोर ढरे।
पिपरी न कंठ ओल्हाय, पिपरिया मैं न पीऊँ॥

सास कहती है कि मैंने रगड़-रगड़कर जीरा पीसा है, बच्चे के लिए तुम्हें दूध उतर आयेगा, पी लो, पर वह बाबा की प्यारी बेटी नहीं मानती—

जीरा रगरि रगरि हम पिसलूँ।
जीरा पीले बहू, जीरा पीले धनि॥
हो जयतो बलकवा के दूध।
जीरा पीले बहू, जीरा पीले धनि॥
हम बाबा के अलरी-दुलारी।
हमरा न जीरा ओल्हाय, जीरा कइसे पीऊँ।

एक पुत्रवती, सौभाग्य-गर्विता, नारी परिजनों को आमन्त्रित करके सम्मानित करने की कामना तो करती है, परन्तु उनमें सद्भाव का अभाव देखकर उन्हें अपमानित करने की कल्पना भी करती है—

अँगना में बतासा लुटायम हे अँगना में।
सासू जे ऐतन देओता मनौतन
उनका के पीरी पेन्हायम हे अँगना में।
देवोता मनावे में कसर मसर करतन
धीरे से पीरी उतार लेम हे अँगना में।
ननद जे ऐतन आँख अँजौतन
उनको के कँगना पेन्हायम हे, अँगना में।
आँख अँजौनी में कसर मसर करतन
धीरे से कँगना उतार लेम, हे अँगना में।

नायिका के कथन में उल्लास, अल्हड़पन और सौभाग्य का गर्व स्पष्ट झलक रहा है।

मातृत्व के अभिमान और उमंग—सन्तान पाकर नारी का हृदय आनन्द एवं उछाह से भर जाता है। प्रसव-वेदना के समय यह दीन होकर सहायता के लिए सबका मुँह ताकती थी। पर, शिशु-जन्म के बाद वह उत्साह से स्वयं अपने सारे काम करना चाहती है। उसे न डगरिन की आवश्यकता है, न सास-ननद की। उसके परिवर्त्तित मनोभाव की झलक निम्नांकित 'सोहर' में स्पष्ट दिखाई देती है—

कहऽतऽ जच्चा रानी, डगरिन बोला देऊँ।
चुप चुप मेरो राजा, काटब नार अपने।
कहऽतऽ जच्चा रानी बहिनी बोला देऊँ।
चुप चुप मेरो राजा, पारब काजर अपने।

पुत्रजन्म के पहले उसने ननद को अनेक वस्त्राभूषण देने का वचन दिया था। पर, अब उसे वे सारी प्रतिज्ञाएँ विस्मृत हो गई हैं—

मेरो पेटारी में टीका रखल है, ठिकरो न देबो ननदिया।
मेरो सनुक में इयरी पियरिया, गेन्दरो न देबो ननदिया।

माँ को पुत्र के सामने संसार के सारे सुख फीके लगते हैं। वह अपने बालक को खेलाकर ही आनन्द-मग्न है—

जसोदा झुलावे गोपाल पलना हो, कन्हैया पलना।
चन्नन के उजे पलना बनल हे, ओकर में लगल रेसम फुदना।
पउअन में सभ रतन जड़ल हे, हँस हँस झुलावे मइया पलना।

कुछ ऐसे भी गीत हैं, जिनमें पुत्र पाकर प्रसूता अधिक विनय-संयुक्त हो गई है। एक कुलीन वधू को सूर्यपूजन के फलस्वरूप पुत्र उत्पन्न होता है, पर वह अपने गुरुजनों के आशीर्वाद को ही इसका श्रेय देती है। वह श्रद्धावनत होकर सबके चरणों की पूजा करती है—

आवह विप्र आवह चउकि चढ़ि बइठह हे।
तोहरे कहल नँदलाल, तोहर गोड़ पूजब हे॥
आवह सासु तूँ आवह, जाजिम चढ़ि बइठह हे।
तोहरे कहल नँदलाल, तोहरे पाँव पूजब हे॥

आनन्द-बधावा और आशीर्वाद—इस वर्ग के मगही गीतों में शिशुजन्म के अवसर पर परिलक्षित होनेवाले सामूहिक आनन्द-उल्लास, बाजे-बधावे और शिशु को दिये जानेवाले आशीर्वाद के वर्णन मिलते हैं। यथा—

कृष्ण का जन्म हुआ है, नन्द-यशोदा अन्न-धन लुटा रहे हैं। पवनियाँ और नगर के लोग सभी बधाई देने को पहुँच रहे हैं—

घन भादो के रात; कन्हइया जी के जलम भेलइ।
हरखहिं बरखहिं देओ, आनन्द घरे घर मचल।
जसोदा लुटावे अनधन धान, निहुछि के निछावर।

× × ×

किसुन जलम अब भेल, बधावा लेके चलऽ।
गावत मंगलाचार, सभे मिलि ले के चलऽ।
तेलिन लयलक तेल, तमोलिन बिरवा।
मालिन लयलक गुथि हार, जसोदा जी के आँगना।

बधावा गाती, आशीर्वाद देती और नेग माँगती हुई एक 'सवासिन' का निवेदन द्रष्टव्य है—

दादा साहेब के घर पोता भयेल हे।
पोता निछाउर कछु देबऽ कि नऽ?
हमरा से असीस कछु लेबऽ कि नऽ?
देबो मैं देबो पोती अन धन सोनवाँ।
हमरा हीं बधइया तूँ गयबऽ कि नऽ?
जुग-जुग जिओ दादा तोहर होरिलवा
हमरा ससुर घर पेठयबऽ कि नऽ?

एक अन्य 'सवासिन' मंगलकामना करती देखी जाती है—

जुग-जुग जीओ भउजो तोहरो होरिलवा।[1]
जुग जुग बढ़ो अहिवात सुनु भउजो हे॥

रामचन्द्र के जन्मोत्सव पर माता कौशल्या से सभी 'पवनियाँ' कंगन ही माँगते हैं। इस माँग में आनन्द, बधावा और आशीर्वाद के भाव छिपे हैं—

रामचंदर जलम लेलन चइत रामनमी के।
डगरिन जे नेग माँगई नार के कटाई के।
कौसिला के कंगन लेमो चइत रामनमी के।
धोबिन जे माँगे फलिया के धोबाई।
कोसिला के कंगन लेमो चइत रामनमी के।

सभी सोहर-गीतों में पुत्रजन्म के साथ महल में आनन्द-बधावो एवं सोहर के स्वर सुनाई पड़ते हैं—

आधी रात बीतल पहर रात त होरिला जलम लेल हे।
बजे लागल आनन्द बधावा त महल उठे सोहर हे।

पौराणिक आख्यान एवं देवी-देवता-सम्बन्धी सोहर :

अनेक मगही-सोहरों में पौराणिक आख्यानों का आश्रय लिया गया है। इनके पात्र भी देवता-देवी अथवा अन्य पौराणिक व्यक्तित्व हैं। यथा—राम, लक्ष्मण, दशरथ, नन्द, कृष्ण, वासुदेव, प्रद्युम्न, शिव, गणेश एवं पार्वती, कौशल्या, सीता, देवकी, यशोदा, राधा, रुक्मिणी आदि-आदि। गीतों मे आये पौराणिक आख्यानों मे प्रायः छोटे-मोटे परिवर्त्तन भी दीख पड़ते हैं। यथा—पौराणिक आख्यान के अनुसार वसुदेव कृष्ण को

१. एक मुसलमानी गीत में वर्णित ननद भाभी से कुछ नही लेना चाहती। वह केवल बच्चे की मंगल-कामना करती है—

शाद रहे मेरा नन्हा होरिलवा, यही बहुत है जी।

लेकर गोकुल नन्द के घर जाते हैं। पर, एक मगही-लोकगीत[1] में देवकी कृष्ण को लेकर यशोदा के यहाँ जाती हैं। कथा का यह रूपान्तर मातृहृदय के वात्सल्यभाव की दृष्टि से अधिक मर्मस्पर्शी तथा स्वाभाविक प्रतीत होता है। कुछ मगही-गीतों में तो केवल पात्र के नाम पौराणिक हैं, प्रसंग की योजना सर्वथा नवीन है। यह अपने कलात्मक संकेतों से भावुक हृदय को अत्यन्त प्रभावित करती है। लोकगीतों के धरातल पर उतरने पर सभी दैवी चरित्र प्रायः अपने अलौकिक तत्त्वो का परित्याग कर सामान्यजनोचित रूप में परिणत हो जाते हैं। यथा—मगही-सोहर के राजा दशरथ स्वयं डगरिन बुलाने जाते हैं, शिवजी बैल की पीठ पर सवार होकर डगरिन को स्वयं ही आदर से ले आने जाते हैं। इन गीतो के संसार में सभी पति दशरथ, शिव, नन्द, राम, कृष्ण, वसुदेव आदि की संज्ञाओं से सम्बोधित होते पाये जाते हैं, सभी माताएँ कौशल्या, पार्वती, यशोदा, सीता, राधा, रुक्मिणी, देवकी आदि के रूप मे चित्रित होती पाई जाती हैं और सभी पुत्र राम, गणेश, नन्दलाल, गोपाल, प्रद्युम्न आदि के प्रतीक बनकर आते हैं।

मगही-गीतों के अध्ययन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि लोकमानस सहज प्रकृत होने के कारण 'सामान्य' और 'विशेष' में कोई अन्तर उपस्थित करने की प्रवृत्ति नहीं रखता। यथा—एक गीत में वर्णित है कि रुक्मिणी के भाग्य में सन्तान नहीं लिखी थी। सन्तान की कामना लेकर वह गंगा, विष्णु, महेश आदि सभी देवताओं के पास गई, पर वे सभी दूसरे देवता के पास जाने की सलाह देकर उसे लौटा देते रहे। अन्त में, रुक्मिणी ब्रह्माजी के पास पहुँची। उन्होंने उलट-पुलट कर उसका भाग्य देखा, पर कहीं सन्तान का 'योग' ही नहीं दिखाई पड़ा। अन्त में, उन्होंने एक बालक को बुलाकर अपनी जाँघ पर बैठाया और छठी के दिन तक के लिए उसे 'मरता भुवन' में जाने की सलाह दी। बालक ने कहा—मैं नहीं जाऊँगा। मेरे मरने से मुझे तथा मेरे माता-पिता को दुःख होगा। तब ब्रह्मा ने कहा—अच्छा विवाह तक रहकर लौट आना। चतुर बालक ने उत्तर दिया—तब तो दुःख पानेवालों की संख्या और बढ़ जायगी। हारकर ब्रह्माजी ने कहा—जाओ, तुम्हें अजर-अमर किया। तुम अवतार लो।

इस गीत में कहीं भी रुक्मिणी का सम्बन्ध कृष्ण से नहीं दिखाया गया है, पर पौराणिक आख्यान के अनुसार वह कृष्ण-पत्नी है। रुक्मिणी दैवी शक्ति-सम्पन्न नारी है; क्योंकि वह देवताओं के पास पहुँच सकती है। पर, इससे उसकी मानवीय भावना में कोई कमी होती नहीं दिखाई पड़ती। ऐसा मालूम होता है कि रुक्मिणी के माध्यम से किसी सामान्य नारी-हृदय की पुत्र-लालसा व्यंजित की जा रही है। यह रुक्मिणी नाम साधारणीकृत रूप में किसी भी स्त्री का प्रतीक हो सकता है।

राम-सीता से सम्बद्ध एक मगही-सोहर इस प्रकार है—

जेहि बन सिकियो न डोलइ, बाघ गुजरए हे।
ललना, ताही तर रोवे सीता सुन्दर गरभ अलसायल हे।

सीता को विषण्णमन एवं रोती हुई देखकर वनदेवी सहानुभूति प्रकट करती हैं—

---

१. म० सं० गी०, पृ० ४७।

बन में से इकसलन बनस्पति, सीता समुझावल हे।
ललना, सीता हम तोरा आगे पीछे बइठब, केसिया सँभारब हे।
आधी रात बितलइ पहर रात, बबुआ जलम लेल हे।
ललना जलमल तिरभुवन नाथ, तिनहुँ लोक ठाकुर हे।

सीता पछता रही हैं—

जलम लेतक बाबू अजोधेया त जिरबा के बोरसी भरयतूँ हे।
जलमल ओहि कुंजन बन अउरो सिरीस बन हे।

सीता नाऊ से 'लोचन' भेजती हैं। वह उसे आदेश देती हैं कि तुम कौशल्या, कैकयी, लक्ष्मण को खबर देना, पर राम को नहीं—

अँचरा फारिए के कगजा, कजरा सियाही भेल हे।
ललना कुसवे बनइली कलमिया, लोचन पहुँचाबहु हे।
पहिला लोचन रानी कोसिला, दोसर केकइ रानी हे।
ललना तेसर लोचन लहुरा देवर, रामहिं जनि जानहि हे।

पर, पत्रवाहक जब अयोध्या पहुँचता है, रामचन्द्र पोखरे पर दतवन करते दिखाई पड़ते हैं—

चारी चौखंड के पोखरिया, राम दँतवन करे हे।
ललना जाई पहुँचल उहाँ नउआ त कहि के सुनावल हे।

नाउ को घर के सब लोगों ने इनाम दिया। पर राम ने दीनतापूर्वक उससे संवाद भेजा—

कहले सुनल सीता माफ करिह, अयोधेया चलि आवह हे।

पर सीता का उत्तर है—

फटतइ धरतिया समायल, अजोधेया नहीं आयब हे।[1]

इस गीत का सारा प्रसंग अत्यन्त कारुणिक है। कथावस्तु स्वतन्त्र नहीं, पौराणिक ही है। सभी पात्र ख्यातवृत्त हैं—राम, सीता, कौशल्या, कैकयी, लक्ष्मण।

पर, राम का साधारण मनुष्य की तरह पोखरे पर दतवन करना, सीता का उनके पास सन्देश न पहुँचाने का स्वाभिमान भरा आदेश देना, शिशु के जंगल में जन्म लेने और उचित सम्मान न प्रदान कर सकने के कारण मातृहृदय की वेदना, राम की सीता से क्षमा-याचना के साथ अयोध्या लौट आने की प्रार्थना, सीता का अभिमान-भरे स्वर में धरती में समा जाने, पर न जाने का दृढ निश्चय आदि ऐसी अभिव्यक्तियाँ हैं, जो सामान्य मानव-हृदय की स्वाभाविक भावनाओं एवं प्रतिक्रियाओं को प्रस्तुत करती हैं।

इन दिव्य पात्रों से सम्बद्ध गीतों में प्रायः अन्तिम पंक्तियाँ आशीर्वादात्मक एवं माहात्म्य-वर्णन-संयुक्त होती हैं—

जे एहि मंगल गावहिं गाई सुनावहिं हे।
जलम जलम अहिवात, पुतर फल पावहिं हे।

---

१. एक भोजपुरी-गीत मे भी सीता एवं राम का यह प्रसंग वर्णित हुआ है। पर, उसमे राम के आमन्त्रण पर फिर सीता अयोध्या लौट जाती है।

—भो० लो० सा० अ०, पृ० १६४।

इन गीतो में अवतारी पुरुषों के जन्म लेने पर देवतागण भी वैसे ही आनन्द मनाते चित्रित किये गये हैं, जैसे सामान्य मनुष्य धरती पर—

जसोदा के विकल सउरिया, पलक धीर धरहु हे।
जलम लीहल तिरभुवन नाथ, महल उठे सोहर हे।

× × ×

सुभ घड़ी सुभ दिन रे लगन आयल हे।
धनि हे प्रगट भयेल बिसुन देओ आनन्द तीन लोक भेल हे।
हरखि हरखि देओ बरसथ फूल बरसावथ हे।
ललना सुर मुनि गावथि गीत मनहिं मन गाजथि हे।
बाजन बाजये अपार नागर नट नाचत हे।
नाचहिं गाय, पमड़िया, महल उठे सोहर हे।

इस वर्ग के गीतों के अध्ययन से लोकमानस की धार्मिक आस्थाओं एवं सामान्य जीवन के धरातल पर उनके वैचारिक प्रतिफलन पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है।

गार्हस्थ्य-जीवन के विविध सम्बन्धों की झाँकियाँ :

मगही के अनेक 'सोहरों' में गार्हस्थ्य-जीवन की बड़ी ही मनोहर झाँकी मिलती है। इनमें पति-पत्नी के हास-विलास, प्रेम-द्वेष, ननद-भावज के स्नेह-कलह, सास-बहू के सद्भाव-दुर्भाव, वन्ध्या की निर्मम उपेक्षा एवं उसकी मर्मस्पर्शी व्यथा, गृह-जीवन के अनेक आचार-व्यवहार एवं मनुहार-उपालम्भ आदि विविध प्रसंगों एवं मनोभावों को इतिवृत्तात्मक शैली में सहज स्वाभाविक अभिव्यक्ति मिली है। इस वर्ग के गीतों में प्रायः किसी छोटे कथानक अथवा किसी कल्पित प्रसंग की सहायता ली जाती है। इससे उनकी रोचकता निस्सन्देह बढ़ जाती है।

इन गीतों में वर्ण्य विषय का मूल केन्द्र शिशु-जन्म या शिशु ही होता है, अतः गार्हस्थ्य-जीवन के विविध प्रसंगों की झाँकियाँ भी शिशु को ही केन्द्र बनाकर प्रस्तुत की जाती हैं। यथा—

पति-पत्नी : सोहर-गीतों मे पति-पत्नी के 'प्रेम'-वर्णन को प्रमुखता दी जाती है। इनमें शृंगार के संयोग-पक्ष के अनेक मनोरम चित्र प्रस्तुत किये जाते हैं। शिशु उनकी प्रेमोपासना का तीर्थस्थल होता है। यही कारण है कि इन गीतों में पति-पत्नी के हास-परिहास, प्रेम-मिलन, सुख-संयोग प्रेम-क्रोध, उपालम्भ, मान आदि सबके बीच किसी-न-किसी रूप में सन्तान का प्रसंग आ ही जाता है। यथा—

एक भोली नववधू सोलहों शृंगार कर फूलों की सेज लगा धीरे-धीरे प्रियतम को 'बेनिया' (पंखा) डुलाने लगी। क्रमशः प्रेम की वृद्धि होती गई और वह प्रियतम के गले में लग गई। फिर, मिलन के भावी परिणाम को विना समझे ही सुख-नींद में सो गई—

दँतवा लगवलूँ हम मिसिया, नयन भरि काजर हे।
डँटी भर कयलूँ सेनुरवा, बिंदुलिया से साटि लेलूँ हे।

सेजिया बिछयलूँ हम अँगनमा से फूल छितराई देलूँ हे।
हम नहीं जानलूँ मरमिया से सुखे नीन सोइलूँ हे।

क्रमशः उसके शरीर में गर्भिणी के लक्षण स्पष्ट होने लगे। दिन पूरे होने पर प्रसव-वेदना भी आरम्भ हो गई। पर, आज सुख का साथी प्रियतम आँगन मे दिखाई तक नहीं पड़ता। वह यह भी नहीं विचारता कि 'बाला' के प्राण कैसे बचेंगे—

रसे रसे मुँह पियरायल, जीउ फरियायल हे।
आयल मास असाढ़ से दरद बेयाकुल हे।
अँगनो न देखियइ बलमु जे कइसे बचत बाला जीउ हे।

स्वामी की स्वार्थपरता देखकर वह पछताने लगी—

हम जे जनतों एतो पीरा होयतो, अउरो दरद होयतो हे।
भुलहूँ न सामी सेज जइतूँ, न बेनिया डोलयतूँ हे।

पर आधी रात होते-होते उसकी मर्मान्तिक वेदना सोहर के मधुर गान मे डूब गई—

जलमल सिरी भगवान, महल उठे सोहर हे।

एक दूसरे मगही-गीत मे प्रसव-वेदना से व्याकुल पत्नी पति से कहती है—

ए राजा मिलिए जुलिए त बन्हलऽ मोटरिया।
खोलइत बोरिया काहे अगसर हे॥[1]

उपर्युक्त गीत में लोककवि ने सन्तान को दाम्पत्य-प्रेम की गठरी बतलाया है। संस्कृत के महाकवि भवभूति ने भी सन्तान को स्त्री-पुरुष दोनों के आन्तरिक स्नेह की गाँठ कहा है।[2]

एक सन्तानवती पत्नी पति से कहती है—मुझे झुलनी पहनने का शौक है, ला दो। पति ने कहा—तुम कोयल-सी काली हो। तुम्हें झुलनी नहीं शोभेगी—

धनियाँ, कारी रे कोयलिया अइसन देहिया, झुलनियाँ तोरा न सोभे हे।

मानिनी ने सास से कहा—'अपने बेटा से कहिए, 'काली' की सेज न जायें।' सास ने प्यार से कहा—सौभाग्य-चिह्न शृंगार त्याग दो, फिर मैं अपने बेटे को रोक लूँगी—

बहुआ, छोरि देहु माँग के सेनुरवा, नयना भरि काजल हे।
बहुआ, बरजब अपन बेटवा, सेजिया तोहर न जयतन हे।

---

१. भोजपुरी में इससे मिलती-जुलती पंक्तियाँ हैं—

ए सजइत मिली-जुली बन्हली मोटरिया,
खोलल बेरियाँ अकसर हो।

—भो० लो० सा० अ०, पृ० १६३।

२. अन्तःकरणतत्त्वस्य दम्पत्योः स्नेहसंश्रयात्।
आनन्दग्रन्थिरेकोऽयमपत्यमिति कथ्यते॥ —उ० रा० च०, अं० ३, श्लोक १७।

अर्थात्—'स्नेह के आश्रय से पति-पत्नी के अन्तःकरण मिलने पर सुख की जो एक गाँठ पड़ती है, उसे ही 'सन्तान' कहते है।'

इस गीत का भोजपुरी प्रतिरूप भी मिलता है। उसमें पत्नी, पति से 'झुलनी' के स्थान पर 'तिलरी' माँगती है।

इस गीत की अन्तर्ध्वनि है कि स्त्री-जीवन की सफलता रूपरंग में नहीं, उसके सौभाग्य और मातृत्व में है।

दाम्पत्य-जीवन के मनोहर चित्रों के अतिरिक्त पति-पत्नी के बीच की कटुता के भी वर्णन इन गीतों मे मिलते हैं। प्रायः निःसन्तान पत्नी पति की उपेक्षा पाकर दुःख और क्रोध व्यक्त करती देखी जाती है। कभी पति, पत्नी को व्यंग्य-बाण से बेधकर मनाने की चेष्टा करता है और कहीं पत्नी का निष्ठुरतापूर्वक अपमान और त्याग भी करता है। निम्नांकित मगही-गीत मे एक पति अपनी निःसन्तान स्त्री का अपमान करता है। इससे क्षुब्ध होकर पत्नी कोपभवन में चली जाती है। पति जानता है कि सामान्यतः स्त्रियाँ आभूषण के लोभ में अपमान को भूल जाती हैं। अतः, वह आभूषण देकर उसे मनाना चाहता है। पर, पत्नी सबकी बात सह सकती है, अपने जीवन-साथी की नहीं। सारा प्रसंग अत्यन्त मार्मिक है—

काँखि, जाति लेलन कँगनमा त धनि के मनावल हे।
धनिया के जाँघ बइठावल, हिरदय लगावल हे।
धनि हे! छाँड़ि देहु मन के विरोध, पहिर धनि काँगन हे।
एही कँगना रउरे माई पेन्हथ अउरी बहिन पेन्हथ हे।
पिया ओहे दिन सेजरिया के बात, करेजा मोरा सालय हे।
मारल हऽ ए पियवा, मारल हऽ तीखे कटरिया से हे।
पियवा तोहर बात साल हे करेजवा कँगनमा कइसे पहिरी हे।

पुत्री के जन्म लेने पर पति की उपेक्षा और भी हृदय विदीर्ण करनेवाली होती है। दर्द से व्याकुल पत्नी बार-बार पति को जगाती है, पर वह जगता नहीं। जगने पर पुत्री को देखता है, तो क्रोध से भरकर बोलता नहीं—

चूँड़ि फेंकि मारली, नेपुर फेंकि अउरो कँगना फेंकि हे।
सोरहो आभरन फेंकि मारली, अलबेला नहीं जागल हे।
हम तो जनली राम जी बेटा देतन, बेटिया जलम लेलक हे।
ललना, सेहो सुनि परभु रिसियायल, मुँहों नहीं बोलल हे।

सास-बहू—मगही सोहरों में सास-बहू का प्रधानतः मधुर सम्बन्ध दिखाया गया है। अन्य लोकगीतों में इन दोनों के सम्बन्ध में जो कटुता चित्रित मिलती है, सोहरों में उसके अभाव का मूल कारण यह है कि इनमें सन्तान की प्राप्ति को नारी-जीवन की सबसे बड़ी सफलता माना गया है। नारी-जीवन की महती आकांक्षा की पूर्त्ति मातृत्व में होती है, साथ ही पारिवारिक एवं सामाजिक आकाक्षा की पूर्त्ति का साधन भी शिशु ही होता है। जो स्त्री शिशु को जन्म देती है, वह न केवल आत्मप्राप्ति का अनुभव करती है, बल्कि पारिवारिक एवं सामाजिक आदर की भी अधिकारिणी होती है। ऐसी स्थिति में सास, ननद आदि परिवार के अन्य जन भी ईर्ष्या-द्वेष भूलकर शिशु-जन्म के अवसर

पर आनन्द मनाते एवं बहू के प्रति स्नेह तथा आदर व्यक्त करते देखे जाते हैं। यथा—

परदेश से लौटे हुए अपने पुत्र के सामने सास अपनी पुत्रवधू के आचरण की प्रशंसा करती है—

ए ललना, अम्मा बोलाइ भेद पुछलन, कवन रँग धनि मोरा हे।
तोर धनि हँथवा के फरहर, मुँहवा के लायक हे।
ए बबुआ, पढ़ल पंडित केर धियवा, तीनों कुल रखलन हे।

प्रसव-वेदना के समय एक वधू बारह साल से रूठी अपनी सास को बुलवाती है—

परभु जी, बरह बरिसे मइया रूसल, से हो बउँसी लावह[1] हे।

सन्तान का जन्म एक ऐसी सुखद घटना है, जब सबके हृदय का मालिन्य मिट जाता है। बहू भी इस समय सबकी शुभकामनाओं की आकांक्षी हो जाती हैं। बहू से आदर पाकर सास के हर्ष का ठिकाना नहीं रहता। वह अपनी पुत्री एवं अन्य बहुओं के साथ आनन्द मनाने में लीन दिखाई पड़ती है—

सासु लुटवलन रुपइया, ननदी ढेउआ देलन हे।
गोतिनी लुटवलन गउआ, गोतिआ घर सोहर हे।
सासु जे उठलन गावइत, ननदी बजावइत हे।
गोतिनी जे उठलन बिसमाथल, गोतिया घर सोहर हे।

सास प्रसव-वेदना के अवसर पर बहू की सेवा मे जुटी देखी जाती है—

सासु मोर बेनिया डोलावह, कमर भल जाँतह हे।

कहीं बच्चा होने पर बहू को 'सोंठउरा' खिलाने एवं 'पीपर' और 'जीरा' पिलाने के लिए सास व्यग्र दिखाई पड़ती है—

पिपरी लेके सासु खड़ी, पिपरिया पीले बहू।
अथवा
जीरा रगरि रगरि हम पिसलूँ।
जीरा पीले बहू, जीरा पीले धनी।

पोते के जन्म के अवसर पर दादी देवता-पितरों को भी निमन्त्रण भेजती है—

जाय जगावहु कवन पितर लोग, भेलन पोता।
पोता भेल बंस बाढ़न, बहू हिरदा जुड़ावे।
देइ द सोना के हँसुअवा, होरिला नार काटब।

अनेक लोकगीतों में सास-बहू के भाई को अपमानित करती देखी जाती है, पर 'सोहरों' में नहीं। सास-बहू के भाई को उचित सम्मान देने का आदेश देती है—

बहुआ अँचरे बइठइह बीरन भइया, देखत सोहामन हे।

ननद-भावज—शिशु-जन्म के अवसर पर ननद पर महत्त्वपूर्ण कार्य-भार रहता है। वह इस अवसर पर होनेवाले विधि-विधानों एवं अनुष्ठानों मे महत्त्वपूर्ण भाग लेती है। एक

---

१. मना लाओ।

प्रकार से वही इस अवसर की पुरोहित होती है। उसके कार्य अनेक हैं। यथा—'सौरी' नीपना, भाभी को प्रथम बार स्नान कराना, उसका श्रृंगार-प्रसाधन करना, भतीजे को स्नान कराना, उसे प्रथम बार नवीन वस्त्र पहनाना, उसकी आँखें आँजना आदि। इनके अतिरिक्त, देवता की पूजा आदि के कार्य भी मुख्यतः वही कराती है। ऐसी स्थिति में सोहर-गीतों में ननद एवं भावज के मधुर सम्बन्धों की मनोहर झाँकी मिलती है। मगही-समाज में यों भी ननद-भावज का हास-परिहास का रिश्ता माना जाता है। इसकी मधुर व्यंजना मगही-सोहरों में हुई है।

इनमें प्रसव-वेदना से पीडित भाभी से ननद ठिठोली करती देखी जाती है और कहीं घरेलू अनुष्ठानों की प्रधान कर्त्ता के रूप में कार्य करती है। कहीं भतीजे के जन्म की खुशी में नाचती-गाती देखी जाती है और कहीं भाभी से नेग लेने के लिए कृत्रिम झगड़े ठानती है। इस मगही-गीत में बहू प्रसव-वेदना के समय ठिठोली करती हुई ननद को, ससुराल भेजने का आग्रह अपनी सास से करती है—

हम तो दरदे बेयाकुल, ननदिया के हँसी बरे।
सासू तोर पइयाँ पड़ूँ, सतभतरी के विदा करू।[1]

ननद के नखरे बहुत प्रसिद्ध हैं। प्रसव-वेदना के काल में पति के आग्रह करने पर भी पत्नी ननद को इसी कारण नहीं बुलाना चाहती—

कहऽ तऽ धानी, अपन बहिनी बोलावूँ।
न राजा हो, उनकर नखरा कउन सहतइन।

एक गीत में भाभी ननद से कहती है—'प्यारी ननद! जरा मेरे पिया को बुला दो। मुझे बड़ी वेदना हो रही है। उन्हें पलंग लगाने को कहूँगी।' ननद ने कहा—'मैं तुम्हारी सेविका नहीं, किस दावे से हुकुम दे रही हो?' भाभी ने प्यार से कहा—

ननद, तुहुँ मोरा लहुरी ननदिया, सेहे रे दावे बोलली हे।

ननद-भावज का यह मान और प्यार-भरा मधुर संवाद उनके हार्दिक स्नेह का व्यंजक है।

शिशु-जन्म के पहले भाभी दीन रहती है। वह ननद को शिशु-जन्म की खुशी में अनेक नेग देने के वायदे भी कर डालती है। पर, संकट से मुक्ति और पुत्र पाने की खुशी में वह अपनी दीनता और प्रतिज्ञा सब विस्मृत कर डालती है। अब वह ननद को चिढ़ाती है—

ननदोसिया के देबइन चढ़े के हँथिया, चढ़े के घोड़वा,
ननदी के देबइन गदहवा टिपोर।

कभी-कभी तो ननद के नेग माँगने का प्रसंग संघर्ष का रूप धारण कर लेता है। एक ननद भाभी के पुत्र उत्पन्न होने पर याद दिलाती हुई कहती है—'प्यारी भाभी!

१. इससे ही मिलती-जुलती पंक्तियाँ मुसलमानी सोहर में मिलती हैं—

मेरे तो पीर उठे ननदी हँसत फिरे।
बाहर बैठे ससुर हमारे, ससुर तोरे पइयाँ पड़ूँ।
ननदो बिदा करो, झलाही बिदा करो॥

तुमने तो कहा था कि ललना के जन्म के बाद बेसर दोगी। अब दो न।' भाभी कहती है—'नहीं देती।' क्रोध में भरकर उसका स्वामी अपनी बहन से बोलता है—'प्यारी बहन! तुम्हारी भाभी किसी की बात मानकर तुम्हें बेसर नहीं देती। मैं दूसरा ब्याह करूँगा और हाजीपुर के बाजार से खरीदकर तुम्हें नया बेसर दूँगा।' इसपर भाभी क्रोध में भरकर ननद के आगे बेसर फेंक देती है। इतना ही नहीं, वह ननद को गालियाँ भी देती है—

धनि, नकिया से काढ़ि के बेसरिया, भुइयाँ फेकि देलन हे।
ननदो, बनि जाहु मोर सउतिनियाँ, जे घर से निकासल हे।

ननद ने देखा कि ठिठोली ने संघर्ष का रूप धारण कर लिया है। वह बड़ी विनम्रता से बोली—

काहे लागी लेबो बेसरिया, बेसरिया तोहरे छाजो हे।
भउजो, जीये मोर भाई भतिजवा उगल रहे नइहर हे।
काहे लागी दोसरा बिआह करबऽ, काहे लागी बेसर हे।
भइया, लेइ तोर रोग-बलइया, हमहीं जइबे सासुर हे।[1]

नइहर के परिजनों के लिए कैसी सुन्दर मंगलभावना है। एक अन्य गीत में ननद ऐसी ही मंगलभावना प्रदर्शित करती है—

भइया के दसो दरबजवा, दसो घर दीप जरे हे।
आदित भउजी के होइन होरिलवा बसमतिया के पंथ पड़े हे।

भतीजे के जन्म के अवसर पर प्रधान स्थान पाने के कारण ननद बड़े-बड़े नेग लेने का अधिकार और हठ प्रदर्शित करती तो है, पर वस्तुतः इसमें भाभी को चिढाने और उससे परिहास करने का भाव अधिक होता है, कुछ लेने का कम।

गोतिनी-गोतिनी—एक यही सम्बन्ध है, जिसमें सोहर-गीतों में भी प्रतिद्वन्द्विता एवं कटुता के दर्शन होते हैं। गोतिनी-गोतिनी के बीच बराबर का सम्बन्ध रहता है। इससे दोनों उचित प्रतिदान पाने की इच्छा से परस्पर अच्छा व्यवहार करती हैं। पर, जब एक पक्ष अच्छा व्यवहार करके भी दूसरे पक्ष से उचित प्रतिदान नहीं पाता, तब वैमनस्य की वृद्धि होती है और दोनों के बीच स्पष्ट रूप से विरोध एवं प्रतिद्वन्द्विता चलने लगती है। यथा—

एक गोतिनी शिशु-जन्म पर सास और ननद से बढ़कर खातिर अपनी गोतिनी की करती है; क्योंकि दोनों के बीच आदान-प्रदान का सम्बन्ध है—

गोतिनी के तेल फुलेल, गोतिनियाँ के देल लेल हे।

• • •

ललना गोतिनी के लाल पलंगिया, हमहुँ पइँचा लेम हे।

• • •

ललना गोतिनी के लहँगा, हमहुँ कबहुँ पइँचा लेम हे।

---

१. एक मुसलमानी गीत मे भी ननद भाभी से कुछ ऐसा ही कहती है—

नहीं भाभी कँगना लूँगी, नहीं भाभी कड़वा लूँगी।
शाद रहे मेरा नन्हा होरिलवा, यही बहुत है जी।

पर इतने पर भी गोतिनी द्वेष नहीं छोड़ पाती। कम आदर पाने पर भी सास-ननद शिशु-जन्म पर आनन्द मनाती हैं। पर गोतिनी विद्वेप प्रदर्शित करती है—

सासु जे उठलन गावइत, ननदी बजावइत हे।
गोतिनी जे उठलन बिसमाथल[1], गोतिया घर सोहर हे।

एक दूसरे गीत में प्रसूता गोतिनी के लिए पलंग लगाती है। बसमतिया चावल का भात, मूँग की दाल, विशेष रूप से बने लड्डू, सुज्जी का हलवा आदि उसे खिलाती है। सास-ननद का साधारण ही स्वागत करती है। पर, सास-ननद रुपया-अशर्फी लुटाकर शिशु-जन्म पर आनन्द प्रकट करती हैं, किन्तु गोतिनी द्वेप से केवल छदाम ही लुटाती है। ऐसा द्वेषपूर्ण व्यवहार देखकर प्रसूता को मूर्च्छा आने लगती है—

सासु लुटवलन रुपइया, त ननदो असरफी हे।
ए ललना, गोतिनी लुटवलन छेदमवाँ, हम मुरछाई गिरली हे।

इसपर पति अपनी पत्नी को समझाता है—

चुप रहु, चुप रहु धनियाँ, तुहूँ चधुराइन हे।
ए धनियाँ, उनको जे होतइन होरिलवा, छेदमवाँ उनका फेर दीहऽ हे।

वस्तुतः, गोतिनी के दुर्व्यवहार को लौटाना कोई कठिन कार्य नहीं। शुभ घड़ी में विद्वेष प्रकट करनेवाली गोतिनी को उसके घर में आई शुभ घड़ी में भलीभाँति लौटाया जा सकता है। इसी आश्वासन को लेकर गोतिनी अपनी गोतिनी के कटु व्यवहार को सहन करती है।

२. मुण्डन

'चूडाकरण-संस्कार' हिन्दू-समाज के सोलह संस्कारों में एक है। लोक-जीवन में यही संस्कार 'मुण्डन' के नाम से प्रसिद्ध है। इस अवसर पर बालक के सिर के बाल प्रथम बार छीले जाते हैं। इसके पहले अनेक माता-पिता बालक के बालों में कंघी तक नहीं लगाते, जिससे उनमें जटाएँ पड़ जाती हैं। मुण्डन-संस्कार प्रायः विपम वर्ष में किया जाता है। मनु का विधान है कि धर्मपूर्वक समस्त द्विजातियों का चूडाकर्म प्रथम या तृतीय वर्ष में होना चाहिए।[2] वैसे प्राचीन काल में पाँच वर्ष की अवस्था तक चूडाकर्म होता था। अब भी सात साल की उम्र तक मुण्डन होता है। किसी-किसी का मुण्डन तो 'मानता' के कारण विवाह के अवसर पर किया जाता है, इसे 'जगमूड़न' कहते हैं।

स्त्रियाँ सन्तान-प्राप्ति के लिए विविध देवताओं के सम्मुख 'मानता' मानती हैं। इसी क्रम में वे देवता-विशेष के सामने वचनबद्ध होती हैं कि सन्तान होने पर वे अमुक तीर्थ-स्थान, देवालय, गंगा या नदी के तीर पर मुण्डन-संस्कार सम्पन्न करेंगी अथवा विवाह के अवसर पर 'जगमूड़न' करेंगी। 'मानता' न रहने पर घर में ही स्वाभाविक रूप से मुण्डन-संस्कार सम्पन्न किया जाता है।

मुण्डन के विधि-विधान—ज्योतिषी पत्रा देखकर शिशु के 'मुण्डन' की तिथि

१. विषाद से भरी हुई।
२. मनुस्मृति, २।३५।

निर्धारित करते हैं। इस तिथि को 'मानता' के अनुसार स्थान-विशेष पर अथवा 'मानता' न रहने पर घर में ही 'मुण्डन' का आयोजन किया जाता है। सर्वप्रथम बालक को स्नान कराया जाता है। इसके बाद पुरोहित निश्चित स्थान पर शास्त्रीय विधि से 'मुण्डन'-संस्कार कराते हैं। पुरोहित के आदेश पर नाऊ बालक के सिर का बाल उतारने के लिए तत्पर होता है। पर माँ के गर्भ से उत्पन्न अशुद्ध बालों को प्रथम बार काटने के पहले वह 'नेग' के लिए काफी झगड़े खड़ा करता है। लोग यथाशक्ति नाऊ को 'पुरौता' और 'नेग' देते हैं। तब वह बाल काटना आरम्भ करता है। नंघन के भय से बालक के बाल को जमीन पर नहीं गिरने दिया जाता है। उसकी बुआ आँचल पसारकर उसमें ही बाल लेती है। बाल देने के पहले बालक को निहुछकर सुपारी, पैसा आदि आँचल मे गिराया जाता है। बुआ भी बालक के माता-पिता से मनोवाछित नेग देने का वचन लेकर ही बाल लेती है। इन बालों को 'बॅसवारी' मे फेंका जाता है।

'जगमूड़न' में मुण्डन के सारे विधान विवाह के मण्डप में किये जाते हैं।

'मुण्डन' के अवसर पर पुरोहित द्वारा निर्दिष्ट विधान एवं लौकिक विधान दोनों साथ-साथ चलते हैं। ऐसी परिस्थिति में एक ओर पुरोहित का मन्त्रोच्चार चलता रहता है, दूसरी ओर मुण्डन-सम्बन्धी लोकगीत। इन लोकगीतो का आनुष्ठानिक महत्त्व इस दृष्टि से नही है कि इनका सम्बन्ध किसी विधान-विशेष से है; मुण्डन-सम्बन्धी सारे गीत मुण्डन के अवसर पर विना विधान-क्रम का ध्यान रखे ही गाये जाते हैं। इस दिन लोग यथाशक्ति ब्राह्मणों एवं परिजनो तथा मित्रों को भोजन कराते हैं।

मुण्डन-सम्बन्धी गीतों के विषय—इन गीतों में बालक के बालो का मुण्डन कराने की इच्छा बालक एवं उसके माता-पिता की ओर से व्यक्त की जाती है। 'मुण्डन' के विधान के लिए बालक के माता-पिता ब्राह्मण, नाऊ, माली, कुम्हार, बढ़ई, धोबी आदि को आमन्त्रित करते पाये जाते हैं। ये लोग बदले में इच्छानुसार 'नेग' लेने की कामना व्यक्त करते देखे जाते हैं। कुछ गीतो में इस अवसर पर सभी सम्बन्धियों, परिजनों, मित्रों एवं गाँव के सभी लोगो को निमन्त्रण देने का उल्लेख मिलता है, कुछ में बालक के 'मुण्डन-संस्कार' के निर्विघ्न समाप्त होने एवं बालक के मंगल के लिए अभ्यर्थना। ननद-भावज के बीच 'नेग' लेन-देन-प्रसंग सोहर-गीतों से ही चलते है। इस अवसर पर काटे जानेवाले बालों का सम्बन्ध जन्म के क्षण से ही होता है। इसलिए, इनके साथ विशेष मानसिक भाव जुड़े रहते हैं। शिशु को नजर न लगे और मुण्डन मंगलमय हो, इसके लिए किये गये टोने-टोटके का पूर्ण विवरण इन गीतों में होता है।

इनमें अन्य गीतों की भाँति पौराणिक नामों के भी प्रयोग मिलते हैं, पर ये सामान्य नामों के ही बोधक होते हैं। 'कन्हैया' या 'राम' के मुण्डन का वर्णन केवल प्रतीक-रूप में ही किया जाता है। अभिप्राय यहाँ उस बालक से ही रहता है, जिसका मुण्डन किया जाता है। अग्रांकित मगही गीत मे बालक की माता ब्राह्मण से 'मुण्डन' की तिथि निर्धारित करने की प्रार्थना करती है, जिसमें वह सभी को निमन्त्रण भेज सके।

गोचर[1] हे नगर के बराम्हन, पोथिया विचारहु हे।
आजु कन्हइया जी के मूँड़न, नेओता पेठायब हे।

इस शुभ अवसर पर वह रूठे परिजनों को भी यथोचित सम्मान देकर मनाने की कामना करती है—

बीरा ले मनयबो गोतिया, सेनुर ले गोतिनी लोग हे।
अहे बेसरि ले मनयबो ननदिया, मड़उआ मोर सोभत हे।

विना परिजनों के मण्डप की शोभा नही होती।

एक गीत में बालक पिता से प्रार्थना करता है कि उसके बाल मुँह पर आते हैं, इसलिए वे मुण्डन करा दें। पिता वैशाख-ज्येष्ठ मे मुण्डन कराने का वचन देता है; क्योंकि शुभ मुहूर्त्त इन्हीं महीनों में बनता है—

बेटा—सभवा बइठल मोरा बाबा कउन बाबा हो।
बाबा लाबर[2] मोरा छेंकले लिलार करहुँ जगमूँड़न हे।
पिता—आवे देहु जेठ-बइसाख, करब जगमूँड़न हे।

माता उल्लास में बहुत खर्च करने की कल्पना करती है—

नव मन गेहुँमा मँगायब, अब नेवतब कुल परिवार लाल जी के मूरन हे।
नव मन घीआ मँगायब, अब नेवतब कुल परिवार लाल जी के मूरन हे।
नव थान कपड़ा मँगायब, अब नेवतब कुल परिवार लाल जी के मूरन हे।

बालक की माँ के निमन्त्रण पर ब्राह्मण तथा अन्य सभी 'पँवनिएँ' आये हैं। पर सभी मुण्डन पर मूल्य माँगते हैं—

बराम्हन अलुरी[3] पसारे हम लेबो पोथिया के मोल,
कन्हइया जी के मूड़न हे।
हजमा अलुरी पसारे, हम लेबो छुरवा के मोल॥ कन्ह०॥
कुम्हरा अलुरी पसारे, हम लेबो कलसा के मोल॥ कन्ह०॥

बच्चे की बुआ तो 'बच्चे' का ही मूल्य माँगती है—

फुआ अलुरी पसारे, हम लेबो बबुआ के मोल॥ कन्ह०॥

मुण्डन मे पहली बार सिर में उस्तुरा लगने से बालक चिहुँक उठता है। माँ व्याकुल होकर हजाम-हजामिन को दण्डित करना चाहती है—

पहिला अस्तुरा नउआ फेरिए, हमर लाल उठल छिहुलाय,
लाल जी के मूरन हे।
हजमा के लुलुहा कटाए, नउनिया के देहु बनवास॥ लाल०॥

---

१. **गोचर**—प्रत्येक ग्रह अपनी-अपनी गति के अनुसार चलते हुए निश्चित काल तक किसी-न-किसी राशि का भोग करता है। उनकी इसी राशिगत चाल को 'गोचर' कहते हैं। जन्म-काल में चन्द्र नक्षत्र के अनुसार जिस मनुष्य की जो राशि होगी, उसके अनुसार चलते हुए सूर्यादि नक्षत्र किसी विशेष राशि, अर्थात् कुण्डली के प्रथम, द्वितीयादि स्थानों में जाने पर जो शुभाशुभ फल देते हैं, उसी को 'गोचर-भोगफल' कहते हैं। —मगही-संस्कार-गीत, पृ० ६५।

२. बाल। ३. हठ।

पाँचवें उस्तरे में तो सारे बाल ही काट दिये जाते हैं। अब प्रसन्न होकर माँ नाउ-नाउन को इनाम देना चाहती है—

पँचवाँ अस्तुरा नउआ फेरिए हमार लाल उठल छिहुलाय ।। लाल० ।।
हजमा के सोनमा गढ़ाइए नउनिया के लहरा पटोर ।। लाल० ।।

एक अन्य गीत में मुण्डन के अवसर पर विधि-विधान सम्पन्न कराने के लिए पुरोहित, मण्डप छाने के लिए गोतिये, गीत गाने के लिए गोतिनी, कलश-स्थापन के लिए कुम्हार, मुण्डन के लिए नाई और पीढ़ा लगाने के लिए बढ़ई को बुलाया जाता है। इनके अतिरिक्त 'लावर'[1] लेने के लिए फुआ को बुलाया जाता है। सभी आते हैं और उचित सम्मान तथा दान पाते हैं। पर, बच्चे की फुआ को बच्चे के दादा दिल खोलकर इनाम देते हैं। इसपर बच्चे के माता-पिता क्रुद्ध होकर उन्हें 'घरलूटन' की संज्ञा दे देते हैं—

फूआ अइलइ अँचरा पसरले हे।
अहे बाबा के पड़लइ हकार, बरुअवा के मूड़न हे।
बाबा जे अलथिन गेठी खोलले हे।
अहे भइया के पड़लइ हँकार, बरुअवा के मूड़न हे ।।
अहे भइया गेलइ रिसियाय, बहिनी घर लूटन हे।
अहे भउजी गेलइ रिसियाय, ननदी घर लूटन हे ।।

'नेग' के कारण ननद-भावज में यत्र-यत्र मुण्डन के गीतों में भी संघर्ष दिखाई पड़ता है। पर, ननद परम्परा के आधार पर ही नेग माँगती दिखाई पड़ती है। वस्तुतः, वह प्रत्येक परिस्थिति में भतीजे की मंगलकामना करती है। यथा : फुआ भगवान् इन्द्र से मुण्डन के दिन जल न बरसाने की प्रार्थना करती है—

अँगनमा बीचे खड़ा फुआ देओता मनावइ हे।
जनि बरसहु इंदर देओता, भतीजा के मूड़न हे ।।

३. जनेऊ

'यज्ञोपवीत' का अपभ्रंश-रूप 'जनेऊ' है। हिन्दू-समाज में उपनयन-संस्कार के अवसर पर शास्त्रीय विधि के अनुसार बालक को 'यज्ञोपवीत' धारण कराया जाता था। यह परम्परा अभी तक चल रही है। 'उपनयन' शब्द का अर्थ है—वह संस्कार या विधि, जिसके द्वारा विद्यार्थी गुरु के समीप लाया जाता है—

उपनीयते गुरुसमीपं प्राप्यते अनेनेति उपनयनम्।

प्राचीन काल में यज्ञोपवीत-संस्कार के बाद बालक गुरु के पास आश्रम या गुरुकुल में पढ़ने के लिए भेज दिया जाता था। इसीलिए, इस संस्कार को 'उपनयन' की संज्ञा मिली।

मनु ने लिखा है कि मनुष्य जन्म से शूद्र होता है और यज्ञोपवीत-संस्कार के बाद वह द्विज बन जाता है—

१. आँचल में बाल लेना।

जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्यते।

यही कारण है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य का शास्त्रीय विधि से उपनयन-संस्कार सामान्यतया अद्यावधि होता चला आ रहा है।

शास्त्रीय विधान के अनुसार 'ब्राह्मण-बालक' का यज्ञोपवीत आठ वर्ष की अवस्था में, क्षत्रिय का ग्यारह वर्ष की अवस्था मे और वैश्य का बारह वर्ष की अवस्था में होना चाहिए—

अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत् गर्भाष्टमे वा एकादशे क्षत्रियं द्वादशे च वैश्यम्।

'शतपथब्राह्मण' में विधान है कि ब्राह्मण का यज्ञोपवीत-संस्कार वसन्त ऋतु में, क्षत्रिय का ग्रीष्म ऋतु में और वैश्य का शरद् ऋतु में करना चाहिए। ब्राह्मणों के यहाँ फागुन और चैत महीनों में ही यज्ञोपवीत-संस्कार करने की प्रथा आजतक चल रही है। आजकल प्रायः आठ साल की अवस्था से पन्द्रह साल की अवस्था के बीच में ही यह संस्कार किया जाता है। किसी कारणवश जिनका जनेऊ नहीं हुआ रहता है, उनका विवाह के पहले कर दिया जाता है।

जनेऊ के विधि-विधान : मगध-क्षेत्र में यज्ञोपवीत-संस्कार में शास्त्रीय विधि को बहुत प्रधानता दी जाती है। इस संस्कार के एक दिन पूर्व बालक को अभ्यासार्थ कच्चे सूत का एक नकली जनेऊ पहनाया जाता है, इसे 'गोबरजनेऊ' कहते हैं। जनेऊ की पूर्वरात्रि में बालक को व्रत रखना पड़ता है। दूसरे प्रभात में 'यज्ञोपवीत' के लिए बनाये गये मण्डप में अनेक विधि-विधानो के बाद बालक के सिर के बाल उस्तरे से उतारे जाते हैं। बालक की बहन या बुआ इन बालों को अपने आँचल में लेती है। इसमें विशेष टोने-टोटके का भाव नहीं रहता; क्योंकि मुण्डन के समय काटे गये बालों का सम्बन्ध मातृकुक्षि से होता है, जबकि जनेऊ के समय बार-बार काटे जा चुके बालों को ही काटा जाता है। इसीलिए, जनेऊ के अवसर पर ननद-भावज में नेग के लिए विवाद भी नहीं होता। बाल काटने के बाद बालक की देह मे हल्दी लगाकर स्नान कराया जाता है।

फिर, बालक को ब्रह्मचारी के रूप में सजाया जाता है। वह मूँज का डोंड़ा, मृगचर्म का वस्त्र, पलास का दण्ड और खड़ाऊँ धारण करता है। इसके बाद पुरोहित विधिवत् उसको यज्ञोपवीत धारण कराते हैं। फिर, गुरुकुल मे विद्याध्ययन के लिए वह सबसे तीन बार भिक्षा माँगता है। पहली भिक्षा आचार्य को, दूसरी माता को, तीसरी भिक्षा पिता को दी जाती है। वस्तुतः, यह परम्परा प्राचीन प्रथा का अवशेष है, जिसमें प्रत्येक ब्रह्मचारी गुरुकुल में रहकर विद्योपार्जन करता था और भिक्षा माँगकर जीविका चलाता था। भिक्षाटन के बाद विद्याध्ययन के लिए ब्रह्मचारी प्राचीन विद्या के केन्द्र काशी और कश्मीर जाने का प्रतीक-रूप में नाट्य करता है। यात्रा के लिए ज्योंही वह दो-चार कदम आगे बढ़ाता है कि घरवाले 'लौट आवऽ बबुआ' कहकर उसे लौटा लेते हैं।

प्राचीन काल में गुरुकुल से लौटे हुए विद्यार्थी का समावर्त्तन-संस्कार होता था। इसमें वह ब्रह्मचारी का वेश त्यागकर गृहस्थ का वेश धारण करता था। यज्ञोपवीत-संस्कार के अवसर पर भी प्रतीकात्मक रूप में काशी-यात्रा से लौटे इस विद्यार्थी की देह से ब्रह्मचारी

का वेष उतारकर उसे विविध वस्त्रों एवं आभूषणों से अलंकृत किया जाता है। पुरोहित एवं अन्य गुरुजनों के आशीर्वाद के साथ यह संस्कार समाप्त होता है।

एक ओर शास्त्रीय विधि-विधान के साथ यज्ञोपवीत-संस्कार चलता है, दूसरी ओर महिलाएँ इस संस्कार से सम्बद्ध लोकगीत गाती रहती हैं। जनेऊ-गीतों का आनुष्ठानिक महत्त्व भी है; क्योंकि इस अवसर पर होनेवाले विविध अनुष्ठानों के साथ ये गीत गाये जाते हैं। यद्यपि गानेवालियों पर ऐसा कोई प्रतिबन्ध नहीं रहता। वे सभी गीत विविध विधानों के साथ गा सकती हैं।

जनेऊ-गीतों के वर्ण्य विषय :

जनेऊ से सम्वद्ध विविध विधि-विधानों का विस्तृत वर्णन मगही-गीतो में होता है। कहीं बालक जनेऊ धारण करने की इच्छा व्यक्त करता हुआ पाया जाता है, कहीं माता-पिता आदि उचित समय पर जनेऊ देने का आश्वासन देते देखे जाते हैं, कहीं मण्डपाच्छादन का कार्य होता दिखाया जाता है, कहीं विविध पॅवनिएँ—कुम्हार, माली, बढ़ई, नाई आदि जनेऊ के कार्य में भाग लेने के लिए निमन्त्रित होते देखे जाते हैं, कहीं बालक ब्रह्मचारी के वेष मे सुसज्जित होता हुआ दिखाया जाता है, कही भिक्षाटन करता हुआ एवं विद्याध्ययन के लिए काशी-कश्मीर की यात्रा के पथ पर चलता हुआ उसे दिखाया जाता है। इस प्रकार, इस वर्ग के गीतो में जनेऊ के अवसर पर सम्पन्न होनेवाले विधि-विधानों का बालक के परिजनों की क्रियाओं एवं प्रतिक्रियाओं के साथ वर्णन उपलब्ध होता है। साथ ही, जनेऊ मे भाग लेनेवाले पुरोहित, नाऊ, माली आदि अन्य जनों का उनसे सम्बद्ध कृत्यों एवं पदार्थों के साथ उल्लेख होता है।

इन गीतों मे अनेक स्थलों पर राम, कृष्ण आदि पौराणिक व्यक्तियों के जनेऊ-संस्कार का वर्णन मिलता है। वस्तुतः, इनके नाम-भर लिये जाते हैं, अभिप्राय 'बरुआ'-विशेष से ही होता है। विशेष का नाम लेकर सामान्य का ही बोध कराया जाता है।

एक जनेऊ-गीत में बालक स्नान करते समय अपने शरीर को जनेऊ से खाली देखकर लज्जित होता है और अपने परिजनों से प्रार्थना करता है कि वे उसे अपना जनेऊ पहना दें। परिजन आश्वासन देते हैं कि हम तुम्हें अपना पुराना जनेऊ नहीं पहनायेंगे। धूमधाम से तुम्हारा जनेऊ-संस्कार होगा—

गंगा रे अरार कउन बरुआ करे असनान।
करे असनान रे बरुआ, निरखे आठो अंग।
बिनु रे जनेउआ हो बाबा, ना सोभे अंग।
अप्पन जनेउआ हो बाबा, हमरा के दऽ।[1]
हमरो जनेउआ हो बरुआ, भे गेल पुरान।
तोहरो जनेउआ हो बरुआ, देवो बजना बजाय।

बालक के स्नान के बाद विविध विधि-विधान के लिए ब्राह्मण, कुम्हार, हजाम,

---

१. तुल०—सभुआ बइसलि थिकों कोन बाबा सुनु बाबा वचन हमार हे।
हमरो के दिऊ बाबा जनेउआ, हमें हएब ब्राह्मण हे।
—मै० लो० गी०, पृ० ६१।

बढ़ई आदि की अपेक्षा होती है। अतः, उनके लिए निम्नांकित निमन्त्रण-गीत मगह-क्षेत्र में गाया जाता है—

बराम्हन नेवतब, बराम्हनी नेवतब।
नेवतब पोथिया सहिते चलि आवऽ माई हे।
कुम्हरा नेवतब कुम्हइनियाँ नेवतब।
नेवतब कलसा सहिते चलि आवऽ माई हे।
हजमा नेवतब हजमिनियाँ नेवतब।
नेवतब छुरवा समेते चलि आवऽ माई हे।
बढ़ई नेवतब बढ़हिनियाँ नेवतब।
नेवतब पिढ़िया सहिते चलि आवऽ माई हे।

ऊपर सबको अपनी-अपनी पत्नियों के साथ आमन्त्रित किया गया है; कारण दम्पति के द्वारा सम्पन्न किया गया कृत्य अधिक मंगलकारी, सफल और पूर्ण माना जाता है।

यज्ञोपवीत-संस्कार मण्डप मे किया जाता है। इस अवसर पर बालक के माता-पिता 'घीढारी' का विधान भी सम्पन्न करते हैं। इस कृत्य से स्वर्ग में पितर लोगों को बड़ा आनन्द होता है और वे वंश की वृद्धि के लिए वहाँ से ही आशीर्वाद भेजते हैं—

दुलरइते बाबू के मँड़वा जनेऊ।
मँड़वहि बैठल दुलरइते बाबू, गेठ जोड़ि दुलरइते सुहवे हे॥
बेदिअहिं घीउ ढारिए गेल, सगरो भे गेल इंजोर।
सरग अनंद भेल पितर लोग, अबे बंस बाढ़ल मोर॥

इस गीत मे बड़े सुन्दर भावों की व्यंजना हुई है। मण्डप में बालक के माता-पिता वेदी के चारों ओर परिक्रमा करते वेदी में 'घी' डालते हैं। घी पड़ने से यज्ञ की अग्नि बहुत आलोक फैलाती है। ये तीव्र और प्रखर आलोक किरणें स्वर्ग में पहुँचकर पितरों का ध्यान आकृष्ट करती हैं। वे अपने घर में वंश की वृद्धि समझकर आनन्द मनाते हैं और मंगलमय आशीर्वाद देते हैं।

'जनेऊ' के अवसर पर बालक ब्रह्मचारी का वेष धारण करता है। वह मृगछाल, पलाश-दण्ड, मूँज की डोरी और पीला जनेऊ धारण करता है। इस समय इसी प्रसंग से सम्बद्ध गीत गाये जाते हैं। यथा—

जेहि देस सिकियो न डोलय, साँप ससरि गेल हे।
ललना ओहि देस गयलन दादा रइया अंगुरी धरि कवन बरुआ हे।
पहिले जे मरबो साहिल, साहिल काँटा चाहिला हे।
ललना तबे हम मरबो मिरिगवा, मिरिगछाल चाहिला हे।
ललना तबे हम कटबो परसवा, पारस डंटा चाहिला हे।
ललना तबे हम कटबो मुँजियवा, मुँजिए डोरी चाहिला हे।
ललना आज मोरा बाबू के जनेउआ, जनेउआ पीला चाहिला हे।[1]

---

१. इसीसे मिलते-जुलते गीत के लिए देखिए, भोजपुरी ग्रा० गी०, पृ० १०८ एवं मै० लो० गी०, पृ० ९२।

ब्रह्मचारी के कठोर जीवन के अनुकूल ही उसकी वेश-भूषा होती है। घनघोर जंगल से प्राप्त किये गये साहिल के काँटे, मृगछाल, पलाश-दण्ड, मूँज की डोरी और उसपर पीत वर्ण जनेऊ—ये उसके चित्त में दृढता एवं हृदय में निर्भीकता प्रदान करते हैं।

'जनेऊ' के पहले बालक द्विज नहीं कहलाता। वह इस बात से परिचित है। वह गुरुजनों की सेवा करके अपनेमें सुन्दर संस्कार भरने का आकांक्षी है। उसकी प्रबल कामना है कि वह 'ब्राह्मण' कहलाये। इसके लिए वह प्रयत्न करने की प्रतिज्ञा भी करता है—

जइबो में जइबो ओहि देस, जहाँ दादा अप्पन हे।
उनकर चरन पखारी के, हम पंडित होयब हे।
उनकर चरन पखारि के, हम बराम्हन होयब हे।

यहाँ 'जाति' से नहीं, 'कर्म' से 'ब्राह्मण' बनने का निर्देश किया गया है।

अब बालक विद्याध्ययन के लिए परदेश जाना चाहता है। इसके लिए वह भिक्षाटन करता है। रमणियाँ बालक से प्रश्न करती हैं—

कहाँ के तूँ बराम्हन बरुआ, कहँवा बिनती तोहार भाई हे।
कउन 'साही' सम्पत सुनि अयलऽ हो बरुआ।
कउन देइ दुआर धरि ठाढ़ भाई हे।

'बरुआ' या ब्रह्मचारी के पक्ष से फिर रमणियाँ ही उत्तर गाती हैं—

गया के हम बराम्हन बरुआ, पटना में बिनती हमार भाई हे।
दादा साही सम्पत सुनी अयली, दादी देइ दुआर धरि ठाढ़ हे।
माँगिला हम धोती से पोथी, माँगिला पीयर जनेऊ भाई हे।
माँगिला हो चढ़न के घोड़वा, माँगिला कनिया कुँआर भाई हे।

दाता-पक्ष का उत्तर है कि तुम्हें सारी वस्तुएँ मिलेंगी, पर कुआँरी कन्या नहीं मिलेगी; क्योंकि तुम विद्यार्थी हो—

देबो में बरुआ हो धोती से पोथी,
देबो में पियर जनेउआ भाई हे।
देबो में बरुआ चढ़न के घोड़वा,
एक नहिं कनिया कुँआर भाई हे।

उपर्युक्त लोकगीत में 'कुआँरी कन्या' न देने का निर्देश महत्त्वपूर्ण है, जो प्राचीन पद्धति के अनुसार ब्रह्मचर्य-पालन की ओर संकेत करता है।

एक अन्य गीत में बालक को भिक्षाटन करते देख परिजन अनन्त धनराशि देने की कामना करते हैं—

गंगा रे जमुनवाँ के रेतिया, मोतिया उपजायब हे।
गंगा रे जमुनवाँ के रेतिया, सोनवाँ उपजायब हे।
जे हम जनती बरुआ, तुहूँ पंडित होयबऽ हे।

कंचन थाल भराई, सोनमा भीख देती हे।
कंचन थाल भराई, मोतियन भीख देती हे।[1]

भिक्षाटन के लिए आये पुत्र को सोना, मोती प्रदान करने की माता-पिता की भावना स्वाभाविक ही है।

भिक्षाटन के बाद बालक विद्याध्ययन के लिए चल पड़ता है—

गया से बरुआ बिदा भेलन,
अहे कासी पहुँचि गेलन हे।
अहे कसमिरिया पहुँचि गेलन हे।

काशी और कश्मीर की यात्रा के लिए दो-चार कदम आगे बढ़ाने पर लोग फिर बालक को बुलाते हैं—

अहे कासी जे गेलऽ बरुआ, पंडित होइ गेलऽहे।
अहे कसमीर जे गेलऽ बरुआ, बराम्हन होइ गेलऽहे।
अहे तोरा मइया ठाढ़ि दुआर, अब घर लौटि आवऽ हे।

इसपर बालक लौट आता है। कल्पना की जाती है कि वह विद्याध्ययन समाप्त करके लौट आया है। कहा जा चुका है कि प्राचीन काल में गुरुकुल से घर लौटे विद्यार्थी का 'समावर्त्तन'-संस्कार होता था। इस समय भी पुरोहित 'समावर्त्तन'-संस्कार के कुछ मन्त्र पढ़कर बालक को ब्रह्मचारी-वेश से मुक्त कर देते हैं। इसके बाद वह सुन्दर वस्त्राभूषणों से अलंकृत होकर सबको प्रणाम करता है। फिर, मन्त्र के साथ अक्षत छींटकर उसे आशीर्वाद दिया जाता है।

४. विवाह

जन्म-संस्कार के बाद विवाह-संस्कार सबसे प्रधान और महत्त्वपूर्ण है। यह संस्कार संसार की सभ्य एवं असभ्य जातियों में बड़े उत्साह के साथ सम्पन्न किया जाता है।

जन्म, मुण्डन और जनेऊ की ही भाँति विवाह संस्कार में भी दोनों प्रणालियाँ चलती हैं—१. वैदिक एवं शास्त्रोक्त प्रणाली तथा २. लौकिक प्रणाली। वैदिक एवं शास्त्रोक्त प्रणाली का सपाम्दन पुरोहित कराते हैं। लौकिक प्रणाली के सम्पादन में प्रधान हिस्सा महिलाओं का रहता है। इसमें पुरुष लोग भी भाग लेते हैं, यद्यपि स्त्रियों से उनका लौकिक आचार कम होता है। संख्या की दृष्टि से लौकिक आचार वैदिक आचारों से बहुत अधिक हैं। वस्तुतः, वैदिक आचारों को धुरी माना जा सकता है। उस धुरी के चारों ओर लोकाचारों का घना ताना-बाना नर्त्तित होता है। प्रत्येक लोकाचार के साथ उससे सम्बद्ध लोकगीत गाये जाते हैं।

---

1. तुलनीय : जो मैं जनतेऊँ ए बरुआ, हमरे घर अउबेउ हो।
बलुहर खेत जोतवतेऊँ, धन मोतिया बोअवतेऊँ हो।
मोतियन थार भरवतेऊँ भिखिया उठि देतऊँ हो।—ह० ग्रा० सा०, पृ० ९४।
ए जाहु हम जनती ए माई, कवन बरुआ अइहें रे,
बालू के खेत जोतइतों, मोतिया उपजइतों रे।
कंचन थार भरइतों, मोतिया भीखि दीहितों रे।—भो० ग्रा० गीत, पृ० ११२।

वैवाहिक उपविधियाँ या लोकाचार :

'विवाह'-संस्कार मुण्डन और जनेऊ की तरह सरल संस्कार नहीं है। इसमें बहुत सारी जटिलताएँ हैं। विवाह में शास्त्रीय विधान के साथ अनेक वैवाहिक उपविधियाँ महिलाओं द्वारा एवं कुछ पुरुषों द्वारा सम्पन्न की जाती हैं। वर और कन्या के घर में कुछ अनुष्ठान समान होते हैं। कुछ अनुष्ठान भिन्न भी होते हैं। इनमे से कुछ उपविधियों या लोकाचारों की संक्षिप्त तालिका निम्नांकित है—

वर-पक्ष	कन्या-पक्ष
छेंका	छेंका
तिलक	लगन
हल्दी-कुटाई	हल्दी-कुटाई
मटकोर (तिनमँगरा या पँचमँगरा)	मटकोर (तिनमँगरा या पँचमँगरा)
उबटन	उबटन
मँड़वा	मँड़वा
हल्दी-चढ़ाई	हल्दी-चढ़ाई
हल्दी-लगाई	हल्दी-लगाई
घीढारी और पैरपूजी	घीढारी और पैरपूजी
आम-महुआ-बिआहना	आम-महुआ-बिआहना
बतास न्योतना	बतास न्योतना
पानी काटना	पानी काटना
लावा भूँजना	लावा भूँजना
नहान और खार-खूर-छोड़ाई	समधी-मिलाप और बरात का स्वागत
नछुआ	बरात का दरवाजा लगना
इमली-घोंटाई	धूँआ-पानी जनमासा भेजना
कुँअरपत उतराई	समधी का जनमासे जाकर भोजन का निमन्त्रण देना
बरात सजना	
लड़के की परछौनी	हजाम का मौर और स्नेह के पानी के साथ आना
बरात-बिदाई	नहान और खार-खूर छोड़ाई
डोमकछ	नछुआ
दुल्हा-दुलहिन की परछौनी	इमली-घोंटाई
द्वारछेंकाई	कुँअरपत उतारना
कोहबर	गुरहत्थी
घर-भराई	वर-परिछन
पैर-धोलाई	वर का मँड़वा में जाना
जूआ	कन्यादान
मुँह-जुठाई	समधी-मिलाप

वर-पक्ष	कन्या-पक्ष
गेठी-खोलाई	कन्या का वर की बगल में जाना और गँठ-बन्धन
चौठारी	लावा-छिंटाई
	भाँवर
	सेंदुरदान
	अठमँगरा
	चुमावन
	द्वार-छेंकाई
	कोहबर
	घर-भराई
	जूआ
	मुँह-जुठाई
	ज्योनार
	गौना
	बेटी-बिदाई
	चौठारी
	दोंगा

इनका संक्षिप्त विवरण निम्नांकित है—

गणना : विवाह के पहले लड़के और लड़की की कुण्डलियाँ या जन्मपत्रियाँ मिलाई जाती हैं। दोनों के अनुकूल होने पर ही विवाह की चर्चा चलाई जाती है। इस विधि को गणना कहते हैं। गणना के अवसर पर विवाह का कोई निश्चय नहीं रहता, इसलिए गीत नहीं गाये जाते। पर, बाद में विवाह के अवसर पर गाये जानेवाले गीतों में गणना का उल्लेख मिलता है।

छेंका या रोका : विवाह पक्का होने पर पहले कन्या के यहाँ से वर को छेंका जाता है। इसके बाद वर-पक्ष से कन्या को छेंका जाता है। इस अवसर पर पूजा के बाद वर और कन्या के अनुकूल वस्त्राभूषण दिये जाते हैं। महिलाएँ इस समय 'सगुन' के गीत गाती हैं।

तिलक : विवाह की तिथि निश्चित होने पर कन्यापक्ष से वर के लिए 'तिलक' आता है। वरपक्ष की शर्त्त के अनुसार कन्यापक्षवाले वस्त्राभूषण एवं रुपये लाते हैं। विधिवत् पूजा के बाद लड़के के माथे पर चन्दन और रोली का तिलक लगाकर कन्या-पक्षवाले वर के हाथ में लाये हुए सामान रखते हैं। तिलक की अन्य संज्ञाएँ 'लगन' या 'चढ़ौना' भी हैं। तिलक के अवसर पर या उसके बाद 'लग्नपत्री' लिखी जाती है और धान तथा हल्दी बाँटी जाती है। लग्नपत्री में वैवाहिक कार्यक्रम एवं अन्यान्य विधियों के मुहूर्त्त लिखे रहते हैं। इस दिन लड़के के घर में बड़ा उत्सव और मांगलिक गान होता है। 'समधी' को महिलाएँ गीतों में गालियाँ भी देती हैं।

तिलक के दिन से ही प्रतिदिन वर और कन्या के घर मे सायंकाल एकत्र होकर महिलाएँ विवाह और सगुन के गीत गाने लगती हैं। यह क्रम विवाह के दिन तक चलता है।

लगन : तिलक के बाद वरपक्ष से कन्या के लिए 'लगन' भेजा जाता है। इस अवसर पर वस्त्राभूषणों के साथ-साथ धान, हल्दी, दूब आदि मागलिक वस्तुएँ भी भेजी जाती हैं। इस दिन महिलाएँ 'लगन' और 'सगुन' के गीत गाती हैं।

इसके अतिरिक्त लड़की के घर 'जोग' भी गाया जाता है। वस्तुतः तिलक के दिन से ही वर के घर 'टोना' के गीत और कन्या के घर 'जोग' के गीत गाये जाते हैं।

हल्दी-कुटाई : मण्डपाच्छादन के कई दिन पूर्व शुभ लगन देखकर वर और कन्या दोनों के घर हल्दी कूटी जाती है। इसमे कम-से-कम पाँच सुहागिनें भाग लेती हैं। इस अवसर पर स्त्रियाँ देवताओं के पाँच गीत गाकर, विवाह-सम्बन्धी अन्य गीत गाती हैं। यही हल्दी बाद में वर और कन्या को लगाई जाती है। इस दिन से घर मे विवाह का वातावरण छा जाता है।

मटकोर : मण्डप के तीन दिन या पाँच दिन पूर्व 'मटकोर' की रस्म होती है। इसे 'तिनमँगरा' या 'पँचमँगरा' की संज्ञा भी दी जाती है। सवासिन अन्य महिलाओं के साथ निश्चित समय पर घर के पास के कुएँ, जलाशय या नदी के किनारे मिट्टी कोड़ने जाती है। इस मिट्टी के कुछ अंश को कलश के नीचे रखा जाता है और कुछ मिट्टी को अन्य मिट्टी से मिलाकर लगन का चूल्हा बनाया जाता है। इसपर 'लावा' भूना जाता है, जिससे विवाह के समय 'लाजा-हवन' या 'लावा-छिंटाई' की रस्म होती है। 'मटकोर' के समय सवासिन और भोजैतिन[१] आदि के नाम लेकर महिलाएँ गालियाँ गाती हैं।

मटकोर के अवसर पर महिलाएँ उड़द की दाल धोती हैं। इसीको पीसकर 'बड़ी' बनाई जाती है। इसी बड़ी में दही मिलाकर 'नछुआ' के समय वर और कन्या का 'कुँअरपत' उतारा जाता है।

उबटन : मटकोर के दिन से प्रतिदिन वर और कन्या को जौ, गेहूँ, तज, कचूर, सरसों आदि को पीसकर उसी का उबटन लगाया जाता है। यह क्रम विवाह के दिन तक चलता है। इस अवसर पर महिलाएँ 'उबटन' एवं 'सगुन' के गीत अवश्य गाती हैं।

मँड़वा : मटकोर के तीसरे या पाँचवें दिन कच्चे एवं हरे बाँसों से मण्डपाच्छादन होता है। मण्डप छाने का कार्य पुरुष करते हैं। अनेक विधि-विधान के साथ मण्डप में कलश की स्थापना होती है। कलश में पानी भरकर उसपर आम्रपत्र रखे जाते हैं। उसपर एक बड़ी प्याली में चावल भरकर रखा जाता है, जिसपर 'चमुक' जलाया जाता है। 'चमुक' चार मुखोंवाला दीपक होता है, जिसमें चारों मुखों पर निरन्तर बत्ती जलाई जाती है। विवाह के बाद ही ये बत्तियाँ बुझने दी जाती हैं। मण्डप के चारों ओर माली 'बन्दनवार' लगाता है। लड़की के घर के मण्डप में विशेष सजावट होती है।

---

१. वर और कन्या की माता।

इस दिन शुभ लग्न देखकर वर-कन्या को अपने-अपने घर हल्दी चढ़ाई जाती है। हल्दी चढ़ाने का कार्य सबसे पहले वर-कन्या के पुरुष-सम्बन्धी करते है, फिर सुहागिन महिलाएँ। इसके बाद इसी समय से वर कन्या को महिलाएँ हल्दी लगाने लगती हैं।

मण्डपाच्छादन के दिन अनेक विधि-विधान होते हैं। सभी विधानो से सम्बद्ध गीत महिलाएँ गाती हैं।

दाल-सेराई : इसका अभिप्राय है—एक दिन का विश्राम। इस दिन स्त्रियाँ देवपूजन, घीढारी, मातृपूजा आदि अनेक विधियाँ करती हैं। दिन-भर मे कई बार वर-कन्या को हल्दी लगाई जाती है।

घीढारी : इसमें गौरी-गणेश तथा सप्तमातृकाओं की पूजा करके, सात कुश-पिंजुलियों पर अथवा नये बने पीढ़े पर सिन्दूर की सात लम्बी पंक्तियाँ बनाकर वर-कन्या के माता-पिता अपने-अपने घर मन्त्रोच्चार के साथ घी गिराते हैं। 'घी' की यह धारा तीन जगह—गृहदेवता के पास, गृहदेवता के घर के बाहर और मण्डप मे गिराई जाती है। इसे शास्त्रीय भाषा में 'वसोर्धारा' या 'घृतमातृका' की संज्ञा दी गई है। इस समय महिलाएँ 'घीढारी' के गीत गाती हैं।

मातृपूजा या पैरपूजी : इसमें सभी गुरुजनों के चरणों की पूजा होती है और उन्हें वस्त्रादि दिये जाते हैं।

आम-महुआ-बिआहना : महिलाएँ वर या कन्या के साथ आम और महुआ के बाग में जाती हैं। वे पहले लाल या पीला डोरा आम और महुआ मे बाँधती हैं। फिर, स्त्रियों का एक दल आम के पेड़ के नीचे बैठता है, दूसरा दल महुआ के पेड़ के नीचे। सवासिन वर या कन्या को लेकर आम-महुआ के पेड़ के बीच दौड़ती है। सवासिन के एक हाथ में भरा लोटा, दूसरे हाथ में आम्रपल्लव रहता है। दौड़ते हुए वह वर या कन्या की पीठ में पानी से भिंगोकर आम्रपल्लव से मारती जाती है। जब वह आम के पेड़ के नीचे पहुँचती है, तो महिलाएँ प्रश्न करती हैं—'कहाँ से आवऽ हऽ ?' (कहाँ से आती हो ?)। सवासिन उत्तर देती है—'कमरूकमेछा से।' फिर प्रश्न होता है—'का करे ऐलऽ हे ? (क्या करने आई हो ?)। वह उत्तर देती है—'लड़का के देखे ऐली हे, लड़की के सौपे ऐली हे।' (लड़के को देखने आई हूँ और लड़की को सौपने आई हूँ।) फिर, वह महुआ के पेड़ के पास जाती है, तो यही बातें दुहराई जाती हैं। यह क्रिया पाँच बार दुहराई जाती है। इस क्रिया को 'सौपा सौंपी' की क्रिया कहते हैं।

कुछ जातियों में 'वर' को 'वटवृक्ष' के पास ले जाया जाता है, जहाँ वह तलवार से 'वृक्ष' की डाली काटता है।

इस अवसर पर महिलाएँ सगुन, जोग, टोना आदि के गीत के साथ भोजैतिन और सवासिन आदि के लिए गालियाँ गाती हैं।

बतास न्योतना—आम-महुआ के ही बाग में महिलाएँ 'बतास' न्योतती हैं। इसकी विधि यह है कि वर या कन्या की माता बायें हाथ में मिट्टी का चुक्का ले लेती है,

जिसमें सन, कसैली, पैसा, सिन्दूर, अक्षत आदि वस्तुएँ भरी रहती हैं। दाहिने हाथ की मुट्ठी में वह चावल भर लेती है। फिर, दाहिने हाथ को उठा-उठाकर आग, पानी, हवा, आँधी, चीटी, पिपरी आदि प्रकृति के विविध बाधक तत्त्वों एवं जीवों को निमन्त्रित करती जाती है और मुट्ठी के चावल का अंश चुक्के में गिराती जाती है। निमन्त्रण समाप्त होने पर चुक्के का मुँह आँटे से बन्द कर दिया जाता है। इसे मण्डप में सम्पूर्ण वैवाहिक कार्यक्रम समाप्त होने तक रखा जाता है।

इस विधि के साथ महिलाएँ प्रकृति के सभी बाधक तत्त्वों के नाम लेकर गीत गाती हैं।

पानी काटना : महिलाएँ वर या कन्या के साथ कुएँ, जलाशय या नदी के तट पर जाती हैं और छुरी से वर या कन्या द्वारा पानी कटवाती हैं। इस क्रिया के साथ इनके गीत चलते हैं।

लावा भूनना : मटकोर की मिट्टी से बनाये चूल्हे पर धान का लावा सवासिन भूनती है। यह लावा कन्या के घर भेजा जाता है। वर-कन्या मिलकर विवाह के समय मण्डप मे लावा छीटते हैं। लावा भूनने के समय लड़के के घर में और लावा छीटने के समय लड़की के घर में गीत होते हैं।

नहान और खार-खूर छोड़ाई : सवासिन कुदाल से प्रतीक रूप मे पोखरा खनती है। वहीं पर बैल के कन्धे पर रखा जानेवाला 'जुआठ' रखा जाता है, जिसपर बैठकर अपने-अपने घर वर और कन्या नहाते हैं। पहले नहाने की क्रिया 'धोबिन' कराती है। इसे ही 'खार-खूर छुड़ाना' कहते हैं। फिर, शुद्ध पानी से वर-कन्या को नहलाया जाता है।

लड़का के नहाते समय पैर के अँगूठा के पास एक चुक्का लगाया जाता है। चुक्के में कुछ पानी भर जाता है। इसे 'सिनेह का पानी' (स्नेह का पानी) कहते हैं। कन्या के घर पर इसे बरात के साथ लाया जाता है। कन्या इस पानी से नहाती है।

स्नान की जगह पर एक 'कपटी' मे आग जलती रहती है। स्नान के बाद अपने-अपने घर पर वर और कन्या को राई-जमाइन आदि से गीत के साथ 'निहुछ' कर उन्हें (राई-जमाइन को) आग में डाला जाता है। निहुछने की क्रिया समाप्त होने पर प्याली उलट दी जाती है। इसे फोड़ते हुए वर और कन्या कमरे में जाते हैं।

नछुआ : नहान के बाद वर और कन्या के घर 'नछुआ' की विधि होती है। लड़के के घर बरात जाने के पहले और लड़की के घर बरात पहुँचने के बाद यह विधि होती है। वर और कन्या की माँ अपने-अपने घर वर का 'मौर' पहन चौक पर बैठती है। उसके आगे वर या कन्या बैठती है। वर की कानी उँगली से नाइन, टोटके के रूप में खून लेकर एक मिट्टी के पात्र में रखती है। फिर, उसमें पानी मिलाकर वधू के पास भेजा जाता है। कन्या के 'नछुआ' में इस पानी से 'स्नेह-जोड़ने' की रस्म पूरी की जाती है।

इमली-घोंटाई : यह विधि वर और कन्या दोनो के यहाँ मामा द्वारा सम्पन्न की जाती है। मामा, मण्डप में लगे आम की टहनी से पाँच पत्ते लेकर, वर या कन्या के सिर पर से ओंछकर और उसके मुँह के पास ले जाता है। वर या कन्या उन पत्तों के पीछे के डण्ठलो को दाँतो से काटकर पत्तों को नीचे गिरा देते हैं। फिर डण्टलों को माँ की अंजुलि में

गिरा देते हैं। तब मामा अपनी बहन की डण्ठलों से भरी अंजुली में पानी डाल देता है। वह उसे अपने होठों से छुलाकर पाँच बार नीचे गिराती है। फिर, मामा अपनी बहन और भगिना या भगिनी को यथाशक्ति उपहार देता है। नछुआ के साथ इमली-घोंटाई की रस्म होती है।

'इमली-घोंटाई' की विधि के साथ गीत भी होते हैं।

कुँअरपत उतारना : मटकोर के दिन उड़द की जो बड़ियाँ बनाई जाती हैं, उन्हीं में दही मिलाकर, उन्हें पाँच दोनों में लगाया जाता है। उन्हीं से वर या कन्या को औंछ-कर प्रश्न किया जाता है—'का उतारऽ हऽ' (क्या उतारते हो ?) उत्तर मिलता है ? 'कुँअरपत' (कौमार्य)। यह क्रिया पाँच बार होती है।

बरात-विदाई : बरात की विदाई के लिए बड़ी धूमधाम से तैयारी होती है। वर की सजावट 'राजा'-सी होती है। शरीर पर चमकीला जोड़ा-जामा, सिर पर सुन्दर मौर (जिसकी मोती की लम्बी झालरें मुख पर लटकती हैं), आँखों में काजल, मुख में पान का बीड़ा, ललाट पर दही-रोली का तिलक, पैर में जरी के कामवाला जूता (नागरा) आदि उसे अद्भुत सौन्दर्य एवं गरिमा प्रदान करते हैं। इसी से 'वर' को 'नौशा' भी कहते हैं, जिसका अर्थ है—'नया बादशाह'। 'वर' घोड़े पर चढ़कर, बड़े जुलूस या बरात के साथ ससुराल चलता है। क्षत्री, खत्री आदि जातियों में वर की कमर से तलवार भी लटकती रहती है। वर के पीछे, लगभग उसी की तरह सजा हुआ शहबाला होता है, जो प्रायः उसका छोटा भाई होता है।

बरात की विदाई के समय वर का परिछन होता है। महिलाएँ सूप में परिछन के विविध सामान—गोबर, भात की पिलँडी, घी का दीया, कच्चा पान, कसैली, अक्षत, दूब, दही, रोली आदि—लिये रहती हैं। सुहागिन महिलाएँ क्रमशः वर के माथे पर अक्षत, दही और रोली का तिलक लगाती हैं, पान से गाल सेंकती हैं, गोबर और भात की पिलँडी निहुँछकर फेंकती हैं और उसे पान के बीड़े में खिलाती हैं। इस अवसर पर महिलाएँ बड़े आनन्द और उत्साह से गीत गाती हैं।

क्रमशः बरात आगे बढ़ती है और महिलाएँ बरात के पीछे-पीछे गाती हुई दूर तक जाती हैं। फिर, वे लौटकर मण्डप में भी गीत गाती हैं।

डोमकछ : बरात की विदाई के बाद वर के घर में 'डोमकछ' नामक गीति-नाट्य होता है, जिसमें स्त्रियाँ नाचती, गाती और अभिनय करती हैं।

समधी-मिलाप और बरात का स्वागत : कन्यापक्ष के लोग बरात के द्वार तक जाने से पहले बीच में ही बरात का स्वागत करते हैं। दोनों समधी एक दूसरे के गले लगते हैं।

बरात का द्वार लगना : सौन्दर्य-मण्डित, राजसी शृंगार से पूर्ण, घोड़े या मोटर या पालकी पर सवार वर जब लम्बी बरात और बाजे के साथ कन्या के द्वार पर पहुँचता है, तब वहाँ आनन्द और उल्लास का सागर उमड़ पड़ता है। जोर-जोर से बजते हुए रंग-बिरंगे बाजों के बीच में महिलाओं का मृदुल गान बड़ा मोहक प्रतीत होता है।

इस समय कन्या के द्वार पर वर-परिछन होता है। कन्या को बहनोई या फूफा गोद में उठाकर लाता है और वह वर के पैर छूती है। आजकल कन्या स्वयं चलकर आती है और वर को जयमाल पहनाती है। तब वर को बैठाकर विधिवत् वर-पूजा होती है। फिर, वर और वरात के सभी लोग जनमासे लौट जाते हैं।

धूँआ-पानी भेजना : दो दाइयाँ दो घड़े में शरबत-पानी एक ही पीले कपड़े से ढककर जनमासे ले जाती हैं। ये लोग समधियो पर पीला पानी भी छिड़कती हैं। इन लोगों को समधी यथाशक्ति इनाम देकर लौटाते हैं।

समधी का निमन्त्रण (अंग्या) लेकर जनमासे जाना : फिर, लड़की का पिता लोटे मे पानी लेकर जनमासे जाता है और लोटा समधी के हाथ में देता है। लड़के का बाप उसमे जितनी रकम डालता है, उसमे तीन हिस्सा और जोड़कर लड़की का पिता उसे देता है। इसके बाद सभी बराती कन्या के घर भोजन करने जाते हैं।

गुरहत्थी : इसके बाद वैवाहिक कार्यक्रम गुरहत्थी से आरम्भ होता है। इस विधि में वर का बड़ा भाई मण्डप में आकर कन्या को वस्त्राभूपण देता है। इस अवसर पर महिलाएँ उसे गीतो में खूब गालियाँ सुनाती हैं।

वर का मण्डप में आगमन : गुरहत्थी के बाद वर मण्डप में आता है। उसका मण्डप में परिछन होता है। फिर, उसे कन्या-पक्ष से कपड़े दिये जाते हैं, जिन्हे वह मण्डप में ही पहनता है। कन्या वरपक्ष से दिये गये वस्त्राभूषण धारण करके मण्डप में आती है। पहले वह पिता के पास बैठती है। वर विवाह के लिए दिये गये आसन पर बैठता है।

कन्यादान : अब कन्या का पिता 'कन्यादान' करता है। घर में बैठी कन्या की माँ के हाथ मे एक लाल डोरी मण्डप से दी जाती है। इस डोरी का दूसरा छोर पिता के हाथ मे होता है। इस प्रकार, माता-पिता दोनो मिलकर कन्यादान करते हैं। कन्या का पिता कन्या का हाथ अपने हाथ में ले लेता है। पण्डितजी मन्त्रोच्चार के साथ 'दान' की विधि सम्पन्न कराते हैं। इस समय सभी परिजन कन्या को रुपये देते हैं। 'कन्यादान' के समय गाये जानेवाले गीत बड़े कारुणिक एवं मर्मस्पर्शी होते हैं। इसके बाद समधी-मिलाप होता है।

गँठबन्धन : कन्यादान के बाद कन्या वर की बगल में बैठाई जाती है और उसका वर से गँठबन्धन होता है। इसके बाद, वैवाहिक कार्यक्रम आरम्भ होता है। विवाह के समय कन्या के सिर पर 'पटमौर' (छोटा मोर) और वर के सिर पर 'मौर' होता है।

लावा-छिंटाई : लड़की का भाई सुपली में लावा रखकर मण्डप मे लावा छींटने की विधि सम्पन्न कराता है। इस समय बड़े कारुणिक गीत होते हैं।

भाँवर : लड़की का भाई दुल्हे की गरदन मे गमछा बाँधकर उससे मण्डप की सात बार परिक्रमा कराता है। वर के साथ कन्या भी परिक्रमा करती है। यह 'सप्तपदी' की शास्त्रीय विधि का ही परिवर्त्तित रूप है। इस समय के गीत बड़े ही मर्मस्पर्शी होते हैं।

सेंदुरदान : 'सुमंगली' की शास्त्रीय विधि सम्पन्न होने पर 'सिन्दूरदान' की विधि होती है। इसमें वर सन से सिन्दूर उठाकर वधू की माँग में लगाता है। 'सिन्दूरदान' के बाद ही विवाह की विधि पूर्ण समझी जाती है। इस समय बड़े कारुणिक गीत गाये जाते हैं।

अठमँगरा : विवाह के बाद समधी मण्डप में प्रतीक-रूप मे धान कूटता है। इस अवसर पर समधी के नाम खूब गालियाँ गाई जाती हैं।

आशीर्वाद : सभी पुरुष और नारी आशीर्वाद-मन्त्र के साथ वर-कन्या पर अक्षत डालते हैं। इसके बाद सभी पुरुष बाहर चले जाते हैं और महिलाएँ वर-कन्या के पास चली आती हैं।

चुमावन : कन्या की माता अपना अंचल वर और कन्या के माथे पर डालकर खड़ी हो जाती है। अन्य सुहागिन महिलाएँ गान के साथ 'चुमावन' का कार्य करती हैं। चुमावन की विधि यह है कि वर-कन्या दोनों की अंजुलि अरवा चावल से भर दी जाती है। उसपर हरी दूब, हल्दी और सोना भी रख दिया जाता है। फिर, रमणियाँ चुटकी से चावल उठाती हैं और क्रमशः पैरों, घुटनो, कन्धो को स्पर्श करती हुई वर-कन्या के सिर पर उन्हें छींट देती हैं। इस समय सभी 'पँवनियों' को 'निछाउर' दिया जाता है। चुमावन का कार्य तिलक, हल्दी चढ़ाने, कोहबर मे ले जाने तथा अन्य प्रमुख विधियों के अन्त में किया जाता है।

कोहबर : अब वर-कन्या 'कोहबर' में लाये जाते हैं। कोहबर के द्वार पर सवासिनें खड़ी रहती हैं। वे 'द्वार-छेंकाई' करती हैं। वर से इनाम लेकर ही भीतर प्रवेश करने देती हैं। कोहबर की सजावट बड़ी सुन्दर होती है। इसी मे देवता की स्थापना भी की जाती है! वर-बधू 'कोहबर' में 'घर-भराई' की रस्म पूरी करते हैं। इस रस्म के समय 'वर-कन्या' से प्रश्न किये जाते हैं—'केकर घर भरऽ हऽ?' उत्तर—वर : 'सास-ससुर के।' कन्या : 'माय-बाप के।' पर, वर के घर के कोहबर में 'घर-भराई' के समय 'वर-कन्या' का उत्तर उलट जाता है। प्रश्न होता है—केकर घर भरऽ हऽ।' वर : 'माय-बाप के।' कन्या : 'सास-ससुर के।'

फिर, वर-वधू को जूआ खेलाया जाता है। एक थाली में पानी रखा जाता है। वर मोहरमाला या सिकरी लोकाता है और वधू लोकती है।

इसके बाद दोनों को मिठाई खिलाई जाती है।

कोहबर के सारे विधान वर-वधू दोनों के घर में समान रूप से किये जाते हैं।

ज्योनार : विवाह के बाद दोनों समधी जनमासे में फिर मिलते हैं। एक-दूसरे का आलिंगन करते हैं और 'पनफेरी' (पान अदल-बदलकर खाना) करते हैं। फिर, कन्या के घर में 'ज्योनार' होता है। बड़े आदर-सम्मान के साथ वरपक्ष के लोगों को भोजन कराया जाता है। महिलाएँ 'ज्योनार' के समय समधी के लिए खूब गालियाँ गाती हैं।

गौना : 'गौना' की रस्म के बाद ही कन्या ससुराल जा सकती है। पहले छोटी अवस्था में विवाह होता था, अतः विवाह के बाद केवल बरात और वर लौटते थे। कन्या

की विदाई बाद मे 'गौना' होने पर होती थी। पर, अब बड़ी अवस्था में विवाह होने पर 'गौना' की रस्म विवाह मे ही सम्पन्न कर देते हैं। गौने की रस्म बड़ी सरल है। इसमें केवल पाँच बार वर-वधू अपना आसन अदल-बदल करते हैं। 'गौना' के उपलक्ष्य में वर-वधू को नैहर-ससुराल से दूसरे कपड़े दिये जाते हैं।

बेटी-विदाई : दहेज के साथ कन्या की विदाई होती है। कन्या का भाई विदाई के समय बहन को पानी पिलाता है। इस समय के गीत बड़े करुण एवं मर्मस्पर्शी होते हैं।

चौठारी : विवाह के चार दिनों के बाद वर-वधू दोनों के घर में 'चौठारी' पूजी जाती है। इस दिन मण्डप में रखे कलसे के पानी से वर-वधू स्नान करते हैं। फिर मण्डप एवं कुलदेवताओं की पूजा होती है। तब नदी या जलाशय के तीर पर जाकर वर-वधू पूजा करते हैं।

मथचक्का : इस रस्म के साथ ही ससुर आदि ससुराल के लोग वधू को देखते हैं। वे उसे वस्त्राभूषण भी देते हैं।

दही-बड़ेरी : वधू की ससुराल में यह रस्म होती है। इसमें वर का बड़ा भाई और वधू (भहो-भैंसुर) मथनी पर रुपया तथा दही रखकर घर की 'बड़ेरी' में सटाते हैं। इसी समय भैंसुर भहो का मुँह देखता है। वह उपहार मे भहो को वस्त्राभूषण भी देता है।

दोंगा : पहली बार ससुराल जाकर लड़की अधिक दिनों तक वहाँ नही ठहरती। नये स्थान मे उसे एकाएक छोड़ना ठीक नही समझा जाता। अतः वह जल्दी नैहर चली आती है। फिर, कुछ दिनों के बाद 'पूजा-उत्सव' के साथ उसकी दुबारा विदाई होती है। इस समय भी वर-वधू को बहुत सामान दिये जाते हैं। इसे ही 'दोंगा' कहते हैं।

इसके बाद लड़की अधिकतर ससुराल रहती है। क्रमशः ससुराल ही उसका 'अपना घर' और नैहर 'पराया घर' हो जाता।

विवाह-गीत :

उपर्युक्त पंक्तियो मे अत्यन्त संक्षेप मे वैवाहिक उपविधियों या लोकाचारो का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इस सम्बन्ध में यह ध्यातव्य है कि विवाह में सम्पन्न होनेवाले प्रायः सभी लोकाचारों से सम्बद्ध गीत मिलते हैं। इसीलिए, इन गीतों का आनुष्ठानिक महत्त्व है। पर, इनके अतिरिक्त ऐसे गीतों की संख्या भी अनन्त है, जिनमे किसी देवता के जीवन-वर्णन द्वारा 'लोक-जीवन' का प्रतिनिधित्व है, अथवा वर-वधू के प्रणय-सम्बन्धों एवं अन्य प्रसंगों का सामान्य रूप मे उल्लेख हुआ है। आनुष्ठानिक महत्त्ववाले गीत तो अनुष्ठान-विशेष के साथ अवश्य गाये जाते हैं, पर सामान्य विवाह-गीत विवाह में सभी अवसरो पर सामान्य रूप से गाये जाते हैं। 'विवाह-गीत' निम्नांकित वर्गों में रखे जा सकते हैं—
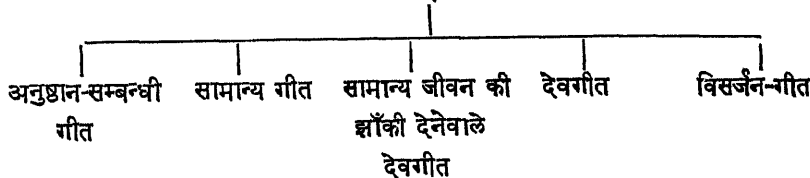
अनुष्ठान-सम्बन्धी विवाह-गीत :

अनुष्ठान-सम्बन्धी गीतों का उतना ही महत्त्व होता है, जितना किसी शास्त्रीय विधि के साथ उच्चरित होनेवाले मन्त्रों का। कारण, विविध अनुष्ठानों के अवसर पर उनसे सम्बद्ध गीतों का गाया जाना अनिवार्य होता है। इनके भी कई वर्ग हैं—

(क) प्रथम वर्ग के गीतों में प्रायः दो प्रकार के चित्र उपलब्ध होते हैं— १. अनुष्ठान-विशेष में किये जानेवाले कृत्यों एवं विधानों के उल्लेख एवं २. सामान्य पारिवारिक जीवन की झाँकियाँ। यथा—

विवाह में 'सगुन' के रूप में तिल, चावल, डण्टी-लगे पान को वरपक्ष से कन्या के यहाँ भेजे जाने की प्रथा है। इसका उल्लेख निम्नांकित गीत में हुआ है—

पहिला सगुनमा तिल चाउर हे, तबऽ टारेबो पान हे।
देहु गन दुलरइते बाबा के हाथ, सगुनमा भल हम पयलूँ हे।

सगुन पाने के बाद कन्या का पिता वर को अपने घर आमन्त्रित करता है। नदी में बाढ़ आई है। दामाद आने से मजबूर है। वह रो-रोकर ससुर को चिट्ठी भेजता है—

कानी कानी चिठिया लिखथिन दुलरइते बाबू,
अहे भाँमर नदिया अइलइ तूफान हे।

फिर, वह छोटी बहन से पूजा करके 'नदी' को मनाने की प्रार्थना करता है। बहन 'नदी' से 'मानता' मानती है—

पुजबो में भाँवर नदिया, सेनुरे-पिठार,
अहे भइया-भउजी के उतरे देहु पार हे।

इस प्रकार, एक ही गीत में विधान-विशेष का उल्लेख भी हुआ है और मानवीय भावनाओं की सुकोमल अभिव्यक्ति भी। ऐसे अनेक उदाहरण हैं। मण्डपाच्छादन के समय एक गीत गाया जाता है, जिसमें 'मण्डप' के महत्त्व के वर्णन के साथ पति-पत्नी के सम्बन्धों का भी विश्लेषण होता है। कन्या अपने पिता से कहती है—

कहमाँहि दुभिया जनम गेलइ जी बाबू जी,
कहमाँहि पसरल डाढ़ हे।

'बाबू जी! दूब कहाँ जन्म लेती है और उसकी टहनियाँ कहाँ फैलती हैं।' इसी प्रकार, मैंने जन्म लिया कहाँ— तुम्हारे घर और विकसना तथा फूलना-फलना है दूसरे के घर।

पिता का उत्तर है—

दुअराहिं दुभिया जनम गेलउ गे बेटी,
मँड़वा पसरल डाढ़ हे।

'बेटी! मेरे द्वार पर ही दूब जनमी थी, पर मण्डप में उसकी टहनियाँ फैली और विकसित हुईं।' अर्थात्, तुम जनमी तो थी मेरे घर में ही, पर मण्डप में ही तुम्हें पति को सौंपा गया है। पति के साथ ही तुम्हें विकसित और फलवती होना है।

उसका पति काला है, पर उसका रंग 'स्वर्ण' के समान है। वह कहती है—पिता जी! तुमने ठीक ही 'मण्डप'-जैसे उपयुक्त स्थान में विकसित और फलवती होने के लिए मुझे

पति को सौपा। पर मुझ-सी सुन्दरी को 'काले-कलूटे' के हाथ क्यो सौपा—

सोनमा ऐसन धिया हारलऽ जी बाबा,
कार-कोयिलवा हथुन दमाद हे।

वस्तुतः, कन्या सुन्दर वर चाहती है—'कन्या वरयते रूपम्।' पर, पिता का उत्तर है—'बेटी! वर का मूल्यांकन गुण और समृद्धि से होता है, न कि रूप से। भगवान् राम भी तो काले थे।'

कारहिं कार जनि घोसहुँ गे बेटी,
कार अजोधेया सिरी राम हे।[1]
कार के छतिया चननमा सोभइ गे बेटी,
तिलक सोभइ लिलार हे।
मथवा में सोभइ चकमक पगड़िया,
गलवा सोभइ मोतीहार हे।

कहने की अपेक्षा नहीं कि विवाह के प्रसंग पर पिता-पुत्री में ऐसे मुखर संवाद नहीं होते। इस वर्णन में उनकी भावनाओं को ही अभिव्यक्ति दी गई है। इस प्रकार, इस वर्ग के अन्तर्गत आनेवाले गीतों मे अनुष्ठान-विशेष में किये जानेवाले कृत्यों एवं विधानों के साथ विशद रूप में पारिवारिक जीवन की भी अभिव्यक्तियाँ मिलती हैं। उदाहरणार्थ, कहीं माता-पिता का कन्या के लिए मोह दिखाई पड़ता है, कहीं वर-कन्या के हृदय में विवाह की उत्कण्ठा दिखाई पड़ती है, कहीं अनुकूल पति पाने के कारण कन्या के हृदय में हर्ष और प्रतिकूल वर पाने पर विषाद दिखाई पड़ता है, कहीं जोग, टोने और टोटके के भाव चित्रित मिलते है।

(ख) दूसरे वर्ग के गीतों में केवल अनुष्ठान-विशेष का ही उल्लेख होता है, पारिवारिक जीवन के किसी विशेष पक्ष की झाँकी नही मिलती। यथा—

मण्डपाच्छादन के दिन 'हल्दी चढ़ाने' की विधि होती है। इस विधि से सम्बद्ध निम्नाकित गीत में कहीं पारिवारिक जीवन की व्यंजना नही है—

कहमाँहि हरदी जलम ले ले, कहमाँहि ले ले बसेर,
हरदिया मन भावे॥
कुरखेत हरदी जलम ले ले, मड़वा में लेलक बसेर,
हरदिया मन भावे॥
पहिले चढ़ावे बराम्हन लोग, तब चढ़ावे सभलोग,
हरदिया मन भावे।

उबटन-सम्बन्धी गीत भी ऐसा ही है—

राई सरसों के तेल अउरो फुलेल, सो बेटा बइठल हे उबटन।
दादी सोहागिन, हाथ कँगना डोलाय, लुलुहा घुमाय, नयना मिलाय।
सो बेटा बइठल हे उबटन।

---

१. तुलनीय : रउरा चुकलीं एं बाबा हमरी बेरिया, हमरा करियवा बर आवे।
सांवर सांवर जनि कहु बेटी, सांवर कृष्ण कन्हाइ हो :
—भो० ग्रा० गीत, पृ० १६१।

(ग) तीसरे वर्ग मे वे अनुष्ठान-गीत आते हैं, जो टोने-टोटके के रूप मे गाये जाते हैं। यथा—

विवाह के पूर्व वर-कन्या को अपने-अपने घर में नहलाया जाता है। इस अवसर पर उन्हें बुरी नजर से बचाने के लिए विशेष प्रकार के टोने-टोटके किये जाते हैं। इनका उल्लेख निम्नांकित गीत मे मिलता है—

राइ जमाइन दादी निहूछे, देखियो रे कोई नजरी न लागे।
राइ जमाइन मइया निहूछे, सँभारियो रे कोई नजरी न लागे।

'कन्या' के घर में 'जोग' गाये जाते हैं। इनका उद्देश्य यही होता है कि वधू के प्रति वर का आकर्षण सदा बना रहे। यथा—

एक बहन अपने भाई से 'जोग' की जड़ी लाने की प्रार्थना करती है और भाई बड़े प्रयत्न से पर्वत से 'जड़ी' ला भी देता है—

लेहऽ दुलरइता भइया कँधवा कोदरिया,
परबत से जड़ी ला देहु भइया।
तोड़िए काटिए भइया बान्हलन मोटरिया,
लऽ न दुलरइतिन बहिनी जोग के जड़िया।

जड़ी पाकर बहन फूली नहीं समाती। कारण इसे पिलाकर वह अपने प्रियतम को सदा वश में रखेगी। वह बड़े यत्न से जड़ी पीसती है और पति को पिलाने जाती है—

पिसिए कुटिए बहिनी भरल कटोरिया,
पीअ न दुलरइता दुल्हा जोग के जड़िया।

पति प्यार से उत्तर देता है—

हम न पीबो सुघइ, जोग के जड़िया,
हम भागी जयबो, बाबा के पासे।

कितनी सुन्दर व्यंजना है! पति के कहने का अभिप्राय है कि जोग की जड़ी पीकर मैं तुम्हारे मोह में क्यों पड़ूँ। मैं बाबा के पास भाग जाऊँगा। यहाँ 'सुघइ' (सुगृहिणी, सुग्गी) में पत्नी के प्रति प्रेम व्यंजित है।

(घ) चौथे वर्ग में वे अनुष्ठान-गीत आते हैं, जिनमें कहीं अनुष्ठान-विशेष की क्रियाओं का उल्लेख नहीं है, पर उत्कृष्ट मानवीय भावनाओं का निरूपण मिलता है। यथा—

'इमली-घोंटाई' की विधि 'नेछुआ' के समय सम्पन्न होती है। इसमें कन्या का मामा आकर इमली घोंटाता है और उपहार देता है। अग्रांकित गीत इसी अवसर पर गाया जाता है, यद्यपि 'इमली-घोंटाई' की क्रिया का इसमें कहीं उल्लेख नहीं हुआ है। इसमें वर या कन्या की माता भाई के न आने से उदास दिखाई पड़ती है। वह क्रोध में फटी गुदरी पहने बैठी है और 'काले भँवरे' को निमन्त्रण देने के लिए भेजती है। पर, भाई के आगमन और उसके आग्रह पर क्रोध का त्याग करती है, नवीन वस्त्राभूषण धारण करती है

और भाई को उचित सम्मान भी देती है।[1] वह भँवरे को निमन्त्रण देने के लिए भेजती है—

अरे रे काला भँवरवा, तू नेवति ला नैहर मोरा हे।
किए ले नेवतवइ नैहरवा, किए ले ससुर लोग हे।
लौंग लेइ नेवतिहे नैहरवा, कसइली ले ससुर लोग हे।

---

१. राजस्थान में भी जिस स्त्री के बच्चे का विवाह होता है, उसके पीहर से भाई सामान लेकर आता है। मगह में 'इमली-घोंटाई' के अवसर पर बहन भाई की प्रतीक्षा करती दिखाई पड़ती है, राजस्थान में 'भात' के अवसर पर। यह एक वैवाहिक प्रथा है, जिसमें वर या कन्या का मामा उपहार के साथ आता है। एक स्त्री के नैहर से भाई नहीं आया है, अतः वह निमन्त्रण भेजती है—

उड वायसडा म्हारा पीयर जा। नूँत पीयर रा भातवी जे।
भल नूँति रे म्हारा कान्ह कँवर सा बीर। सौरा भतीजा भावजाँ जे।

निमन्त्रण पर भी भाई नहीं पहुँचा। उसे ससुराल से ताने मिल रहे हैं—तूँ भाई का गुमान छोड़ दे, वह कंजूस है—

......देवर मोसो बोलियो जे।
करती ए भावज वीराँ रो गुमान, थारा वीर बतीसा भावज ले रह्या जे।

पर, अन्त में भाई बहुत साज-सामान के साथ आया। बहन ने रो-रोकर उपालम्भ दिये—

कै थारे रे बीरा जलमी छे धीव ? के बड़ गोतण भावज बरजिया जे ?

भाई ने कहा—'न मुझे बेटी जनमी थी, और न तेरी भाभी ने आने को मना किया था। मुझे तेरे लिए सामान खरीदने में देर लगी—

हम घर ए बाई जलम्यो छै पूत, रकी ए बधावा हो रह्या जे।
गया छा ए बाई मारतिया हाट, थाँने भारत बाई मोलवा जे।

फिर, भाई ने बहन के कथनानुसार उसके ससुरालवालों को वस्त्र-द्रव्यादि से सन्तुष्ट किया। बहन की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा।

—राजस्थानी लोकगीत, ६६-६७।

(ख) 'भात माँगने' की प्रथा व्रज में भी प्रचलित है। इस आशय का एक बड़ा मार्मिक गीत व्रज मे मिलता है। यथा—

एक बहन नैहर 'भात न्योतने' जाती है। उसका अपना भाई जीवित नही है। अतः, वह अन्य फुफेरे-चचेरे भाइयों को न्योतती है, पर वे निमन्त्रण स्वीकार नही करते। उनका कहना है—अपने भाई को खोज ले—

भेना हम तौ री अपनी के वीर, अपनौ भैया कौ जायौ ढूँढ़ि ले।

निराश बहन अपने भाई को ढूँढ़ती श्मशान पहुँचती है। वहाँ वह महुए के पेड़ को न्योतती है, जिसपर उसके भाई प्रेत-योनि में रहते हैं। वे उसका निमन्त्रण स्वीकार कर आने का वचन देते है—

जाम्रो बहिनि घर आपने, औरू हम लामें तिहारें भातु।

बहन बेसब्री से प्रतीक्षा कर रही थी कि पूरे साज-सामान के साथ प्रेत-भाई पहुँचा—

और लै पहुँचे ब्वाई बेस, और बहना देखति बाट।

उसके भाई ने सबको 'भात' पहनाया।

भाई ने बहन को मना किया था कि महुए की पोटली मत डालना। पर, किसी ईर्ष्यालु ने

इसी बीच भाई आ पहुँचता है। आनन्द-उल्लास एवं मोद में भरी वह भाई के स्वागत-सम्मान की बातें सोचती है। भाई को वह भूमि में नहीं 'आँचल' में बैठाना चाहती है, दूध-मीठा खिलाना चाहती है और लौटते समय घोड़ा देना चाहती है, जिस-पर आनन्द तथा उल्लास से चढ़कर उसका भाई अपने घर जा सके। नैहर से आये सेवक आदि को भी वह उचित सम्मान देना चाहती है—

मँड़वे उत्तरबइ महरिया, अँचरे बीरन भइया हे।
दाल-भात खैतइ बोझियवा, दूध खाँड़ बीरन भइया हे।
दान से समोधबइ बोझियवा, त चढ़ने के घोड़वा बीरन भइया हे।
हँसइत जयतइ बोझियवा, कुरचइत बीरन भइया हे।

भाई के न आने के दुःख में वह फटी गुदरी पहने थी। अब भाई साग्रह नवीन वस्त्रों को धारण करने के लिए कहता है —

खोलि देहु बहिनी गुदरिया, तूँ पेन्हिलऽ चुनरी मोरा हे।
छोड़ि देहु मन के कुरोध, तूँ भइया से मिलन करू हे।

भाई के इस स्नेह भरे मिलन के निमन्त्रण में कैसी मंगलमय प्रेम की व्यंजना है। इस गीत में 'इमली-घोटाई' की विधि का कहीं उल्लेख नहीं हुआ है, पर भाई-बहन के उज्ज्वल और पावन प्रेम का परिचय अवश्य मिलता है।

वर और कन्या के घर में विवाह के अवसर पर होनेवाले अनेक अनुष्ठान समान होते हैं। पर जहाँ अनुष्ठान-सम्बन्धी भेद हैं, वहाँ गीतों में भी भेद हो जाते हैं। यथा—

(ङ) कन्या के घर में गाये जानेवाले अनुष्ठान गीत—इन गीतों में आनन्द और उल्लास के साथ करुण भावनाएँ भी भरी दिखाई देती हैं। एक ओर कन्या के विवाह की समस्या से मुक्ति पाने के कारण हर्ष दिखाई पड़ता है, दूसरी ओर उसके बिछोह की वेदना और दुःख के दर्शन होते हैं।
यथा :

कन्यादान का निम्नांकित गीत करुणरस से ओतप्रोत है —

मँड़वा बइठल बाबा दुलरइता बाबा, चकमक मानिक दीप हे।
कनेयादान के अवसर आयल, बराम्हन कयल हँकार हे।
झाँपि झूँपि लेलन भइया, दुलरइतिन मइया हे।
दुलरइतिन बेटिया बइठलन, बाबा केर जाँघ हे।

भेद जानकर महुए की पोटली डाल दी, जिसमें वह समा गया। बहन देखती रह गई। रहस्य खुल गया। सबने उसे ताने देने आरम्भ किये—

भैया और जिठानी बोलें बोलने, सौति भुतु पहरायो तोग मातु।

—अ० लो० सा० अ०, पृ० १९०-१९३।

अन्य भारतीय भाषाओं में भी सगे भाई-बहनों के नैसर्गिक प्रेम का परिचय देनेवाले गीत वर्तमान है। बहन, भाई और नैहर के लिए कभी ममत्व नहीं छोड़ पाती। व्रज के गीत में सुख के रूपावरण में दारुण दुःख समाया है, पर बहन के लिए भाई का कितना मूल्य है, यह प्रकट हो जाता है।

अब पिता, ब्राह्मण और सभी परिजन 'कन्यादान' की व्यथा से करुण हो उठते हैं—

कुसवा ले काँपथि बेटी के बाबू, कइसे करब कनेयादान हे।

पर, लोगों की सलाह है कि हृदय का मोहभंग करना चाहिए। कुएँ का खुदवाना और बेटी का जनमाना पराये के लिए ही होता है। इनसे जितनी जल्दी मुक्ति मिले, भला है—

तोड़ि देहु, तोड़ि देहु करहु बियहवा, तोड़ि देहु जिया जंजाल हे।
कुइयाँ खनउली आउ बेटी बियाहली, तनिको न करहु विचार हे॥

पर, कन्यादान कराते हुए तो ब्राह्मण भी काँप रहे हैं, अन्य परिजनों का क्या कहना—

बेद भनइते बराम्हन काँपल, काँपि गेल कुल परिवार हे।
हमर धियवा पराय घर जयतन, अब भेल पर केर आस हे॥

सिन्दूर-दान के पूर्व अग्निकुण्ड के पास कन्या का भाई धान या धान का लावा बहन के हाथ में देता है, जिन्हें वह अपने पति के हाथ में गिरा देती है और वह बिखेर देता है। इस अवसर का गीत बड़ा कारुणिक है—

लावा न छींटऽ कउन भइया, बहिनी तोहार हे।
अंगुठा न धरऽहु कउन दुल्हा, सुगइ तोहार हे॥

'लावा छींटने' की लौकिक विधि में गम्भीर अर्थ भरा दिखाई देता है। सम्भवतः, भाई बहन की अंजलि धान से कई बार इस भाव से भरता है कि पिता के बाद इस घर में मेरा प्रभुत्व होगा। मेरे राज्य में तुम जब-जब आओगी, तुम्हारा उचित आदर-सत्कार होता रहेगा।

सिन्दूर-दान के बाद कन्या पूर्णतः पराई हो जाती है, इसलिए लौकिक विधि में इसको बहुत महत्त्व दिया जाता है। सिन्दूर-दान का दृश्य जितना कारुणिक होता है, उतना ही उससे सम्बद्ध गीत भी—

चुटकी भरी लिहलन सेनुरवा, सोहगइलवा बेसाहल हे।
दुलहा भरी देलन धानि के माँग, अब धानि आपन हे।
बाबा जे रोवथिन मँडुअवा बीचे, भइया खंभे धयले हे।
अम्मा जे रोवथिन घरे भेल अब धिया पर हाथ हे॥

कन्या रोती है—

छूटि गेल भाई से भतिजवा, आउरो घर नइहर हे।
अब हम पड़लूँ परपूता हाँथे, सेनुरदान भेल हे॥

इनके अतिरिक्त अनेक अन्य अनुष्ठान हैं, जिनका यथास्थान उल्लेख हो चुका है। कन्या के घर के सभी अनुष्ठानो में किसी स्थल पर यह विस्मृत होता हुआ नहीं देखा जाता कि कन्या पराई हो जायगी। यही 'मूल भाव' कन्या के घर में हर्ष के साथ अश्रु घोलता रहता है। यथा :

'गुरहत्थी' में लड़की का भैंसुर वस्त्राभूषण देता है। महिलाएँ भैंसुर (जेठ) से गीत में परिहास तो करती हैं, पर कन्या कितने यत्न की है, यह बताकर उसके प्रति अपनी ममता, करुणा आदि भी दरसा देती हैं—

अच्छा अच्छा कपड़ा चढ़इए रे जेठ भैंसुरा।
अच्छा अच्छा गहना चढ़इए रे जेठ भैंसुरा।
बड़ा जतन के धियवा रे जेठ भैंसुरा।

द्वार पर बरात लगती है, तो महिलाएँ गाली गाती हैं। पर, इन गालियो के बीच भी यही शिकायत दिखाई पड़ती है कि 'वर' हमारी सुन्दर, सुकोमल कन्या-योग्य नहीं और न बरात हमारे घर के योग्य है—

हम त मँगली आजन बाजन, सिंघा काहे लाया रे।
थूक तेरे दाढ़ी में, बन्दूक काहे लाया रे।
हम त मँगली गोरा-गोरा काला काहे लाया रे।
हम तो मँगली छैला दुल्हा बुढ़वा काहे लाया रे॥

(च) केवल वर के घर में गाये जानेवाले आनुष्ठानिक गीत—वर के घर में गाये जानेवाले सभी आनुष्ठानिक गीतों में आनन्द, उत्साह, गर्व आदि के भाव परिलक्षित होते हैं। हास, विनोद एवं शृंगार के प्रसंगों को इन गीतो में बहुत प्राश्रय दिया जाता है। कहीं भी वेदना, करुणा आदि दुःखात्मक भावों की छाया नहीं दिखाई देती है। घर में एक नई उपलब्धि होनेवाली है, एक नया व्यक्ति इस परिवार का सदस्य बननेवाला है। यह भाव सबको उल्लसित करता रहता है। यथा :

'तिलक' में वरपक्ष की महिलाओ का कन्यापक्ष पर उपालम्भ द्रष्टव्य है—

दमड़ी दोकड़ा के पान कसैली,
बाबू लछ रुपइया के दुलहा, बराम्हन ठगि लेलन।
बाबू लछ रुपइया के दुलहा, ससुर ठगि लेलन॥

इस उपालम्भ में सत्य का अंश वर्त्तमान है। वरपक्षवाले कन्यापक्ष से अधिक-से-अधिक धन पाकर भी सन्तुष्ट नहीं होते।

वर के 'मौर' की एवं 'रूप' की प्रशंसा आनन्दोल्लास से पूर्ण है—

तोहर मउरी हवऽ नव लाख के, जरा जइहऽ काँटे कुसे बच के।
नदी नाले से चलिहऽ सँभर के, जरा लाड़ो से रहिहऽ सँभर के॥

गीतों में हास्य-विनोद की फुलझड़ी तो सारे वातावरण में नवोल्लास भर देती है—

बन्ना माँगे दुलहवा बहार, बहार देऊँ सरहज।
बन्ना माँगे दुलहवा ननद के, ननद देऊँ सरहज॥
माथा में दुलहा के मउरी न हई।
बन्ना माँगे दुलहा मोती के हार, हार देउँ सरहज।

दुल्हा सरहज से बहार और ननद को माँग रहा है। इसमें विनोदपूर्ण शृंगारिक प्रसंग भरा है।

दुल्हा के घर 'टोना' के गीत बहुत गाये जाते हैं। इन गीतों का वर को किसी

की कुदृष्टि से बचाना होता है। निम्नांकित गीत में टोने के रूप में वर को लौंग के फूल का ताबीज पहनाने का उल्लेख हुआ है—

बाबा के अँगना लबंग केर गछिया,
फूल चुअए चारों कोना रे मेरो टोना।
फूल चूनि - चूनि तबीज बनैली,
बान्हू दुलरइता दुल्हा बाजू रे मेरो टोना।

वर के यहाँ गीतों में श्रृंगार-वर्णन की प्रधानता दीखती है। यथा—

टिकवा ओलरि गेल माँग से,
दुल्हा पेन्हावे हाथ से, गभरु पेन्हावे हाथ से।
अहिवात बाढ़े भाग से, सोहाग बाढ़े भाग से॥

पति द्वारा किया हुआ पत्नी का श्रृंगार अजर-अमर हो, यही मंगल-भावना इस गीत में सम्मिलित है।

सामान्य गीत :

अनेक विवाह-गीत ऐसे हैं, जो अनुष्ठानों के अतिरिक्त अन्य सभी अवसरों पर गाये जाते हैं। न इनपर अनुष्ठानो के ही अवसर पर गाये जाने का प्रतिबन्ध होता है, न दूसरे अवसरों पर गाये जाने का विरोध। वस्तुतः, ये गीत 'सगुन' के ही दिन से विवाह के दिन तक हमेशा गाये जाते हैं। इसीसे इन्हें 'सामान्य गीत' की संज्ञा दी गई है। इन गीतों की भी श्रेणियाँ हैं। यथा—(क) वे, जो वर और कन्या के घर मे सामान्य रूप से गाये जाते हैं। (ख) वे, जो केवल कन्या के घर मे गाये जाते हैं, (ग) वे, जो केवल वर के घर में गाये जाते हैं। एवं (घ) वे, जो गौना के उपलक्ष्य में गाये जाते हैं।

(क) वर और कन्या के घर में समान रूप से गाये जानेवाले गीत— इन गीतों में गार्हस्थ्य-जीवन के बहुरंगे मनोरंजक चित्र प्रस्तुत किये जाते हैं। इनमे श्रृंगार-वर्णन एवं तद्विषयक विविध मनोभावों को प्रकट करने की भावना प्रबल होती है। इन गीतों में भावों के वैविध्य के साथ ही विभिन्न शैलियों की कोमल संयोजना भी दिखाई पड़ती है। नवदम्पती के मिलन की पृष्ठभूमि, नवमिलन, हास-परिहास, आनन्द-विनोद आदि से सम्बद्ध भावनाओं को इनमे प्रमुख स्थान दिया जाता है। यथा—

केकर नदिया में झिलमिल पनिया,
केकर नदिया में चेल्हवा मछरिया,
कौन दुल्हा फेंके महाजाल हे।

निश्चित रूप से ससुरजी की नदी में कन्या-रूपी 'चेल्हवा' मछली स्वच्छन्द विचरण करती रहती है, जबकि 'वर' मल्लाह के रूप में स्नेह का महाजाल लेकर आता है और कन्या-रूपी मछली को फँसाना चाहता है। वह प्रयत्न आरम्भ करता है—

एक जाल नवले दुलरुआ, दुई जाल नवले,
तेसरा में बझि गेलऊ घोंघा सेंवार,
से फिनु बझि गेलऊ कनियाँ कुआँर।

प्रयत्न के अन्त मे उसके स्नेह-महाजाल में 'कुमारी कन्या' आ ही जाती है। पर, प्रश्न उठता है कि किस साहस पर वर इतनी जिम्मेवारी का कार्य करने चलता है—

केकरा भरोसे जे नवले दुलरुआ?
केकरा भरोसे बझाई लेले कनियाँ कुआँर?

पुरुष अपने प्रेम और सामर्थ्य के बल पर नारी पर शाश्वत अधिकार पाता है। अतः, वर का उत्तर अनुकूल ही है—

ओही जँघिया भरोसे जलवा जे नवली,
से बझि गेलइ कनियाँ कुआँर।

नदी के किनारे स्वच्छन्द विलास करते हुए नायक और नायिका यौवनसुलभ चापल्य का सच्चा प्रदर्शन करते हैं—

नदी किनारे गुल्लर के गछिया, छैला तोड़े, गोरी खाय।
छैला जे पूछे दिल के बतिया, गोरी के जिऊआ लजाय॥
जैसने चिकना पीपर के पतवा, ओयसने चिकना घीऊ।
ओयसने चिकना गोरी के जोबना, पिया के ललचई जीऊ॥

इस गीत में युवक-युवती के प्रेम-संकेत भली भाँति व्यंजित हुए हैं।

प्रथम मिलन की घड़ी नववधू के लिए बड़ी ही भय एवं उत्कण्ठा-मिश्रित होती है। इस समय उसके शरीर में भी प्रतिक्रियाएँ दिखाई पड़ने लगती हैं—

जब पिया अयलन हमर अँगनमा, घमेघम धमकऽ हइ सगर अँगनमा।
जब पिया अयलन हमर सेजरिया, थरे थरे काँपऽ हइ हमर बारी देहिया।
जब पिया भरलन हमरा के गोदिया, टपे टपे चूए लगल, हमर पसेनमा।

संयोग-श्रृंगार का कैसा सुन्दर चित्र है!

एक सुहागिन चिर सुहाग-रात की कल्पना में अति विभोर जान पड़ती है—

आज सुहाग के रात, चन्दा तुँहूँ उगिहऽ।
चन्दा तुँहूँ उगिहऽ, सुरुज मति उगिहऽ।
करिहऽ बड़ी तुँहूँ रात, मुरुग जनि बोलिहऽ।
आज सुहाग के रात, पिया मतू जइहऽ।

इस गीत में नववधू के प्रेम-पिपासु हृदय का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया गया है।

प्रथम मिलन के बाद वर-वधू में अनेक बार प्रेम-संलाप, प्रेम-कलह, मान-मनुहार आदि चलते हैं। कोहबर के गीतों में श्रृंगार के इन विविध अंगों का मनोहारी चित्र प्रस्तुत किया गया है। यथा:

वर वधू श्रान्त होकर गहरी नींद में सो गये हैं। उन्हें भोर होने का पता नहीं चलता। अकस्मात् वधू की आँखें खुल जाती हैं। वह पति को जगाती है—

उठूँ उठूँ परभु, भे गेलो बिहान, उठहूँ परभु कोहबर हे हरी।

वर को आश्चर्य हुआ कि इस बन्द अँधेरे कोहबर में उसे भोर होने का पता कैसे चला। पर, पत्नी ने कहा—

भेल फरिछ परभु कउआ डार बोले जी।
भोर माँगे मोतिया सभ परमु बदरंगे भेल।
एही से चिन्हलूँ भेल बिहान, उठहूँ हे हरी।

'प्राणप्रिय! डाल पर कौए बोल रहे हैं। माँग के मोतियों की रातवाली चमक फीकी पड़ गई है। इसी से पता चला, भोर हो गई है।' कितनी सुन्दर व्यंजना है। नवविवाहित दम्पती को भी पारिवारिक एवं सामाजिक मर्यादाएँ निबाहनी पड़ती हैं। वे सबके सोने पर रात्रि में मिलते हैं और सबके जगने के पूर्व अलग हो जाते हैं। इस विच्छेद में अजीब बेबसी रहती है।

नववधू, प्रियतम के प्रेम एवं ससुराल के परिजनों से प्राप्त स्नेह और आदर-मान में अपने आभूषण-प्रेम को भी भूल जाती है। उसे तो पति और ससुराल के परिजन ही आभूषण-से प्रतीत होते हैं। वधू पति के आभूषण दिलाने के आग्रह पर उत्तर देती है[1]—

माँगो के टिकवा परभु तूँही त हहु। देवरा हथुन मोर संखा चूड़ि हे।
चन्नरहार हथुन सासु दुलरइतिन। बाजूबन्द हथुन देओरानी हे।

---

१. राजस्थानी मे इसी आशय का एक 'बनड़ा' (विवाह-गीत) मिलता है। एक सास, वधू के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर कहती है—'प्यारी बहू! अपने गहने तो दिखा दे।' वधू का उत्तर है: 'सासजी! मेरे गहने क्या देखोगी? मेरा तो सारा परिवार ही आभूषण है'—

सासू गहणे नें काँई पूछो गहणो ओ म्हारो सो परिवार।
म्हारा ससुरा जी गढाँ रा राजवी सासू जी म्हारा रतन भंडार।
म्हारा जेठ जी बाजूबंद बाँकड़ा जेठानी म्हारी बाजूबंद री लूँब।
म्हारो देवर चुड़लो दाँत रो देराणि म्हारे चुड़ले री मजीठ।
म्हारो कँवर जी घर रो चाँदणो कुलबहू ए दिवले री जोत।
म्हारी धीय ज हाथ री मुँदड़ी जँवाई ए म्हारो चंपले रो फूल।
म्हारी नणद कसूमल काँचली नणदोइ म्हारे गजमोत्याँ रो हार।
म्हारो सायब सिर रो सेवरो सायबाणी ए म्हे तो सेजाँ रा सिणगार।

—राजस्थानी लो० गी० : श्रीसूर्यकरण पारीक, पृ० ५९–६०।

'मेरे ससुर जी गढपति है, सासजी रत्नों की खान। जेठ बाजूबन्द है, जेठानी उसके फुंदने। देवर हाथीदाँत के चूडे है, देवरानी उनमे चित्रित चित्रावली। मेरा कुँअर घर का दीपक है, वधू उसकी ज्योति। मेरी पुत्री मेरे हाथ की अंगूठी है, जँवाई चम्पक का फूल। ननद कुसुम्बी काँचली है, ननदोई गजमुक्ता का हार। मेरे स्वामी सिर का सेहरा है, मैं उनके दाम्पत्य-सुख का शृंगार हूँ। फिर, मुझे अन्य आभूषणों की क्या आवश्यकता?'

पूत मोरा हे सामी नयना के इँजोरवा। ननद हथुन नवरंग चोलि हे।
भँइसुर हथुन लिलार के बिंदुलिया। ए हो मोरा सब रंग आभरन हे।

पत्नी का कैसा शील-भरा उद्गार है !

पर, श्रृंगार की मान-मनुहार के विना शोभा नहीं होती। शील-भरे वचनों का अपना मूल्य और स्थान है। इनसे वर-वधू को हास-परिहास एवं मान-मनुहार मे बाधा नहीं पड़ती। प्रेम की वृद्धि के लिए इनका भी महत्त्वपूर्ण स्थान है।

एक पत्नी आभूषण खो जाने के कारण रूठ गई है। पति मनुहार करता है—

पाँव पड़े दुलहा मनावे रे लाड़ो, टिकवा खोजि खोजि लायम।
गंगा में देव महाजाल, जमुनमा दह डूबि डूबि लायम।
लगे देहु हाजीपुर बजार, टिकवा कीनि कीनि लायम।
जाये देहु हमरो बनीज, टिकुली रंगे रंगे लायम।
लाइ देबो नौलख हार, सेजिया चकमक रे करे।

इस मनुहार से कौन पत्नी आनन्दविभोर न होगी !

(ख) कन्या के घर में गाये जानेवाले सामान्य गीत—कन्या के घर में गाये जानेवाले सामान्य गीतों में भी आनुष्ठानिक गीतों के समान ही करुण भावधारा प्रवाहित दीख पड़ती है। माता-पिता की, कन्या के लिए वर-चुनाव की समस्या, दहेज की चिन्ता और कन्या के विछोह की वेदना आदि सभी हृदय को उद्वेलित करनेवाले हैं। इनका मार्मिक चित्रण इन गीतों में हुआ है। जिस दिन कन्या के 'लगन' का विधान समाप्त हो जाता है, उस दिन से ही कन्या के घर में हर्ष और वेदना के द्वन्द्वात्मक भाव छा जाते हैं एवं तदनुकूल ही दोनों भावों से सम्बद्ध गीत गाये जाने लगते हैं। इनमें कहीं कन्या के लिए वर खोजने में पिता की चिन्ता का वर्णन होता है, कहीं योग्य वर न मिलने के कारण माता-पिता एवं कन्या की व्यथा का चित्रण होता है। कहीं अधिक दहेज देने के कारण पिता चिन्ताग्रस्त दिखाई पड़ता है, कहीं कन्या अपने पति से दहेज लेने के कारण झगड़ा ठानती दिखाई देती है। कहीं कन्या के 'पराई' हो जाने का दुःख चित्रित होता है, कहीं ससुराल में मर्यादा के साथ कन्या को रहने की सीखें दी जाती हैं। 'गुरहत्थी', 'समधी-खिलाई' आदि के समय गाये जानेवाले गीतों में हास-परिहास और कोहबर के गीतों में श्रृंगार का चित्रण होता है, पर सर्वत्र करुण धारा प्रच्छन्न रूप से प्रवाहित होती दिखाई देती है। यथा :

एक पिता कन्या के विवाह की चिन्ता के कारण सो नहीं पाता। कन्या पिता की इस कठिनाई को समझती हुई कहती है—

जाहि घर अहो बाबा धिया हे कुमारि।
से हो कइसे सुते निहचिंत हे।[1]

---

१. अरे जाहि घरे ए बाबा धियवा कुँवारी। से कइसे सोवे निरभेद ए॥

—भो० ग्रा० गीत, पृ० १३८।

एक पिता ने अपनी सुन्दर बेटी के लिए दूर देश में कुरूप वर ढूँढ़ डाला है। उस पर भी वर की माँ सौतेली है। यह समाचार सुनकर कन्या की माँ गले में फाँसी लगाकर मरना चाहती है—

खयबो में माहुर बिरवा, लगयबो में फाँसी, एही धिया लागी।

पर, कन्या बचपन से ही अपने और भाई के बीच किये जानेवाले पारिवारिक भेद को देखती आई है। अतः, वह कलेजे पर वज्र रखकर माँ को समझाती है—

जनि खाहु माहुर बिरवा, जनि लगावहु फाँसी,
भइया के लिखल हे अम्मा बाबा चउपरिया,
हमरो लिखल हे अम्मा, जयबो दूर देसवा।[1]

और भी—

जाहि दिन हे अम्मा, भइया के जलमवाँ,
सोने छूरी कटइले नार हे।
जाहि दिन अहे अम्मा, हमरो जलमवाँ,
हँसुआ खोजइते हे अम्मा, खुरपी न भेंटे,
झिटकी कटइले मोरो नार हे।

बेटी की इस उक्ति में पुत्र-पुत्री में किये जानेवाले सामाजिक भेद पर गहरा व्यंग्य है। पर, इतना होने पर भी माता और नैहर के बिछोह के दुःख को कन्या विस्मृत नहीं कर पाती। 'जोग माँगने' के लिए कन्या भाई और भाभी के साथ वटवृक्ष के पास जाती है, तो उस समय वेदना से उसकी आँखों से आँसू झरते हैं—

जोगवा बेसाहन चलल मोर भइया रे टोनमा।
भइया चलल संगे साथ रे टोनमा।
घुरि फिरि देखथिन बेटी दुलरइतिन बेटी रे टोनमा।
अँखियन से ढरे लोर रे टोनमा।
भउजी के हाथ में सोने के सिन्होरवा रे टोनमा।
भइया हाथे तरुवार रे टोनमा।

'कन्यादान' का समय बड़ा मर्मस्पर्शी होता है। इस समय कन्या के विवाह के लिए सहे हुए सारे कष्ट एक ओर याद आते हैं, दूसरी ओर भावी कन्या-विछोह की कल्पना में न केवल परिजन रोते हैं, बल्कि कन्या के बचपन के संगी-साथी, टोला-पड़ोसी आदि सभी रोने लगते हैं—

जाहि दिन अगे बेटी, तोहरो जलम भेल, नयनमा न आयल सुखनीन हे।
नींद न आवे बेटी भूखो न आवय, तारा गिनइते भेल बिहान हे॥

---

१. हम भइया मिलि एक कोख जनमल, पियलि सोरहिया क दूध हे।
भइया के लिखइन एहो चउपरिया, हमरो लिखल परदेस हे॥
—मै० लो० गीत।

पुरुब खोजलूँ, पछिम खोजलूँ, खोजलूँ सहर बिहार हे।
एक नहिं खोजलूँ दुलरइता बाबू के डेरवा, जहाँ हलथी राजकुमार हे।

कष्ट के दिन बीत गये। अब कन्यादान की घड़ी है। पर, यह घड़ी भी सुख नहीं दे रही है—

दादा के हाथ में गेडुवा जे सोभय, दादी के हाथे कुस डाढ़ हे।
काँपन लागे बाबा कुस के गेडुअवा, काँपन लागे कुस डाढ़ हे॥

केवल दादा-दादी के हाथ के सामान ही नहीं काँप रहे हैं, गुड्डे-गुड्डियाँ, टोला-पड़ोसी सभी रो रहे हैं। हाय! वन की कोयल चली जा रही है—

आल में ताख पर गुड़िया रोवे, रोवे लागल टोलवा-पड़ोस हे।
जारे जारे रोवथि बाबा दुलरइता बाबा, बनवे के कोइल चलल जाये हे॥[1]

कन्या के पिता कन्या को लेकर जैसे जूआ खेलते हैं। जूए में सदा उनकी हार होती है—

बेटी के बाबा जुअवा खेलथि, हरिए गेलन बाबा बेटिए कुआँरी।
ना हारे बाबा सोना, ना हारे चाँदी, हरिए गेलन बाबा, बेटिए दुलारी।'[2]

कन्या के विवाह में 'दहेज' एक भयंकर समस्या है। इसी के कारण कन्या अपने पिता के घर में उचित स्थान नहीं पाती है। वरपक्ष के लोग इतने लोभी हो उठते हैं कि बहुत कुछ देने पर भी वे सन्तुष्ट नहीं हो पाते। एक कन्या को नैहर से सब कुछ मिला है, केवल सिर की कंघी छूट गई है। पर, इतने के लिए ससुराल में उसे उलाहने मिलते हैं। यह सुनकर कन्या का दादा स्तम्भित रह जाता है, वह कुछ बोल नहीं पाता—

दादा केरा अँगना, जामुन के गछिया,
सेइ तर दुलरइविन बेटी ठाढ़, से दादा न बोलइ।
अनमा जे देलऽ दादा, धनमा जे देल
मोतिया देलऽ अनमोल जी। से दादा०।
एक नहिं देलऽ दादा, सिर के कंगहिया,
सासु ननद ओलहन देत, से दादा न बोलइ।

---

1. (क) गुडिया ए घरी थारी आले-दिवाले, देख र जी अकुलावे ए।
म्हारे हरिए वनरी कोयल॥ —रा० लो० गी०, पृ० ८०-८१।
(ख) औरे रे कौरे गुड़िया ओ छोड़ी रोमत छोड़ी सहेली री।
अपने बबुल को देस छोड्यो अपने ससुर के साथ चाली।
—ब्र० लो० सा० अ०, पृ० २३३।

2. लाड़ों के बाबा जुआरा खेलिए बाकी दादी रानी पूछथि बात,
कहा रे पिया तुम हारिए ए हम नांएं मुहर पचास
हारे नांइ रुपया डेढ़ सै ए हम हारे हैं हिआर को जियरा राजकुमारी
जिन्हें ई जुआ में हारिए। —ब्र० लो० सा० अ०, पृ० १६०।

एक वर ससुराल से वांछित दहेज न पाने के कारण उदास है—

दुलहा काहे मलीन हे, काहे उदास हे।
दुलहा मलीन हे घड़िया के वास्ते। दुलहा मलीन हे सिकरी के वास्ते।[1]

इतना ही नहीं, पत्नी से प्रार्थना भी करता है—

हँसि हँसि बोलइ दुलरइता दुलहा सुनऽ धानि बचन हमार हे।
तोहर बाबा केरा सोना के अँगुठिया, सेहु दिला दऽ मोरा दहेज हे।[2]

वर की इस लोभी प्रकृति से कन्या को दुःख होता है, पर उचित अवसर के पहले वह कह भी क्या सकती है। एक कन्या कोहबर में प्रथम मिलन के लिए आये हुए पति को ही टोकती है। पति कहता है—'प्रिये, तुम्हारा मुख बहुत सुन्दर है। घूँघट हटाओ, जरा देखूँ तो।'

खोलूँ धनि खोलूँ धनि अप्पन घूँघट जी,
तोहर मुँहमा लगऽ हइ, बड़ सोहामन जी।

पत्नी का उत्तर है—'मैं तुम्हें इतनी सुन्दर लगती हूँ, तो तुमने मेरे पिता को दहेज के लिए इतना परेशान क्यों किया ?'

जब तोहरा मुँहमा लगे सोहामन जी,
काहे हमर बाबा से माँगलऽ दहेज जी।

इस कठिन प्रश्न का वर क्या जबाब दे सकता है ?

वर-पक्ष से दहेज आदि के कारण उपेक्षा के भाव सहने पर भी कन्यापक्ष से, कन्या को ससुराल मे मर्यादा के निर्वाह की सीख दी जाती है—

सींकी के बढ़निया गे बेटी, सिरहनमा लाइ गे रखिहऽ।
भोरे भिनसरवा गे बेटी, अँगनमा बाढ़ी गे लइहऽ॥
से हो बढ़नमा गे बेटी, कुरखेतवा जाइ गे बिगिहऽ।
से हू जनमतइ गे बेटी, कदम जुड़ी छहियाँ॥

वस्तुतः, कन्या के जीवन की सफलता की कुंजी है—गृहकार्य में कुशलता। पिता के घर में सुख-आराम से रही हुई कन्या भी ससुराल चलती है, तो अपने सिर पर अनेक जिम्मेदारियों का बोझ लेकर। ऐसा न करने पर कन्या दुःख पाती है। अतः, नैहर के परिजन इस सम्बन्ध में उसका उचित पथ-निर्देश करके ही भेजते हैं।

---

१. वर की माँगे—वर सोने क अँगूठी,
वर की माँगे—वर सिकड़ी माँगे,
वर सिकरी में कड़ी लगाए माँगे।
—मै० लो० गी०, पृ० १३५।

२. हँसी के जे बोले ले दुलहा, कवन दुलहा सुन सुहवा बचन हमार ए।
आरे तोहरा बाबा जी का सोने का कटोरवा। उहे दीहिते हमरा के दान ए।
—भो० ग्रा० गी०, पृ० १४२।

गृहकार्य की कुशलता के अतिरिक्त कन्या से यह भी अपेक्षा की जाती है कि वह ससुराल के लोगों को उचित आदर और स्नेह दे—

सासु के बन्दिह पाँव, जेठानी बात मानिह हे।
ननदी के करिह पिरीत, देवर कोर राखिह हे।

कन्या के घर मे गाये जानेवाले गीतो मे 'विदाई' के गीत सर्वाधिक मार्मिक एवं करुण होते हैं। ऐसा केवल मगही के गीतों के सम्बन्ध में ही नहीं कहा जा सकता, प्रायः सभी भारतीय भाषाओं में कन्या की विदाई के गीत करुण रस से ओतप्रोत होते हैं। इन गीतों में घर और टोला-पड़ोस के सभी लोग वेदना की व्यंजना करते दिखाई पड़ते हैं। यथा—

केकर रोवले गंगा बही गेल, केकर रोवले समुन्दर हे?
केकर रोवले भिंजलइ चदरिया, केकर अँखिया न लोर हे?
अम्मा के रोवले गंगा बही गेल, बाबूजी के रोवले समुन्दर हे।
भइया के रोवले भिंजले चदरिया, भउजी के अँखिया न लोर हे।
अम्मा कहे बेटी रोज-रोज अइहऽ, बाबू जी कहे छव मास हे।
भइया कहे बहिनी काज परोजन, भउजी कहलन दुरि जाउ हे।[1]

भाभी-ननद की प्रतिद्वन्द्विता सर्वविदित है। अतः, उसका इस समय शोकमग्न न होना कोई आश्चर्य की बात नहीं। पर, ऐसी भाभियों का भी अभाव नहीं है, जो ननद के प्रति सारे वैर-भाव भूलकर विदाई के समय मोह और स्नेह दिखलाती हैं—

भउजी जे बाँन्हथिन खोंइछा, अँचरा बिलमावथि हे।
आज भवन मोरा सूना भेल, ननद भेलन पाहुन हे।

जैसे-जैसे बेटी की विदाई के दिन निकट आते हैं, माता-पिता का हृदय विदीर्ण होने लगता है। उनकी मूक वेदना आँसुओं में प्रकट होने लगती है—

---

१. मिथिला में बेटी की विदाई के अवसर पर एक विशिष्ट शैली के गीत गाये जाते है। इन्हे 'समदाऊनि' कहते हैं। मगध में भी इस अवसर पर गाये जानेवाले गीतों को कहीं-कही 'समदाऊनि' ही कहते है। मिथिला में गाये जानेवाले इन गीतो का मगही से अद्भुत सादृश्य है—

बाबा क कनले में नग्र लोग कानल, अमा क कनल दहलल भुइँ हे।
भइया निरबुधिया क आंगी-टोपी भींजल, भउजी के हृदय कठोर हे।
बाबा कहथि नित्य बोलायब, भइया कहथि छौ मास हे।
अमा कहथि एतहि भए रह, भउजी कहथि दुर जाउ हे।
—मै० लो० गी०, पृ० १८०-१८१।

भोजपुरी में भी इनसे मिलती-जुलती पंक्तियाँ है—

बाबा के रोवले गंगा बढ़ि आइली, आमा के रोवले अन्हार ए आरे।
भइया के रोवे चरन धोती भीजें, भउजी नयनवों न लोर।
आमा कहेली बेटी निति उठि आवऽ बाबा कहेले छव मास।
भइया कहेले बहिना काल्हे परोजन, भउजी कहेली दुर जाव।
—भो० ग्रा० गी०, पृ० १९४।

गउनमा के दिनमा धरायल, गउना नगिचायल हे।
बाबू के फटलइ करेजवा, रे जैसे भादो काँकड़।
मइया के ढरे नयना लोर, रे जैसे भादो ओरी चुए।[1]

बेटी 'वन' की कोयल के समान है। 'वन' की शोभा 'कोयल' के मधुर स्वर से होती है। उसके चले जाने पर वह सूना और उदास प्रतीत होता है। कन्या के रहने से पिता का भी घर शोभता है। वह उसके मृदुल स्वर से सदा गुंजरित होता रहता है। पर, उसके चले जाने पर सब घर सूना प्रतीत होता है। ऐसे समय सभी लोग रोते दिखाई पड़ते हैं। यहाँतक कि अचेतन वस्तुएँ भी शोक की व्यंजना करती दिखाई पड़ती हैं—

बनमा के कोयल चलल जाय हे
जारे-जारे रोवथि बाबा दुलरइता बाबा
मइया के नयनमा सुखइ न लोर हे॥ बनमा०॥
करेजा फाड़ि फाड़ि दादा रोवथि,
दादा के नयनमा सुखइ न लोर हे॥ बनमा०॥
डँड़िया धरि धरि भइया रोवथि,
भउजी कहई भेल घरवा सून हे॥ बनमा०॥
लटवा छिटकाइ के सखियन रोवथि,
होइ गेलन सखिया पराइ हे॥ बनमा०॥
आल में ताख में गुड़ियन रोवथि,
रोवथि सभे टोला परोस हे॥ बनमा०॥
बनमा के कोयल चलल जाय हे।[2]

---

१. (क) फटि फटि रे मेरे हिया बज्जर के, धीअरि जमैया तो गायौ।
घहरी रित्यौ, अँगना रित्यौ, मेरो सब दुख रिति गायौ पेटु।
मैं हा फिर नहिं जननुंगी धीअ मेरी धीअरि जमैया लै गयौ।
—ब्र० लो० सा० अ०, पृ० २२३।

(ख) गैया जँ हुँकरय दुहान केर बेर, बेटी, क माए हुँकारए रसोइया केर बेर।
बेटी क माए हुँकारए रसोइया केर बेर।
गैया के बँधितो में खुटा हे लगाय,
बछिया के लेल जाइए भागल जमाय।
—मै० लो० गीत, पृ० १७३-७४।

२. पुत्री की विदाई के गीत को राजस्थान मे 'ओळ्यूँ' कहते है। इसका शब्दार्थ है– 'प्रिय की स्मृति'। इस श्रेणी के गीतो मे करुण रस भरा रहता है—

हरिए वन री कोयली।
थारे बाबो सा' बाग लगायो ए बनड़ी, थारे बिन कुण सींचेगो।
थारे बागाँ में फुलड़ा फूल्या ए बनड़ी, थारे बिन कुण तोड़ेगो।
थारे बागाँ में हीड़ों घाल्यो ए बनड़ी, थारे बिन कुण हींडेगो।

इस गीत में कितनी वेदना एवं भावुकता संचित है, कहने की अपेक्षा नहीं।

कन्या की विदाई के समय सभी परिजन एवं प्रियजन तो शोकातुर रहते ही हैं, कन्या भी कम शोक-विह्वल नहीं रहती। वह अपरिचित स्थान में अनजान लोगों के बीच जाने में घबराहट का अनुभव करती है, साथ ही अपने प्रियजनों के विछोह का दुःख भी अनुभव करती है। इन सारे दुःखो के मूल मे वह 'सिन्दूर' को देखती है, जिसके पति द्वारा माँग में लगाये जाने के साथ ही वह पराई घोषित कर दी जाती है—

सेनुरा सेनुरा जे हम कयलूँ, सेनुरा त काल भेल हे।
सेनुरा से पड़लूँ घर साजन, नइहर मोर छूटल हे।
छुटि गेल भाई से भतिजवा, आउरो घर नइहर हे।
अब हम पड़लूँ परपूता हाँथे, सेनुरदान भेल हे॥

डोली चल पड़ी है। पर, कन्या के हृदय से 'नैहर' का मोह नही छूटता। वह पति से आग्रह करती है—

गोड़ लागों पइयाँ परों, अजी सइयाँ ठाकुर हे।
बाबा के पोखरवा डाँड़ि बिलमाहु, अम्मा से भेंट करम हे।

ससुराल के अनजान लोगों के बीच उसे समझ नहीं आता कि किस प्रकार वह समय काटेगी। अतः, पति से पूछती है—

केकरा संगे उठबइ हे, केकरा संगे बैठबइ, केकरा ठेहुनिया लगाई देब?

पति का उत्तर है—

दीदी संगे उठिह हे, भउजी संगे बैठिह, मइया ठेहुनिया लगाइ देबो।

अपने घर के परिजनों की शरण में रहने की सलाह देकर पति अपनी नववधू को सान्त्वना देता है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कन्या के घर में गाये जानेवाले गीत विशेष रूप से संवेदनाप्रवण एवं मार्मिक भावो से ओतप्रोत होते हैं।

आँगणिये माय थारो रोवत भतीजो, थारे बिन कूण खेलावेगो।
गुडिया ए धरी थारी आळे-दिवाळे, देख र जी अकुळावेए।
संग री सहेल्याँ थारी घर नहिं झाँके, वै देख दूराँ सै ही जावे ए।
थारी माता को हिवड़ो, ऊझकै, बा तो नैणां नीर बहावै ए।
म्हारे हरिए बन री कोयल।

ओह रे वन की कोयल। तेरे पिता ने सुन्दर बाग लगाया है, उसे तेरे विना कौन सींचेगा? तेरे बाग में फूल खिले है, उन्हें कौन तोड़ेगा? तेरे बाग में झूला पड़ा है, उसपर कौन झूलेगा? घर के आँगन में तेरा भतीजा रोता है, उसे कौन खिलायगा? तेरे घर में इधर-उधर गुड़िया पड़ी है, उन्हे देखकर जी अकुलाता है। तेरी सहेलियाँ इस घर में झाँकती नही, दूर से ही चली जाती हैं। तेरी माता का हृदय तो और भी सूना पड़ा है, वह रात-दिन आँखों से आँसू बहाती है—

ओ मेरे हरे उपवन की कोयलिया।

—रा० लो० : श्रीसूर्यंकरण पारीक, पृ० ८०-८१।

(ग) **वर के घर में गाये जानेवाले सामान्य गीत**—वरपक्ष के गीतों में संयोग-श्रृंगार, हास-परिहास, आनन्द-उछाह आदि के प्रसंगों की सुन्दरतम अभिव्यक्ति मिलती है। इनमें करुण भावों की कहीं छाया भी नही दिखाई पड़ती। कारण वरपक्ष अनेक नवीन उपलब्धियों के उल्लास से भरपूर रहता है। विवाह में केवल वधू नहीं मिलती, उसके साथ धन-दौलत एवं जीवन की सुख-सुविधाओं के अन्य सामान भी मिलते हैं। इससे वरपक्ष गर्व एवं आत्मप्रशंसा के भावों से भरा रहता है। इनकी छाया सभी गीतों में दिखाई देती है। उदाहरणार्थ, 'बन्ना', 'सहाना', सेहरा' आदि के गीतों में लड़के के अंगों, मौर, बरात की सजावट आदि के प्रशंसापूर्ण वर्णन रहते हैं। इनमें हास्य-विनोद की भी अच्छी योजना रहती है। निम्नांकित 'सहाना' गीतों में वर के 'मौर' की विविध रूपों मे प्रशंसा की गई है—

बाबू के मौरिया में लगलइ अनारकलिया,
अनारकलिया हे, गुलाबझरिया,
बाबू धीरे-धीरे चलिह ससुर गलिया।

× ×

हरियर मड़वा धयले मउरिया सम्हारई बंदे।
मउरी के झोंक मजेदार, झमाझम रे बंदे॥
दुलहा के मउरी से छूटल पसेनमा बंदे।
दुल्हिन के चाकर दाँवन से पोछे पसेना बंदे॥

'सहाना' का अभिप्राय है 'शाही गीत'। इसी शब्द से 'शहनाई' भी बनता है, जिससे शाही बाजे का बोध होता है। सहाना और शहनाई का व्यवहार वस्तुतः ब्याह के अवसर पर ही होता है।

'सेहरा' के गीतो में लड़के की मौरी पहनने की आकांक्षा एवं मौर की शोभा का वर्णन होता है। 'सेहरा' का अर्थ ही होता है, वह मौर-विशेष, जो फूलों या गोटे की लड़ियों से गूँथकर बनाया जाता है और जिसकी लड़ियाँ मुँह के आगे झूलती रहती हैं। पर, आजकल सभी मौरों को 'सेहरा' ही कहा जाता है। उदाहरणार्थ, एक मगही 'सेहरा गीत' प्रस्तुत है। इसमें एक लड़का नदी-किनारे की हरी-हरी दूब चरनेवाली 'सोरही' गाय का दूध पीकर युवक हो गया है। फलतः, उसकी 'सेहरा' पहनने की, अर्थात् ब्याह करने की इच्छा हो गई है, वह पिता के सामने व्यक्त करता है—

वर—सोने के सेहला गढ़ा दऽ मोर बाबा।
आउर जड़ा दऽ हीरालाल जी॥
पिता—सोने के सेहला बाबू मरमो न जानूँ।
कइसे जड़ायब हीरालाल जी।
तोहरो ससुर जी के साँकर गलिया,
झरि जयतो सेहला के फूल जी।

वर—आगे-आगे जयतन बाबा जी साहेब,
सेकर पीछे दादा सोहागिन जी,
जेकर पीछे जैतन छोटकी बहिनिया,
चुनि लेतन सेहला के फूल जी।

एक वर अपने पिता से बरात साजने का आग्रह करता है—

बरसय जी बाबू रिमझिम बुँदवा, बरसय जी।
हाथी साजूँ, घोड़ा साजूँ, साजूँ बरयतिया।
साज देहु जी बाबा दँड़िया सवरिया, साज देहु॥

बेटे के विवाह मे दहेज अथवा अन्य प्रसंगों को लेकर कन्यापक्षवालों की निन्दा की जाती है। इस निन्दा में परिहास का भाव ही प्रधान रूप में होता है। यथा—एक 'बन्ना' गीत में एक वर से उसके ससुराल का समाचार पूछा जा रहा है। फिर, उसकी प्रशंसा की अवहेलना करके निन्दा करने की चेष्टा की जाती है—

दादी—बन्ना, दादी पूछे हँसि हँसि बात रे बना।
बन्ना, कइसन हथुन तोहर ददिया सास रे बना ?
वर—बन्ना, हमर ददिया सास जइसन दूध रे बना।
बन्ना, छप्पन रंग खइली ससुरार रे बना।
दादी—बन्ना, एतना बड़इया मति करु रे बना।
बन्ना, खट्टा दही अइसन, तोरे सास रे बना।
बन्ना झोर भात खयलऽ ससुराल रे बना।

'बन्ना' गीतों में वर के रूप की प्रशंसा की जाती है—

अँखवा जनि मटकइह दुलहा, धरती जनि लइह डीठ हे।
देखन अइहें ससुरारी के लोगवा, कइसन सुन्नर दमाद हे।
अँखिया दुलरुआ के आमि के फँकवा, नकवा सुगवा के ठोर हे।
जइसन झलके अनार के दाना, ओइसन दुलरुआ के दाँत हे।

वस्तुतः, वर रूपवान् हो या कुरूप, विवाह में उसकी रूप-प्रशंसा ही की जाती है। उसे नजर (कुदृष्टि) से बचाने के लिए अनेक टोने-टोटके किये जाते हैं। उससे सम्बद्ध गीत भी गाये जाते हैं—

कहमाँ से बेटा आएल रे टोनमा।
केकर गली आइ भरमल रे टोनमा।
पटना सहरवा से अयलूँ रे टोनमा।
ससुरा गलियवा में भरमलूँ रे टोनमा।
गोड़ परुँ टोनमा न मारिहऽ रे टोनमा।
बाबा, हम ही एकलउता बेटा रे टोनमा।

कोहबर के गीत तो प्रेम और मिलन के मधुमय प्रसंगों से भरे होते हैं। संयोग-शृंगार की एक-से-एक सुन्दर झाँकी इन गीतों में दी जाती है। कहीं प्रथम मिलन में वर,

वधू के रूप की प्रशंसा करता दिखाई पड़ता है, कहीं मान से आभूषण पहनाता हुआ। कहीं रूठी हुई प्रियतमा को मनाता दिखाई पड़ता है, कहीं 'भोर' होने पर विछोह होने के कारण पछताता हुआ। कहीं पत्नी के प्रेम में विभोर होकर माँ की उपेक्षा करता देखा जाता है, कहीं रात्रि में प्रियतमा को कोहबर में आने को आमन्त्रित करता हुआ। ऐसे असंख्य चित्र इन गीतों में उपलब्ध होते हैं। यथा :

एक वधू अपने पति पर कंचुकी की चोरी का आरोप भाई के सामने लगाती हुई देखी जाती है। जब भाई, बहनोई को दण्डित करता है, तब बहन उसे भाई से छुड़ाकर और अपने को आँचल में बाँधकर स्वयं दण्डित करना चाहती है—

अँगना में चकमक कोहबर अन्हार।
नेसि देहु दियरा, होयतो इँजोर गे माइ।
पान अइसन पतरी, सुहाग बाढ़ो तोर।
साटन के अँगिया समाय नहीं कोर गे माइ।
केचुआ के चोखा भइया, देहू न बँधाय।
रउदा में बाँधल भइया, रहतन रउदाय!
अँचरो में बाँधब भइया, रहतन लोभाय।

कंचुकी के चोर को आँचल में बाँधकर, सर्वदा के लिए बन्दी बनाने की कामना कितनी मनोहर है!

एक नववधू ने दासी पर प्रसन्न होकर उसे अपने एक हाथ का कंगन दे दिया। इसपर सास ने अप्रसन्न होकर पुत्र से शिकायत की और उसे दण्डित करने को कहा। पर, पुत्र पत्नी के प्रेम-पाश मे ऐसा आबद्ध था कि दण्ड देना उसके लिए कठिन हो गया—

तोहर दुलार अम्मा, घड़ी रे पहुरुआ।
धानि के दुलार अम्मा, हकइ सारी रतिया।
कइसे के बरजूँ अमाँ, नया दुलहिनियाँ?

एक पति पत्नी को कोहबर में आने का आमन्त्रण दे रहा है—

बेरिया डुबन लागल, फूलत झिंगनियाँ।
आजु मोरा अइह धनि, हमर कोहबरिया।

पर, पत्नी पारिवारिक मर्यादाओं के कारण लज्जा से अभिभूत हो रही है। इधर गोतिनी और ननद हैं, उधर मुस्कराता हुआ देवर। सास तो सर्वोपरि हैं। वधू कोहबर में जाय तो कैसे? पति ने सलाह दी कि सबको यथायोग्य प्रसन्न करके चुपके-से कोहबर में प्रविष्ट हो जाना—

चुपके से चलि अइह, हमरो कोहबरिया।

इस चुपके-चोरी के आमन्त्रण में प्रेम के आधिक्य एवं पारिवारिक मर्यादाओं के रक्षण-भाव की अच्छी व्यंजना हुई है।

पति बड़े अनुराग से आभूषण खरीदकर लाया है। वह पत्नी को आभूषण पहनाकर हँसने का प्रेमपूर्ण आग्रह कर रहा है—

बिजुली के टीका हे लाड़ो पेन्हु न जानये।
दुल्हा सौखीन रे अपन हाथ से पेन्हावय।

× ×

टीका जे लाया मैं पटना सहर से।
ए लाड़ो जरा पहन के देखो।
ए लाड़ो जरा विहँस के देखो।
ऐसा टीका न पेन्हूँ रे
ए राजा मैं तो बाबा दुलारी।
ए पिया मैं तो भइया पियारी।

सौभाग्यवती नारियों के अलंकार उनके पति हैं। कारण, उनके ही कारण वे श्रृंगार-प्रसाधन कर सकती हैं। यह श्रृंगार जब पति स्वयं अपने हाथों से करता है, तब पत्नी के सौभाग्य का क्या कहना—

टिकवा ओलरि गेल माँग से।
दुल्हा पेन्हावे हाँथ से, गभरू पेन्हावे हाँथ से।
अहिवात बाढ़े भाग से, सोहाग बाढ़े भाग से॥

(घ) गौना :

संस्कृत के 'गमन' का अपभ्रंश रूप 'गवना' या 'गौना' है, जिसका अर्थ 'जाना' होता है। विवाह के पहले, तीसरे, पाँचवें एवं सातवें वर्ष मे 'गौना' का रस्म होता है, जिसमे कन्या पहली बार ससुराल जाती है। पर, गौना के लिए इस अवधि को तभी स्वीकृत किया जाता है, जब कन्या का विवाह छोटी अवस्था में हो। आजकल कन्या का विवाह पूर्ण युवती होने पर ही होता है, इसलिए विवाह में ही गौने का रस्म करा दिया जाता है। 'गौने' के उपलक्ष्य मे अलग से यथाशक्ति दान-दहेज दिये जाते हैं।

'गौने' के गीतों के वर्ण्य विषय वही होते हैं, जिनका उल्लेख विवाह के प्रसंग में हो चुका है। वही श्रृंगार-भावना, वैवाहिक हास-परिहास, कन्या के सौभाग्य की कामना, देवता के गान, कन्या की विदाई के कारण करुण भाव आदि इनमें भी वर्णित होते हैं। उदाहरणार्थ, 'गौना' के कुछेक गीत दिये जाते हैं, जिनसे स्पष्ट पता चलेगा कि इनमें विवाह से भिन्न कोई वर्ण्य विषय नहीं होता।

ससुराल आकर वर कहता है कि मेरी पत्नी का गौना कर दो—

पुरुब से अयलन एक गो मोसाफिर,
बइठी गेलन हमरो अँगना रे गोरिया।
वर—हम हियो तोहर सरहज बारे ननदोसिया,
से करि देहु ननद के गमनमा रे गोरिया।
सरहज—हमर ननद हथिन बारी सुकुमरिया से,
कइसे करियो तोहरो गमनमा रे गोरिया।

करि देबो तोरा ननदोसिया गमनमा से,
होबे देहु छतिया नवरंगिया रे गोरिया।
आबे देहु आबे देहु मास रे फगुनमा,
करि देबो तोहरो गमनमा रे गोरिया।

फाल्गुन मास मे 'गौना' हो गया। डोली चली। राह में ही मिलन के लिए उत्कण्ठित पति डोली में प्रविष्ट हो गया। उसने पत्नी से कहा—

बगिया में डँड़िया के भेलइ दुपहरिया से,
रसे रसे गरमी गँमावहु रे गोरिया॥

'रसे रसे गरमी गँमावहु' में स्पष्ट रूप से प्रणय-संकेत मिलता है।

कन्या-पक्ष से भी मिलन की उत्कण्ठा प्रकट की जाती है—

अरजी बरजी करइ छोटकी ननदिया,
आइ रे गेलइ इहमा, मास रे फगुनमा।
जो तोहें जइह भउजी अप्पन कोहबरवा,
भइया से कहि मोरा, रखिहऽ नेअरवा।
नहिं माँगूँ थारी लोटा, नहिं माँगूँ धनमा।
एक हम माँगूँ भउजी, सिर के सेनुरवा,
एक हम माँगूँ भउजी, तोहरो सोहगवा॥

वसन्त ऋतु के आगमन पर पति-पत्नी के मिलन की आकांक्षा एवं उत्कण्ठा स्वाभाविक ही है।

सामान्य लोकजीवन की झाँकी देनेवाले देवगीत :

इस वर्ग के अन्तर्गत आनेवाले गीतों में दैविक एवं लौकिक दोनों भावों की व्यंजना रहती है। इनमें एक ओर जहाँ किसी पौराणिक आख्यान एवं देवी-देवता के नामों का उल्लेख रहता है, वहाँ दूसरी ओर सामान्य मानवीय भावनाओं, विधि-विधानों, प्रथाओं-अनुष्ठानों आदि का उल्लेख रहता है। इस प्रकार, इन गीतों में दोहरी व्यंजनाएँ हो जाती हैं। यथा—

बनमा में जलमल अगर-चननमा,
बनमें में उपजल हरियर पान हे।
जनकपुर में जलमल सीता ऐसन धीआ,
अजोधा में जलमल सिरी राम हे।
सौंसे अजोधा में राम जी दुलरुआ,
सोना के मरउआ रचाहु हे।
मरवा के इलोते ठाढ़ि सीता मिनति करथि,
बाँस के मरवा छवाहु हे।

सोने के मउरिया से विआह न होयत,
फूल के मउरिया मँगाहु हे।
सोना के कलसा से बियाह न होयत,
माटी के कलसा मँगाहु हे।

इस गीत मे देव-पात्रों—राम और सीता के विवाह का वर्णन है। लोक-विधान के अनुसार कच्चे बाँस का मण्डप, फूल की मौरी और मिट्टी का कलश विवाह के आवश्यक उपादानो में हैं। अपने विवाह के अवसर पर सोने का मण्डप, मौर और कलश को सीता लोक-परम्परा के विरुद्ध समझती हैं। अतः, उनकी प्रार्थना है कि लोक-परम्परा के अनुकूल ही विवाह के उपादान जुटाये जायँ। इस गीत में एक ओर देव-पात्रों के विवाह का उल्लेख हुआ है, दूसरी ओर एक विधान के निर्वाह की आकांक्षा द्वारा सामान्य जीवन का परिचय भी दिया गया है।

विवाह के बाद वर-वधू कोहबर में जूआ खेलते हैं। इस क्रिया से दोनों की बुद्धि-परीक्षा की जाती है। साथ ही कोहबर मे जलते दीप से यह सन्देश ग्रहण किया जाता है कि जबतक जीवन-दीप जलता रहे, दोनों हँस-खेलकर सांसारिक सुखों का उपभोग करते रहें। इन्हीं भावो की व्यंजना निम्नांकित देवगीत मे हुई है—

मथवा जे आयल महादेव बड़े-बड़े जटा,
कँधवा जे आयल महादेव के बघिनी छला।
घर से बाहर भेलन सासु मनाइन,
गोहुमन सरप छोड़ल फुफकारी
'किया सासु किया सासु गेलऽ डेराइ,
तोरा लेखे अहे सासू गोहुमन साँप।
मोरा लेखे अहे सासू गजमोती हार।'
'कथिकेरा दियवा कथिकेरा बाती।
कथिकेरा तेलवा जरइ सारी रात॥
जरु दीप जरु दीप चारों पहर राती।
जब लगि दुल्हा-दुल्हिन खेले जुआसारी।'
'तोरहिं जँघिया हो परभु नींदो न आवे।
बाबा के जँघिया हो परभु नींद भल आवे।
'बाबा के जँघिया गउरा दिन दुइ चार।
मोरा जँघिया हे सुघइ जनम सनेह।'

इसमें देव-पात्र शिव और पार्वती के माध्यम से सामान्य जीवन की प्रथाओं एवं भावनाओं पर प्रकाश डाला गया है। यहाँ शिव अपनी स्वाभाविक वेशभूषा में कोहबर में वर्त्तमान हैं। उन्हे देखकर सास डर जाती हैं, पर शिवजी उन्हें आश्वस्त करते हैं। कोहबर-घर मे दीप जल रहा है, पर शिवजी और पार्वती के बीच जूआ चल रहा है। रात्रि में पार्वती सोना चाहती हैं, तो शिवजी उन्हें अपनी जाँघ पर सुलाना चाहते हैं।

पार्वती कहती हैं—तुम्हारी जाँघों पर नींद नहीं आती, पर पिता की जाँघों पर मैं बेखबर सो जाती थी। शिवजी का उत्तर है—प्रिय। पिताजी की जाँघ दो-चार दिनों के लिए थी, पर मेरी जाँघ तुम्हारे लिए जीवन-भर का स्नेह-बन्धन है। स्पष्ट है कि शिव, पार्वती, सास, जूआ, सोने की भावना आदि सभी लौकिक जीवन के पात्रों एवं प्रथाओं का ही प्रतिनिधित्व करते हैं। यहाँ *'विशेष'* में *'सामान्य'* की अभिव्यक्ति हुई है।

देवगीत :

विवाह के अवसर पर ऐसे अनेक गीत गाये जाते हैं, जिनका उद्देश्य विविध देवताओं की स्तुति करना होता है। इनमें कहीं शुद्ध देव-वन्दना के भाव रहते हैं और कहीं आदरार्थ अथवा मंगलार्थ विविध देवताओं, प्राकृतिक शक्तियों आदि को आमन्त्रित करने के। पर, सभी गीतों का उद्देश्य मांगलिक कार्यों की निर्विघ्न समाप्ति के लिए देव-प्रार्थना है।

इस वर्ग के अन्तर्गत आनेवाले गीतों के भी दो भेद हैं—(क) प्रतिबन्धक अनुष्ठान-गीत और (ख) स्तुति-गीत।

क. प्रतिबन्धक अनुष्ठान-गीत : विवाह आदि शुभ अवसरों पर विविध देवताओं को ही निमन्त्रित नहीं किया जाता, बल्कि उन प्राकृतिक शक्तियों एवं मानवी दुष्टताओं को भी प्रसन्न करने के लिए निमन्त्रित किया जाता है, जिनसे किसी-न-किसी रूप में अनुष्ठान में बाधा पहुँचने का भय रहता है। मगध में आम-महुआ ब्याहने के समय बाग में 'बतास न्योतने' की प्रथा है। इसमें आँधी, पानी, चींटी, पिपरी, देव, पितर, मक्खी, मच्छर, लड़ाई, झगड़ा आदि सभी को निमन्त्रित किया जाता है—

ए बड़किन जेठकिन तोहरा के न्योति ला।
चारिओ रात, चारिओ दिन।
सोना के कलसवा ले के न्योतिला ॥ चारिओ० ॥
आँधी पानी तोहरा के न्योतिला ॥ चारिओ० ॥
चूँटी-पितर तोहरा के न्योतिला ॥ चारिओ० ॥
देव-पितर तोहरा के न्योतिला ॥ चारिओ० ॥
सोने के कलसवा ले के तोहरा मूँदब ॥चारिओ ०॥

नाम बदल-बदलकर सबको निमन्त्रित कर लिया जाता है। वस्तुतः, निमन्त्रण एक बहाना है। अभिप्राय यह है कि मिट्टी के चुक्के मे भरकर इन्हे बन्द कर दिया जाय, जिससे ये बाधा पहुँचाने में असमर्थ रहें। बन्द चुक्के को मण्डप मे 'कलश' के पास रखे एक पत्थर की सिलौट के नीचे दबा दिया जाता है। विवाह की सारी विधियों के अन्त में चौठारी के दिन मण्डप की पूजा करने के बाद चुक्के का मुँह खोल दिया जाता है, जिससे सारी बन्द शक्तियाँ

अपना-अपना स्थान ग्रहण कर लें। प्रतिबन्ध का यह टोटका न केवल मगध-क्षेत्र में, प्रत्युत अन्य क्षेत्रो में भी विवाहादि शुभ अवसरों पर किया जाता है।[1]

ख. स्तुति-गीत : विवाहादि शुभ संस्कारों की सफलता के लिए विविध देवताओं को आमन्त्रित किया जाता है। देवताओ के इस आमन्त्रण या आह्वान का उद्देश्य यही है कि वे रक्षक बनकर मांगलिक कार्यों को निर्विघ्न समाप्त होने दें—

लेहु हजमा सुबरन कसैलिया, नेवतियो चारो धाम हे।
गया से नेवतिह गजाधर नेवतिह, नेओतिह वीर हनुमान हे।
गंगा नेओतिह सिरी जगरनाथ नेओतिह, अउरो नेओतिह सेसनाथ हे।
गया से अयलन गजाधर अयलन, अयलन सिरी जगरनाथ हे।
गंगा जे अयलन हनुमान जे अयलन अउरो जे अयलन सेसनाथ हे।

भक्तों के आमन्त्रण पर सभी देवतागण आते हैं और सहायक बनते हैं।

मांगलिक कृत्यों की सफलता के लिए विविध देवताओं की नियमित वन्दना भी की जाती है। यथा : विवाह के अवसर पर प्रतिदिन 'सँझा' गाने की प्रथा प्रचलित है—

संझा बोलथी माइ हे किनखा घर हम जायब,
के लेत संझा मनाई हे।

---

१. (क) ब्रज मे बायबन्द बँधने के पूर्व अऊत-पितर, वायु, मक्खी आदि को निमन्त्रित किया जाता है। सभी का नाम लेकर निम्नांकित पंक्ति को दुहराया जाता है—

अऊत बाबा तुमऊ बड़े हो, आजु हमारे नौते ओ।

—ब्र० लो० सा० अ०, पृ० १९६–१९७।

(ख) श्रीरामनरेश त्रिपाठीजी ने लिखा है कि बाधक तत्त्वो को इसलिए निमन्त्रण दिया गया है कि ये भी सन्तुष्ट रहे और विघ्न न डालें। शुभ संस्कारो मे गाया जानेवाला निम्नांकित निमन्त्रण गीत त्रिपाठीजी ने दिया है—

हे पांच पान नौ नारियल। सरगै जे बाटे आजा परपाजा,
दादा औ चाचा तुमरौ नेवता। भुइयाँ भवानी पाटन कै देवी,
बिजलेश्वरी माता काली माई, डिवहार बाबा तुमरौ नेवता
घर कै देवी शायर भवानी तुमरौ नेवता
आँधी पानी लड़ाई झगड़ा डीमी धींगा तुमरौ नेवता
ओठ बिचकावनि भौंह सिकोरनि, तुमरौ नेवता
इसरा बिसरा कन्या कुमारी तुमरौ नेवता।
हे ओऊ जे अम्मा लाये जे अम्मा बौरे हैं आजु
आजु पाँच पान नौ नारियल।

—क० कौ०, ग्रामगीत, पृ० २०४–२०५।

त्रिपाठीजी के उपर्युक्त निमन्त्रण-गीत में 'ओठ बिचकावनि' और 'भौह सिकरोनि' ये दो शब्द ध्यान देने योग्य हैं। कुछ स्त्रियों का ऐसा स्वभाव होता है कि वे दूसरे की बढती नही सह सकती। अतः, शुभ संस्कारों पर इन्हें भी प्रसन्न करने के लिए निमन्त्रित किया जाता हैं।

दुलरइते बाबू बोलथिन हमरा घरे आयब,
दुलरइते देइ लेतन संझा मनाई हे।

विवाह के अवसर पर मांगलिक वस्तुओ के रूप में अच्छत, सुपाड़ी, हल्दी, दूर्वा, गोबर, सिन्दूर आदि का व्यवहार किया जाता है। ये ही वे वस्तुएँ हैं, जिनसे विवाह का धार्मिक अनुष्ठान पूरा होता है। इन्हीं कुछ सामग्री के सहारे अपनी कन्या सदा के लिए पराई हो जाती है, इस कारण मगह-क्षेत्र मे अनेक गीतों में इनके प्रति जनमानस का आश्चर्य प्रकट होता है—

सोना के पइलवा में सेनुरा धरयबइ सिवसंकर हे।
सीता के मँगिया भरबइ सुनहु सिवसंकर हे।
सीता हो जैतन पराया सुनहु सिवसंकर हे।
सोना के थरियवा में अछत धरयबइ सिवसंकर हे।
सेहु अछत राम जी चुमायब, सुनहु सिवसंकर हे।

इस भाँति अन्य मांगलिक द्रव्यों का भी उल्लेख किया जाता है। यथा—

हरा हरा गोबर से अँगना लिपायल, मोतियन चौक पुरायल।

× ×

सोना के ढकनी में हरदी परोसल।
ऊपरे लहलही दूभ हो, सिखा चढ़ावे॥

इन्हीं मांगलिक द्रव्यों से देवताओं की पूजा की जाती है। प्रसन्न होकर देवता भक्त के घर आते हैं—

घोड़वा चढ़ल देवा करथी पुछार।
कउने अवासे बसे भगता हमार॥
ऊँची कुटिया देवा, पुरुबे दुआर।
बाजे मँजीरवा गोसाईं उठे झँझकार॥
सोने केर दियरा देवा कपासे के बात।
सोरही केर दियरा देवा कपासे केर बात॥

देवता के स्वागत के लिए विवाह-संस्कार में स्थापित कलश का दीपक रात-भर जलता रहता है। उसमे शुद्ध कपास की बाती और अच्छी गाय का घृत डाला जाता है।

विसर्जन-गीत :

वैवाहिक अनुष्ठानों के अन्त में विसर्जन-गीत गाये जाते हैं। इन गीतों में वर-वधू के लिए मंगलकामना रहती है। प्रायः चौठारी के दिन ये गीत गाये जाते है; क्योंकि इसी दिन वर-वधू के हाथ में बँधे लाल धागे के कंगन खोले जाते हैं और मंगल के कलश उठाये जाते हैं। वर-वधू के प्रति आशीर्वाद एवं मंगलकामनाओं के साथ इनमें उनके गुरुजनों के प्रति बधाई की भावना भी रहती है। यथा—

धन-धन तोरा भाग कउनी साही।
बेटा पुतोह घर आयो बहुआ सुलच्छन आयो।
कोरे नदियवा में दहिया जमवलों।
बहुआ के सिर धरायो, बहुआ सुलच्छन आयो।

निम्नांकित गीत में वर को गुरुजनो के पैर पूजकर आशीर्वाद लेने का उपदेश दिया गया है—

चउका चढ़ि बइठलन राजा रघुनन्दन हरि।
पूजह पण्डित जी के पाओं, सुनहु रघुनन्दन हरि।
पाओं पुजइते सिर नेवले राजा रघुनन्दन हरि।
देह पण्डित जी हमरो असीस, सुनहु रघुनन्दन हरि।
दुधवे नहइह बाबू पुतवे पझइह रघुनन्दन हरि।

सभी सम्बन्धियों का नाम लेकर इस गीत को गाया जाता है।

निम्नांकित गीत में सौभाग्य एवं समृद्धि की वृद्धि के लिए वर-वधू को आशीर्वाद दिया गया है—

जुग जुग जीथिन सीतादेइ, अउरो सिरी राम हे।
भोगथिन अजोधेया के राज, तीनों लोक सुन्नर हे।
जुग जुग बढ़े अहिवात, जे मंगल गावत हे।[1]

इतना ही नहीं, जितने पवनियाँ हैं, सभी बधाइयों, जयध्वनियों एवं आशीर्वचनो से घर को गुंजायमान कर देते हैं—

जय जय बोले नउअवा से बाम्हन, जय जय बोले सभ लोग।
जनकपुर जय जय॥
धन राजा दसरथ, धन हे कोसिलेया।
अजोधापुर जय जय॥
धन सीतादेइ के भाग, रामे वर पायेल हे।
जनकपुर जय जय॥

इन्हीं जयध्वनियों, मंगलवचनों एवं आशीर्वादों के साथ वैवाहिक कार्यक्रमों का विसर्जन होता है।

---

१. राजस्थानी-लोकगीत में भावज के आग्रह पर ननद आशीर्वाद देती है—

वीरा, फूलज्यो रे फलज्यो आम की डाली ज्यूं,
बधज्यो बागाँ माँयली दूब ज्यूं।
सात ए भाभी पूत जणज्यो। एक जणज्यो डीकरी।
थारी धीमड़ ने परदेस दीज्यो। ज्यूं चित आवे रूड़ी नणदली।

हे भाई, आम की डाली की तरह फूलो-फलो और इस प्रकार बढ़ो, समृद्धि पाओ, जिस प्रकार दूब बाग मे बढ़ती है। हे भाभी, तू सात पुत्रो की माता बने और एक पुत्री भी तुझे हो। उस पुत्री को परदेश में ब्याहना, जिससे परदेशवासिनी उस प्रिय पुत्री के बहाने, मैं तेरी ननद तुझे याद आती रहूँ।

—राज० लो गी०, पृ० ६२-६३।

५. विविध गीत

मृत्यु-गीत :

पहले कहा जा चुका है कि हिन्दुओं के षोडश संस्कारों में लोक ने कुछ को ही विशेष महत्त्व दिया है। इनमें मृत्यु भी एक है। मृत्यु-संस्कार में शास्त्रीय एवं लौकिक दोनों अनुष्ठान होते हैं, पर गीतों में इनका वर्णन नहीं मिलता। कारण कि इनमे शोक का भाव इतना गहरा होता है कि गीत प्रस्फुटित ही नहीं हो पाता। पर, मृत्यु के अवसर पर गाये जानेवाले कुछ 'निर्गुण गीत' अछूत वर्ण के लोगों में प्रचलित हैं। इनमें मृत्यु-सम्बन्धी किसी अनुष्ठान का उल्लेख नहीं होता। ये गीत शिवनारायणी सम्प्रदाय के चमार लोग शवयात्रा मे बाजे के साथ सम्मिलित स्वर मे गाते चलते हैं। शिवनारायण-कृत 'सन्तविलास' नामक एक पुस्तक ही है, जिसमें सन्तों के निर्गुण-गीतों का संग्रह है।

वर्ण्य विषय : इन गीतों में आत्मा-परमात्मा का सम्बन्ध प्रिया-प्रियतम के रूप मे दिखाया गया है। इस सम्बन्ध की अभिव्यक्ति सांसारिक दृष्टान्तों द्वारा ही हुई है। संसार से विदाई का दृश्य अत्यन्त कारुणिक रूप मे प्रस्तुत हुआ है, पर कहीं जानेवाली आत्मा का विषाद नहीं दरसाया गया है। प्रायः प्रियतम-मिलन के लिए ससुराल-रूपी वैकुण्ठ जाती हुई आत्मा प्रसन्न और उत्कण्ठित दिखाई देती है। उसे संसार के सुख-भोग के प्रति वितृष्णा है। सद्गुरु प्रायः सच्ची राह बतलाते हुए दीख पड़ते हैं। प्रायः सभी गीतों में कबीरदास या अन्य सन्तकवि या किसी सद्गुरु का उल्लेख मिलता है।

मृत्यु-सम्बन्धी निर्गुण-गीतों में मृत्यु को परिवर्त्तन का संकेत माना गया है। यह प्रिय-मिलन या मोक्ष के माध्यम के रूप में प्रस्तुत हुई है, इसलिए इसके साथ दुःख या शोक का भाव कहीं नहीं दरसाया गया है। सभी मृत्यु-गीतों में निर्वेद ही मुख्य स्थायी भाव है। उदाहरणार्थ कुछ मगही-गीत निम्नांकित हैं—

रामजी जलम देलन, बरमा जी करम लिखलन।
अहे अहे सखिया जम भइया, अवलन लियावन हो राम।
एक कोस गेली रामा, दुइ कोस गेली राम।
अहे अहे सखि हे घुरि फिरि ताकीहऽ मंदिल हो राम।

राम की कृपा से आत्मा संसार में आई थी, ब्रह्माजी ने 'भाग्य' लिखा था। अब 'यमराज' उसे संसार से लिये जा रहे हैं। उसका शरीर (मन्दिल) संसार में ही छूट गया है। वह घूम-घूमकर छूटे हुए शरीर को देख रही है।

ये ही तो मंदिलवा मोरा, बड़ी सुख मिलल हो।
से हो मंदिलवा अगिया, धधकइ हो राम॥

शरीर-रूपी 'मन्दिल' को संसार में अनेक सुख मिले थे, पर आज वह चिता की अग्नि में पड़ा धधक रहा है। संसार के सभी परिजन आत्मा को फिर से बुलाना चाहते हैं; पर उसे तो 'मोक्ष' में ही सुख है—

माता-पिता रोबे लगलन, जड़ी-बूटी देवे लगलन।
अहे अहे सखी हे फिन न मनुस चोला पायम हो राम॥

इस गीत में मृत्यु के बाद जीवात्मा की मोक्षावस्था का आदर्श वर्णित हुआ है।

एक अन्य गीत में आत्मा-परमात्मा के मिलन का अच्छा चित्र प्रस्तुत किया गया है—

सोने रूप सइयाँ मोरा परेम पियासल।
हम धनि परेम पियासी हे सखिया॥
अधराति ले हम रंग रस विलसली।
कउनी मोरा अँखिया झँपायल हे सखिया॥
भोरे उठी देखली सइयाँ मोरा भागल।

जागरूक आत्मा-रूपी प्रियतमा सच्चे प्रेम के कारण परमात्मा-रूपी प्रियतम के साथ आधी रात तक विलास करती रही। पर, अर्धरात्रि में 'प्रमाद', 'अज्ञान' और 'मोह' की निद्रा ने उसे धर दबाया, जिससे प्रियतम उसके पास से भाग गया। वह जगी, तो बावरी होकर खोजने लगी। अन्त में, 'सद्‌गुरु' की कृपा से उसे फिर प्रियतम मिल गया—

'बटिया में मिलल्न सतगुरु हमरा।
ओहि सइयाँ से मिलवलन हे सखिया॥

इस गीत के रूपक बड़े स्पष्ट हैं—नायिका आत्मा है, प्रियतम परमात्मा। आधी रात, आधा जीवन है। आधे जीवन तक जागरूक रही। फिर, संसार के मोह, माया, प्रमाद आदि अवगुणो के फन्दे में पड़कर परमात्मा की भक्ति से मन हट गया ('निद्रा' की स्थिति)। निद्रा की स्थिति मे प्रियतम के भागने का अभिप्राय यह है कि 'प्रमाद' मे परमात्मा विस्मृत होकर आत्मा से अलग हो गया। सद्‌गुरु सच्चे ज्ञानी के प्रतीक हैं, जो सच्चा ज्ञान देकर आत्मा-परमात्मा का पुनः मिलन करा देते हैं।

इसी प्रकार, अन्य गीतो मे सखी, टिकुली, सिन्दूर ,बालम, ससुराल, देवर, कुआँ, भीड़, घड़ा, गेडुरी, ननद, चोर आदि के रूपकों और दृष्टान्तो में इहलोक तथा परलोक का वर्णन किया गया है। यथा : 'सखियाँ' इन्द्रियाँ हैं। 'बाजार' संसार है। सिन्दूर-टिकुली आदि लौकिक शृंगार के साधन हैं। 'बालम' परमात्मा है। 'ससुराल' वैकुण्ठ है। 'देवर' सत्संगी है। 'कुआँ' संसार-चक्र है। 'भीड़' आवागमन की है। 'घड़ा' शरीर है या कर्म-समूह है। गेडुरी' मानवयोनि है। 'ननद' बुद्धि है। 'चोर' पाँचो कर्मेन्द्रियाँ (रस, रूप, गन्ध, स्पर्श और शब्द) हैं, जो घर मे, अर्थात् शरीर मे घुस आये हैं। बुद्धि-रूपी ननद, परमात्मा-रूपी भाई को जगाकर, जीवात्मा-रूपी प्रियतमा की 'चोर' से रक्षा करती है।

इन सभी गीतों में 'जागने' या विषयों के प्रति सजग रहने की प्रेरणा सद्‌गुरु के माध्यम से दी गई है।

क्रियागीत :

क्रियागीत वे हैं, जिन्हे किसी क्रिया के साथ गाया जाता है। इन गीतों मे दो उद्‌देश्य हैं—१. क्रिया करते समय शरीर मे थकान का अनुभव न होने देना तथा २. क्रिया के साथ मनोरंजन करते चलना। इस वर्ग में प्रधानतः तीन श्रेणियों के गीत

उपलब्ध होते हैं—(क) जँतसार, (ख) रोपनी तथा (ग) सोहनी। इन तीनों श्रेणियो के गीतों में करुण रस की प्रधानता होती है।

मगही में 'जँतसार' गीतो की संख्या बहुत है, पर रोपनी-सोहनी के गीतों की संख्या कम। इसका कारण यह है कि रोपनी-सोहनी के अवसर पर भी 'जँतसार' गीत बहुलता से गाये जाते हैं। वर्ण्य विषय की दृष्टि से भी तीनो मे बहुत अधिक सादृश्य है। यथा—

क. जँतसार[1] : चक्की या जाँता चलाते समय जो गीत गाये जाते हैं, उन्हें 'जँतसार' या 'जाँत के गीत' कहते हैं। इनमें पीसनेवालियों के मन को प्रेम, करुणा और उदारता में भिंगोकर कुटुम्बियों के असहनीय बरताव के कारण पैदा हुए विक्षोभ को निकालने की चेष्टा भरी रहती है। इन गीतों मे श्रृंगार-वर्णन का अभाव नहीं होता, फिर भी नारी-हृदय की वेदना, कसक, टीस आदि की व्यंजना प्रधान रहती है। करुण रस के प्रायः सभी प्रसंग इनमे वर्णित होते हैं। पुत्रहीन, वन्ध्या, विधवा, विरहिणी, उपेक्षिता आदि सभी नारी-वर्गों की मनःस्थिति का चित्रण इन गीतों मे बड़ी सफलता से होता है।

प्रायः जाँत के गीतों में छोटी-छोटी कथाएँ इस प्रकार गुँथी मिलती हैं, जैसे किसी धागे में फूल। ये गीत उत्तेजक नहीं होते, बल्कि बहुत कोमल, मधुर एवं चिरस्थायी प्रभाव छोड़ जानेवाले होते हैं। रात्रि के पिछले पहर में जाँते के 'घर-घर' स्वर के साथ मिलता हुआ नारीकण्ठ-स्वर बड़ा ही मधुर प्रतीत होता है।

वर्ण्य विषय : कहा जा चुका है, जँतसार के गीतों मे जैसे करुण रस की अवतारणा ही हो जाती है। ससुराल में कन्या की दुर्दशा, पति-पत्नी का कलह, पति का अत्याचार, सास-ननद का बहू पर अत्याचार, विधवा की करुण दशा, वन्ध्या की मनोवेदना, विरहिणी की विरह-वेदना आदि की व्यंजना ही इन गीतो का मुख्य वर्ण्य विषय है। यथा : एक स्त्री ससुराल में प्राप्त दुःखों का वर्णन करती है[2]—

सासु देलन गेहुमा, ननद देलन चंगेरिया।
गोतिनी वैरिनियाँ भेजे जँतसरिया।
रगड़ि रगड़ि गेहुमा पिसलूँ रे दइया।

इतने पर भी सास-ननद और पति चैन नहीं लेने देते—

सासु माँगे रोटिया, ननद माँगे टिकरी।
एक सेर मडुआ, रगड़ि रगड़ि पिसलूँ।
ओहु बौना देलक उदबसवा रे दइया।
सेहु बौना माँगे परसनमा रे दइया।

---

१. 'जँतसार' शब्द 'यन्त्रशाला' का अपभ्रंश-रूप है, जिसका अर्थ है वह शाला या घर, जिसमें आटा पीसने का यन्त्र रखा गया हो।

२. देखिए, म० लो० सा०, पृ० ४०।

एक ओर घर मे गरीबी, दूसरी ओर सबका 'सम्मिलित अत्याचार। बौने पति के द्वारा उत्पन्न सन्तान भी टेंगरा और पोठिया मछली के समान क्षुद्र हैं। वे भी उतना ही तंग करते हैं—

बौना के जलमल टेंगरा से पोठिया।
ओहु जे दे हइ बड़ी उदबसवा रे दइया।

भुक्तभोगिनी ने अपनी मार्मिक व्यथा इन शब्दों मे खोलकर रख दी है।[1] निम्नांकित गीत[2] में बालविधवा का करुण विलाप तो और भी मर्मस्पर्शी है। एक बालविधवा माँ से पूछती है—'माँ, तुमने सबका विवाह कर दिया, मेरा क्यों नहीं करती?' इसपर माँ का उत्तर है—

तोहरो बियहली गे मैना बाले जब पनमाँ।
तोहरो बियहुआ मरिए गेलउ रे कि।[3]

विरह-व्यथिता रोती हुई कहती है—

हमरा बियहुआ भइया मरिए जे गेलन,
उनका चैतियो दे बतलइए रे कि।

माँ ने बतलाया—

सावन भदउवा के अलउ बूढ़ी धधिया,
ओकरे में गेलउ चैतिया दहिए रे कि।

अब तो विधवा बाला की छाती फट चली। वह रोते रोते बोली—

रोइए-रोइए मैना मइया से बोललइ,
अगे चैतिया दहि गेलइ धरतिया न कि।

'प्यारी माँ, जाने दो, चिता तो बहकर चली ही गई। पर, वह धरती तो नहीं बह गई, जहाँ उनकी चिता सजी थी।'

---

१. भोजपुरी-लोकगीत मे एक नायिका सास-ननद के अत्याचारों का मार्मिक वर्णन करती है—

ए राम हरि मोरे गइले बिदेसवा सकल दुखवा देइ गइले हो राम
ए सासु ननदिया बिरही बोलेली केकर कमइया खइबू हो राम
ए राम काँखे जाँति लिहली दउरिया त हाथे के बढ़नियाँ लिहली हो राम
ए राम घई लिहली गोड़िनियाँ के भेसियाँ त पनई बहारे लगली हो राम

—भो० लो० सा० अ०, पृ० २१७।

२. देखिए म० लो० सा०, पृ० ४२।

३. भोजपुरी में इनसे मिलती-जुलती पंक्तियाँ हैं—

मचिया बइठलि तुहुँ आमा हो बढ़इती।
आरे हमहूँ मायेना कतेक दिन कुँआरी नु जी।
तोहरो बियहवा ए मयेना आरे कइलों लरिकइयाँ।
आरे तोहरो बियहुवा दइव हरि लिहले रे जी।

—भो० ग्रा० गी०, पृ० २०६-२०७।

अन्तिम पंक्ति में पीर और पातिव्रत्य की कितनी ऊँची व्यंजना की गई है, कहने को अपेक्षा नहीं। इस गीत में एक ओर बाल-विवाह पर गहरा व्यंग्य है, दूसरी ओर विधवा की दारुण मानसिक स्थिति का वर्णन है।

जँतसार-गीतों मे प्रोषितपतिका नायिका की विरह-व्यंजना भी कम मार्मिक नहीं है।

एक विरहिणी का पति बचपन मे ही द्वार पर नीम का पौधा लगाकर परदेश चला गया था। वह अब फूलने-फलने लगा है, पर अभी तक उसका निर्मोही प्रियतम नहीं आया—

कउने उमरिया सासु निमिया लगौलन।
कउनी उमरिया गेलन विदेसवा हो राम॥
खेलते कूदते बाबू निमिया लगौलक।
रेघिया भिंजइते गेल बिदेसवा हो राम॥
फरि गेलइ निमिया, लहसि गेलइ डरिया।
तइयो न आयल, मोर बिदेसिया हो राम॥[1]

एक दूसरी विरहिणी प्रियतम को न रोक रखने के कारण पछता रही है—

जे हम जनती पिया, जैब तूँ बिदेसवा।
बाँधती हम रेसम के डोर॥
रेसम बँधनमा पिया, टूटिए फटिए जयतइ।
बाँधती हम अँचरा के कोर॥[2]

प्रिय को 'आँचल' के छोर मे बन्दी कर रखने की कल्पना कितनी शुभ्र है!

अनेक बार ऐसे अवसर आते हैं, जब विरहिणी नायिका को पथच्युत करने की चेष्टा की जाती है, पर वह सारे प्रलोभनों को ठुकराकर सच्चे पति-प्रेम का परिचय देती है। यथा : एक विरहिणी का पति परदेस गया है। वह आम-महुआ के बाग में खड़ी सोच रही है—

बाबा गेलन परदेसवा, सदा रे सुख दे के गेलन।
दुअरे चननमा के गाछ, हिंडोलवा लगा के गेलन॥
पिया गेलन परदेसवा, सदा रे दुख दे के गेलन।
छतिया रे बजड़ा केवड़िया जंजीरिया लगा के गेलन॥

इसी बीच उसके निकट एक बटोही आकर पूछता है—'सुन्दरी, क्यो रो रही हो?' विरहिणी ने कहा—'तुम-सा ही सुन्दर मेरा पति था, वह परदेस से अभी तक नही लौटा।' राही ने अवसर का लाभ उठाया—

लेहु हे सुन्नर डाल भर सोनमा, मोतियन माँग भरऽ।
छोड़ि देहु बिअहुआ के आस, सगहुआ के संग चलऽ॥

१. देखिए म० लो० सा०, पृ० ४०।
२. वही, पृ० ४१।

पतिव्रता ने उसे दुत्कारते हुए कहा—

> आगि लगउ डाल भर सोनमा, मोतियन बजड़ा पड़ऊ।
> हमरो सामी लौटतन बनिजिया, घरवा लूटी लउतन ॥[1]

कैसा अखण्ड पतिप्रेम है !

इस गीत का अन्य प्रतिरूप भी मिलता है, जिसमें स्वयं, पति बटोही का रूप धारण करके पत्नी की प्रेम-परीक्षा लेता है। फिर, सन्तुष्ट होने पर अपना परिचय देता है।

उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि जँतसार के गीत मे सारे प्रसंग कारुणिक हैं। ऐसा मालूम होता है कि इन गीतों के माध्यम से लोककवि ने लोक-हृदय की सारी व्यथा, वेदना और निराशा को व्यक्त करने की चेष्टा की है। इन गीतो की गायिका स्त्रियाँ होती हैं, इसलिए उनकी ही भाव-व्यंजना को प्रधानता दी गई है।

ख. रोपनी के गीत : धान रोपने के समय जो गीत गाये जाते हैं, उन्हें 'रोपनी के गीत' की संज्ञा दी जाती है। इन गीतों के गाने में जँतसार-गीतो की भाँति थकान को विस्मृत करने एवं मनोरंजन करते हुए लगन के साथ काम करने की भावना सन्निहित होती है।

वर्ण्य विषय : धान रोपने का कार्य प्रायः मुसहर, चमार आदि जातियों की स्त्रियाँ करती हैं। ऊपर से प्रायः वर्षा होती रहती है, धान के खेतों में पानी भरा रहता है। चारो ओर हरियाली और कीचड़ का दृश्य छाया रहता है। ऐसे समय में ये महिलाएँ 'धानरोपनी' करती हुई गीत गाती हैं। रोपनी का कार्य घर से बाहर खेत में होता है। अतः, प्रायः स्त्रियाँ इन गीतों में ऐसे प्रसंगों को प्रस्तुत करती हैं, जिनमे पुरुष, स्त्री से छेड़छाड़ करता है और स्त्री उसे फटकारती है। इनके अतिरिक्त वे, गीतों में नारी-हृदय के अनेक सुकुमार भावों को भी उनकी वेदना एवं गार्हस्थ्य-जीवन की विविध अनुभूतियों के साथ व्यक्त करती हैं। यथा : उपर्युक्त पंक्तियों मे जँतसार-गीतो की विवेचना के अन्तर्गत एक पतिव्रता स्त्री की एक बटोही द्वारा प्रेम-परीक्षा का प्रसंग वर्णित हुआ है। इस गीत को इस अवसर पर भी गाया जाता है। इसके अतिरिक्त पति-पत्नी के मान-मनुहार का वर्णन निम्नाकित 'रोपनी-गीत' में हुआ है—

> लाय देहु हे परभु, हार लगल बेनिया।
> ना लैबो हे धनि, हार लगल बेनिया।
> हम चलि जयबो हे सइयाँ रूस के नैहरवा।

---

१. भोजपुरी-गीत इससे मिलता-जुलता है—

> लेहु ना सुनरी डाल भरि सोनवा, मोती माँग भरी।
> छोड़ि देहु अइसन बउराह, लगहु मोरा साथे हरी ॥
> आगि लगइबों तोरा डाल भरि सोना, मोती जरि जाहु।
> लवटीहें उहे बउराह, लुटइबो तोरी बरधी धनी ॥

—भो० ग्रा० गी०, पृ० २३४।

आवे देहु हे धनि, हाजीपुर के हटिया।
कौन देवो हे धनि, हार लगल बेनिया।[1]

ग. सोहनी के गीत : खेत में उत्पन्न व्यर्थ की घास और पौधों को काटकर अलग करने को 'निराना' या 'सोहना' कहते हैं। इस कार्य के साथ गाये जानेवाले गीतों को 'निरवाही' या' सोहनी' के गीत कहते हैं।

वर्ण्य विषय : इन गीतों की एक विशेषता यह होती है कि ये प्रायः संक्षिप्त कथानकों के साथ होते हैं। इनका आकार अन्य गीतों से बड़ा होता है। अतः, इन्हें 'कथा-गीत' वर्ग मे भी रखा जा सकता है। मगही-'कथागीत' में 'चम्पिया' या 'भागवत' आदि नायिकाओ से सम्बद्ध जो गीत हैं, वे सोहनी के अवसर पर भी गाये जाते हैं। सोहनी के गीतों में कहीं सास-बहू का परस्पर दुर्भाव वर्णित है, तो कही पति का पत्नी के प्रति अविश्वास; कही स्वेच्छाचारी शासको की बर्बरता का चित्रण है, तो कहीं विदेशी शासक मुगलो आदि के द्वारा नारी के सतीत्व पर आक्रमण का, और कहीं इन भ्रष्टाचारियों के सतीत्वरक्षा के दिव्य प्रयत्न वर्णित हैं। कहीं दो सौतों के बीच द्वेष की भावना व्यंजित होती है, तो कही विरहिणी की मर्मस्पर्शी अनुभूतियाँ चित्रित होती हैं। इस प्रकार, इन गीतों के प्रसंग प्रायः जँतसार की तरह कारुणिक हैं।

सतीत्व-परीक्षा सोहनी के गीतों का एक प्रधान विषय है। निम्नांकित मगही-गीत मे एक पति अपने पत्नी की सतीत्व-परीक्षा करता देखा जाता है।

एक सुन्दरी पति के पलंग पर चढ़ना चाहती है। पति उसे रोककर कहता है कि पहले तुम अपने 'पातिव्रत्य' का विश्वास दिलाओ, फिर पलंग पर पैर धरो। पत्नी एक के बाद एक परीक्षा देती है और सफल उतरती है—

गंगा किरियवा तुहूँ खाहू हे धनिया, तब धरु पलंग पर पउआँ हे ना।
गंगा हाथ लेलन धनिया, गंगा हो गेलन छतिर छीप हे ना।
इ किरियवा धनि मैं न पतियाउँ, सुरुज किरियवा तुहूँ खाहु हे ना।
जबहि धनि सुरुज हाथ लेलन, सुरुज भे गेलन छपिर छीत हे ना।
ये हु किरियवा धनि मैं न पतिआउँ, अगिन किरियवा तुहूँ खाहु हे ना।
जबहिं धनि अगिन हाथ लेलन, आगि भेलइ जरि छाय हे ना।

---

१. मिथिला में 'रोपनी' करते हुए कृषक दो दलो मे बँटकर 'चाँचर' गाते हैं। इस शब्द का अर्थ है—'परती छूटी हुई जमीन।' ये गीत प्रश्नोत्तर के रूप मे गाये जाते हैं। यथा—

प्रश्न : कौन फूल फुलाई छइ कोठरिया ? कौन फूल फुलाई छइ अकास ?
कौन फूल फुलाइ छइ समुन्दर में ? कौन फूल फुलाई छइ नेपाल ?
उत्तर : पान फूल फुलाई छइ कोठरिया। कसइलि फुलाई छइ आकास।
चूना फुल फुलाई छइ समुन्दर में। कथ फल फुलाई नेपाल।

—हि० सा० बृ० इ०, १६वाँ भाग, पृ० १३।

इस प्रकार, क्रमशः गंगा, सूर्य और अग्नि की शपथ दिलाने के बाद पति सन्तुष्ट हुआ—

कहथिन परभु जी सुनु धनिया मोरी, अब हम दास तोहार हे ना।

पर, पति के शंकालु हृदय और बार-बार परीक्षा लेने की चेष्टा से पत्नी का हृदय टूट जाता है। वह ऐसे पति से सर्वथा के लिए दूर हो जाना चाहती है—

अइसन पुरुख के जात बनावल, झूठो लगावे अकलंक हे ना।
फटि जाइ भुइयाँ तेंकरे में समायीं मुँहमा न देखी तोहार हे ना।

इस गीत में एक ओर दिव्य सतीत्व का उदाहरण प्रस्तुत किया गया है, दूसरी ओर पुरुष के शंकालु हृदय और उसके प्रति नारी की प्रतिक्रिया दरसाई गई है।

इससे मिलता-जुलता एक गीत त्रिपाठीजी[1] ने दिया है, जिसमें गीत की नायिका 'चन्दा' के गले में चन्द्रहार देखकर उसके ससुरालवाले उसकी सतीत्व-परीक्षा करते हैं। परीक्षा के समय चन्दा के भाई यह प्रतिज्ञा करके बैठते हैं कि यदि मेरी बहिन खरी उतरी, तो फिर इसे अपने घर ले जाऊँगा। यदि खोटी निकली, तो अपने हाथ से यहीं जमीन में गाड़ दूँगा। अन्त में, चन्दा निष्कलंक ठहरती है। उसके भाई उसे अपने घर लिये जा रहे है और उसका पति बैठा रो रहा है—हाय! ऐसी सतवन्ती स्त्री मुझे छोड़कर चली जायगी।

त्रिपाठीजी ने 'निरवाही के गीत'[2] में ऐसे अनेक गीतों के उदाहरण दिये हैं, जिनमें नारी अपने सतीत्व की रक्षा के लिए प्राणों का उत्सर्ग करती है। भोजपुरी में भी 'कुसुमा' एवं मगही में 'चम्पिया' और 'भागवत' नामक कथा-गीतों के ये ही प्रसंग हैं। ये कथा-गीत 'सोहनी' के गीतों में भी सम्मिलित हैं।

ऋतुगीत :

विविध ऋतुओं में भिन्न-भिन्न शैली के गीत गाये जाते हैं। इनमे तदनुरूप भाव-परिवर्त्तन भी देखे जाते हैं। यथा : वसन्त ऋतु में 'होली' और 'चैती' गाये जाते हैं, वर्षा ऋतु में बरसाती और कजली। इन सभी गीत-श्रेणियों का संक्षिप्त विवेचन नीचे प्रस्तुत किया जाता है।

होली का फगुआ : संगीतमय त्योहारों में होली का त्योहार बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाता है। फाल्गुन महीने में पूर्णिमा-प्रतिपदा को यह पर्व मनाया जाता है। इस महीने के नाम पर ही इस अवसर पर गाये जानेवाले गीतों की संज्ञा 'फाग' या 'फगुआ' हो गई। होली के पर्व के अवसर पर गाये जाने के कारण इन गीतों की दूसरी संज्ञा 'होली' या 'होरी' भी है।

माघ मास में शुक्ल पक्ष की पंचमी को 'वसन्तपंचमी' का उत्सव होता है। इस दिन विद्या की अधिष्ठात्री देवी 'सरस्वती' की पूजा होती है। इसी दिन से लोग 'अबीर-गुलाल खेलना' एवं 'फाग गाना' आरम्भ कर देते हैं, जो क्रमशः बढ़ता हुआ होली के दिन पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है।

---

१. क० कौ०, भाग ५, पृ० ३६२–३६५।

२. क० कौ०, भाग ५।

होलिका-दहन, धुरखेली और होली : होली की पूर्वरात्रि में 'होलिका-दहन' होता है। इसे मगध, भोजपुरी आदि बिहार के क्षेत्रों मे 'संवत् जलाना' कहते हैं। होलिका-दहन के लिए लोग बहुत पहले से ही किसी ग्राम या शहर के चौराहे पर लकड़ी, काठ, पत्ता, गोयठा, कुण्डा, कुण्डी, भूँसी, बल्ली बाँस आदि एकत्रित करते रहते हैं। जलावन की इस सामग्री को कभी-कभी चोरी से भी लड़के एकत्रित करते हैं, जिसका संकेत निम्नांकित पंक्ति में मिलता है—

चोरी करि होरी रची, भइ तनक में छार।

ज्योतिषी द्वारा निर्धारित शुभ मुहूर्त्त में विधिवत् प्रदक्षिणा करके पुरुष 'होलिका-दहन' करते हैं। इसमें धूप, जौ आदि हवन के द्रव्य भी डाले जाते हैं, जिनसे चतुर्दिक सुरभि फैले और वातावरण स्वच्छ हो। महिलाएँ अपने बालकों के शरीर मे उबटन लगा-कर उससे मैल निकालकर होलिका की अग्नि मे इस विश्वास के साथ डालती हैं कि पुराने संवत् के साथ बालक के शरीर के सारे रोग भस्मीभूत हो जायेंगे और नव वर्ष में वह पूर्ण नीरोग रहेगा।

दूसरे दिन प्रभात में इस अग्नि मे लोग आलू, हरे चने की झँगड़ी, जौ-गेहूँ के बाल और नीम का ढुस्सा भूनकर खाते और खिलाते हैं। इन चीजों को लोग यज्ञ-सिद्ध नवान्न मानते हैं। अन्त में, होली का भस्म लेकर घर आते हैं। 'नीम का ढुस्सा' भूनकर खाने में जनविश्वास है कि साल-भर शरीर में फोड़ा-फुन्सी या अन्य रोग घर नहीं करता।

होली की अग्नि के शान्त होने के साथ ही पुरुष और लड़के सड़क पर 'धुरखेली' आरम्भ करते हैं। वे परस्पर विविध रंग, मिट्टी, कीचड़, धूल आदि लपेटते, गाली गाते और स्वाग बनाते हैं। इस समय गालियों का कोई बुरा नहीं मानता। इस अवसर पर सामूहिक रूप से खुले आम गाली गाने की मनोवैज्ञानिक व्याख्या मनोविज्ञानवेत्ताओं ने प्रस्तुत की है। उनका मत है—मनुष्य की अनेक स्वाभाविक वृत्तियाँ समाज के शिष्ट आवरण में छिपी रह जाती हैं। इस समय सामाजिक प्रतिबन्ध हटा लेने के कारण इन स्वाभाविक प्रवृत्तियों को खुलकर प्रकाशित होने का अवसर मिल जाता है। मानव की छिपी काम-प्रवृत्तियाँ भी मुखराग से प्रकट होती हैं, यद्यपि कृत्यों पर तो पूर्ण प्रतिबन्ध रहता ही है। मनुष्य अश्लील से अश्लील गालियाँ गाकर अपनी सुषुप्त भावना को पूरा निकाल देता है। इसके बाद वह परिष्कृत एवं सभ्य आदमी बन जाता है।

इस समय गाई जानेवाली गालियों को लोग 'गालियाँ' एवं 'कबीर' दोनों संज्ञाओं से अभिहित करते हैं। गीत के साथ प्रायः निम्नांकित पंक्तियाँ जोड़ी जाती हैं—

अ र र र र र र र भइया सुनऽ कबीर।

या

गाली के भइया न बुरा मनिह।
होली हे भाई होली हे।

इन गाली-गीतों के साथ 'कबीर' का नाम जोड़ने के सम्बन्ध में विद्वानों का अनुमान है—'कबीर की अटपटी निर्गुन बानी तत्कालीन समाज के लिए लोकप्रिय नहीं हो सकी, अतः कबीर के प्रति अस्वीकृति या आत्मक्षोभ दिखलाने के लिए ही लोगों ने इन गालियों को 'कबीर' का नाम दे दिया है।'[1]

धुरखेली के समय अपने-अपने घर में बन्द होकर महिलाएँ विविध पकवान बनाने में जुटी रहती है। दोपहर तक सभी पुरुष घर लौट आते हैं और स्नान करके नवीन वस्त्र धारण करते हैं। इसके बाद सच्ची होली प्रारम्भ होती है। सभी पकवान खाते-खिलाते हैं, मित्र-परिजनों से प्रेमपूर्वक मिलते हैं और परस्पर सूखा अबीर लगाते और गले मिलते हैं। गया जिले में होली के एक दिन बाद रंग का एक और पर्व होता है। इसे 'झूमटा' कहते हैं। इस दिन गंगाजली मे रंग भरकर बैलगाड़ी पर लादते हैं। फिर, जुलूस के साथ यह बैलगाड़ी सड़क पर चलती है। पिचकारी मे गंगाजली से रंग भरकर लोग चारों ओर डालते हैं।

होली गाने की विधि : फगुआ गाने की दो विधियाँ हैं—१. गायक एक दल बनाकर ढोल, कंसी या खरताल के साथ मस्ती से झूम-झूमकर गाते हैं; २. फगुआ के गवैये दो दलों में विभक्त होकर बैठ जाते हैं। एक व्यक्ति के हाथ मे ढोलक रहता है[2] और कुछ अन्य लोगों के हाथ में 'झाँझ' या 'झाल'। कुछ लोग 'जोड़ी' लेकर भी बजाते हैं, दोनों दलो का एक-एक अगुआ होता है, एक दल का अगुआ अपने दल के साथ गीत की प्रथम कड़ी आरम्भ करता है।

आजु कन्हैया जी खेलव हैं होरी॥ आजु०॥

दूसरा दल गाता है—

गोपियन मार रहल पिचकारी ॥ आजु०॥

फिर पहला दल गाता है—

आजु कन्हैया जी खेलत हैं होरी॥ आजु०॥

इसी क्रम से यह सम्मिलित गान (कोरस) ढोलक और झाल के साथ क्रमशः तेज होता हुआ अन्त में पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है।

मगध मे होली के गायक पुरुष होते हैं। ये गाते-गाते भावावेश से इतना भर जाते हैं

१. भो० लो० सा० अ०, पृ० १८१।

२. राजस्थान में होली ढोलक के साथ नही, 'चंग' या 'डफ' नामक बाजे के साथ गाई जाती है। निम्नांकित राजस्थानी-गीत में होली के साथ 'चंग' बजाने का वर्णन है—

रंगीली चंग बाजणू
म्हारो रेगर मँढ़ के लायो जे
रंगीली चंग बाजणू।

—राज० लो० गी०, भाग, १, पृ०१७।

कि घुटनों के बल खड़े हो जाते हैं ।[1] ढोलक और झाल भी तेजी से बजाये जाने लगते हैं । दोनों दल एक होकर गाते-गाते विभोर हो उठते हैं—

कन्हैया न माने, नयनमा में डारे गुलाल ।
मतु डारऽ रंग कान्हा, अँखिया पिराये ।।
हो गेल सारी चुनरिया लाल ।। कन्हैया० ।।
जाय कहम हमहु जसोदा अँगनमा ।
देखऽ अप्पन कन्हैया के चाल ।। कन्हैया ० ।।

गीत का स्वर पराकाष्ठा पर पहुँचकर एकाएक बन्द हो जाता है । इन गीतों की गति, इनकी भाषा का बन्ध और स्वरों का सन्धान अत्यन्त मीठा होता है । गाने की शैली भी बड़ी मस्त, चित्ताकर्षक और उत्तेजनादायक होती है । एक-एक टेक की बारम्बार आवृत्ति से ग्राम का चौपाल आनन्दोन्माद के वातावरण से परिपूर्ण हो जाता है ।

वर्ण्य विषय : होली हमारा ऐसा राष्ट्रीय पर्व है, जिसमें सभी जाति एवं वर्ग के लोग परस्पर सप्रेम मिलते हैं एवं मित्रता और हर्ष के प्रतीक लाल गुलाल को एक दूसरे के मुख पर मलते हैं । मिलन के इस विराट् समारोह के अवसर पर सबमें अपूर्व आनन्द, उल्लास, उत्तेजना और मस्ती देखने में आती है । होली में गाये जानेवाले गीतों में भी इन्हीं भावों का समावेश होता है । लौकिक अथवा देवपात्रों के माध्यम से एक ही प्रकार की भाव-व्यंजना एवं कार्यव्यापार प्रदर्शित किये जाते हैं । कहीं लौकिक पात्रियाँ एवं पात्र अबीर-गुलाल के साथ रास-रंग-रत दिखाई पड़ते हैं, कहीं राधाकृष्ण सोल्लास फाग खेलते दिखाई पड़ते हैं । कहीं शिव और गौरी के बीच 'होरी' मची रहती है, कहीं राम और सीता होली के रंग में रँगे दिखाई पड़ते हैं । इन सभी में श्रृंगार भाव को ही प्रमुखता दी जाती है । रंग-गुलाल के साथ श्रृंगार का इन गीतों मे अपूर्व सामंजस्य दिखाया गया है । इसमें कही स्वकीया का प्रेम दरसाया गया है, कहीं परकीया का । पर, सर्वत्र उल्लास एवं उत्तेजनापूर्ण भावों को प्राश्रय दिया गया है । यथा—

चले के तो रहिया, चलली कुरहिया,
से गड़ि गेलइ ना ।
केओरवा के कँटवा से गड़ि गेलइ ना ।।

---

१. राजस्थान मे स्त्रियाँ भी होली की गायिका होती है । वे गहनों और वस्त्रों से सज-धज मिल-जुलकर गाती-बजाती, खेलती-कूदती और नाचती है । इस समय एक विशेष नृत्य होता है, जिसे 'लूर' कहते हैं । इसमे स्त्रियाँ हाथ बाँधकर चक्राकार नाचती हैं । इसको 'लूवर' या 'घूमर' भी कहते हैं । निम्नांकित राजस्थानी गीत में एक स्त्री अपनी सखी से कहती है—अब होली आ गई, आओ मिल-जुलकर 'लूर' खेलें—

होली आयी ए सहेल्याँ
मिल खेलाँ लूर होली आयी ए ।
कोई कोई ओढ्याँ झीणी चूनड़,
कोई कोई ओढ्याँ दिखणी चीर ।
होली आयी ए सहेल्याँ, मिल खेलाँ लूर ।—रा० लो० गी०, भाग, १, पृ० ९९ ।

इस गीत मे परकीया-प्रेम की व्यंजना है। नायिका के 'कुराह' चलने के कारण उसके पैर में 'केतकी' के काँटे चुभ गये। 'केतकी' मे सौरभ के साथ काँटे भी होते हैं। परकीया-प्रेम सुखद भी है और उलझनपूर्ण भी। नायिका भी इस प्रेम मे पड़ने के कारण उलझन में पड़ गई है। अब उसे रक्षा की अपेक्षा है—

देवरा मोरा काँटा निकालतइ ननदिया।
से पिया मोरा ना,
से हरतइ दरदिया, से पिया मोरा ना।[1]

देवर और पति उसकी रक्षा कर लेंगे, यही भरोसा उसे आश्वस्त कर रहा है।

एक अन्य गीत में होली के अवसर पर नायिका पर अनुराग की वर्षा हो रही है—

फागुन महिनमाँ, आयल सुदिनमा,
देवरवा भिंगावइ चुनरिया।
पटना सहरवा से अवइ रँगरेजवा,
रंगवा डुबावइ जोबनमा।
टिकवा गढ़ावे सैंया, झुमका गढ़ावे,
देवरा गढ़ावइ बेसरिया।
कँगनमा गढ़ावे पिया, पहुँची, गढ़ावे,
देवरवा गढ़ावइ करधनियाँ।
रंग नहीं डार देवरा, अबीर नहीं डार,
भींजी गेलइ सजली जमनियाँ।[2]

इससे वह पुलकाकुल हो रही है। उसके मन की रसभरी उलझन समझना कठिन है।

होली के अवसर पर अनेक रसलोभी पंछी उड़ा करते हैं। बाग के रखवाले के

---

१. से गड़ गेल ना, लवंगिया के काँटा।
देवरा मोरा कँटवा निकालतइ ननदोसिया,
से पिया मोरा ना, से हरतइ दरदिया।
—मै० लो० गी०, पृ० २८३।

२. (क) ब्रज के बसइया कन्हैया गोआला,
रंग भरि मारय पिचकारी।
एइ पार मोहन लहँगा लुटै सखि
ओइ पार लुटथि सारी।
मँझधार कान्हा जोबन लूटथि
रंग भरि मारय पिचकारी।
—मै० लो० गी०, पृ० २८२।

(ख) खोल दे अँचरवा लागे घाम,
भादों के भींजल बा जोबनमा।
—भो० लो० सा०, पृ० १४५ : श्रीबैजनाथ सिंह 'विनोद'।

सजग न रहने पर 'फलों' की चोरी अवश्यम्भावी है। पति के सजग न रहने पर प्रियतमा के यौवन-रस की चोरी भी अवश्यम्भावी है। यथा : एक नायिका का मूर्ख पति ऐसा बेखबर सोया है कि उसकी पत्नी का यौवन-रस लूटकर कोई रसलोलुप उड़ गया और उसे खबर तक न हुई—

नकबेसर कागा ले भागा।
सइयाँ अभागा ना जागा।
उड़ि-उड़ि कागा कदम पर बैठा।
जोबन के रस ले भागा।
सइयाँ अभागा ना जागा।

उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है कि होली-गीतों में श्रृंगार रस की प्रधानता रहती है। अनेक स्थलों मे प्रकृति के मनोहर रूपो की छटा भी दिखाई पड़ती है। होली उमंग और उत्साह का पर्व है, तदनुरूप ही इस अवसर पर गाये जानेवाले गीतों में आनन्द एवं उल्लास की तरंगें उठती दीख पड़ती हैं।

चैती :

मगही में 'चैती गीत' चैत मास में गाये जाते हैं। इन गीतो में वसन्त की मस्ती एवं उमंग तथा रंगीन भावनाओं का अनोखा सौन्दर्य अंकित किया जाता है। इनमे माधुर्य एवं रसमयता परिपूर्ण दिखाई देती है। सम्पूर्ण चैत मास में चतुर्दिक् पर्वों, उत्सवों एवं मेलों के आयोजन होते रहते हैं।

चैती गीत दो प्रकार के होते है—१. घाटो चैती और २. साधारण चैती।

१. **घाटो चैती** : इसके गायक दो दलो मे विभक्त हो जाते हैं। गीत के साथ ढोल और झाल बजाये जाते हैं। पहला दल एक पंक्ति गाता है, दूसरा दल उसके टेक-पद को जोरों से गाता है। यथा—

पहला दल—
हरि मोरा गेलन मधुवनमाँ।
दूसरा दल—
हो रामा चइत रे मासे।
पहला दल—
बोलइ कोइलिया सकल कुंजनमा।
दूसरा दल—
हो रामा, चइत रे मासे।

इसी क्रम से इस गीत के आगे की कड़ियाँ गाई जाती हैं—

रामा बिरही पपीहा बोलइ अधिरतिया हो रामा, चइत रे मासे।
रामा पियवा नहिं अइलइ बरसत नयनमाँ हो रामा, चइत रे मासे॥

'घाटो चैती' का दूसरा नमूना निम्नांकित है—

लगइ सुन्ना भवनमाँ हो रामा, कान्हा रे बिनु।
सुनहर घरवा में सुतली सेजरिया,
हरि जी के देखली सपनवाँ हो रामा, कान्हा रे बिनु।
खुलि गेलइ बेनिया, उपटि गेलइ निंदिया
पौली न हरि दरसनमा हो रामा, कान्हा रे बिनु।
गहनमा मोरा सबै लगइ दुखदइया,
भावे ना पियरी चुनरिया हो रामा, कान्हा रे बिनु।
चइत बीती गेल सखी, स्याम नहिं अइलन,
रहि रहि जिया घबराये हो रामा, कान्हा रे बिनु।

'घाटो चैती' गाने मे प्रत्येक दल को किंचित् विश्राम मिल जाता है। पहला दल जिस स्वर से गाता है, दूसरा दल उससे उच्च स्वर से 'टेक-पद' गाता है। जब गाने का अन्त होने लगता है, तब गानेवाले उच्चतम स्वर का प्रयोग करने लगते हैं। गवैये और श्रोतागण दोनों का जोश पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है। फिर, एकाएक गाने की समाप्ति हो जाती है।

२. साधारण चैती : इसे या तो केवल एक गायक ढोल और झाल के साथ गाता है या एक समूह में मिलकर गायक गाते हैं।

चैती गाने की शैली : इसके गाने मे प्रायः विशेष शैली अपनाई जाती है—

१. गीत की प्रत्येक पंक्ति के आरम्भ में 'रामा' का प्रयोग कभी होता है और कभी नहीं भी होता है। पर अन्त में 'हो रामा' का प्रयोग अवश्य होता है। 'घाटो' और 'साधारण' दोनों चैती में ऐसा सामान्य रूप से होता है।

२. दूसरी पंक्ति के प्रथम दो पदों की पुनरावृत्ति उस पंक्ति के गायन समाप्त होने पर फिर की जाती है। ये दो पद, टेक-पद का काम देते हैं। यथा :

मोर चुनरिया सैयाँ तोर पगड़िया,
एकहिं रंग रँगायब हो रामा,
एकहि रंगे।

वर्ण्य विषय : 'चैती' गीतों में प्रेम के विविध रूपों की व्यंजनाएँ हुई हैं। इनमें संयोग शृंगार को विशेष स्थान दिया गया है। कहीं चैत मास मे अनुभूत आलस्य का वर्णन हुआ है, कहीं कृष्ण, गोपी और राधा के प्रेम-सम्बन्धों का विश्लेषण किया गया है। कहीं राम-सीता का आदर्श दाम्पत्य-प्रेम दरसाया गया है, कहीं पति-पत्नी का प्रेम-कलह और मिलन-विछोह वर्णित हुआ है, कहीं दशरथनन्दन के जन्म का आनन्दोत्सव चित्रित हुआ है, कहीं राम और उनके भाइयों के बीच का नैसर्गिक स्नेह दिखाया गया है, कहीं स्वकीया-प्रेम और कहीं परकीया-प्रेम के विविध रूप दरसाये गये हैं, कहीं सीता-स्वयंवर, राम-सीता-प्रेम आदि का वर्णन हुआ है। लघु कथानकों के माध्यम से चैती गीतों में उपर्युक्त भाव-व्यंजनाएँ की गई हैं। यथा :

एक मुग्धा बाग में फूल लोढ़ने की कल्पना में विभोर है। इसमे प्रेरक शक्ति यह कल्पना है कि वह एक रंग में अपनी चुनरी और पिया की पगड़ी रँगाकर दोनों के बीच एकरूपता की स्थापना करेगी—

कुसुमी लोढ़न हम जायब हो रामा।
राजा केर बगिया।
मोर चुनरिया सैंया, तोर पगड़िया,
एकहि रंग रँगायब हो रामा।[१]

यहाँ फूल कोमल भावनाओं के प्रतीक हैं। भाव के फूल में रँगे वस्त्र अवश्य ही दोनो मे हार्दिक एकरूपता लाने में समर्थ होगे।

चैत मास मे हवा शरीर को पुलकायमान तो करती ही है, आलस्य से भी भर देती है। मीठी नींद और मीठे सपने मे डूबी हुई एक नायिका सखी के जगाने पर क्रुद्ध हो उठती है—

सुतला में काहे ला, जगैलऽ हो रामा,
भोरे ही भोरे।
रस के सपनमा में हलइ अँखिया डूबल हो रामा।[२]
भोरे ही भोरे।
अंग हि अंग अलसाये हो रामा।
भोरे ही भोरे।

जगाने पर उसे प्रिय की याद व्याकुल करने लगती है—

पिया बिना हिया मोरा कुहुँकइ हो रामा,
भोरे ही भोरे।
चंपा के फुलवा मुरझाये हो रामा,
भोरे ही भोरे॥

---

१. चलु सखिया हे मलिया के बगवा रामा
कि चलू सखिया हे।
डाल भरि लोढ़बों चंगेरी भरि लोढ़बों,
कि भरवौं खोंइछवा रामा॥ कि चलू०॥
फुलवा लोढ़ि लोढ़ि हरवा गुथैबो,
पिया क गरवा पेन्हयबों॥ कि चलू०॥
—मै० लो० गी०, पृ० १९०।

२. रतिया के देखलौं सपनवाँ रामा,
कि प्रभु मोर आयल।
मोहि विरहिनि क बान सम लागय।
पपिहा का निठुर बचनमा रामा।
—मै० लो० गी०, पृ० २८६।

एक अन्य गीत में नायिका चैत मास में यौवन की परिपूर्णता का अनुभव कर पति के लिए आतुर हो उठती है—

कौन मासे फुलइ जोबनमा हो रामा,
कौनहिं मासे।
बेला जे फुलइ चमेली फुलइ,
माघहिं मासे।
गेंदवा जे फुलइ, कचनरवा जे फुलइ,
फगुनमा रे मासे।
जोबनमा फुलइ मोर अँगिया हो रामा,
चैतहिं मासे।
कलवा न पड़इ सइयाँ बिनु रामा,
चैतहिं मासे॥[1]

संयोग शृंगार का अप्रत्यक्ष वर्णन निम्नांकित गीत में मिलता है—

एहि ठइयाँ मोरी झुलनी हेरानी हो रामा,
एहि ठइयाँ।
घरवा में खोजली, दुअरा में खोजलीं,
खोजि अयलीं सइयाँ के सेजरिया हो रामा,
एहि ठइयाँ।

एक चैती गीत में राम को वन भेजने के कारण सारी अयोध्या नगरी कैकयी के प्रति खीझ-भरा उपालम्भ व्यक्त कर रही है—

रामजी के बनमा पैठौलऽ हो रामा,
कठिन तोरा जियरा।
बसिहें न अवधा नगरिया हो रामा,
जैहे जहाँ राम के बसेरवा।
मरियो न गेलइ केकइया निरदइया,
जारे मुख कठिन बचनमा।
राम लखन बिनु सुन्ना हो रामा,
नागिन लोटऽ हइ भवनमा।

---

१. नइ भेजे पतिया, आयल चैत उतपतिया हो रामा,
नई भेजे पतिया।
बिरही कोयलिया सबद सुनावे, कल न पड़य अब रतियाँ हो रामा,
नई भेजे पतिया।
बेली चमेली फुले बगिया में,
जोबना फूलल मोर अँगिया हो रामा,
नई भेजे पतिया। —मै० लो० गी०, पृ० २८७।

अन्तिम पंक्तियों में गहरी पीर व्यंजित हुई है।

मगही में ऐसे अनेक चैती गीत मिलते हैं, जिनमें पौराणिक आख्यानों के आधार पर भाव-व्यंजनाएँ हुई हैं।

बरसाती :

पावस ऋतु मे कुछ विशेष गीत गाये जाते हैं, जो बारहमासा, छौमासा, चौमासा, बरसाती और कजरी के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन गीतों मे विविध मासों के प्राकृतिक सौन्दर्य-वर्णन के साथ मानवीय भावनाओं के प्रकृत चित्रण भी उपलब्ध होते हैं।

बारहमासा : बारहमासा में बारह महीनो मे प्रत्येक मास का वर्णन क्रम से किया जाता है, साथ ही प्रत्येक मास की रूपरेखा संक्षेप मे दी जाती है। इनमें जिन उपकरणों से ऋतु-वर्णन की योजना की जाती है, वे प्रचलित और स्वानुभूत होते हैं। विरहिणी उन्हीं को लेकर अपने प्रवासी प्रियतम का स्मरण करती है। प्रायः प्रचलित बारहमासों का आरम्भ आषाढ मास से होता है, यद्यपि इसके लिए कोई निर्धारित नियम नहीं है। ऐसे बारहमासों का अभाव नहीं है, जिसका आरम्भ चैत से या अवसर के अनुसार होता है।[1]

मगही-बारहमासा-गीतों में प्रायः विप्रलम्भ *शृंगार*-वर्णन को ही प्रधानता दी जाती है। इस कारण उनमें बुद्धितत्त्व की अपेक्षा रागात्मक तत्त्व की प्रमुखता रहती है। इसे ही दृष्टि में रखकर श्रीरामइकबाल सिंह 'राकेश' ने 'बारहमासा' को अनुभूत्यात्मक अभिव्यंजना[2] कहा है। बारहमासा-गीतों की अकृत्रिमता का रहस्य यह है कि ये स्वच्छ ग्रामीण वातावरण में उठते हैं। संस्कृत एवं प्राकृत के अनेक कवियों ने अपने साहित्य की उन्हीं अकृत्रिम एवं सरल लोकाभिव्यक्तियों से अलंकृत किया है। विद्यापति, जायसी आदि कवियों के बिरह-काव्य में अंकित भावों की जो तीव्रता एवं मर्मस्पर्शिता मिलती है, वह लोकगीतों या लोक-परम्पराओं के प्रभाव के कारण ही। वस्तुतः, हिन्दी का आदिसाहित्य लोकभाषा की निधि से प्रभावित था। इसी कारण, हिन्दी मे उपलब्ध बारहमासी गीतो की परम्परा पर भी लोक-साहित्य का ही प्रभाव दीख पड़ता है।

साहित्यिक परम्परा के अनुसार बारहमासों का प्रयोग उद्दीपन-विभाव की दृष्टि से ही होता आया है। यों, कहीं-कहीं कवि द्वारा प्रस्तुत स्वतन्त्र चित्रण वस्तुओं के बिम्बग्रहण में बहुत सहायक होते हैं। ऋतुओं पर मानवी भावो का पूर्ण आरोप भी देखा जाता है।

वर्ण्य विषय : कहा जा चुका है कि बारहमासा-गीतों का वर्ण्य विषय प्रधानतः विप्रलम्भ *शृंगार* है।[3] इनमें नायिका अपने जीवन की साधारण-असाधारण प्रेम-सम्बन्धी

१. प्रकृति और हिन्दी-काव्य : डॉ० रघुवंश, पृ० ४०२।

२. *मै० लो० गी०, पृ०* ३६०।

३. हिन्दी की प्राय: सभी बोलियों में बारहमासा-गीत उपलब्ध होते है। इनमें कवि जायसी के महाकाव्य 'पदमावत' का 'बारहमासा' सर्वाधिक प्रसिद्ध है। नागमती-वियोग-खण्ड मे नागमती का विरह-वर्णन इसी 'बारहमासे' मे किया गया है। इसमे वियोग-वर्णन आषाढ मास से आरम्भ किया गया है और ज्येष्ठ मास में इसकी समाप्ति की गई है। प्रत्येक महीने मे होनेवाले प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन कवि ने बड़ी ही सुन्दरता से किया है। इसके साथ ही विरहिणी का भावचित्र प्रस्तुत किया है।

अनुभूतियों को प्रत्येक मास के प्राकृतिक सौन्दर्य की पृष्ठभूमि में व्यक्त करती है। इनमें ऋतुओं पर मानवी भावों का पूर्ण आरोप होता चलता है।

विरह-सम्बन्धी बारहमासी गीत दो प्रकार के होते हैं—१. प्रथम वर्ग में आदि से अन्त तक वियोग-वर्णन ही होता है। मगही में ऐसा 'बारहमासा' है।[1] इसका आरम्भ चैत मास से होता है। इसमें वनवासी राम, लक्ष्मण और सीता की दशा का चित्रण हुआ है। इस 'बारहमासा'-गीत के अध्ययन से प्रतीत होता है कि इसकी गायिका उर्मिला है। कारण, आरम्भ विरह-वर्णन से ही होता है—

पेठैलऽ तू नारी बइरून बन बाळम मोर।
× × ×
बइसाख मास रितु गिरषम लाग।
चलइ पवन जइसे बरसइ आग।
जइसे जळ बिनु तलफइ मीन।
सेइ गति हमरा केकइ जी कीन।
दीन्ह दुख दारुन।

विरह की ज्वाला में विरहिणी वैसे ही जल रही है, जैसे ग्रीष्मऋतु में धरती। उसकी स्थिति 'जल बिन मीन'-सी है।

इस बारहमासा में आरम्भ से अन्त तक कैकेयी की निन्दा की गई है, वन मे राम-सीता और लक्ष्मण के द्वारा कठिन दुःख का वर्णन हुआ है और अयोध्या के राज-परिवार के सन्ताप का वर्णन किया गया है। पर, इसमें उर्मिला की दारुण विरह-व्यथा का वर्णन सर्वोपरि है—

भादो रइनी भयामन रात
कड़कई बरसइ जियरा डेरात
गुंजन गुंजइत फिरइ भुअंग
राम लखन आउ सीता जी संग
रइन अँधियारी॥ पेठैलऽ०॥

अन्य भाषाओं में भी 'बारहमासा-गीत' वर्त्तमान है। यथा : बँगला-साहित्य मे पल्लीगान में और विजयगुप्त के 'मनसा मंगल' में बेहुला की बारहमासी का वर्णन पाया जाता है। बँगला में बारहमासा को 'बारमाशी' कहते है। भारतचन्द्र के 'अन्नदामंगल' में भी यह बारहमासा मिलता है। बँगला 'बारमाशी' में भी स्त्री की विरहजन्य वेदना का वर्णन उपलब्ध होता है। इसमें प्रत्येक मास में होनेवाले व्रतों का भी विवेचन है। निम्नांकित 'बारमाशी' में विरहिणी की मार्मिक दशा उल्लेखनीय है—

यौवन ज्वाला बड़ई ज्वाला शहिते ना पारि।
यौवन ज्वाला तेज्य करे, गलाय दिब दाड़ि।

—हारामणि : मुहम्मदन्सूरमउद्दीन द्वारा सम्पादित।

डॉ० श्याम परमार ने 'भारतीय लोक-साहित्य' (पृ० ११६–११८) में बारह महीनों की ऋतु-सम्बन्धी प्रमुख परम्परा या सांकेतिक उपकरण एवं चित्रसूत्र को तुलनात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। बारहमासा-गीतों के अध्ययन-क्रम में यह द्रष्टव्य है।

१. हि० सा० बृ० इ०, भाग १६, पृ० ५६—५८।

आयल हे सखि, कातिक मास,
उठइ करेजवा बिरह के फाँस
घरे घर दीया बारथी नारि
हमर अयोध्या भेलइ अन्हियारी
करनि केकइ के ॥ पेठैल ऽ० ॥

इस बारहमासा में कहीं उर्मिला का नामोल्लेख नहीं हुआ है, पर अयोध्या के राज-परिवार मे उर्मिला के अतिरिक्त विरहिणी है ही कौन ? सबके पति साथ हैं, इससे उनके विरह-वर्णन का प्रश्न ही नहीं उठता। अकेले लक्ष्मण का भी नायक के रूप में वर्णन नहीं हुआ। जहाँ नाम आता है, वहाँ राम और सीता के साथ। अयोध्या के राज-परिवार की मर्यादा के यही अनुकूल है। अतः, लक्ष्मण की अनुस्थिति मे उर्मिला द्वारा विरह-वर्णन कराना ही कवि का उद्देश्य प्रतीत होता है।

इस बारहमासा का अन्त फागुन में होता है। पर, अन्त तक भी रामादि नहीं लौटे हैं—

फागुन फाग खेलइती चौरंग
चोवा आ चनन लपेटति अंग
ठाढ़े भरत जी घोरथी अबीर
किनका परछीहूँ बिना हो रघुवीर
अइसन होरी जरो री ॥ पेठैल ऽ० ॥

२. दूसरे वर्ग के बारहमासा-गीतों[1] का आरम्भ वियोग-वर्णन से होता है, पर अन्त मिलन से। इस वर्ग के मगही-गीत का आरम्भ आषाढ मास से होता है एवं जेठ में प्रिय के लौटने पर हर्षोल्लास के साथ गीत का अन्त हो जाता है। ग्यारह महीनों मे प्रोषितपतिका नायिका अपनी सखी से अपनी विरह-जन्य विषम दुःख का वर्णन करती पाई जाती है। यथा—

प्रथम मास असाढ़ हे सखि साजी चलल जलधार हे।
एही पिरीति कारन सेत बँधौलन, सिय उद्देस सिरी राम हे।

आषाढ मास में वर्षाऋतु का आरम्भ हो गया है, मेघखण्ड जलधार को साजकर चल पड़े हैं। ऐसे समय में सीता को पाने के लिए श्रीराम ने समुद्र में भी बाँध बाँधा था, पर इस नायिका का प्रियतम नहीं आया। सावन की रिमझिम भी व्यर्थ चली गई—

सावन हे सखी, सबद सोहामन रिमझिम बरसइ बूँद हे।
सबके बलमुआ रामा घर घर होइहें, हमरो बलमु परदेस हे।

भादो की भयावनी रात में भी प्रिय को प्रियतमा का ध्यान नहीं आता—

भादो हे सखी रैनि भयामन, दूजे अँधेरिया के रात हे।
ठनका जे ठनकइ रामा, बिजुली जे चमकइ,
सेइ देखी जियरा डेराय हे।

१. देखिए म० लो० सा०, पृ० ५०।

आश्विन में स्वकीया, प्रिय को परकीया में अनुरक्त रहने का मधुर उपालम्भ देती हुई स्मरण करती है—

> आसिन हे सखी आस लगौली, आस न पूरल हमार हे।
> आस जे पूरइ रामा कुबरी सौतिनिया के,
> जे कंत रखलक लोभाय हे।

इसी भाँति कार्त्तिक का पुण्य मास चला जाता है, अगहन की हरियाली और प्रकृति के जीव-जन्तुओं से विलास का दृश्य समाप्त हो जाता है, पूस का कँपानेवाला जाड़ा निरर्थक बीत जाता है, माघ की बसन्ती बयार शरीर को कण्टकित करके लौट जाती है, फागुन का रंग-गुलाल विरहिणी के चित्त को उदास कर चला जाता है, चैत के फूलों की बहार समाप्त हो जाती है, पर इतने पर भी इसका प्रिय नहीं लौटता। वैशाख की झुलसानेवाली लहर में विरहिणी की ज्वाला बढ़ जाती है, इसपर भी प्रिय को लौटने का ध्यान नहीं आता।

अन्त में जेठ मास आता है। विरहिणी का भाग्योदय होता है। उसका प्रियतम लौट आता है—

> जेठ हे सखी आयल बलमुआ, पूरल मनमा के आस हे।
> सारा दिन रामा मंगल गैली, रैनि गमौली पिया संग हे॥

सम्पूर्ण गीत में प्रत्येक मास के प्राकृतिक सौन्दर्य-वर्णन के साथ विरहिणी को वियोग-जन्य वेदना का भी चित्रण हुआ है।

छौमासा और चौमासा :

वर्षाऋतु में छौमासा[1] और चौमासा-गीत भी गाये जाते हैं। छौमासा में प्रायः छह महीनों की अनुभूतियों का उल्लेख होता है और चौमासा मे चार महीनो की अनुभूतियों का। इनमें कहीं नायिका की विरहानुभूतियों का वर्णन होता है, कहीं गार्हस्थ्य-जीवन की विविध अनुभूतियों पर प्रकाश डाला जाता है। पारिवारिक जीवन के विविध सम्बन्धों—पति-पत्नी, सास-बहू, ननद-भावज, पिता-पुत्री, भाई-बहन आदि—का सुन्दर विश्लेषण इन गीतों में मिलता है।

सामान्य बरसाती-गीत :

मगध कृषिप्रधान देश है। इसमें वर्षा का बहुत महत्त्व है। वर्षाऋतु में अतिवर्षण हो या अवर्षण, सभी अवस्थाओं में ग्रामीण महिलाएँ इन्द्र देवता की प्रार्थना करती पाई जाती हैं। यथा :

> दइया इन्द्र के करहू इन्द्र पुजवा हे ना।
> दइया गाँव के ठिकुदरवा अनजानू साही ना।
> दइया घोड़वा चढ़ल निरखई बदरा हे ना।
> दइया मूसरे के धार पनियाँ बरसइ हे ना।

---

१. देखिए म० लो० सा०, पृ० ४८।

दइया उनकर बेटवा अनजानू साही ना।
दइया कुदि फाँदि बान्हथी मोटनिया[1] हे ना।
दइया उनकर बेटिया दुलरइतो बेटी ना।
दइया मउनी खेलऽ हथ धराहर हे ना।
दइया मूसरे के धार पनियाँ बरसइ हे ना।[2]

इस गीत में इन्द्र की पूजा का महत्त्व दरसाया गया है। साथ ही, इसमें अतिवर्षण का वर्णन भी हुआ है।

अनावृष्टि का उल्लेख भी मगही गीत में उपलब्ध होता है—

साँप छोड़लइ अप्पन केंचुल गंगा मइया छोड़लन अरार।
छोड़लन अनजानू साही अप्पन जोइया,
लयलन दुलरइतो देई के लाय।
लाजो न लगवो गोसइयाँ[3], पानी के देहूँ छछकाल।
देव तोरा छतियो न फाटो, पानी बिनु परलइ अकाल।[4]

इसमे अनावृष्टि के कारण हाहाकार प्रदर्शित किया गया है। साथ ही, इन्द्र भगवान् से जल बरसाकर दुःख दूर करने की भी प्रार्थना की गई है।

मगही-बरसाती गीतों मे गार्हस्थ्य-जीवन की विविध अनुभूतियों के चित्र[5] एवं नारी के दिव्य सतीत्व[6] के वर्णन उपलब्ध होते हैं।

कजरी :

सावन-भादो मास मे मगही-क्षेत्र में 'कजरी' या 'कजली' गाई जाती है। सम्भवतः, बरसात के कजरारे बादलों के सादृश्य पर ही इस समय गाये जानेवाले गीतो को यह संज्ञा

---

१. खेत की मोरी, नाली।

२. हि० सा० बृ० इ०, १६वाँ भाग, पृ० ५४–५५।

३. इन्द्र देवता।

४. हि० सा० बृ० इ०, १६वाँ भाग, पृ० ५४–५५।

५. एक राजस्थानी ग्रामवधू बरसात के दिनों मे अपनी और अपनी ससुराल की दिनचर्या इस प्रकार वर्णित करती है—

झिरमिर-झिरमिर मेहूड़ो बरसै, बादलियो घररावे ए।
जेठ जी तो मेरा बूजा काटै, परण्यो हलियो बावै ए।। झिर०।।
देवर मेरो करै अलसौटी, जेठाणी रोटी ल्यावै ए।। झिर०।।
ग्वालाँ नै म्हारै गलछट चूरमो, हाल्या नै खीर लपासी ए।। झिर०।।

नन्ही-नन्ही बूँदो मे मेह बरस रहा है, बादल गरज रहा है। मेरा जेठ खेत निरा रहा है, मेरा पति हल चला रहा है। देवर 'अलसौटी' कर रहा है, जेठानी गाँव से खेत में रोटी ला रही है। मै घर में बैठी इन परिवार-जनो के लिए रसोई बना रही हूँ। सन्ध्या को इनके खेत से लौटने पर ग्वालों को घी-युक्त चूरमा, हल चलानेवालो को खीर और लपसी बनाकर खिलाऊँगी।

—रा० लो० गी०, पृ० ६८।

६. देखिए म० लो० सा०, पृ० ४७–४८।

दी गई है। यद्यपि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इस नामकरण के अन्य कारण दिये हैं[1]—

१. मध्यभारत में दादूराय नामक एक बड़ा देवभक्त राजा था, जो किसी मुसलमान को गंगा का स्पर्श न करने देता था। एक बार इसके राज्य में अकाल पड़ा, तो इसने अपनी 'देवभक्ति' से पानी बरसा दिया। कुछ दिनों के बाद इस लोकप्रिय राजा की मृत्यु हो गई। उसकी पत्नी 'नागमती' उसके साथ सती हो गई। तब उस राज्य की महिलाओं ने अपनी वेदना की व्यंजना के लिए एक नये राग का आविष्कार किया, जिसका नाम 'कजली' हुआ।

२. दादूराय के राज्य में 'कजली' नामक वन था, उसी के नाम पर उस शैली के गीत का नाम 'कजली' पड़ा।

३. सावन-भादों के शुक्लपक्ष की तीज का नाम (इस दिन कजली खूब गाई जाती है) ही कजली-तीज है। इस नाम से भी इसकी उत्पत्ति मानी जाती है।

भारतेन्दु के उपर्युक्त अन्य अनुमानों में सत्य का अंश कितना है, कहना कठिन है। पर, भादो की कजली-तीज के दिन 'कजली' गीत बहुत गाये जाते हैं। अतः, इस आधार पर इसके नामकरण की बात स्वीकार की जा सकती है।

'कजली'-गीत के साथ झूला का अनिवार्य सम्बन्ध प्रतीत होता है। कारण झूला झूलकर इसके गाने की प्रथा प्रायः समस्त मगही-क्षेत्र मे प्रचलित है। सावन-भादो में मन्दिरों में भगवान् को भी झूला झुलाया जाता है। इसे 'झूलन' कहते हैं। 'झूलन' देखने के लिए मन्दिरों में इन महीनों में भीड़ लगी रहती है।

झूला के साथ गाये जाने के कारण कजली-गीत बड़े ही कर्णमधुर हो जाते हैं। प्रायः किसी बड़े बाग में या खुले मैदान में या नदी-तट पर किसी सघन वृक्ष की डाली में 'डोरी' लगाकर और उसपर 'पीढ़ा' डालकर झूला बना लिया जाता है। कुछ लोग झूले पर बैठे होते हैं और कुछ लोग खड़े होकर 'पेंग' मारते होते हैं। सभी झूला झूलते हुए सम्मिलित स्वर में 'कजली' गाते हैं। किसी स्थान पर दल बनाकर ढोलक के साथ भी कजली गाने की प्रथा है।

वर्ण्य विषय : कजरी में संयोग एवं वियोग-श्रृंगार के चित्ताकर्षक वर्णन मिलते हैं। इन गीतों में ऋतु-शोभा का भी वर्णन होता है। ऋतु-शोभा में वर्षा-वर्णन को प्रधानता दी जाती है। वर्षा के साथ विरहिणी के आँसू मिलकर वातावरण को पूर्ण करुणासिक्त बना देते हैं। इसीसे डॉ० ग्रियर्सन ने कहा है : 'इन गीतों का वातावरण करुण रस से पूर्ण है, यद्यपि इनमें विभिन्न भावनाएँ और भाव पाये जाते हैं।'[2] कजरी में गार्हस्थ्य-जीवन के विविध पक्षों की झाँकियों के साथ सामयिक विषयों का भी उल्लेख रहता है।

उदाहरणार्थ, मगही के कुछ कजली-गीत प्रस्तुत किये जाते हैं। एक गीत में ननद अपनी प्रोषितपतिका भाभी से कदम्ब-वृक्ष में झूला झूलने का आग्रह करती है। पर,

---

१. डॉ० ग्रियर्सन : ज० ए० सो० बं०, भाग ७३, खण्ड १ (१८८४), पृ० २३७।

२. ज० ए० सो० बं०, भाग ५३, खण्ड १ (१८८४), पृ० २३७।

विरहिणी को प्रिय के अभाव में सब कुछ दुःखकर ही प्रतीत होता है। दोनों का संवाद बड़ा मार्मिक है—

हिंडोलवा लागल हइ कदमवाँ, भौजो चलहु झूले ना।
पियवा सावन में बिदेसवा ननदो, हिंडोलवा भावे ना।
आवइ पानी के छिटकवा, भौजो जियरा हुलसइ ना।
मनमा कुहुँके हे ननदिया, सैंया पतिया भेजे ना।
लागल सावन के फुहरवा भौजो, पपिहा बोलइ ना।
बुँदवा लागइ मोरा तनमा, जिया मोरा झुलसइ ना।[1]

इन्हीं भावों की व्यंजना एक दूसरे गीत मे हुई है—

रामा आइ गेलइ सवनमा, मोरा सजनमा आवे ना।
रामा गरजइ कारे बदरवा, झर-झर मेहा बरसइ ना।
रामा बन में बोलइ कोइलिया, मोरा मनमा तरसइ ना।
रामा चमचम चमकइ बिजुलिया, मोरा मनमा डरपइ ना।
रामा सनसन चलइ पवनमा, मोरा तनमा काँपइ ना।[2]

कजरी मे संयोग-पक्ष के मनोहारी चित्र भी मिलते हैं—

काँधा हँसि हँसि बोलि बोलइ,
उ तो करइ ठिठोली ना ॥ कान्हा० ॥
राहे बाटे बहियाँ मरोरइ,
उ तो करइ मचोली ना ॥ का० ॥
असगर आ के मिलल कुंजन में,
उ तो रोकइ टोली ना ॥ का० ॥

---

१. करूँ कौन जतन अरी ए री सखी,
मोरे नयनों से बरसे बादरिया।
उठी काली घटा बादल गरजे,
चली ठंढी पवन मोरा जिया लरजै।
थी पिया मिलन की आस सखी,
परदेस गये मोरे साँवरिया।
सब सखियाँ हिंडोले झूल रही,
खड़ी भी जूँ पिया तोरे आँगन में।

—ह० ग्रा० सा०, पृ० १४५।

२. सखिया स्याम नहीं घर आए, पानी बरसन लागे ना।
बादल गरजे, बिजुली चमके, जियरा धड़के ना।
सोने की थारी में जेवना परोसलीं, जेवना भींजे ना।
झाँझर गेड़ुआ गंगाजल पानी, पनिया भींजे ना।

—भो० लो० सा०, पृ० १४२ : श्री वै० सिं० 'दिनोद'।

ग्वाल बाल संग खाये-लुटावे,
उ तो दही मटकोली ना ।। का० ।।

कदम्ब की डाल मे झूला डालकर कृष्ण राधा के साथ झूल रहे हैं—

झूला लागे कदम के डरिया, झूले कृष्ण मुरारी ना ।
कथिए के डोरी कथिए के झूला, कथिए के डारी ना ।।
रेसम के डोरी, सोना के झूला, कदम के डारी ना ।
के झुलइ हिंडोलवा, केहि मारइ पेंगवा ना ।।
कान्हा झुलइ हिंडोलवा, राधा मारइ पेंगवा ना ।

कजरी-गीत अन्यत्र भी लोकप्रिय हैं । मिर्जापुर की कजली बहुत प्रसिद्ध मानी जाती है । यथा :

लीला रामनगर की भारी, कजली मिर्जापुर सरदार ।

अर्थात्, 'रामनगर की रामलीला बहुत बड़ी होती है और मिर्जापुर की कजली उत्तम होती है ।' यहाँ तो कजली के दंगल भी हुआ करते हैं । इसमें गवैयों के दो दल रात-भर कजरी गाने की प्रतियोगिता करते हैं । दंगल जीतनेवाले को पुरस्कार दिया जाता है । परन्तु, इनकी 'कजरी' प्रायः स्वरचित होती है । इनमे सामयिक विषयों का उल्लेख रहता है ।

सावन में ब्रज में भी गीत गाये जाते हैं । इनपर, डॉ० सत्येन्द्र ने 'सामन के गीत' शीर्षक के अन्तर्गत विचार किया है ।[1]

'प्रेमघन' आदि अनेक कवियों ने तो 'कजरी' की रचना भी की है । इस प्रकार दो प्रकार के कजरी-गीत उपलब्ध होते हैं—१. पारम्परिक और २. रचित । मगही में पारम्परिक कजरी-गीत ही प्रचलित हैं ।

देवगीत

'देवगीत' दो अवसरो पर गाये जाते हैं—१. किसी संस्कार के अवसर पर और २. किसी पूजा, व्रत-त्योहार के अवसर पर ।

संस्कार के अवसर पर गाये जानेवाले देवगीतो पर 'संस्कार-गीत' के अध्ययन-क्रम में विचार किया जा चुका है ।

यहाँ किसी पूजा, व्रत-त्योहार के अवसर पर गाये जानेवाले गीतों पर विचार करना ही अभिप्रेत है । इनका अध्ययन भी दो उपशीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है—

१. सामान्य देवगीत, जो किसी भी पूजा, उत्सव, व्रत आदि के समय मांगलिक दृष्टि से गाये जाते हैं । इनका आनुष्ठानिक महत्त्व नहीं है ।

---

१. ब्र० लो० सा० अ०, पृ० ३०७—३२३ ।

२. विशेष देवगीत, जो किसी पूजा, व्रत, त्योहार आदि के अवसर पर अनिवार्य रूप से गाये जाते हैं। इनका आनुष्ठानिक महत्त्व होता है।

मगध में जिन देवताओं की पूजा होती है, वे दो श्रेणियों के हैं—

१. पौराणिक देवता, जो परम्परा से पूजित होते चले आ रहे हैं और जिनके नाम के साथ अनेक पौराणिक इतिवृत्त जुड़े हुए हैं। यथा : शिव, पार्वती, गणेश, राम, सीता, लक्ष्मण, हनुमान्, कृष्ण, रुक्मिणी, राधा, सूर्य, विधाता, गंगा, नाग, सन्ध्या, दुर्गादेवी आदि। इन देवताओं की कथा के साथ अन्य पात्रों के नाम भी जुड़े हैं, जिनकी गणना देवपात्रों में होती है—बसहा बैल; दशरथ, जनक, कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी, भरत, शत्रुघ्न, लव, कुश, शबरी, वासुदेव, नन्द, देवकी, जसोदा, प्रद्युम्न, गोपी, राधा आदि। इन देवी-देवताओ से सम्बद्ध गीत समस्त भारतीय भाषाओं के क्षेत्र में कतिपय रूपान्तरों के साथ प्रचलित हैं। इनके इतिवृत्त भी सर्वज्ञात हैं। अतः, इनका परिचय देना यहाँ अपेक्षित नहीं।

२. ग्रामदेवता, जिनके सम्बन्ध मे कोई पौराणिक आख्यान अभी तक ज्ञात नहीं है, पर जो विविध मागलिक अवसरो पर श्रद्धा से पूजित होते हैं।

ग्रामदेवताओं की संख्या काफी बड़ी है। इनका जो परिचय अभी तक मुझे उपलब्ध हो सका है, उसका संक्षिप्त विवरण निम्नांकित है—

गृह-देवता : रामठाकुर, बन्दी, मनुख, परमेसरी और सोखा-सोखाइन। ये देवता 'कुलदेवता' के रूप में गृहस्थों के घर मे विराजमान रहते हैं। मगध के प्रत्येक गृहस्थ के घर मे एक अलग कोठरी रहती है, जिसे 'देओता घर' या 'सीराघर' कहा जाता है। इसीमे देवता रहते हैं। प्रत्येक जाति या परिवार में अपनी-अपनी परम्परा के अनुसार किसी विशेष कुलदेवता को मान लिया जाता है। यथा : किसी के देवता रामठाकुर होते हैं, किसी के बन्दी, किसी के मनुख आदि। प्रत्येक गृहस्थ के 'सीराघर' में उपर्युक्त देवताओं में से किसी एक की 'पिण्डी' रहती है, इसे 'सीरा पिण्डा' कहते हैं।

पूजा-विधि : किसी संस्कार (जन्म, विवाहादि) के अससर पर कुलदेवता की सोने, चाँदी या ताँबे की प्रतिमा बनाई जाती है, जिसे तागे मे गूँथकर एक पौती (छोटी पिटारी) में रखा जाता है। इसे 'सीराघर' मे ताखे पर रखा जाता है। किसी संस्कार या उत्सव के अवसर पर स्थान-विशेष को लीप-पोतकर पौती को रखते हैं और देवता की पूजा करते हैं। पूजा की दो विधियाँ होती हैं—१. वैष्णवी और २. आसुरी। वैष्णवी पूजा दूध, पकवान, फल आदि से की जाती है। इसमें भी प्रतीक रूप से आँटे की भेड़ आदि बनाकर बलि चढ़ाई जाती है। आसुरी पूजा में पकवान आदि से देवपूजन करने के बाद बकरे आदि की बलि चढ़ाई जाती है।

नवविवाहिता वधू निश्चित विधान के बाद ही 'सीराघर' के देवता को छू सकती है। चौठारी के बाद एक विशेष दिन निश्चित कर पूजा-अनुष्ठान के साथ उससे 'कुल-देवता' का स्पर्श कराया जाता है। इसके बाद वह सर्वदा इनकी पूजा करती है। इनकी पूजा प्रायः दाल-भरी पूड़ी, खीर, रोट आदि से की जाती है। पूजा के प्रसाद को अपने

परिवार के लोग ही खाते हैं और शेषांश को जमीन में गाड़ देते हैं। ग्रामीण भाषा में इसे 'रोट तोड़ना' कहते हैं।

ग्रामदेवता :

गौरैया बाबा : देवीस्थान के बाहर इनकी पिण्डी बाँधी जाती है। सावन में अन्य देवी-देवताओं के साथ इनकी पूजा की जाती है। भक्त इनके सामने 'मानता' भी मानते हैं और कार्य सिद्ध होने के बाद विशेष रूप से इनकी पूजा करते हैं। इनपर शराब ढाली जाती है और खस्सी, पठरू, कबूतर आदि की बलि चढ़ाई जाती है। कितने ओझा और भक्त की देह पर इनका आगमन होता है। ये भूत-प्रेतादि से भक्तों की रक्षा करते हैं।

डीहवाला गौरैया : ये दुसाधों के बड़े प्रभावशाली एवं सशक्त देवता माने जाते हैं। जनविश्वास है कि जायदाद खोने पर इनकी 'मानता' मानने से वह मिल जाती है। मनोवाछित फल की प्राप्ति पर तो इनकी और भी विशेष ढंग से पूजा की जाती है। इन्हे भी बलि एवं शराब भेंट की जाती है। इनसे सम्बद्ध कुछ छिट-फुट पद निम्नाकित हैं—

दिल्ली से जब चलल गौरैया, हथ पोथिया लटकाइ हे।
पोथी छुटलो बेल बबूर तर, धौगल जाये मधुआ दोकान हे।
तीन सै साठ भट्ठी[1] पीलऽ गौरैया, तइयो न भरलो पेट हे।
कैसहुँ तोरा चैन न पड़लो, जाइ पड़लऽ सुअरि बखोर[2] हे।

चलल आवऽ इह गोरैया, चलल आवऽ हइ गोरैया,
हैनी भुतवन के रक्खे रखबार हे।

× × ×

कागा ले गेल मुनहर गोरैया, हमर गलेहार गे माई।

भिन्न-भिन्न स्थानों पर स्थापित 'गौरैया बाबा' के भिन्न-भिन्न नाम हैं। यथा : सूपी गाँव में 'बढ़ौना' (जहानाबाद, गया) के पास उनका नाम 'गमहरि गौरैया' है। बेला स्टेशन से तीन मील पूरब, जमुनइया नदी किनारे शोणितपुर में इनका नाम 'सोनपुर गोरैया' है।

चूहरमल : ये दुसाधों के देवता हैं। इनके सम्बन्ध में एक कथा प्रचलित है। ये 'मोर मोकामा' के जमीन्दार बाबू अजबीसिंह के गुरुभाई थे। इनके रूप पर बाबू अजबी सिंह की बहन रेसमा मुग्ध हो गई। उसने इनसे प्रेम-प्रस्ताव किया। पर, चूहरमल तो इस लोक के जीव नहीं थे। उन्होंने बारह साल तक गौना कराकर पत्नी को अपने घर पर रखा था, फिर भी उसकी परछाईं न देखी थी। फिर, रेसमा के प्रेम-पाश में कैसे पड़ते ? त्रियाचरित्र रचकर रेसमा ने भाई और चूहरमल में लड़ाई लगा दी। अजबीसिह अपनी बड़ी सेना सहित चूहरमल के हाथ से मारा गया। पर, अन्त में भगवान् ने चूहरमल को सदेह स्वर्ग बुला लिया। इसके बाद इनकी समाधि बनाकर दुसाध लोग इनकी पूजा करने

१. शराबखाना।

२. कीचड़-मिश्रित गन्दा वासस्थान, जहाँ सूअर रहते है।

लगे। इनसे सम्बद्ध 'गाथागीत' बहुत प्रसिद्ध हैं। चूहरमल का अखाड़ा 'मोर मोकामा' में है।

बकतौर बाबा : ये अहीरों के देवता हैं और उनके पूर्वपुरुष माने जाते हैं। इससे सम्बद्ध एक कथा है—बकतौर बाबा बड़े भारी हिन्दू-हितरक्षक थे और मुसलमानों से जोरदार लोहा लेते थे। एक बार बादशाह ने क्रुद्ध होकर इन्हे देश-निकाला दे दिया और इनके साथ एक बरतन तक न जाने दिया। भैंस चराते हुए ये जंगल पहुँचे, तो इन्होंने वहाँ एक भयंकर शेर को पछाड़ा। इनकी माता का नाम कोयला था। वह सर्वदा साथ रही। अन्त मे कष्ट सहते-सहते इनकी मृत्यु हो गई।

उसी समय से अहीर इनकी पिण्डी बनाकर पूजा करते हैं। संस्कारादि के अतिरिक्त बैसाख-जेठ की जलती धूप (सतघड़िया = जलती धूप की घड़ी) में इनकी पूजा गाय-भैंस के दूध, फल, फूल और नैवेद्य से की जाती है। ये बड़े तेजस्वी देवता माने जाते हैं। इससे इनपर गाँजा चढ़ाया जाता है। इनके प्रसाद को भक्त लोग बरतन या पत्तों में न खाकर, जमीन मे गढा (गुबदा) खनकर और उसी मे रखकर खाते हैं। कारण, बकतौर बाबा बरतन के अभाव में जमीन में ही खाते थे। गाय-भैंस आदि जानवरों के बीमार होने पर अहीर लोग इनके सामने 'मानता' मानते हैं और पूर्णकाम होने पर विशेष रूप से पूजा करते हैं।

इनसे सम्बद्ध गीत और गाथाएँ अहीर लोगों में प्रचलित हैं।

बाबा साहब : ये तेलियों के पूर्वपुरुष माने जाते हैं। ये तीन भाई थे—भत्तन नायक, खेदन नायक और बदन नायक या बाबा साहब। ये बड़े धनी थे। इनका व्यापार मोरंग (नेपाल) देश से चलता था। बावन हजार बैल की लदनी इनके यहाँ होती थी। बदन नायक बड़े वीर थे। एक बार ये सिहुली जंगल में पड़ गये, जहाँ शेर से इनका भयंकर युद्ध हुआ और इन्होने उसे मार गिराया। पर, शेरनी इनके पीछे पड़ गई। सात दिन और रात उससे युद्ध करने के बाद इन्होंने तंग आकर वहीं अपने ओढ़ा[1] से गले में फाँसी(फँसरी) लगा ली और प्राण त्याग दिये। 'कोड़िना' नामक बैल ने उनके घर पर जाकर समाचार दिया।

ये इतने वीर और लोकप्रिय थे कि इनके मरने के बाद लोग इनकी पूजा करने लगे। कहा जाता है कि इनका धाम (पिण्डी) खड्गपुर स्टेशन से पाँच मील दूर जंगल में मेदिनीपुर के रास्ते पर है।

ग्वाला और तेली जाति के लोग इनकी विशेष रूप से पूजा करते हैं। कारण नायकजी के मैनेजर अहीर ही थे और बैलो की रक्षा में दक्ष थे। इनकी 'गाथा' प्रसिद्ध है।

बरहम बाबा : ये ब्राह्मणों के देवता हैं। इनकी पिण्डी प्रायः गाँव में सार्वजनिक जगहो पर या कही-कही गाँव से बाहर भी होती है। यह मिट्टी या पत्थर की बनी होती है। पिण्डी के स्थान को 'बरहम-थान' कहते हैं। इनकी पिण्डी ग्राम मऊ, थाना टिकारी, फखरपुर, अरबल आदि स्थानों मे है।

१. वह रस्सी, जिसे दुहराकर हाथ में लेकर या मुट्ठी मे लगाकर बैल को हँकाया जाता है।

विविध संस्कारो या पूजा-उत्सवो के समय हजाम से इन्हे विधिवत् निमन्त्रण भेजा जाता है। वह पान, कसैली आदि के साथ एक निमन्त्रण-पत्र इनकी चौरी पर रख आता है। इससे समझा जाता है कि वे निमन्त्रित हो गये। फिर, विधिवत् पकवान, दूध, फल आदि से इनकी पूजा होती है। इनपर पशुबलि नही चढाई जाती। इनकी पिण्डी पर जनेऊ भी दिया जाता है। ये शान्त देवता माने जाते हैं। विवाहोपरान्त वर-वधू एक साथ इनकी पिण्डी की पूजा करते हैं। गीतों में इनकी वन्दना की जाती है।

दरगाही पीर : ये मुसलमानो के देवता हैं, जिनकी पिण्डी गाँव के बाहर खन्धे में या पेड़ के नीचे कब्र की बनी होती है। ये देवता के रूप में जिनकी देह पर आते हैं, वह पीर खेलाता है। अतः, महिलाएँ ही पीर खेलाती हैं, उनमें ये अर्द्धचेतन अवस्था मे दरगाही पीर का नाट्य् करती हैं। इनकी पूजा की जाती है। 'देवास' जैसी क्रिया भी इनकी होती है। कुछ दरगाही फकीर घर-घर भीख माँगकर, पैसा जमाकर इनकी विशेष पूजा करते हैं। इस अवसर पर कुछ विशेष गीत गाये जाते हैं।

डॉक बाबा : ये तेजस्वी, पराक्रमी और भयंकर देवता माने जाते हैं, जिनसे लोग बहुत भय खाते हैं। जब किन्हीं एकबाली और तेजस्वी पुरुष की मृत्यु होती है, तब उनकी आत्मा भगत पर आती है। वह उनकी ही भाव-भंगिमा प्रकट करने लगता है। उस समय लोग कहते हैं, इसपर 'डॉक बाबा' आये हैं।

इनकी पिण्डी ताखे (धरखा) पर और दरवाजे की बगल में बाँधी जाती है। कुछ लोग घर के अन्दर अगिन देवता आदि की बगल मे भी इनकी पिण्डी बाँधते हैं। पर्व-त्यौहारों के अवसर पर विविध पकवानो से इनकी पूजा की जाती है। मनःकामना-पूर्त्ति के बाद तो इनकी विशेष रूप से पूजा की जाती है।

अगिनमाई : ये एक देवी हैं, जिनकी पूजा के पीछे एक कथा है-- एक हरिजन कमिया एक बाभन के घर काम करता था। एक दिन वह खेत से घर पर एक बोझा लाया, जिसे बाभनी ने उतारा। असावधानी के कारण बाभनी की नाक तक लगा सिन्दूर कमिया के हाथ में लग गया, जिससे बाभन को शक हो गया। उसने अपनी पत्नी और कमिया को जान से मरवा दिया। जनता को उनकी निर्दोषता का पूरा भरोसा था। अतः, उनके बीच कमिया की पूजा 'डॉक बाबा' के नाम से और बाभनी की पूजा 'अगिन माई' के नाम से होने लगी। दोनों की पिण्डियाँ लोग अगल-बगल घर के ताखो (धरखा) मे रखते हैं। इनकी पूजा के समय लोग गीत गाते हैं।

दखिनाहा बाबा : मगध के दक्षिणी भागो (सन्तालपरगना, छोटानागपुर, राँची प्रभृति क्षेत्र) में इनकी पूजा की जाती है। इनकी पूजा के पीछे एक कथा है—

सन्तालपरगना, छोटानागपुर आदि क्षेत्रों में प्रथा है कि जायदाद की रक्षा के लिए उसे देवार्पित कर देते हैं। जब कोई व्यक्ति उस जायदाद से कुछ लेना चाहता है, तब उस देवता से अनुमति लेनी पड़ती है। एक दिन एक व्यापारी ने देवता से, एक खेत से छह भुट्टा लेने की अनुमति लेकर लालचवश अधिक भुट्टे तोड़ लिये। बस इस खेत के अधिष्ठाता देवता के शाप से वह तुरन्त मर गया। इस घटना को दैवी कोप मानकर लोग

उस मृत व्यक्ति से सहानुभूति करने लगे और अन्ततः 'दखिनाहा बाबा' के नाम से उसकी पूजा करने लगे। बाबा साहब (बदन नायक) की पूजा के साथ इनकी भी पूजा होती है। लोग इनको 'पाहुर' देते हैं।[1]

जनविश्वास है कि ये बड़े भयंकर देवता हैं। इससे इनकी पिण्डी घर से बाहर बाँधी जाती है। डाकिनी-शाकिनी आदि इनकी पत्नियाँ मानी जाती हैं। भारी उपद्रव, बीमारी आदि के अवसर पर इनकी 'मनिता' मानकर लोग दुःख से छुटकारा पाते हैं।

कोयला वीर : ये निम्न वर्ग के देवता माने जाते हैं। गाँव से बाहर, वृक्षादि के नीचे इनकी पिण्डी होती है। इनपर अन्य पकवानो के साथ शराब अवश्य ढाली जाती है। जहानाबाद (गया) में इनकी एक पिण्डी है। जब बैलगाड़ीवाले नये बैलो को गाड़ी में जोतते हैं, तब कोयला बाबा पर शराब अवश्य ढाल देते हैं।

फूल डाँक : इनकी पिण्डी चार ईंटो की बनी होती है, जिसकी स्थापना खलिहानों में रहती है। दूध और ऐपन से इनकी पूजा होती है। खेत का 'नवान्न' पहले इनकी पिण्डी पर चढ़ाया जाता है। फूल डाँक की एक प्रसिद्ध पिण्डी ग्राम मुबारकपुर, बेलागंज (गया) के प्रसिद्ध पण्डित स्व० श्रीशिवनन्द मिश्रजी वैद्यराज के खलिहान मे है।

पंचदेवता : टिकारी मे मोरहर नदी के पार बेला से टिकारी तक जो सड़क गई है, उसी के किनारे (टिकारी नगर प्रवेश करने के पूर्व) 'पंचदेवता' नामक एक बड़ा ही रमणीक स्थान है। अनुमान किया जाता है कि सुन्दर शाह के कुछ ही काल बाद या उसी समय इस स्थान में 'पंचदेवता' की स्थापना हुई थी। उस स्थान मे एक विशाल तालाब भी है, जिसके सभी किनारे पक्के बने हैं और चारों ओर से सीढ़ियाँ लगी हैं। इससे इन 'पंचदेवताओं' की स्थापना की प्राचीनता झलकती है।

इनकी पूजा पकवान आदि से होती है। इनके सामने मनौतियाँ मानी जाती हैं, जिनकी पूर्त्ति पर विशेष पूजा की जाती है।

पूजा के अवसर पर देव-सम्बन्धी गीत गाये जाते हैं।

भैरो बाबा : ये 'देवी मइया' के भाई माने जाते हैं। इनकी सवारी कुत्ते की होती है। विविध पकवानों से इनकी पूजा की जाती है।

ढेलवा गोसाईं : इनकी पिण्डी ढेलों से बनती है। देहातो की सड़क के किनारे ढेला एकत्र कर स्तूपाकार आकृति बनाई जाती है। यही देवता की पिण्डी कहलाती है। जिस व्यक्ति की नजर ढेले के इस स्तूप पर पड़ जाती है, उसे खूब जोर से मारकर ढेला चढ़ाना पड़ता है। इससे ये देवता प्रसन्न होते हैं। इनके सामने 'मनिता' मानी जाती है कि अमुक इच्छा पूरी होने पर इतनी संख्या में ढेले चढ़ायेंगे। ढेला चढ़ाकर, दूध पकवान फल आदि से इनकी पूजा की जाती है। 'बराबर' पहाड़ी के पश्चिमोत्तर हथियाबोर के समीप इस देवता की खण्डित प्रस्तर-मूर्त्ति मिलती है।

पटनदेवी : ये पटना (पाटलिपुत्र) की अधिष्ठात्री देवी मानी जाती हैं। पटना

---

१. पकवान आदि पूजा-सम्बन्धी भेंट।

में 'पटनदेवी' के दो मन्दिर हैं। एक मे बड़ी पटनदेवी का निवास है, दूसरे में छोटी पटन-देवी का। दोनो मन्दिरो मे विविध पकवानो, फलो और दूध से देवी की पूजा की जाती है।

यहाँ देवी के गीत भी गाये जाते हैं।

राहू बाबा : ये दुसाधो के देवता हैं। इनका 'देवास'[1] होता है। यह देवास गरमी के वैशाख महीने मे अधिक होता है। इनके दो सेवक माने जाते हैं—१. भीमल और २. बुद्धू। लकड़ी में आग लगाकर और उसे घी से प्रज्वलित कर उसपर इनके भक्त नंगे पैर चलते हैं। इतना ही नहीं, पूजा करनेवाले लोग खौलते हुए दूध में हाथ डाल देते हैं। जिनका हाथ नहीं जलता, वे पाप से मुक्त समझे जाते हैं।

महारानी मइया : शीतला देवी का दूसरा नाम 'महारानी मइया' है। ये सात बहनें हैं। जब किसी की देह में गोटी निकलती है, तब उसपर शीतला देवी का प्रकोप माना जाता है। ये ही 'चेचक' या 'गोटी' की बीमारी से रक्षा करनेवाली देवी मानी जाती हैं। इनके नाम हैं—बड़की मइया, कलहकारिणी मइया, बाइसी मइया, पनसाहा मइया, कोदौआ मइया, जगतारिणी मइया और फुलमन्ती मइया।

गाँव के 'देवीस्थान' मे इनके मन्दिर का निर्माण होता है, जिसमे सातों बहिन देवियो की पिण्डी लगातार बाँधी जाती है। विविध महीनो में इनकी पूजा विशेष रूप से की जाती है। परन्तु, जब किसी को 'निकासी' (शीतला) से मुक्ति मिलती है, तब वह इस खुशी मे 'मातापूजी' करता है।

'माता' की पूजा ठण्डे पकवान एवं ठण्डे दूध से की जाती है। उनके सामने मनौतियाँ मानी जाती हैं। तदनुसार, उनपर खस्सी, पठरू, कबूतर आदि की बलि दी जाती है। उनके लिए पेड़ों मे हिंडोले भी लगाये जाते हैं। उनकी प्रसन्नता के लिए उनके सम्मुख गीत भी गाये जाते है।

महारानी बिधिन : ये 'सात बहिन शीतला' की एक बहिन हैं। ये सबसे खतरनाक

---

१. वह देवस्थान है, जहाँ देवता की पिण्डी स्थापित रहती है। इस स्थान को लोग बहुत साफ-सुथरा रखते है। यहाँ ओझा और भगत लोग बैठते है तथा देवता की पूजा करते है। इस स्थान पर नित्य होम किया जाता है। देवास मे 'देवता' किसी ओझा या भगत की देह पर आते है। जो देवता आते है, भगत या ओझा उन्ही का नाट्य करता है और संकेतों से उनकी पूजा में व्यवहृत वस्तुओ की माँग करता है। यथा : जिस देवता को जो जानवर प्रिय है, वे उनकी ही बलि माँगते है। जैसे : कबूतर, मुरगी, खस्सी, पठरू आदि। इसी भाँति भगत, देवता के प्रिय पकवानो की माँग करता है। श्रद्धालु जन भगत के माध्यम से देवता की कामना पूर्ण करते है। देवता की पूजा के सम्पादन को 'देवास लगाना' कहते है। जिस क्षण किसी भगत या ओझा पर कोई देवता आते है, वह उन्ही का प्रतीक हो जाता है। ऐसी स्थिति मे लोग उससे विवाह, पुत्र, आरोग्य आदि के लिए वरदान माँगते है। वह भी देवता के पुजापा के सामान देने का वचन लेकर वरदान देता है। भक्त की देह पर अनेक देवता आते है। यथा : दखिनाहा बाबा, अगिन माई, डॉक बाबा, राहबाबा आदि। जिस समय ये देवता किसी की देह पर आते है, उस समय उसकी पूजा अवश्य की जाती है।

समझी जाती हैं। इनका प्रकोप मनुष्य पर बड़ी-बड़ी गोटियों के रूप मे होता है और शरीर का कोई ठौर छूटता नहीं। अतः, इनकी पूजा भी प्रतीक-रूप में इसी आकार की अस्पष्ट मूर्त्ति बनाकर की जाती है। पूजक इनके ऊपर सोने या चाँदी की आँख, नाक, कान, नख आदि बनाकर 'चढ़ौआ' चढ़ाते हैं। इसमे भक्त की यह प्रार्थना व्यक्त होती है कि शरीर के इन अंगों पर इनका प्रकोप न हो।

एक ओर गोटी (चेचक) से घर में मृत्यु होती है, दूसरी ओर इनकी पूजा की जाती है, जिससे भविष्य में घर के अन्य व्यक्ति इनके प्रकोप के शिकार न हों। इनके ऊपर रोट, गुल्गुल्ला, केला, कसार आदि पकवान चढ़ाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त 'मानता' के अनुसार देवी के सम्मुख खस्सी, पठरू, कबूतर आदि की बलि चढ़ाई जाती है। इनके सामने भी देवी के गीत गाये जाते हैं।

'महारानी बिधिन' का स्थान अगमकुँआ (गुलजारबाग की रेलवे लाइन के पास), पटना में है। बिहारशरीफ से एक कोस पश्चिम 'मघड़ा' नामक स्थान पर भी इनका मन्दिर है। इनके अतिरिक्त अनेक स्थानो मे इनके मन्दिर हैं।

सामान्य देवगीत :

कहा जा चुका है कि इस वर्ग में आनेवाले देवगीत किसी भी पूजा, उत्सव, व्रत आदि के समय मागलिक दृष्टि से गाये जाते हैं। इनका अनुष्ठान की दृष्टि से महत्त्व नही होता।

वर्ण्य विषय : इन देवगीतों मे देव-देवी का माहात्म्य-वर्णन होता है। अनेक रूपों में देवस्तुति की जाती है। कही देवता के दिव्य रूप एवं गुणों की प्रशंसा की जाती है, कहीं देवमन्दिर के सौन्दर्य का बखान होता है। कहीं देवता की अवज्ञा करने से जीव दण्डित होते हुए देखे जाते हैं, कही उनकी भक्ति, पूजा, अर्चना आदि से सुख-शान्ति समृद्धि पाते हुए और कहीं देवपीठ की रक्षा एवं स्वच्छता मे संलग्न दीख पड़ते हैं। पूजार्चन के मूल में भगवान् से सुख-सम्पत्ति तथा पारिवारिक वृद्धि पाने की आकांक्षा रहती है। इन आकाक्षाओं की सुन्दर व्यंजना इन देवगीतों में होती है। **यथा :**

एक देवगीत मे विष्णु के अवतार रामजी से सीता आशीर्वाद माँगती हैं—

तिरिया जलम जब देलऽ हो नरायन,
कोखिया बढ़न्तु मोरा दीहऽ हे।
सासुरा में दीहऽ राम जी अनधन लछमी,
नैहर सहोदर भाई हे।
कोखिया के जुड़े जुड़ रखिहऽ नरायन,
जुग-जुग दीहऽ अहिवात हे।

इसमें नारी-जीवन की सारी आकाक्षाएँ सुन्दर रूप मे व्यक्त हुई हैं। नारी चाहती है पति, पुत्र, भाई एवं अन्य परिवार के लोगों का दीर्घ जीवन तथा नैहर ससुराल में धन्य-धान्य की वृद्धि। सीता के रूप में सभी रमणियाँ 'नारायण' से यही सुख माँगती हैं।

एक अन्य मगही-गीत में भगवान् राम की अवज्ञा करने के कारण 'चकवा' शापित

होता है और उन्हे प्रसन्न करने के कारण धोबी वरदान पाता है। कथा[1] यह है कि रावण छल से सीता को हरकर ले गया। बारह साल बाद जब राम अहेर से लौटकर आये, तब उन्होंने अपनी कुटिया मे सीता को नही पाया। वे वन-वन उसकी खोज में भटकने लगे और सभी जीव-जन्तुओं से सीता का पता पूछने लगे। अन्त में, उनकी दृष्टि एक 'चकवा-चकइया' के जोड़े पर पड़ी, जिससे उन्होंने सीता का पता पूछा—

मैं तो जे पूछिलउ चकवा-चकइया, एहि बाटे सीता देखले जाइन हे ?

उन्होंने ऐंठकर उत्तर दिया—

ना जानूँ मैं सीता ना जानूँ मैं मीता, मोरा पेटवा के धंध हे।

क्रुद्ध होकर राम ने अभिशाप दिया—

ऐसन असिसवा तोरा देवउ रे चकवा, दिन भर जोड़ी रात के बिछोह हे।

भगवान् के इसी अभिशाप का परिणाम है कि चकवा-चकई की जोड़ी रात मे विछुड़ जाती है।

तत्पश्चात् भगवान् ने एक धोबी से सीता का पता पूछा। उसने उन्हें बता दिया। भगवान् ने उसे आशीर्वाद दिया—

ऐसन असीस तोरा देवउ रे धोबिया, फटलो गुदरिया नहिं भुलाए रे।

धोबी जाति भगवान् के इसी आशीर्वाद का लाभ आज भी पा रही है। धोबी हजारों वस्त्र धोता है, पर एक भी नही भूलता। उसकी स्मृति-शक्ति बड़ी तीव्र होती है।

एक अन्य गीत मे वर्णन आता है कि भगवान् शबरी के घर पधारनेवाले हैं। वह स्वागतार्थ बड़ी तैयारियाँ कर रही है—लम्बे बालों से उनके आने का मार्ग स्वच्छ कर रही है, कुश की चटाई बिछा रही है, पैर पखारने के लिए काठ के बरतन मे पानी ला रही है और आँगन में लगे वैर के पेड़ से मीठे फल चखकर पत्ते पर संग्रह कर रही है—

सेवरी के अँगना में बैरिया के गछिया हे,
चीखी-चीखी खोनमा लगावे सेवरी अँगना।
भोग लगइहन भगवान सेवरी के अँगना।[2]

इसमे भक्त और भगवान् के अभिन्न प्रेम को दरसाया है।

भगवान् कृष्ण की बाल-लीलाओं मे छिपी यौवन-लीला के वर्णन भी मगही में उपलब्ध हैं। एक गीत[3] में कृष्ण की रसिकता से तंग आकर किसी गोपी ने सुन्दर उपालम्भ दिया है। कथा इस प्रकार है—एक गोपी दही लेकर कदम्ब-वृक्ष के पास पहुँची कि कृष्ण बाँसुरी बजाते मिले। उन्होंने कहा—'मैं तुम्हारा दही खाऊँगा; मटकी फोड़ूँगा और तुम्हारे साथ विलास करूँगा। गोपी ने कहा—'तुम्हारे बाबा नन्द को कह दूँगी, तो पीटे जाओगे।' चट कृष्ण ने कहा—'तो रूप बदल लूँगा।'

मारे के बेरी ग्वालिन बालक होयबो, नन्द लीहें उठाय हे।

१. देखिए म० लो० सा०, पृ० ५७।

२. वही, पृ० ५८।

३. वही, पृ० ५९।

आखिर कृष्ण ने मनमानी की ही। गोपी शिकायत लेकर यशोदा के पास पहुँची, तो उन्होंने कहा—

हमरो जे किसना गोआरिन लड़िका अबोधवा, दूलत हथि पलंग हे।

गोपी ने उपालम्भ किया—

अजी, घरे जे हथुन माता लड़का अबोधवा, वाहर छैला जुआन हे।

इस गीत में भगवान् कृष्ण की मानवीय लीला को प्रस्तुत किया गया है। भगत बड़े प्रेम से इस गीत को गाकर कृष्ण की वन्दना करते हैं। कहने की अपेक्षा नहीं कि कृष्ण की बाललीला का वर्णन साहित्य का प्रिय विषय रहा है।

गंगा के गीतों मे उनके रूप, शृंगार एवं माहात्म्य का वर्णन किया जाता है। गंगा एक नदी नहीं, देवी के रूप में मानी गई है, जिसमें स्नान करने से जन्म जन्मान्तर के पाप धुल जाते हैं। इसीसे लोकध्वनि उसे माँ, पापनाशिनी, उद्धारिणी, जगतारिणी आदि आदरवाचक संज्ञाओं से सम्बोधित करता है।

मगध में सभी शुभ कार्यों एवं संस्कारों के समय 'गंगा-पूजी' की जाती है। केवल मृत्यु के अवसर पर महिलाएँ गंगा-स्नान करके गंगा-तीर पर बैठकर रोती हैं। अन्य अवसरों पर 'गंगा' का शृंगार किया जाता है और उल्लास-भरे गीत गाये जाते हैं।

'गंगापूजी' के लिए महिलाएँ दल बाँधकर झूमर या गंगा के गीत गाती हुई गंगा के किनारे जाती हैं। साथ मे हजाम अपने सिर पर पूजा के सामान—पकवान, फल, सिन्दूर, दूब, ऐपन, पान, कसैली, रोली, अच्छत, फूल, दूध आदि—ले जाता है। जिसे गंगापूजी करनी होती है, वह स्नान करती है, फिर विधिवत् पूजा करती है। पूजा के समय 'गंगा के गीत'[1] गाये जाते हैं—

गंगा गहरी भरी।
तांबु भींजे, तांबु डोर भींजे, भइया भींजे नौ सै लोग।
गंगा गहरी भरी।
जगवारणी लहर नेवार[2] गंगा गहरी भरी।

इस गीत में गंगा के गाम्भीर्य एवं माहात्म्य का उल्लेख हुआ है।

दूसरे गीत में गंगा की छवि का वर्णन किया गया है—

माँगो गंगाजी के टिकवा सोभे,
बचवा अजब विराजे गंगा मइया,
खेलती चौघटिया॥ टेक॥[3]

इसमें विविध आभूषणों एवं वस्त्रों से अलंकृत, चारों घाटो के बीच किलोलें करती गंगा का वर्णन आया है। मगध में जनविश्वास है कि गंगा की कृपा से पुत्रहीना पुत्रवती होती है एवं उसकी मनःकामनाएँ पूरी होती हैं।

---

१. देखिए म० लो० सा०, पृ० ६२—६४।

२. समेटनेवाली।

३. देखिए म० लो० सा०, पृ० ६३।

पौराणिक देवी-देवताओ से सम्बद्ध उपर्युक्त गीत सभी मागलिक अवसरों पर गाये जाते हैं।

ग्राम-देवताओ से सम्बद्ध गीत भी इन अवसरों पर समान रूप से गाये जाते हैं। इन गीतों में देवस्तुति, देवमन्दिर की प्रशस्ति आदि के साथ भक्तों के पूजार्चन तथा सुख-समृद्धि की वृद्धि की आकांक्षाएँ वर्णित होती हैं। यथा : निम्नाकित मगही गीत[1] में पंच-देवों के मन्दिर, रूप एवं दया-दृष्टि की महिमा दरसाई गई है—

देकुली के आगे-पीछे, नरियर गाछे
उजे जाफर लागि गेलो, डरहर पान हे, देकुलिया बड़ा सुन्दर।
सेही पनमा खाथी परमेसरी देवा,
भींगी गेलइ बत्तीसों रंग दाँत, देकुलिया बड़ा सुन्दर।
सेही सिठिया खाथी अनजानु वेटी,
जनमों जनमों अहिवात देकुलिया बड़ा सुन्दर।

देवस्थान को, जहाँ देवताओ की पिण्डी रहती है, भक्त बड़े यत्न से लीप-पोत-धोकर स्वच्छ और पवित्र रखते हैं—

माई, गंगा जमुनवा केर चिक्कन मटिया,
ओही मटिए निपलों रामठाकुर देव के पिढ़िया।
माई जिरवा छन्ने लागल हे सोबरना के मड़िया।
माई ओही मटिए निपलों सब देव के पिढ़िया।
माई नीप लैलों, पोत लैलों, परोर लैलों भितिया।
माई जिरवा छन्ने लागल हे सोबरना केमड़िया।[2]

देवताओं की पिण्डी या चौरे की स्वच्छता एवं शुद्धि के लिए गंगा-यमुना की चिकनी मिट्टी से पवित्र और कौन मिट्टी हो सकती है? इस गीत मे देवमन्दिर में लगे स्वर्ण-किवाड़ से देवता की समृद्धि की प्रशंसा की गई है। साथ ही, सभी देवताओं के प्रति श्रद्धाजलि अर्पित की गई है।

निम्नांकित मगही-गीत[3] में 'देवास' पर होनेवाले कृत्यों का पूर्ण विवरण मिलता है—

सोने के खड़ऊँआ चढ़ि अयलन बन्दी देव,
हाथ सोबरन केरा साट हे।
ओहि साटे मारम भगता, अनजानु भगवा,
हमरा पहुरवा[4] देले जाहु हे।

---

१. देखिए म० लो० सा०, पृ० ६४।
२. वही, पृ० ६५।
३. वही, पृ० ६५।
४. समर्पण, भेंट।

देवता हाथ मे सोने की छड़ी लिये और पैरों में सोने का खड़ाऊँ पहने हुए भगत की देह पर आते हैं और कहते हैं—'मुझे मेरा समर्पण दो और भेंट दो।'

भक्त इस अवसर से लाभ उठाता है। वह देवार्चन करता है और अपने मनोवाछित फल एवं सुख-समृद्धि की वृद्धि के लिए प्रार्थना करता है—

अपना पहुरवा देवा हुलसिए लेहु, हमरा असिसवा देले जाहु हे।
सम्पत्ति बाढ़ हे, सम्पत्ति बाढ़ हे, बाढ़ हे कुल परिवार हे।

'हे देव। तुम अपनी भेंट अवश्य ले लो, पर बदले मे हमें सुख-समृद्धि की वृद्धि दो और कुल-परिवार को समुन्नत करो।'

विशेष देवगीत

इस वर्ग के गीत किसी पूजा, व्रत, त्योहार आदि के अवसर पर अनिवार्य रूप से गाये जाते हैं। इनका आनुष्ठानिक महत्त्व होता है। मगध-क्षेत्र मे वर्ष-भर मे अनेक व्रत-त्योहार होते हैं। यथा—आषाढ का बसियौरा, तीज, कर्मा-धर्मा, जितिया, गोधन, छठ आदि। इन अवसरों पर व्रत एवं त्योहार-विशेष से सम्बद्ध गीत अवश्य गाये जाते हैं। मगध में होनेवाले पर्वो एवं उनसे सम्बद्ध अनुष्ठानो का विवरण निम्नांकित तालिका में मास-क्रम से प्रस्तुत किया जाता है।

मगध के पर्वों एवं उनसे सम्बद्ध अनुष्ठानों की तालिका :

१. **मास-तिथि**—चैत्र शुक्ल-षष्ठी।
पर्व का नाम—चैती छठ।
भाग लेनेवाले—पुरुष और स्त्री। अधिकतर स्त्रियाँ ही छठ का व्रत करती हैं।

अनुष्ठान—१. चैत्र शुक्ल-चतुर्थी को व्रती लोग स्नान, होम आदि के बाद पवित्र भोजन करते हैं। इसे 'नहा-खा' कहते हैं। २. पंचमी को दिन-भर उपवास करके, सन्ध्या में स्नान-पूजन के बाद व्रती खीर-पूरी खाते हैं। इसे पटना में 'खरना' और गया मे 'लोहण्डा' कहते हैं। ३. षष्ठी को चौबीस घण्टे का उपवास किया जाता है। इस दिन सन्ध्या मे विविध पकवान, फूल, फल, दूध आदि से नदी-किनारे सूर्य को अर्घ्य (अरख) देते हैं। ४. सप्तमी की भोर मे पुनः नदी-किनारे सूर्य को अर्घ्य देकर उपवास तोड़ते हैं।

अर्घ्य की विधि—एक बाँस के सूप मे विविध पकवान, फल, फूल, पान, कसैली, रोली, बद्धी, अच्छत आदि रखकर पानी में सूर्य की ओर मुख करके खड़े व्रती के दोनों हाथों मे दिया जाता है। सभी परिजन उसके निकट आकर सूप के पदार्थों पर इस भाँति दूध डालते हैं कि वह छहलकर नीचे पानी में गिर जाता है। इसकी ही संज्ञा लोकभाषा मे 'अरख देना' (अर्घ्य देना) है।

वार्त्ता—सूर्य के गीत और गंगा के सामान्य गीत।

मेला—विविध स्थानों पर, विशेष कर नदीतट पर मेला लगता है, जहाँ दर्शनार्थियों की बड़ी भीड़ होती है।

टिप्पणी—१. पारिवारिक मंगल एवं सुख की वृद्धि के लिए यह व्रत किया जाता है। २. चैती छठ प्रायः गरीब एवं निम्न जाति के लोग करते हैं। कारण कि चैत में नवान्न होने से गरीब सस्ते मे यह पर्व कर लेते है। कार्त्तिक के छठ मे नये अनाज का समय नहीं होता। अतः, इस समय सब कुछ खरीदकर ही यह पर्व करना होता है। गरीबों के लिए 'कातिकी छठ' मँहगा पड़ता है।

२. **मास-तिथि**—ज्येष्ठ शुक्ल-दशमी।
पर्व का नाम—गंगा-दशहरा।
भाग लेनेवाले—पुरुष और स्त्री। अधिकतर पुरुष भाग लेते हैं।

अनुष्ठान—१. गंगास्नान करके, गंगाजी की पूजा की जाती है। २. ब्राह्मणों एवं गरीबों को दान दिया जाता है।

वार्त्ता—रमणियाँ गंगा के सामान्य गीत गाती हैं।

मेला—१. नदी-किनारे बड़ा मेला लगता है। २. यहीं पुरुष 'कबड्डी' के खेल खेलते हैं। पहलवानों को बल-प्रदर्शन का यहाँ अच्छा मौका मिलता है।

टिप्पणी—१. पौराणिक वृत्त के अनुसार गंगा इसी दिन धरती पर उतरी थीं। २. जनविश्वास है कि इसी दिन से गंगा में बाढ आने लगती है।

३. **मास-तिथि**—आषाढ कृष्ण-अष्टमी।
पर्व का नाम—मातापूजी या बसियौरा।
भाग लेनेवाले—पुरुष और स्त्री। अधिकतर स्त्रियाँ ही 'मातापूजी' करती हैं।

अनुष्ठान—१. पूजा की प्रथम रात्रि मे ही सारे पकवान बना लिये जाते हैं, जिससे वे पूजा के समय ठण्डे हो जायँ। शीतला देवी की पूजा ठण्डे पकवानों, फलों, फूल, दूध आदि से की जाती है। 'ज्वाला' की देवी होने के कारण इन्हे शीतल पदार्थ बहुत प्रिय हैं। इसी से इन्हें 'शीतला माता' भी कहा जाता है। २. 'मानता' के अनुसार बलि चढ़ाई जाती है। देवी पर दूध का अर्घ्य भी दिया जाता है, जिसे 'दूध ढालना' कहते हैं। ३. पूजा की सारी विधियाँ 'शीतला देवी' के मन्दिर में सम्पन्न होती हैं।

वार्त्ता—शीतला देवी के गीत।

जहाँ-जहाँ शीतला देवी का मन्दिर होता है, वहाँ-वहाँ मेला लगता है।

टिप्पणी—इस दिन पुरुष-नारी देवी-स्थान के पास किसी पेड़ की छाया में बैठकर भोजन करते हैं। वे, इससे 'पिकनिक' का आनन्द अनुभव करते हैं।

४. **मास-तिथि**—सावन शुक्ल-पंचमी।
पर्व का नाम—नागपंचमी।
भाग लेनेवाले—पुरुष और स्त्री।

अनुष्ठान—१. घरो में, दीवारो पर और द्वार पर गोबर और चूने से साँप की आकृतियाँ अंकित की जाती हैं और उनपर सिन्दूर डाला जाता है। २. दूध-लावा से सर्पों की पूजा की जाती है।

वार्त्ता—सर्प के गीत।

मेला—जहाँ-तहाँ सड़क पर मदारी के खेल दिखाये जाते हैं।

टिप्पणी—१. हमारे यहाँ सर्पों की गणना देवयोनि में होती है। इसी से इनकी पूजा की जाती है। २. जनविश्वास है कि नागपंचमी के दिन सर्प की पूजा करनेवाले को सर्प नहीं डँसता। यदि डँस भी दे, तो विष का असर नहीं होता।

५. मास-तिथि—सावन पूर्णिमा।

पर्व का नाम—श्रावणी (सलोना) एवं रक्षाबन्धन।

भाग लेनेवाले—पुरुष और नारी।

अनुष्ठान—१. घर में विविध पकवान बनाये जाते हैं। बन्धु-बान्धवों के साथ सावन की पूजा करके भोजन किया जाता है। २. ब्राह्मण रेशम या सूत की राखी (रक्षाबन्धन) हाथ मे बाँधते और दक्षिणा लेते हैं।

वार्त्ता—कजरी-गीत (ऋतुगीत में वर्णन हुआ है)।

मेला—१. प्रति सोमवार को सावन-भर 'सोमारी मेला' लगता है। २. सम्पूर्ण सावन में एवं विशेप रूप से पूर्णिमा को मन्दिरो मे 'झूलना' होता है। दर्शनार्थियो की खूब भीड़ रहती है।

टिप्पणी—१. यह वर्षाऋतु के स्वागत का पर्व है। इसी समय कृषि का आरम्भ होता है। इससे स्वभावतः इस पर्व मे आनन्द एवं उल्लास की मात्रा अधिक रहती है। २. अन्य कई क्षेत्रों में रक्षाबन्धन भाई-बहन के पर्व के रूप मे मनाया जाता है। पर, मगध में ब्राह्मण ही राखी बाँधते हैं। अब अन्य स्थानों की नकल मे यहाँ भी बहनें भाई को राखी बाँधने लगी हैं।

६. मास-तिथि—भादो शुक्ल-तृतीया।

पर्व का नाम—तीज या हरतालिका।

भाग लेनेवाले—सौभाग्यवती स्त्रियाँ।

अनुष्ठान—१. इसमे चौबीस घण्टे का उपवास होता है। सन्ध्या समय स्नान करके व्रत करनेवाली स्त्रियाँ नवीन वस्त्र धारण करती हैं। २. उसे सौभाग्य की वस्तुएँ—चूड़ियाँ, रोली आदि दी जाती हैं। ३. फिर, वह शिव-पार्वती की मूर्त्ति बनाकर, विधिवत् पूजा कर उन्हे विविध पकवान, फल आदि का भोग लगाती हैं। ब्राह्मणों को दान भी देती हैं। ४. रात-भर शिव-पार्वती के गीत गाती हुई जागरण करती हैं। ५. दूसरे दिन प्रभात मे स्नान और पूजा के बाद उपवास तोड़ती हैं।

वार्त्ता - कजली एवं शिव-पार्वती के सामान्य गीत।

टिप्पणी—पति के दीर्घायु होने के लिए रमणियाँ यह व्रत करती हैं।

७. मास-तिथि—भादो कृष्ण अष्टमी।

पर्व का नाम—कृष्णजन्माष्टमी।

भाग लेनेवाले—पुरुष और स्त्री।

अनुष्ठान—१. प्रभात से रात्रि के बारह बजे तक उपवास किया जाता है। रात्रि में कृष्ण का जन्म खीरे से कराया जाता है। जन्म के साथ ही घड़ी, घण्टी, शंख आदि बजाये जाने लगते हैं। जन्म के बाद व्रती व्रत को तोड़ते है। २. दूसरे दिन मन्दिर में प्रभात मे जाकर दही-कादो खेलते हैं। इसमे दही में पीला रंग डालकर सबकी देह पर छिड़कते हैं।

वार्त्ता—कृष्णजन्म से सम्बद्ध सोहर गीत।

मेला—१. मन्दिरों में सुन्दर सजावटों के बीच कृष्ण की झाँकी होती है। २. श्रद्धालु जन घर मे भी ऐसी झाँकी की व्यवस्था करते हैं। ३. दर्शनार्थियों की बड़ी भीड़ रहती है।

टिप्पणी—इस दिन धर्मरक्षार्थ भगवान् विष्णु ने श्रीकृष्ण भगवान् के रूप में धरती पर जन्म लिया था।

८. **मास-तिथि** - भाद्र, शुक्ल-चतुर्थी।

पर्व का नाम—गणेशचौथ या चकचन्दा।

भाग लेनेवाले – स्त्री, पुरुष एवं बालक (विद्यार्थी)।

अनुष्ठान—१. सोने, चाँदी, ताँबे या गोबर से गणेशजी की प्रतिमा बनाई जाती है। फिर, विधिवत् पूजा कर, नदी में प्रतिमा का विसर्जन कर दिया जाता है। २. रात्रि मे चन्द्रोदय होने पर चन्द्रमा की विधिवत् पूजा कर अर्घ्य दिया जाता है। ३. प्राइमरी विद्यालयो के शिक्षक गणेश-पूजा के बाद विद्यार्थियों को गुल्ली-डण्डा का खेल खेलाते है। इसी खेल के साथ विद्यार्थी अपने-अपने घर जाते हैं, जहाँ शिक्षक को दक्षिणा मिलती है।

वार्त्ता—चकचन्दा के गीत (इन्हें बाल-मनोरंजन मे दिया गया है)।

टिप्पणी—१. यह गणेशजी का जन्म-दिवस है। ये इतने महत्त्वपूर्ण देवता हैं कि सभी शुभ कार्यो का आरम्भ 'श्रीगणेशाय नमः' से होता है। २. जनधारणा है कि इस दिन चाँद देखने से अकारण कलंक लगता है। पर, किसी की गाली सुनने से दोष का निवारण हो जाता है। अतः, किसी घर में रोड़े फेंककर लोग जानकर गाली सुनते हैं।

९. **मास-तिथि**—भादो•शुक्ल-एकादशी।

पर्व का नाम—कर्मा-धर्मा।

भाग लेनेवाले—केवल स्त्रियाँ।

अनुष्ठान—१. इसमे चौबीस घण्टे का उपवास होता है। स्नान के बाद सन्ध्या मे पूजन होता है। २. पूजन-विधि—जमीन पर मिट्टी या गोबर से शिव-पार्वती और गणेश की मूर्त्तियाँ बनाई जाती हैं। वहीं पर धो-साफ कर ओखली भी रखी जाती है। फिर वही पर पूजा के सामान—कासी-बेलौंधर (एक पौधा), पकवान, अच्छत, फल, फूल, सुपारी, हल्दी, अँकुरी, अनरसा, दूध, धूप, घी, अगरबत्ती, सिन्दूर, ऐपन—लाये जाते हैं। इसके बाद देवताओं एवं ओखरी की विधिवत् पूजा की जाती है। ३. दूसरे दिन प्रभात में व्रत करनेवाली प्रसाद से व्रत तोड़ती है। इस दिन वह भात और कर्मा का साग अवश्य खाती है।

वार्त्ता—भाई के गीत ।

टिप्पणी—भाई के दीर्घ जीवन के लिए यह व्रत किया जाता है ।

१०. मास-तिथि—आश्विन, कृष्ण-अष्टमी ।

पर्व का नाम—जीवत्पुत्रिका या जितिया ।

भाग लेनेवाले—स्त्री ।

अनुष्ठान—१. इसमें चौबीस घण्टे का उपवास होता है । सन्ध्या में स्नान के बाद पूजा की जाती है । २. पूजा के लिए मिट्टी का एक बड़ा चौकोर घेरा बनाया जाता है । केन्द्र मे कुश का बना लव और कुश का सॉचा गाड़ा जाता है । इसके बाद विविध पकवानो, फलो, फूलो, दूब, कसैली, अच्छत, बद्धी (लाल सूत का कई लड़ीवाला धागा) आदि से स्त्रियॉ पूजा करती हैं । ३. पूजा की यह बद्धी सभी बच्चों को नजर लगने से बचाने के लिए पहनाई जाती है । ४. दूसरे दिन स्नान, पूजा के साथ व्रत तोड़ा जाता है ।

वार्त्ता—गंगा के एवं राम-सीता के सामान्य गीत ।

टिप्पणी—१. नैहर, ससुराल एवं सन्तान के मंगल के लिए यह व्रत किया जाता है । २. कोई बालक खतरे से बच जाता है, तो कहा जाता है कि इसकी माँ ने 'खरजितिया' किया था ।

११. मास-तिथि—कार्त्तिक शुक्ल-द्वितीया ।

पर्व का नाम—भैयादूज या गोधन (भ्रातृद्वितीया) ।

भाग लेनेवाले—स्त्री ।

अनुष्ठान—१. गोधन दोपहर में कूटा जाता है । इसके बाद ही व्रती व्रत तोड़ती है । २. पूजाविधि—ऑगन मे मिट्टी का एक चौकोर घर बनाया जाता है। इसके चारों कोनों पर चार छोटे-छोटे घर बनाये जाते हैं, जिसमे बजरी और कसैली रखी जाती है। गोबर से गृहस्थी के अनेक सामान—जैसे डगरा, सूप, सिलौट, लोढ़ा आदि के सॉचे बनाकर चौकोर घर मे रखे जाते हैं । फिर, यमराज की आकृति बनाकर इस घर के केन्द्र में रखी जाती है, जिसकी छाती पर ईंट रखा जाता है और उसपर कसैली रखी जाती है ।

पास ही बरतन में—बजरी, खाजा, नारियल, माला, फूल, पान, रेंगनी के कॉटे, ऐपन, रूई, बद्धी आदि पूजा के सामान रखे जाते है ।

गोधन कूटने के पहले महिलाएँ कथा कहती और देवताओं के गीत गाती हैं ।

फिर, बायें हाथ की कानी ॲगुली और अंगूठे से रेंगनी का कॉटा लेकर निछुछती हैं तथा भाई एवं अन्य प्रियजनों को मरने का शाप देती हैं। निछुछे हुए कॉटो को बगल के गोयठे पर जमा करती जाती हैं। फिर, बाद में पूजा कर रेंगनी के एक-एक कॉंटे को उठाकर जीभ मे चुभाती और कहती हैं—'जिस जीभ से शाप दिया है, उसमे कॉंटा गड़े । भइया की उम्र बढ़े, भौजी का अहिवात बढ़े ।' सभी सम्बन्धियो का नाम लेकर यह कहा जाता है । इसके बाद रूई में ऐपन लगाकर कनिष्ठ ॲगुली से स्नेह जोड़ती है और कॉटों तथा रूई को ईंट पर डालकर गीत गाती हुई मूसल से कूटती हैं। जन-विश्वास है कि इस प्रकार रमणियॉ यम को मारकर भाई की रक्षा करती हैं। फिर, बहन

अपने भाई को पीढ़े पर बैठाकर पूजती है। पहले तिलक लगाकर बजरी खिलाती है, फिर मिठाई खिलाती है। लोकभाषा में इसे 'टीका काढ़ना' कहते हैं। भाई यथाशक्ति बहन को उपहार देता है।

वार्त्ता—भाई के गीत एवं गंगा के सामान्य गीत।

टिप्पणी—१. भाई के दीर्घ जीवन के लिए यह व्रत किया जाता है। २. इस अवसर पर भाई-बहन में एक बार अवश्य भेंट होती है।

१२. मास-तिथि—कार्त्तिक शुक्ल-अष्टमी।
पर्व का नाम—छठ।
भाग लेनेवाले—पुरुष और स्त्री।
अनुष्ठान—सारे अनुष्ठान चैती छठ के समान होते हैं।
वार्त्ता—छठ के गीत।
मेला—नदी-किनारे भारी मेला लगता है।

टिप्पणी—१. कार्त्तिक के छठ का अधिक माहात्म्य माना जाता है; क्योंकि कार्त्तिक पुण्य का महीना समझा जाता है।

१३. मास-विथि—कार्त्तिक पूर्णिमा।
पर्व का नाम—कतिकी पुनिया या गंगास्नान।
भाग लेनेवाले—स्त्री और पुरुष।

अनुष्ठान—१. भक्त लोग सम्पूर्ण कार्त्तिक मे गंगा या नदी में स्नान करने के बाद आज आखिरी स्नान करते हैं। यो अन्य लोग भी इस दिन अवश्य स्नान करते हैं। शिवजी पर जल ढालना इस दिन बड़ा पुण्य माना जाता है। २. गंगा की विधिवत् पूजा कर, फिर दीप जलाकर गंगा या सामान्य नदी की धार में छोड़ते हैं और रात्रि में आकाश-दीप जलाते हैं।

वार्त्ता—गंगा एवं शिव-पार्वती के सामान्य गीत।

मेला—१. बिहार-प्रान्त के 'सोनपुर' नामक स्थान में भारी मेला लगता है। अन्य नदी-तटों पर भी मेला लगता है।

टिप्पणी—इस दिन भगवान् शंकर ने त्रिपुर नामक राक्षस को मारकर देवताओं को अत्याचार से बचाया था, अतः यह दिन धर्म की जय का माना जाता है।

१४. मास-तिथि—माघ, शुक्ल-षष्ठी।
पर्व का नाम—शीतला छठी या मातापूजी।
भाग लेने वाले—पुरुष और स्त्री

अनुष्ठान—सभी अनुष्ठान वे ही होते हैं, जो आषाढ़ की मातापूजी में होते हैं।
वार्त्ता—शीतला के गीत।
मेला—देवीपीठ पर मेला लगता है।

१५. मास-तिथि— फाल्गुन कृष्ण-चतुर्दशी।
पर्व का नाम—महाशिवरात्रि (शिवरात)।
भाग लेनेवाले—पुरुष और स्त्री।

अनुष्ठान—इस दिन चौबीस घण्टे का उपवास करके व्रती शिव-पार्वती की विधिवत् पूजा करते हैं। फिर व्रत तोड़ा जाता है।

वार्त्ता—शिव-पार्वती के सामान्य गीत।

मेला—मन्दिरों मे दर्शनार्थियों की भीड़ रहती है।

टिप्पणी—१. इसे लोग शिवजी के विवाह का दिन मानकर उनके विवाह का उत्सव करते हैं। २. इसी दिन दयानन्द-बोधरात्रि का उत्सव भी मनाया जाता है।

१६. मास-तिथि—फाल्गुन-पूर्णिमा।
पर्व का नाम—होली।
भाग लेनेवाले—पुरुष और स्त्री।

अनुष्ठान—ऋतुगीत में होली के अवसर पर होनेवाले अनुष्ठानों पर प्रकाश डाला जा चुका है।

वार्त्ता—होली-गीत।

मेला—रंग और गुलाल का उत्सव होता है।

टिप्पणी—१. यह राष्ट्रीय पर्व है। इसमे सभी भेद-भाव भुला दिये जाते हैं। २. नववर्ष के उपलक्ष्य में इस अवसर पर लोग होली खेलकर आनन्द मनाते हैं।

उपर्युक्त तालिका में विभिन्न मासों में होनेवाले पर्वों, अनुष्ठानों आदि से सम्बद्ध 'वार्त्ता' का भी उल्लेख किया गया है। इनसे स्पष्ट है कि लोक-जीवन मे पौराणिक आख्यान-प्रसिद्ध देवी-देवताओ के साथ ग्रामीण या स्थानीय देवी-देवताओं से सम्बद्ध वार्त्ता को भी महत्त्व प्रदान किया गया है। दोनों वर्गों के देवी-देवताओ से सम्बद्ध सामान्य गीतों का वर्णन पहले ही किया जा चुका है। यहाँ केवल उन्हीं गीतो पर विचार किया जायगा, जो विशेष व्रत-त्योहारों एवं पूजाओं से सम्बद्ध हैं।

छठ के गीत :

'छठ' (षष्ठी) व्रत 'सूर्य का व्रत' है। इसीलिए, इस अवसर पर गाये जानेवाले गीतों में 'सूर्य' की वन्दना एवं प्रशस्ति की जाती है।

वर्ण्य विषय : छठ के गीतों में नौका, मल्लाह और सूर्य को अर्पित किये जानेवाले प्रसाद एवं अर्घ्य का विस्तृत विवरण दिया जाता है, साथ ही इनमे सूर्य के सौन्दर्य, महिमा एवं अलौकिक शक्ति का वर्णन भी रहता है। इन गीतों मे धार्मिक निष्ठा, आत्मसंयम एवं उल्लास की सुन्दर व्यंजना होती है। यथा :

एक गीत मे, मल्लाह सिन्दूर आदि से पूजित स्वर्ण-नौका पर प्रसाद चढ़ाकर देवता के देश ले चलता है। नाव फल-फूलों के सुवास को बिखेरती हुई गगा की पवित्र धारा पर हवा के सहारे आगे तिरती चली जाती है—

सोने के नैया रे मलहा, रूपे करुवार।
इंगुर भरल रे मलहा, नैया केर माँग।
केलवे बोझल रे मलहा, नैया गमकत रे जाये।
सुपवे बोझाय रे मलहा, नैया गमकत रे जाए।[1]

इसमे सभी फलो, फूलो एवं अन्य द्रव्यों के नाम एक-एक कर जोड़े जाते हैं।

तीन दिनों तक व्रत करने के बाद अन्तिम अर्घ्य देने के लिए 'व्रती' व्याकुल हो उठते है। पर, जो सूर्य सब दिन उगा करते थे, आज व्याकुल प्रतीक्षा की घड़ियों मे उगने मे बहुत देर कर रहे हैं—

आन दिन उठलऽ सुरुजदेव भोर भिनुसरवा,
आजु काहे लगौलऽ सुरुजदेव बड़ी देर हे।
सगरो बरती ठाड़ भेलन, लेहु न अरघिया,
सगरो बरती घाट अगोरलन, लेहु न अरघिया।
उगहु सुरुजदेव लेहु न अरघिया।

उपवास की मनःस्थिति का कितना सुन्दर मनोवैज्ञानिक विश्लेषण है।

सूर्य-उदय में आज देर होने के विशेष कारणो का विश्लेषण करती व्रती स्त्रियाँ भगवान् के सौन्दर्य और माहात्म्य का अप्रत्यक्ष रूप से वर्णन करती हैं—

सोने खड़ऊआँ ए दीनानाथ, चनने लिलार।
चलियो में गेलऽ ए दीनानाथ, गंगा असनान।
रहिया में मिलली ए दीनानाथ, अन्हरा मनुस।
अँखिया देवइते ए दीनानाथ, भेलो एते देर।
रहिया में मिलली ए दीनानाथ, कोढ़िया मनुस।
कयवे देवइते ए दीनानाथ भेलो एते देर।
रहिया में मिलली ए दीनानाथ, बाँझी तिरियवा।
पुतवा देवइते ए दीनानाथ, भेलो एते देर।

भगवान् सूर्य स्वर्ण-खडाऊँ पहन और माथे पर चन्दन का तिलक लगाकर जो चले, तो राह में उन्हे एक अन्धा मनुष्य मिला, जिसे उन्होंने आँखें दीं, एक कोढ़ी मनुष्य मिला, उसे उन्होने शरीर दिया, एक बाँझ स्त्री मिली, उसे पुत्र दिया।

फिर, व्रती नारी ऐसे सक्षम एवं महिमामय भगवान् सूर्य के वरदान से वंचित क्यों रही है ? उसे भी पुत्र दे देते, तो घर में होनेवाले अत्याचार तो बन्द हो जाते—

सासु मारे हुदुका ए दीनानाथ, ननद पारे गारी।
अपनो पुरुखवा ए दीनानाथ, लेबे लुलआई।

भक्त की श्रद्धा एवं विश्वास से प्रसन्न होकर वे आश्वासन देते हैं—

चुप रह चुप रह गे बाँझी पटोर पोछऽ लोर।
तोहरा हम देबो गे बाँझी गजाधर अइसन पूत।

१—दे० भा० लो० सा०, पृ० ६८–६९।

सूर्यव्रत के प्रताप से उसे पुत्र होता है। अब घर में होनेवाले अत्याचार स्नेह-वर्षण में बदल जाते हैं—

> सासू ले ले दउरे ए दीनानाथ, सिंहासन अइसन पात।
> ननदी ले ले दउरे ए दीनानाथ, लोटा भरल पानी।
> अपनो पुरुखवा ए दीनानाथ, लेलकइ दुलार।

इस गीत में सूर्यव्रत का माहात्म्य दरसाया गया है।

ऐसे करुणामय भगवान् सूर्य को अर्घ्य देने के लिए नदी-तट पर भीड़ लगी है। दूध लिये ग्वालिन, फूल लिये मालिन, धूप-दीप लिये ब्राह्मण और गोद में फलों-पकवानों से भरा सूप लिये व्रती स्त्रियाँ पानी में खड़ी हैं—

> दुधवा लेले ए दीनानाथ, गोआरिनी ठाढ़।
> फुलवा, फलवा लेले ए दीनानाथ, मलिनिया ठाढ़।
> धुपवा बतिया लेले ए दीनानाथ, बराह्मन ठाढ़।
> जल्दी से उगहु न ए दीनानाथ, लेहु न अरघिया।

अब व्रती का धैर्य छूट रहा है, शरीर शिथिल पड़ रहा है, पैर जमने लगे हैं—

> खड़े-खड़े गोड़वा पिराए ए दीनानाथ, देह थहराय।
> जल्दी सनी उगहु न ए दीनानाथ, लेहु न अरघिया।

अन्त में, भगवान् सूर्य प्रकट होकर अर्घ्य स्वीकार करते हैं।

शीतला माता के गीत :

'शीतला माता' की अन्य संज्ञा 'माता मइया' भी है। 'शीतला' एक रोग है, जिसमें सारे शरीर मे बड़ी या छोटी गोटियाँ निकल आती हैं। इससे पीडित व्यक्ति भयंकर जलन का अनुभव करता है।[1] विद्वानों को आश्चर्य होता है कि इस भयंकर जलन को देनेवाली देवी की संज्ञा 'शीतला' क्यो हुई ? फिर वे इसका कारण यों देते हैं—'मनुष्य की सामान्य प्रवृत्ति होती है कि वह निम्नकोटि की भयंकर वस्तु को भी किसी सुन्दर नाम से पुकारने का प्रयत्न करता है। यथा—रसोइया को महाराज (बड़ा राजा) कहते हैं।'

पर, इस सम्बन्ध मे हमारा विचार है कि 'देवी' रूप मे प्रतिष्ठित 'चेचक' की भयंकर जलन-भरी अवस्था मे अपेक्षित शीतलोपचार की विविध-विधियों को दृष्टिपथ में रखते हुए ही इस व्याधि को यह संज्ञा प्रदान की गई।

इन देवी को प्रसन्न करने के लिए साल में अनेक बार निश्चित विधान के साथ इनकी पूजा की जाती है। यद्यपि आधुनिक युग मे 'चेचक' को एक रोग मानकर 'टीका लेने' एवं अन्य उपचार करने का विधान चल पड़ा है, तथापि मगध के शहर या ग्राम में चेचक होने पर परम्परागत उपचार, विधान एवं अनुष्ठान अवश्य किये जाते हैं। ये देवी इतनी भयंकर मानी जाती हैं कि इनके सम्बन्ध में कोई शिक्षित या अशिक्षित व्यक्ति विवाद खड़ा करने मे भय खाता है।

---

१. एलिमेण्ट्स ऑव दि साइन्स ऑव लैंग्वेज, कलकत्ता-विश्वविद्यालय।—डॉ० तारापुरवाला।

चेचक के रोगी को निम्नाकित उपचार परम्परागत रूप में दिये जाते हैं—

१. रोगी को माली या मालिन विशेष उपचार देती है। ऐसा जन-विश्वास है कि माली जाति पर इन देवी की विशेष कृपा रहती है। शीतला देवी का स्थान 'नीम का पेड़' माना जाता है। अतः, मालिन नीम की टहनी से रोगी को झाड़ती और हवा करती है।

२. रोगी के घरवाले बहुत शुद्धता से भोजन करते हैं। उनके आचरण भी बड़े नियन्त्रित होते हैं। यथा—रोटी नहीं खाते। दाल-तरकारी मे हलदी और छौंक नही पड़ती। घर में कोई नाखून नहीं कटाता। पुरुष बाल नहीं कटाते। देवी को छोड़कर इस समय अन्य किसी को प्रणाम नहीं किया जाता।

३. अब भी देहात के अनेक घरों में चेचक के रोगी को दवा देना अपराध समझा जाता है। उसे पूर्णतः देवी की कृपा पर ही छोड़ा जाता है।

३. प्रतिदिन घर मे शीतला देवी की प्रशस्ति मे गीत गाये जाते हैं। देवी से रोगी की प्राणरक्षा के लिए मनौतियाँ मानी जाती हैं। तदनुसार ही उसके नीरोग होने पर पुजापा एवं बलि चढ़ाई जाती है। इस समय विशेष रूप से देवी की पूजा एवं गीत होते हैं।

वर्ण्य विषय : इन गीतो मे देवी के निवास-स्थल नीम के वृक्ष, कदली के वन, बाँस की बाँसवारी आदि के विशेष रूप से वर्णन किये जाते हैं। कहीं देवी को भेंट के रूप मे दी जानेवाली शीतल वस्तुओं का उल्लेख होता है, कहीं देवी की भीषण ज्वाला एवं प्यास का वर्णन होता है, कहीं उनके कोप का वर्णन होता है, तो कहीं उनके वरदान का। कहीं भक्त उनसे अपने कोप को समेटने की प्रार्थना करता है, कहीं उन्हे मनोवाछित भेंट देने का वचन देता है। शीतला देवी से सम्बद्ध सभी गीतों में उनके क्रोधी एवं दयालु दोनों रूपों का वर्णन होता है। भक्त सर्वदा भयत्रस्त एवं आतुर भाव से प्रार्थना मे संलग्न दीख पड़ता है। निम्नाकित गीत में शीतला देवी के मन्दिर का छवि-वर्णन है। भक्त देवी पर अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करने के लिए उनके मन्दिर मे जाना चाहता है—

पुरुब हइन बाँस-बँसवरिया, पछिम हइन केदली बनमा हे।
दखिन हइन सीतल के मन्दिलवा देखन हम जायम हे।
हरियर हइन बाँस-बँसवरिया, सीतल हइन केदली बनमा हे।
बड़ा सुन्दर मइया के मन्दिलवा देखन हम जायम हे।

नीम की डाल में झूला डालकर शीतला माता झूला झूलती हैं। पर, ज्वाला से पूर्ण देवी को यहाँ भी प्यास लग जाती है। मालिन उनकी प्यास बुझाकर उनकी कृपापात्र बन जाती है—

नीमियाँ के डलिया मइया लगलो हिंडोरवा,
झुली-झुली मइया गावल गीत कि झुली-झुली।
झुलुआ झुलइत मइया लगलो पियसवा,
से चली भेलन मइया मलिया केर बगिया।

सुतल हे कि जागल हे मालिन केर बिटिया।
मोरा एक चुलु पनिया पिलाहु।

मालिन पानी पिला देती है। माता उसे आशीर्वाद देती हैं—

जैसे गे मालिन हमरा जुड़उले से,
तोरा बलकवा जुड़ाऊ, तोर पतोहिया जुड़ाऊ।[1]

इस गीत में शीतलोपचार का महत्त्व दरसाया गया है। इससे ही इस रोग में शान्ति मिलती है।

एक अन्य गीत में शीतला देवी के कोप का वर्णन हुआ है—

सोने केर कँघिया सीतल मइया, रूपे के रे काँप।
मचिया बैठल सातों बहिनी, झारे लामी केस।

बाल झाड़ने में कंघी की काँप टूट जाती है। देवी सोनार पर भयंकर कोप करती है—

टूटि गेलइ कंघिया सीतल मइया, टूटि गेलइ काँप।
कउने हाथे गढ़ले रे सोनरा समंगिया लगऊ रे घून।

अब तो सोनार की माता भयत्रस्त हो उठती है। वह विनम्रता से देवी से भिक्षा माँगती है—

अबकी कसुरवा बकसु हे हमार सीतल मइया,
गढ़वइ सीतल मइया सोने के रे काँप।

सोनार की माता के भय एवं दीनता से भरी प्रार्थना में सन्तान-रक्षा के लिए मातृ-हृदय की सहज व्याकुलता व्यंजित हुई है। इस देवी के सम्मुख माता सर्वदा आँचल पसार-कर करुणा की भीख माँगती रहती है।[2]

चेचक के रोगी के शरीर से गोटी मुरझाने को 'बाग मोड़ना' कहते हैं। एक भक्त की देवी से प्रार्थना है—हे माँ, तुम बाग मोड़ लो, मैं आकर विविध पदार्थों से तुम्हारी पूजा करूँगा—

मिलहुक सातों बहिनिया हे मइया,
सातों आलर हे मइया, सातों आलर हे।
मइया सातों मिलि बगिया देखे जाहुक हे मइया।
मइया सेंदुरे टिकुलिया बगिया भरल हे मइया।

---

१. म० लो० सा०, पृ० ६० ।

२. राजस्थानी में 'माता मइया' को 'सेडल माता' कहते है। बालक के इससे पीडित होने पर माँ, बुआ आदि इसमें भी भयत्रस्त दिखाई पड़ती हैं। यथा—

दादी भूवा थर-थर काँपी, डरप्पा माओ अर बाप।
बला ल्यूं सेड़ल माता ए।—रा० लो० गीत, भाग १, पृ० १८–१९।

मइया केलवे नरंगिया बगिया भरल हे मइया।
मइया धुपवे पठरुए बगिया भरल हे मइया।[1]

यों, शीतला देवी का बाहन गधा माना जाता है, पर उन्हें विशेष आदर प्रदान करने के लिए गीतों में 'घोड़े' को उनका वाहन कहा गया है—

कउन रंग मइया तोहर घोड़वा, कउने रंग असवार।
बंगालिन मइया लेहु न तूँ पुजवा हमार।
लाले रंग मोर घोड़वा ए सेवका लाले रंग असवार।
हमरा हाँथ सोभइ बाँस के बँसुरिया, तीतर भेंट चढ़ाव।

उनका प्रिय रंग लाल और उनकी प्रिय बलि तीतर है। साथ ही, यहाँ उन्हें 'बंगालिन देवी' कहा गया है। इसका कारण यह है कि प्राचीन काल मे बंगाल शक्ति-उपासना का केन्द्र था। शीतला माता शक्ति की 'प्रतीक' मानी जाती थी। इसी का प्रभाव मगध पर भी पड़ा है। यहाँ उन्हें 'बंगालिन देवी' कहकर शक्ति के प्रतीक के रूप में स्वीकृत किया गया है।

नागपंचमी :

नागपंचमी के दिन सर्पों से सम्बद्ध गीत गाये जाते हैं। इस दिन मदारी लोग जीवित सर्पां के खेल दिखाते और भिक्षा माँगते हैं। वे गीत भी गाते है।

निम्नाकित मगही-गीत में मदारी की भाव-व्यंजना हुई है—

हम्मर नाग दुलरुआ हो, हे दुलरुआ।
जे मोरा नाग के भिखिया न देतन।
से जरि छरि जइहें, मोर नाग दुलरुआ।
जे मोरा नाग के भिखिया दीहें।
से होइहे सुखी धनवान, मोर नाग दुलरुआ।

बंगाल में नागपूजा का अधिक प्रचार है। नागों की अधिष्ठात्री देवी 'मनसा' की भी यहाँ पूजा, उपासना और स्तुति का बहुत प्रचार है। इनसे सम्बद्ध अनेक ग्रन्थ बँगला में उपलब्ध हैं।

कृष्ण-जन्माष्टमी :

इस दिन पौरोहित्य संस्कार के साथ भगवान् कृष्ण का जन्म कराया जाता है। इसीलिए, लोकगीतों को विशेष महत्त्व नहीं दिया जाता। पण्डितजी द्वारा कथित पौराणिक कथा को ही भक्त लोग बड़ी श्रद्धा से सुनते हैं। फिर भी, कृष्ण-जन्म से सम्बद्ध कुछ सोहर-गीत मगही में प्रचलित हैं, जिन्हें श्रद्धालु महिलाएँ गाती हैं। यथा—

भादो अठमी पख पहुँचल गे सजनी, आधा राति किसुन अवतार।
नन्द भवन में आनन्द भेल सजनी, चलऽ देखे सिसु सुखपाल।

१. हि० सा० बृ० इ०, भाग १६, पृ० ५६।

हम्मे कइसे करियो भइया करमा के पूजा,
हमरा गोदी हको भइया लड़िका बलकवा।
बलका सुताहु बहिनी लाली पलँगिया,
करि लेहो हे बहिनी करमा के पूजा।

बिना कासी-बेलौधर के कर्मा गोसाईं की पूजा नही हो सकती।

इन गीतो मे यत्र-तत्र भाई-बहन के छोटे-मोटे स्नेह-भरे कलह के भी वर्णन मिलते हैं। यथा : एक मगही-गीत मे बहन भाई से कर्मा-पूजा के लिए फलादि लाने का आग्रह करती है। भाई कहता है कि तुम व्रत छोड़ दो —

तोहरा नगर भइया केलवा सहत भेलवऽ।
लेले अइहऽ हो भइया, केलवा सनेसवा।
हमरा नगर बहिनों केलवा महँग भेलो,
छोड़ि देहु गे बहिनों करमा बरतवा।

पर, बहिन किसी भी परिस्थिति मे भाई का मंगल ही चाहती है, फिर वह कर्मा-व्रत कैसे छोड़ सकती है—

करमा बरत भइया छोड़लो न जाये,
न छोड़म हो भइया करमा बरतवा।

इस व्रत के उपलक्ष्य में भाई बहन को उपहार देता है। इस प्रकार, विवाह के बाद भी भाई-बहन के स्नेहमय पवित्र बन्धन टूट नहीं पाते।

जितिया :

'जितिया' व्रत के अवसर पर महिलाएँ सन्तान एवं नैहर की मंगल-कामना के लिए देव-सम्बन्धी अनेक गीत गाती हैं। इन गीतों में शिव-पार्वती एवं राम-सीता के गीतो का प्राधान्य होता है।

आगे मगही-गीत मे नैहर के प्रति स्नेहाधिक्य का प्रदर्शन हुआ है। 'लउहर-कुसहर' यहाँ सीता के पुत्र नहीं है। यह गायिका के 'देवर' का नाम है। देवर के प्रति गायिका को स्नेह अवश्य है, पर भाई से कम है। तदनुकूल ही दोनो के प्रति प्रदर्शित किये गये आदरभाव में अन्तर दिखाई देता है।

पुरुबे से आवले लउहर कुसहर देओरा हे गंगाजल बहिनो।
पछिमे से आवले निरधन भाई हे गंगाजल बहिनो।
अँगने बैठायब लउहर-कुसहर देओरा हे गंगाजल बहिनो।
अँचरे बैठायब निरधन भाई हे गंगाजल बहिनो!
अँगने सुतैबो लउहर कुसहर देओरा हे गंगाजल बहिनो।
अँचरे सुतैबो निरधन भाई हे गंगाजल बहिनो।
टका ले समोधवो लउहर कुसहर देओरा हे गंगाजल बहिनो।
छोटकी ननदिया ले समोधवो निरधन भाई हे गंगाजल बहिनो।

गोधन :

इस पर्व का दूसरा नाम 'भइयादूज' भी है। इसमें भाई के जीवन की सुख-समृद्धि की वृद्धि के लिए महिलाएँ देव-पूजन करती हैं। पूजा-कथा आदि अनेक विधि-विधानों के बाद यम की छाती पर रखे ईंट पर समाठ (मूसर) की चोट करती हुई महिलाएँ भाई के कल्याणार्थ निम्नांकित गीत गाती हैं—

जमरई के घोड़वा काँटे-कूसे जइहें।
जमाहिर भइया के घोड़वा दोना माहे जइहें।
पाने-फूले अकुरइह हे भइया।
जीहु-जीहु भइया लाख बरीस।
भौजो के बढ़े अहिवात हे।[1]

अर्थात् 'यम का घोड़ा' कंटकाकीर्ण पथ से बढ़ेगा, पर भइया का घोड़ा सुन्दर पथ से। मेरा भाई सुख-समृद्धि से भरा-पूरा रहकर लाख वर्ष जीये और मेरी भाभी की सौभाग्य-वृद्धि हो।'

यम को इस प्रकार मारकर हृदय मे बहनें यह विश्वास धारण कर लेती हैं कि भाई के पथ से मृत्यु की बाधा दूर हो गई है। इस अवसर पर गंगा, शिव, पार्वती आदि देवी-देवताओं के सामान्य गीत भी गाये जाते है।

गोधन कूटने के बाद भाई को बहिनें 'टीका' लगाती हैं। इसे 'टीका-काढ़ना' कहते हैं। इस विधान से सम्बद्ध गीत भी गोधन के अवसर पर गाये जाते हैं—

नदिया किनारे दुलरइतो भइया, खेलथ जुआ सारि।
कन्ने गेलऽ हे बहिनी, भइया ललथू नेआर[2]।
नहिं घर चउरा हे सासू, नहि घर हे दाल।
कइसे कइसे रखबो हे सासू, भइया जी के मान।
कोठी भरल चउरा ए पुतहु, पनबटवे भरल हे पान।
हँसि खेल के रखिहऽ हे पुतहु भइया जी के मान।

बालगीत

इस वर्ग मे वे गीत आते हैं, जिनसे किसी-न-किसी रूप मे बाल-मनोरंजन होता है। मनोरंजन भी दो प्रकार के होते हैं—एक शुद्ध मनोरंजन, जिनका उद्देश्य केवल मनोरंजन होता है एवं दूसरा सोद्देश्य मनोरंजन, जिनका उद्देश्य मनोरंजन के साथ कुछ सीखें देना भी होता है। इन्हें दृष्टिपथ मे रखकर हम 'बालगीत' को यथानिर्दिष्ट श्रेणियों मे बाँट सकते हैं—

---

१. **कवन भइया चलले अहेरिया, कवन बहिन देलो असीस हो ना।**
जियसु रे मोर ए भइया, मोरा भउजो के बाढ़सु सिर सेन्दुर हो ना।
—भो० ग्रा० गी०, भाग २, पृ० ८४।

२. वस्त्रालंकारों को लेकर आना।
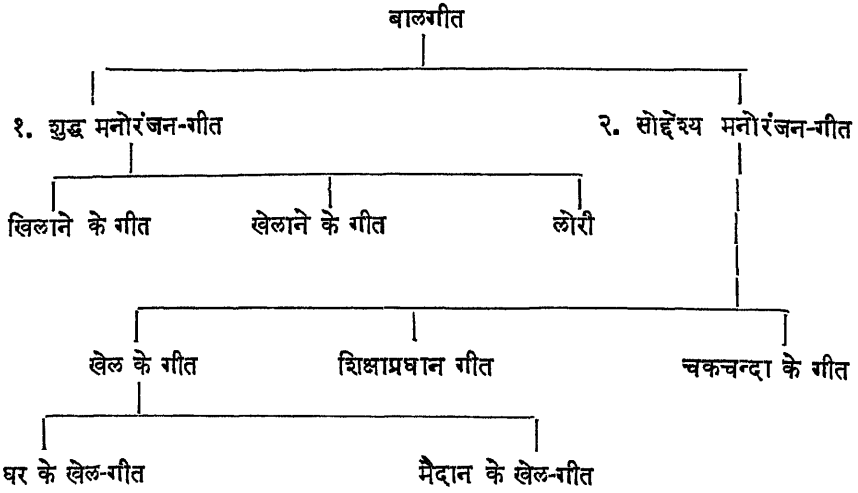
शुद्ध मनोरंजन-गीत :

बालक अल्पावस्था में बड़े हठीले, जिद्दी, क्रोधी, प्रतिहिंसा एवं रोने की भावना से पूर्ण एवं आत्मकेन्द्रित होते हैं। इसीसे उनके स्वभाव की तुलना मानव-विकास की प्रथम अवस्था से की जाती है। विकास की इस अवस्था मे मानव में भी इन्हीं दुर्गुणों का बाहुल्य था। सभ्यता के विकास-क्रम में मानव ने सद्‌गुणों का विकास किया और वह शिष्ट, समझदार एवं समाजोन्मुख बना। बालक में भी क्रमशः अच्छे गुण विकसित होते हैं। इन गुणों के विकास के पूर्व तक तो वे अपने गुरुजनों के लिए एक प्यारी समस्या ही रहते हैं। 'प्यारी' विशेषण इसलिए दिया गया है कि बच्चों के नाज, हठ आदि को सर-आँखों उठाने में घर के लोग सुख का अनुभव करते हैं। इसका कारण सर्वज्ञात है, अतः यहाँ इसपर प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं।

हठीले बच्चों का ध्यान खींचकर माँ, दादी आदि महिलाएँ उन्हे किसी विशिष्ट दिशा में लगाना चाहती हैं। यथा—खाने में, खेलने और सोने में। इसके लिए गीत सर्वोत्तम साधन हैं। इस दृष्टि से इन गीतों को तीन उपशीर्षकों में रखा गया है—

१. खिलाने के गीत, २. खेलाने के गीत और ३. सुलाने के गीत या लोरी। ऐसे गीतों को विद्वानों[1] ने 'पालने के गीत' की संज्ञा दी है। कारण, इन गीतो का महत्त्व पाँच साल तक के बच्चों के लिए ही रहता है। पर, इन गीतों में मनोरंजन के भाव के प्राधान्य के कारण यहाँ इन्हें 'शुद्ध मनोरंजन-गीत' के अन्तर्गत रखा गया है।

---

१. (क) भो० लो० सा० अ०, पृ० २२८ एवं लो० सा०, भू०, पृ० १७०।
(ख) अँगरेजी मे ऐसे गीतों को 'क्रेडल साँग्स' (Cradle songs), 'ललाबि' (Lullaby) या 'नरसरी राइम्स' (Nursery Rhymes) कहते है। इस विषय पर विदेशों मे बहुत पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। 'प्रेसरीज' ने 'क्रेडल साँग्स ऐण्ड नरसरी राइम्स' (Cradle songs and nursery rhymes) नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ प्रकाशित किया है, जिसमें शिशु-सम्बन्धी अनेक गीतों का संकलन एवं विवेचन है।

१. खिलाने के गीत : बच्चों को खिलाना एक समस्या ही रहती है। वे कुछ खाते या दूध पीते समय, हमेशा न खाने की ही जिद पकड़ते हैं, पर शिशु की जीवन-रक्षा एवं पोषण के लिए उन्हे खिलाना आवश्यक होता है। अतः, माँ बच्चों को अपने गोत के स्वर-संगीत मे इस प्रकार भुला लेती है कि वे वाछित कार्य करने लग जाते हैं। यथा—

चान मामू, चान मामू।
आरे आबऽ, बारे आबऽ, नदिया किछारे आबऽ,
सोना के कटोरी में दुद्धा-भत्ता लेले आबऽ।
बउआ खाये दूध-भतवा, चिड़इयाँ चाटे पतवा,
पतवा उड़ियायल आये, बउआ के मुँह में घुटुक-घुटुक।

बच्चे के लिए 'चाँद' यों ही कौतुक का विषय होता है, उसपर से उससे 'मामू' का रिश्ता! 'मामू' भी ऐसा, जो सोने की कटोरी मे 'भगिना' के लिए दूध-भात लाता है। इतना ही नहीं, आनन्द और गर्व से इधर बालक खाता है, उधर लालची चिड़िया पत्ते चाटती है। सारा प्रसंग बच्चे की आँखों के सामने ऐसा मनोहर एवं मूर्त्त रूप धारण कर लेता है कि वह आत्मविस्मृत होकर बड़ों की इच्छा पर अपने को छोड़ देता है।

दूसरे गीत में तारों से बालक का रिश्ता बैठाया गया है—

एक तरेगन, दू तरेगन, तरेगना मामू हो,
अपने खेलऽ झींगा मछरिया, हमरा देलऽ झोर
अब ना जैबो तोहर दुहरिया, टप-टप झरतो लोर।

स्वार्थी मामू के 'टपकते आँसू' बच्चे की प्रतिहिंसा-भावना को सन्तुष्ट कर उसे इतना आनन्द-मग्न कर देते हैं कि वह सारी जिद छोड़ कर कल्पना के संसार में डूबा हुआ खाने लगता है।

२. खेलाने के गीत : बच्चों के हठ और औझड़ को छुड़ाने के लिए कुछ मनोरंजक खेल-गीत भी गाये जाते हैं। यथा—

घघुआ मनेरिया, अरबा चाउ के ढेरिया,
बउआ खाये दूध-भतवा बिलइया चाटे पतवा।
पतवा उड़ियायल जाय, बिलइया रगेदले जाय,
नया भित्ति उठल जाय, पुरान भित्ति ढहल जाय।
देख गे बुढ़िया माई बरतन जल्दी से हटावऽ,
तेल में गिरबऽ कि घीऊ में,
फूल में गिरबऽ कि काँटा में।[1]

खेल की सारी क्रिया में बच्चा अपने को भूल जाता है। अन्त में खेलानेवाला बच्चे को घी और फूल तथा तेल और काँटे की दिशाएँ बतलाकर पूछता है कि किधर गिरोगे? स्वभावतः वह घी और फूल की दिशा बताकर विजय-गर्व का अनुभव करता है।

---

१. खेल की क्रिया के लिए देखिए म० लो० सा०, पृ० ८२।

दूसरा खेल-गीत है—

बउआ रे तूँ कत्थी के, कँकरी के टुस्सा के,
चोआ चनन के पुरिया के, मइया हउ लवंगिया के।
बाबू जी जफरवा के, फूआ हउ इलइचिया के,
पत पितिअइनियाँ तम्मा के, हम खेलौनिया सोना के।

इसमे शारीरिक क्रिया नही होती, पर बच्चे को प्रशंसा और आनन्द के कल्पित संसार मे उलझाकर माँ या परिचारिका अपने काम के लिए समय अवश्य निकाल लेती है। प्रशंसित बालक नई प्रेरणा, शक्ति एवं उत्साह का अनुभव करता हुआ पोषण पाता है।

निम्नांकित खेल-गीत मे मनोरंजन के साथ बाल-जिज्ञासा को सन्तुष्ट करने की चेष्टा हुई है, साथ ही जीवनोपयोगी वस्तुओं से परिचित कराने की भी—

चान मामू, चान मामू हँसुआ दऽ,
से हँसुआ काहे ला ? खरइ कटावे ला।
से खरइ काहे ला ? बँगला छबावे ला,
से बँगला काहे ला ? गोरुवा ढुकावे ला।
से गोरुआ काहे ला ? चोतवा पुरावे ला,
से चोतवा काहे ला ? अँगना लिपावे ला।
से अँगना काहे ला ? गेहुआँ सुखावे ला,
से गेहुआँ काहे ला ? मैदा पिसावे ला।
से मैदा काहे ला ? पुरिया पकावे ला,
से पुरिया काहे ला ? भउजी के खाये ला।
से भउजी काहे ला ? बेटवा बियाये ला।
से बेटवा काहे ला ? गुल्ली टाँर खेलेला।
गुल्ली टाँर टूट गेल, बउआ रूस गेल।

३. लोरी : रो-रोकर औझड़ पकड़े हुए बालक को सुलाने में लोरियो का महत्त्वपूर्ण हाथ रहता है।

आओ गे खुदबुदी चिरइयाँ, अण्डा पार-पार जो।
तोरे अण्डा आग लगउ, बउआ सुतौले जो।
आधा रोटी रोज देवउ, टिकरी महिन्ना।

मुन्ने को अपने सुलाने के लिए चिड़िया की चाकरी बहुत प्रिय लगती है। उसे तो प्रकृति के सभी जीव-जन्तु एवं तत्त्व अपने सहचर, सखा और सगे-सम्बन्धी प्रतीत होते हैं। फिर, उनसे परिचर्या लेने मे वह क्यों हिचके। तभी माँ गाती है—

आओ गे खुदबुदी चिरइयाँ, बउआ के खेलाव
मइया गेलइ भात पकावे, बाबू गेलइ दोकान।

प्रकृति के जीव-जन्तु के आह्वान एवं उनसे साहचर्य की भावना उसे कल्पना के सुदूर लोक में छोड़ जाती है। गीतों के सुमधुर स्वर-संगीत में वह मीठी थपकियो की

सुखानुभूति करता है। फलतः, बालक क्रमशः रोना और औझड़ छोड़कर निद्रा देवी की गोद मे विश्राम करने लगता है।

शुद्ध मनोरंजन गीतों के विषय मे कतिपय तथ्य ज्ञातव्य हैं—

१. इन गीतों के गायक बालक के अभिभावक होते हैं। २. गीतो मे जहाँ सार्थक पदों का व्यवहार होता है, वहाँ अनेक निरर्थक पदों का। यथा—'घघुआ मनेरिबा' या 'आरे आबऽ बारे आबऽ' निरर्थक पद हैं। पर, ऐसे पदो की संख्या अपेक्षाकृत कम है। अधिकाश पद ऐसे ही व्यवहृत होते हैं, जिनसे बच्चो को जीवन की उपयोगी वस्तुओं का प्राथमिक ज्ञान प्राप्त हो जाता है। यथा : भोजन के आवश्यक तत्त्व—दूध, भात, तेल, घी, मछली, पूड़ी, झोर आदि; पहनने के वस्त्राभूषण आदि एवं जीवन की अन्य आवश्यक चीजें—सोना, चादी, खरई, हँसुवा, बँगला, गोबर, गेहूँ, मैदा, गुल्ली-डण्डा आदि। ३. इन गीतो मे बाल-रुचि, प्रकृति, मनोवृत्ति आदि के अनुकूल प्रसंग प्रस्तुतः करने की चेष्टा रहती है।

बालक प्रकृति के विविध उपादानो के निकट का सम्बन्ध पाने मे सुख पाता है। तदनुकूल ही चाँद और तारे मामा बन जाते हैं, चिड़ियाँ परिचारिका बन जाती हैं, बिल्ली और चिड़ियाँ लोभी सेविका के रूप मे सामने आती हैं। अपने परिजनो के मुख से अपनी प्रशंसा सुनकर वह आनन्द एवं गर्व की अनुभूति करता है। तदनुरूप ही वह स्वयं को ककड़ी की फुनगी-सा सुकुमार पाता है। उसे अन्य परिजन लवंग, जायफर, इलायची, चन्दन और सोना से सुन्दर और मधुर प्रतीत होते हैं। प्रश्न है—शुद्ध मनोरंजन के गीतो में आये पदों से जब शिशुओ के ज्ञानकोष की वृद्धि होती है, तब इन्हे यह संज्ञा क्यों दी गई? इसका उत्तर यह है कि इन गीतो का उद्देश्य प्रथमतः बच्चो का मनोरंजन करना है, सीखें देना गौण। बच्चे कोरे और अनुभवहीन होते हैं। वे चलते-फिरते, खाते-पीते, खेलते-कूदते नये शब्दो एवं उनके प्रयोगो को सीखते चलते हैं। इससे उनके शुद्ध मनोरंजन में किंचित् बाधा नहीं होती। यथा—बच्चा दूध-भात खाता है, तो वह समझता है कि ये खाद्य वस्तु हैं। क्रमशः उनके नामों से परिचित होता चलता है। पर, खिलानेवालो का उद्देश्य बच्चों को भोजन कराना है, न कि दूध-भात के उपयोग पर सीखें देना या नामो का परिचय देना। ये चीजें तो व्यवहार से बच्चे स्वयं सीख जाते हैं। उपर्युक्त गीतों मे बच्चे जो सीखें पाते हैं, वे 'अनायासप्राप्त' होते हैं। इन गीतों का उद्देश्य तो बच्चो का मनोरंजन ही होता है।

सोद्देश्य मनोरंजन-गीत :

इन गीतों के गायक स्वयं बालक होते हैं। ये अब कुछ बड़े हो गये होते हैं। उनमे अपनी कला दिखाने की भावना और लोगों की दृष्टि मे प्रशंसापात्र बनने की कामना विकसित हो गई रहती है। इसलिए, वे खेलों की विधि और बोल, बुझौवल, गुल्ली-डण्डा के खेल-गीत आदि सीखते और गाते है। तदनुकूल ही इन्हें तीन उपवर्गों में बाँटा गया है—१. खेल के गीत (घर के खेल, मैदान के खेल); २. शिक्षाप्रधान गीत और ३. गुल्ली-डण्डा या चकचन्दा के गीत।

खेल के गीत[1] : बालक दो प्रकार के खेल खेलते हैं—(क) घर के अन्दर बैठकर, जिसे अँगरेजी में 'इन डोर गेम' कहते हैं। उनके खेल के साथ ही गीत संयुक्त होते हैं। यथा—

अटकन मटकन दही चटाकन।
बड़ फूले बरैला फूले सामन मास करैला फूले
बाबा जी के बारी है, फूले के फुलवारी है।
हे बेटी तूँ गंगे जाव, गंगे से कसैली लाव,
पक्के पक्के हम खाऊँ, कच्चे कच्चे नेऊर।
नेऊर गेल चोरी, बसुला कटोरी,
घर कान ममोरी।[2]

यह हथेलियों का खेल है। लड़के वृत्ताकार बैठकर गान के साथ इसे उत्साह के साथ खेलते हैं।

दूसरा खेल-गीत है—

तार काटे तरकुन काटे, काटे रे बरखाजा,
हाथी पर के घँघरू, चमक चले राजा।
राजा के रजइया हे, भइया के दोलइया,
हींच मारो, खींच मारो, मुसरि छपट्टा।[3]

यह पैर और अँगूठों का खेल है, जिसे बालक समूह में बैठकर खेलते हैं।

(ख) मैदान में बैठकर मैदान के खेल खेले जाते हैं। इनमे कबड्डी और आँख-मुँदौवल के खेल प्रधान हैं।

---

१. संसार के प्रायः सभी देशों मे बालको के खेल-सम्बन्धी गीत पाये जाते है। उत्तरी हैटी (Northern Haiti) प्रदेश के बहुत-से खेलों पर 'सिमसन' ने विचार प्रस्तुत किये है। 'फोकलोर', जिल्द ६५, संख्या २ (Vol. LXV, No. 2) मे 'पेजेण्ट चिल्डरेन्स गेम्स इन नॉदर्न हैटी' (Peasent children's games in Northern Haiti) नाम से सिमसन का सुन्दर निबन्ध प्रकाशित है।

भारतीय विद्वानों ने 'बालगीतो' पर विचार प्रस्तुत किये है। यथा—डॉ० सत्येन्द्र ने ब्र० लो० सा० अ० मे, डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने भो० लो० सा० अ० एवं लो० सा० की भूमिका में पालने एवं खेल के गीतो पर विचार प्रस्तुत किये है। इस दिशा मे गुजराती लोक-साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् श्रीभवेरचन्द मेघाणी ने स्पृहणीय कार्य किया है। उन्होने अपने ग्रन्थ लोक-साहित्य, भाग १ में बालगीतों पर दस शीर्षकों मे विचार किया है—१. चलने-कूदने के गीत, २. बैठे-बैठे चलने के गीत, ३. किसी वस्तु को दिखलाकर बच्चो को बुलाने के गीत, ४. ऋतु-सम्बन्धी गीत, ५. पशुपक्षी-सम्बन्धी गीत, ६. चाँदनी रात के गीत, ७. कथा-सम्बन्धी गीत, ८. व्रत-सम्बन्धी गीत, ९. गरेबा के गीत, १०. रास के गीत। इन सभी वर्गों के गीतो के उदाहरण एवं विवेचन उन्होने प्रस्तुत किये हैं।

२. खेल की सविस्तर विधि के लिए देखिए म० लो० सा०, पृ० ८१।

३. म० लो० सा०, पृ० ८१।

कबड्डी के खेल के बोल हैं—

आबिला आबिला, तबला बजाबिला।
तबला में पइसा, लाल बगइचा,
लाल बगइचा, लाल बगइचा।[1]

कबड्डी के खेल में दल के सभी लड़के 'कबड्डी-कबड्डी' बोलते हैं।

इस खेल के और भी बहुत-से गीत हैं। इसका सबसे बड़ा लाभ है—शारीरिक व्यायाम। दौड़कर खेलने से बच्चो के शरीर और फेफड़े मजबूत होते हैं।

आँख-मुँदौवल के खेल लड़के प्रायः निम्नांकित बोल बोलते हुए खेलते हैं—

हरगोंज गुंजा कोइ बूझ ले, हरगोंज गुंजा कोइ बूझ ले।

मैदान के खेल घर के खेलों से अधिक मनोरंजक होते हैं। कारण, इनमें मनोरंजन, व्यायाम और गीत या बोल तीनों का समन्वय रहता है। इनमे हार-जीतकर वे विषाद-हर्ष का अनुभव करते हैं। हारे हुए बालक दूसरी बार जीतने की प्रतिज्ञा कर अपने में आत्मविश्वास भरते हैं।

शिक्षाप्रधान गीत : कुछ ऐसे बालगीत हैं, जो मनोरंजन के साथ बालको को शिक्षा भी देते है। यथा निम्नांकित 'पहाड़ा गीत' देखें—

गन फकीरा राम, तो राम जी के नाम,
गन फकीरा दू, तो दूजे के चाँद।
गन फकीरा तीन, तो तीनो तिरलोक,
गन फकीरा चार, तो चारो पहर।
गन फकीरा पाँच, तो पाँचो पाण्डव,
गन फकीरा छओ, तो छओ के छट्ठी।
गन फकीरा सात, तो सातो दीप,
गन फकीरा आठ, तो आठो भुजा।
गन फकारा नव, तो नवो नौरतन,
गन फकीरा दस, तो दसो दिसा।
गन फकीरा इगारह, तो इगारहो एकादसो।
गन फकीरा बारह, तो बारहों बरखों।

भगवान् एक हैं। इसलिए, संख्या 'एक' के लिए 'राम' शब्द की सीख दी जाती है। इसके बाद अन्य संख्याएँ भी पौराणिक कथा-संकेतो के माध्यम से याद करा दी जाती हैं। दूज के चाँद, तीन लोक, चार पहर, पाँच पाण्डव, छट्ठी, सात द्वीप, अष्ट भुजा, नवरतन आदि शब्द बच्चों को भारतीय जीवन की कतिपय महत्त्वपूर्ण परम्पराओं से अनायास ही परिचित करा देते हैं, साथ ही उनमें सांस्कृतिक संस्कार भी जगाते हैं। पहाड़ा स्मरण कराने की इससे मनोरंजक शैली और क्या हो सकती है?

---

१. वही, पृ० ८३।

बुद्धि का व्यायाम करानेवाले भी कुछ बुझौवल-गीत हैं। यथा प्रश्न है—

कउनी जनवरवा के लामो लामी टंगरी!
से कउने जनवरवा के ऊजर ऊजर पाँख।
कउनी जनवरवा चलइ पेटकुनिएँ।
किनखा हिरिदवा में आँख।

इसका उत्तर है—

गरुड़ जानवर के लामी लामी टँगरी, बगुला जानवर के ऊजर ए पाँख,
कछुवा जानावर चलइ पेटकुनिएँ, कि उनखो हिरिदवा में आँख।[१]

बच्चों की चिन्तन-शक्ति बढ़ाने के लिए ऐसे बुझौवल-गीतों का बड़ा ही महत्त्व है।

चकचन्दा के गीत[२] : पाठशालाओं मे गणेश चतुर्थी का दिन 'गुरु-पूजन का होता है। यहाँ पूजोपरान्त छात्रगण विशिष्ट गान के साथ 'गुल्ली-डण्डा' के खेल खेलते हैं। इस खेल-गीत को 'चकचन्दा के गीत' कहते हैं। चकचन्दा के गीत के साथ गुल्ली-डण्डा खेलाते हुए गुरु लोग बालकों के घर जाते हैं, जहाँ बालक के अभिभावक यथाशक्ति गुरु-दक्षिणा देते हैं।

गुल्ली-डण्डा का एक अलग खेल भी होता है। यहाँ उस गुल्ली-डण्डा से अभिप्राय नहीं है। चकचन्दा के गीत के साथ बजाये जानेवाले गुल्ली डण्डे वस्तुत: दो छोटे एवं रंग-बिरंगे डण्डे होते हैं। बालक गीत के साथ इन्हें इस प्रकार टकराते चलते हैं कि गीत और वाद्य का समन्वय होकर सुमधुर संगीत की सृष्टि हो जाती है।

चकचन्दा के गीतों[३] की कई श्रेणियाँ हैं—प्रथम श्रेणी मे गणेशजी एवं अन्य देवताओं की वन्दना के साथ माता की वन्दना करके आशीर्वाद पाने की भावना रहती है। गुरुजी के साथ आगमन का उद्देश्य स्पष्ट करने की भी चेष्टा होती है। यथा—

सोने के कटोरी में लड्डू भरल भाई लड्डू भरल।
उठऽ गनेस जी भोजन करऽ।
भोजन करके दीहऽ असीस।
जियो जी चटिया लाख बरीस।

इसमे गणेशजी की प्रशस्ति है, जिनके जन्म के उपलक्ष्य मे यह उत्सव मनाया जाता है।

---

१. मगही के मनोरंजन : 'बिहान'-पत्रिका, जून, १९५८ ई०, ले० श्रीहरिदास ज्वाल, एम्० ए०, डिप्० इन्० एड्०।

२. 'चकचन्दा के गीत' को व्रज मे 'चट्टा के गीत' कहते है। यहाँ बालक गुरुजी के साथ गुल्ली-डण्डा के स्थान पर 'चट्टा' बजाते और गीत गाते है। 'चट्टा' शब्द 'चटशाल' से सम्बन्ध रखता है। ग्राम की साधारण बोलचाल मे विद्यार्थी को व्रज मे 'चट्टा' कहते है। (मगह मे विद्यार्थी के लिए 'चटिया' शब्द का व्यवहार होता है। चकचन्दा के गीतो मे इनके लिए 'चटिया' शब्द ही आया है)। व्रज मे चट्टा के गीत गणेशचौथ को ही गाये जाते है।

—व्र० लो० सा० अ०, पृ० ३३३।

३. देखिए म० लो० सा०, पृ० ८३-८७।

दूसरे गीत में गणेशजी के साथ माता-पिता की वन्दना करते हुए उनसे आशीर्वाद लेने की कामना व्यक्त होती है --

भादो चौठ गनेस जी आये, सब लइकन डण्ट पुजाए।
डण्टा है सिरमौला, माय-बाप के औला।
माय-बाप है दियो असीस, जियो रे चटिया लाख बरीस।

तीसरे गीत में सरस्वती देवी की प्रशस्ति के साथ गुरुजी का शिष्यों के घर जाने के उद्देश्य का उल्लेख है--

सिरी सरसत्ती सिरी सरसत्वी, माथे सोभे बेल के पत्ती
सुनऽ सुनऽ बबुआ के माय, तोर द्वार पर गुरु जी आये
संगे साथे चटियन आए, गुरु जी उनसे दण्ड पुजाये।

विद्या की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती की वन्दना करना विद्यार्थियों के लिए स्वाभाविक ही है। पहले विद्यार्थी भिक्षाटन करके आचार्य की जीविका चलाते थे। सम्भवतः, चकचन्दा के अवसर पर विद्यार्थियों के साथ गुरुजी का उनके घर जाना उसी परम्परा का अवशेष है।

दूसरी श्रेणी के चकचन्दा-गीतों में बच्चों के खेल-कूद के उल्लेख के साथ उन्हें विविध सीखें देने की भावना का प्राधान्य रहता है। यथा—

खेलते खुलते लोहा पेली। से लोहा लोहार के देली।
लोहार बनैलक पाँच हँसुआ। मीर लेलक मीर हँसुवा।
इयार लेलक तीना हँसुआ। हम लेली पसुलिए।

इसी क्रम में वह मीर (प्रधान) एवं अन्य साथियों के साथ घास गढ़ता है, बोझा बनाता है, रुपया कमाता है, घोड़ा खरीदता है, घोड़ा दौड़ाता है, घोड़े को पानी पिलाता है, उसे खूँटे में बाँधता है फिर उसके साथ आम के बाग में आम खाने जाता है। उपर्युक्त सभी कामों में मीर सबसे आगे, तीन-चार बालक बीच में और गीत का गायक बालक पीछे रहता है। आम के बाग में भी ऐसा ही होता है। यहाँ सभी अगले और बिचले साथी आम खाते हैं, पर गायक को गुठली पर ही सन्तोष करना पड़ता है। पर, अन्त में साथी पकड़ा जाते हैं। दण्ड भी पूर्वक्रम के अनुसार ही मिलता है—

मीर के मारलन मीर लाठी। इयार के मारलन तीन लाठी।
हमरा मारलन छकुनिए। गिर पड़ली पेटकुनिए।
भागली ठेहुनिए। लुक गेली चुल्हनिए।

इस गीत में, खेल-कूद में क्रमिक रूप से प्राप्त बालक के अनुभवों का उल्लेख बिनोदात्मक शैली में हुआ है। चकचन्दा के गीत प्रायः अद्भुत एवं विनोदात्मक होते हैं। इसमें विनोद से भी अधिक हास्य का अंश रहता है।

तीसरी श्रेणी के गीतों में गुरुजी के दान माँगने का उपक्रम एवं दान-प्राप्ति के बाद आशीर्वचन वर्णित होता है—

गुरुजी के देहु जोड़ा धोती। गुरुजी के देहु लाख रुपैया।

माँ नही देती, तो गीत आगे बढ़ता है—

बउआ रोवे मइया मइया। तोरा जीउ में आबउ न माया।
बउआ रोवे बाजी बाजी। गाली झिटकी चुनैलहीं मइया।
सब लड़कन मिलि दुसतउ मइया। सब लइकन मिलि हँसतउ मइया।[1]

गीत के बाद घर के सभी परिजनो को गुरु-दक्षिणा देनी ही पड़ती है।

अन्त मे, आशीर्वाद से यह खेल एवं गीत-क्रम समाप्त होता है—

बउआ चढ़े घोड़ा, रुपैया निकले जोड़ा,
बउआ चढ़े टमटम, रुपैया निकले ठनठन।

उपर्युक्त सोद्देश्य मनोरंजन-गीतों के विषय में निम्नांकित तथ्य ज्ञातव्य हैं—

१. इन गीतों से बालक की अवस्था एवं ज्ञान के क्रमिक विकास का बोध होता है। अब ये 'चाँद-तारों' को मामा समझकर भ्रम में नहीं पड़ते। इन्हें प्रकृति के उपादानों का बहुत-कुछ परिचय होने लगता है। उनके साथ उनके कौतुक की भावना जुड़ी रहती है।

२. इनमे बालक के सामाजिक एवं सामूहिक भावना के विकास का पता चलता है। वे अपेक्षाकृत शिष्ट और समझदार दिखाई पड़ते हैं, मिल-जुलकर खेलने में उन्हें आनन्द आता है। बचपन के हठ एवं आत्मकेन्द्रित भावो से वे दूर होते दिखाई देते हैं।

३. बौद्धिक चमत्कार और शारीरिक स्वास्थ्य प्राप्त करने एवं उनके दर्शन की भावना उनमे सबल दिखाई पड़ती है।

४. देवता, गुरु, माता-पिता एवं अन्य परिजनों के प्रति यथायोग्य भक्ति एवं आदर रखने की सीख उन्हें परिपक्वता की ओर पहुँचाती दीख पड़ती है। पर, इतना सब कुछ होने पर भी बाल-सुलभ चापल्य, मनोरंजन, विनोद एवं हास्यप्रियता तथा खेल-कूद के प्रति विशेष आग्रह से वे दूर नही दिखाई देते। उनके गीतों मे प्रयुक्त अनेक निरर्थक पद उनके कौतुक से भरे स्वभाव का परिचय देते हैं। वे प्रायः अपने गीतों से प्रेरणा एवं बल ग्रहण करना चाहते हैं, जिनके लिए उन्हें सार्थक पदों की अनिवार्यता प्रतीत नहीं होती। जहाँ वे सीखें ग्रहण करना चाहते हैं, वहाँ विशेष अर्थ-व्यंजक पदों के व्यवहार होते हैं। इस प्रकार, शुद्ध मनोरंजक गीत दोहरी व्यंजना प्रदान करते दिखाई देते हैं।

---

१. भीतर से तू बाहिर आ। गढ़े गढ़ाये रुपिया ला।
पंडित जू कूँ पागौ ला। मिसरानी कूँ तीहर ला।
चट्टन कूँ मिठाई ला। ••• •••
चट्टा हिंगे बड़ी अशीश। बेटा हुँगे नौ सौ तीस।
आयो बसन्तक सुन चकपैया। अबका सेखौ लाओ रुपैया।

—ब्र० लो० सा० अ०, पृ० ३३४।

विविध गीत

मगही में ऐसे अनेक गीत उपलब्ध होते हैं, जिनका अन्तर्भाव पूर्वोक्त वर्गों में नहीं हो सकता। इनमे झूमर, विरहा, अलचारी, गोदना, निर्गुण, जातीय गीत एवं सामयिक गीत आते हैं। 'विविध गीत' शीर्षक के अन्तर्गत इनपर संक्षेप मे विचार प्रस्तुत किया जाता है।

झूमर : 'झूमर' का अर्थ है—झूमना या झूमकर नाचना। महिलाएँ, 'झूमर' झुण्ड में खड़ी होकर, झूम-झूमकर गाती हैं। ये गीत किसी भी शुभ संस्कार या आनन्दमय अवसर पर गाये जाते हैं। ये गीत मानों रस के कलश होते हैं। इनमें भाव-व्यंजना के सौन्दर्य के साथ भाषा की सरसता भी वर्त्तमान रहती है। टेक-पदों की पुनरावृत्ति से इनमें अद्भुत गतिमयता आ जाती है। गीत की लय, गति और प्रवाह से ही पता चलता है कि ये नृत्यगीत हैं। ये गीत छोटे होते हैं। इनमें छोटे-छोटे कथानकों का भी समावेश होता है। विनोद और हास्य के पुट के साथ उल्लास की भावना से ये परिपूर्ण होते हैं।

वर्ण्य विषय : 'झूमर' गीतों की एक बड़ी विशेषता है, उनकी भावात्मकता। शृंगार रस के संयोग पक्ष में यह (भावात्मकता) उल्लास, आनन्द आदि के रूप में व्यक्त होती है, पर वियोग-पक्ष में प्रिय-मिलन की कामना, विरहजनित वेदना, व्याकुलता आदि की विवृति के रूप में। इनके अतिरिक्त नववधू की लालसा, देवर-भाभी का हास-परिहास, सलहज-ननदोसी का पारस्परिक स्नेह-व्यवहार एवं गार्हस्थ्य-जीवन की विविध अनुभूतियों की भी अच्छी व्यंजना इन गीतों में मिलती है। यथा :

एक गीत में पति-पत्नी के बीच परदेश-गमन के प्रसंग पर प्रेम-कलह छिड़ा है[1]—

भोर भेलइ हे पिया भिनसरवा भेलइ हे,
उठू न पलंगिया से कोइलिया बोलइ ना।
कोयलिया बोलइ गे धनिया कोइलिया बोलइ ना,
देहि ना पगड़िया हम कलकतवा जैबइ ना।

इसपर क्रोध से भरी पत्नी कहती है—'मैं भी नैहर जाऊँगी।' चिढ़ाता हुआ पति उत्तर देता है—

हमरा लग्गल हइ रुपइया, चुका के जैहऽ ना।

पत्नी भी चुकता जवाब देती है—"मैं अवश्य तुम्हारे रुपये चुका दूँगी, पर तुम मेरा 'कौमार्य' लौटा दो"—

जैसन बाबा घर के हलिअइ, ओयसन बनाइ देहु ना।

निरुत्तर पति मनुहार करता है—'तुम्हें मोतीचूर के लड्डू खिलाकर मना लूँगा।'

मोतिचूर के लडुआ, खिलाइए देबउ ना।

प्रेम-कलह एवं मान-मनुहार की सुन्दर झाँकी इसमे प्रस्तुत की गई है।

एक विरहिणी अपने दोलायमान हृदय की तुलना 'पीपल के पत्ते' से करती हुई कहती है—

---

१. दे० म० लो० सा०, पृ० ७२।

पीपर के पत्ता फुलंगिया डोले, अब जिया डोले रे ननदो।
तोहर भइया रे बिनु ॥ टेक ॥
माँगों के टिकवा सेहु भला तेजम, पिया नहिं तेजम हे ननदो,
तोहर भइया रे बिनु ॥[१]

स्वकीया का पति के प्रति अनुपम अनुराग है। वह प्रिय आभूषणों का परित्याग कर सकती है, पर प्राणप्रिय पति का नहीं। उसके बिना उसके प्राण पीपल के पत्ते की नाईं काँप रहे हैं।

देवर-भाभी के हास-परिहास का मनोहर चित्र निम्नांकित मगही गीत में प्रस्तुत किया गया है—

भाभी—खैलों में पाकल पनमा, बिरवा लगाय लाल।
दाँत सोभे हीरा मोती देओरा लोभाय लाल ॥
खिरकी के ओते देओरा मारे निसान लाल।
बाबा कचहरिया हम तो देबो बँधाय लाल।
देवर—जब तोहिं एहे भौजो देबऽ बँधाय लाल ॥
कोसल पैसवा हम देबो लुटाय लाल।[२]

अपने अनुपम रूप पर मुग्ध देवर को जब भाभी दण्डित कराने की धमकी देती है, तब वह हँसता हुआ उत्तर देता है—'तुम मुझे बँधवाकर देख लो। मैं धन लुटाकर बच जाऊँगा, मेरी सुन्दर भाभी !'

एक सलहज ननदोसी की अनेक खातिरदारियाँ कर रही है, पर वह मानता नहीं। इधर सलहज का पति बेखबर सोया है, बहनोई की किंचित् चिन्ता वह नहीं कर रहा है—

सोने के झाड़ी गंगाजल पानी, गोड़वा न धोवे ननदोइया।
बलमु अगनइया में सो रहल जी ॥टेक॥
आवे लहर जमुना के बलमु अगनइया में सो रहा जी।
सोना के थारी में मेवा-मखाना, जेवना न जेमे ननदोइया,
बलमु अगनइया में सो रहल जी ॥
फूल नेवार सुख सेज बनाया, सेजिया न सोवे ननदोइया।
बलमु अगनइया में सो रहल जी ॥[३]

बिरहा : 'बिरहा' गीतों के गायक पुरुष होते हैं। इनके गाने की एक भिन्न शैली होती है। गायक अपने एक हाथ को कान पर रखकर बिरहा गाता है। अन्य गीतों में लयों एवं रागों का वैविध्य होता है, पर 'बिरहा' की एक ही 'लय' है, जिसमें सभी जाति एवं वर्गों के लोग गाते हैं।

---

१. दे० म० लो० सा०, पृ० ७०।
२. दे० वही, पृ० ७३।
३. दे० वही, पृ० ७२-७३।

विरहा-गीत प्रायः चार कड़ियों के होते हैं। इसलिए, मगही में इन्हें 'चरकलिया' और भोजपुरी में 'चारकड़िया' कहते हैं। कुछ लम्बे बिरहा-गीत भी होते हैं, पर प्रायः इन्हें 'गाथा-गीतों' की श्रेणी मे रखा जाता है। बिरहा के गाने में करुण स्वर का प्रयोग होता है, पर इसका यह अभिप्राय नहीं कि इनमे केवल करुण प्रसंग ही वर्णित होते हैं। विषयो की विविधता का इनमें अभाव नहीं रहता।

डॉ० ग्रियर्सन ने विरहा-गीत पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—'यद्यपि इन बिरहों का विशेष साहित्यिक मूल्य नहीं है, परन्तु जनता के भीतरी विचारों एवं आकांक्षाओं के कारण इनका महत्त्व बहुत अधिक है। वास्तव में, बिरहा एक जंगली फूल के समान है।'[1]

'विरहा-गीत' अत्यन्त छोटे होने के कारण रस के छीटे भर दे पाते हैं। उनमें रस का पूर्ण प्रतिपादन नहीं होता। पर, इसीसे हम उनके साहित्यिक मूल्य की उपेक्षा नहीं कर सकते। अनेक बिरहा-गीत भाषा, भाव एवं रस-तत्त्व की दृष्टि से उच्च कोटि के होते हैं। उनमें साहित्यिक तत्त्व स्वतः वर्त्तमान होता है। जिस प्रकार जंगली फूल माली के द्वारा सिंचन आदि के विना भी स्वतः उद्‌भूत होते हैं, उसी प्रकार बिरहा-गीत विना प्रयास, सिंचन संस्कार, परिष्कार आदि के जन-हृदय में स्वतः उद्‌भूत होते हैं। ये गीत आकृति में छोटे होने पर भी पूर्ण सुगठित एवं सरस भावों से पूर्ण होते हैं। भाषा, भाव एवं रस, सभी दृष्टियों से इनका हृदय पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

विरहा-गीत विवाहादि शुभसंस्कारो के अवसर पर प्रायः प्रतिद्वन्द्विता के साथ गाये जाते हैं। दो दलो के लोग आमने-सामने बैठकर एक के बाद एक बिरहा गाते हैं। जो दल अन्त मे आगे गाने मे असमर्थता प्रकट कर देता है, उसे पराजित माना जाता है। विना प्रतिद्वन्द्विता के भी बैठकर ये गीत गाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त मजदूर लोग खेत मे काम करते हुए, घास काटते हुए या अन्य काम करते हुए, चरवाहे पशुओं को चराते हुए, बैलगाड़ीवाले आधी रात मे सड़क पर बैलगाड़ी हाँकते हुए 'बिरहा-गीत' गाते हैं। ये गीत कारुणिक शैली में गाये जाने के कारण हृदय पर गहरा असर डालते है।

वर्ण्य विषय : कहा जा चुका है कि बिरहा गाने की शैली करुण होती है, पर इनमें केवल करुण प्रसंग नहीं दिये जाते। कुछ लोगों का कथन है कि 'बिरहा' विरह के गीत हैं, पर इनमे संयोग-पक्ष की भी झाँकियाँ मिलती हैं। सच पूछा जाय, तो इनमें प्रेम के सभी रूपों का वर्णन होता है। इनके अतिरिक्त धार्मिक आस्थाएँ, नारी की सन्तान-कामना, गार्हस्थ्य जीवन के अनेक हल्के-गम्भीर भाव आदि भी इन गीतों में वर्णित मिलते हैं। वस्तुतः, जीवन के प्रत्येक पक्ष के चित्र इनमें उतारे गये हैं। इससे स्पष्ट है कि बिरहा गीत की एक शैली है।

एक नववधू मार्मिक शब्दों में अपनी अन्तर्व्यथा प्रकट करती है—

---

१. ज० रा० ए० सो०, भाग १८ (१८८६), पृ० २०।

पिया पिया रटि के पियर भेलइ देहिया।
लोगवा कहइ कि पांडु रोग॥
गाँमा के लोगवा मरमियों न जानइ।
भेलइ न गवनमा मोर।[1]

एक अन्य बिरहा-गीत में लंका की राजेश्वरी मन्दोदरी अपने दुर्भाग्य पर आँसू बहा रही है—

आज पवनसुत अँगना न बहारलन,
इन्दर जल न भरे जाये।
लछमी सरसती धान न कूटे,
रानी मंदोदर रोय।[2]

रावण के प्रताप के नष्ट होने पर सभी सेवक बदल गये हैं। पराभव की दशा में ऐसे ही परिवर्त्तन संसार में देखे जाते हैं, इसी सत्य पर इन पंक्तियों में प्रकाश डाला गया है।

निम्नांकित बिरहा-गीत में सत्यपालन के माहात्म्य पर प्रकाश डाला गया है—

मिट्टी पुजला से भाई देवता न मिलिहें,
पत्थल पुजला से न भगवान।
मक्का जाइ खोदा नहिं मिलिहें,
पक्का रखऽ इमान।[3]

सारी सृष्टि कार्य-कारण की श्रृंखला में आबद्ध है। बादल से पानी, सूर्य से धूप और पुरुष से सन्तान पैदा होती है। कार्यकारण-सम्बन्ध की इसी अनिवार्यता का निम्नांकित गीत में वर्णन है—

बिन बदरा के भाई बरखा न बरसइ,
बिनु सुरुज के न उगइ घाम,
बिन पुरुखा के लड़िका न भेलइ
देखेला माँगइ तो भगवान।[4]

हिन्दुओं के धार्मिक आचरण एवं विश्वास की व्यंजना इस बिरहा गीत में हुई है—
भोरवा पहर हइ धरम के बेरवा,
सखी सब करइ गंगा असनान।
सिसिया के जल महादेव पर चढ़ौलन
सखियन सब माँगे बरदान।

१. म० लो० सा०, पृ० ७४।
२. वही, पृ० ७५।
३. वही, पृ० ७६।
४. वही, पृ० ७६।

निम्नांकित गीत में वन्ध्या की सन्तान-कामना देखिए —

चिड़ियाँ बियाए चिरमुनिया
गंगा मइया तो बियाय रेत।
उरहुर के फुलवा चढ़ैवई देवी मइया
बाँझि के अँचरवा देव।[1]

अलचारी : अलचारी एक गीत-शैली है, जिसमें या तो लाचारी की स्थिति का उल्लेख होता है या व्यंग्यात्मक, विनोदात्मक एवं हास्यात्मक शैली में पत्नी की श्रेष्ठता और पति की हीनता या मूर्खता दिखाई जाती है। कहीं-कहीं प्रेम-प्रसंग भी वर्णित मिलते हैं। ये भाव-व्यंजनाएँ कभी शिव-पार्वती के माध्यम से की जाती हैं और कही अन्य पात्रों के माध्यम से।

धोबियो के यहाँ विशेष बाजे के साथ अलचारी गीत गाये जाते हैं। ये हैं—कठौती, गगरा, गगरी या थाली। इन बरतनों पर दो लकड़ियों से चोट करके ये गीत के बोल निकालते हैं, फिर उसी में स्वर मिलाकर गाते हैं।

निम्नांकित गीत में पार्वती शिव से नाचने का आग्रह कर रही हैं, पर वे लाचारी दिखा रहे हैं—

पार्वती—आजु महाबरत लागिए हे।
धरु सिउ जी नटवर भेस कि नाचि देखावऽ हे।

शिव—तोहुँ जे कहे गउरा नाचेला, हम कइसे नाचब हे।
माई हे चारिओ बात केरा सोंच, हम कइसे नाचब हे॥
इमरित चुइए जब गिरत, बघम्बर जागत हे।
माई हे बघम्बर होयत बाघ, वसहा धरि खायत हे॥
गल्ला से ससरत साँप से चारों दिसा पसरत हे।
माइ हे कातिक[2] पोसल मंजूर से ओहि धरि खायत हे॥
जटा से छिटकत गंगा, धरनि समाइत हे।
अहे होइत सहसु जलधार से कौन सँभारव हे॥
गल्ला से टूटत मुंडमाल, मसान सब जागत हे।
माई हे तोहुँ गउरा भागवे पराय, नाच कौन देखत हे॥[3]

---

१. कछुई बिअइलि हा कछुआ ए रामा
गंगा जी बिअइलि हा रेत।
छोटी छोटी बेटिया तँ बेटवा बिअइलिहा
बजरि परी ना एहि पेट।
—भो० ग्रा० गी०, पृ० ३५१।

२. कार्त्तिकेय।

३. इनसे मिलती-जुलती पंक्तियाँ देखिए—मै० लो० गी०, पृ० १४६।

शिव को चार कारणों से नाचने में लाचारी है—१. उनके नाचने पर अमृत के चूने से व्याघ्रचर्म बाघ में परिणत होकर बसहा बैल को खा जायगा। २. गले से सभी सर्प ससर जायेंगे, जिन्हें कार्त्तिकेय का मोर खा जायगा। ३. जटा से गंगाजी छिटककर धरती पर सहस्र जलधार के रूप मे फैल जायेंगी और ४. गले से मुण्डमाल टूटकर गिर पड़ेंगे। अमृत पड़ने से सभी जीवित होकर मसान-लीला आरम्भ करेंगे। फिर तो डर से पार्वती भी भाग जायेंगी। नृत्य कौन देखेगा?

इसमें एक ओर तो शिवजी की लाचारी दिखाई गई है, दूसरी ओर पौराणिक इतिवृत्त की ओर संकेत भी किया गया है।

एक 'लहचारी' गीत में एक युवती अपने वृद्ध पति की शिथिलता एवं मूर्खता से तंग आकर 'छकुनी' से उसे शासित करती देखी जाती है—

बुढ़ऊ लागी खिचड़ी पकयली, चिउआ ले सेरा अयली हो राम।[1]
सेहु बुढ़ऊ सूते खरिहान, कलपी जिया रहऽ हई हो राम॥
बुढ़ऊ लागी खटिया बिछयली, अउ तोसक लगा ऐली हो राम।
बुढ़ऊ लागी तकिया लगा ऐली, पंखा लगा ऐली हो राम॥
बनमा काटि बैठवई, छोकनियाँ हम लैवई हो राम।
अहो राम तेही छोकनी बुढवा के डेरायब हो राम।[2]

'तेही छोकनी बुढ़वा के डेरायब' में बरबस हँसी आ ही जाती है। इसमें पत्नी से पति को हीन एवं लघु दिखाया गया है।

गोदना : प्राचीन काल से मगध-क्षेत्र मे सौभाग्यवती हिन्दू-स्त्रियाँ इस धार्मिक आस्था से गोदना गोदाती रही हैं कि इसके विना हिन्दू-स्त्रियों का उद्धार नहीं हो सकता और इससे स्त्री के सौभाग्य की वृद्धि होती है। हिन्दू-स्त्री की पहचान के लिए गोदना को अन्यतम साधन माना जाता है, यद्यपि धीरे-धीरे 'गोदना' की प्रथा उठ रही है।

गोदनाहारिन सुई चुभोकर गोदना गोदती है। इस क्रिया में गोदानेवाली को बड़ा कष्ट होता है। उस कष्ट को विस्मृत करने के लिए ही इन गीतों की प्रथा चली। गोदना गोदनेवाली इन गीतों की कला मे पूर्ण निपुण होती है। मगही-भाषी क्षेत्र में अनेक गोदना-गीत मिलते हैं—

---

१. हि० सा० बृ० इ०, भाग १६, पृ० ७४।

२. मैथिली मे भी शिव-पार्वती के प्रसंग में पत्नी से पति को हीन दिखाकर शिष्ट हास्य का सन्निवेश किया गया है—

उमा कर वर बाउरि छवि छटा
गला माल बघछाल बसन तन
बूढ़ बयल लटपटा, भसम अंग सिर गंग तिलक शशि
बाल भाल पर जटा, अति सुकुमारी कुमारी मोरि गिरिजा
वर बुढ़वा पेट सटा।

—मै० लो० गी०, पृ० १५१।

पटना सहरिया से चललइ गोदहारिन।
कोई सामर गोदना रे गोदाय॥

गोदनेवाली की पुकार सुनकर एक सुन्दरी अपने महल से बाहर निकल आई और उसने गोदाने की इच्छा व्यक्त की—

अप्पन महलिया से निकललइ सुनरिया।
हम सामर गोदना रे गोदाम॥
अपना महलिया से ऐलन तिरियवा,
विहँसि सासु बोले, 'पुतहु गोदना रे गोदाव।'

पर, वैरिन ननद के चिढ़ाने के भय से 'सुन्दरी' नैहर में गोदना गोदाकर सौभाग्यवती बनने की इच्छा प्रकट करती है—

नहिं हम सासु गोदना रे गोदाम।
छोटकी ननदिया ओलखन दीहें रे जान॥
नहिरा गोदैवइ सासु, बनवइ सोहागिन।
तोरे रे घरवा बालक, खेलैवइ रे जान॥

गोदना को स्त्रियाँ सौन्दर्य का एक साधन भी मानती हैं। गोरे अंगों पर काले-काले गोदने उन्हें बहुत प्रिय लगते हैं। इसके मूल में निहित शृंगार-भावना स्पष्ट है।

निर्गुण : निर्गुण गीतों में अलौकिक तत्त्व चिन्तन को प्रधानता दी जाती है। विश्व क्या है? इसका निर्माता कौन है? जीवात्मा को प्रेरित करनेवाली कौन शक्ति है? आदि जिज्ञासाओं की विशद चर्चा इन गीतों मे मिलती है। इन गीतो के गायक प्रायः साधु-फकीर होते हैं, ग्रामीण जनता नहीं। इसलिए, विश्व के प्रति अनासक्ति-भाव, ईश्वर के प्रति अनुराग तथा संसार के माया-मोह के परित्याग के उपदेश इन गीतों में भरे मिलते हैं।

निम्नांकित मगही-गीत में निर्वेद-भावना का अच्छा नमूना मिलता है—

रे मन चार दिना के बासा॥ टेक॥
खाली हाँथे हिआँ आइ, भुललीं धन जन पाई।
अन्तर में हुलास कामिनी-कंचन लागी।
बढ़ऽ हइ पियास, रे मन चार दिना के बासा।
पानी के बतासा जैसन, तन के तमासा॥ रे मन०॥
माटि पानी अगिन आउ पवन सहित चार।
पंचम अकासा तेहि से गथित देह।
तेकरो कि आसा रे मन चार दिना के बासा।
जब लगि सुत नारी, बितती महल भारी।
जब लगि स्वांसा रहतो रे कंचन काया।
फिनु जरि के हुतासा, रे मन चार दिना के बासा।
भव पिरीत के यही सार, आवा-जावा बेर बेर।
परभु के चरन ध्यावऽ, छूटतो जनम भासा॥ रे मन०॥

इसमें संसार के क्षणिक सुखों एवं उनकी निस्सारता का सुन्दर वर्णन हुआ है। संसार-मोह के कारण मानव आवागमन के चक्र से मुक्त नहीं हो पाता। सच्चे मन से भगवान् के स्मरण से ही 'जन्म-मरण' से मुक्ति मिल सकती है।

एक अन्य मगही-गीत में मानव-जीवन की सच्ची उपयोगिता प्रभु के स्मरण-चिन्तन में ही बताई गई है—

भाग से पइहे ना, एहि मानुस तनमा ॥ टेक ॥
कपट बिसारी करु, हरि सुमरनमा ॥
सुत, बित, नारी अउर कुल परिजनमा।
संग न जइहें सुख सेज भवनवाँ ॥

सामयिक गीत

मगही में ऐसे अनेक लोकप्रिय गीत हैं, जिनपर नवयुग की छाप मिलती है। इनमें नवीन आभूषण, नये फैशन, नये शासक एवं उनकी नीति आदि का उल्लेख हुआ है। इनके अतिरिक्त इनमें देश में जगी राष्ट्रीय चेतना की लहर, स्वराज्य के महत्त्व, विदेशी शासन-सत्ता एवं उसके अत्याचार, विश्वयुद्ध, पराधीनता आदि के कारण मॅहगाई आदि प्रसंगों की भी अच्छी अभिव्यक्ति हुई है। यथा—

दादा हमारे खड़े हैं, बारात जाने को।
दादी ने झंडा ले लिया सुराज करने को।
मोहन सिनेमा हो रहा है, दुल्हे के कमरे में।

इस गीत मे राष्ट्रीय भावना की झलक दिखाई देती है। विवाह का अवसर है। घर के पुरुष बरात जाने के लिए तत्पर हैं, दूल्हा विवाह के मोहक संसार मे काल्पनिक विचरण कर रहा है। पर, घर की महिलाओं में राष्ट्रीय जागरण की भावनाओं का प्राबल्य है। वे हाथ मे स्वराज्य का झण्डा लेकर सुख-शान्ति के अमर सन्देश दे रही हैं। यद्यपि विवाह के अवसर घर यह गीत प्रासंगिक नहीं है, तथापि नारी-समाज स्वातन्त्र्य-आन्दोलन के प्रति सजग है, इसका परिचय तो इससे मिल ही जाता है।

एक अन्य गीत में एक स्त्री अपने आभूषणों में 'जयहिन्द' लिखाकर देशप्रेम का परिचय देना चाहती है—

हम तो टिकवा गढ़ायब, ओ पर 'जयहिन' लिखायब।
अगिया लगइ पिया तोरा बिड़िया सलइया में ॥
हम तो नेकलेस गढ़ायब ओ पर 'जयहिन' लिखायब।
अप्पन कमइया पिया लुटैलऽ पकिस्तनिया में ॥
हम तो कमला पाउडर लगायब अप्पन दुन्नों गाल में।
हम तो पासा गढ़ायब, ओ पर 'जयहिन' लिखायब ॥

वह बीड़ी-सलाई में पैसे व्यर्थ जलाना नहीं चाहती, न घर के पैसों को विदेशी वस्तुओं में बरबाद करना चाहती है। आधुनिकतम शृंगार के प्रसाधन पाउडर का

व्यवहार करना चाहती है, पर वह पाउडर स्वदेशी हो, इसका भी इसे पूरा खयाल है।

विदेशी शासन के हुक्काम प्रजा पर कैसा अत्याचार करते थे, इसका नमूना निम्नांकित गीत मे प्रस्तुत है—

बाबू दरोगा जी, कौने गुनहिया बाँधल पियवा मोर ।। टेक ।।
ना मोरा पियवा चोर-जुआरी,
सुते के बेरिया लजाय ।। बाबू० ।।
ना मोर पियवा मधुवा के मातल,
बीचे सड़किए सोए।
अन्नी दुअन्नी सिपहिया के देबो,
दम देबो कोतवाल।
बाला जोबनमा फिरंगिया के देबइ,
पिया के लेबइ छोड़ाइ ।। बाबू० ।।

अँगरेजी-राज्य मे साहब से सामान्य अफसर तक ऐसे ही अन्यायपूर्ण कर्मों में लगे रहते थे। केवल आतंक फैलाने के लिए निरपराध लोगों कैद करना, घूस लेकर उन्हें मुक्त करना एवं सतियों को पथभ्रष्ट होने को विवश करना आदि जैसे उनका प्रधान पेशा ही बन गया था। विदेशी शासन के भ्रष्टाचार का अच्छा नमूना यहाँ मिलता है।

कृषक-मजदूर आर्थिक संकट से दबे जाते हैं और अमीर लोग सुख-विलास से अवकाश ही नही पाते। इस विषम स्थिति की ओर निम्नांकित गीत में संकेत है—

एक पानी बिना मरल धान गे सजनी।
माघे हथिया काना बरस गेलो ।।
नई बरसइ चितरा बैमान गे सजनी।
बड़े-बड़े सेठा लोग रहलन भले से ।।
मरी गेलन मजुरा किसान गे सजनी।
अहराय नदी नार, फूटि फाटि गेलइ ।।
नहिं देलकइ हकिमा धेयान गे सजनी।
एहु पानी ले होम जाप कैली।
नइ घमइ इन्दर भगवान गे सजनी ।।

दुर्भाग्य एक ओर से नहीं आता, सभी ओर से घेरता है। हाकिम कृषक-मजदूरों की दुःस्थिति पर तो ध्यान नहीं देते, भगवान् इन्द्र भी जल न बरसाकर दुःख-दारिद्र्य ही बढ़ा रहे हैं। सम्पूर्ण गीत में निराश हृदय का करुण आर्त्तनाद भरा है।

युद्ध छिड़ने पर जनता का जीवन कितना आतंकित एवं संकटमय हो उठता है, इसकी लोकगीतों मे सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। यथा—

टिकवा देलन गढ़ाय, ओमे बचवा देलन लगाय।
पियवा भागल जाये, जरमन के लड़इया में ।।
ऊपर खपरा के मकान नीचे आलू के दोकान।

आलू हो गेलइ नेमान सारा दुनिया में ॥
सुने सुने न सरकार, तोरा घर से अलउ तार।
तोहर जोरू हउ बेमार नैहरवा में॥
ऊपर उड़ऽ हइ हवाइ, नीचे 'पवली' डेराइ॥
कहीं बम्मों न गिरावे सहरिया में॥

प्रिय पति का 'जर्मन की लड़ाई' में जाना, चीजों का महँगा हो जाना, आसमान मे 'बमबाजी' के लिए हवाई जहाज का उड़ना, नीचे 'पवली' (पब्लिक जनता) का भयभीत होना, आदि युद्ध के सजीव दृश्य हैं। युद्धकाल में 'खाद्य-सामग्री' की बचत के लिए 'कण्ट्रोल' की प्रथा चलाई जाती है। इससे सम्बद्ध वर्णन लोकगीतों मे मिलते हैं। यथा—

कनटोल के कमाइ से टिकवा गढ़ैली,
झुलनियाँ पर राजा लोभाना रे।
मँहगी के जमाना॥ टेक॥
हाँथ ले ले चीनी, बगल ले ले आटा,
छोकरिया पर राजा लोभाना रे।
कनटोल के कमाइ से नथिया गढ़ैली,
मोतिया पर राजा लोभाना रे।

मँहगाई आदि दुःस्थितियों के रहने पर भी मनुष्य अपनी स्वाभाविक वृत्तियों का पोषण तो करता ही है। इसका संकेत उपर्युक्त गीत में मँहगी के समय मे भी चलनेवाले प्रेम प्रसंग में मिलता है।

तृतीय अध्याय

मगही लोककथा-गीत

मगही लोककथा-गीत में अन्य प्रसंगों के अतिरिक्त, नारी के बलिदान के भिन्न-भिन्न प्रसंग विशेष रूप से वर्णित हुए हैं। इनमे कहीं धार्मिक अन्धविश्वास के कारण नारी की बलि चढ़ाई जाती है, कही सतीत्व की रक्षा के लिए भारतीय ललना प्राणोत्सर्ग करती देखी जाती है, कहीं सास-पति आदि के दुर्व्यवहार के कारण नारी-जीवन अरक्षित दीख पड़ता है। इन सभी विषयों से सम्बद्ध गीत करुण रस से आप्लावित हैं।

उदाहरणार्थ, यहाँ दो चौहट गीतो[1] की विवेचना की जायगी।

१. एक गीत की नायिका है—'दौलत'[2] नाम की स्त्री, जिसके जीवन का अवसान पिता के धार्मिक विश्वास के आवर्त्त में होता है। इस गीत का संक्षिप्त हिन्दी-रूपान्तर निम्नांकित है।

कथा—एक राजा ने पोखरा खुदवाया, पर उसमें पानी न आया। ज्योतिषियो ने विचार कर कहा—'पोखरे को आपकी पुत्री 'दौलत' का बलिदान चाहिए।' राजा ने हजाम भेजकर छल से अपनी पुत्री दौलत को ससुराल से बुलवाया। हजाम ने दौलत से कहा—'तुम्हारे छोटे भाई का गौना है, तुम मेरे साथ चलो।' ससुराल के सभी लोगों को अशुभ शकुन हो रहे थे। सबने दौलत को नैहर जाने से मना किया। पर, वह डोली पर चढ़कर वहाँ पहुँच ही गई। झरोखे से दौलत की माँ नीचे उतरी। उसने पुत्री से कहा—'बेटी, हाथ में सिन्दूर का सिनोरा लो और पोखरा पूजकर घर में आओ।' दौलत पोखरा पूजने के लिए घुट्टी भर पानी में गई। क्रमशः पानी बढ़ने लगा। दौलत रहस्य समझ गई। उसने नैहर के सभी परिजनो के सामने करुण आर्त्तनाद किया; पर सभी यह कहकर चुप हो रहे कि 'मैं क्या करूँ, तुम्हारा पिता अधम चाण्डाल है।' पानी क्रमशः ठेहुना, कमर, और गरदन छूता हुआ लिलार की टिकली तक पहुँच गया, फिर उसके माँग का सिन्दूर भी धुल गया। दौलत डूब गई। पुत्री के इस निष्करुण बलिदान के बाद सचमुच पोखरा पानी से लबा-लब भर गया।

दौलत के ससुरालवाले पछता रहे थे कि यदि हमे इस निर्मम बलिदान का कुछ भी पता होता, तो हम दौलत को विदा न करते।

दौलत के इस कथागीत के अनेक प्रतिरूप भारत के विविध क्षेत्रों में प्रचलित हैं।

---

१. भादो मास मे, वर्षा को आमन्त्रित करने के लिए महिलाएँ चौहट गीत गाती है। इनके गाने की विधि यह है कि रात्रि मे महिलाओ के दो दल मैदान में एकत्र होकर आमने-सामने खड़े होते है। फिर चौहट गाते हैं और दोनो दल मैदान के मध्य मे आकर एक-दूसरे से मिलते है। इसके बाद विना पीठ फेरे ही उलटे कदम अपनी-अपनी जगह पर लौट जाते हैं। यह क्रिया बार-बार दुहराई जाती है। विषय के अनुसार इन गीतो का स्वर भी करुण होता है।

२. मगही-लोक-साहित्य, पृ० ९१–९३।

श्रीरामनरेश त्रिपाठी[1] ने 'सीतापुर' मे निम्नांकित आशय का कथागीत पाया था—

राजा अजीत सिंह के एक कन्या हुई, जिसका नाम दौलत देवी रखा गया। राजा ने बारह वर्ष तक तालाब खुदवाया, पर पानी न निकला। ब्राह्मणों ने बताया—'पोखरे को दौलत बेटी का बलिदान चाहिए।' राजा बड़े दुःखी हुए। उन्होंने अपनी सतवन्ती रानी से सारी बातें कहीं। रानी ने दस महीनों तक दौलत को पेट मे रखा था, सात सौतों का दूध पिलाया था। फिर भी, पति की प्रतिष्ठा रखने के लिए उसने अपनी पुत्री को राजा के हाथों में पकड़ा दिया। सारी सभा के बीच जैसे ही दौलत को तालाब में डुबोया गया, पानी हहराकर निकल आया।

राजा अपनी एकमात्र पुत्री की वलि पर रो रहे थे, पर रानी उन्हें समझा रही थी कि तुम्हारी दौलत बेटी ने तुम्हारा नाम रख लिया।

श्रीश्याम परमार[2] ने इसी प्रसंग को 'बालाबऊ' के गीत में प्रस्तुत किया है। यह गीत मालवा में, विशेष रूप से मध्यभारत के शाजापुर, देवास और उज्जैन जिले के गाँवो मे गाया जाता है। कथा इस प्रकार है—

मालवा में राजा ओड़ थे, जिनकी रानी ओडनी मथुरागढ़ की थी। एक समय दोनों बालोण ग्राम गये। रानी ने बावड़ी-कुएँ खुदवाये, जिनमें जल भर गया। राजा ने एक तालाब खुदवाया, जिसमें पानी नहीं आया। एक ब्राह्मण-पुत्र ने पोथी देखकर कहा—'सरोवर आपके बड़े बेटे-बहू का भोग माँगता है।' राजा ने अपने बड़े पुत्र हंसकुँवर से यह बात कही। उसकी बहू पीहर में थी। राजा पुत्र की अनुमति से अपनी 'बालाबहू' को ले आये। सारे गाँव में बुलावा दिया गया। सभी आये। राजा के पुत्र और बहू नवीन वस्त्रादि से अलंकृत होकर सरोवर पर आये। ज्यों-ज्यों दोनों सरोवर की एक-एक पेड़ी पर पैर रखते, त्यो-त्यो उसमे जल बढ़ता जाता। जल बालाबहू के केश छूने लगा। तब उसने हाथ जोड़कर ससुर से कहा—अब आपका तालाब जल से लहरा रहा है। आप समृद्धिशाली हों और लाखों-करोड़ो वर्ष जीवित रहें।' इसके बाद बालाबहू और हंसकुमार जल में समा गये।

इसीसे मिलता-जुलता एक दूसरा कथा-गीत निमाड़ी[3] में प्रचलित है। मध्यभारत के निमाड़ जिले के गाँव से तहसील में खरगुन बिरला नामक एक ग्राम है। कहते हैं बिरला ग्राम के निकट पानी का प्रायः अभाव रहता था। जहाँ अभी तालाब है, वहाँ किसी समय एक बावड़ा थी, जिसमें बहुत कम पानी रहता था। वहाँ पानी के लिए भीड़ लगी रहती थी। इस भीड़ में प्रायः झगड़े हुआ करते थे। एक दिन गाँव के पटेल ने रात में स्वप्न देखा। देवी कह रही हैं—'यदि वह अपने पुत्रवधू को बावड़ी मे समा दे, तो जल का कष्ट दूर हो जायगा।' प्रातःकाल उसने यह बात अपने बेटे-बहू से

१. ह० ग्रा० सा०, पृ० १६४—१६६।
२. मा० लो० सा०, पृ० १५८—१६५।
३. वही।

कही। दोनो तत्काल तैयार हो गये। पूजा-पाठ के बाद वे बावड़ी में उतर गये। इस प्रकार, बावड़ी एक बड़ा तालाब बन गई। इस कथा में अन्तिम बात यह भी कही गई है कि बहू के प्रताप से पटेल प्रतिदिन तालाब के किनारे जाकर भोजन माँगता था। तब जल की सतह पर दो चूड़ियोंवाले हाथ भोजन की थाली लेकर प्रकट हो जाया करते थे।

ब्रजभाषा की 'ओघ द्वादशी की कहानी'[1] से उपर्युक्त कहानियों की समानता है। कहानी का जो प्रतिरूप प्रस्तुत किया जा रहा है, वह आगरा के अग्रवालो में प्रचलित है—

'ओखद्वास्स' की कहानी : एक राजा के सात बेटे और बहुएँ थीं। वह एक दिन शिकार खेलने गया, तो उसे वहाँ एक सूखा तालाब मिला। पास-पड़ोस मे हजार कोस तक पानी का नाम न था। वहाँ के सभी जीव-जन्तु प्यास से मर रहे थे। राजा को बड़ा दुःख हुआ। उसने ज्योतिषी को बुलाकर तालाब में पानी भरने का उपाय पूछा। उत्तर मिला— 'यदि कोई आदमी एक गऊ, बछड़ा और अपने बेटे के पहल-पैलोठी के बहू-बेटे की बलि दे, तो इस तालाब में पानी आ सकता है।' राजा ने घर आकर सभी बहुओं से बलि की इच्छा व्यक्त की, तो कोई तैयार न हुई। पर, छोटी बहू राजी होकर बोली —'हम सभी तुम्हारे हैं, मेरे बहू-बेटे भी तुम्हारे हैं। जैसा तुम चाहो, करो।'

राजा गाय बछड़े और बहू-बेटे को लेकर ठीक तालाब के बीच बैठ गया और बोला—'हे पानी देवता, यदि तुम इन चारो की बलि देने से प्रसन्न हो, तो मैं इनकी बलि चढ़ाता हूँ।' फिर क्या था! तालाब पानी से भर गया। चारो डूब गये। राजा तैर-कर बाहर निकल आया।

थोड़े दिनो बाद द्वास्सी का दिन आया। सबसे छोटी बहू राजा से बोली—ससुर जी, तुम्हारी बात मैंने मानी थी, आज तुम मेरी बात मानो। तालाब में जिस जगह तुमने मेरे बेटे-बहू की बलि दी है, उसी खास जगह से तुम मेरे लिए दूब ला दो। राजा ने वहाँ से जैसे ही दूब उखाड़ी, वैसे ही गऊ, बछड़ा और बहू के बेटा-बहू खिचे चले आये। अब तो राजा और छोटी बहू की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उसी दिन राजा ने सारे गाँव में डौंड़ी पिटवा दी—'ओखद्वास्स के दिन बच्चेवाली औरत अपने बेटे-बहू को लेकर गाय-बछड़े की पूजा करे और गऊ का दूध नहीं पिये, न दूध से बनी कोई चीज खाये। 'ग' अक्षर पर पड़नेवाली चीजें जैसे गेहूँ, गुड़ आदि भी न खाये। चना आदि से बना मिस्सा खाकर दिन बिताये' : 'ओखद्वास्स परमेश्वरी, जैसा उसके किया, वैसा हर किसी के करियो।'

लोहबन से प्राप्त कहानी[2] इस प्रकार है—

गाँव की स्त्रियाँ गाँव के बाहर ओघ लेने जाती थीं। रानी भी उनके साथ जाती थी। स्त्रियों की सलाह पर रानी ने राजा से कहकर अपना एक ताल खुदवाया।

---

१. भारतीय साहित्य, वर्ष ३, जुलाई, १९५८ ई० में प्रकाशित 'ओघद्वादशी तथा बछवारस' : डॉ० सत्येन्द्र।

२. वही, ओघद्वादशी तथा बछवारस : डॉ० सत्येन्द्र।

पर उसमे से पानी न निकला। एक साधु महाराज ने बताया—ताल किसी पहलौठी लड़के की उसकी पत्नी के साथ बलि चाहता है। रानी ने अपने बेटे-बहू को तालाब के बीच भेज दिया। उनके जाते ही तालाब पानी से भर गया और वे दोनों डूब गये।

गाय और बछड़े को साथ-साथ खड़ा करके ओघ लिये जाते हैं। एक सास, अपनी बहू के साथ उसी तालाब के पड़ोस में रहती थी। उसके पास एक गाय थी जिसका नाम घानूरा था और एक बछड़ा था, जिसका नाम पानूरा था। सास उस तालाब को देखने के लिए गई और बहू से कह गई कि वह घानूरा-पानूरा राँध रखे। उसका अभिप्राय चावल और अन्न की खिचड़ी से था। पर बहू ने समझा नहीं। उसे इस घर में पहली ओघद्वादसी पड़ी थी। उसने सोचा, यह द्वादसी पर कोई रिवाज होता होगा। अतः, उसने गाय और बछड़े को, जिनके नाम धानूरा-पानूरा थे, राँध लिया। जब सास लौटी, तब यह सब देखकर घबरा गई। फिर, तुरन्त वह उस पके सामान को लेकर घूरे पर गई और वहाँ उसे उसने गाड़ दिया और यह प्रार्थना की—'हमलोग कोई भी अन्न दाना का आज नहीं छुआ करेंगे और न बासी खाना खायेंगे, न हम दूध-दही लेंगे। हम गाय और बछड़े की पूजा किया करेंगे। हे भगवान्! ये गाय-बछड़े जीवित हो जायें।' भगवान् ने प्रार्थना सुन ली। गाय-बछड़े जीवित होकर उछलते-कूदते घर चले आये।

उपर्युक्त कथा का दूसरा अंश (गाय-बछड़े की बलि) मालवा[1] में प्रचलित बछवारस की कथा से मिलता-जुलता है—

एक सास ने खेत जाते हुए बहू से कहा—गौंगलो-मौंगलो' (गेहूँ-मूँग का खिचड़ा) राँध लेना। उस घर मे गौंगलो-मौंगलो नाम के दो बछड़े थे, बहू ने उन्हें राँध लिया। सास के लौटने पर जब पता चला, तब वह यह सोचकर घबरा गई कि इनकी गाय आयगी तो क्या होगा? साँझ में गाय लौटी; तो द्वार से ही उसने 'माँ-माँ' कहना आरम्भ किया। सास ने मनौती की—'हे बछवारस माता, यदि इन केड़ों को जीवित कर दे, तो मैं तेरी पूजा करूँगी और सातों लोक में तेरी पूजा होगी।' ऐसी ही हुआ। दोनो बछड़े हण्डे में से कूदकर गाय के पास आ गये।

तभी से सातो लोक मे बछवारस के दिन 'गौंगलो-मौंगलो' की पूजा होती है।

श्रीगुप्ते महोदय[2] ने बॅंगला की 'बसुवारस' या वत्सद्वादशी की एक बॅंगला-कहानी दी है, जो ब्रज तथा मालवा मे प्रचलित गौ एवं बछड़े की कहानी से मिलती-जुलती है।

तालाब मे पानी भरने के लिए 'नरबलि की कथा' गुजरात[3] एवं बंगाल मे भी प्रचलित है। गुजरात की कहानी में सिद्धराज महाराज जयसिंह ने माँ के कहने से सहस्रलिंग नामक एक विशाल ताल खुदवाया। ओढ़ लोग तालाब खोद रहे थे कि उसी वर्ग की जसमा नाम की सुन्दरी पर राजा रीझ गये। वह क्रुद्ध होकर एवं शाप देकर चली गई कि इस

---

१. भारतीय साहित्य, वर्ष ३, जुलाई, १९५८ ई०, ओघद्वादशी तथा बछवारस : डॉ० सत्येन्द्र।

२. हिन्दू हॉलीडेज ऐण्ड सेरिमोनियल, पृ० २४१।

३. ओघद्वादसी तथा बछवारस, पृ० ४५ : डॉ० सत्येन्द्र।

ताल में पानी नहीं आयगा। ऐसा ही हुआ। तब पण्डितों ने कहा—'तालाब को नरबलि चाहिए।' इसपर ढेढ़ जाति के एक आदमी ने इस शर्त्त पर अपनी बलि दी कि उसके बदले मे राजा उसकी नीच जाति के लोगो को कुछ सुविधाएँ प्रदान करेंगे। राजा के वचनबद्ध होने पर वह ढेढ तालाव में उतरा। वह मर गया। तालाव पानी से भर गया।

श्रीगुप्ते महोदय[1] ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि वंगाल में भादों शुक्ल छठ को 'चहरपोता' या 'चोपड़ा षष्ठी' मनाई जाती है। उसमें भी ऐसी ही कथा है—एक आदमी ने पत्नी के कहने से तालाब खुदवाया कि जिससे उसकी पत्नी को 'चप्रपष्ठी' की पूजा करने मे सुविधा हो। पर तालाब मे पानी नहीं आया। स्वप्न मे प्रकट होकर षष्ठी देवी ने कहा—'तुम अपने किसी नाती की बलि चढ़ाओ।' उसने अपने नाती का गलाकाट कर उसका रक्त तालाब में छिड़क दिया। वह पानी से भर गा। इसके बाद षष्ठी की पूजा की गई। अब बलि दिये गये बच्चे की माँ ताल पर षष्ठी की पूजा के लिए पहुँची, तब उसे अपना बच्चा एक पालने पर तालाब के ऊपर तैरता हुआ मिला। तबसे पण्डितो ने यह शिक्षा दी कि सभी औरतें अपने आँचल मे केले रखकर और उन्हे गोद मे लेकर चोपड़ा षष्ठी की कहानी सुना करें।

उपर्युक्त पंक्तियों में नरबलि एवं गाय-बछड़े की बलि से सम्बद्ध अनेक कथाएँ दी गई हैं। इनमें मगही-प्रतिरूप में केवल 'नरबलि' का ही उल्लेख है। सम्भव है, गाय-बछड़े की बलि से सम्बद्ध कथा-गीत भी मगही में प्रचलित हो, परन्तु वह मुझे उपलब्ध नही हो सका है। अतः, निम्नाकित पंक्तियों मे 'मनुष्य बलि'-सम्बन्धी जनविश्वास पर भी प्रकाश डाला जायगा।

'मनुष्य-बलि' की प्रथा का उल्लेख प्राचीन भारतीय साहित्य मे मिलता है। वैदिक साहित्य में इसका उल्लेख हुआ है। परवर्त्ती वैदिक साहित्य ऐतरेय आरण्यक आदि में शुनःशेप की बलि की पूरी कहानी है। वरुण आर्य देवता हैं, फिर भी नरबलि लेने के लिए आग्रहशील हैं। आर्य ऋषियों के समक्ष पूरे अनुष्ठान के साथ बलि होने जा रहा है। शुनःशेप आर्य अजीगर्त्त का पुत्र है। अजीगर्त्त स्वयं अपने पुत्र की बलि देने को प्रस्तुत है।[2]

इस वैदिक नरबलि का समस्त अनुष्ठान १९वीं शताब्दी तक प्रचलित जंगली जातियो मे मिलनेवाली नरबलि की प्रथा से बहुत मेल रखता है।

जातक में भी नरबलि का उल्लेख मिलता है। यथा—एक राजा नया द्वार बनवा रहा था। मन्त्री की सलाह से यहाँ वह एक ब्राह्मण की बलि करने ही जा रहा था कि भगवान्

---

१. हिन्दू हॉलीडेज ऐण्ड सेरिमोनियल।

२. वाजसनेयिसंहिता मे नरबलि का उल्लेख है कि पुरुषमेध में वैदिककाल मे एक नपुंसक व्यक्ति पाप्मन् पर बलि चढाया जाता था। श्रीराजेन्द्रलाल मित्र ने सन् १८७६ ई० के 'जनरल ऑव एशियाटिक सोसायटी' मे 'भारत मे नरबलि' शीर्षक निबन्ध लिखा था। इसमें उन्होंने स्थापनाएँ की थी कि प्राचीन-काल मे हिन्दू अपने देवताओ को नरबलि देने मे सक्षम थे। ऋग्वेद के शुनःशेप का मन्त्र नरबलि अथवा पुरुषमेध यज्ञ से ही सम्बद्ध है।

बुद्ध ने उसे बचा लिया। बुद्ध ने ब्राह्मण के स्थान पर मरी बकरी द्वार के नीचे दबवा दी। प्राचीन भारतीय साहित्य मे नरबलि के ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं।

लोकवार्त्ता में मनुष्यबलि-सम्बन्धी अनेक उदाहरण मिलते हैं। 'बैतालपचीसी' में तथा 'कथासरित्सागर' में इसके उल्लेख आये हैं। यह परम्परा आजतक चल रही है। मगही, मालवा, व्रज आदि में प्रचलित कथागीतों एवं कथाओ के जो विवरण उपर्युक्त पंक्तियो में दिये गये हैं, उनमें सामान्य रूप से मनुष्य बलि कीप्रथा भारतीय समाज में वर्त्तमान दिखाई पड़ती है।

इनमे धरती के विभिन्न स्थानों में, लोकविश्वासों की पृष्ठभूमि मे मानव के वास्तविक सम्बन्ध एवं सामूहिक अनुभूति के भाव की अभिव्यक्ति हुई है। लोकप्रिय धुनों एवं रागो के सहारे लोकगीतों मे अनेक परम्परागत अभिव्यक्तियाँ प्राचीन काल से आजतक चली आ रही हैं। इनमें अनेक स्थलो पर सत्य का अंश भी मिलता है। सारी अभिव्यक्तियाँ काल्पनिक ही नहीं हैं।

अनेक भारतीय लोकगीत या लोककथा-गीत सामान्य रीति-रिवाजों, धार्मिक अनुष्ठानो, टोने-टोटकों, अन्धविश्वासों एवं अन्य प्रथाओ के साथ सम्बद्ध है। ये गीत उन्हीं के सामान्य क्रिया व्यापारो के साथ गाये भी जाते है। ऐसे गीत या कथा-गीत भारतीय साहित्य में अपूर्व एकरूपता रखते है। स्थान के अनुसार गीतों के शब्द, रूप लय आदि में अन्तर भले ही आ जाता है, पर उनमें एक ही मूल भावना एवं एक ही विश्वास सन्निहित है।

उपर्युक्त आधारों पर मगही-कथागीत मे वर्णित 'दौलत' की 'बलि' का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। यथा अन्य कथाओ से मगही में उपलब्ध 'दौलत' की कथा में निम्नांकित समानताएँ परिलक्षित होती है—

१. सभी गीत एवं कथाएँ ताल मे जल-प्लावन के लिए मनुष्य-बलि का उल्लेख करती हैं।

२. कृषि-हेतु वर्षा कराने के लिए इनका टोने के रूप मे उपयोग होता है। बरसात आरम्भ होने पर और अधिकतर भादो मे वर्षा होने मे विलम्ब देखकर स्त्रियाँ इन्हे अर्धरात्रि के पूर्व एकत्र होकर करुण स्वर से गाती हैं। उनका इस सम्बन्ध में विश्वास होता है कि उनके करुण स्वर से गाने पर इन्द्र भगवान् प्रसन्न होकर जल की वर्षा अवश्य करते हैं।

लोककथाओं एवं पुराण-कथाओं में 'मनुष्य की बलि' का ऐसे प्रसंगो में बहुत उल्लेख हुआ है, जिनमें किसी आकांक्षा की पूर्त्ति अथवा देवी-देवता के क्रोध को शान्त करने की भावना हो। विदेशी भाषाओं के साहित्य मे भी ऐसे उदाहरण मिलते हैं। यथा— यूनानी पुराण-कथा मे उल्लेख है कि जब यूनानी सेनाएँ ट्रोजन-युद्ध के लिए जा रही थी, तब ओलिम्पिया के पास विपरीत हवाओं के कारण आगे बढ़ने से रुक गई। तब डायना देवी को प्रसन्न करने के लिए राजा ने ज्योतिषियों के निर्देशानुसार अपनी पुत्री का बलि चढ़ानी चाही। जैसे ही लड़की पर वार किया गया कि वह लड़की रहस्यपूर्ण ढंग से लुप्त हो गई।

इसकी जगह पर एक साधारण आकार का पक्षी पड़ा हुआ मिला। ऐसी अनेक कथाएँ भारतीय एवं विदेशीय साहित्य में उपलब्ध हैं।

३. परम्परागत रूप में देवता की प्रसन्नता के लिए मनुष्य की बलि की प्रथा चली आई है। पर, ये कथागीत उस काल का प्रतिनिधित्व करते हैं, जब यह माना जाने लगा था कि यदि बलिदान की कहानी दुहरा दी जायगी, तो मानसिकरूपेण वास्तविक बलिदान माना जायगा।

४. सभी कथागीतों का सम्बन्ध वर्षा एवं कृषि-विषयक अनुष्ठानों से है।

अन्य कथागीतों से मगही के कथागीत में अन्तर भी कम नहीं है। यथा—

१. (क) मगही गीत की 'दौलत' एक विवाहिता कन्या है, जिसका पिता छल से उसे बुलाता है और तालाब पर बलि चढ़ाता है। उसके पिता की निर्ममता पर सभी परिजन क्षुब्ध हैं; सभी उसे 'अधम चाण्डाल' कहते है। पर, उसपर किसी का वश नहीं चलता। 'दौलत' की बलि के साथ तालाब मे पानी भर आता है और यहीं कथानक का अन्त हो जाता है।

(ख) 'बालावऊ' के गीत मे राजा को अपने बेटे-बहू का बलिदान करना पड़ता है। कहा जाता है कि इस कथा में कुछ ऐतिहासिक सत्य भी वर्त्तमान है। शाजापुर जिले के ग्राम सुन्दरसी के निकट एक तालाब है, जिसे 'बालामाता' का तालाब अथवा 'बालोण' का तालाब कहते हैं।

(ग) निमाड़ी के प्रचलित 'कुलवन्ती बहू' के गीत में भी बेटे-बहू का बलिदान किया जाता है। पर, इस कथा मे एक विशेष बात यह कि है पटेल प्रतिदिन तालाब के किनारे जाकर भोजन माँगता है। जल की सतह पर दो चूड़ियोवाले हाथ भोजन की थाली लेकर प्रकट हो जाया करते हैं।

(घ) त्रिपाठीजी के कथागीत मे 'दौलत' कुँवारी कन्या है। पिता से अधिक उसकी सतवन्ती माता पति की प्रतिष्ठा रखने के लिए बेटी का बलिदान करने को आतुर है। बलिदान के बाद वही पति को आश्वासन देती है।

(ङ) आगरा के अग्रवालों मे प्रचलित 'ओखद्वास्स' की कथा में राजा गऊ-बछड़े और बहू-बेटे की बलि चढ़ाता है। फिर, छोटी बहू की प्रार्थना के अनुसार राजा जब बलिदान के स्थल पर दूब उखाड़ने जाता है, तब चारों जीवित निकल आते हैं।

(च) लोहवन की कथा में दो अंश हैं—

(अ) ताल मे पानी लाने के लिए रानी अपने बेटे-बहू का बलिदान करती है।

(आ) रानी की पड़ोसिन की पुत्रवधू 'धानूरा-पानूरा' नाम की गाय और बछड़े को भ्रम से राँध देती है। फिर, सास के प्रायश्चित्त के बाद गाय-बछड़े जीवित हो उठते हैं।

(छ) मालवा मे 'बछवारस' की कहानी में बहू भ्रम से 'गोगलो-मोंगलो' नाम के बछड़े को राँधती है, जो सास की पूजा के बाद जी उठते हैं।

(ज) गुजरात की कथा में ढेढ़ जाति के एक आदमी की बलि चढ़ाई जाती है।

(झ) बँगला की कथा में षष्ठी देवी के आदेश से नाती का गला काटकर उसका रक्त तालाब में छिड़का जाता है। बलि पर दिये गये बच्चे की माँ ताल पर षष्ठी की पूजा के लिए पहुँचती है, तो उसे अपना बच्चा पालने में, तालाब के ऊपर तैरता हुआ मिलता है।

१. उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि, मगही कथागीत में 'नरबलि' का ही प्रसंग आता है, गाय-बछड़े की बलि का नहीं। मगही की 'दौलत' बलिदान के बाद जीवित नहीं होती, जबकि उपर्युक्त कथाओं में अनेक स्थलो पर मरने के बाद वह पुनरुज्जीवित होती है। इनके अतिरिक्त सभी क्षेत्रों के कथागीतो में विषय की समानता होने पर भी कथानक के विस्तार में भिन्नता है।

२. ब्रज, मालवा तथा बँगला के कथागीतों का, धार्मिक अनुष्ठान की दृष्टि से महत्त्व है। वस्तुतः, ये माहात्म्य-कथाएँ हैं। निश्चित तिथि को इनके कहने-सुनने और विधि का पालन करने से लाभ प्राप्त होता है। मगही का कथागीत किसी धार्मिक अनुष्ठान का अंग नहीं है। उसके गाने की कोई निश्चित तिथि भी नहीं है और न गीत के साथ किसी देवी देवता अथवा गाय-बछड़े की पूजा का विधान होता है। सम्पूर्ण बरसात में, विशेष कर भादों में इस गीत को गाया जाता है। इसके पीछे टोने का भाव अवश्य रहता है।

३. दूसरे मगही कथागीत की नायिका — चम्पिया[1] है, जो सामन्तशाही के प्रतीक राजा की लावण्य-लिप्सा से सतीत्व की रक्षा के लिए, अपने प्राणों का उत्सर्ग करती है। इसकी संक्षिप्त कथा निम्नांकित है—

चम्पिया अद्वितीय सुन्दरी थी। एक दिन वह सहेलियों के साथ पोखरा पर स्नान करने गई। सभी सहेलियाँ स्नान करके लौट आई। अकेले चम्पिया खड़ी होकर अपने लम्बे केश झाड़ रही थी कि उस समय राजा नारायणसिंह की दृष्टि उसपर पड़ गई। वह मुग्ध हो गया। उसने चम्पिया के भाई गंगाराम को बुलाकर खातिर से बैठाया और कहा कि चम्पिया को हमें दे दो। गंगाराम ने इनकार किया, तो वे बाँध दिये गये।

चम्पिया की भौजी ने उसके रूप की भर्त्सना करते हुए कहा— तेरे, कारण मेरे स्वामी बाँधे गये। तेरे बालों में आग लगे और सूरत पर वज्र गिरे।' चम्पिया के हृदय में तीर की भाँति ये बातें चुभ गई। उसने गोद के बालक को भाभी को दिया और सोलहों शृंगार किये। फिर, वह राजा के पास पहुँची और उसने कहा—'यदि तुम मुझे सचमुच चाहते हो, तो उचित सम्मान के साथ मेरे भाई को घर जाने दो। फिर, मेरे योग्य वस्त्र-भूषण एवं पूरबी सिन्दूर की व्यवस्था करो।' राजा ने हँस-हँसकर सब कुछ किया। चम्पिया ने रो-रो-कर सब कुछ धारण किया। फिर, राजा डोली मे चढ़ाकर चम्पिया को महल ले चला। राह में एक पोखर पड़ता था। चम्पिया ने वहीं डोली रुकवाई और कहा कि मुझे प्यास लगी है। मैं बाबा के पोखरे पर पानी पिऊँगी। राजा ने कहा—'महल चलो, सोने के गेरुए में पानी

---

१. मगही-लोक-साहित्य, पृ० ८७-९१।

पीना।' चम्पिया ने उत्तर दिया—'वह तो आजीवन का स्नेह-बन्धन है। बाबा का पोखरा तो फिर न मिलेगा।' राजा की स्वीकृति मिलने पर वह पोखरे पर पहुँची। पानी पीने के क्रम में वह डूब गई—

> एक चुल्लू पीलक चम्पिया दुइ चुल्लू पीलक,
> अरे तिसरे में खिललइ पतलिया हे ना।

अपने झरोखे से भाभी सब कुछ देख रही थी। उसने सगर्व कहा—'चम्पिया ने दोनों कुल की लाज रख ली।' राजा पछता रहा था—'यदि मैं जानता कि वह छल करेगी, तो मैं उसे पहले ही धर्मच्युत कर देता।'

इस कथागीत के एक अन्य मगही-प्रतिरूप मे नायिका के रूप मे 'चम्पिया' के स्थान पर 'भागवत' का वर्णन हुआ है, जो झरोखे पर बैठी सोने की कंघी से अपने बाल झाड़ रही है। रूपलोभी राजा नारायणसिंह के स्थान पर एक मुगल शासक है। भाई गंगाराम के स्थान पर 'होरिलसिंह' हैं। अन्य कथा-प्रसंग समान है। गीत के अन्त की टेक 'हे न' की जगह 'रे कि' चलती है।

उपर्युक्त घटना को लेकर अन्य भारतीय भाषाओं के क्षेत्रों में भी गीत रचे गये हैं। श्रीरामनरेश त्रिपाठी ने इस गीत के कई प्रतिरूप प्रस्तुत किये हैं। यथा: बिहार में पाये जानेवाले गीत की नायिका है—'भगवति', भाई हैं—'होरिलसिंह', दुर्जन है—मिरिजा। फैजाबाद से प्राप्त गीत मे नायिका—'कुसुमा' है; पिता—'जिउधन' है; लुटेरा—'मिरजा' है। बलिया से प्राप्त गीत में बहन—'कुसुमा' है; भाई—'गंगाराम' है; लुटेरा—'मिरजा है'। एक अन्य गीत मे नायिका—'कुसुमा' है; लुटेरा—'भोजमन' है।[1]

'बाराबंकी' में भी पण्डित रामनरेश त्रिपाठी[2] को उपर्युक्त आशय-संयुक्त गीत मिला था। उसकी कथा निम्नांकित है—

चन्दा, अपनी छह बहिनों के साथ सदौली के घाट पर सीक चीर रही थी। इसी बीच मुगलो का लश्कर आया और चन्दा को पकडकर ले गया। चन्दा के पिता ने मुगल के चरणों पर सारी धन-दौलत रखी, पर उसने न छोड़ा और कहा—हम चन्दा से ब्याह करेंगे। चन्दा ने रो-रोकर पिता से कहा—'तुम जाओ, मैं तुम्हारी पगड़ी की लाज रखूँगी।'

मुगल चन्दा को घर ले गया। उसने अनेक भोज्य पदार्थ चन्दा के सामने रखकर कहा—'रानी, भोजन कर लो।' चन्दा ने कहा—'मैं स्वय भोजन बनाऊँगी, तुम

---

१. ये गीत अंगरेजों को बहुत पसन्द आये थे। सर एडविन आर्नाल्ड ने इसका अंगरेजी-पद्य मे अनुवाद कर लिया था। इसे डॉ० ग्रियर्सन ने इंगलैण्ड के 'स्कूल ऑव ओरियण्टल स्टडीज' (**School of oriental studies**) मे, एक व्याख्यान मे, नवम्बर, १९१८ ई० मे सुनाया था।

—कविताकौमुदी, भाग ५; ग्रामगीत, पृ० ३६८—३८१।

२. ह० ग्रा० सा०, पृ० १६७।

खाना।' हँस-हँसकर मुगल ने ईन्धन मँगाया। चन्दा ने रो-रोकर चिता जलाई और उसमे जल मरी। चिता ऐसी धधकी कि मुगल की दाढ़ी जल गई और वह भी मर गया।

भोजपुरी मे कुसुमा[१] की कथा मगही से मिलती-जुलती है। वह मुगल से सतीत्व-रक्षा के लिए, डोली पर जाते हुए, राह मे बाबा के सागर में डूबकर प्राण त्याग देती है—

एक घुँट पियली, दूसर घुँट पियली।
तिसरे में गइ है तराई हो ना।

मिरजा रो-रोकर सागर मे जाल डालता है, पर केवल घोंघा-सँवार ही हाथ लगते हैं—

फँसि आवे घोंघवा सेंवरिया हो ना।

पर, जब भाई जाल डालता है, तब बहन की लाश निकलती है। वह सगर्व कहता है—

दूनो कुल राखेउ बहिनी कुसुमा हो ना।

प्रायः हिन्दी की सभी बोलियो में कुछ रूपान्तरों के साथ यह कथागीत वर्त्तमान है। अधिकांश गीतों में 'नायिका' को ले जानेवाला 'मुगल' या 'मिरजा' है। कही-कहीं हिन्दू-राजाओं के भी नाम आते है। यथा—चम्पिया के गीत मे।

उपर्युक्त गीतों में मुगलों एवं कामुक प्रवृत्ति के अन्य अधम पुरुषो के अत्याचारो का अच्छा वर्णन हुआ है। ऐसा मालूम होता है कि मुगलो के युग मे किसी स्त्री का सतीत्व सुरक्षित नहीं था। जिसपर इनकी दृष्टि पड़ जाती थी, उसके लिए प्राणों के उत्सर्ग के अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग नहीं था। राजपूताने के 'जौहर' की कहानी तो प्रसिद्ध ही है। मुसलमान आक्रमणकारियो से प्रतिष्ठा-रक्षा के लिए अपूर्व सुन्दरियाँ भी जीते जी आग मे कूदकर भस्मीभूत हो जाती थी। मुगलो की सामन्तशाही एवं नग्न विलासिता का प्रभाव तद्युगीन कुछ अन्य देशी राजाओं पर भी पड़ गया था। उन्हीं की नकल में वे पापमय कर्मों मे प्रवृत्त होने में किंचित् भी नहीं हिचकते थे, जैसा कि अपनी प्रजा गगाराम की बहन 'चम्पिया' के साथ राजा नारायणसिंह ने किया।

इस प्रकार, ऐसे कथागीत दो प्रकार के पात्र सामने लाकर भारतीय इतिहास के पृष्ठ-विशेष पर प्रकाश डालते है—

१. विदेशी शासक—मुगल एवं उनके अनुकरण करनेवाले हिन्दू-शासक धर्म और नीति का परित्याग कर अपनी कुत्सित कामुक मनोवृत्ति को सन्तुष्ट करने के लिए अधम कृत्यों को करने मे पीछे न रहते थे। प्रजाओ पर अन्य अत्याचार तो होते ही थे, उनकी घरेलू प्रतिष्ठा भी सुरक्षित न थी। किसी घर की सुन्दर रमणी, सर्वदा अपने घर के लिए खतरा थी। ये शासक न केवल कुमारी, अपितु विवाहिता स्त्रियों को भी उनके अपने घर, पति और बच्चों से छुड़ाने मे नहीं हिचकते थे। उपर्युक्त कथागीतों की अधिकांश नायिकाएँ विवाहिता एवं बच्चेवाली हैं। चम्पिया अपनी गोद के बच्चे को

---

१. हिन्दी-लोकगीत, पृ० १००।

अपनी भाभी को देकर दुष्ट राजा के पास जाती है। अत्याचार का इससे कठोर रूप और क्या हो सकता है !

२.हिन्दू-नारियाँ सतीत्व की रक्षा करने के लिए सर्वदा अपने प्राणों के उत्सर्ग करती थीं। चम्पिया, भागवत, कुसुमा, चन्दा आदि सभी आदर्श भारतीय नारी-रत्न हैं, जो अपने उज्ज्वल एवं पवित्र चरित्र के मंगलमय पक्ष को प्रदर्शित करने के लिए प्राणों को हँस-खेलकर बाजी लगा देती हैं। ये देवियाँ भारतीय आदर्शों की पुजारिनों के लिए सर्वदा वन्दनीया हैं। तभी तो युगों से इनके सती धर्म की महिमा महिलाएँ गाती रहकर इनके नामो को अमर बनाये रखना चाहती है।

चम्पिया और भागवत के कथागीत सम्पूर्ण बरसात मे, विशेषकर भादो मे गाये जाते हैं। इनके पीछे भी टोने का भाव छिपा रहता है। भगवान् इन्द्र को प्रसन्न करने के लिए ही बलिदान के ये करुण गीत, करुण स्वर में गाये जाते है। देवता की प्रसन्नता के लिए मनुष्य की बलि के वर्णन में जो भावना 'दौलत' के गीत में वर्त्तमान है, वही यहाँ भी है। यहाँ भी वही विश्वास काम करता है कि यदि बलिदान की कहानी दुहरा दी जायगी, तो मानसिकरूपेण वास्तविक बलिदान हो जायगा।

●

चतुर्थ अध्याय

मगही नाट्यगीत

गीत और नाट्य का सम्बन्ध अति प्राचीन काल से चला आ रहा है। नाटक की उत्पत्ति सभ्यता के विकास के पूर्व इन्हीं तत्त्वों से हुई थी। मगही में ऐसे गीत है, जो गेय होने के साथ ही नाट्य है। यथा—बगुली, जाट-जाटिन, सामा-चकवा[1] नाम के गीत। ये 'लोक' के गीत हैं, इसलिए इनमे अधिकाशतः गार्हस्थ्य-जीवन के विविध व्यापारों का उल्लेख और इनका नाट्य किया जाता है। गीत के क्रम, प्रश्नोत्तरों मे नाट्य के साथ-साथ निम्नांकित ढंग से चलते है—

स्त्रियों का एक दल मिलकर गाता है—

कहवाँ से रूसल कहाँ जाहऽ हे बगुलो ?

नाट्यगीत की नायिका 'बगुली' अपने दल के साथ उत्तर देती है—

ससुरा के रूसल नहिरा जाहि हे दीदिया।

इसी प्रकार, आगे की पक्तियाँ नाट्य के साथ गाई जाती हैं।

मगही के नाट्यगोतों के सम्बन्ध मे निम्नाकित तथ्य ध्यातव्य हैं—

१. **भाषा**—गीतों मे सरल, स्वाभाविक एवं अकृत्रिम भाषा का व्यवहार किया जाता है। इससे भावों का सहज प्रेषण होता है।

२. **रंगमंच**—इनके रंगमंच खुले मैदान, घर के आँगन, खलिहान, परती खेत, बाग-बगीचा, पथ, मन्दिर या ग्राम के चौपाल होते है। स्वभावतः, इनपर परदे का व्यवहार नहीं होता, न रंगमंचीय सजावट होती है।

३. **अभिनय**—प्रायः वैयक्तिक अभिनय को प्राश्रय नहीं दिया जाता। समूह, जाति अथवा समाज की भावनाएँ सामूहिक अभिनय मे व्यक्त होती हैं।

४. **पात्र**—पुरुषों के नाटक मे केवल पुरुष भाग लेते हैं। स्त्रियो की भूमिका मे भी वही उतरते हैं। इसी प्रकार स्त्रियों के नाटक मे केवल स्त्रियाँ ही भाग लेती हैं। अपने रंगमंच पर वे ही पुरुषो की भूमिका मे उतरती हैं।

५. **दर्शक**—स्त्रियों के नाटकों को केवल स्त्रियाँ ही देख सकती हैं, पर पुरुषों के नाटकों को स्त्रियाँ और पुरुष सभी देख सकते हैं।

६. **कथानक**—स्त्रियो के नाट्यगीतों में सामाजिक कथानकों को प्रधानता दी

---

१. दे० म० लो० सा०, पृ० ९९-१००।

जाती है। इनपर स्थानीय रंग वहुत चढ़ जाता है। पुरुषों के नाटको एवं नाट्यगीतों मे सामाजिक के अतिरिक्त पौराणिक, धार्मिक एवं ऐतिहासिक कथानक भी आते हैं।

स्त्रियों के नाट्यगीत

मगही के चार नाट्यगीतों की विवेचना यहाँ की जायगी—१. बगुली, २. जाट-जाटिन, ३. सामा-चकवा और ४. डोमकच्च। इनका संक्षिप्त विवरण निम्नांकित है—

बगुली[१] :

'बगुली' नाट्यगीत में महिलाएँ अभिनय के साथ गीत गाती हैं। रंगमच के दोनों छोर पर महिलाओं का दो दल बैठता है। बीच में एक या कई स्त्रियाँ बगुली की आकृति बनाकर बैठ जाती हैं। आकृति इस प्रकार बनती है—बगुली बननेवाली स्त्री का घूँघट खूब लम्बा होता है, जिसमें हाथ डालकर, मुँह के पास मे चोंच की आकृति बना ली जाती है। यह कृत्रिम चोंच निरन्तर हिलती रहती है। इसी स्थिति मे वह उछल-कर एक दिशा से दूसरी दिशा की ओर जाती है और 'दीदिया' नाम की दूसरी पात्री से उसका गीत मे संवाद चलता रहता है। 'दीदिया' की आलोचना से रुष्ट होकर वह नदी की ओर बढती है। यहीं प्रथम दृश्य का अन्त होता है।

दूसरे दृश्य मे रंगमंच के दोनो छोर पर बैठी महिलाओं का दल अब 'दीदिया' का नाट्य न करके 'मल्लाह' का अभिनय करता है। क्रुद्ध एव आतुर बगुली मल्लाह से उस पार पहुँचाने की प्रार्थना करती है। वह पहुँचाने का मूल्य क्रमशः बढ़ाता हुआ अन्त मे अदेय यौवन माँगता है। निराश बगुली यौवन को पति की धरोहर बताकर बैठी रहती है। यहीं नाटक का अन्त हो जाता है।

बगुली की भाव-व्यंजनावाले गीत को महिलाओं का एक दल गाता है, दीदिया एवं मल्लाह के पक्ष का गीत महिलाओ का दूसरा दल। इस प्रकार, सामूहिक गीत और अभिनय इसमे होते हैं।

वर्ण्य विषय : इस नाट्यगीत मे गार्हस्थ्य-जीवन की सफलता के लिए आदर्श वधू की मर्यादाओ का वर्णन होता है। आरम्भ में 'बगुली' एक लोभी वधू के रूप मे प्रस्तुत होतीहै। इससे इसकी सभी महिलाएँ आलोचना करती है। बगुली रुष्ट होकर नैहर भागना चाहती है। इसी इच्छा से वह नदी-तीर पर मल्लाह के पास पहुँचती है। मल्लाह उससे पार पहुँचाने का मूल्य 'यौवन' माँगता है। इससे बगुली के आत्मसम्मान को ठोकर लगती है। वह सतीत्व के प्रति पूर्ण आस्था रखती है। निराश होकर वह नैहर जाने की जिद छोड़ देती है।

इस नाटक मे 'स्त्री-चरित्र' के विविध रूपों की व्याख्या प्रस्तुत की गई है, साथ ही 'वधू' के लिए पारिवारिक मर्यादाओं के निर्वाह का सन्देश भी दिया गया है।

---

१. दे० परि० एवं हि० सा० बृ० इ०, भाग १६, पृ० ५३-५४।

२. जाट-जाटिन[1] :

इस नाट्यगीत में दो प्रधान पात्र होते हैं—१. जाट और २. जाटिन। इसमें एक ओर एक स्त्री जाट के वेश मे अपने दल के साथ खड़ी होती है, दूसरी ओर एक स्त्री जाटिन के वेश मे अपने दल के साथ खड़ी होती है। कहीं-कहीं जाट के दल मे स्त्रियाँ पुरुषों के कपडे पहन लेती हैं। वे गले मे फूलों की माला और सिर में किसी चीज का मुकुट बनाकर भी पहन लेती हैं। जाटिन के दल मे भी स्त्रियाँ फूलो के आभूषणों से अपने को अलंकृत कर लेती हैं। इसके बाद दोनों दलों के बीच गीतों मे संवाद और अभिनय चलता है। जाटिन का दल ऐंठ-ऐंठकर दम्भ की व्यंजना करता चलता है। जाट का दल विविध फलों एवं अनाजों के बोझ से झुके वृक्षों एवं पौधों की उपमा से जाटिन को विनम्र बनने का सन्देश देता है। अतः, जाट का दल विनम्र होने की मुद्रा बनाता है।

वर्ण्य विषय : 'जाटिन' नैहर के दम्भ पर उद्दण्डता दिखाती है। पर, जाट उसे गार्हस्थ्य-जीवन की सफलता की कुंजी 'विनय' की सीख देता है। विवाह के बाद महिलाओं को नैहर के प्यार का दर्प छोड़कर, ससुराल के पारिवारिक जीवन को अपने गुणों की सुरभि से सुरभित करना चाहिए—यही इस नाट्यगीत का सन्देश है। इसमे दाम्पत्य-जीवन की सफलता के लिए अनेक सीखें दी जाती हैं।

सामा-चकवा[2] :

यह नाट्यगीत भाई-बहन के मंगलमय स्नेह-बन्धन को प्रकट करता है। बहन का नाम है—सामा; भाई का नाम है—चकवा। सामा-चकवा के नाट्यगीत में 'बगुली' और 'जाट-जाटिन' की तरह व्यवस्थित रूप से गीत-अभिनय नहीं होते। वर्णनात्मक पद्धति मे प्रायः सामा-चकवा के गीत गाये जाते हैं। दोनों का व्यक्तिगत एवं प्रत्यक्ष संवाद या प्रश्नोत्तर भी नहीं होता। पर, इसे नाट्यगीत में इसलिए रख लिया गया है कि इसमें भी गानेवाली महिलाओ के दो दल होते है और दोनों दल नाटकीयता के साथ इसमें भाव-प्रकाशन करते हैं।

सामा-चकवा के खेल मे कुछ अनुष्ठान भी रहते हैं। यथा—इस अवसर पर सामा-चकवा के दो खिलौने बनाये जाते हैं। उन्हें बीच में रखकर औरतो के दो दल दोनों ओर से गाते हैं। कार्त्तिक पूर्णिमा के दिन कुस एवं केले के थम्भ का बेड़ा बनाया जाता है। उसपर दोनो मूर्त्तियाँ रख दी जाती हैं, साथ ही पाँच घी के दीप भी रख दिये जाते हैं। इसके बाद उसे नदी में प्रवाहित कर दिया जाता है।

वर्ण्य विषय : इस नाट्यगीत में विविध रूपों में भाई-बहन के स्नेह की व्यंजना होती है। इसमें नारी की सन्धि-अवस्था की सूचना रहती है। कन्या का विवाह हो चुका है, पर नैहर में माँ-बाप-भाई का आकर्षण अभी नहीं छूटा है। पतिगृह के जीवन को अभी

---

१. दे० म० लो० सा०, पृ० ९८-९९।

२. दे० म० लो० सा०, पृ० ९९-१००।

वह पूर्णरूपेण नहीं अपना पाई है। ऐसी स्थिति में भाई, बहन का अनेक रूपों मे सम्मान करके उसकी उत्साह-वृद्धि करता है। अनेक बार वह बहन की उपेक्षा के लिए अपनी पत्नी को दण्डित करता हुआ भी देखा जाता है। इन गीतों में प्रायः भाई-भौजाई दोनों सम्मिलित रूप से बहन के स्वागत-सम्मान और स्नेह-सुख की योजना में तत्पर दिखाई पड़ते हैं।

डोमकच : ये 'अभिनय गीत' वर के घर से बरात जाने के बाद रात मे अनुष्ठित होते हैं। इसमें कई प्रकार के अभिनय होते हैं एवं तदनुरूप गीत भी होते हैं—

१. महिलाएँ डोम-डोमिन का अभिनय करती हैं। वज्रयानियों की योगतन्त्र-साधना में डोमिन आदि का सेवन आवश्यक माना है। डोमिन के साथ, स्वांग करने का आह्वान उस काल की स्वांग-परम्परा को द्योतित करता है। यह परम्परा आज भी उत्तर भारत मे वर्त्तमान है। मगध में विवाह के अवसर पर होनेवाला 'डोमकच' इसी का अवशेष है। इसमें शृंगारिक मनोविनोदों की प्रधानता होती है।

२. डोमकच के अवसर पर एक दूसरा अभिनय भी होता है। इसमें लड़के की माँ, जिसे 'भौजैतिन' कहते हैं, प्रसविनी का अभिनय करती है। दूसरी स्त्री पुरुष का वेश बनाकर वैद्य का नाट्य करती है। इसके बाद प्रजनन-क्रिया आदि के सम्बन्ध मे अनेक व्यक्तियों के नाम लेकर महिलाएँ गालियाँ गाती हैं।

ऐसे अनेक अभिनय और गीत इस दिन रात-भर चलते हैं।

पुरुषों के लोकनाट्य

अनेक पर्वोत्सवों के अवसर पर पुरुष लोग नाट्य करते हैं। इनके प्रिय नाट्य हैं—स्वांग, नौटंकी, रामलीला, रासलीला, बिदेसिया आदि।

स्वांग—लोकधर्मी नाटक मे 'स्वांग' को विशेष महत्त्व प्राप्त है। इसमें शृंगारी प्रवृत्तियो को बहुत छूट रहती है। इसमे हास्य रस की प्रधानता रहती है। स्वांग की वेष-भूषा ऐसी होता है कि हँसी आये विना नहीं रह सकती। विषय का चुनाव भी हास्य-प्रधान होता है। स्वाग बनाकर लोग विविध स्थानों मे घूमते हैं। स्वाग के पात्रो के साथ बहुत लोगों की टोली चलती है। होली, सतुवानी आदि के अवसर पर 'स्वांग' का अभिनय अधिक होता है।

नौटंकी—स्वांग का ही एक भेद नौटंकी है। इसमें भी शृंगार एवं हास्यप्रधान कथानको को प्रधानता दी जाती है।

रामलीला—रामायण के आधार पर राम की विविध लीलाएँ अभिनीत करते हैं। इसमें कथोपकथन गीतबन्ध-शैली में होता है। कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी, सीता आदि महिलाओं का अभिनय भी पुरुष ही करते हैं। दशहरे के अवसर पर रामलीलाएँ अधिक प्रदर्शित की जाती हैं।

रासलीला—इसमें गोपियों के साथ व्रज मे कृष्ण की लीलाएँ दिखाई जाती हैं। रासलीला भी प्रायः गीतबद्ध शैली में प्रस्तुत की जाती है। इसमें नृत्य, गीत और वाद्यों का प्राधान्य एवं कथोपकथन की न्यूनता देखी जाती है। कृष्णजन्माष्टमी के अवसर पर रासलीलाएँ अधिक प्रस्तुत की जाती हैं।

बिदेसिया—यह बिहार-प्रान्त का प्रसिद्ध नाट्य है। मगध में भी इसका बहुत प्रचार है। इसमें गान और अभिनय की अच्छी योजना रहती है। इसका कथानक प्रेमाख्यानक एवं सामाजिक समस्याओं के सन्दर्भ को लेकर चलता है। 'बिदेसिया' में सामाजिक बुराइयों पर करारी चोट की जाती है।

●

किया है।[1] इसका कारण यह है कि 'गाथा' शब्द का व्यवहार गेय पदावली (लिरिक्स) के लिए प्राचीन काल से होता आ रहा है। हाल की 'गाथासप्तशती' इसका उदाहरण है। मगही में भोजपुरी की तरह गाथा का अर्थ वैसी कथा या कहानी होता है, जो रागात्मक ढंग से विना क्रम-भंग के सुनाया जाय। यथा—'तू अप्पन गाथा सुनैले जा, बकि केऊ सुनतो न।' जिस प्रकार 'बैलेड' में गेयता और कथानक इन दोनो का अनिवार्य सम्बन्ध उपर्युक्त पंक्तियों में दिखाया जा चुका है, उसी प्रकार 'लोकगाथा' मे भी ये दोनों तत्त्व वर्त्तमान मिलते हैं। इसी कारण डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने इसकी परिभाषा यों दी है—'लोकगाथा' वह गाथा या कथा है, जो गीतों मे कही गई हो।[2] डॉ० सत्येन्द्र ने 'लोकगाथा' को 'प्रबन्धगीत' की संज्ञा दी है।[3] उनके अनुसार ये गीत किसी-न-किसी कहानी को लेकर चलते है। मूलतः ये कहानियाँ ही हैं, पर गेय है।

पर, साहित्यिक महाकाव्य के लिए 'प्रबन्धगीत' का उपयोग किया जाता है, इसलिए उनसे, लोक-साहित्य में उपलब्ध विस्तृत कथागीतों को अलग करने के लिए 'लोकगाथा' शब्द अधिक भावाभिव्यजक होगा। यो, लोकगाथा अनेक दृष्टियो से 'प्रबन्ध-गीत' के ही समान है; केवल शास्त्रीय विधानों की दृष्टि से दोनों मे अन्तर होता है।

लोकगाथाओं की उत्पत्ति[4]—लोकगाथाओं की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे निम्नांकित सिद्धान्त उपलब्ध होते हैं—

१. ग्रिम का सिद्धान्त : समुदायवाद।
२. श्लेगल का सिद्धान्त : व्यक्तिवाद।
३. स्टेन्थल का सिद्धान्त : जातिवाद।
४. विशापपर्सी का सिद्धान्त : चारणवाद।
५. चाइल्ड का सिद्धान्त : व्यक्तित्वहीन व्यक्तिवाद।
६. डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय का सिद्धान्त : समन्वयवाद।

१. जर्मनी के विद्वान् जेकब ग्रिम का मत है कि लोककाव्य का निर्माण किसी व्यक्ति द्वारा नहीं, कुछ जनता द्वारा होता है। पर्वोत्सवो के हर्षोल्लास मे विशिष्ट समुदाय के लोगों ने एक साथ मिलकर इन गाथाओ की रचना की होगी।[5]

२. ए० डब्लू० श्लेगल ने ग्रिम के मत का खण्डन करके यह मत दिया कि कविता का रचयिता कोई-न-कोई व्यक्ति अवश्य होगा।[6]

---

१. भोज० लो० सा० अ०, पृ० ३८६।
२. वही, पृ० ३६०।
३. ब्र० लो० सा० अ०, पृ० ३४४।
४. विस्तृत अध्ययन के लिए दे० भोज० लो० सा० अ०, लोकगाथा।
५. गूमर : ओ इ० बै० (भूमिका)।
६. वही०, पृ० LIV.

३. स्टेन्थल के अनुसार, किसी जाति (Race) के सभी व्यक्ति मिलकर इनकी रचना करते हैं। इस कारण 'लोकगाथाएँ' समस्त जाति की धरोहर हैं।[1]

४. विशापपर्सी के मतानुसार-लोकगाथाओं की रचना चारण या भाटों द्वारा हुई होगी। ये लोग प्राचीन काल में इंगलैण्ड में ढोल या सारंगी (हार्प) पर गाना गाते, गीतो की रचना करते और भिक्षा-याचना करते थे। इन गीतों को 'मिन्स्ट्रल बैलेड कहा जाता था।[2]

५. प्रो० चाइल्ड का सिद्धान्त था कि व्यक्ति-विशेष की कृति होने पर भी गाथाएँ भिन्न-भिन्न व्यक्तियो द्वारा गाई जाती थीं। इससे इन गाथाओं मे परिवर्त्तन एवं परिवर्द्धन होता रहा। इस प्रकार, इन गाथाओ मे मूल लेखक का व्यक्तित्व तिरोहित हो गया एवं ये गाथाएँ जन-सामान्य की सम्पत्ति बन गईं।[3]

६. डॉ० कृष्णदेव ने समन्वयवादी सिद्धान्त अपनाते हुए कहा है कि उपर्युक्त सभी मतों के सहयोग से गाथाओं का निर्माण हुआ है। कुछ गीत या गाथाएँ व्यक्तियों द्वारा रचित है। यथा, 'आल्हा' के साथ 'जगनिक' कवि का नाम जुडा है। पर, बहुत सारे गीत और गाथाएँ विशेष समुदाय (Community) द्वारा रचित हैं। यथा, 'अहीर' जाति में 'लोरकाइन' एवं दुसाध जाति मे 'रेसमा' बहुत लोकप्रिय हैं। ये ही इनके रचयिता भी होंगे। इसी प्रकार गीतो की रचना में भी जाति-विशेष के लोग भाग लेकर उनके कोष को समृद्ध करते होंगे। यथा, अहीरो के 'विरहा गीत' पॅवरियों के 'पँवारे' आदि। अधिकांश गाथाओ में कवि के नाम एवं व्यक्तित्व का उल्लेख नहीं मिलता।

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय द्वारा प्रस्तुत यह समन्वयवादी सिद्धान्त सबमे अधिक समुचित प्रतीत होता है।

लोकगाथाओं की भारतीय परम्परा

प्राचीन भारतीय साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि यहाँ 'लोकगाथाएँ वर्त्तमान थीं। यथा :

वेद—'गाथा' का शाब्दिक अर्थ है—पितरगण, परलोक या ऐसे ही विषयों से सम्बद्ध अनुश्रुतियों पर आधृत पद्य या गीत।[4] ॠग्वेद में 'गाथिन्' शब्द 'गानेवाले' के लिए आया है।[5] बाद में 'गाथा' एक छन्द भी बन गया। वैदिक युग में गाथाओं को महत्त्व प्राप्त था। सायण-भाष्य मे उल्लिखित है कि विविध वैवाहिक विधियो के अवसर पर गाये जानेवाले गीत 'रैमी' एवं 'नाराशंसी' के नाम से प्रसिद्ध थे।[6]

---

१. गूमर : ओ० इ० बै०, पृ० XXXVI—VII.
२. विशापपर्सी : रेलिक्स ऑव एन्शेन्ट इंगलिश पोयट्री, पृ० XXIV.
३. जानसन : साइक्लोपीडिया, सन् १८९३ ई०।
४. अमरकोश।
५. इन्द्रमिदं गाथिनो बृहत्। —ऋग्वेद, १।७।१।
६. रैम्यासीदनुदेयी, नाराशंसी न्योचनी।
सूर्याया भद्रमिद्वासो, गाथेति परिष्कृताम्॥—ऋग्वेद, १०।९८।६।

ब्राह्मण-ग्रन्थ—ब्राह्मण-युग में गाथाओ का व्यवहार मन्त्ररूप में नहीं होता था। ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार, ऋक् और गाथा मे भेद था; क्योंकि ऋक् दैवी होती थी और गाथा मानुषी।[१] वैदिक गाथाओं के उदाहरण शतपथब्राह्मण[२] तथा ऐतरेय ब्राह्मण में भी मिलते है। इनमें अश्वमेध यज्ञ करनेवाले राजाओ के उज्ज्वल चरित्र का वर्णन किया गया है।

पुराण—'पुराण-शब्द की अर्थ-परीक्षा से ज्ञात होता है कि प्राचीन आख्यानों, उपाख्यानो एव गाथाओ के एकत्र संकलन का नाम 'पुराण' है। इस दृष्टि से खोज करने पर पुराणों मे अनेक गाथाओ के उदाहरण मिलते हैं। यथा : सुवर्ण, कद्रू एवं विनता की गाथाएँ। पाश्चात्य विद्वान् विण्टरनीज ने लिखा है कि प्राचीन भारतीय वाङ्मय में यत्र-तत्र लोकगाथाओं का इतिहास प्राप्त होता है। प्रत्येक उत्सव या यज्ञ के आयोजन में देवगाथा, वीरगाथा तथा अन्य गाथाओं का गान एवं श्रवण आवश्यक था।

महाकाव्य—विण्टरनीज आदि विद्वानों ने रामायण और महाभारत की रचनाओं का आधार तद्युगीन प्रचलित लोकगाथाओं को ही माना है।[३] इनके अनुसार समाज मे अनेक गाथाएँ प्रचलित रही होंगी, परन्तु महाकवियों ने सबको छोड़कर केवल राम और कृष्ण-सम्बन्धी गाथाओं को ही अपना प्रिय विषय बनाया। अनेक गाथाएँ कालान्तर मे लुप्त हो गईं, पर रामायण-महाभारत में अनेक आत्मसात् कर ली गईं। इन महाकाव्यों में प्रधान कथा के साथ अनेक उपकथाओं के होने का यही रहस्य है।

पालि एवं प्राकृत-साहित्य—जातक-ग्रन्थो मे भगवान् बुद्ध से सम्बद्ध कथाओं और गाथाओं का विपुल संग्रह है। इनके निर्माण मे तद्युगीन लोकप्रचलित गाथाओ एवं कथाओ का बड़ा हिस्सा है। प्राकृत-काल मे 'गाथासप्तशती' नामक सात सौ गाथाओं का सुन्दर संग्रह मिलता है।

अपभ्रंश-काल—अपभ्रंश-काल में लोकगाथाओ का नमूना 'सन्देशरासक' में मिलता है। यह एक छोटा प्रेमगीत है, जिसमे लोकतत्त्वों का समावेश मिलता है।

यात्रा-विवरण—समय-समय, अनेक विदेशी यात्रियो ने भारत-भ्रमण किया था। जिनमें चीनी यात्री फाहियान और ह्वेनसाग के नाम प्रसिद्ध हैं।

फाहियान गुप्तकाल में आये थे। इनके अनुसार इस समय नृत्य, संगीत, गीतों और गाथाओं का बड़ा प्रचार था। ये ज्येष्ठ की अष्टमी के दिन पाटलिपुत्र मे स्वयं उपस्थित थे। इन्होने भगवान् बुद्ध की रथयात्रा के विराट् समारोह का वर्णन किया है। इस

---

१. ऐतरेय ब्राह्मण, ७।१८।

२. शतपथब्राह्मण, १३।५।४ ; १३।४।३८।

३. हिस्ट्री ऑव दि इण्डियन लिटरेचर : वाल १, पृ० ३११।

समय लोग फूलों की वर्षा करते थे, दुन्दुभी बजाते और नृत्य करते थे तथा भगवान् बुद्ध की महिमा के गीत गाते थे।[1]

ह्वेनसाग हर्षवर्धन के काल मे भारत आये थे। इन्होंने अपने विवरण मे भारतीयों के उत्सव, नृत्य, गान आदि की प्रशंसा करके तद्युगीन प्रचलित लोकगीतों एवं लोक-गाथाओं की परम्परा पर प्रकाश डाला है।[2]

लोकगाथाएँ मौखिक परम्परा में ही गायकों द्वारा सारे भारत मे प्रचलित हुईं। प्राचीन भारत में छह प्रकार के गायकों का उल्लेख मिलता है—सूत, मागध, बन्दी, कुशीलव, वैतालिक एवं चारण। मध्ययुग मे दो प्रकार के और गायकों के नाम मिलते हैं—भाँट और योगी।

लोकगाथाओं के श्रोता प्रायः उच्च श्रेणी के लोग होते थे; यथा राजा, मन्त्री, सेनापति आदि। पर, गायक प्रायः निम्न श्रेणी के लोग ही होते थे। गायकों की यह परम्परा आज भी चल रही है। मैंने पाँच मगही लोकगाथाओं[3] का संकलन किया है। इनमें 'गोपीचन्द' की कथा डॉ० ग्रियर्सन से मिली है। पर अन्य चार गाथाएँ अहीर, धोबी और दुसाध जाति के लोगों से मिली हैं। जुलाहे, चरवाहे, नेटुआ, पमरिया आदि जातियों के लोगों के पास अनेक लोकगाथाएँ आज भी सुरक्षित हैं। गाथाओं के गायक निम्न श्रेणी के लोग क्यों हैं, इस सम्बन्ध मे जी० एफ० किटरेज का मत है कि सभ्यता के क्रमिक विकास के साथ लोकगाथाएँ सम्भ्रान्त समाज से हटकर निम्नवर्ग के लोगों में अधिक प्रचलित होती गईं। इनमें कातने-बुननेवाले हल, चलानेवाले तथा चरवाहे प्रमुख हैं।[4]

स्पष्ट है कि लोकगाथाओं की परम्परा प्राचीन काल से आजतक अक्षुण्ण है। अन्तर इतना अवश्य आ गया है कि प्राचीन काल में सभी साहित्यानुरागी बडे प्रेम से लोकगाथाओं का श्रवण करते थे, जिससे गायकों को इनकी रक्षा की बड़ी प्रेरणा मिलती थी। पर, अब शिक्षित समाज इनसे उदासीन हो रहा है, इससे क्रमशः प्राचीनों के साथ ये गाथाएँ भी लुप्त होती जा रही हैं।

लोकगाथाओं के श्रवण-अध्ययन से पता चलता है कि इनमें पूर्ण सामाजिक चेतना, सुन्दर आदर्श एवं साहित्यिक विशेषताएँ वर्त्तमान हैं। अतः, इनके संरक्षण की अपेक्षा है।

मगही लोकगाथाओं की सामान्य विशेषताएँ

विविध विद्वानों ने संसार की लोकगाथाओं में सामान्य रूप से पाई जानेवाली उन विशेषताओं का निर्देश किया है, जिनके कारण लोकगाथाएँ रचित महाकाव्य की

---

१. हिन्दी-साहित्य का आदिकाल : आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ५९–६०।

२. बी० के० सरकार : फोक एलीमेण्ट इन हिन्दू कल्चर, पृ० १२।

३. दे० म० लो० सा०, पृ० १००—१०७।

४. चाइल्ड : इं० ऐण्ड स्का० पा० बैले०, भूमिका, पृ० ७ से ३६।

अलंकृत शैली से भिन्न हो जाती हैं।[1] ये विशेषताएँ मगही लोकगाथाओं में भी सामान्य रूप से वर्त्तमान हैं। इन्हें अति संक्षेप मे निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जाता है—

१. अज्ञात रचयिता; २. प्रामाणिक मूल पाठ का अभाव ३. संगीत का सहयोग; ४. स्थानीयता का प्रचुर प्रभाव; ५. मौखिक परम्परा; ६. उपदेशात्मक एवं स्वाभाविक प्रभाव; ७. अलंकृत शैली की अविद्यमानता एवं स्वाभाविक प्रवाह; ८. रचयिता के व्यक्तित्व का अभाव; ९. टेकपदो की पुनरावृत्ति; १०. कथानक का विस्तार; ११. सन्दिग्ध ऐतिहासिकता; १२. अन्यान्य।

१. अज्ञात रचयिता—मगही लोकगाथाओं में उनके रचयिता का कहीं नामोल्लेख नहीं है। लोकगीतों के सम्बन्ध में त्रिपाठीजी का यह कथन—लोकगीतों के रचयिता अज्ञात स्त्री-पुरुष हैं[2]— मगही लोकगाथाओ के सम्बन्ध मे भी सत्य है। रचना में रचयिता के नाम के अभाव का कारण देते हुए राबर्ट ग्रेब्स लिखते है[3]—आधुनिक युग में रचयिता के नाम का अभाव इस तथ्य को प्रमाणित करता है कि वह अपनी कृति से लज्जित होने के कारण ऐसा कर रहा है। पर, प्राचीनकालीन रचयिता अपने नामों को कृति के साथ जोड़ने के सम्बन्ध मे पूर्ण लापरवाह ही थे। इस सम्बन्ध में डॉ० सत्यव्रत सिन्हा[4] का मत है—'उस समय व्यक्ति की महत्ता की प्रतिष्ठा नहीं हुई थी।' पर, उपर्युक्त दोनो विद्वानों के विचार बहुत तर्कसंगत नही प्रतीत होते। जिस युग मे व्यक्ति या समाज ने ऐसी सर्वांगसुन्दर गाथाओ की रचना की हो, उसमें व्यक्ति की महत्ता प्रतिष्ठित नहीं हुई होगी, यह कहना युक्तिसंगत नहीं। यह तर्क भी ठीक नहीं कि रचयिता लज्जित या लापरवाह रहे होंगे। इस सम्बन्ध मे डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय का विचार अधिक मान्य है—'इन लेखकों ने अपने व्यक्तित्व, नाम और यश की चिन्ता न करके जाति के लिए अपनी प्रतिभा का उत्सर्ग किया है।'[5]

२. प्रामाणिक मूल पाठ का अभाव—मगही लोकगाथाओं के मौखिक परम्परा में सुरक्षित रहने के कारण प्रामाणिक मूलपाठ का अभाव होना स्वाभाविक ही है। मूल रचयिताओं के हाथ से निकलकर गाथाएँ समाज की धरोहर बनकर मौखिक प्रेषण के द्वारा घूमने लगती हैं। कालान्तर में उनमें रूपाकृति एवं कथावस्तु मे अनेक परिवर्त्तन समाविष्ट हो जाते है। यथा—

(क) अनेक नवीन घटनाओं, पात्रों, परिस्थितियों आदि के समावेश से आकृति में बड़ी विशालता आ जाती है।

---

१. विस्तृत अध्ययन के लिए देखिए—(क) दि इंगलिश बैलेड, पृ० ७ से ३६ : राबर्ट ग्रेब्स ; (ख) भो० लो० सा० अ०, पृ० ३१६; (ग) भोजपुरी लो० गा०, पृ० २५।

२. क० कौ०, ग्रामगीत, पृ० २१।

३. दि इंगलिश बैलेड, पृ० १२।

४. भोजपुरी लोकगाथा, पृ० २६।

५. भो० लो० सा० अ०, पृ० ३१७।

(ख) भिन्न-भिन्न भाषाभाषियों द्वारा गाये जाने के कारण विभिन्न पाठ तैयार हो जाते हैं।

(ग) विभिन्न क्षेत्रों के गवैयों द्वारा गाये जाने के कारण अलग-अलग तर्जों का समावेश हो जाता है।

उपर्युक्त कारणों से मगही के गाथागीतों में बहुत पाठान्तर मिलता है। लोरकाइन, गोपीचन्द, कुँअरविजयी आदि सभी गाथाएँ उत्तरी भारत के सभी क्षेत्रों में अति लोकप्रिय हैं। अतः, यह कह सकना कठिन है कि किस क्षेत्र में प्रचलित गाथाओं का पाठ प्रामाणिक है।

३. संगीत का सहयोग—सभी मगही लोकगाथाएँ गेय हैं। उनकी अपनी संगीत-पद्धति है। इस सम्बन्ध मे प्रो० किटरेज का कथन है[१] कि गायक एक वाणी है, व्यक्ति नहीं। कारण लोकगाथाओं के पठन से नहीं, श्रवण से ही इनकी महत्ता का पता चलता है। गायक ही उनमें प्राण-प्रतिष्ठा करता है।

जैसी मगही लोकगाथा होती है, उसके साथ वैसा ही वाद्ययन्त्र बजाया जाता है। यथा, वीरकथात्मक लोकगाथाओ के साथ ढोल बजाया जाता है। गवैये का स्वर जोशीला होता है। योगात्मक लोकगाथाओं के साथ सारंगी बजाई जाती है। गवैये का स्वर करुण होता है। वाद्ययन्त्रों एवं गायकों के स्वरो का साहचर्य भारत एवं विदेशों मे गाई जानेवाली सभी लोकगाथाओं में रहता है। कारण बिना संगीत के गाथा सुनने का कुछ मूल्य नहीं रह जाता। संगीत के साहचर्य से ही गाथाओ का अपेक्षित प्रभाव पड़ता है।

४. स्थानीयता का प्रचुर प्रभाव—सभी मगही लोकगाथाओं मे समाज में प्रचलित संस्कार, पूजापाठ एवं विश्वासो का सम्मिश्रण देखने मे आता है। पर, स्थानीयता के इस पुट को ऐतिहासिक प्रमाण मान लेना युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होता। प्रायः सभी लोकगाथाओ का प्रचार व्यापक रूप में समस्त उत्तरी भारत मे पाया जाता है। अतः, उनपर स्थानीय रंग चढ़ना स्वाभाविक ही है। इससे उनका सम्बन्ध स्थान-विशेष से जोड़ लेना ठीक नहीं।

५. मौखिक परम्परा—मगही लोकगाथाएँ मौखिक परम्परा मे ही जीवित हैं। यह एक प्रकार का वरदान ही है। इसी कारण विभिन्न पाठ (वर्सन्स) देखने को मिलते हैं। मौखिक परम्परा मे रहने से उनके कलेवर की निरन्तर वृद्धि होती जाती है और जन-प्रतिभा को मुक्त रूप मे प्रदर्शित होने का अवकाश भी मिलता है। इसी से फ्रेंच लोगों का कहना है कि गाथा तभी तक जीवित रह सकती है, जबतक वह मौखिक साहित्य के रूप मे है।[२]

६. उपदेशात्मक एवं प्रचार की प्रवृत्ति का अभाव—इन गाथाओं में प्रत्यक्ष रूप से उपदेशात्मक या प्रचार की प्रवृत्ति का अभाव पाया जाता है। यह और बात है

१. इंगलिश ऐण्ड स्काटिश पापुलर बैलेड्स, भूमिका, पृ० २४।
२. फ्रैंक सिजविक : दि बैलेड, पृ० ३६।

कि अप्रत्यक्ष रूप से इनमे देशभक्ति, माता-पिता के प्रति प्रेम, गुरु-भक्ति, कर्त्तव्यनिष्ठा, साहस, शौर्य, प्रेम, मित्रता आदि के सन्देश भरे हैं। पर, रचयिता का लक्ष्य उपदेश देना नहीं। बहुमूल्य शिक्षाएँ देकर भी वह तटस्थ है।

७. अलंकृत शैली की अविद्यमानता एवं स्वाभाविक प्रवाह—मगही लोक-गाथाओं की रचना अलकृत शैली मे नहीं हुई है। इन्हे 'जनता की कविता' (Poetry of folk) कहा जाता है, इसलिए इनमें कविहृदय की अनुभूति एवं स्वाभाविक उद्गार को अत्यन्त सरलता एवं अकृत्रिमता से प्रस्तुत किया जाता है। वह पिगलशास्त्र के नियमों को अपना आधार बनाकर नहीं चलता। यह अन्य बात है कि स्वाभाविक रूप से कुछ अलंकार, रसादि के समावेश से गाथाओं में और सप्राणता आ जाय। लोकगाथाओं के प्रधान गुण उनकी स्वाभाविकता, सरलता, सहज अनुभूति, स्वाभाविक एवं नैसर्गिक प्रवाह हैं।

८. रचयिता के व्यक्तित्व का अभाव—इन गाथाओं मे रचयिता के व्यक्तित्व की कहीं झलक नहीं मिलती। इन्होंने सभी वर्गों के पात्र, सभी प्रकार की घटनाएँ एवं परिस्थितियाँ चित्रित की हैं, पर सर्वत्र उनकी दृष्टि तटस्थ है। ऐसा केवल मगही या अन्य भारतीय लोकगाथाओं के साथ नहीं है। विदेशी लोकगाथाओं के विद्वान् भी ऐसा ही अनुभव करते है। प्रो० स्टीन स्ट्रप का इस सम्बन्ध में विचार है कि लोकगाथाओं में 'मैं' का नितान्त अभाव रहता है।[1] कीट्रिज का कथन है कि यदि किसी का स्वतः कहना उसके वक्ता के अभाव मे भी शक्य हो सकता, तो लोकगाथा ऐसी ही कथा होती।[2]

९. टेकपदों की पुनरावृत्ति—'टेकपदों' की पुनरावृत्ति की परम्परा मगही गाथाओं में मिलती है। इससे सम्भावित एकरसता नहीं आ पाती और टेकपदों के कारण गायक को साँस लेने का अवकाश मिल जाता है। पाश्चात्य देशों मे दो प्रकार के टेकपदों का व्यवहार होता है—१. रिफ्रेन और २. इन्क्रीमेण्टल रिपिटीशन। रिफ्रेन दो प्रकार के होते हैं—१. एक में लोकगाथाओं के गान के बीच-बीच कुछ विशेष प्रकार के शब्द उच्चरित होते हैं। ये शब्द सार्थक और निरर्थक दोनों प्रकार के होते हैं। २. दूसरे-में प्रारम्भ में कही गई पंक्तियों की बार-बार आवृत्ति होती है। मगही लोकगाथाओ में केवल प्रथम प्रकार का रिफ्रेन व्यवहृत होता है। प्रत्येक पंक्ति के आरम्भ में और अन्त में 'रमगा', 'हो ना', 'हो राम', 'न गे', 'न हो' आदि टेकपदों का उच्चारण होता है।

'इन्क्रीमेण्टल रिपिटीशन' (बुद्धिपरक आवृत्ति) में प्रथम पंक्ति, दूसरी पंक्ति के बाद फिर आती है। इस पुनरावृत्ति में किसी एक नवीन शब्द द्वारा कथा का विकास सूचित होता है। मगही लोकगाथाओं में 'इन्क्रीमेण्टल रिपिटीशन' की परम्परा नहीं है।

१०. कथा का विस्तार—मगही में पाई जानेवाली लोकगाथाएँ आकृति में बहुत बड़ी-बड़ी हैं। इनमे अनेक ऐसी हैं, जिनका विस्तार किसी महाकाव्य से कम नहीं। यथा लोरकाइन, छतरी-घुघुलिया, आल्हा आदि। कथानक की इस विशालता के कई कारण हैं।

---

१. एफ० बी० गूमर : ई० बै०, पृ० ६३।
२. ई० स्का० पा० बै०, पृ० ११ (भूमिका)।

एक तो यह कि इनमें विविध पात्रों के जीवन का सांगोपांग वर्णन होता है। दूसरा यह कि लोकगाथा के निर्माण में सम्पूर्ण समाज का सामूहिक सहयोग रहता है। प्रत्येक व्यक्ति उसमें कुछ-न-कुछ जोड़ता ही है। इस प्रकार, नवीन कथानकों के जुड़ाव से कालान्तर में गाथाओं की आकृति विशाल हो जाती है।

११. सन्दिग्ध ऐतिहासिकता—मगही गाथाओं की ऐतिहासिकता बहुत सन्दिग्ध है। इनमें जो वर्णन हैं, उनसे ऐसिहासिक तथ्यों की खोज की जा सकती है। सन्दिग्ध ऐतिहासिकता का एक बड़ा कारण यह है कि लोकगाथाओं के रचयिताओं को इतिहास-निर्माण की चिन्ता नहीं होती। जिन गाथाओं की रचना का आधार ऐतिहासिक घटनाएँ भी हैं, उनका आरम्भ उन घटनाओ के साथ हीहो जाता हो, यह आवश्यक नहीं। यह भी सम्भव है कि उनके रचनाकाल और वर्णित घटनाओं में कुछ भी सम्बन्ध न हो।[1]

१२. अन्यान्य – मगही लोकगाथाओं मे दो और विशेषताएँ मिलती हैं : (क) सुमिरन और (ख) पुनरुक्ति।

(क) सुमिरन —मगही की प्रायः सभी लोकगाथाओं का आरम्भ देवताओं के स्मरण से होता है। इस आरम्भिक मंगलाचरण का उद्देश्य गाथा की निर्विघ्न समाप्ति के लिए देव-वन्दना करना ही है। यथा—

> रममा राम जी के करऽहि सुमिरनमा हे नाम।
> रममा माता माई के करऽहि परनमिया हे ना॥
> रममा ओहि देलन हमरा जलमिया हे ना।
> रममा गुरु जी के ले हिअइ नइयाँ हे ना।
> रममा उनके देवल हइ गियनमा हे ना।
> रममा गनेस जी के करहि सुमिरनमा हे ना।
> रममा ओहि करिहें सभे कममा सुफलवा हे ना।

इस प्रकार, सभी देवताओं, ग्रामदेवताओं, धरती, आकाश आदि की वन्दना की जाती है। अन्य धर्मों के देवताओं की भी वन्दना की जाती है। गायक का दृष्टिकोण सामंजस्यमूलक होता है। वह सबको वन्दनीय मानकर 'सुमिरन' करता है; क्योंकि वह अपनी लम्बी गाथा की निर्विघ्न समाप्ति चाहता है।

(ख) पुनरुक्ति—मगही लोकगाथाओं में 'पुनरुक्तियाँ' अनेक बार होती हैं। यथा--जहाँ युद्ध-प्रसंग है, वहाँ एक-एक वस्तु का नाम लेकर गायक पुनरुक्ति करता जाता है। इसी प्रकार अन्य घटनाओं और प्रसंगों को भी बार-बार दुहराता है। इससे 'श्रोता' गाथा के लम्बे कथानक को विस्मृत नहीं कर पाता।

---

१. इन्साइक्लोपीडिया अमेरिकाना, बैलेड, पृ० ९५।

मगही लोककथाओं[१] का वर्गीकरण

अध्ययन की सुविधा के लिए लोक-साहित्य के अन्य उपभेदो की भाँति मगही लोकगाथाओं का वर्गीकरण भी अपेक्षित है । डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय[२] ने भोजपुरी लोकगाथाओं को तीन भागों मे बाँटा है—१. प्रेमकथात्मक (Love Ballads); २. वीरकथात्मक (Heroic Ballads)और ३. रोमाच-कथात्मक (Supernatural Ballads) ।

डॉ० सत्यव्रत सिन्हा[3] ने भोजपुरी लोकगाथाओ को चार भागों मे विभक्त किया है—१. वीरकथात्मक; २. प्रेमकथात्मक; ३. रोमाचकात्मक और; ४. योगात्मक ।

पाश्चात्य देश के विद्वानों ने भी लोकगाथाओ के वर्गीकरण अपने-अपने ढंग से किये हैं । यथा : प्रो० कीट्रीज[४] ने गाथाओं को दो वर्गो में रखा है—१. चारण-गाथाएँ (Minstrel Ballads) और २. परम्परागत गाथाएँ (Traditional Ballads) ।

फ्रांसिस गूमर[५] ने इन्हें छह वर्गो में रखा है—१. प्राचीनतम गाथाएँ (Oldest Ballads); २. कौटुम्बिक गाथाएँ (Ballads of kinship); ३. अलौकिक गाथाएँ (Coronach and Ballads of the supernatural); ४. पौराणिक गाथाएँ (Legendary Ballads); ५. सीमान्त गाथाएँ (Bored Ballads) और ६. आरण्यक गाथाएँ (Greenwood Ballads) ।

उपर्युक्त वर्गीकरणों में ही गाथाओं के वर्णित विषय स्पष्ट हैं ।

जहाँतक मगही लोकगाथाओं के वर्गीकरण का प्रश्न है, उसके लिए दो आधार अपनाये जा सकते हैं—१. आकार एवं २. विषय। आकार की दृष्टि से मगही मे दो प्रकार की गाथाएँ मिलती हैं—लघु एवं बृहत् । 'लघु' गाथाओं को मैंने 'लोककथा-गीत' की संज्ञा दी है । इनपर पहले ही विचार प्रस्तुत किया जा चुका है । 'बृहत्' गाथाएँ महाकाव्य के समान विराट् हैं । एक-एक गाथा को सम्पूर्ण करने मे महीनों का समय लग सकता है । यथा—लोरकाइन, कुँअरविजयी आदि ।

लोकगाथाओं के वास्तविक वर्गीकरण के लिए विषय को ही आधार बनाना समुचित है । इससे यह सरलता से ज्ञात हो जाता है कि किस गाथा मे कौन भावना

१. 'मगही संस्कार-गीत' में सम्पादक डॉ० विश्वनाथ प्रसादजी ने अपने निर्देशन मे बाईस गाथागीतों के संग्रह का उल्लेख किया है । इनका संक्षिप्त परिचय 'लोकगाथा-परिचय' मे स्वर्गीय आचार्य नलिनविलोचन शर्मा के सम्पादकत्व में, 'बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्' से प्रकाशित किया गया है। इनमें अधिकांश लोकगाथाएँ मगध-क्षेत्र मे प्रचलित है।

२. भो० लो० सा० अ०, पृ० ३६४ ।

३. भोजपुरी लोकगाथा, पृ० ५४ ।

४. इ० स्का० पा० बै०, पृ० २७ (भूमिका-भाग) ।

५. दि पापुलर बैलेड, पृ० १३५-२८७ ।

प्रमुख है। अतः, विषय की दृष्टि से मगही लोकगाथाओं को यथानिर्दिष्ट वर्गों में प्रस्तुत किया जाता है—१. वीरकथात्मक लोकगाथाएँ; २. प्रेमकथात्मक लोकगाथाएँ; ३. रोमांच-कथात्मक लोकगाथाएँ; ४. योगकथात्मक लोकगाथाएँ और ५. अलौकिक कथातत्त्व-प्रधान लोकगाथाएँ।

१. मगही में कई वीरकथात्मक लोकगाथाएँ हैं। यथा—

आल्हा—इस गाथा के नायक आल्हा-ऊदल हैं। इसमें दोनों वीरों के बावन युद्धों का वर्णन है। दोनों ने युद्धों में अद्वितीय वीरता दिखाई है। प्रत्येक लड़ाई का कारण विवाह है। इस गाथा में अनेक राजाओं एवं स्थानों के वर्णन आये हैं, पर इनमें पृथ्वीराज चौहान, जयचन्द, परमाल, महोबा आदि मुख्य हैं।

प्रायः बरसात के दिनों में ढोलक पर 'आल्हा' गाया जाता है। जनविश्वास है कि इसे गाने से पानी बरसता है। यद्यपि 'आल्हा' मूलतः बुन्देली-लोकगाथा है, तथापि मगध-क्षेत्र में भी यह बहुत लोकप्रिय है।

लोरकाइन—इस गाथा में अहीर जाति के अद्वितीय वीर लोरिक की अपूर्व वीरता का वर्णन है।

कुँअरविजयी—इस गाथा में अलौकिक वीरता-सम्पन्न कुँअरविजयी की अपूर्व वीरता का वर्णन है।[1]

छतरी-घुघुलिया—इसमें जन्म से ही देवी-कृपापात्र क्षत्रिय घुघुलिया की अपूर्व वीरता एवं शौर्य की कथा है।[2]

२. प्रेमकथात्मक वर्ग में वे लोकगाथाएँ आती हैं, जिनका वर्ण्य विषय मूलतः प्रेम है। मगही में निम्नांकित प्रेम-प्रधान लोकगाथाएँ वर्त्तमान हैं—

रेसमा—इसमें 'रेसमा' के निर्व्याज एवं सच्चे प्रेम का मर्मस्पर्शी चित्र प्रस्तुत किया गया है।[3]

शोभनायक—यही इस गाथा का नायक है। इसका सम्बन्ध व्यापारी जाति से है। इसकी गाथा में कहीं युद्ध या रोमांच का दृश्य नहीं आता। इसमें शोभनायक, उसकी पत्नी के प्रेम और विरह का सुन्दर वर्णन हुआ है।

सारंगा-सदाबिरिछ—इसका नायक 'सदाबिरिछ' है एवं नायिका 'सारंगा'। दोनों सहपाठी थे। इसी बीच इनके हृदय में परस्पर प्रेम अंकुरित हो गया। पर, बाधा यह थी कि सारंगा एक राजा की बेटी थी और सदाबिरिछ एक साधारण नागरिक का बेटा था। फिर, सारंगा विवाहिता थी और सदाबिरिछ अविवाहित था। अन्त में; अनेक

---

१. दे० म० लो० सा०, पृ० १६२–१७०।

२. दे० वही, पृ० १४४–१५३।

३. दे० वही, पृ० १५४–२६१।

विघ्न-बाधाओं के बाद दोनों प्रेमियों का मिलन होता है। इस गाथा में दोनों के प्रेम, प्रेम-पथ की बाधाओं एवं अन्तिम मिलन का अति मर्मस्पर्शी चित्रण हुआ है।

राजा ढोलन—इस गाथा के नायक राजा ढोलन का विवाह बाल्यकाल में ही 'मोरबा' नामक एक कन्या से हुआ था। पर, अनेक बाधाओं के कारण चिरकाल तक दोनों का मिलन न हो सका। बचपन में विवाह होने के कारण इन लोगों को इसकी जानकारी तक न थी। बड़े होने पर जब दोनों को पता चला, तब मिलन के लिए प्रयत्न करने लगे। अन्त मे, ढोलन ने मार्ग की सारी कठिनाइयाँ एवं बाधाएँ नष्ट कर दीं। उसने अपनी पत्नी का द्विरागमन कराया। यह सारी गाथा प्रेम और विरह से परिप्लावित है।

३. रोमांचकथात्मक वर्ग मे वे लोकगाथाएँ आती हैं, जिनमें रोमांचकारी घटनाएँ भरी पड़ी हैं। इसमें दो मगही गाथाएँ आती हैं।

सती बिहुला—इसकी नायिका 'सती बिहुला' है, जिसके सतीत्व की महत्ता सम्पूर्ण गाथा मे प्रतिपादित की गई है। इसका सतीत्व उसी श्रेणी का है, जिस श्रेणी का सती सावित्री का। अपने सतीत्व के बल से वह अनेक अलौकिक कृत्य सम्पादित करती है। यथा—पत्थर के चावल से साधारण भात बना देती है; पत्थर की मछली की साधारण गुड़ियाएँ कर और उन्हें पकाकर खिला देती है। वह अलौकिक शक्ति-सम्पन्न देवी है, जो अपने पति बाला लखीन्दर को सर्पदंश से मृत्यु के बाद, सदेह स्वर्ग जाकर जीवित लौटा लाती है। सम्पूर्ण गाथा रोमांचकारी घटनाओं से पूर्ण है।

इस गाथा का सम्बन्ध बंगाल के 'मनसा'-सम्प्रदाय से माना जाता है। बंगाल में 'बिहुला देवी' की पूजा का व्यापक प्रचार भी है। मगध-क्षेत्र में प्रायः नागपंचमी के दिन बिहुला की गाथा गाई जा है। जनविश्वास है कि इस दिन इस गाथा को सर्प भी बड़े अनुराग से सुनते हैं। इसे समय गाते यदि सर्प दिखाई पड़ जाता है, तो उसे श्रोता समझकर मारा नहीं जाता।

सोरठी—'सोरठी' इस गाथा की नायिका है और 'बिरिजभार' नायक। सोरठी का जन्म एक राजा के घर मे होता है, पर एक द्वेषी ब्राह्मण की सलाह से उसका पिता उसे एक काठ की पेटी में बन्द कर गंगा मे बहा देता है। एक कुम्हार 'सोरठी' को नदी से छानता और फिर पालता है। इसकी अलौकिक कृपा से गरीब कुम्हार राजा हो जाता है। बाद मे घटनाचक्र में पड़कर वह अपने वास्तविक पिता के यहाँ पहुँचती है, जहाँ गोरखनाथ के शिष्य 'बिरिजभार' से उसका प्रेम हो जाता है। बिरिजभार अनेक साधना और तपस्या के बाद गुरु गोरखनाथ की कृपा से उसे पाता है। अन्त में, दोनो का विवाह हो जाता है।

इस गाथा के दोनों नायिका-नायक दिव्य एवं अलौकिक शक्तिसम्पन्न हैं। सारी कथा रोमांचकारी घटनाओं से पूर्ण है। यथा—सोरठी के स्पर्श से काठ के सन्दूक का स्वर्ण-मंजूषा में परिणत होना, बिरिजभार (बृजभार) का कई बार मृत्यु के बाद जीवित होना; अनेक पात्र-पत्रियों का सदेह स्वर्ग आना-जाना, इन्द्र से मिलन, अप्सराओं का धरती पर आगमन आदि।

४. योगात्मक वर्ग में वे गाथाएँ आती हैं, जिनमे योग एवं वैराग्य की कथाएँ वर्णित होती हैं। मगही में ऐसी दो गाथाएँ मिलती हैं—

राजा भरथरी—ये ही इस गाथा के नायक हैं। इनकी गणना नवनाथों में होती है। इनका सम्बन्ध उज्जैन के राजवंश से था। इनकी पत्नी का नाम सामदेई था और बहन का नाम मैनावती। मैनावती, गोपीचन्द की माता मानी जाती है। इस प्रकार, गोपीचन्द राजा भरथरी के भाँजे ठहरते हैं। भरथरी ने गुरु गोरखनाथ का शिष्यत्व ग्रहण कर, राज्य का परित्याग किया था।

इनकी गाथा में प्रधानतः भरथरी और रानी सामदेई की कथा वर्णित है। गुरु के आदेश पर भरथरी अपनी पत्नी सामदेई को 'माँ' कहकर भिक्षा माँगते हैं। इस समय का दोनों का संवाद बड़ा मर्मस्पर्शी है। इस गाथा में नाथ-धर्म के व्यावहारिक पक्ष की बड़ी सुन्दर व्यंजना हुई है।

राजा गोपीचन्द—ये भी नवनाथों मे एक हैं। इनकी गाथा मे इनके वैराग्य का मर्मस्पर्शी वर्णन हुआ है।[1]

५. अलौकिक कथातत्त्व प्रधान लोकगाथाओं में एक ही मगही-गाथा का पता चल सका है—

नेटुआ दयालसिंह—इसके नायक दयालसिंह नेटुआ जाति के थे। ये देवी के बड़े भक्त थे। इससे इनमें अलौकिक शक्ति आ गई थी। इनका अपना मकान 'भड़ोरा' था, पर विवाह बचपन मे ही 'बखरी' शहर मे हो गया था। युवक होने पर ये अपनी पत्नी 'धनिया' की विदाई कराने गये। मार्ग में अनेक बाधाएँ आईं। बखरी शहर मे तो इन्हें 'जादू' के युद्ध का मुकाबला करना पड़ा। पर, देवी का इष्ट होने से सर्वत्र इन्हें विजय प्राप्त हुई। अन्त मे, ये अपनी पत्नी को विदा कराकर ले आये।

इस सम्पूर्ण गाथा मे अलौकिक तत्त्वों का समावेश है।

(आ) मगही लोकगाथाओं का अध्ययन

१. लोरकाइन[2]

'लोरकाइन' अहीरों का जातीय काव्य है और 'लोरिक' जातीय नायक, इसलिए न केवल मगध-क्षेत्र में, अपितु उत्तरी भारत के अनेक क्षेत्रों में इसे अपने यहाँ के मांगलिक एवं शुभ संस्कारों के अवसर पर बड़े प्रेम, उत्साह एवं श्रद्धा से अहीर लोग गाते हैं। इस सम्पूर्ण काव्य में लोरिक के उदात्त एवं उत्साहवर्धक चरित्र एवं जीवन-गाथा का वर्णन है। राम की गाथा 'रामायण' के ही अनुकरण पर इस काव्य का नाम 'लोरकाइन' रखा गया है। भोजपुरी में इस काव्य की संज्ञा 'लोरिकी' या 'लोरिकायन' है।

---

१. दे० म० लो० सा०, पृ० २३६–२४४।

२. दे०– मगही लो० सा०, पृ० २००–२३८।

'लोरकाइन, के कई प्रतिरूप मगध-क्षेत्र में मिलते हैं। पर, इनमे एक प्रतिरूप को ही विस्तार से लिपिबद्ध करने का अवसर मुझे मिल सका है। इसपर इसके गायक का कहना था कि वह अति संक्षेप मे लिखा रहा है। इसके सम्बन्ध में यह उक्ति प्रचलित है-- 'सात काड रमायन अनगिनत काड लोरकाइन।' इस काव्य में' लोरिक' के तीन विवाहों का उल्लेख है—१. लोरिक का विवाह मंजरी से, २. लोरिक का विवाह लुढकी से और ३. लोरिक का विवाह चॅंदवा से। लोरिक का छोटा भाई 'सामर' है। इसके एक ही विवाह का उल्लेख है--सामर का विवाह सती मनायन से।

सम्पूर्ण काव्य में वर्णित लोरिक के इन चार विवाहो मे केवल दो विवाहों को ही प्रधानता दी गई है-१. लोरिक का विवाह मंजरी से और २. लोरिक का विवाह चॅंदवा से।

दोनो पात्रियो का इस काव्य में वहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। लोरिक के साथ ही ये भी कथा के केन्द्र में स्थित हैं, जिनके चतुर्दिक् कथावस्तु का ताना-बाना बुना जाता है। मंजरी और चँदवा से विवाह के क्रम मे लोरिक को अनेक संघर्ष और युद्ध करने पड़ते हैं। यथा—

१. मंजरी से विवाह के लिए बरात ले जाते समय पथ मे धोबी के घर से राजा के कपडे प्राप्त करने मे संघर्ष।

२. इसी बरात में सोने-चाँदी का लचका, दौरा, नेयार आदि प्राप्त करने मे 'माहुरी' की लौटती बरात से संघर्ष।

३. मंजरी से विवाह के बाद विवाह-मण्डप में अगोड़ो के वीरों से लोरिक का युद्ध और विजय।

४. चँदवा के साथ 'हरदी बजार' भागने के पथ मे नदी के तीर पर हरचन्दवा मल्लाह से लोरिक का युद्ध और विजय।

५. चँदवा के साथ भागने के क्रम में जंगल में कोल-भीलों से लोरिक का युद्ध और विजय।

६. 'हरदी वजार' के राजा के यहाँ नौकरी करने पर 'जमुनीघाट' के तहसीलदार के रूप में वीर रैयतों से लोरिक का युद्ध और विजय।

इसके बाद लोरिक को पाली-पीपरी के कोलों से भयकर युद्ध करना पड़ता है। इस युद्ध का मूल कारण लोरिक का विवाह नहीं है, बल्कि भाई 'सामर' की मृत्यु का प्रतिशोध और गो-रक्षण है। इसमें भी अन्तिम विजय लोरिक की होती है।

स्पष्टतः, यह गाथा वीरकथात्मक है, यद्यपि इसमें प्रेमतत्त्व का भी बाहुल्य है।

'लोरकाइन' की कथावस्तु से परिचय के लिए इसका संक्षिप्त हिन्दी-रूपान्तर देना अपेक्षित है[1]—

---

१. दे०—म० लो० सा०, पृ० १००-१३८।

एक दिन खुलनी बुढ़िया ने अपने पति बूढ़े कुब्जा सरदार से कहा-- 'हमारे पुत्र लोरिक और सामर युवक हो गये हैं, अब इनका कहीं विवाह होना चाहिए।' बूढ़े कुब्जा सरदार ने इस आशय का पत्र बच्चों के गुरु 'मितराजल' के पास खैरना हजाम के द्वारा भेजा। गुरु ने उत्तर दिया-- 'देवी-कृपा से सब हो जायगा।'

समय आया। अबोडी ग्राम के हजाम और ब्राह्मण आकर मंजरी से लोरिक का विवाह तय कर गये। विवाह का दिन भी आ पहुँचा, पर प्रश्न था कि गरीब लोरिक धनाभाव मे राजा की बेटी से विवाह कैसे करे ? गुरु ने आश्वासन दिया-- 'देवी की कृपा से सब ठीक हो जायगा।' निश्चित समय पर बरात चली। राह में संघर्ष करके लोरिक एवं उसके गुरु ने धोबी से राजा के कपडे प्राप्त किये एव माहुरी की बरात से सोने-चाँदी का लचका एवं अन्य सामान। शान-शौकत से बरात अबोड़ी ग्राम पहुँची और मंजरी से लोरिक का विवाह हो गया। मण्डप में यहाँ के चुने वीर लोरिक से युद्ध करने आये, पर सब पराजित होकर लौट गये।

लोरिक, मंजरी एवं धन-दौलत के साथ गौरा (गउरा) गुजरात (अपने ग्राम) पहुँचा। बाजे की आवाज सुनकर चँदवा, जो लोरिक के रूप पर मुग्ध थी, विह्वल हो उठी। वह, अपनी दासी की सलाह पर, हीरा-मोती लेकर लोरिक के घर चुमावन करने पहुँची। उसने चुमावन में लोरिक की पुटपुरी एवं गाल दबा दिये, जिससे लोरिक उसकी ओर आकृष्ट हो गया। धन-दौलत लुटाती हुई चँदवा घर चली गई। लोरिक को अपनी माता से मालूम हुआ कि वह (चँदवा) गौरा-गुजरात के राजा सहदेव की पुत्री है।

खुलनी अपने पुत्रों को रोज टेहडी-भर दूध पिलाती थी। फिर, वे दोनों गुरु के यहाँ कसरत के लिए जाया करते थे। वहाँ भी भर टेहड़ी दूध पीते थे। फिर लौटते थे। राह में किसी भाँति आकृष्ट करके चँदवा ने लोरिक को अपने घर बुलाया और प्रेम-प्रस्ताव किया। लोरिक ने कहा--'तुम मलसौधरा की पत्नी हो। फिर, ऐसी बात क्यों करती हो ?' चँदवा ने कहा-- 'वह नपुंसक है। मैंने तो तुम्हे ही वरा था।' अन्त में, लोरिक उसके प्रेम-पाश मे आबद्ध हो गया। चँदवा के आग्रह पर वह चँदवा के साथ हरदीबजार भागने पर राजी भी हो गया। इधर मंजरी और उसकी बहन लुढ़की (इसने भी लोरिक को पति मान लिया था) तथा खुलनी को सारी बातें मालूम हो गईं। इन लोगों ने रात में पूरी पहरेदारी की। पर, देवी की कृपा से इन्हें ऐसी नींद आ गई कि लोरिक को भागने में कठिनाई नहीं हुई। वह चँदवा के साथ देवीथान पहुँचा, फिर वहाँ से हरदीबजार के लिए चल पड़ा। राह में लोरिक का मल्लाह और भीलों से युद्ध हुआ, पर सबको पराजित कर वह हरदीबजार पहुँच गया।

× × ×

हरदीबजार में छटट्टू साव ने लोरिक को धर्मपुत्र एवं चँदवा को पतोहू बनाकर अपने घर रख लिया। वहाँ के राजा ने लोरिक को जमुनीघाट का तहसीलदार बना दिया, जहाँ से उसने युद्ध करके पूरा तहसील लाना आरम्भ कर दिया। राजा इससे बड़ा प्रसन्न रहने लगा।

इधर गौरा में हाहाकार मच गया। राजा सहदेव ने लोरिक के परिवार पर अनेक अत्याचार करने आरम्भ किये। कुछ दिनों बाद सामर, सींगवाली एक लाख गाय लेकर पाली-पिपरी चराने चला। बिरना बैल एवं कागा बादरिल भी साथ थे। इन्होंने अशुभ संकेत पाकर सामर को वहाँ जाने से मना किया। पर वह न माना। अन्त में, उसने बिरना बैल और कागा बादरिल को सत के बन्धन मे यह कहकर बाँध दिया कि वे मंजरी के याद करने पर मुक्त होंगे। फिर, पाली-पिपरी में गौओं के साथ चला गया, जहाँ कोलों के द्वारा वह लड़ता हुआ मारा गया। कोलों ने गौओं को जब्त कर लिया। सभी गौओं ने दूध की धार मे बहा कर सामर को बोह-बथान पहुँचा दिया, जहाँ उसकी पत्नी सती मनायन ने उसे छाना। फिर, वह पति के साथ सती हो गई। यह समाचार गौरा में पहुँचा, तो हाहाकार मच गया। राजा सहदेव ने आदेश जारी कर दिया कि यह खबर हरदीबजार लोरिक के पास नहीं पहुँचाई जाय। अन्त में, मंजरी के याद करने पर सत के बन्धन से खुलकर बिरना बैल और कागा बादरिल आये। कागा बादरिल मंजरी का पत्र लेकर उड़कर हरदीबजार पहुँचा। उसने लोरिक को मंजरी का पत्र दिया। रोता हुआ लोरिक चँदवा एवं उससे उत्पन्न पुत्र चन्द्राजीत को लेकर छद्म वेष में गौरा पहुँचा।

उसने मंजरी के सतीत्व की परीक्षा ली। फिर, अपना रहस्य प्रकट कर दिया। मंजरी ने चँदवा का ऐसा स्वागत किया, जैसे सगी बहन हो। फिर, चँदवा के पिता ने भी लोरिक को दामाद के रूप में स्वीकृत कर धूमधाम से चँदवा का उससे विवाह कर दिया। इसके बाद गुरु की आज्ञा लेकर संगठित सेना के साथ लोरिक पाली-पिपरी पहुँचा। वहाँ उसने कोलों को नीति एवं वीरता से पराजित करके अपनी लाखों गायों को मुक्त किया। फिर, शान से अपने ग्राम लौट आया। अब लोरिक गौरा एवं पाली-पिपरी का राजा बनकर सुखपूर्वक अपने परिवार के साथ दिन व्यतीत करने लगा।

पात्र

लोरकाइन में निम्नांकित पात्र-पात्रियों के नाम आते हैं—

पुरुष-पात्र

१. लोरिक — लोकगाथा का नायक।

२. बूढ़ा कुब्जा सरदार — लोरिक का पिता।

३. सामर — लोरिक का छोटा भाई।

४. मितराजल — लोरिक का गुरु।

५. खैरना और बुधुआ — लोरिक के दो हजाम, जिनका वर्णन मंजरी से विवाह के प्रसंग में आता है।

६. धुरा नन्दुआ — मंजरी का भाई, जो मारा जाता है।

७. राजा सहदेव — गौरा-गुजरात का राजा और चँदवा का पिता।

८. मलसौधरा	—	चँदवा का पहला पति, जो नपुंसक था और जिसे छोड़-कर चँदवा ने लोरिक से विवाह किया।
९. हरचँदवा	—	मल्लाह, जिसे मारकर लोरिक ने 'हरदीबजार' जाते समय नदी को पार किया।
१०. कोल-भील	—	जगली लोग, जिन्हे मारकर लोरिक ने जंगल पार किया था।
११. छट्टू साव बनिया	—	हरदीबजार मे इसने लोरिक और चँदवा को धर्मपुत्र एवं पुत्रवधू के रूप में अपने घर मे शरण दी।
१२. चँदराजीत	—	लोरिक और चँदवा का पुत्र, जो 'हरदीबजार' के निवासकाल में उत्पन्न हुआ था।
१३. कोल लोग	—	पाली-पिपरी-वन के स्वामी, जिन्होंने सामर को मार-कर सींगवाली लाख गायों को बाँध लिया था। अन्त मे, इन्हें मारकर लोरिक ने गायों को मुक्त किया। इनमें अनेक ने लोरिक की दासता स्वीकार की।

स्त्री-पात्र

१. खुलनी बूढ़ी	—	लोरिक और सामर की माँ।
२. मंजरी	—	लोरिक की प्रथम विवाहिता पत्नी।
३. लुढ़की	—	मंजरी की बहन, जिसने लोरिक को पति-रूप मे स्वीकार करके पुनः विवाह किया।
४. चँदवा	—	लोरिक की प्रेमिका और बाद में पत्नी।
५. सती मनायन	—	सामर की पत्नी।
६. चँदवा	—	इसका नाम नहीं आया है। परन्तु, इसके कृत्यों का वर्णन गाथा में हुआ है।
७. कोलो की माँ	—	इसकी अंगुली मे अमृत था। इसे लोरिक ने मारा था।

देव-पात्र

१. देवी माता

पशु-पक्षी पात्र के रूप में

१. बिरना बैल	—	एक बैल, जिसने सामर की मृत्यु की पूर्वसूचना पाकर, उसे पाली-पिपरी जाने से रोका था। इस क्रोध में सामर ने उसे 'सत' के बन्धन मे बाँध दिया था। मंजरी की याद पर वह मुक्त हुआ था।

२. कागा बादरिल — एक पक्षी, जिसे सामर की मृत्यु की पूर्वसूचना मिल गई थी। इसके मना करने पर सामर ने इसे 'सत' के बन्धन में बाँध दिया था। मंजरी के याद करने पर यह इस बन्धन से मुक्त हुआ। यही 'हरदीबजार' में लोरिक के पास मंजरी का पत्र ले गया था। इसके बाद लोरिक, चँदवा और चॅदराजीत के साथ लौटा। कागा बादरिल ने इस प्रसग में पर्याप्त चतुराई दिखाई है।

३. सिंगा लाख गाय — सींगवाली लाखो गायो ने, जो 'नट्ठा' (कुमारी) और 'लगहर' (दूध देनेवाली) दोनो प्रकार की थीं, सामर की मृत्यु पर अपने स्तन से स्वयं दूध की धार बहाई। इसी मे बहकर सामर की लाश 'बोह-बथान' पहुँची, जहाँ उसकी पत्नी सती मनायन रहती थी।

इस लोकगाथा के सभी पात्र सजीव एव विशिष्ट व्यक्तित्व-सम्पन्न दिखाई पड़ते हैं। पात्रों के दो वर्ग हैं—पहला सत्य का पक्ष ग्रहण करता दिखाई पड़ता है एवं दूसरा असत्य का पक्ष ग्रहण करता दिखाई देता है। गाथा के अन्त तक असत्य का पक्ष ग्रहण करनेवाले सभी पात्र या तो मारे जाते हैं या सत्य का पक्ष ग्रहण करते देखे जाते हैं।

इसमें अनेक प्रकार के पात्रों के दर्शन होते हैं। आदर्श माता-पिता, आदर्श सतियाँ, आदर्श प्रेमिका, प्राण न्योछावर करनेवाला भाई, सच्चा पथ-प्रदर्शक गुरु, वीरता का मूर्त्तिमान् रूप नायक एवं सहानुभूति एवं सहायता करनेवाले सामान्य जन आदि सभी सुन्दर रूपों मे अपने कृत्यो का सम्पादन करते दिखाई पडते हैं।

जो अमानव चरित्र हैं, वे भी सत्य एवं आदर्श का पक्ष ग्रहण करते दिखाई पड़ते हैं। इनके चरित्रों की भी लोककवि ने सफल एवं भावपूर्ण व्यजना की है।

विविध जातियाँ

इस काव्य मे निम्नांकित जातियों का उल्लेख हुआ है—

१. धोबी — गुरु मितराजल।

२. अहीर — लोरिक, माँजर, राजा सहदेव, चँदवा आदि।

३. नाऊ — खैरना, बुधुआ।

४. ब्राह्मण — लोरिक के छेका एवं विवाहादि का कार्य सम्पन्न कराते हैं।

५. माहुरी बनिया — इसकी लौटती बरात से सोना-चाँदी का लचका, दौरा आदि लोरिक तथा गुरु मितराजल प्राप्त करते हैं।

६. बनिया — छट्टू साव, जो हरदीबजार में लोरिक और चँदवा को शरण देते हैं।

७. मल्लाह — हरचँदवा, जो राजा सहदेव के राज्य की नदी का रखवाला है और लोरिक द्वारा मारा जाता है।

८. कोल-भील — ये आदिवासी जातियो के प्रतिनिधि है। इनका राज्य जगलो मे है। लोरिक से युद्ध मे ये पराजित होते हैं।

स्पष्ट है कि इसके अधिकांश पात्र पिछड़ी जाति के हैं। उनमे से अधिकांश मे अपूर्व वीरता, बुद्धि-कौशल, सहृदयता आदि उदात्त गुण भरे हैं। इसी कारण 'लोरकाइन' के श्रोता सभी जाति एवं वर्गों के लोग होते हैं।

स्थान

इस गाथा में निम्नांकित स्थानों के उल्लेख हुए है—

१. गौरा-गुजरात — यहाँ लोरिक का मकान है। इस ग्राम का राजा सहदेव है।

२. गइया-बथान — यहॉ बार-बार खुठनी जाती है और टेहड़ी-भर दूध लाकर दोनो पुत्रो को पिलाती है।

३. अघोडी — मंजरी का नैहर।

४. अखाड़ा — यह गौरा-गुजरात में ही है। इसके स्वामी गुरु मित-राजल हैं। यहॉ इनके ही शिष्यत्व मे लोरिक और सामर कसरत, युद्ध-विद्या आदि सीखते हैं।

५. देवीथान — यह 'देवीपीठ' है। यहॉ देवी, सात बहनो के साथ निवास करती हैं। लोरिक तथा चॅदवा पर इनकी कृपा है। इसी स्थान पर एकत्र हो, लोरिक-चॅदवा हरदीबजार भागते हैं। सभी कार्यों मे देवी की कृपा से ही लोरिक को सफलता मिलती है।

६. बोह-बथान — यहीं सामर की पत्नी रहती है।

७. हरदीबजार — यह स्थान दूसरे राजा के राज्य में पड़ता है। यहीं लोरिक-चॅदवा भागकर शरण लेते हैं।

८. जमुनीघाट — हरदीबजार का राजा, जमुनीघाट के नये तहसीलदार के रूप मे लोरिक को बहाल करता है।

९. नदी और जंगल — 'हरदीबजार' पहुँचने के पथ में पड़ते हैं।

१०. पाली-पिपरी — यहॉ कोलो का राज्य है। यहाँ सामर मारा जाता है। अन्त मे, लोरिक कोलों को पराजित कर इस राज्य को अपने राज्य गौरा-गुजरात मे मिला लेता है।

मगही 'लोरकाइन' से अन्य भाषाओं के 'लोरकाइन' में अन्तर

कहा जा चुका है कि मगही में लोरकाइन के कई प्रतिरूप तो मिलते ही हैं, अन्य भाषाओं में भी इसके कई प्रतिरूप उपलब्ध हैं। इनमे मूल कथावस्तु की समानता होने पर भी कथा के विस्तार मे अन्तर है। यथा—मगही मे 'सामर' लोरिक का छोटा भाई है, पर भोजपुरी[1] मे 'सँवरू' उसका बड़ा भाई है। भोजपुरी 'लोरिकी' मे सँवरू के विवाह के निमित्त जो युद्ध हुआ, वही प्रथम खण्ड मे वर्णित है। पर, मगही 'लोरकाइन' मे सॅवरू के विवाह का विस्तार नहीं वर्णित हुआ है। इसी प्रकार, भोजपुरी 'लोरिकी' में 'लोरिक' और 'जमुनी' के विवाह का प्रसंग आता है, जब कि मगही मे इस विवाह का वर्णन ही नहीं हुआ है। उसमें मंजरी की बहन 'लुढ़की' लोरिक की पत्नी के रूप में आती है।

पर, 'लोरकाइन' के दो खण्ड 'लोरिक-मंजरी का विवाह' और 'लोरिक-चँदवा का विवाह' मगही के साथ ही अन्य भाषाओं मे भी अवश्य वर्त्तमान हैं, यद्यपि नामों की एकता होने पर भी मुख्य कथा-भाग एव घटनाओं मे अन्तर है।

अब तुलनात्मक अध्ययन के लिए दोनों खण्डों की कथावस्तु को प्रस्तुत किया जाता है—

१. लोरिक-मंजरी के विवाह की संक्षिप्त कथा

मगही—लोरिक की माँ खुलनी अपने पुत्र के परिपुष्ट यौवन को देखकर सोच में पड़ी थी कि हमारी गरीबी के कारण कोई हमारे घर लोरिक से विवाह का प्रस्ताव लेकर नहीं आता। पर, अन्त मे, एक दिन अघोड़ी ग्राम से नाऊ-ब्राह्मण आये। उन्होंने लोरिक के रूप और शौर्य पर मुग्ध होकर 'अघोड़ी' की राजकुमारी मंजरी से उसका विवाह पक्का कर दिया। विवाह की तिथि माघ की श्रीपन्चमी को पड़ी। निश्चित दिन लोरिक अपने गुरु, पिता एवं अन्य कुछ बरातियों को लेकर विना सामान के ही विवाह के लिए चल पड़ा। पर, राह में उसने अपने शौर्य के बल पर धोबी से राजा के कपड़े पा लिये; माहुरी की लौटती वरात से अन्य राजसी सामान पा लिये। इसके बाद वह अघोड़ी ग्राम राजसी ठाट से पहुँचा। वहाँ मंजरी से उसका विवाह हो गया। वहाँ के चुने वीर लोरिक से मण्डप मे ही लड़ने आये, पर सभी मारे गये। इसके बाद दान-दहेज के साथ मंजरी को लेकर लोरिक गौरा-गुजरात पहुँचा। चुमावन के लिए अनेक स्त्रियों के अतिरिक्त गौरा-गुजरात के राजा सहदेव की बेटी चॅदवा खोंयछे मे धन-दौलत लेकर पहुँची। वह लोरिक के रूप पर मुग्ध थी। उसने चुमाते समय लोरिक के गाल जोर से दबा दिये। इसपर लोरिक क्रुद्ध हुआ। पर, वह क्रोध का जवाब मुस्कराहट से देती और धन-दौलत बिखेरती अपने घर चली गई। यहीं से लोरिक का ध्यान चँदवा की ओर आकृष्ट हुआ या यों कहें कि दोनों के प्रेम का बीज-वपन हुआ।

---

१. भोज० लो० गा०, पृ० ७१।

भोजपुरी[1]—अगोरी का राजा मलयगित दुसाध जाति का था। वह राज्य की सभी सुन्दरी कन्याओ का राजमहल मे पालन-पोषण कराता था और अन्त मे उन्हें रानी बनाता था। इसी नगर के मेहरा नामक सज्जन ने अपनी कन्या मजरी को किसी प्रकार राजा की नजर से बचा लिया। बड़ी होने पर अपने पिता को अपने विवाह की चिन्ता मे ग्रस्त देखकर वह दुःख से आत्महत्या करने के लिए गंगा मे कूद पडी। देवताओं की कृपा से वह बच गई और उसे पता चला कि उसका विवाह गौरा-गुजरात में लोरिक से होगा। पर, गौरा के राजा शाहदेव अपनी कन्या चँदवा से लोरिक का विवाह करना चाहते थे। फलतः, सबके बीच पर्याप्त संघर्ष चला। इसी बीच चँदवा भी लोरिक पर मोहित हो गई। किसी तरह लोगों ने मंजरी से उसका विवाह रोककर चँदवा से कराना चाहा, पर न हो सका। राजा शाहदेव ने बहुत बदला लिया, इधर अगोरी का राजा मलयगित खिलाफ था ही। पर, सभी संघर्षों के बीच मंजरी का लोरिक से विवाह हुआ और वह उसे अपने घर ले आया।

मिर्जापुरी[2]—सोन नदी के किनारे अगोरी नाम के किले में एक दुष्ट राजा राज्य करता था। उसकी दासियो में एक मंजरी भी थी। यह लोरिक से प्रेम करती थी। जब मंजरी को लोरिक और उसके बडे भाई सँवरू राजा से माँगने गये, तब उसने क्रोध प्रदर्शित किया। अन्त में राजा को मारकर लोरिक मंजरी को गौरा ले गया।

बँगला[3]—बंगाल मे इस गाथा का भिन्न रूप है। यहाँ यह गाथा 'लोर-मयनावती' के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ सती मंजरी का नाम 'सती-मयनावती' है। गोहारी देश का राजा या राजपुत्र 'लोर' नाम से प्रसिद्ध है। उसके साथ 'मयनावती' का विवाह होता है। पर, बाद में 'लोर' का प्रेम 'चन्द्राली' के प्रति हो जाता है।

उपर्युक्त विवरणों से 'लोरिक-मंजरी के विवाह' के सम्बन्ध मे विविध भाषाओं में प्राप्त कथानको मे स्पष्ट अन्तर दिखाई पड़ता है।

२. लोरिक-चँदवा के विवाह की संक्षिप्त कथा

मगही—चुमावन की क्रिया में ही चँदवा ने लोरिक का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लिया था। अब चँदवा के आमन्त्रण पर लोरिक उसके महल मे छिपकर पहुँचा। चँदवा ने विवाह का प्रस्ताव किया। लोरिक ने कहा—'तुम मलसौंधरा की पत्नी होकर मुझसे कैसे विवाह करोगी?' पर, चँदवा ने कहा—'मैंने तुम्हें ही वरा था। वह तो नपुंसक है। उससे मेरा जबरदस्ती विवाह कर दिया गया है।' क्रमशः चँदवा और लोरिक का प्रेम बढ़ चला। दोनों देवी के भक्त थे, अतः हमेशा देवी इनकी सहायता करती थी। दोनों देवी की सहायता से भागकर हरदीबजार पहुँचे। वहाँ लोरिक ने राजा के यहाँ नौकरी कर ली। इधर चँदवा के पिता ने लोरिक के परिवार पर बड़े-बड़े अत्याचार किये। ये लोग बड़े गरीब हो गये। पाली-पिपरी के जंगल में

१, भोज० लो० गा०, पृ० ७२—७५।

२. डब्ल्यू क्रुक—एन इण्ट्रोडक्शन टु दि पापुलर रिलीज ऐण्ड फोकलोर ऑव नार्दर्न इण्डिया, पृ० २६२।

३. श्रीपरशुराम चतुर्वेदी : भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा; पृ० ६२ से ६८।

सामर मारा गया। कोलो ने गौओं को जब्त कर लिया। पर, इन सब घटनाओं की सूचना को राजा सहदेव ने लोरिक तक नहीं पहुँचने दिया। अन्त में, कागा बादरिल नामक पक्षी के द्वारा मंजरी ने सारे समाचार लोरिक तक पहुँचवाये। लोरिक-चँदवा और उसके पुत्र चँदराजीत गौरा लौट आये।

लोरिक की धमकी से राजा सहदेव बड़ा भयभीत हुआ। अन्त में, उसने चँदवा का विवाह लोरिक से विधिवत् कर दिया और गौरा का सारा राज्य भी दे दिया। मंजरी और चँदवा सगी बहनो की तरह लोरिक के साथ रहने लगीं।

भोजपुरी[1]—राजा शाहदेव ने लोरिक से निराश होकर चनवा का विवाह बंगाल के सिलहट नगर मे कर दिया। पर, चनवा का मन वहाँ न लगा। वह भागकर गौरा के समीप एक जँगल में पहुँची, तो बाठवा चमार ने उसे पत्नी बनाना चाहा। पर, वह वहाँ से निकल भागी। इस चमार ने गौरा-निवासियों से इसका बदला लेना शुरू किया, लेकिन लोरिक ने उसे मार भगाया। चारों ओर लोरिक का यशोगान होने लगा।

चनवा ने किसी प्रकार लोरिक को महल में बुला लिया। दोनों ने विहार किया। जाते समय लोरिक की चादर चनवा से बदल गई। किसी तरह मितराजल धोबी की पत्नी धोबिन ने उसकी प्रतिष्ठा बचाई। इसके बाद दोनों भागकर हरदीबजार पहुँचे। यहाँ सम्मानपूर्वक सेठ महीचन्द के यहाँ रहने लगे। इस बीच लोरिक को अनेक लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं। सभी जगह वह विजयी हुआ। अन्त मे, लोरिक हरदी का राजा हो गया। फिर, कुछ दिनों के बाद उसका मिलन मंजरी से हुआ। फिर चनवा, मंजरी और लोरिक सुख से रहने लगे।

मैथिली[2]—मैथिली-प्रदेश में लोरिक और हरवा-बरवा दुसाध के युद्ध की गाथा अधिक प्रचलित है। इसी गाथा मे मंजरी का त्याग, चनैनी (चँदवा) के साथ हरदी भागने, हरदी के राजा के साथ युद्ध और मित्रता करने आदि का भी वर्णन है।

छत्तीसगढ़ी[3]—लोरिकी के छत्तीसगढ़ी रूप में लोरिक तथा चनवा की गाथा अधिक प्रसिद्ध है। यहाँ इस गाथा की संज्ञा 'लोरि कचनैनी' या 'चनैनी' है। गाथा इस प्रकार है—

लोरिक, मंजरी के साथ गौरा मे रहता है। चनैनी पितागृह से पति वीरबावन के साथ पतिगृह जा रही है। राह में भटुआ चमार चनैनी को पत्नी बनाना चाहता है, पर लोरिक चनैनी को बचाता है। अब लोरिक और चनैनी एक दूसरे पर मोहित हो जाते हैं। क्रमशः दोनों की घनिष्ठता बढ़ती है। वे लोग 'हरदी' भाग जाते हैं। मार्ग में अनेक युद्ध होते हैं। सर्वत्र लोरिक विजयी होता है। वह चनैनी के साथ हरदीगढ़ में

---

१. भो० लो० गा०, पृ० ७५—७८।

२. यूनिवर्सिटी ऑव इलाहाबाद स्टडीज (अँगरेजी भाग): इण्ट्रोडक्शन टु दि फोक लिटरेचर ऑव मिथिला पार्ट, पोयट्री, पृ० २२।

३. वैरियर एल्विन : फोकसॉंग्स ऑव छत्तीसगढ़, पृ० ३३८।

रहता है। इसी बीच उसे गौरा मे अपने घर के दुःख-दारिद्र्य का पता चलता है। वह चनैनी के साथ गौरा लौट आता है। यहाँ मंजरी और चनैनी मे गृह-कलह होता है। फलस्वरूप, लोरिक सर्वदा के लिए सबको छोड़कर कहीं चला जाता है।

बँगला[1]—धीरे-धीरे मयनावती (मंजरी) से प्रेम घटने पर लोर को मोहरा देश की एक सुन्दर राजकन्या चन्द्राली से अनुराग हो जाता है। चन्द्राली का विवाह नपुंसक बावनवीर के साथ हुआ है, जिसे युद्ध में लोर मार डालता है। अन्त में, चन्द्राली का पिता लोर और चन्द्राली का विवाह करा देता है और उन्हे अपना राज्य भी दे देता है। अन्त में, मयनावती की विरहगाथा और सतीत्व-रक्षा आदि की कहानी सुनकर लोर, चन्द्राली के साथ मयनावती के निकट आता है और सबके दिन सुख से कटने लगते हैं।

लोरिक-चँदवा के विवाह के प्रसंग मे भी विविध भाषाओं में उपलब्ध गाथाओं में अन्तर है। मूल नामों की एकता होने पर भी कथावस्तु के विन्यास मे भिन्नता दिखाई पड़ती है। ऐसा होना स्वाभाविक भी है। सभी गाथाएँ अपनी क्षेत्रीय विशेषताओं से समन्वित हैं। इस कारण उनमें पाठों की अनेकता एवं कथावस्तु के विस्तार में विविधता है।

अहीरों का देवता लारिक

लोरिक अहीरो के देवता के रूप में पूजित होता है। वे उसके 'गोरक्षक' रूप को अधिक प्रधानता देते हैं। इस गाथा की समाप्ति भी 'गोरक्षण' के कार्य से ही होती है।

गौओं के ऐसे उद्धार की परम्परा वैदिक युग से ही मिलती है। ऋग्वेद मे इन्द्र का सबसे बड़ा पराक्रम गायों का उद्धार ही बताया गया है। महाभारत के अनुसार, कौरवों ने विराट नगर के राजा की गायों को घेर लिया था, पर अर्जुन ने इनका उद्धार किया था। कृष्ण का गोरक्षक रूप तो सर्वस्वीकार्य है ही। इतिहास के साक्ष्य के अनुसार अनेक राजस्थानी वीर गोरक्षा के कारण देवत्व प्राप्त करते दीख पड़ते हैं। यथा—पाबूजी, तेजो, रामदेव आदि। अलीगढ़ जिले के गंगीरी कसबे में गंगीपन्थ का देवता 'मैकासुर' भी गो-रक्षक है। इस प्रकार, गोरक्षा एवं देवत्व मे बड़ा गहरा सम्बन्ध दिखाई पड़ता है।[2]

लोरिक के देवता-रूप में पूजित होने का भी यही रहस्य है।

२. गोपीचन्द

गोपीचन्द की लोकगाथा 'योगात्मक लोकगाथाओं' के अन्तर्गत आती है। इस

---

१. श्रीपरशुराम चतुर्वेदी : भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा, पृ० ६२ से ६८।

२. 'भारतीय साहित्य', वर्ष ५, अंक १, पृ० १३७, जनवरी, १९६० ई० में 'जाहरपीर गुरु गुग्गा' शीर्षक लेख, ले० डॉ० सत्येन्द्र।

गाथा के गायक 'जोगी जाति'[1] के लोग होते हैं, जो 'नाथ-सम्प्रदाय'[2] को मानकर चलते हैं, यद्यपि ये गाथाएँ सारे समाज में लोकप्रिय हैं। इसे गायक सारंगी पर गाते हैं। गोपीचन्द के नाम पर ही इस सारंगी का नामकरण 'गोपीचन्दी' हो गया है।

गोपीचन्द की गाथा का श्रोताओं पर वैसा ही मार्मिक प्रभाव पड़ता है, जैसा भरथरी की गाथा का। जोगियों का झुण्ड जब भरथरी और गोपीचन्द की गाथा गाता हुआ उपस्थित होता है, तब प्रायः उनके श्रोता अश्रुसिक्त हो उठते हैं।

राजा गोपीचन्द का स्थान नाथ-सम्प्रदाय की योगमार्गी शाखा में बड़ा महत्त्वपूर्ण है। इनकी माता मैनावती नवनाथों में प्रसिद्ध जालन्धरनाथ की शिष्या थीं। सम्भवतः, माता के ही आग्रह पर गोपीचन्द ने युवावस्था में वैराग्य ग्रहण किया था। इस सम्बन्ध में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं—'इतिहास में यह शायद अद्वितीय घटना है, जब माता ने पुत्र को स्वयं वैराग्य ग्रहण करने को उत्साहित किया है।[3]'

---

१. इस देश मे 'जोगी' नाम की एक अलग जाति ही है, जो हिन्दू-जाति के अन्तर्गत परिगणित होती है। ये लोग शिव को अपना ईश्वर और गुरु गोरखनाथ को अपना गुरु मानते हैं। जोगियों का अलग-अलग झुण्ड होता है। प्रत्येक झुण्ड का एक महन्त होता है, जिसकी आज्ञा लेकर यह भिक्षाटन करता है। जोगियों की वेशभूषा प्रायः भगवे रंग की होती हैं, पर ये वैराग्यप्रधान जीवन-यापन नही करते। गाँजा, चरस आदि का ये अनिवार्य रूप से सेवन करते हैं। इनके सम्बन्ध में डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं— "जोगी जाति का सम्बन्ध नाथपन्थ से है।........जोगी नामक आश्रमभ्रष्ट घर-बस्तियो की एक जाति सारे उत्तर और पूर्व भारत में फैली थी। ये नाथपन्थी थे। कपड़ा बुनकर और सूत कातकर या गोरखनाथ और भरथरी के नाम पर भीख माँगकर जीविका चलाया करते थे।"—कबीर, पृ० ११—१४।

श्री डब्ल्यू० क्रुक का विचार है—"जोगियों की जाति का सम्बन्ध नाथ-सम्प्रदाय से है। उत्तरी भारत के जोगी लोग गुरु गोरखनाथ को अपना गुरु मानते हैं।"

—डब्ल्यू० क्रुक : ट्राइब्स ऐण्ड कास्ट्स ऑव नार्थ वेस्ट प्राविन्सेज ऐण्ड अवध, वाल्यू० २, पृ० ५६।

२. नाथ-सम्प्रदाय में शिव को आदिनाथ माना गया है। इसीसे इसका नाम 'नाथ-सम्प्रदाय' पड़ा। 'इस नाम को लोकप्रिय बनाने का श्रेय गोरखनाथ को ही है।.. ....यह विश्वास किया जाता है कि आदिनाथ स्वयं शिव ही हैं और मूलतः समग्र नाथ-सम्प्रदाय शैव है।'

—नाथ-सम्प्रदाय : हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० १–३।

डॉ० रामकुमार वर्मा का मत है—'वस्तुतः' नाथ-सम्प्रदाय की बौद्धधर्म एवं शाक्तधर्म के बीच की स्थिति है, जिसे पातंजल के हठयोग से पुष्ट किया गया है।'

—हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० १५३।

उपर्युक्त मतों के अवलोकन के स्पष्ट है कि वस्तुतः नाथ-सम्प्रदाय शैवमत, शाक्तमत एवं बौद्धमत का निचोड है।

नाथ-सम्प्रदाय की परम्परा में नवनाथों की चर्चा की जाती है। इन नवनाथों में हमारे लोकगाथाओं के नायक भरथरी और गोपीचन्द भी आते हैं। ये दोनों जालन्धरनाथ तथा गोरखनाथ (इनकी गणना नवनाथों मे होती है) के शिष्य थे। भरथरी और गोपीचन्द की जीवन-गाथा बहुत आकर्षक है, यही कारण है कि जोगियों ने इनकी गाथाओं को विशेष रूप से अपनाया।

३. नाथ-सम्प्रदाय, पृ० १६८।

पर, गोपीचन्द की गाथा के मगही प्रतिरूप मे माता मैनावती सामान्य माताओं की भाँति मातृसुलभ कोमलता एवं भावुकता से ओतप्रोत दिखाई देती है। वे पुत्र को वैराग्य ग्रहण करने से रोकती हैं और न रुकने पर रोती हैं। गोपीचन्द के वैराग्य के समस्त प्रसंग बड़े कारुणिक हैं। करुण रस की जो सरिता राजा भरथरी की गाथा में बहती दिखाई देती है, वही गोपीचन्द की गाथा में। भरथरी की गाथा में भरथरी एवं उनकी पत्नी रानी रामदेई का कथोपकथन बड़ा मर्मस्पर्शी है और गोपीचन्द की गाथा में गोपीचन्द और उनकी माता एवं बहन का कथोपकथन।

गोपीचन्द की गाथा[1] के परिचय के लिए उसका सक्षिप्त हिन्दी-रूपान्तर प्रस्तुत किया जाता है—

राजा गोपीचन्द[2] गुदरी पहनकर, वैराग्य धारण कर बन की ओर चलने लगे। माँ मैनावती गुदरी पकड़कर खड़ी हो गई। उसने कहा—'बेटा, तुझे नौ महीने गर्भ में रखा। जन्म लेते ही तू मर जाता, तो मैं धीरज धरती।' गोपीचन्द ने कहा—'माँ समझ ले, कि तू जन्म की बाँझ है।' माँ ने कहा—'यह कैसे होगा ? तूने तो बसी-बसाई नगरी उजाड़ डाली। पहले मेरे दूध का दाम दे ले, तब फकीर होना।' गोपीचन्द ने कहा—'भला कौन जन्मा है, जो स्वर्ग के तारो को गिनेगा और कौन ऐसा पूत उत्पन्न हुआ है, जो माँ के दूध का मूल्य चुकायेगा।'

---

१. दे० म० लो० सा०, पृ० १३९—१४४।

२. तुलनात्मक अध्ययन के लिए अन्य भाषाओं की लोकगाथाओं मे उपलब्ध गोपीचन्द की कथा का सार निम्नांकित पंक्तियों में दिया जाता है—

क. भोजपुरी—(अ) इस गाथा में भी माता मैनावती गोपीचन्द को वैराग्य धारण करने को मना करती है एवं दूध का मूल्य चुकाने को कहती है। वे दूध का मूल्य चुकाने में अपने को असमर्थ बताते है।

(आ) माता, बहन बीरम के देश जाने को मना करती है, पर गोपीचन्द वहां अवश्य जाता है।

(इ) मूँगा लौंडी गोपीचन्द को किंचित् पहचान कर बहन बीरम को खबर देती है। बहन बीरम अनेक परीक्षाओं के बाद इस निश्चय पर पहुँचती है कि जोगी उसका भाई है।

(ई) पहचानने के बाद बहन मर जाती है। तब गोपीचन्द, गुरु मछिन्द्रनाथ के आदेश से, अपनी कानी अंगुली चीर कर बहन को दो बूँद खून पिला देते है, तो वह जी उठती है। फिर. वे उसे भोजन बनाने का आदेश देकर स्वयं उसके सिपाहियों के साथ पोखरे पर स्नान करने जाते है। तीसरी डुबकी के साथ वे भ्रमर का रूप धारण कर, गुरु मछिन्द्रनाथ के पास चले जाते है। बहिन रो-रो कर पोखरे मे जाल डलवाती है। उनके न मिलने पर रोती-कलपती महल को लौट जाती है। प्रजाजन उसे सान्त्वना देते हैं। —भोजपुरी लोकगाथा, पृ० १९२—१९४।

ख. डॉ० ग्रियर्सन ने शाहाबाद की भोजपुरी में उपलब्ध गोपीचन्द की लोकगाथा का अन्त इस प्रकार दिया है—

बहन बिरना (वर्त्तमान भोजपुरी-बीरम) जब अपने भाई गोपीचन्द को पहचान जाती है, तब अतिशय दुःख के कारण मर जाती है। गोपीचन्द उसे जीवित करके बन को चले जाते है—

चीर के अंगुरिया बहिन के पियाए,
जोगी रम के चल देले।

—ग्रियर्सन : जे० ए० एस० बी०, १८८५, वाल्यू० ७१९, पृ० ३५।

अन्त में, रोती हुई माँ ने कहॉ—'अच्छा बेटा, जाओ। संसार मे जीवित रहना। तीन मुलुक भिक्षा माँगना, पर बहन के देश मत जाना। तुम्हारी बहिन छह मास रोयेगी। उसे नैहर की आशा थी, वह भी तुम्हारे जाने से टूट गई।'

गोपीचन्द ने सब कुछ छोड़ दिया—हाथियों का हथसार, ऊँटों का ऊँटसार, नौ सौ पठान, पॉच सौ रोती कुँआरी कन्याएँ और नौ सौ रोती ब्याहता स्त्रियाँ। माता मैनावती सिंहासन पटककर रोने लगी। चिड़ियॉ और हस कोठे-अटारी पर रोने लगे। गॉव के रैयत किसान और राह के बटोही एवं कुएँ पर की पनिहारिन सभी रोने लगे। हाय! ऐसा प्यारा-दुलारा गोपीचन्द निकलकर जोगी हो गया।

••• ••• •••

गोपीचन्द जाते-जाते कदली-वन में पहुँचे। वहाँ सन्ध्या हो गई। वनस्पतियाँ, हरिन आदि सभी चराचर रोने लगे। इस भयावह वन मे उन्हे देखकर वनस्पतियों को दया आ गई। उन्होने स्वयं हंस का रूप धारण किया और उन्हे तोता बनाया। फिर, उन्हे बहन के देश में उतार दिया!

मगही लोकगाथा मे शाहाबाद की भोजपुरी लोकगाथा से कुछ भिन्नताएँ है। यथा—

(अ) भोजपुरी गाथा मे बहन बीरम अनेक परीक्षाओ के बाद भाई को पहचानती है। पर, मगही मे बहन बिरना एक ही परीक्षा के बाद पहचान जाती है।

(आ) भोजपुरी की बहन बीरम, भाई द्वारा पुनः जिलाये जाने पर रो-धोकर महल मे चली जाती है। पर, मगही मे बहन बिरना भाई द्वारा एक बार जिलाई जाने पर पुनः मर जाती है।

इनके अतिरिक्त, इस लोकगाथा के मगही एवं भोजपुरी प्रतिरूपो मे लगभग समानता है।

ग. गोपीचन्द की लोकगाथा का एक प्रकाशित रूप भी मिलता है। इसकी रचना बालकराम योगीश्वर ने ३३६ पृष्ठों में की है। इसकी भाषा ठेठ पछाही हिन्दी है और उसमे उर्दू-फारसी के शब्दों का बहुल प्रयोग है। इस पुस्तक के कथानक से भोजपुरी औरमगही मे उपलब्ध गोपीचन्द की लोकगाथा का पर्याप्त अन्तर है।

घ. गोपीचन्द की गाथा का बँगला-रूप—वस्तुतः गोपीचन्द का सम्बन्ध बंगाल से ही माना जाता है, अतः वहॉ इसका बहुत प्रचार है। वहॉ इनसे सम्बद्ध तीन प्रकाशित गाथाएँ उपलब्ध होती है—१. विश्वेश्वर भट्टाचार्य द्वारा सम्पादित 'गोपीचन्द्रेर गान'। (२) दुर्लभचन्द्र का 'गोविन्दचन्द्रेर गीत'। ३. श्रीदिनेशचन्द्र सेन द्वारा सम्पादित 'मयनावती गान'।

इन तीनों गाथाओं से मगही-गाथा बहुत भिन्न है। केवल एक ही प्रमुख समानता है—वह है गोपीचन्द का वैराग्य-धारण।

ङ. गोपीचन्द के सम्बन्ध में अन्य कथाएँ—

(अ) आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'सिद्धान्तचन्द्रिका' मे उपलब्ध गोपीचन्द की कथा को अपने ग्रन्थ 'नाथ-सम्प्रदाय' (पृ० १६८-१७२) में दिया है।

(आ) डॉ० रामकुमार वर्मा ने 'हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' (पृ० १७२-१७३) में गोपीचन्द की कथा का उल्लेख किया है।

पर, इन विद्वानों द्वारा दी गई गोपीचन्द की कथा से मगही गाथा में बहुत अन्तर है। केवल एक ही समानता है—वह है गोपीचन्द का वैराग्य-धारण।

वहाँ वे भभूत लगाये साधुवेश में घूमने लगे और राजा का पता पूछने लगे। नगर की रमणियाँ बोलीं—'ऊँची अटारी होगी, नीचा द्वार होगा। सोने-चाँदी के चौखट-दरवाजे होंगे। द्वार पर बारह साल का सूखा चन्दन का गाछ होगा। वही राजा का घर होगा।'

गोपीचन्द ने बहन के द्वार पर धुनी रमा दी। बारह साल का सूखा चन्दन-वृक्ष कचनार (हरा) हो गया। नगर के राजा और सभी प्रजाजन चकित हो गये। मूँगा दासी ने रानी (गोपीचन्द की बहन) को सारी बातें बतलाईं, तो वह गोपीचन्द के पास आई। उसने उन्हें भोजन का निमन्त्रण दिया। उन्होंने कहा—'ब्राह्मण के हाथ का भोजन करूँगा।' पर, रात्रि में उन्हें भोजन कराना सभी भूल गये। गोपीचन्द ने कहा—'यदि हमारी बहन खाती हो, तो सत से सेवई बढ़े। पर, भाण्डार का सब कुछ जल जाये।' इसके बाद उन्होंने मुरली बजाई, जिसे बहन ने सुना। उसने ब्राह्मण को टोका। वह भाण्डार मे गया, तो देखता है कि छप्पन प्रकार के भोजन में आग लगी है। तब मूँगा मेवा-मिष्टान्न लेकर उनके पास पहुँची। उसपर गोपीचन्द क्रुद्ध हुए, तो चारो दिशाओं मे अन्धकार छा गया। फिर, रसोई देखकर अन्धकार मे ही उन्होंने हँस दिया, तो रात थी, सो दिन हो गया। पाँच पत्तल पर धुनी की राख रखी, तो भोजन बन गया।

दूसरे दिन सुबह ही पोखरे पर स्नान करने गये, तो सभी अंग छिपाये थे कि कहीं बहन पहचान न ले। परन्तु, उनके बत्तीसो दाँत चमकने लगे और उनका सौन्दर्य अठगुना बढ़ गया। सभी इस अनोखे जोगी को देखकर चकित थे। स्नान करके गोपीचन्द बहन के द्वार पर भिक्षा माँगने गये, तो मूँगा लौंडी ने रानी से कहा—'जैसे तुम्हारे भाई गोपीचन्द थे, वैसे ही ये बाबा हैं।' बहन ने उत्तर दिया—'तेरा सर्वनाश हो। मेरा भाई राजसी ठाट से आयगा और उससे नगर बस जायगा।' फिर, बहन बिरना सब दासियों के साथ भिक्षा देने गई—'बाबा भीख ले लो, द्वार छोड दो।' गोपीचन्द बोले— 'धन-दौलत को कंकड-पत्थर समझकर माँ के महल में छोड़ आया हूँ।' बहन ने कहा—'सोना-चाँदी देती हूँ, तो तुम कंकड़-पत्थर बना देते हो, यदि दुशाला देती, तो गुदरी बना देते हो। तुम तो कसम खाये हो, कुछ लेते नहीं। हमारा द्वार छोड दो। तुम्हारे योग्य कपड़ा नहीं है।' गोपीचन्द ने कहा—'धन पाकर इतना घमण्ड। सगे भाई को नहीं पहचानती।' बहन ने कहा —'तब पहचानूँगी, जब मेरे नैहर के चिह्न बता दोगे।' गोपीचन्द ने बताया—'तुम्हारे हाथ मे बाबा के हाथ की अँगूठी, शरीर पर माता का रंगीन वस्त्र और भाभी के हाथ का कंगण शोभता है।' अब बहन गुदरी पकड़कर रोने लगी—'हाय ! माँ वियोगिन हो गई। भाई जोगी हो गया। तुम राजसिंहासन पर बैठो। मैं संसार की दौलत मँगा दूँगी।' भाई न माने। बहन 'हाय' करके मर गई !

गोपीचन्द पछताने लगे--'मैं यहीं मर जाऊँ।' इसी समय भगवान् ब्राह्मण-रूप में प्रकट होकर बोले--'तुम्हारी कनगुरिया (कनिष्ठ) अंगुली मे अमृत है। बहन को पिलाकर जिला दो। स्वयं भौंरा का रूप धारण कर जोगी-फकीर बने रहो।'

गोपीचन्द ने यही किया। अब बहन बिरना गली-गली रोने लगी। फिर, चन्दन के पेड़ को पकड़कर रोने लगी। चन्दन ने कहा--'तुम रोती क्यों हो ? तुम्हारा भाई

जोगी हो गया।' फिर बिरना ने 'हाय' किया! धरती फट गई, वह उसमे समा गई। सदा के लिए भाई-बहन का नाता टूट गया।

गोपीचन्द की गाथा में पात्र

इस गाथा मे बहुत कम पात्र आये हैं। यह गाथा अन्य गाथाओं से अपेक्षाकृत छोटी है। जितने पात्र है, वे सभी कथावस्तु को अग्रगामी करने मे योगदान देते हैं--

(क) पुरुष-पात्र

गोपीचन्द

(ख) स्त्री-पात्र

माता—मैनावती

बहन—बिरना

लौंड़ी—मूँगा

(ग) अमानवीय तत्त्व

वनदेवी—वनस्पति

अलौकिक तत्त्व

नाथ-सम्प्रदाय के अनुसार साधक योग-सिद्धि के बाद अनेक चमत्कारों के प्रदर्शन-योग्य हो जाता है। इस गाथा के अध्ययन से पता चलता है कि गोपीचन्द की साधना बहुत पहले ही पूर्ण हो चुकी थी; क्योंकि वे अनेक यौगिक चमत्कार दिखाते हैं। इनके सम्पर्क में जो वस्तुएँ आती हैं, उनमे भी अलौकिक परिवर्त्तन आ जाते हैं। यथा—

१. जब वे कदली-वन में पहुँचते हैं, तब वनस्पतियों को दया आ जाती है। वे उन्हे तोता बनाती हैं और स्वयं हंस का रूप धारण करती है। फिर, घड़ी-पहर में बहन के देश में उतार आती है।

२. बहन के द्वार पर चन्दन का सूखा गाछ है। उसके नीचे, जैसे ही ये धुनी रमाते है, वैसे ही बारह साल का यह सूखा चन्दन कचनार (हरा) हो जाता है।

३. जब बहुत रात तक बहन के घर से कोई भोजन के लिए उन्हे पूछने नहीं आता, तब शाप के कारण भाण्डार का सारा भोजन जल जाता है।

४. रात मे उनके हँसने से दिन हो जाता है।

५. जले भोजनांश को धुनी की राख मे मिलाकर पाँच पत्तल पर वे सजाते हैं, तो पाँचों प्रकार के भोजन तैयार हो जाते हैं।

६. बहन की मृत्यु पर भगवान् (नारायण) ब्राह्मण का रूप धारण करके आते हैं और वे घबराये हुए गोपीचन्द को सुझाव देते हैं—'तुम्हारी कनगुरिया उँगली मे अमृतफल है। उसे बहन को पिला दो, वह जी जायगी। और, तुम स्वयं भ्रमर बनकर योगी का रूप धारण किये रहो।' गोपीचन्द इसे आदेश मानकर तदनुकूल कार्य करते हैं।

७. पुनः जीवित बहन को चन्दन का वृक्ष बताता है कि उसका भाई सचमुच जोगी हो गया। वह शोकातुर होकर धरती से फटने की प्रार्थना करती है। धरती फट जाती है और वह इसमें समाकर विलीन हो जाती है।

गोपीचन्द की सम्पूर्ण गाथा ऐसे चमत्कारों से भरी है।

३. छतरी घुघुलिया[1]

यह लोकगाथा 'वीरकथात्मक' श्रेणी में आती है। छतरी घुघुलिया इस गाथा का नायक है। इसमें क्षत्रिय जाति की वीरता का आदर्श रूप प्रस्तुत किया गया है। 'लोरकाइन' में वीरता के साथ प्रेम का अपूर्व सामंजस्य हुआ है। पर, इस गाथा मे प्रेमतत्त्व को बहुत गौण स्थान दिया गया है। रानी सुखन्तिया से छतरो घुघुलिया का विवाह बिना पूर्व प्रेम के होता है, यद्यपि विवाह की परिस्थितियाँ संघर्षपूर्ण। हैं

इस गाथा के नायक को एक अवतारी पुरुष के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वह जन्म से ही बोलने लगता है। देवी माता का वरद हस्त सर्वदा उसके मस्तक पर रहता है। इसका कारण है कि वह सत्य का आग्रही है। आरम्भ से अन्त तक वह दिव्य कर्त्तृत्व एवं लोकरक्षण के कार्य मे लगा रहता है। इसी उद्देश्य की पूर्त्ति के हेतु वह संघर्ष एवं युद्ध करता है।

इस गाथा के परिचय के लिए इसका संक्षिप्त हिन्दी-रूपान्तर प्रस्तुत किया जाता है[2]—

---

१. दे०, म० लो० सा०, पृ० १४४ १५३।

२. 'लोकगाथा-परिचय' (सम्पादक : आचार्य नलिनविलोचन शर्मा; प्रकाशक : बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना) में इस गाथा के दो प्रतिरूपों का उल्लेख मिलता है। मगही प्रतिरूप—'छतरी चौहान' के नाम से इस गाथा का एक संग्रह, मगही-क्षेत्र के खुशहालपुर (पटना) से बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना को उपलब्ध हुआ है। भोजपुरी-क्षेत्र में यह लोकगाथा 'घुघुली-बँटेढ़िया' तथा मैथिली-क्षेत्र में 'राय रणपाल' के नाम से प्रसिद्ध है। **मगही-प्रतिरूप** की कथा का सार निम्नांकित है—

१. छतरी चौहान, राजा शिशुपाल का बेटा और घाटमपुर के राजाओ का भगिना था। मामाओं द्वारा पिता के मारे जाने के बाद उसका जन्म हुआ था।

२. राजा शिशुपाल दिल्ली के राजा थे। उनकी, घाटमपुर के सात शासकों से, जो उनके अपने साले थे, अनबन हो गई। सातों घाटमों ने मिलकर छल से राजा शिशुपाल को मरवा डाला।

३. शिशुपाल की गर्भवती पत्नी किसी प्रकार अपने भाइयों (घाटमों) के चंगुल से निकल भागी। कुछ दिनों बाद उसके गर्भ से एक वीर बालक का जन्म हुआ, जिनका नाम 'छतरी चौहान' पड़ा।

४. बड़े होकर उसने युद्ध में अपने सात अत्याचारी मामाओं को मारकर पिता की मृत्यु का बदला चुकाया।

अंगिका-प्रतिरूप—'घुघुली-घटमा' नाम से यह गाथा पूर्णिया जिला के उत्तरी हिस्से से बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना को उपलब्ध हुई है। इस गाथा के सम्बन्ध में निम्नांकित तथ्य द्रष्टव्य है—

१. इसकी सभी घटनाएँ 'छतरी चौहान' नामक लोकगाथा से मिलती-जुलती हैं। कथा पूर्णतः समान है।

२. पर, दोनों के घटना-विन्यास, पात्र-नामों तथा स्थान-नामों में अन्तर है।

३. अंगिका-प्रतिरूप मे 'छतरी चौहान' का नाम 'घुघुली' है। 'राजा शिशुपाल' का नाम 'रैया रनपाल' है। सात मामा इसमें भी 'घटमा' ही कहलाते हैं।

झाझमपुर के राजा 'रण्डपालसिंह थे, जो बड़े प्रतापी, प्रभुत्व-सम्पन्न एवं शक्तिशाली समझे जाते थे। इनका विवाह घाटमपुर मे हुआ था। इनके सात साले थे, जो घाटम कहलाते थे। ये घाटम बडे भारी व्यापारी थे। इनके यहाँ नित्य सात सौ बैलों की लदनी होती थी।

एक बार इनके वैलो को अपने राज्य में देखकर राजा रण्डपालसिंह को क्रोध हुआ। उन्होंने सारी तंगी को उनके व्यापारियों से रखवा लिया। जब यह समाचार घाटमों को मिला, तब उन्होने बदला लेने का निश्चय कर लिया।

इसी समय होली पड़ गई। बडे घाटम ने छोटे घाटम जयपत से पत्र लिखाकर गागु हजाम द्वारा रण्डपालसिंह को निमन्त्रण भेजा। निमन्त्रण मिलते ही रण्डपालसिंह की गर्भवती पत्नी रानी जसोदा रहस्य समझ गई। उसने रो-रोकर उन्हें अपने नैहर जाने से रोका। पर वे न माने। उन्होंने लोहे की पोशाक पहनी, छप्पन कटार बाँधे। फिर, वे 'हैकल घोडी' पर सवार होकर घाटमपुर चले गये। चाण्डाल घाटमों ने अनेक युक्ति से उन्हे मारना चाहा, पर सब बार देवी की कृपा से वे बच गये। अन्त में, धोखे से शराब पिलाकर उन्हे इन चाण्डालों ने मार डाला। फिर इन्होंने अपनी गर्भवती बहन के गर्भ को नष्ट करने के लिए डगरिन को उसके पास भेजा। डगरिन को दया आ गई। उसने पान की पीक से हाँडी भरकर घाटमों को खून का भ्रम देकर रानी जसोदा के गर्भ को बचा लिया।

दुखिया रानी प्राण बचाने के लिए राजा, बृजभान के पास पहुँची जिसने उससे विवाह का प्रस्ताव कर दिया। रानी ने कहा—'मैं तुम्हारी भगिनपुतोह हूँ, तुम्हे ऐसा कहते शर्म नहीं आती।' क्रोध में बृजभान ने रानी को जंगल मे फाँसी चढ़ाने का हुक्म दे दिया। एक धनी वनिये ने, जिसका नाम हेमद मोदी था, राजा के अत्याचार से रानी को बचाने की युक्ति निकाली। उसने राजा से कहा—'महाराज, मेरी बहन अपनी भौजाई से झगड़कर घर से बाहर निकल आई है। उसे किस अपराध कर आप फाँसी चढ़ा रहे हैं?' राजा घबड़ा गया। उसने हेमद मोदी को रानी जसोदा को सुपुर्द कर दिया. वह इसीके घर बहन बनकर रहने लगी। मोदी की दिन-दूनी रात-चौगुनी तरक्की होने लगी।

... ...

कुछ दिनों बाद रानी जसोदा को एक अवतारी पुत्र उत्पन्न हुआ, जो जन्म से ही बोलता था। उसने डगरिन को यह कहकर नाभि काटने से रोक दिया कि देवी मइया स्वयं काटेंगी। कासीपुर के पण्डितों ने इसकी जन्मपत्री बनाई और इसका नाम 'छतरी घुघुलिया' रखा। उन्होंने कहा—'ओ मोदी! तेरा भगिना क्षत्रिय-कुल का है। यह बड़ा यश कमायगा। राजा बृजभान से तेरे बावन लाख रुपये चुकायगा और सूद में उसकी बेटी से विवाह करेगा।'

छतरी घुघुलिया बारह वर्ष का हो गया। वह ऊँचे अरार पर धोती रखकर गंगा स्नान करने लगा। इसी बीच देवी माता सरधा (शारदा) बूढ़ी का रूप धारण कर आई और उन्होंने इसकी धोती उठा ली। बालक के माँगने पर जब उन्होंने धोती नहीं दी, तब बालक ने विनय से कहा—'मेरे पास देवी पूजने के लिए एक मुट्ठी अच्छत है, उसीका तुम्हें भोजन कराऊँगा। तुम मुझे धोती दे दो।' देवी ने अनुकूल अवसर देखकर कहा—"तुम्हें तो छूत लगी है। तुम्हारे पिता को तुम्हारे मामा घाटमों ने मारकर 'क्रिया-करम' (श्राद्ध) नहीं किया था। मैं कैसे तुम्हारा छुआ खाऊँ!" बालक क्रोध से लाल हो गया। उसने देवी की कृपा से सारी कथा जान ली। फिर, वह उनकी सम्मति से एक-एक से बदला लेने लगा।

... ...

योगी के रूप में वह घाटमपुर पहुँचा और चौरा इनारा (कुँआ) के पास बैठकर पनिहारिन से बोला— 'इस कुएँ का पानी महकता है; क्योंकि तुम्हारे चाण्डाल राजा ने छल से बहनोई को मारकर उसका श्राद्ध नहीं किया है।' पनिहारिन ने सारी कथा घाटम से कही। सभी भाई घबरा गये। उन्होंने योगी को घर बुलाकर दोष-पाप कटने का उपाय पूछा। योगी ने उपाय बताया—'अस्सी ब्राह्मण को भोजन कराओ एवं हैकल घोड़ी तथा अपने बहनोई की लोहे की पोशाक को दान कर दो।' तदनुसार ही घाटम ने सब कुछ किया। दान मिलते ही छतरी घुघुलिया ने लोहे की पोशाक पहनकर कमर में छप्पन कटार बाँध लिये और वह हैकल घोड़ी पर सवार हो गया। तब उसने तलवार निकालकर अपना असली परिचय दिया। फिर, वह देवी के मन्दिर में घाटमों से बदला लेने के लिए अनुमति के निमित्त पहुँचा। देवी सम्मुख होकर बोली—'पहले बृजभान से अपने धर्ममामा हेमद मोदी के बावन लाख रुपये चुकाओ और सूद में उसकी बेटी से विवाह करो।'

वह बृजभान के दरबार मे पहुँचा। उसकी माँग सुनकर राजा आगबबूला हो गया। उसने अपने प्यादे से कहा—'यहाँ एक मच्छड़ आया है, उसे चटनी की तरह पीस दे।' पर प्यादा तो क्या, राजा की सारी पलटन मारी गई। हैकल घोड़ी मनुष्य का आहार करती थी। क्षण-भर मे वह चौदह हजार पलटन को समाप्त करके बैठ गई। लोथों के नीचे पूरनमल दीवान पड़ा था, वह जान बचाकर भागा। विजयी घुघुलिया फिर राजा के पास पहुँचा। राजा ने डर कर बावन लाख रुपये दे दिये और अपनी पुत्री सुखवन्ती से घुघुलिया का विवाह कर दिया। बरात विदा कर बहू के साथ छतरी घुघुलिया और हेमद मोदी चला।

राजा बृजभान ने जाल रचा। उसने चुपचाप इस आशय का एक पत्र दिल्ली भेज दिया—'मित्र पर विपत पड़ी है। बरात जा रही है। पलटन हेमद मोदी से बावन लाख रुपये छीनकर उसका सिर काट ले, और रानी सुखन्तिया को तुरकिन (मुसलमान) बना ले।' पूरनमल दीवान पलटन लेकर पहुँच गया। उसने रानी की लाल डोली छेंक ली। वह रोने लगी। झट देवी माता घुघुलिया को जगा कर ले आई। उसने और उसकी अलौकिक शक्ति-सम्पन्न घोड़ी ने देवी माता की कृपा से सभी शत्रुओं को मार दिया।

केवल पूरनमल दीवान इस बार भी भाग निकला। घुघुलिया राजा बृजभान के दरबार में पहुँचा और उसने उसका सिर काट लिया।

... ...

छतरी घुघुलिया सोने के पलंग पर सोया था कि इसी बीच पूरनमल दीवान घुस आया। उसने उसका सिर काट लिया। रानी सुखन्तिया विलाप करती हुई, पति को लेकर सिहुली जंगल में पहुँची और चिता सजाने लगी। देवी माता शारदा ने वृद्धा का रूप धारण करके उसकी सत-परीक्षा ली। वह उत्तीर्ण हुई। तब देवी रानी जसोदा के पास जाकर बोली—'तुम्हारा पुत्र सिहुली जंगल में मारा गया है, तुम उसे उठाकर मेरे मन्दिर में लाओ।' वह बेटे की लाश को मन्दिर में लाकर प्रार्थनाएँ करने लगी—'हे माता! मेरे लाल को जीवित कर दो। मैं अरवा चावल, चन्दन की लकड़ी आदि से तुम्हारा चौरा पूजूँगी और काली पाठी की बलि दूँगी।' देवी ने वीर पर फूल की चादर डाल दी। वह उठ बैठा और बोला—'माँ, जल्दी हुक्म दो, मैं मामाओं का सिर उतार लाऊँ।' देवी ने कहा—'कुछ दिनों बाद।'

कुछ दिनों बाद गाँगू हजाम घाटमों के यहाँ से छठी का निमन्त्रण घुघुलिया के यहाँ लाया। माँ के मना करने पर भी वह वीर वेश में घाटमपुर पहुँचा। मामाओं ने अनेक छल किये। छोटी मामी ने घुघुलिया को सारे रहस्यों से अवगत करा दिया। वह चतुराई से घर लौट कर हेमद मोदी के साथ सुख से दिन बिताने लगा। एक दिन रानी सुखन्तिया सेरा पोखरा नहाने गई। वहाँ सातों भाई घाटम मछली मार रहे थे। उन्होंने रानी सुखन्तिया से छेड़खानी की। सुधु महरा ने झट दौड़कर छतरी घुघुलिया को इसका समाचार दे दिया। वह घाट पर आया। उसने छहों मामाओं के सिर काट लिये। छोटे मामा को, छोटी मामी का एहसान याद करके, केवल नाक काटकर छोड़ दिया। इसके बाद वह हेमद मोदी के घर लौट आया। सबके दिन सुख से कटने लगे।

रानी जसोदा ने कुमारी देवी माता के मन्दिर में जाकर पूजा-बलि से उन्हें प्रसन्न किया। देवी शारदा ने हाथ उठाकर छतरी घुघुलिया को आशीर्वाद दिया।

'छतरी घुघुलिया' की उपर्युक्त मगही कथा से भोजपुरी की 'घुघुली-बटेढ़िया', मैथिली की 'राय रणपाल' तथा अंगिका की 'घुघुली-घटमा' की कथाओं में पर्याप्त समानताएँ हैं। विशेषतः घटना-विन्यास, पात्रों के नामों एवं स्थानों के नामों में भिन्नताएँ हैं। कहीं-कहीं कथानकों में भी अन्तर दिखाई पड़ता है। पर इतना पता अवश्य चलता है कि यह गाथा कुछ भेदों के साथ प्रायः समस्त बिहार में गाई जाती है।

पात्र

'छतरी घुघुलिया' में निम्नांकित पात्र-पात्रियों के नाम आते हैं—

पुरुष-पात्र

१. राजा रणडपालसिंह — घुघुलिया के पिता।
२. छतरी घुघुलिया — गाथा का नायक

३. घाटम — घुघुलिया क मामा, जो सात भाई थे। इनमें से ही एक का नाम जयपत था।

४. गाँगू हजाम — घाटम का हजाम।

५. राजा बृजभान — घुघुलिया का ससुर।

६. हेमद मोदी — घुघुलिया का धर्म-मामा।

७. पूरनमल दीवान — बृजभान का मित्र, जो दिल्ली दरबार में नौकरी करता था।

८. सुधु महरा — घुघुलिया का सेवक।

इनके अतिरिक्त प्यादा, व्यापारी, सौदागर, पलटन, जल्लाद, कासीपुर के पण्डित, मुंशी, दीवान आदि अनेक पात्र हैं, जो कथा-प्रसंग में आकर अपने व्यक्तित्व एवं कर्त्तृत्व की झाँकी देते हैं। इनके चरित्रों को विकसित नहीं किया गया है।

स्त्री-पात्रियाँ

१. रानी जसोदा — राजा रण्डपालसिंह की पत्नी, घाटमों की बहन और घुघुलिया की माता।

२. रानी सुखवन्ती — राजा बृजभान की बेटी और घुघुलिया की पत्नी।

३. डगरिन — रानी जसोदा की गर्भरक्षिका।

४. छोटी मामी — घुघुलिया के प्राणों की रक्षिका।

इनके अतिरिक्त चेरी, सामान्य डगरिन आदि कुछ पात्रियाँ हैं, जिनकी केवल झाँकी-भर दी गई है।

देव-पात्र

देवी शारदा, जो छतरी घुघुलिया एवं उसके परिवार की सतत रक्षा करती हैं।

पशु-पक्षी पात्र

१. हैकल घोड़ी — यह अमानवीय एवं अलौकिक शक्ति-सम्पन्न है। घुघुलिया की सफलताओं में इसका बड़ा सहयोग है।

२. बैल, हाथी, घोड़े — केवल नामोल्लेख हुआ है।

३. काग — यह 'अशुभ' की सूचना देता है।

इस लोकगाथा के पात्रों के भी दो दल हैं— १. सत्य का पक्ष ग्रहण करके चलता है और २. असत्य का पक्ष अपनाकर चलता है। सभी पात्र सजीव एवं वास्तविक मालूम पड़ते हैं। ये सदा कथा के प्रवाह को अग्रगामी करने में सहायक होते हैं। गाथा के अन्त में असत्य पक्ष के प्रायः सभी पात्र मारे जाते हैं। जो, एक-दो बचे रहते हैं, वे सत्य का पक्ष ग्रहण कर लेते हैं।

गाथा में आये सभी पात्रों के चरित्र का अच्छा विकास हुआ है। सत्य-पक्ष के पात्रों को न केवल भले मनुष्यों से सहायता मिलती है, बल्कि दैविक शक्तियों से भी सहायता मिलती है। देवी शारदा राजा रण्डपालसिंह, उनकी पत्नी जसोदा, उनके पुत्र घुघुलिया एवं उनकी पुत्रवधू सुखन्तिया पर समान रूप से कृपादृष्टि रखती हैं। छतरी घुघुलिया की विजय का वही कारण है। हैकल घोड़ी भी अलौकिक शक्तिसम्पन्न है। वह सब भाँति, सत्य-पक्ष को सबल बनाने में सहायता करती है। छतरी घुघुलिया की विजय मे उसका महत्त्वपूर्ण योगदान है।

स्थान

इस गाथा में निम्नांकित स्थानों के उल्लेख हुए हैं—

स्थान

१. झाझमपुर	—	राज रण्डपालसिंह का राज्य।
२. देहुली जंगल	—	यह रण्डपाल सिंह के राज्य में था। इसकी लम्बाई-चौड़ाई बारह कोस थी। इसे कटवाकर राजा ने गाँव बसाया था। इसमे बावन गली और तिरपन बाजार थे।
३. कचहरी	—	रण्डपालसिंह की कचहरी, जहाँ बैठकर वे राज्य चलाते थे।
४. घाटमपुर	—	घाटमों का राज्य।
५. बैरन कचहरी	—	राजा बृजभान की कचहरी।
६. कासीपुर	—	छतरी घुघुलिया की जन्मकुण्डली बनानेवाले ब्राह्मण का ग्राम।
७. गंगा नदी	—	यहाँ स्नान करते समय छतरी घुघुलिया को प्रथम बार देवी के दर्शन होते हैं।
८. चौंरा इनारा	—	भाटमपुर का कुँआ।
९. गढ़पर्वत	—	बृजभान के राज्य में स्थित पहाड़, जिसपर डंका बजाकर वह अपनी पलटन एकत्र करता था।
१०. दिल्ली शहर	—	यहाँ मुसलमानी दरबार है। पूरनमल यहाँ का दीवान है।

११. सिहुली जंगल	—	यहाँ पूरनमल दीवान घुघुलिया को मार डालता है। यहीं रानी सुखन्तिया पति की चिता रचती है और देवी माता उसकी परीक्षा लेती हैं।
१२. सेरा पोखरा	—	यहीं छह भाई घाटम मारे जाते हैं।
१३. देवी-मन्दिर	—	यहीं घुघुलिया नव-जीवन प्राप्त करता है और रानी जसोदा धूमधाम से देवी-पूजा करती है।

विविध जातियाँ

इस काव्य मे निम्नांकित जातियों के उल्लेख हुए हैं—

क्षत्री	—	राजा रण्डपालसिंह, छतरी घुघुलिया, राजा बृजभान।
असुर ?	—	सात भाई घाटमो की जाति का पता नहीं चलता। ये व्यापार करते हैं। इनके यहाँ 'बैल' की लदनी होती है। इससे लगता है कि ये वैश्य वर्ण के हैं। पर, इनकी प्रकृति वैश्यों से नहीं मिलती; क्योंकि वे 'धर्म-भीरु' होते हैं। फिर, जिस छलना से वे राजा रण्डपाल-सिंह को मारते हैं, उससे प्रतीत होता है कि वे क्षत्रिय भी नहीं है। क्षत्रिय सर्वदा सामने से प्रहार करते हैं। ब्राह्मण तो वे हैं ही नहीं। तब ये अवश्य किसी निकृष्ट वर्ग का प्रति-निधित्व करते हैं, जिनमे आसुरी प्रवृत्तियों को प्रधा-नता है। सम्भवतः, इसी कारण रानी जसोदा, भाई के द्वारा पति के पास भेजे निमन्त्रण-पत्र को देखते ही रोने लगती है। वह भाइयो के कुसंस्कारों एवं आसुरी प्रवृत्तियों से पूर्ण परिचित दिखाई पड़ती है। घाटम आरम्भ से अन्त तक कुकृत्य करके अपनी निकृष्टता का परिचय देते हैं।
हजाम	—	गाँगू।
कहार	—	सुधु महरा।
वैश्य	—	हेमद मोदी एवं अन्य व्यापारी।
ब्राह्मण	—	ये घुघुलिया की जन्मकुण्डली बनाते हैं।
चमाइन	—	डगरिन, जो गर्भ में छतरी घुघुलिया की रक्षा करती है।
कायस्थ	—	पूरनमल दीवान।

मुसलमान — मुसलमानी फौज, जो रानी सुखन्तिया को तुरकिन बनाने के लिए दिल्ली से आती है।

छतरी घुघुलिया की गाथा पर कृष्ण-काव्य का प्रभाव

छतरी घुघुलिया की गाथा पर कृष्ण की जीवन-गाथा का किंचित् प्रभाव दिखाई देता है। सम्भवतः, इस गाथा की रचना उस मध्ययुग मे हुई हो, जब कृष्णभक्ति जोर पर थी। इस समय भारत मे मुसलमानी सत्ता की स्थापना हो गई थी और हिन्दू-राजे आपस के झगडे मे अपने पक्ष को सबल बनाने के लिए दिल्ली दरबार की ओर देखा करते थे। राजा बृजभान ऐसे ही राजाओं में एक है। वह दिल्ली दरबार से पूरनमल दीवान को सेना के साथ बुलाता है। उसका उद्देश्य अपनी पुत्री को 'तुरकिन' बनवाकर अपने दामाद छतरी घुघुलिया से प्रतिशोध लेना है।

भारत मे मुसलमानी सत्ता के पूर्ण रूप में स्थापित होने पर हिन्दुओं की धर्म-भावना बहुत बढ़ गई थी। वे विविध देवी-देवताओं को लोकरक्षक एवं लोकरंजक रूप में प्रस्तुत करते हुए लोकहृदय में धार्मिक आस्था भर देना चाहते थे। इसी उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए लोकनायक कृष्ण की प्राचीन कथा की नई शैली में आवृत्ति की गई है। उसी आधार पर नवीन लोकनायको की सृष्टि भी की गई। घुघुलिया उन्हीं मे एक है।

छतरी घुघुलिया की कथा पर कृष्ण-कथा का प्रभाव निम्नांकित स्थलों पर देखा जा सकता है—

कृष्ण	घुघुलिया
१. कृष्ण-जन्म के पूर्व बहन-बहनोई पर कंस के अत्याचार।	पुत्र-जन्म के पूर्व बहन-बहनोई पर घाटम के अत्याचार।
२. कंस में आसुरी प्रवृत्तियों का प्राबल्य है।	घाटम मे भी आसुरी प्रवत्तियों का ही प्राधान्य है।
३. जन्म के बाद ही मामा भगिना को मारना चाहता है, पर भगिना बच निकलता है और दूसरे के घर में अज्ञात रूप से पाला जाता है।	गर्भ में ही भगिना को मामा मरवाना चाहता है। पर वह बच निकलता है। दूसरे के घर में अज्ञात रूप से पाला जाता है।
४. बृजभान की पुत्री राधा से कृष्ण का प्रेम होता है।	राजा बृजभान की बेटी सुखन्तिया से घुघुलिया का विवाह होता है।
५. इनका उद्देश्य मामा को मारकर शान्ति की स्थापना करना है।	इसका उद्देश्य भी मामा को मारकर शान्ति की स्थापना करना है।
६. मामा के यहाँ से अक्रूरजी लेने आते हैं। उद्देश्य है—कृष्ण की हत्या करवाना	मामा के यहाँ से हजाम निमन्त्रण-पत्र लेकर बुलाने आता है। उद्देश्य है—इसे मरवाना।

७. अन्त में, कंस को मारकर कृष्ण आसुरी शक्तियों का नाश करते हैं।	अन्ततः, घुघुलिया मामा को मारकर शान्ति की स्थापना करता है।
८. साक्षात् विष्णु मानव-रूप में धरती के कल्याणार्थ उत्पन्न हुए हैं।	घुघुलिया भी अवतारी पुरुष है। देवी का उसे वरदान है।
९. सत्य-पक्ष की अन्तिम विजय होती है।	सत्य-पक्ष की अन्तिम विजय होती है।

४. रेसमा[1]

रेसमा की लोकगाथा 'प्रेमकथात्मक लोकगाथाओं' की श्रेणी में आती है। यह गाथा दुसाध जाति के लोग अधिक गाते हैं। इसका नायक वीरमल चूहरमल इसी जाति का है। सम्पूर्ण गाथा में वीरमल चूहरमल के दिव्य एवं उदात्त चरित्र एवं अपूर्व शौर्य का वर्णन है। गाथा की नायिका 'रेसमा' वीरमल चूहरमल की निराश प्रेमिका है, जो उससे प्रेम का प्रतिदान न पाने पर भी आजीवन उसमें प्रेमरत रहती है। वह सच्चे प्रेम के नाम पर ही अपने प्राणों का उत्सर्ग भी करती है। इस गाथा में आरम्भ से अन्त तक प्रेम के कारण ही संघर्ष चलते हैं, इसलिए इसे 'प्रेमकथात्मक' वर्ग में रखा गया है।

'रेसमा' की गाथा का सम्बन्ध 'मोकामा' से है, जो पटना जिले में पड़ता है। यह विशुद्ध मगही क्षेत्र है। इस गाथा के प्रतिरूप अन्य भाषाओं में देखने को हमें अभी तक नहीं मिले। मगह-क्षेत्र में यह गाथा बहुत लोकप्रिय है।

'रेसमा' की कथावस्तु से परिचय के लिए, इसका संक्षिप्त हिन्दी-रूपान्तर निम्नांकित पक्तियों में दिया जाता है—

मोकामा के जमींदार बाबू अजबीसिंह की बहन का नाम 'रेसमा' था। वह अपूर्व सुन्दरी थी, पर उसके योग्य वर नहीं मिल सका था। वह अपने भाई के प्रिय गुरुभाई वीरमल चूहरमल के अनुपम रूप एवं शौर्य पर मुग्ध हो गई। उसने उससे किसी प्रकार मिलकर प्रेम-प्रस्ताव करना चाहा। इसके लिए उसने उपाय ढूँढ़ने आरम्भ किये। माँ से उसने तुलसीराम इनारा जाने की अनुमति माँगी, पर न मिली। अन्त में, सोलहो श्रृंगार करके वह चुपचाप खिड़की की राह कुएँ पर पहुँच गई। यह कुँआ मोकामा टाल के चाड़ाडीह अखाड़ा के पथ मे पड़ता था। वीरमल चूहरमल इसी अखाड़े में रहता था। वह मार्ग मे आते-जाते कुँए पर ठहरकर पानी पी लेता था।

अकस्मात् वीरमल चूहरमल कुएँ पर पानी पीने पहुँच ही गया। रेसमा देवी को धन्यवाद देने लगी। फिर, उसने वीरमल चूहरमल से पूछा—'बटोही! कहाँ है तुम्हारा घर? नाम क्या है तुम्हारा?' वीर ने अपना परिचय दिया। तब रेसमा घूँघट हटाकर बोली—'वीर! चलो मेरे घर। वहीं पानी पिलाऊँगी। मेरा रूप-श्रृंगार सब तुम्हारे ही लिए है। मुझसे अपना हृदय मिला लो।' वीर बड़ा क्रुद्ध हुआ। उसने कहा—'इस पथ से मैं बारह साल से गुजरता हूँ, कभी ऐसी बातें नहीं सुनीं। तू मेरे गुरुभाई की बहन है,

---

१. दे० म० लो० सा०, पृ० १५४–१६३।

तो मेरी भी बहन हुई। फिर तू उच्च वंश की है, मैं सेवक कुल का हूँ। भलाई इसी में है कि तू जल्दी घर चली जा, अन्यथा तेरा सिर उतरवा लूँगा।' रेसमा रोती हुई बोली—'तुम नहीं अपनाओगे, तो तुम्हारा भी सिर उतरवा लूँगी।'

इसके बाद उसने विकृत वेश मे भाई की कचहरी में पहुँच कर शिकायत की कि वीरमल चूहरमल ने मेरी प्रतिष्ठा नष्ट की है। पहले तो अजबीसिंह को विश्वास न हुआ, पर अन्त में रो-रो कर रेसमा ने उसे लड़ने पर मजबूर कर ही दिया। उसने कहा—'तुम वीर को मारना मत, सिर्फ बाँध कर लाना। उसे मैं स्वयं दण्डित करूँगी।' बाँधीराम, जो वीरमल चूहरमल का चाचा था, अजबीसिंह के यहाँ सात सौ सेना पर बराहिल था। उसे भतीजे के दुराचरण पर विश्वास न हुआ। फिर भी, अजबीसिंह की विशाल सेना के साथ वह वीरमल चूहरमल से लड़ने गया। इधर रेसमा देवी से प्रार्थना कर रही थी कि किसी भाँति वीर पकड़ाकर आ जाय, तो मैं मना लूँगी। उधर अखाड़े में वीरमल चूहरमल देवी की प्रार्थना कर रहा था। देवी स्वयं सम्मुख प्रकट हो गई और बोली—'बेटा, तलवार लो, इसीसे लड़ना। घबराना नहीं।' इधर अपार फौज के साथ अजबीसिंह और बाँधीराम बराहिल था, उधर देवी की तलवार लिये अकेला वीर चूहरमल। पर, अजबीसिंह की सारी सेना मारी गई। वह हारकर लौट गया। बाँधीराम उसी समय अजबीसिंह से बोला—'मैं आपकी नौकरी नहीं करूँगा। मेरा भतीजा सच्चा देवी का भक्त है। इसीसे उसने अकेले ही लड़ाई जीत ली।' इसके बाद अजबीसिंह घर आया, तो फिर रेसमा ललकारने लगी। जोश मे, इस बार, अजबीसिंह दूनी सेना लेकर लड़ने गया। सारी सेना तो मारी ही गई। अजबीसिंह भी मारा गया। उसके कटे सिर को बड़े स्नेह से वीर चूहरमल ने हृदय से लगाया और वह करुण स्वर में बोला—'हाय! रेसमा के कारण अपने गुरुभाई का सिर मुझे काटना पड़ा।' फिर, उसने उसे स्वयं गंगा में प्रवाहित किया।

मोकामा में हाहाकार मच गया। अजबीसिह की माँ रेसमा को धिक्कारती हुई, पुत्र के शोक मे मर गई। फिर भी रेसमा को ज्ञान न हुआ। उसने अपने एक प्रेमी दलजीत सिंह को बड़ी सेना के साथ वीर चूहरमल से लड़ने को प्रेरित किया। पर, वह भी सेना-सहित मारा गया। तब रेसमा गाँव की जिरवा तमोलिन के पास पहुँची और उससे उसने पूछा—'तुम्हारे पास किस प्रकार वीर नित्य बैठता है?' उसने कहा—'पहले तुम्हारी तरह मैं भी उसके लिए प्रेम-दिवानी थी। पर, वह सदा मुझे बहन कहता था। जब मैंने उसे भाई के रूप में स्वीकार कर लिया, तब से उसने कभी मेरा द्वार न छोड़ा। तुम भी भाई का रिश्ता कर लो। वह तुम्हें कभी नही छोड़ेगा।' पर, रेसमा को यह न भाया। वह रोती-रोती महल में चली गई।

भोर होते ही रेसमा ने ढोल की आवाज के साथ यह घोषणा सुनी कि चूहरमल आज समाधि लेंगे। ठीक बारह बजे वीर ने धरती में समाधि ले ली। योगिनी के वेश में बावरी रेसमा उसकी समाधि पर पहुँचकर बोली—'हे ईश्वर, यदि मेरा प्रेम सच्चा होगा, तो मेरे प्राण यहीं निकल जायेंगे।' राम का नाम लेते और चूहरमल का स्मरण करते-करते प्राण-पखेरू वहीं उड़ गये!

स्थान

निम्नांकित स्थानों के उल्लेख इस गाथा में हुए हैं—

१. मोकामा नगर	—	यह 'रेसमा' की जमीन्दारी में पड़ता है। यहीं रेसमा एवं वीर चूहरमल रहते हैं।
२. मोकामा टाल	—	इसमें अखाडा है। यहीं वीर, देवी दुर्गा की उपासना करता है।
३. चाँड़ाडिह् अखाडा	—	यहीं वीर, कसरत आदि करके अपने शरीर को सुगठित बनाता है।
४. तुलसीराम इनारा	—	इसी कुएँ पर रेसमा पहली बार वीर से प्रेम-प्रस्ताव करती है।
५. मोकामा कचहरी	—	बाबू अजबीसिंह यहीं बैठकर कार्य-संचालन करते हैं।
६. मोकामागढ़	—	इसी मे रेसमा अपने परिवार के साथ रहती है।
७. गंगा नदी	—	मोकामा की गंगा नदी, जहाँ वीर स्नान करने एवं सूर्य का ध्यान करने जाता है।

कुँअरविजयी[1]

यह लोकगाथा 'वीरकथात्मक वर्ग' के अन्तर्गत आती है। इसमें कुँअरविजयी की अपूर्व वीरता का वर्णन है। इस गाथा का सम्बन्ध मध्ययुग से दिखाई पड़ता है। युद्ध का मूल कारण कुँअरविजयी के विवाह में उठ खड़ा हुआ संघर्ष है। विवाह के कारण युद्धों की प्रवृत्ति मध्ययुग में प्रबल थी। इस गाथा के नायक कुँअरविजयी का सम्बन्ध नवनाथों में प्रमुख गुरु गोरखनाथ से है। इनका काल भी मध्ययुग ही माना जाता है।

कुँअरविजयी की वीरता एवं शौर्य से ज्ञात होता है कि यह क्षत्रिय जाति का है। यद्यपि इसके गानेवाले सभी वर्ण एवं जाति के लोग होते हैं। कुँअरविजयी वीर होते हुए भी प्रकृत्या लोरिक से भिन्न है। लोरिक में वीरता एवं श्रृंगार का अद्‌भुत सम्मिलन है, जब कि कुँअरविजयी में श्रृंगारिक प्रवृत्ति को नगण्य स्थान प्राप्त होता है। एक स्त्री से उसका विवाह कर दिया जाता है, उसके प्रति ही कर्त्तव्य पूर्ण करने में कुँअरविजयी अपने जीवन की सफलता मानता है। वह सर्वदा एकपत्नीव्रत धर्म का निर्वाह करता है। उसके लोकरक्षक रूप को ही इस गाथा में प्रधानता दी गई है।

कुँअरविजयी की लोकगाथा बहुत बड़ी होने पर भी कथावस्तु की जटिलता एवं चरित्रों के विस्तार एवं विविधरूपता की दृष्टि से 'लोरकाइन' से भिन्न है। कुँअरविजयी की गाथा आरम्भ से अन्त तक एक ही केन्द्र पर परिक्रमा करती है। वह है, कुँअरविजयी का, अपने पिता एवं भाई के शत्रु अपने ससुर और साले से बदला लेना।

---

१. भोजपुरी में इसकी संज्ञा 'विजयमल' भी है।—भोजपुरी लो० गा०, पृ० ४६।

इस गाथा[1] के परिचय के लिए इसका संक्षिप्त हिन्दी-रूपान्तर[2] दिया जाता है—

कुँअरविजयी बचपन से ही बड़ा शूरवीर था। इसकी माता का नाम घेघामन्ती, भाभी का सोनामन्ती और पिता का बाबू घोड़मल सिंह था। इसके गढ़ का नाम सोरंग-गढ़ था। यह अलि के मैदान में बच्चों के साथ खेला करता था। एक दिन गुल्ली-डण्डा के खेल में इसका बच्चों से झगड़ा हो गया। उनमें से एक ने कहा—'तू जन्म का ही शैतान है। तेरे विवाह में जो झगड़ा हुआ, वह आजतक तय नहीं हुआ। तेरे पिता, भाई और बावन लाख बराती आज भी बावनगढ़ में जेलखाना भुगत रहे हैं।' इसपर क्रोध में कुँअरविजयी ने अपना गुल्ली-डण्डा फेंका, जो बावनगढ़ के बुर्ज पर गिरा। इससे बावन बुर्ज टूट गये।

---

१. दे० म० लो० सा०, पृ० १६२–१७०।

२. कुँअरविजयी की लोकगाथा के तीन प्रतिरूप आदर्श भोजपुरी में मिलते है—(क) डॉ० ग्रियर्सन ने शाहाबाद जिले में बोली जानेवाली भोजपुरी-रूप को प्रस्तुत करने के लिए इसका पहला प्रतिरूप दिया था। यह जे० एस्० बी० १८८४ (१), पृ० ७४ में प्रकाशित है। इसमे इसका अँगरेजी-अनुवाद भी है। (ख) दूसरा प्रतिरूप दूधनाथ प्रेस, हवड़ा से प्रकाशित हुआ था। यह बाजारों और मेलों में मिलता है। (ग) तीसरा प्रतिरूप मौखिक रूप में उपलब्ध है।

इस लोकगाथा के तीनों भोजपुरी-प्रतिरूपों मे लगभग समानता है। कहीं-कहीं व्यक्तियों के नाम, घटनाओं एवं स्थानों के नामो में अन्तर है। भोजपुरी में उपलब्ध इस लोकगाथा का सारांश निम्नांकित पंक्तियों में प्रस्तुत है—

रोहतासगढ़ के राजा घुरुमल सिंह और उनकी रानी मैनावती के दो पुत्र थे—(१) बड़ा था धीरानन और (२) छोटा था विजयमल। बावनदेश के राजा बावन सूबेदार की बेटी 'तिलकी' थी, जिससे विजयमल का विवाह ठीक हुआ। तिलकी के भाई का नाम मानिकचन्द था। तिलकी के घर से बड़े धूमधाम से विजयमल के यहाँ तिलक आया। धीरानन ने बावनदेश के लोगों को हाथ-पैर धोने के लिए 'तेल' और पीने के लिए 'घी' दिया। इसपर मानिकचन्द ने इनलोगो से बदला लेने का मन में निश्चय कर लिया।

विजयमल की छप्पन लाख की बरात बावनदेश पहुँची। विवाह के बाद मानिकचन्द ने सभी बरातियों को माँडो में आने के लिए निमंत्रित किया। जैसे ही लोग माँडो में आये, मानिकचन्द ने कुँअरविजयी को छोड़ सबको जेल में बन्द करवा दिया। यहीं पर हिछल बछेड़ा (घोड़े का बच्चा) खड़ा था। उसके हाथ-पैर बँधे थे, और आँखो पर पट्टी थी, पर वह सब कुछ समझ रहा था। मानिकचन्द ने तिलकी की सखी चिल्हकी नाउन को आदेश दिया था कि वह विजयमल को आग में फेंक दे। पर, उसने चुपचाप हिंछल बछेड़े को खोलकर उसपर विजयमल को बैठा दिया और कहा—'यहाँ से उड़ जाओ।' विजयमल अपने गढ पहुँच गया। यहाँ हाहाकार मच गया।

विजयमल जब दस साल का हुआ, तब वह साथियो के साथ अस्सी मन की गुल्ली और अस्सी मन का डण्डा खेलने लगा। एक दिन उसने गुल्ली-डण्डा फेंका, तो बावनसूबे के महल पर गिरा। इसपर साथियों ने कहा—"जब तुम इतने वीर हो, तब क्यों नही अपने परिजनों का उद्धार करते हो।' विजयमल को अपने विवाह की घटनाएँ याद न थी। उसने घर आकर सारी बातों का पता लगाया। फिर, निश्चय किया कि सबको मुक्त करके ही वह रहेगा।

वह हिंछल बछड़े पर सवार होकर बावनदेश पहुँचा। वहाँ उसने भवरानन पोखरे पर अपना डेरा डाल दिया। तिलकी की सोलह सौ सखियाँ घड़ा लेकर पानी भरने आई, तो विजयमल ने

फिर, वह दौड़कर घर आया और माँ-भाभी से सच्चा हाल पूछने लगा। उसे माँ ने बताया—बारह साल पहले बावनगढ़ में तुम्हारी शादी हुई थी। तुम्हारे ससुर ने बावन लाख बरातियों को माँगा था, उसमें एक बराती घट गया। इसपर उसने सभी को जेलखाने में बन्द कर दिया। तबसे आजतक हमलोग तुमपर अपने जीवन के दिन काट रही हैं।' इसपर कुँअरविजयी बोला—"माँ, मुझे साधारण बालक न समझो। मैं 'कालभैरव' का अवतार हूँ। मुझे तलवार दो, मैं अकेला लड़ने जाऊँगा।" माँ ने बावन कोठरियों में रखी पिता की तलवारें दिखाईं, पर कुँअर को एक भी पसन्द न आई। तब माँ उसे लेकर लोहार के पास विशेष तलवार के लिए गई। लोहार ने कहा—'अकेला बालक किस प्रकार लड़ेगा?' पर, अन्त में बालक की जिद पर लोहार ने अस्सी मन की तलवार भेंट की। लोहार को प्रणाम कर कुँअर माँ के साथ मन्दिर गया। वहाँ 'देवी' ने उसे आशीर्वाद दिया।

फिर, उसे महल में वीरवेष धारण कराया गया—सिर पर लोहे का कवच, पीठ पर गैंड़े (एक जानवर की खाल) की ढाल, दोनों तरफ छुरी-कटारी, सिर पर केसरिया पगड़ी और हाथ में अस्सी मन की तलवार। तहखाने मे जाकर वह कूदकर हिछली घोड़ी की पीठ पर बैठ गया। फिर, उसने झुक-झुककर माँ और भाभी को प्रणाम किया और सबका आशीर्वाद लेकर बावनगढ़ चला।

बीच जंगल में उसे गोरखनाथ मिले, जिसके जूता पहने हुए चरण उसने छू दिये। गोरखनाथ ने आशीर्वाद दिया—'बेटा। तुम्हारी विजय अवश्य होगी, पर गौने के दिन तुम्हारी मृत्यु हो जायगी। पर, इसकी चिन्ता न करना। तुम्हारी भाभी सेनामन्ती की अँगुली में अमृत है, वही तुम्हें फिर जीवित करेगी।' तब कुँअर देवी के मन्दिर में गया। वहाँ आशीर्वाद मिला—"बेटा, निरन्तर मेरी छाया और सात सौ जोगिनियाँ

उनके घड़े तीर से फोड़ डाले। फिर, चिल्हकी आई। उसे विजयमल ने अपना परिचय एवं मन्तव्य बता दिया। तब तिलकी आई। उसके रूप को देखकर विजयमल मूर्च्छित हो गया। होश मे आने पर तिलकी ने उसे लौट जाने को कहा, पर विजयमल ने कहा—'मैं लक्ष्यपूर्त्ति के पहले नहीं लौटूँगा।'

विजयमल हिंछल पर चढ़कर नगर चला। उसने राजा की दासी का घडा फोड़कर झगड़ा खड़ा किया। फिर, राजा ने विजयमल को पकड़ने के लिए क्रमशः चार पहलवानों, जसराम और तीन सौ डोमड़ों को भेजा। पर, सब मारे गये। तब लाखों की सेना के साथ मानिकचन्द आया। विजयमल ने देवी का स्मरण करके युद्ध ठान दिया। हिंछल बछेड़ा आकाश में उडता फिर सेना मे दौड़ता था। इस प्रकार सारी सेना मारी गई। फिर, उसने गढ़ में प्रवेशकर तिलकी की सहायता से सभी परिजनों एवं बरातियों को जेल से मुक्त किया। तब वह गौना कराने महल में पहुंचा। इसी समय मानिकचन्द ने घातक प्रहार करके उसे मार डाला। हिंछल बछेड़ा उसे उडाकर देवी-मन्दिर में ले गया। देवी ने अपनी कनिष्ठांगुली चीरकर उसके मुँह में खून की बूँदें डाल दीं, जिससे वह जी उठा। फिर, क्षण भर में वह बावनगढ़ पहुँचा। उसने वहाँ के राजा तथा मानिकचन्द को कैद करके उन्हें आजीवन दण्ड भुगतने के लिए छोड दिया। बावनगढ़ को ध्वस्त कर दिया। तिलकी को लेकर रोहतासगढ़ आया। रोहतास में हर्ष छा गया।

—भो० लो०, पृ० ९७—१०३।

तुम्हारी सहायता करेंगी। तुम अपना पहला डेरा गिराना—'सैरो पोखरा' पर।' इसके बाद प्रणाम करके कुँअर बावनगढ़ पहुँच गया।

हिछली घोड़ी को अशोकवृक्ष में बाँधकर स्वयं वृक्ष की छाँह में बैठकर सोचने लगा—'किस भाँति युद्ध ठानूँ?' इसी समय सम्मुख उपस्थित होकर देवी ने उपाय बताया—'सैरो पोखरा की बगल में घनी फुलवारी है, उसका सारा फूल तोड़ लाओ। उन्हीं फूलों से रानी पूजा करती है। फूल लेने 'चिल्हकी' नामक नाउन और 'सलकी' नामक मालिन आयगी। उन्हीं फूलों के लिए तुम्हारी रानी तिलकदेई आयगी। पर, स्त्री से तुम होशियार रहना। फूल के ही बहाने युद्ध ठनेगा।'

कुँअर ने यही किया। 'चिल्हकी' और सलकी की दृष्टि कुँअर पर पड़ गई। उन्हे कुँअर पर सन्देह हो गया। बावनगढ़ के राजा ने जब समाचार सुना, तब क्रोध से भर गया।

इधर कुँअर ने राजा का तिरपनपट्टी बाजार लूट लिया। राजा का पुत्र मानिकचन्द सेना लेकर लड़ने आया, तो कुँअर ने उसका सिर काटकर बावनगढ़ में फेंक दिया। गढ़ मे हाहाकार मच गया। इस बीच कुँअर ने जेलखाने में घुसकर बावन लाख बरातियों के साथ बाप और भाई को सोरंगगढ़ विदा कर दिया। फिर, वह हिछली घोड़ी की पीठ पर मार-काट करता पहले फाटक पर पहुँचा। वहाँ से लड़ते हुए सत् ड्योढ़ी पर पहुँचा। वहाँ चारों ओर से फौजों से घिर गया, पर घड़ी-घण्टा में सारी फौज साफ हो गई। फिर, ससुर-दामाद में लड़ाई चली। ससुर मारा गया। सारा किला सुनसान हो गया। गढ़ स्त्रियों के चीत्कार से भर गया। कुँअर गढ़ के बुर्जो को तोड़ने लगा, तो रानी ने कहा—"क्यों तोड़ रहे हो? अब तो तुम बेटी-दामाद ही बच गये। गढ़ का राजपाट सँभालो।" कुँअर ने विनय से रानी को प्रणाम किया और कहा—"जैसी मेरी माँ, वैसी आप। अब आप जल्दी तिलकदेई को विदा कीजिए।" रानी तिलकदेई शृंगार करती हुई देवी को धन्यवाद देने लगी—"तुम्हारी ही कृपा से मेरा गौना हो रहा है। हे देवि! छप्पन प्रकार के भोजन से तुम्हारी पूजा करूँगी। तुम्हारी जोगिनियों को सात सौ पाठी दूँगी।"

रानी तिलकदेई को विदा कर जैसे ही कुँअर महल से निकला कि मर गया। तिलकदेई शोक से बेहोश हो गई। मानिकचन्द की बहू को गर्भ था। वह कुँअर से बदला लेने लगी। उसने कुँअर की लाश को काट-कूटकर कुँए में डाल दिया। हिछली घोड़ी सारी घटनाएँ जानती थी। वह तुरन्त सोरंगगढ़ उड़ गई। उसने सारा हाल कहा, तो वहाँ हाहाकार मच गया। सोनामन्ती हिछली के साथ बावनगढ़ पहुँची। उसने कुँअर को खोजा, तो मानिकचन्द की स्त्री बोली—"उनका संस्कार कर दिया।" रानी तिलकदेई बेहोश थी। पर, सोनामन्ती को सारे रहस्य का पता चल गया। उसने मानिकचन्द की पत्नी को मार डाला। कुँअर की लाश को कुँए से निकालकर उसपर अपनी अँगुली का अमृत छींटा। कुँअर जीवित हो गया। इसके बाद चारों ओर हर्ष छा गया। बावनगढ़ और सोरंगगढ़ का राजा कुँअर विजयी हुआ। कुँअर ने देवी की वन्दना की—"तुम्हारी कृपा से ही सब सफल हुआ है। देवी दुर्गा की जय हो।"

मगही-भोजपुरी गाथा में साम्य

'कुँअरविजयी' के भोजपुरी एवं मगही-प्रतिरूपों की कथावस्तु मे मूलभूत एकता है। दोनों के एक ही वर्ण्य विषय हैं। यथा—

१. कुँअरविजयी के विवाह मे उत्पन्न संघर्ष।

२. कुँअरविजयी की प्रतिज्ञा।

३. कुँअरविजयी द्वारा बावनगढ़ का ध्वंस।

४. कुँअरविजयी द्वारा कैदियों की मुक्ति।

५. तिलकी की विदाई।

यो कथा के विस्तार, पात्रों एवं स्थलों के नामादि में दोनों में अनेक स्थानो पर भिन्नताएँ है।

पात्र

मगही लोकगाथा में निम्नाकित पात्र आये हैं—

पुरुष-पात्र

कुँअरविजयी	—	नायक
राजा घोड़मल सिह	—	कुँअरविजयी का पिता
मानिकचन्द	—	कुँअरविजयी का साला

इनके अतिरिक्त लोहार, बावनगढ़ के राजा, कुँअरविजयी के भाई, ज्योतिषी, बनिया आदि पात्रों के कर्त्तृत्वो का वर्णन इस गाथा में हुआ है। इनका नामोल्लेख नहीं हुआ।

स्त्री-पात्रियाँ

घेघामन्ती	—	कुँअरविजयी की माता
सोनामन्ती	—	कुँअरविजयी की भौजाई
तिलकी	—	पत्नी (कुँअरविजय की)
चिल्हकी	—	रानी तिलकी की नाइन
सलकी	—	रानी तिलकी की मालिन

इनके अतिरिक्त, मानिकचन्द की पत्नी, बावनगढ़ के राजा की रानी आदि के कर्त्तृत्वों का वर्णन इस गाथा मे हुआ है। पर, इनका नामोल्लेख नहीं हुआ।

देव-पात्र

१. बाबा गोरखनाथ

२. देवी दुर्गा

३. सात सौ जोगिनियाँ

पशु-पात्र

हिछली घोड़ी	—	कुँअरविजयी की घोड़ी, जो अमानवीय शक्ति से सम्पन्न थी। नायक की सफलताओं में इसका बड़ा सहयोग है।

इस गाथा के सभी पात्र सजीव एवं वास्तविक दिखाई पड़ते हैं। इसमें भी पात्रों के दो वर्ग हैं—(१) सत् पात्र एवं (२) खल पात्र। सत्पात्र विजयी होते हैं। खल-पात्रों का नाश होता है।

सत्पात्रो में सुन्दर आदर्श प्रतिफलित होते दिखाई पड़ते हैं।

स्थान

इस गाथा में निम्नांकित स्थानों के उल्लेख हुए हैं—

१. सोरंगगढ़	—	कुँअरविजयी का महल।
२. अलि का मैदान	—	कुँअरविजयी के खेल का मैदान।
३. बावनगढ़	—	कुँअरविजयी के ससुर का महल, जिसमें जेलखाना, जनानी महल एवं विविध द्वार हैं।
४. सैरो पोखरा	—	बावनगढ़ का पोखरा
५. तिरपनपट्टी बाजार	—	बावनगढ़ का बाजार
६. लाल कचहरी	—	बावनगढ़ की कचहरी

●

षष्ठ अध्याय

मगही लोककथा

(अ) पूर्वपीठिका

मगध की जनता का जीवन ग्राम्य गल्पों से ओतप्रोत है। बालक होश सँभालते ही नानी-दादी से मनोरंजक कथाएँ सुनना आरम्भ करते हैं। इनके माध्यम से उनका चरित्र-निर्माण होने लगता है। कुछ बड़े होने पर वे नाना-दादा के चौपालों में कथा-कहानियों का वही सिलसिला देखते-सुनते हैं। इसके बाद वयस्क होने पर तो वे स्वयं कथाओं के भाण्डार हो जाते हैं। गृहदेवियाँ भी मांगलिक अवसरों पर कथा-कहानियाँ सुनती-सुनाती हैं। इस प्रकार, मौखिक परम्परा में ये कथाएँ सुरक्षित होती चली आ रही हैं।

इन कथाओं का बड़ा महत्त्व है। किसी घटना या परिस्थिति के समर्थन या विरोध के अवसर पर ये बहुत काम आती हैं। इनमें मात्र कल्पना की उड़ान नहीं, हृदय की वास्तविक अनुभूतियाँ संचित हैं। सुख के क्षणों मे ये हार्दिक अनुरंजन करती हैं, पर दुःख के क्षणों में इनसे नीति, शान्ति और धैर्य के सन्देश भी मिलते हैं। मगही जनता को अपने पूर्वजों से मौखिक परम्परा के रूप मे प्राप्त ये कथावैभव सर्वदा उसे साहित्यिक दृष्टि से समृद्ध बनाये रखने में समर्थ हैं।

भारतीय लोक-कथाओं का पूर्व परिचय

भारतवर्ष को कहानियो का देश कहा गया है। यहाँ लोक-कहानियों की साहित्यिक अभिव्यक्ति की एक अविच्छिन्न परम्परा दिखाई पड़ती है। विश्व-साहित्य का प्राचीनतम ग्रन्थ वेद है। उसके कितने ही वृत्त कहानी के रूप में हैं।[1] संस्कृत, पालि, प्राकृत और अपभ्रंश-भाषा-साहित्य में कथा की कला बीज रूप से विकसित होती हुई क्रमशः चरम सीमा पर पहुँचती दिखाई देती है। मगही कथा-साहित्य का उद्‌गम और विकास भी इन्हीं स्रोतों से हुआ है। अतः, अति संक्षेप मे भारत के प्राचीन कथा-साहित्य का अध्ययन अपेक्षित है।

भारत का प्राचीन कथा-साहित्य

विद्वानों ने प्राचीन कथा-साहित्य का आरम्भ ऋग्वेद से माना है। पर, इस महाग्रन्थ में कथाएँ बीजरूप में ही उपलब्ध हैं। दैवी शक्तियों की आराधना, पूजा-वन्दना, प्रशंसा आदि में कथित मन्त्रों के बीच में यदा-कदा कुछ ऐसे सूक्त आ जाते हैं, जिनमें कुछ पात्रों के कथोपकथन हैं। इनकी संज्ञा 'संवादसूक्त' है।[2] इनके अतिरिक्त, कुछ सामान्य

---

१. वैदिक कहानियाँ। हिन्दी में प्रकाशित।

२. 'वैदिक आख्यान' तथा 'दि संस्कृत ड्रामा': ले० जे० बी० कीथ।

स्तुतिपरक सूक्त हैं, जिनमें छोटे-छोटे मनोरंजक और शिक्षापूर्ण आख्यानो के संकेत मिलते है। यथा : 'पुरूरवा और उर्वशी' एवं 'यम-यमी' के आख्यान। इनसे कथा का उद्गम माना जा सकता है।

वैदिक साहित्य में वेद, आरण्यक, ब्राह्मण और उपनिषद् सभी सम्मिलित हैं। यदि सम्पूर्ण वैदिक साहित्य को लिया जाय, तो एक ही कथा बीजरूप मे वेद से चलकर आगे पूर्ण विकसित होती हुई दिखाई पड़ती है। यथा : ऋग्वेद मे शुनःशेप ने वरुण की प्रार्थना की है। ऋग्वेद में इसका कोई वृत्त नहीं मिलता। परन्तु, बाद में उपनिषदों तक जाते-जाते इसका एक विशेष कथानक बन गया है। इसमें वरुण ने हरिश्चन्द्र को रोहित इस शर्त्त पर दिया कि वह अपना पुत्र इसे देगा। जन्म होने के बाद रोहित वन मे चला गया। तब वरुण ने रोहित के स्थान पर बलि के लिए शुनःशेप का क्रय अजीगर्त्त को कुछ गौएँ देकर किया। विश्वामित्र ने वरुण से प्रार्थना कर उसे मुक्त कर दिया और अपना पुत्र बनाया। लोकवार्त्ता मे इस कथानक ने एक नया ही रूप धारण कर लिया। सम्भवतः, यही कहानी 'सत्य हरिश्चन्द्र' की प्रसिद्ध लोकगाथा बनी है। प्रायः वैदिक नाम सुरक्षित रह गये हैं। यथा —हरिश्चन्द्र हैं ही। रोहित, रोहिताश्व हो गया है। विश्वामित्र भी रह गये हैं। इसके बाद इसी वरुण-कथा ने 'सत्यनारायण' की कथा का रूप ले लिया है। इतना ही नहीं, वरुण-कथा ने विविध धार्मिक सम्प्रदायों मे विविध रूप धारण कर लिये हैं।[1] इनके अतिरिक्त, संस्कृत के अनेक आख्यान और आख्यायिकाएँ ऋग्वेद-संहिता से बीजरूप में आरम्भ होकर उपनिषदों, निरुक्त, बृहद्देवता, कात्यायन-सर्वानुक्रमणी और पुराणो से होती हुई पूर्ण हुई हैं।

आख्यानक-काव्य तथा पौराणिक कथाओं का उद्भव

उपर्युक्त कथा-तत्त्वों के बाद क्रमशः कथाओं का व्यापक प्रसार लोकजीवन में हो गया। फलतः, युग की माँग के अनुसार महर्षि वाल्मीकि और वेदव्यास जैसे मनीषियों ने लोक-जीवन से मूलकथा लेकर व्यापक कल्पना के योग से बड़ा आख्यान बनाया होगा। फिर, उन्हीं के आधार पर उन्होने रामायण और महाभारत जैसे आख्यानक-काव्यों[2] की रचना की होगी और उनमे अन्यान्य कथाओं की सुन्दर शृंखला बनाकर उन्हे महाकाव्य का रूप दिया होगा। इन महाकाव्यो मे आई कथाओं की विशेषता यही है कि इनमे इतिहास, धर्म और कल्पना तीनो का अपूर्व समन्वय मिलता है।

रामायण और महाभारत की गणना पुराणों में होती है। संस्कृत मे 'पुराण' शब्द का अर्थ 'पुराना आख्यान' है—'पुराणमाख्यानम्'। इन महाग्रन्थो के आख्यान तो पुरातन हैं ही। इनमे आये अनेक आख्यान बाद के सभी पुराणो मे विकसित होकर प्राचीन भारतीय साहित्य में पूर्णता तक पहुँच गये हैं।

१. विस्तृत तुलनात्मक अध्ययन के लिए दे० ब्र० लो० सा० अ०, पृ० ३७९–३९९।

२. आचार्य बुद्धघोष (५वीं शती) रामायण और महाभारत के सम्बन्ध में कहते है—'अक्खानं ति भारत रामायणादि।' (दी० नि०, अ० १।८४)।

रामायण और महाभारत में लोकवार्त्ता का रूप प्रकट हुआ है। उनमें प्रधान कथावस्तु के साथ अनेक आख्यान और उपाख्यान आये हैं, जो रामायण और महाभारत से भी पहले की लोकप्रचलित कथाएँ ही हैं। यथा--महाभारत के वनपर्व मे 'नल' की कथा। यह कथा आज भी किसी-न-किसी रूप मे लोकजीवन मे वर्त्तमान है। इसी प्रकार 'कर्ण' की कथा परिवर्त्तित रूप मे आज भी वर्त्तमान है। 'कर्ण' नदी में बहाया गया था और उसका पालन सूत द्वारा हुआ था। मगही मे ऐसी अनेक कथाएँ मिलती हैं, जिसमें राजा की प्रिय रानी की सन्तान को सपत्नियाँ नदी में बहवा देती हैं या कूड़े पर फेंकवा देती हैं। कोई गरीब उसे पा लेता है और पालन-पोषण करता है। फिर, बाद मे रहस्य खुलता है। राम, कृष्ण, शिव, भीम, अर्जुन, जरासन्ध आदि तथा सीता, रुक्मिणी, कौशल्या, कैकयी, अहल्या, गगा, पार्वती, कुन्ती, द्रौपदी आदि से सम्बद्ध अनेक लोककथाएँ परिवर्त्तित रूप में मगही एवं अन्य भाषाओं में प्रचलित हैं। इस सम्बन्ध मे यह स्मरणीय है कि रामायण और महाभारत में लोकवार्त्ता के अंश तो अवश्य वर्त्तमान हैं, पर वस्तुतः ये धर्म-गाथाएँ ही हैं। इनसे भारत की धार्मिक भावनाएँ सम्बद्ध हैं।

दन्तकथाओं का आरम्भ

पौराणिक कथाओं के प्रसार और विस्तार का यह परिणाम हुआ कि जनता में इनके प्रति रुचि जग गई। क्रमशः ये कथाएँ मौखिक हो गईं। इनके सादृश्य पर अनेक दन्तकथाएँ गढ़ी जाने लगीं, जिन्होंने परवर्त्ती कथा-साहित्य को बहुत प्रभावित किया। इसका प्रमाण यह है कि समस्त परवर्त्ती संस्कृत-कथाग्रन्थों मे पशु-पक्षी, देव-दानव, नदी-पहाड़, पेड-पौधे आदि समस्त चराचर सजीव चरित्र के रूप में आये है। दन्तकथाओं की इस शैली का व्यापक प्रभाव सर्वप्रथम बौद्ध जातक-कथाओं में उपलब्ध होता है।

जातक :

जातक-कथाओं का काल परवर्त्ती संस्कृत-कथा-साहित्य के पहले आता है।[१] इनमें बोधिसत्त्व के पाँच सौ सैंतालीस जन्मो की कथा चार भागों में वर्णित हैं--

१. पच्चुपन्नवत्थु	—	वर्त्तमान कथा।
२. अतीतवत्थु	—	पुनर्जन्म की कथा या अतीत कथा।
३. अत्थवण्णना	—	गाथाओं की व्याख्या।
४. समोधान	—	अन्त मे आनेवाला भाग, जिनमे बुद्ध बताते हैं कि पात्रो में कौन क्या था?

ये कथाएँ बौद्धधर्म के प्रचारार्थ लिखी गई थीं, फिर भी ये मानव-तत्त्व के बहुत निकट हैं। इनमें राजा, सेठ, साहुकार से लेकर दरिद्र, चोर, चाण्डाल आदि चर तथा नदी, पहाड़, पेड़-पौधे आदि अचर और सभी प्रकार के जीव-जन्तु तक सजीव पात्रों के रूप में आये हैं।

---

१. जातक प्रथम, भूमिका, पृ० २४ : भदन्त आनन्द कौशल्यायन।

जातक कथाओं के चार भागों मे विभाजित होने पर भी इनमें एक सुन्दर तारतम्य है। एक बात से एक स्वतन्त्र कथा का जन्म और फिर उससे अन्य कथा का जन्म होने की कला इनसे ही चली, जो सस्कृत के सुप्रसिद्ध कथासंग्रह 'कथा-सरित्सागर' और 'पंचतन्त्र' मे चरम सीमा तक पहुँचती है।

प्रायः समस्त जातक कथाओं मे अतीत कथा का आरम्भ इस वाक्य से होता है—

'पूर्वकाल में वाराणसी मे राजा ब्रह्मदत्त राज्य करते थे।' सम्भवतः, कथा आरम्भ करने की यह कलात्मक टेक थी, जो अब भी अनेक भारतीय भाषाओ एवं अँगरेजी मे जीवित है। यथा —

मगही—'एगो जमाना मे मुलुक-मुलुक के बीच एगो राजा रहऽ हलन।'

उर्दू—'एक दफा का जिक्र है कि ..'

अँगरेजी—'वंस अपॉन ए टाइम' (Once upon a time)

संस्कृत का परवर्त्ती कथा-साहित्य

संस्कृत के प्राचीन कथा-साहित्य मे 'बृहत्कथा' प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि ईसा की प्रथम शताब्दी में गुणाढ्य नामक किसी पण्डित ने पैशाची भाषा में इसकी रचना की थी। यह कथा-ग्रन्थ अब अप्राप्य है।

प्राप्य कथा-ग्रन्थों में संस्कृत के 'बृहत्कथाश्लोक', कथासरित्सागर, वेताल-पंचविंशतिका, शुकसप्तति, सिंहासन-द्वात्रिंशिका, पंचतन्त्र और हितोपदेश महत्त्वपूर्ण हैं। बृहत्कथाश्लोक की सम्पूर्ण कथाएँ श्लोकों मे ही आयी हैं। कथासरित्सागर, भारतीय कथा-रूपी नदियों के लिए वास्तव में समुद्र है। इसमे पुराणों की शैली मे एक श्रोता है और एक वक्ता—कथाकार। यह मूलकथा आरम्भ करता है, उसीसे अन्य कथाएँ निकलती हैं। कथासरित्सागर की कथाएँ उपदेशात्मक और मनोरंजक दोनों हैं। वेतालपंचविंशतिका का हिन्दी-अनुवाद 'बैतालपचीसी' के नाम से हो चुका है। इसमें पच्चीस कथाओं का संग्रह है, जो राजा विक्रम से सम्बद्ध हैं। इन कथाओ का वक्ता शव में बसा हुआ एक बैताल है, जो अपने श्रोता राजा विक्रमादित्य को अपने हठ से तंग करता है। अन्त में एक रहस्य का उद्घाटन करके, वह राजा का बड़ा कल्याण करता है। शुकसप्तति में सत्तर कथाएँ हैं। इसमे वक्ता तोता, श्रोता (अपनी पत्नी) मैना से सारी कथाएँ कहता है। इसका हिन्दी-अनुवाद 'तोता-मैना' के नाम से प्रसिद्ध है। सिंहासन-द्वात्रिंशिका का हिन्दी-अनुवाद 'सिंहासनबत्तीसी' नाम से हुआ है। इसमे विक्रमादित्य के सिंहासन में लगी बत्तीस पुतलियों द्वारा राजा भोज (श्रोता) को सुनाई गई बत्तीस कथाएँ हैं। सभी कथाओं में महाराज विक्रमादित्य की महत्ता, शौर्य, त्याग आदि गुणो का वर्णन है।

संस्कृत के उपर्युक्त कथा-संग्रह, कथा-साहित्य के स्तम्भ हैं। इनके आधार पर अनेक कथाएँ गढ़ी गईं। विद्वानों का अनुमान है कि हिन्दी-भाषी प्रदेशों में जितनी भी दन्तकथाएँ और लोककथाएँ प्रचलित हैं, उनका मूल स्रोत उपर्युक्त कथा-संग्रह ही है।

नीति-सम्बन्धी कथा-संग्रह

पंचतन्त्र एवं हितोपदेश मे नीति-सम्बन्धी अमूल्य कथाओं का संग्रह है। उपर्युक्त 'कथासरित्सागर' आदि कथा-ग्रन्थों से पंचतन्त्र और हितोपदेश का उद्देश्य भिन्न है। कथासरित्सागर आदि का प्रमुख उद्देश्य मनोरंजन है, जबकि पंचतन्त्र तथा हितोपदेश का धर्म तथा राजनीति की शिक्षा देना ही प्रथम लक्ष्य है।

पंचतन्त्र :

पचतन्त्र को भारतीय कथा-साहित्य का समुद्र कहा जाता है। वस्तुतः, पंचतन्त्र न केवल भारतीय साहित्य को, अपितु विश्व-साहित्य को संस्कृत की अभूतपूर्व देन है। इसी से संसार की अनेक भाषाओं मे इसका अनुवाद किया गया। पंचतन्त्र की कथाओं का प्रभाव विश्व के कथा-साहित्य पर बहुत अधिक पड़ा है।[1]

पंचतन्त्रीय कथाएँ, पशु-पक्षियों के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से मानव-जीवन की नीति-दशा पर प्रकाश डालती हैं। प्रायः सभी कथाओं के कथाकार पशु-पक्षी है एवं कथाओं के पात्र जड-चेतन है। ये कथाएँ अपनी शिल्पविधि के रूप में कथासरित्सागर की कथाओं की भाँति है, अर्थात् कथा में कथाएँ जुड़ती जाती हैं और एक कथा से दूसरी कथा की उत्पत्ति और विकास होता जाता है। सब कथाएँ उपदेशात्मक शैली में कही गई हैं, यद्यपि कथाओं का रूप वर्णनात्मक है।

हितोपदेश की कथाएँ :

हितोपदेश का मूलाधार पंचतन्त्र है। इसमें भी नीति-कथाएँ है। इसकी लगभग आधी कथाएँ पंचतन्त्र से ही ली गई हैं। इसमे कुल अड़तीस कथाएँ हैं, जिनमें अनेक शिक्षाएँ और उपदेश भरे हैं। इन शिक्षाओ एवं उपदेश के उदाहरण तथा इनकी परि-पुष्टि में अनेक कथाएँ, उपकथाएँ एवं अन्तःकथाएँ आती हैं। इन सबके पात्र प्रायः पशु-पक्षी हैं। समस्त देव-अदेव पात्र उपदेश तथा शिक्षाप्रद कथाएँ कहते हैं।

पंचतन्त्र एवं हितोपदेश में मनोरंजन का अभाव नहीं है, पर मुख्य उद्देश्य शिक्षा ही है। मगही की लोककथाओं पर इन दोनों ग्रन्थों की नीतिकथाओं का स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है। अनेक लोककथाएँ ऐसी मिलती हैं, जिनमे पशु-पक्षी प्रत्यक्ष रूप से मानव-जीवन की विविध परिस्थितियों पर प्रभाव डालते हैं। यथास्थान मगही की ऐसी कथाओं के उदाहरण प्रस्तुत किये जायेंगे।

प्राकृत एवं अपभ्रंश में कथा-तत्त्व

संस्कृत की तरह प्राकृत में भी अनेक मुक्तक और प्रबन्ध-काव्य उपलब्ध होते हैं। पर इनमें आख्यान के तत्त्व बहुत कम मिलते हैं। महाराष्ट्री प्राकृत मे 'कौतूहल'-रचित 'लीलावतीकथा' का स्थान आख्यानक-काव्यो में महत्त्वपूर्ण है। इसकी कथा बड़ी

---

१. पंचतन्त्र के, विविध भाषाओं में अनुवादों एवं प्रभाव के विस्तृत अध्ययन के लिए देखिए 'हि० स० लि०', पृ० २४४–२०८ : डॉ० कीथ अथवा 'सं० सा० इ०', पृ० ३०६–३१० : प्रो० बलदेव उपाध्याय।

मनोरंजक है। इसमें मुख्य कथा के अन्तर्गत और कथाएँ भी आई हैं। इसपर संस्कृत के उपर्युक्त कथाग्रन्थों की कथाशैली का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है।

अपभ्रंश में साहित्य और कला की दृष्टि से जैन अपभ्रंश का स्थान सर्वोपरि है। इसमें अधिकांश में मुक्तक काव्य और कथाएँ मिलती हैं। आख्यानक-काव्य की दृष्टि से इसमें प्रेम-कथा 'पउमिसिरि चरिउ' (पद्मश्रीचरित्र) धाइल्ल कवि की महत्त्वपूर्ण कृति मिलती है। इसके अतिरिक्त श्रीचन्द के एक कथाकोष का भी पता मिलता है। विद्वानों का कहना है कि इसमे मनुष्य, देव, पशु-पक्षी आदि पात्रो के माध्यम से अनेक उपदेशात्मक कथाएँ कही गई है। इसपर स्पष्ट रूप से जातक और पंचतन्त्र का प्रभाव है।

जैन अपभ्रंश-साहित्य में महाभारत की कथा से सम्बद्ध अनेक कहानियाँ मिलती हैं। इनमे यशःकीर्त्ति का 'हरिवंशपुराण' सबसे महत्त्वपूर्ण है।

प्राकृत और अपभ्रश के कथा-तत्त्वो का मगही कथाओं मे अनेक स्थलो पर प्रभाव दिखाई पड़ता है।

इस प्रकार, भारत के प्राचीन कथा-साहित्य के अवलोकन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि वैदिक युग से आजतक कथा-साहित्य की अविच्छिन्न धारा प्रवाहित हो रही है। कथा के दो प्रधान उद्देश्य भी प्राचीन काल से ही चले आ रहे हैं—१. मनोरंजन एवं २. उपदेश और शिक्षा।

भारतीय भाषाओं की लोक-कथाओं का संग्रह

भारतीय लोक-कथाओं के संग्रह की दिशा में जो कार्य अभी तक किये गये है, उनका सक्षिप्त विवरण दिया जाता है—

बँगला : बँगला-साहित्य में इस दिशा मे अच्छे प्रयत्न हुए हैं। डॉ० दिनेशचन्द्र सेन ने 'फोक लिटरेचर ऑव बेंगाल' लिखा है, जिसमे इस भाषा मे सगृहीत लोककथा-सम्बन्धी पुस्तकों का प्रामाणिक वर्णन उपस्थित किया गया है। डॉ० सेन वस्तुतः बॅगला-लोक-साहित्य के उद्धारकर्त्ता है। उनकी सेवाएँ अमूल्य हैं।

राजस्थानी : पं० सूर्यकरण पारीक ने 'राजस्थानी वार्त्ता' नाम से राजस्थानी लोक-कहानियों का संग्रह प्रकाशित किया है। इसमे शुद्धता एवं मौलिकता सुरक्षित है। इस संग्रह से राजस्थान के लोक-जीवन के अध्ययन में बडी सहायता मिलती है।

गुजराती : श्रीझबेरचन्द्र मेघाणी ने गुजरात की अनेक लोककथाओ का संग्रह कर, उन्हें कई जिल्दों में प्रकाशित किया है। इनमे 'सोराष्ट्रीनी रसधार' प्रसिद्ध है। यह पुस्तक पाँच भागों मे प्रकाशित हुई है।[1] इनमे समस्त सौराष्ट्र-प्रदेश की लोक-कथाओ

---

१. गुर्जर ग्रन्थरत्न-कार्यालय, गान्धी रोड, अहमदाबाद से प्रकाशित।

का संग्रह है। इनकी अन्य पुस्तक 'सोरठी बहार बटिया' है, जो तीन भागों में प्रकाशित हुई है।[1] इनके अतिरिक्त 'कुरजानीनी कथाओ' में कुछ कहानियों का सग्रह है।[2]

व्रजभाषा : व्रजभाषा-प्रेमियों ने 'व्रजसाहित्य-मण्डल' की स्थापना कर लोक-साहित्य-संग्रह और संरक्षण की दिशा मे अच्छे कार्य किये। इसके तत्त्वावधान मे डॉ० सत्येन्द्र की 'व्रज की लोक-कहानियाँ' नामक पुस्तक प्रकाशित हुई है।[3] इसमे व्रज मे प्रचलित लोककथाओं का सुन्दर संग्रह किया गया है। डॉ० सत्येन्द्र ने 'पोद्दार-अभिनन्दन ग्रन्थ' मे भी व्रज की इकतीस (३१) लोककथाएँ प्रकाशित करायी है।

बुन्देली : श्रीकृष्णानन्द गुप्त के प्रयास से 'लोकवार्त्ता-परिषद्' के तत्त्वावधान मे 'लोकवार्त्ता' नामक पत्रिका प्रकाशित होती थी। उसमे कुछ बुन्देलखण्डी लोककथाओं का प्रकाशन हुआ था। 'बुन्देलखण्ड की ग्राम्य कहानियाँ' नामक कथा-संग्रह हाल मे श्रीशिवसहाय चतुर्वेदी ने प्रकाशित कराया है।

लोक-कथाओं के कुछ और उल्लेखनीय सग्रह निम्नांकित है—

संग्रह	लेखक
१. पाषाणनगरी	श्रीशिवसहाय चतुर्वेदी
२. गौने की विदा	श्रीशिवसहाय चतुर्वेदी
३. आदि हिन्दी की कहानियाँ और गीत	म० म० राहुल सांकृत्यायन
४. मालवा की लोककथाएँ	श्रीश्याम परमार
५. कश्मीर की लोककथाएँ	श्रीनन्दलाल चत्ता
६. विन्ध्यप्रदेश की लोककथाएँ	श्रीचन्द्र जैन

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने भोजपुरी लोककथाओ का संग्रह कर उनका विवेचन-विश्लेपण 'भोजपुरी-लोक-साहित्य का अध्ययन' मे भी किया है। मोतीहारी (बिहार) के श्रीगणेश चौबे के पास भी भोजपुरी-कहानियों का अच्छा संकलन है।

कुछ पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय लोककथाओं के लघु संग्रह एवं उनके विवेचन आदि प्रकाशित किये गये हैं। यथा—

१. 'आजकल' का लोककथा-अंक	—	सन् १९५४ ई० (बनारस से प्रकाशित)
२. 'हंस' नामक पत्र मे	—	छत्तीसगढ़ी ग्राम्य कथाएँ, सितम्बर १९४० ई०, ले० श्रीश्यामाचरण दूबे।

विदेशी विद्वानो ने भी लोककथा-संग्रह की दिशा में कुछ कार्य किये हैं। इनमे डॉ० ग्रियर्सन का नाम सर्वप्रथम है। इन्होंने 'लिंग्विस्टिक सर्वे ऑव इण्डिया' के विविध जिल्दों मे भारतीय भाषाओं के नमूनों के रूप में अनेक लोक-कथाएँ दी हैं। इनके

१. गुर्जर ग्रन्थरत्न-कार्यालय (वही) से प्रकाशित।

२. वहीं से प्रकाशित।

३. व्रजसाहित्य-मण्डल, मथुरा से प्रकाशित।

अतिरिक्त उनकी 'सेवन ग्रामर्स ऑव दि डाइलेक्ट ऐण्ड सबडाइलेक्ट ऑव बिहारी लैंग्वेजेज़' नामक पुस्तक-खण्डों के परिशिष्टों में क्षेत्रीय भाषाओं की कुछ लोक-कथाएँ नमूने के रूप में संगृहीत हैं। इस व्याकरण के तीसरे भाग में सत्रह मगही लोक-कथाएँ एवं छठे भाग में 'दक्षिणी मैथिली-मगही' की कुछ कथाएँ संगृहीत हैं।

इनके अतिरिक्त अन्य विदेशी विद्वानों ने भी इस दिशा में प्रयत्न किये हैं। यथा—

रचना	लेखक
१. ओरल टेल्स ऑव इण्डिया	स्टिथ टॉमसन
२. लीजेण्ड्स ऑव दि पंजाब	स्विनर्टन
३. मिथ्स ऑव मिडिल इण्डिया	डॉ० एलविन
४. फोक टेल्स ऑव महाकोशल	वेरियर एलविन
५. एण्टीक्वीटीज ऑव राजस्थान	कर्नल जेम्स टाड। आदि।

मगही लोककथाओं के संग्रह की दिशा में अभी तक कोई उल्लेखनीय कार्य मेरी दृष्टि में नहीं आया। इन पंक्तियों की लेखिका के पास इनका एक अच्छा निजी संग्रह है। इनमें से कुछ का ही व्यवहार मगही लोककथाओं के अध्ययन-क्रम में करना सम्भव हो सका है।

लोक-कथाओं का वर्गीकरण

लोक-कथाएँ सारे विश्व में प्रचलित रही हैं, इसलिए विविध विद्वानों ने समय-समय अपने-अपने ढंग से इनको विविध श्रेणियों में वर्गीकृत किया है। यथा—

प्राचीन भारतीय विद्वानों के वर्गीकरण :

भामह ने कथाओं को दो भागों में बाँटा है—१. कथा—इस वर्ग की कथाओं में कवि-कल्पना की प्रधानता होती है। यथा : बाणभट्ट की कादम्बरी और दण्डी का दशकुमारचरित। २. आख्यायिका—इस वर्ग में वे कथाएँ आती हैं, जिनका मूलाधार ऐतिहासिक इतिवृत्त होता है। यथा : बाण का हर्षचरित।

दण्डी का विभाजन भी भामह से साम्य रखता है। आनन्दवर्धनाचार्य ने कथा के तीन भेदों के उल्लेख किये हैं—

१. परिकथा — इसमें केवल इतिवृत्त होता है। साथ ही वृत्तान्तों की विचित्रता होती है।

२. सकलकथा — इसमे कथा आरम्भ (बीज) से अन्त (फल) तक चलती है।

३. खण्डकथा इसमें कथा के किसी एक खण्ड की प्रधानता होती है।

हरिभद्राचार्य का वर्गीकरण निम्नांकित है—

१. अर्थकथा — इसमें प्रथम लक्ष्य अर्थ की उपलब्धि होती है।

२. कामकथा — इसमे मूल विषय प्रेम होता है।

३. धर्मकथा — इसमें धार्मिक आख्यानों को प्रमुखता दी जाती है।

४. संकीर्णकथा — इस कथा-वर्ग के प्रेमियो को दोनो लोको की इच्छा रहती है।

दीर्घनिकाय के ब्रह्मजालसुत्त में कथाओं के भेदों की निम्नाकित तालिका दी गई है -

१. राजकथा
२. महाभारतकथा
३. चोरकथा
४. सेनाकथा
५. भयकथा
६. युद्धकथा
७. अन्नकथा
८. पानकथा
९. वस्त्रकथा
१०. शयनकथा
११. मालाकथा
११. गन्धकथा
१३. जातिकथा
१४. यानकथा
१५. ग्रामकथा
१६. जनपद-कथा
१७. स्त्रीकथा
१८. पुरुष-कथा
१९. शूरकथा
२०. विशिखा-कथा
२१. कुम्भकथा
२१. पूर्वप्रेत-कथा
२३. निरर्थक कथा
२४. लोकाख्यायिका
२५. समुद्राख्यायिका

पाश्चात्य विद्वानों के वर्गीकरण .

पाश्चात्य विद्वानों ने वर्ण्य विषय की दृष्टि से लोक-कथाओं के कई विभाग किये है। यथा—

१. साधारण कथा (फोक टेल)

२. कल्पित कथा (फेबुल)

३. परियों की कथा (फेयरी टेल्स)

४. दन्तकथा (लीजेण्ड)

५. पौराणिक कथा (मिथ)

१. साधारण कथा : इस वर्ग में ग्राम्य जीवन से सम्बद्ध सामान्य कथाएँ आती हैं।

२ कल्पित कथा : इस वर्ग की कथाओं मे पशु-पक्षी को पात्रत्व प्रदान करके, उनके माध्यम से कोई उपदेश दिया जाता है।

भारत मे प्राचीनतम 'फेबुल्स' पाये जाते हैं। पंचतन्त्र, हितोपदेश आदि की पशु-पक्षी-सम्बन्धी अनन्त कहानियाँ इसी वर्ग में आती है। कहानियो की यह परम्परा सभी भारतीय भाषाओ मे आधुनिक काल तक चल रही है।

३. परियों की कथा : परियों, अप्सराओं और अन्य मानवेतर पात्र-सम्बन्धी भारतीय लोककथाएँ अँगरेजी में 'फेयरी टेल्स', जर्मन-भाषा में 'मार्शेन' तथा स्वेडिश भाषा मे 'सागा' कहलाती हैं।

ये मानवेतर पात्र कभी मानव का अपकार और कभी उपकार करते दिखाई पड़ते हैं। परियाँ कभी मानव को परलोक-यात्रा कराती देखी जाती हैं और कभी उनके लिए धरती पर उतरती देखी जाती हैं। यथा—महर्षि विश्वामित्र की तपस्या भंग करने के लिए मेनका नामक अप्सरा स्वर्ग से धरती पर आती है। फिर, वहीं विपत्ति में शकुन्तला को दिव्यलोक मे भी ले जाकर उसकी सहायता करती है।

४. दन्तकथा : इस वर्ग की कथाओं में तथ्य (फैक्ट) तथा परम्परा (ट्रेडिशन) दोनों का समन्वय रहता है। दन्तकथा किसी सत्य घटना के रूप में कही जाती है। यह प्रधानतया किसी सज्जन, साधु या वीर पुरुष का जीवन-चरित्र या गाथा होती है। यथा—'गोल्डेन लीजेण्ड ऑव जेकोब्स डि वोरोजिन' नामक ग्रन्थ, जिसमे सन्तो की जीवनियाँ संकलित है। फिर, बाद मे 'दन्तकथा' ऐतिहासिक तथ्यों पर आधृत कथाओं को भी कहा जाने लगा। यथा—भारतीय लोक-साहित्य मे प्रचलित राजा विक्रमादित्य के न्याय की कथाएँ।

५. पौराणिक कथा : इस वर्ग मे वे कथाएँ आती हैं, जो किसी युग में घटित दिखाई गई हैं। इन कथाओं के अन्तर्गत किसी देश के धार्मिक विश्वास, प्राचीन वीरो, देवी-देवताओं, जनता की अलौकिक तथा अद्भुत परम्पराओ तथा सृष्टि-रचना का वर्णन होता है।[1]

भारतीय पुराणों की सृष्टि-सम्बन्धी कथाएँ—देवासुर-संग्राम, समुद्र-मन्थन की कथा, भगवान् के विभिन्न अवतारों की कहानियाँ आदि—'मिथ' कही जा सकती हैं।

आधुनिक भारतीय विद्वानों का वर्गीकरण :

प्राचीन भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के वर्गीकरणों के आधार पर आधुनिक भारतीय विद्वानों ने लोककथाओं के नवीन वर्गीकरण अपने-अपने ढंग से किये हैं। यथा—डॉ० दिनेशचन्द्र सेन ने बंगाल की लोक-कहानियों को चार भागो मे बाँटा है[2]—

---

१. मेरिया लीच : डिक्शनरी ऑव फोकलोर, भाग २, पृ० ७७८।

२. डॉ० सेन : फोक लिटरेचर ऑव बंगाल।

१. **रूपकथा :** (Supernatural tales) इसमें किसी मानवेतर, अप्राकृतिक और अद्‌भुत वस्तु का वर्णन होता है।

२. **हास्यकथा :** (Humorous tales) इसमें हास्यरस की प्रधानता रहती है।

३. **व्रतकथा :** (Religious tales) इसमें धर्मभाव को प्रधानता दी जाती है। ये कथाएँ व्रत-त्योहार आदि के अवसर पर विशेष रूप से कही जाती हैं।

४. **गीतकथा :** ये कथाएँ, बालकों को पालने में झुलाते समय कही जाती हैं। अँगरेजी में ऐसी कथाओं को 'क्रेडेल टेल्स' (Cradle tales) या 'नरसरी टेल्स' (Nursery tales) कहते हैं।

डॉ० सत्येन्द्र ने व्रज की लोककथाओं को निम्नांकित वर्गों[1] में बाँटा है—

१. गाथाएँ।

२. पशु-पक्षी सम्बन्धी अथवा पंचतन्त्रीय कथाएँ।

३. परी की कहानियाँ।

४. विक्रम की कहानियाँ (Adventures)।

५. बुझौवल-सम्बन्धी कहानियाँ।

६. निरीक्षण-गर्भित कहानियाँ।

७. साधु-पीरों की कहानियाँ (Hagiological)।

८. कारण-निर्देशक कहानियाँ (Acteological)।

९. बाल-कहानियाँ।

इनमे संख्या १ से ४ तक की सभी कहानियाँ गाथाओं के अन्तर्गत मानी गई हैं।[2]

५. बुझौवल की कहानियों के दो भेद हैं—(१) इनमें कुछ समस्याएँ या नीति की बातों को सुलझाने तथा परीक्षण करने का उद्योग होता है। (२) इनमें समस्याएँ या पहेलियाँ शर्त्त के रूप में आती हैं, जिन्हें हल करने पर अभीप्सित वस्तु मिल जाती है।

---

१. व्र० लो० सा० अ०, पृ० ८३।

२. 'पशु-पक्षियों तथा पंचतन्त्रीय' कहानियो के दो प्रकार माने गये हैं—प्रथम, साभिप्राय, जिनसे कोई शिक्षा मिलती है द्वितीय। वे कहानियाँ, जिनसे कोई शिक्षा नही प्राप्त होती है। 'पुरी' की कहानियों के भी कई वर्गों का उल्लेख हुआ है—(१) वे कहानियाँ, जो यथार्थ में परियों, अप्सराओं दिव्यकन्याओ और विद्याधरियो से सम्बद्ध है। (२) वे कहानियाँ, जो दानवो से सम्बद्ध है। (३) वे कहानियाँ, जो डाइनों और जादू-चमत्कारों से सम्बद्ध है। 'विक्रम' की कहानियो में वीर नायकों का चरित्र दिखाया जाता है। ये वीर नायक भी दो प्रकार के हो सकते है— (क) इतिहास-पुरुषाश्रित (अवदान) और (ख) अनैतिहासिक पुरुषाश्रित।

—व्र० लो० सा० अ०, पृ० ८३-८४।

६. निरीक्षण की कहानियों में किसी के स्वभाव, धर्म आदि के सम्बन्ध में उपलब्ध ज्ञान का उल्लेख रहता है। ये कहानियाँ प्रायः चुटकुले का रूप धारण कर लेती हैं। जाति-सम्बन्धी कहानियाँ इसी वर्ग में आती हैं।

७. साधु-पीरों की कहानियों में साधु-सन्तों की कहानियाँ वर्णित होती हैं। इनमें साधु-पीरो द्वारा किये गये चमत्कारों का भी उल्लेख रहता है।

८. कारण-निर्देशक कहानियों में किसी व्यापार का कारण प्रकट किया जाता है।

९. बाल-कहानियाँ—इनमें बाल-मनोवृत्ति का उल्लेख, कौतूहल-प्रदर्शन, कहानी की पुनरावृत्ति आदि बातें रहती हैं।

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने डॉ० सत्येन्द्र के उपर्युक्त आठ वर्गों का अन्तर्भाव करते हुए लोककथाओ के वर्ण्य विषय की दृष्टि से निम्नांकित वर्गीकरण किये हैं[1]—

१. उपदेश-कथा,

२. व्रतकथा,

३. प्रेमकथा,

४. मनोरंजन-कथा,

५. सामाजिक कथा,

६. पौराणिक कथा तथा

७. वर्णनात्मक कथा[2]।

उपर्युक्त वर्गीकरणों से स्पष्ट है कि उनके मुख्य आधार वर्ण्य विषय ही हैं।

मगही लोककथाओं का वर्गीकरण

जहाँतक मगही लोककथाओं के वर्गीकरण का प्रश्न है, इसमें कठिनाइयाँ हैं। कारण ये अभी तक मौखिक परम्परा के रूप में ही चल रही हैं। इनका कोई प्रामाणिक संग्रह नहीं प्रकाशित हुआ। ऐसी स्थिति में मेरे अध्ययन का मुख्य आधार मगही लोक-गाथाओं का निजी संग्रह है। मगही कथाओ की मूल प्रवृत्तियों एवं वर्ण्य विषय को दृष्टिपथ में रखते हुए इन्हें यथानिर्दिष्ट वर्गों मे बाँटा जा सकता है—

---

१. लो० सा० भू०, पृ० १२६।

२. भो० लो० सा० अ०।

मगही लोक-कथाओं का वर्गीकरण[1]

- उपदेशात्मक कथाएँ
  - धर्मविषयक
  - नीतिवि०
  - भाग्यवि०
  - दुर्जनवि०
  - बुद्धिवि०
- व्रत-त्योहार सम्बन्धी कथाएँ
- सामाजिक कथाएँ
  - जाति-सम्बन्धी
  - मित्र, प्रेम-विग्रह-सं०
  - परिवार-सम्बन्धी
    - पुरुष-सम्बन्धी
    - स्त्री-सम्बन्धी
- मनोरंजन सं० कथाएँ
  - अभिप्राय-प्रधान
  - शुद्ध मनोरंजन-प्रधान
  - हास्य-प्रधान
- प्रेमात्मक कथाएँ / काल्पनिक कथाएँ
  - पारिवारिक
  - अलौकिक प्रेमी-प्रेमिका
- साहस पराक्रम-सं० क० / पौराणिक कथाएँ
  - इतिहास-पुरुषाश्रित (अवदान)
  - अनैतिहासिक पुरुषाश्रित
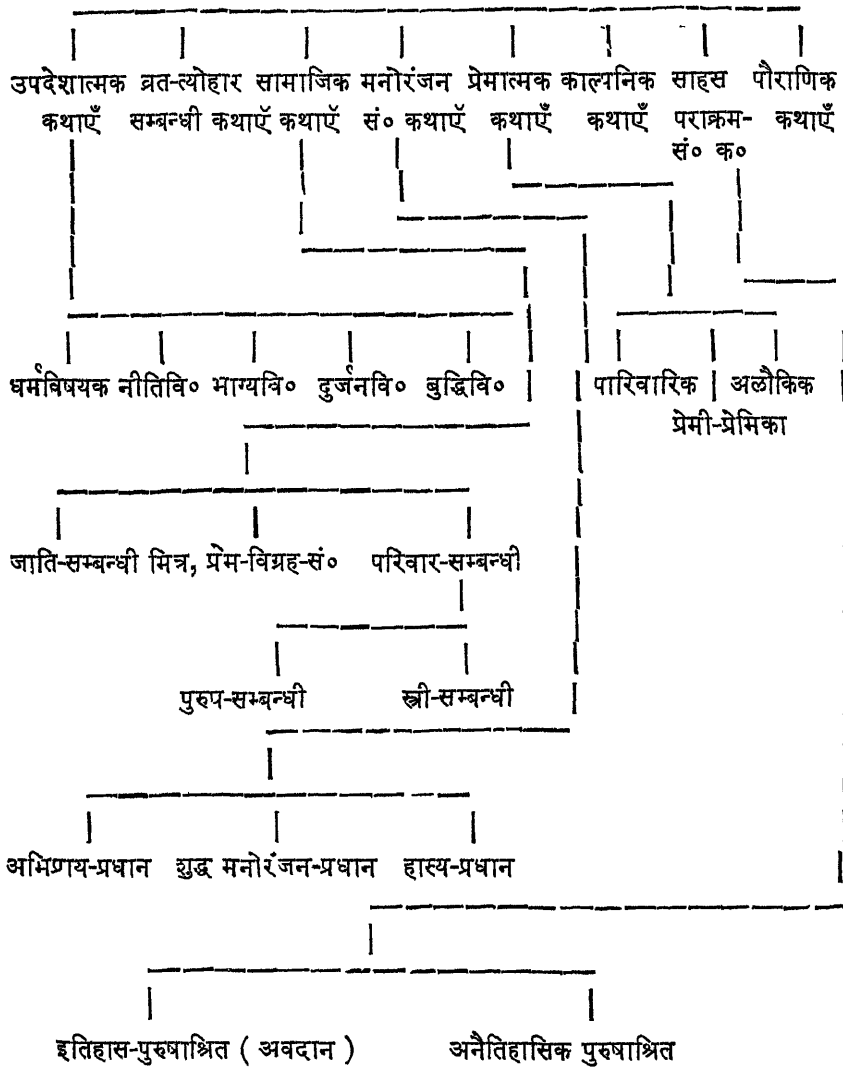
(आ) मगही लोककथाओं का अध्ययन

उपदेशात्मक कथाएँ

यों तो मगही में उपलब्ध अधिकांश कथाओं का उद्देश्य किसी-न-किसी सन्देश को प्रेषित करना है, पर उनमें वर्त्तमान केन्द्रीय तत्त्व की प्रमुखता के आधार पर ही उनका वर्गीकरण किया गया है। उपदेशात्मक वर्ग में आनेवाली कथाओं में उपदेशों

१. मेरे ग्रन्थ 'मगही लोक-साहित्य' में कुछ मगही लोककथाएँ दी गई हैं। वहाँ भाषा-तत्त्व की दृष्टि से कथाएँ संगृहीत हुई हैं, इसलिए कथावर्गों का उल्लेख नहीं हुआ है। —लेखिका

एवं सन्देशों की प्रधानता रहती है। इसीसे उन्हें इस वर्ग में रखा गया है। इस वर्ग की कथाओं को डॉ० सत्येन्द्र ने 'गाथा'[1] नाम से अभिहित किया है।

उपदेशात्मक कथाओं की भी कई श्रेणियाँ होती हैं।

१. धर्मविषयक[2] :

इनमे ईश्वर, पाप, पुण्य, धर्म, भक्ति, विश्वास आदि के विश्लेषण होते हैं। इन कथाओ में दैविक चमत्कारों की योजना, मानव-हृदय को प्रभावित करने के उद्देश्य से, अवश्य होती है। इनके माध्यम से मानव के शंकाशील हृदय में निःशंक भाव भरने का प्रयत्न होता है। यथा :

मगही की 'पुण्य की जय' नामक कथा में पुण्य का माहात्म्य दरसाया गया है। इसमें पुण्य की जय माननेवाले एक ब्राह्मण और पाप की जय माननेवाले एक दुसाध की प्रतिद्वन्द्विता दिखाई गई है। दुसाध द्वेष में ब्राह्मण की आँखें फोड़ देता है। वह भाग्य का मारा ससरता हुआ एक पीपल के पेड़ पर चढ़कर बैठ जाता है। रात्रि में उसके नीचे एक सर्प, एक बाघ और एक गीदड़ इकट्ठे होते हैं। इन जीवों की अज्ञात कृपा से ब्राह्मण को आँखें, सुन्दर पत्नी और अपार धन मिल जाता है। यह देखकर दुसाध ने भी ब्राह्मण की नकल की। पर, इन जीवों की ही अकृपा से वह मारा जाता है।

इस कथा के चेतन और अचेतन दोनों प्रकार के पात्र 'पुण्य की जय' में सहायक बनते हैं। पुण्य और धर्म में विश्वास रखनेवाले व्यक्ति के जीवन में दैविक चमत्कार दिखाकर मानव-हृदय में धार्मिक आस्था भरना ही इस कथा का उद्देश्य है।

'दान की महिमा' नामक एक दूसरी मगही कथा में एक दानी राजा सशरीर स्वर्ग जाता दिखाई पड़ता है। प्रपंच रखनेवाला दुष्ट पण्डित दण्ड पाता है। इसमे भगवान् की भक्तवत्सलता और न्याय-परायणता दिखाई गई है। निष्काम दान के माहात्म्य को भी दरसाया गया है। ईश्वरीय चमत्कार का आयोजन तो है ही; क्योंकि राजा सशरीर स्वर्ग जाता है।

'पूर्वजन्म का फल' नामक कथा में सत्कर्मों की महत्ता बताई गई है। ईश्वर मानव के सद्-असद् कर्मों का निरीक्षक एवं सच्चा निर्णायक है, इसलिए मानव को ईश्वर मे विश्वास रखकर सदा सत्कर्म में प्रवृत्त रहने की सीख इस कहानी मे दी गई है।

'विश्वास की महिमा'[3] नामक कहानी में दो प्रमुख पात्र हैं—एक पण्डितजी, जो 'विश्वास की महिमा' की कथा तो बाँचते हैं, पर वास्तव में ईश्वर के प्रति सच्चे

---

१. ब्र० लो० सा० अ०, पृ० ४६६।

२. ऐसी कहानियों को डॉ० सत्येन्द्र 'देवविषयक कहानी' की संज्ञा देते है।– ब्र० लो० सा० अ०, पृ० ४६७।

३. दे० म० लो० सा०, पृ० ६-७।

विश्वास के अभाव में नदी में डूब जाते हैं। दूसरी है ग्वालिन, जो पण्डितजी से ईश्वर में विश्वास की महिमा की कथा सुनकर सच्चे ईश्वर-विश्वास के सहारे पैदल ही नदी पार कर जाती है।

इस कहानी में 'विश्वास की महिमा' प्रदर्शित करने के लिए ईश्वरीय चमत्कार को भी दिखाया गया है।

'भक्त-परीक्षा' नामक मगही कहानी में शिव-पार्वती नट-नटी के रूप में एक साधक की भक्ति की परीक्षा करते हैं। वह परीक्षा में अनुत्तीर्ण होकर योगभ्रष्ट हो जाता है।

इस प्रकार, धर्मविषयक कथाओं मे किसी-न-किसी रूप मे धर्म की महत्ता दरसाई जाती है। इनमे जीवन के शाश्वत सत्य पर प्रकाश डाला जाता है, कर्त्तव्याकर्त्तव्य की मीमांसा रहती है एवं सत्-असत् प्रवृत्तियों का विश्लेषण रहता है। मानव का सच्चा पथ-प्रदर्शन ही इन कथाओं का उद्देश्य है।

२. नीतिविषयक :

इन कथाओं मे सन्त-धर्म से व्यावहारिक धर्म में भेद दिखाया जाता है। व्यावहारिक जीवन की सफलता के लिए मानव को कुछ नीति अपनाकर चलना चाहिए; साम, दाम, दण्ड और भेद से शत्रु का नाश करना चाहिए, अवसर एवं बुद्धि-विवेक से लाभ उठाना चाहिए—यही 'नीतिविषयक' कथाओं के मुख्य सन्देश है। यथा—

'सीख'[१] नामक मगही कथा मे एक चिड़िया किसान को नीति की चार सीखें देती है—१. वश में आये वैरी को न छोडे। २. जो बात मन में न जँचे, सो न करे। ३. गई वस्तु और बिगड़ी बात के लिए न पछताये और ४. सब बातें सोच-विचार कर करे।

'धोखा का बदला'[२] नामक मगही कथा में एक ऊँट अपने धोखेबाज एवं धूर्त्त मित्र सियार से बदला लेता है। इस कहानी में नीति के दो सन्देश हैं—१. भिन्न प्रकृति के लोगों में मित्रता असफल होती है और (२) मित्र से धोखा करने का फल बुरा होता है।

३. भाग्यविषयक :

मगध की जनता 'भाग्य' पर बहुत विश्वास रखती है। उसके अनुसार भाग्य से लड़ना, विधाता से लड़ना है। उसका भाग्यवादी दृष्टिकोण उसमें अनेक बार धैर्य एवं सन्तोष की भावना-वृद्धि कर शान्ति उत्पन्न करता है। भाग्य के प्रति इस आस्था को उसने अपनी अनेक लोककथाओं में व्यक्त किया है। यथा—

---

१. दे०—म० लो० सा०, पृ० १७-१८।

२. दे०—म० लो० सा०, पृ० १९।

'अपना-अपना भाग्य' शीर्षक एक मगही कथा में एक अहंवादी राजा भाग्य और ईश्वर में विश्वास न करने के कारण दरिद्र हो जाता है, जबकि भाग्य में विश्वास करने के कारण उसके द्वारा दण्डित उसकी छोटी बेटी गरीबी के दिन झेलकर राजरानी बन जाती है।

'भाग्य का लेख' में घर मे बँटवारे का इच्छुक पुत्र सबमें मन्दभाग्य प्रमाणित होता है। अन्त में, पिता की चतुराई से वह दुर्भाग्य के चक्र से बच जाता है।

'भाग्य की बात' में एक कोमलांगी रानी के शरीर पर नौ सौ नौ कोड़ी बाँस टूटते हैं।

इन कथाओं का अन्त प्रायः इस पंक्ति से होता है—

'सच हे, करम के लिखल कोई न मेट सके हे।' अर्थात्, 'सच है, कर्म का लिखा कोई नहीं मिटा सकता।'

भाग्य-सम्बन्धी कथाओं में मानव-शक्ति को पराजित माना जाता है। इसमें भाग्य को अज्ञात शक्ति के रूप में दिखाया जाता है। प्रायः धार्मिक और नेक पुरुष भी भाग्य-चक्र से दुःख पाते देखे जाते हैं और पापी भी सुखी होते देखे जाते हैं। 'भाग्य के लेख' में पूर्वजन्मों के कर्मों का बहुत बड़ा हाथ माना जाता है।

४. दुर्जनविषयक :

इस वर्ग की कथाओं में दुर्जन-प्रकृति का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया जाता है। दुर्जनों के परपीडन, शठता, कलुष आदि से बचने की सीखें इनमें भरी रहती हैं। यथा—

'ठगों का गुरु' नामक कथा में ठगों का सरदार तपस्वी वेश में धूनी रमाकर और आसन बिछाकर बैठता है। संयोग से लोग उसे उठाकर देखते हैं, तो आसन के नीचे गढ़ा मिलता है, जिसमें अपार धन है।

इस कहानी से स्पष्ट है कि आडम्बरधारी दुर्जन समाज मे प्रवंचक के रूप में रहते हैं। इनकी छत्रच्छाया में निर्भीक होकर लोग कुकर्म करते हैं। इनसे बचकर चलना चाहिए।

पशु-पक्षी-जगत् में भी ऐसे दुर्जनों का अभाव नहीं; जो पराये का आहार छीन-कर अपनी जीविका चलाते हैं। 'कौए की धूर्त्तता' शीर्षक कहानी मे इसका अच्छा उदाहरण मिलता है। एक धूर्त्त कौए की सलाह पर चील अपनी चोंच के घोंघे को फोड़ने के लिए जमीन पर गिराता है। कौआ घोंघे के मास को लेकर चम्पत हो जाता है, चील को सिर्फ छिलका हाथ लगता है।

ऐसे दुर्जनों से सर्वदा बचकर चलने एवं अनजान की आकस्मिक परामर्श पर विश्वास न करने की नेक सलाह इस गाथा में दी गई है।

५. बुद्धि-सम्बन्धी :

एक कहावत है—मूर्ख दोस्त से अक्लवाला दुश्मन भला। संसार के कठिनतम कार्य बुद्धि से सधते हैं। बुद्धिबल के सामने शारीरिक बल सर्वदा पराजित हुआ है।

इसीसे कहा गया है—'अक्ल बड़ी कि भैंस।' संसार पर बुद्धि के इस प्रभुत्व को प्रमाणित करनेवाली कुछ मगही कथाएँ देखी जा सकती हैं। यथा—

'राजा झोलन'[1] की कथा में उसकी अपूर्व चतुराई का वर्णन है। यह अपनी बुद्धि-युक्ति से एक ऐसी दुष्ट रानी से विवाह करता है, जो अपने बुझौवलो को न बूझने-वालों को मरवा देती थी।

'नारी की चतुराई'[2] अथवा 'धरम के जय' मे एक सौदागर की पुत्रवधू अपनी बुद्धि और युक्ति से अपनी प्रतिष्ठा और ससुर का जीवन बचाती है और दुष्ट एवं आचरणभ्रष्ट पतित राजा को पराजित करती है।

बुद्धि के कार्य कुछ ऐसे ही अनोखे होते हैं।

२. व्रत-त्योहार[3]-सम्बन्धी कथाएँ

धर्म और व्रत का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस कारण भारत के अन्य क्षेत्रों की भाँति मगध में भी 'व्रत' को महती प्रतिष्ठा दी जाती है। व्रत तीन प्रकार के होते हैं—नित्य, नैमित्तिक एवं काम्य। नित्य व्रत उसे कहा जाता है, जिसका अनुष्ठान आवश्यक माना जाता है। यथा—एकादशी-व्रत। नैमित्तिक व्रत किसी निमित्त (कारण, अवसर) को लेकर किया जाता है। यथा—चान्द्रायण-व्रत। काम्य व्रत किसी विशेष कामना की सिद्धि के लिए किया जाता है। यथा—सोमवार-व्रत, गोधन-व्रत, जितिया आदि। मगध-क्षेत्र में सभी प्रकार के व्रत प्रचलित हैं।

व्रतोत्सवों के पीछे अनेक दृष्टियाँ काम करती हैं। यथा—आत्मशुद्धि, परमात्म-चिन्तन, ऋतु-उत्सव आदि। पर, ग्रामीण जनता व्रतों के आध्यात्मिक, सामाजिक, भौगोलिक, ऐतिहासिक और पौराणिक महत्त्वों का विवेचन-विश्लेषण किये विना ही परम्परा के कारण उन्हें करती है। युग-युगान्तर से अमुक व्रत किये जाते हैं, अमुक पर्वोत्सव मनाया जाता है, अमुक अनुष्ठान किये जाते हैं, यही भावनाएँ प्रेरणा-शक्ति बनकर व्रत-त्योहारों की ओर इन्हे प्रवृत्त करती हैं।

व्रत-त्योहारों के अवसर पर केवल गीत नहीं गाये जाते, कथाएँ भी कही जाती हैं। इन कथाओं का आनुष्ठानिक महत्त्व होता है। इनकी वाचिका प्रायः महिलाएँ होती है।

मगध-क्षेत्र के निम्नाकित व्रतो[4] के साथ ग्रामीण कथाएँ जुड़ी है—

१. चैती छठ एवं कतिकी छठ

२. आषाढ का बसियौरा,

३. नागपंचमी,

४. अनन्त-चौदस,

---

१. दे० म० लो० सा०, पृ० १६—२१।

२. दे० म० लो० सा०, पृ० ४–६।

३. 'देवविषयक गीतों' के प्रसंग में व्रतोत्सवों पर किये जानेवाले अनुष्ठानों की तालिका दी जा चुकी है।

४. व्रतों के विशेष अध्ययन के लिए दे०' देवविषयक गीत' (इसी ग्रन्थ में)।

५. तीज,
६. जितिया और
७. भैया दूज (गोधन) ।

१. चैती और कतिकी छठ की कथा :

इसमें छठ के माहात्म्य को दरसाया जाता है । यथा—

एक वन्ध्या स्त्री को इस मनौती के बाद पुत्र हुआ कि वह पुत्र-जन्म के बाद नियमित रूप से छठ-व्रत के दिन सूर्य-पूजन करेगी । पर, पुत्र-जन्म के बाद वह अपना वचन भूल गई । लडका बड़ा हुआ और उसका विवाह भी हो गया । वह बहू के साथ घर लौट रहा था कि राह मे मर गया । उसकी नववधू का करुण विलाप सुनकर छठी माता उपस्थित हुई । उसकी नववधू से उन्होने कहा—'तुम्हारी सास अपने वचन को भूल गई है, इसीसे उसका पुत्र मर गया । यदि अब छठ-पूजन का वचन दो, तो यह जी उठेगा ।' उसके वचन देने पर उसका पति जी उठा । उसके बाद उसके घर में प्रतिवर्ष छठ-व्रत होने लगा । इसका यह फल हुआ कि उसके घर मे धन-धान्य भर गया । फिर, दुःख-क्लेश कभी न आया ।

२. आषाढ का बसियौरा या माता-पूजी :

शीतला देवी के माहात्म्य का बखान इनसे सम्बद्ध कथा में होता है—

एक ब्राह्मणी ने शीतला देवी से मानिता मानी कि यदि मेरी सात पतोहुओं को सन्तान होगी, तो मैं नियमित रूप से पूजा करूँगी । ऐसा ही हुआ । उसका घर धन-जन से भर गया । कुछ दिनों के बाद ब्राह्मणी को घमण्ड हो गया । उसने गर्म पकवान से शीतला देवी की पूजा कराई । उसी दिन उसके घर के सभी लोग शीतला के प्रकोप से मर गये । वह रोती-पीटती एक जंगल मे पहुँची । वहाँ देखा—एक बुढ़िया सिर से पैर तक जली पडी है और कराह रही है । ब्राह्मणी दया से वशीभूत हो सेवा करने गई । बुढ़िया बोली—'मैं माता मइया' हूँ । तुमने गर्म पदार्थों से मेरी पूजा कराई है, इसीसे ऐसा हुआ है । अब मेरे शरीर मे शीतल दही का लेप करो, तो मैं अच्छी होऊँगी ।' ब्राह्मणी की सेवा से प्रसन्न होकर उन्होंने फिर सबको जीवन-दान दे दिया । उसके घर में हँसी-खुशी के दिन लौट आये । तब से वह विधिवत् शीतल पकवानों एवं पदार्थों से शीतला देवी की पूजा करने लगी ।

३. नागपंचमी :

इस पर्व में 'नाग-नागिन' के माहात्म्य का उल्लेख करनेवाली कथा कही जाती है—

एक खुशहाल किसान के हल के नीचे दबकर साँप के तीन 'पोहे' (बच्चे) मर गये । इससे नागिन क्रोध से भर गई । उसने किसान के घर के सभी लोगों को डँस-कर मार डाला । किसान की एक विवाहिता बेटी ससुराल थी । उसे काटने नागिन उसके घर गई । उस लड़की को सब हाल मालूम था । इसलिए, उसने नागिन को प्रसन्न करने

के लिए उसके सामने दूध-भरा कटोरा और लावा रख दिया। फिर, क्षमा-याचना की। इससे प्रसन्न होकर नागिन ने उससे कहा—'तू इच्छानुकूल वर माँग ले।' लड़की ने कहा—'मेरे घर के आपके द्वारा मारे गये सभी लोग जीवित हो जाये। और, आज के दिन जो लोग नाग की पूजा करें, उन्हे वह कभी न डँसे।' उस दिन 'पंचमी' थी। नागिन लड़की को वरदान देकर चली गई। उसी दिन से 'नागपंचमी' मनाई जाती है।

४. तीज :

'तीज' पर्व मे पार्वती के पूजन को प्रधानता दी जाती है। वे भारतीय कन्याओं एवं महिलाओं के लिए आदर्श हैं। पार्वती की तपस्या का ही फल था कि उन्होंने शिव-सा मृत्युंजय पति पाया था। इस दिन निम्नांकित कथा कही जाती है—

पार्वती की माता को बहुत ढूँढ़ने पर भी उनके योग्य वर न मिला। एक दिन पार्वती सखियों के साथ जंगल गई। वहाँ शिवजी तपस्या कर रहे थे। उनपर पार्वतीजी मुग्ध हो गई। उन्हे पाने के लिए 'तीज' के दिन उन्होंने व्रत करना आरम्भ किया। शिवजी इससे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने पार्वती से विवाह कर लिया।

'तीज' व्रत के विधान से ही भगवती पार्वती ने मृत्युंजय शंकर को पतिरूप में पाया था। अतः, पति को दीर्घायु करने के उद्देश्य से ही रमणियाँ यह व्रत करती हैं।

५. अनन्त-चौदस :[1]

इस दिन अनन्त भगवान् के माहात्म्य से सम्बद्ध कथा कही जाती है। यथा—

एक राजा ने धन के गर्व में अपनी पत्नी के हाथ में बँधी अनन्तदेव की डोरी को खोलवाकर कूडे पर फेंकवा दिया। इससे क्रमशः उसका धन घटने लगा। एक दिन वह इतना दरिद्र हो गया कि पत्नी के साथ घर छोडकर बाहर निकल गया। इनके दुःख-दारिद्र्य को देखकर इनका नाम लोगों ने विपता-विपती रख दिया। राजा-रानी जहाँ गये, वहाँ अपमानित और लाछित हुए। बहुत दिनों तक दुःख भोगने के बाद एक दिन रात में राजा ने स्वप्न देखा—भगवान् अनन्तदेव सामने खडे होकर कह रहे हैं—'तुमने मेरी डोरी को कूँडे पर डाल कर मेरा अपमान किया है।' राजा ने बहुत क्षमा-याचना की। तब उन्होंने कहा—'चौदह वर्ष तुम दोनो मेरी पूजा करोगे और भक्ति से डोरी पहनोगे, तो धन-धान्य से फिर भर जाओगे।' दूसरे दिन सुबह राजा और रानी लौटकर उस कूडे के ढ़ेर के पास आये, जहाँ 'डोरी' फेंकी थी। वह ज्यों-की-त्यों पडी थी। राजा ने स्वयं उसको रानी की बाँह मे बाँध दिया। अनन्तदेव की कृपा से उनके दिन लौट आये।

६. जितिया :[2]

इस कथा मे जितिया व्रत के महात्म्य का बखान किया जाता है। यथा—

---

१. भादों में, शुक्लपक्ष की चतुर्दशी को यह व्रत किया जाता है। इस दिन अनन्त भगवान् की पूजा की जाती है।

२. दे० म० लो० सा०, पृ० ८-९।

चूल्हो-सियारो नाम की दो बहनें थीं। चूल्हो के सात बेटे थे। वह नियम से जितिया व्रत करती थी। सियारो वन्ध्या थी और लोभी भी। वह व्रत के बीच में ही खा लेती थी। सियारो ने बहिन की ईर्ष्या मे उसके सातो बेटो को मरवा डाला। पर, जितिया व्रत के माहात्म्य से चूल्हो के सभी बच्चे जीवित हो गये।

७. गोधन :[1]

इस कथा में गोधन-व्रत का माहात्म्य वर्णित होता है यथा—

एक भाँटिन अपने प्रेमी सर्प की मृत्यु का बदला पति को मारकर सधाना चाहती है। पति, मृत्यु के पहले बहिन के पास 'टीका कढ़ाने' जाता है। सब हाल सुनकर बहिन भाई के साथ भावज के पास आती है। गोधन-व्रत के माहात्म्य से उसे सारे रहस्यों का पता चल जाता है। अन्त में भाँटिन मारी जाती है। उसका पति, बहिन के व्रत के पुण्य से बच जाता है।

व्रत-त्योहार-सम्बन्धी कथाओं में प्रायः सामान्य रूप से निम्नांकित विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं—

१. प्रायः सभी कथाओं का अन्त इस मंगल-वाक्य से होता है—'जैसन उनकर दिन फिरल, ओयसहीं सबके दिन फिरे।' अर्थात् , जैसे उनके दिन लौट आये, वैसे ही सबके लौटें।'

२. अधिकांश कथाओं मे व्रत से सम्बद्ध देवता, भक्त से अपमानित होकर क्रोध प्रकट करते देखे जाते हैं। फिर वे, भक्त के पूजार्चन से प्रसन्न होकर उसे क्षमा करने एवं उसकी सुख-समृद्धि की वृद्धि करते देखे जाते हैं। इनमे देवताओ की महिमा एवं शक्ति दरसायी जाती है।

३. प्रायः सभी कथाएँ माहात्म्य-कथाएँ हैं। उनके कहने-सुनने से भक्त एवं व्रती पुण्य के भागी होते हैं।

४. उपर्युक्त प्रायः सभी व्रत 'काम्य' हैं। इनसे भक्त की मनःकामना अवश्य पूर्ण होती है, ऐसा जनविश्वास है।

३. सामाजिक कथाएँ :

हमारे समाज में युगो से वर्ण-व्यवस्था एवं अविभक्त परिवार-प्रणाली चली आ रही है। वर्ण-व्यवस्था ने अनेक उपजातियो को जन्म दिया है, जिनके स्वभाव, संस्कार, व्यापार आदि एक दूसरे से भिन्न हैं। अविभक्त परिवार-प्रणाली से संगठन के महत्त्व को बल मिलता रहा है।

समाज के दो अंग हैं—पुरुष और नारी, जो मिलकर पारिवारिक व्यवस्था चलाते है। पर, दोनों के अधिकारों मे अन्तर है। स्त्री, पुरुष के अधीन एवं अनेक रूपो मे परतन्त्र है, जब कि पुरुष सर्वदा स्वतन्त्र है। दोनों के अधिकारों की भिन्नता से परिवार

---

१. दे० म० लो० सा०, पृ० १०-११।

में अनेक समस्याएँ उठ खडी होती हैं । यथा—विधवा की समस्या, विमाता की समस्या, बहुविवाह की समस्या आदि ।

इनके अतिरिक्त मानवी प्रकृति की भिन्नताओं के कारण समाज में अनेक नये प्रसग उठ खडे होते है । यथा—मित्रो के प्रेम और विग्रह, अन्धविश्वास, रूढ परम्पराएँ, नारी-दुर्दशा, नारी के आदर्श चरित्र, दुर्जनों की दुष्टता, सज्जनों के कष्ट, भाइयों के सघर्ष आदि ।

मगही की, 'सामाजिक' वर्ग के अन्तर्गत आनेवाली लोककथाओ में मगध के सामाजिक ढाँचे और स्थितियों का यथार्थ परिचय मिल जाता है ।

अध्ययन की सुविधा के लिए इन्हे निम्नांकित वर्गों मे बाँटा जा सकता है—

सामाजिक कथाएँ

१. जाति-सम्बन्धी — २. मित्रो के प्रेम और विग्रह-सम्बन्धी — ३. परिवार-सम्बन्धी

३. परिवार-सम्बन्धी: स्त्री-सम्बन्धी — पुरुष-सम्बन्धी
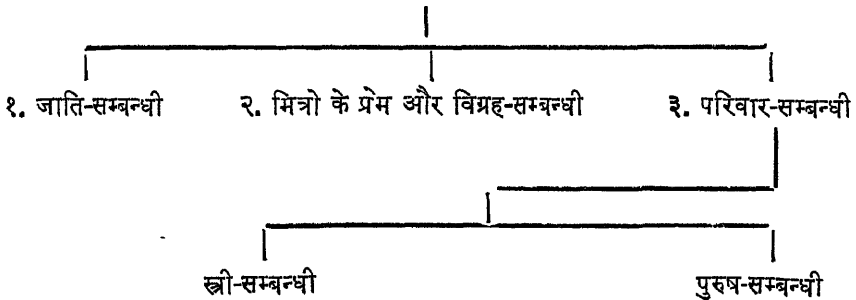
१. जाति-सम्बन्धी :

जाति-सम्बन्धी कथाओं में अनेक जातियो एवं उपजातियो के स्वभाव, संस्कार, व्यापार आदि पर प्रकाश पड़ता है । यथा—ब्राह्मण, क्षत्रिय, कायस्थ, बनिया, सुनार, माली, बढ़ई, धोबी, नाउ, कुम्हार आदि ।

ब्राह्मण प्रायः दो प्रकार के देखे जाते हैं - १. पण्डित और २. मूर्ख । पर, दोनो दान लेकर ही जीविका चलाते हैं । अपने प्रकृत गुणो के प्रदर्शन का उपयुक्त क्षेत्र इन्हें राजदरबार मे मिलता है । यहाँ ये विद्वत्ता प्रदर्शित करके या विद्वत्ता का भ्रम उत्पन्न करके प्रशंसा एवं दक्षिणा के पात्र बनते हैं । कभी-कभी राजा प्रसन्न होकर आधा राजपाट तक दे डालते हैं । यथा—

'दान की महिमा' नामक एक मगही कथा मे दो ब्राह्मणों की भिन्न प्रकृति के अनुकूल उन्हे भिन्न पुरस्कार उपलब्ध होता हुआ देखा जाता है । एक पडित विद्वान् है, दूसरा मूर्ख एवं दुष्ट । विद्वान् पण्डित की ईर्ष्या में मूर्ख पण्डित राजा के हृदय में उसके प्रति भ्रम पैदा कर देता है । जो राजा पहले विद्वान् पण्डित को अधिक दान देता था, वह अबमूर्ख पण्डित को देने लगता है और उसकी सम्मति से अनुचित आचरण भी करने लगता है । अन्त मे, विद्वान् पण्डित की चतुराई से रहस्य खुलता है । राजा को सच्चा ज्ञान हो जाता है । वह अपना आधा राजपाट विद्वान् पण्डित को देकर सदेह स्वर्ग चला जाता है ।

अनेक मगही कहानियों का सम्बन्ध राजा और राजदरबार से है। राजा प्रायः क्षत्रिय जाति के होते हैं। ये प्रायः न्यायपरायण, धर्मप्रिय, दानी, शिकारप्रेमी और बहुविवाह-प्रेमी होते हैं। बहु-विवाह के कारण अनेक बार ये विपत्ति में पड़ते देखे जाते है। यथा—

'राजा के बेटी कुम्हार घर'[1] नामक मगही कथा मे एक राजा की दुष्ट रानियों ने छोटी सौत की बच्ची को कुम्हार के आवे मे फेंकवा दिया है। पर, सौभाग्य से कुम्हार-कुम्हारिन को वह बच्ची मिल जाती है। वे पालते-पोसते हैं। जब समय पर राजा के सामने यह रहस्य खुलता है, तब दुष्ट रानियाँ दण्डित होती हैं। इस कहानी में कुम्हार जाति की गरीबी, उसके व्यापार एवं दयालु प्रकृति पर भी प्रकाश डाला गया है। 'लालाजी के धुरतइ'[2] नामक कथा में कायस्थ जाति के ऊपरी आमदनी पर भरोसा एवं चतुराई का वर्णन हुआ है। 'डरपोक बनिया'[3] शीर्षक कथा में बनिया के व्यापार-प्रेम एवं भीरु प्रकृति का चित्रण हुआ है। 'सेठ और कुँजड़ा'[4] नामक कहानी में दोनो की भिन्न प्रकृति एवं व्यवसाय पर प्रकाश डाला गया है। इसी प्रकार, इन कथाओं में कहीं नाऊ जाति की धूर्त्तता एवं यजमान-वृत्ति के दर्शन होते हैं, कही बढ़ई की गरीबी देखने मे आती है। कहीं माली-मालिन के फूल-व्यापार के वर्णन मिलते हैं, कहीं सोनार के लोभी स्वभाव का चित्रण होता है।

२. मित्रों के प्रेम और विग्रह-सम्बन्धी :

इस वर्ग की लोककथाओं मे मित्रो के प्रेम और विग्रह के विविध रूप दिखाई पड़ते हैं। इनमें केवल मनुष्य नही, पशु-पक्षी एवं अन्य अचेतन पदार्थ भी पात्र-रूप में आये है। जो प्रेम निःस्वार्थ-भाव, परस्पर सहाय-भाव और सेवाभाव पर आधृत होता है, वह स्थायी होता है। इसके विपरीत होने पर संघर्ष की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं। कभी मित्रता टूट भी जाती है। यथा—

'चार इयार' नामक मगही कथा मे चार जाति के युवक हैं—बढ़ई, ततवा, सोनार और सिन्दुरिया। इनमे आदर्श मित्रता है। इसकी परीक्षा तब होती है, जब एक रात्रि मे चारों एक साथ एक जंगल मे पड़ जाते है। चारों बारी-बारी से रात्रि मे एक-एक पहर मे पहरा देने का निश्चय करते हैं। बढ़ई अपने पहरे के काल मे एक सुन्दर नारी-मूर्त्ति गढ़ डालता है, ततवा उसे कपड़ा बुनकर पहनाता है, सोनार आभूषण पहनाता है और सिन्दूरिया सिन्दूर लगा देता है। विघ्न-विधाता की कृपा से इस मूर्त्ति मे प्राणप्रतिष्ठा भी हो जाती है। अब प्रश्न उठ खडा होता है कि यह सुन्दर नारी किसकी पत्नी हो ? चारों झगड़कर न्यायाधीश के पास पहुँचते हैं। उसका निर्णय है कि गढ़नेवाला पिता, साड़ी पहनानेवाला माँ और आभूषण पहनानेवाला भैसुर हुआ। पर, जिसने

---

१. दे० म० लो० सा०, पृ० २-४।
२. दे० म० लो० सा०, पृ० १२-१३।
३. दे० म० लो० सा०, पृ० ९-१०।
४. दे० म० लो० सा०, पृ० १२।

सिन्दूर लगाया, वही पति हुआ। सभी मित्रों ने इस निर्णय को स्वीकार किया और वे प्रेम से रहने लगे।

इसमें मित्रों के निस्वार्थ प्रेम का नमूना मिलता है।

'गरीब राजा' शीर्षक कथा मे मित्रता की पहली शर्त्त दोनों की बराबरी है। एक राजा के सुख के दिनों मे सभी हितैषी और मित्र बनकर लाभ उठाते थे। पर, जब वह गरीब हो गया, तब हितैषी और परिजन सभी उसका अपमान करने लगे। एक दिन निराश होकर वह अपने घनिष्ठ मित्र के यहाँ शरण लेने पहुँचा, तब उसने उसे घोड़सार में स्थान दिया। राजा की आँखें खुलीं। वह समझ गया—मित्रता बराबरीवालों मे ही होनी चाहिए। वह अपनी झोपडी में लौट आया। उसके सुख के दिन फिर लौटे। पर, अब राजा ज्ञानी हो चुका था।

'औरत और गाय' नामक कहानी में मित्रता की महत्त्वपूर्ण शर्त्त ईमानदारी को बताया है। इसमे एक स्त्री और गाय की मित्रता का वर्णन है। दोनों ने एक दूसरे को वचन दिया था कि प्रसव-काल मे परस्पर सहायता करेंगी। स्त्री के प्रसवकाल मे गाय ने सेवा की। पर, स्त्री ने गाय के प्रसवकाल मे धोखा दिया। दुःखित होकर गाय ने स्त्री को शाप दे दिया—"मेरा बच्चा जन्म लेते ही बोलेगा—'माँ'। पर तेरा, बच्चा कई वर्षों तक नहीं बोलेगा।" शायद गाय के इसी शाप-वश मानव-शिशु वर्षों तक नहीं बोल पाता और असहाय बना रहता है।

'धोखेबाज इयार' नामक कथा में मित्र की धोखेबाजी से सर्वदा के लिए मित्रता का अन्त देखा जाता है। दो मित्र वचनबद्ध थे कि वे सर्वदा परस्पर सहायता करेंगे। एक मित्र सब दिन अपनी बात पर पक्का रहा, पर दूसरे मित्र ने समय पर धोखा दिया। इसपर सर्वदा के लिए उनकी मैत्री टूट गई।

'धोखा के बदला'[1] नामक कहानी में ऊँट और सियार की मित्रता का आधार धूर्त्तता और स्वार्थपरता है। इस कारण बीच मे ही उनकी मैत्री भंग हो जाती है। बदला चुकाने में एक मित्र के प्राण ही चले जाते हैं।

३. परिवार-सम्बन्धी :

'परिवार' केवल व्यक्तियों का समूह नहीं। यहाँ अनेक इकाइयाँ मिलकर एक हो जाती हैं। अनेक व्यक्तिगत मान्यताएँ और कामनाएँ परिवार के आदर्शों के सामने हटानी पड़ती हैं। परिवार में स्त्री-पुरुष ही रहते हैं, पर वे विविध सम्बन्धों में बँधे होते हैं। यथा—एक ही पुरुष किसी का पुत्र, किसी का पौत्र, किसी का पिता आदि रहता है, एक ही स्त्री किसी की पुत्री, किसी की पत्नी, किसी की माँ आदि रहती है। सभी सम्बन्धों के बीच परस्पर साहाय्य-भाव से परिवार में सुख, शान्ति और समृद्धि रहती है। इसके विपरीत परिवार में विग्रह आने लगता है।

विग्रह होने पर अनेक पारिवारिक समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं। यथा—सास, ननद, गोतिनी, वधू के बीच संघर्ष, सौतों के द्वेष, विमाता के अत्याचार, नारी की

१. दे० म० लो० सा०, पृ० २७-२८।

कुटिलत आदि। इसी भाँति भाई-भाई का कलह, पुरुष की स्वार्थपरता, दुराचरण, पति का बहु-विवाह-प्रेम आदि।

परिवार में भले स्त्री-पुरुषों के नमूने भी मिलते हैं। यथा—एक पत्नी-प्रेमी, उदारचित्त, दानी, धर्मात्मा पुरुष, आदर्श माता, आदर्श पतिव्रता, आदर्श पतोहू, सुघड़ नारी आदि।

मगही लोककथाओं में उपर्युक्त प्रत्येक वर्ग के पुरुष-नारी के यथार्थ चित्र उपलब्ध होते हैं। यथा—

१. **पुरुष-सम्बन्धी**—'बाप के ममता'[1] शीर्षक कहानी में भाई-भाई की ईर्ष्या, बँटवारे का कुपरिणाम, पिता के प्रेम का गाम्भीर्य एवं सम्मिलित परिवार के लाभ आदि सुन्दर रीति से वर्णित हुए हैं।

'भाइयों के बँटवारे' से सम्बद्ध कई मगही कथाएँ मिलती हैं, जिनमे विविध प्रकार के पात्र दिखाई पड़ते हैं। यथा—

पिता :

१. दयालु और ममतावान् पिता, जो बँटवारे के बाद विपथगामी होनेवाले पुत्र को पुनः अपना लेता है।

२. पुत्रों को सम्मिलित परिवार में रहकर संगठित रहने का सन्देश देनेवाला पिता।

३. बँटवारे के बाद भी परस्पर समता एवं प्रेम की सीख देनेवाला पिता।

भाई :

१. भाई से द्वेष करनेवाला भाई।

२. भाई से प्रेम रखनेवाला भाई।

३. अन्यायपूर्वक भाई का हक छीननेवाला भाई।

पंच :

१. चतुर एवं न्यायी राजकुमारी।

२. न्याय की सीख देनेवाले सियार-सियारिन।

३. न्याय की सीख ग्रहण करनेवाले पंच।

इनके अतिरिक्त पुरुष-प्रकृति के अन्य रूप भी विविध लोककथाओं में उपलब्ध होते हैं। यथा—

'अझला'[2] शीर्षक कथा में एक निर्लज्ज और जुआरी भाई अपनी पारिवारिक

---

१. दे० म० लो० सा०।

२. दे० म० लो० सा०, पृ० १–२।

प्रतिष्ठा एवं मर्यादा को भूलकर बहिन को जुए मे डोम से हार जाता है। अन्त में, बड़ी कठिनाई से इस लड़की का उद्धार किया जाता है।

'अकारथ काम'[1] मे एक सूम व्यक्ति का धन व्यर्थ ही उड जाता है। इस कहानी मे धन को साध्य न मानकर साधन मानने की सीख दी गई है।

'राजा के बेटी कुम्हार घर'[2] मे एक राजा अपनी बेटी से ही विवाह करने पर उतारू हो जाता है। इसमे समाज मे वर्त्तमान बहु-विवाह-प्रथा पर अच्छा व्यंग्य मिलता है।

'धर्मी राजा' शीर्षक कहानी मे एक राजा निःसन्तान होने पर भी दूसरा विवाह नहीं करता। वह एकपत्नीव्रत का आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करता है।

२. **स्त्रीसम्बन्धी**—'सतवन्ती' नामक कहानी मे आदर्श पतिव्रता नारी का चरित्र प्रस्तुत किया गया है। इसका विवाह एक कोढ़ी से हो जाता है, जिसे वह अपनी सेवाओ एवं भक्ति से चंगा कर लेती है। 'किसान के माँ' नामक कहानी मे एक आदर्श माता का चित्र प्रस्तुत किया गया है। वह अपने चोर एवं निकम्मे पुत्र को आदर्श कृषक बना देती है। 'धरम के जय'[3] नामक कहानी मे ईर्ष्यालु गोतिनी की दुष्टता के कारण ही पारिवारिक विपत्तियाँ आती हैं। 'कठोर पतोह' नामक कहानी मे एक पतोहू अपनी सास के गले मे घण्टी बाँधकर चक्की पिसवाती है और अन्य अत्याचार करती है। उसकी अपनी पतोहू यह सब देखती है। बूढ़ी सास के मरने पर वही घण्टी वह अपनी सास के गले में डालकर कहती है—जैसे तुम बूढ़ी सास पर अत्याचार करती थी, मैं भी तुमपर करूँगी। दुष्ट पतोहू के साथ दुष्ट सास-ननद की कहानियाँ भी कम नहीं। ये अनेक रूपो में बहू पर अत्याचार करती है।

विमाता के रूप में नारी सर्वाधिक भयंकर हो उठती है। 'राजा के बेटी कुम्हार घर' एवं 'शीत-वसन्त की कथा' मे सौतेली माँ के अत्याचारो का मार्मिक वर्णन हुआ है।' 'चम्पा और इमोला' की कहानी सर्वाधिक करुण है। इसमे एक राजा की छोटी रानी के गर्भ से एक लड़का और एक लडकी का जन्म होता है। अन्य छह रानियाँ इन बच्चो को मरवाकर गड़वा देती हैं। छोटी रानी को दण्ड के लिए राजा उसे 'कौआहँकनी' बना देते हैं। लड़के की समाधि पर 'इमोला' का पेड़ और लड़की की समाधि पर चम्पा का गाछ जन्म लेता है। चम्पा के सुन्दर फूल को तोड़कर एक कौआ राजा की पगड़ी पर गिरा देता है। राजा इस फूल-वृक्ष का पता लगा लेते हैं। सभी लोग फूल तोड़ने आते हैं, पर वृक्ष आकाश छूता जाता है। अन्त मे 'कौआहँकनी' आती है। उसकी छाती से दूध के फव्वारे चलने लगते हैं। चम्पा इमोला से पूछती है—

१. दे० म० लो० सा०, पृ० ३५।
२. दे० म० लो० सा०, पृ० २-४।
३. दे० म० लो० सा०, पृ० ४-६।

चम्पा—अहो इमोला भइया हो, अप्पन मइया फुलवा लोढ़न आवे हो।

इमोला—अहे चम्पा बहिनी हे, डारे-पाते भुइयाँ सोहर हे।

चम्पा का गाछ धरती पर सोहरने लगता है। फिर, दोनों वृक्षों पर माँ का दूध पड़ता है। इससे एक सुन्दर राजकुमार और एक सुन्दर राजकुमारी सामने खड़े हो जाते हैं।

राजा को सारे रहस्य का पता लगता है। छहों रानियाँ मरवाकर तरहगा में भरवा दी जाती हैं।

इन लोककथाओ मे सभी नारी-वर्गों का अच्छा वर्णन उपलब्ध होता है।

४. मनोरंजन-प्रधान कथाएँ

इस वर्ग की लोककथाओ का प्रमुख उद्देश्य मनोरंजन करना है। इन्हें तीन उपवर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

१. अभिप्राय-प्रधान।

२. शुद्ध मनोरंजन-प्रधान।

३. हास्य-प्रधान।

१. अभिप्राय-प्रधान :

इन कथाओ में मनोरंजन के साथ कुछ उपदेश के भाव निहित रहते हैं। प्रायः ऐसी कहानियाँ पशु-पक्षी या अचेतन पदार्थों से सम्बद्ध होती हैं। संस्कृत-साहित्य में 'पंचतन्त्र' एक ऐसी ही कहानी-पुस्तक है, जिसकी रचना राजकुमारों को राजनीति की शिक्षा देने के लिए हुई थी। इन कहानियों के पात्र पशु-पक्षी थे और इनमें कुछ-न-कुछ अभिप्राय सन्निहित थे। डॉ० सत्येन्द्र ने पशु-पक्षी-सम्बन्धी साभिप्राय सभी कहानियों को 'पंचतन्त्रीय कहानी' कहा है।[१] पशु-पक्षी-सम्बन्धी पंचतन्त्रीय कहानियाँ इतनी लोकप्रिय हुई कि पाश्चात्य देश के अनेक विद्वानो ने इनपर कार्य किया है।[२]

मगही की 'गमार-ग्वालिन' नामक कथा में अभिप्राय-व्यंजना के साथ अच्छा मनोरंजन होता है। ग्वालिन की प्रकृति 'शेखचिल्ली' के समान थी, जिसने सिर पर रखे 'घी' के घड़े से महल बनाने तक की कल्पना कर ली थी। ग्वालिन सिर पर दही का मटका लेकर दही बेचने जा रही थी। राह में कल्पना करती जाती थी कि दही के पैसे से आम लूँगी। फिर, उससे फल की बड़ी दूकान करूँगी। फिर, हरे रंग की साड़ी पहनकर कानों में झुमके और नाक में बेसर पहनूँगी। फिर, राह में ऐंठ-ऐंठकर चलूँगी। देह ऐंठने की क्रिया में उसके सिर का मटका गिर पड़ा और उसका बना-बनाया हवाई महल बिगड़ गया।

---

१. ब्र० लो० सा० अ०, पृ० ४८६।

२. मैकडानल-लिखित 'इण्डियाज पास्ट ऐण्ड प्रेजेण्ट'; गौरांग बनर्जी-लिखित 'हैलेनिज्म इन ऐन्शिएण्ट इण्डिया' के अध्याय १४ में 'फेबिल्स ऐण्ड फोक लोर' तथा एच्० एच्० विल्सन-कृत 'ऐसेज ऑन सबजेक्ट्स कनेक्टेड विद संस्कृत-लिटरेचर', भागप्रथम तथा द्वितीय।

इस कहानी में ग्वालिन की मूर्खता-भरी कल्पनाओं में मनोरंजन का भाव तो है ही, साथ ही इसमें सीख भी है कि झूठी कल्पना और सुख के सपनो में वास्तविक स्थिति को नहीं भूलना चाहिए, अन्यथा धोखा होता है ।

२. शुद्ध मनोरंजन-प्रधान :

इस वर्ग की कथाओं मे पात्र प्रायः पशु-पक्षी होते है । पंचतन्त्र में शुद्ध मनोरंजन-युक्त कहानियाँ भी उपलब्ध होती है । कुछ कथाओ के पात्र तो पेड़-पौधे, नदी आदि अचेतन पदार्थ भी हैं । यथा—

एक बन्दर बैर के पेड पर चढ़ कर बेर खा रहा था । उसकी नाक में एक गुठली समा गयी । उधर से एक हजाम जा रहा था । उससे उसने कहा—मेरी नाक से गुठली नहरनी से निकाल दो । उसने कहा कि नाक कट जायेगी तो ? बन्दर ने कहा—'तोर मोर वलाय से ।' पर, नहरनी नाक में लग गई । अब बन्दर ने कहा—'चाहे हम्मर नकिया दे, चाहे अप्पन नहरनी दे ।' हजाम ने नहरनी देकर अपनी जान छुड़ाई । इसी धूर्त्तता से बन्दर ने कुम्हार से लाल चुक्का, उससे बछड़ा, फिर उससे औरत और अन्त मे मन्दरा (ढोल) पा लिया । तब फिर बैर के पेड़ पर जाकर बैठ गया और मन्दरा पीटकर गाने लगा—

नकवा से पयली नहरनी हो राम धतिंगो-धतिंगो ।
नहरनी से पयली लाल चुकवा हो राम धतिंगो-धतिंगो ।
लाल चुकवा से पयली बछड़वा हो राम धतिंगो-धतिंगो ।
बछड़वा से पयली औरतिया हो राम धतिंगो-धतिंगो ।
औरतिया से पयली मँदरवा हो राम धतिंगो-धतिंगो ।

३. हास्यप्रधान :

मगही में हास्यरसात्मक लोककथाओं का भी प्राचुर्य है । जड-चेतन सभी प्रकार के पात्र हास्य उत्पन्न करने मे सहायक होते हैं । यथा—

एक महाजन ने भोर मे शौच के लिए मैदान जाते समय हाथ में सादे पानी के लोटे की जगह लाल रग घोला हुआ लोटा ले लिया । शौच के बाद उन्होंने बिना देखे उसका व्यवहार किया । उठे, तो देखते हैं, चारों ओर खून ही खून । घर में घबड़ाये हुए आये और खाट पर गिर पडे । पत्नी को बुलाकर बोले—'मैं तो अब चला । मुझे शौच मे केवल खून ही गिरा है । घर तुम ठीक से देखना ।' इसके बाद रोने लगे । उनकी पत्नी ने वैद्य बुलाया, पर कोई बीमारी नहीं निकली । इसी घबराहट और दौड़-धूप में उसने लाल रंग का लोटा खाली देखा । वह रहस्य समझ गई । उसका अनुमान सत्य ही निकला । सेठजी लाल रंग का लोटा ही ले गये थे । इसके बाद हँसी का फव्वारा छूट पड़ा ।

एक मूर्ख ससुराल गया । उसने मशहरी नहीं देखी थी । प्रथम बार मशहरी में सोने को मिला । सोचने लगा—कमरे के अन्दर यहाँ कमरा है । पत्नी से बोला. तो वह हँसते-हँसते लोट-पोट हो गई ।

५. प्रेमात्मक कथाएँ

इस वर्ग की कथाओं का अध्ययन तीन उपवर्गों में किया जा सकता है—

१. पारिवारिक प्रेमकथाएँ

२. प्रेमी-प्रेमिका की प्रेमकथाएँ

३. अलौकिक प्रेमकथाएँ

१. पारिवारिक प्रेमकथाएँ :

इस वर्ग की कथाओं में माता-पुत्र, पति-पत्नी, भाई-बहन, मित्र-मित्र एवं अन्य परिजनों आदि के पारस्परिक प्रेम का वर्णन होता है।

२. प्रेमी-प्रेमिका की प्रेमकथाएँ :

प्रेम, मानव-जीवन का सरल संगीत है। प्रेम की मनःस्थिति में प्रेमी-प्रेमिका एक दूसरे को पाने के लिए विह्वल होते हैं। वे एक दूसरे को पाने का यत्न करते हैं। मिलन के पथ के शूल भी उन्हें फूल-से लगते हैं। इन प्रेमियों का लक्ष्य होता है—विवाह। इस कारण इसे सामाजिक स्तर का ही प्रेम माना जाता है। मगही में इस वर्ग की अनेक कथाएँ मिलती हैं। यथा—

'रानी अनारदेई' नामक कहानी में एक राजकुमार जंगल में अनुपम सुन्दरी अनारदेई को देखता है। दोनों एक दूसरे पर मुग्ध हो जाते हैं। पर, अनारदेई बताती है—'मिलन के पथ में बाधा है। एक राक्षस का मुझपर पहरा है। उसे मारकर मुझे पा सकते हो।' फिर, वह अलोप हो जाती है। प्रेम-दीवाना राजकुमार एक साधु की सहायता से अनारदेई का पता लगाता है। अन्त में, साधु के बताये उपाय से वह एक पक्षी की गरदन मरोड़कर राक्षस को मार डालता है। फिर, 'अनार' में बन्द अनारदेई को लेकर घर आता है। दोनों का विवाह हो जाता है।

कहानी के क्रम में हंस-हंसिनी, बाग, चिड़िया, शिव-पार्वती आदि पात्रों के रूप में आते हैं। मिलन के पथ में आँधी, पानी, राक्षस के शाप आदि बाधाएँ बनकर आते हैं। राजकुमार अलोपी अंजन आदि लगाकर मिलन की सुविधाएँ बढ़ाता है। पर, मिलन के मार्ग की भयंकरता उसे मिलाकर भी अलग कर देती है। अन्त में, शिव-पार्वती की कृपा से दोनो प्रेमी मिलते है। उनका विवाह हो जाता है।

इस कहानी में सच्चे प्रेम की जय दिखाई गई है।

३. अलौकिक प्रेमकथाएँ :

इस वर्ग की कथाओं में अलौकिक तत्त्वों की प्रधानता रहती है। प्रायः असामाजिक प्रेम-कामनाएँ इनमें प्राश्रय पाती हैं। विवाह की सम्भावनाएँ नहीं होती, फिर भी प्रेमी-प्रेमिका एक दूसरे को पाने के लिए विह्वल होते हैं और मार्ग की कठिनाइयों को झेलते हैं।

मगही में 'सारंगा सदाबिरिछ' की प्रेमकथा इसी वर्ग की है। सारंगा विवाहिता कन्या है, पर सदाबिरिछ उसे पाने को विह्वल है। सारंगा भी उसके लिए दीवानी है। सारंगा पिता के घर से ससुराल चली जाती है। सदाबिरिछ वहाँ भी जाता है। वह मन्त्र-बल से उसे मार देता है। ससुरालवाले उसे मरा जानकर श्मशान ले जाते हैं। वहाँ कुछ भयंकर स्थिति आने के कारण वे लाश छोड़कर भाग जाते हैं। सदाबिरिछ लाश पा लेता है। वह सारंगा को मन्त्र-बल से पुनः जिला लेता है। दोनों का मिलन हो जाता है।

भारतीय दृष्टिकोण से यह असामाजिक प्रेम है। पर, सारंगा-सदाबिरिछ की कथा इतनी लोकप्रिय है कि अनेक भारतीय भाषाओं मे कुछ भाषान्तर एवं कथान्तर के साथ वर्त्तमान है।

६. काल्पनिक कथाएँ[1]

इनमें कल्पना-तत्त्व का प्राचुर्य रहता है और कार्य और कारण का सम्बन्ध नहीं रहता। प्रायः इनमें असम्भाव्य घटनाएँ घटती देखी जाती है। यथा—कोई मरकर फूल का पौधा बन जाता है। किसी राक्षस के प्राण-विशेष पिंजड़े मे बन्द मिलते हैं, कोई परी अपने दिव्य सौन्दर्य से मानव को पराभूत करती देखी जाती है, कोई भूत-प्रेत अपने कुकृत्यो से मानव को आतंकित करता पाया जाता है, कोई देवदूत आशा के सन्देश लेकर आकाश से उतरता दिखाई देता है और पशु-पक्षी, जीव-जन्तु, पेड़-पौधे मानव के सहायक बनते पाये जाते हैं।

सारे कथानक मे आश्चर्य और कौतूहल का प्राबल्य रहता है। यों कल्पना के साथ आश्चर्य और कौतूहल का योग अनेक अन्य लोककथाओं में भी मिलता है। यथा—एक कथा में विमाता के मारने पर बच्चे इमोला और चम्पा के पेड़-पौधे के रूप में जन्म लेते है, सारंगा को सदाबिरिछ जड़ी की सहायता से मारकर फिर उसी की सहायता से जिला लेता है। अनारदेई अनार से निकलती है, तब उसका पति पक्षी बन जाता है, फिर शिव-पार्वती के आशीर्वाद से आदमी बनता है। पर, कल्पनाप्रधान कथाओं से उनमे अन्तर है। उन कथाओं का मूलाधार सत्य होता है, सिर्फ आश्चर्य, कौतूहल और रोचकता भरने के लिए उनमें यत्र-तत्र कल्पना का योग होता है, जबकि कल्पनाप्रधान लोककथाओं में कल्पना का ही प्राधान्य रहता है। इनमे सत्य का अंश अत्यल्प या नहीं के बराबर रहता है। यथा—

एक मगही कहानी में एक राजा के चार बेटे हैं। वह एक दिन अपने लड़कों से कहता है—'मैंने सपना देखा है कि पाँच परियों का एक देश है। वहाँ चाँदी का चबूतरा है। सोने का गाछ भी है, जिसकी डालें हीरे की हैं। पत्ते-पत्ते पर मोती के गुच्छे पड़े है। जो बेटा मेरे इस सपने को सच करेगा, उसे राजपाट देंगे और परियों

१. अँगरेजी में इसे 'फेयरी टेल्स' या 'परियो की कथा' कहा जाता है। डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने इसे 'रहस्य-रोमांच की कथाएँ' कहा है।—भो० लो० सा० अ०, पृ० ४१७।

से उसका विवाह भी कर देंगे।' तीन बेटों में मेल था। छोटे से सबको वैर था। अतः, छोटे को कुएँ में ढकेलकर तीनो बेटे घोड़े पर सवार हो बाप के सपनों को साकार करने चले। पर, सौभाग्य से कुएँ के रास्ते से ही छोटा बेटा परियों के देश मे पहुँच गया। अन्य बेटे असफल रहे। अन्त मे, अनेक कठिनाइयों को पार कर जब वह पिता के पास परियों के साथ पहुँचा, तब भाइयो ने भयंकर कुटिलता एवं प्रपंच का जाल बिछाया। पर, वह इसे भी पार कर गया। पिता ने प्रसन्न होकर उसका विवाह परियों से कर दिया और उसे राजपाट भी दे दिया।

इस कहानी में राजकुमार को परियों से आरम्भ मे प्रेमिका-रूप मे एवं बाद में पत्नी-रूप में बड़ी सहायता मिलती है। इसमे परियाँ मानव-हितकारी-रूप मे प्रस्तुत की गई है।

'भइया साँप' नामक एक कहानी के अनुसार एक स्त्री का ससुराल मे इसलिए सम्मान नहीं होता था कि उसके नैहर मे भाई-भतीजे नहीं थे। अतः, वहाँ से न कोई आदमी आता था, न कोई सामान। एक दिन इसी दुःख से कातर होकर वह एक टीले पर बैठ रो रही थी कि नागराज की नजर उसपर पड़ गई। उन्होंने उस स्त्री से उसके दुःख का कारण जान लिया। उन्हें बड़ी दया आई। उन्होंने भाई बनकर, उसकी ससुराल मे अपार धन, आभूषण और अन्य सामान पहुँचा दिया। उनकी कृपा से इस स्त्री का जीवन सुखमय हो गया।

इस कहानी मे सर्प को मानव-रूप मे उपस्थित कर, उससे मानवी भावों की व्यंजना कराई गई है। यहाँ सर्प मानव के सहायक के रूप मे उपस्थित किया गया है।

'सुन्दरी' नामक एक कहानी मे एक परी के शाप से एक सुन्दर राजकुमार राक्षस बनता देखा जाता है। फिर, जादू की अँगूठी एवं सुन्दर राजकुमारी की सहायता से वह अपना पूर्व रूप प्राप्त करता है। इस कहानी मे 'परी' का कार्य मानव के लिए अहितकारी हुआ।

७. साहस-पराक्रम की कथाएँ[1]

इनमे किसी वीर नायक के वीर चरित का उल्लेख रहता है। इन कहानियों के भी दो वर्ग हैं—

१. इतिहास-पुरुषाश्रित (अवदान) और

२. अनैतिहासिक पुरुषाश्रित।

१. ऐतिहासिक पुरुषाश्रित :

राजा विक्रमादित्य, राजा भोज, राजा भरथरी और राजा गोपीचन्द आदि की कहानियाँ इसी वर्ग मे आती है। इन राजाओं में वीरता के अतिरिक्त अन्य गुण भी हैं,

---

१. डॉ० सत्येन्द्र ने इस वर्ग की कहानियो को 'वीरगाथाएँ अथवा अवदान (लीजेण्ड)' कहा है। —ब्र० लो० सा० अ०, पृ० ८६।

जिनके कारण इन्हें प्रसिद्धि मिली है। यथा—महाराज विक्रमादित्य वीर होने के अतिरिक्त दानशील, दयालु एवं विद्वान् सम्राट् थे। राजा भोज में भी यही गुण थे। राजा भरथरी एवं राजा गोपीचन्द में अन्य गुणों के अतिरिक्त वैराग्य-भाव की प्रधानता है; इस कारण ये बहुत लोकप्रिय हुए हैं।

२. अनैतिहासिक पुरुषाश्रित :

इस वर्ग मे किसी भी कल्पित राजा या उसके पुत्र या अन्य वीर पुरुष की वीरता एवं उसके अलौकिक कृत्यो का उल्लेख होता है। ऐसे वीर पुरुप प्रायः बड़े-बड़े भयंकर राक्षसो, दुर्जनो एवं भूत-प्रेतो को अपनी शक्ति और बुद्धि से पराजित करते देखे जाते हैं। ये अपने अपूर्व शौर्य के सहारे इच्छित फल प्राप्त करते पाये जाते हैं।

८. पौराणिक कथाएँ[१]

प्रायः देवी-देवताओं से सम्बद्ध कथाएँ इस वर्ग मे आती है। इनमें उनके अलौकिक कृत्यों के वर्णन के साथ पौराणिक घटनाओं का भी वर्णन होता है। यथा—समुद्र-मन्थन की कथा[२], भगवान् के विविध अवतारों की कथा[३] आदि।

कुछ देव-पात्र मानव के कार्य-कलापों में विशेप सहायक बनते देखे जाते है। उनके सम्बन्ध मे अनेक काल्पनिक धारणाएँ इन कथाओं में व्यक्त होती हैं। यथा—

शिव-पार्वती : ये दोनों प्रायः रात्रि मे सोद्देश्य विचरण करते देखे जाते हैं। यात्रा के पथ में पार्वती के हठ पर शिव को अनेक बार दीन-दुखियों की सहायता करनी पड़ती है, सौभाग्यहीना को सौभाग्यवती, पुत्रहीना को पुत्रवती और दरिद्र को धनी करना पड़ता है।

विध-विधाता[४] : ये प्रायः शिशु की छठी के दिन भाग्य लिखने को रात्रि में विचरते दिखाई पडते हैं। राह में विध की जिद पर विधाता को अनेक अलौकिक कृत्य सम्पादित करने पड़ते हैं। यथा—दीन-दुखियों का उद्धार, मृतकों या निर्जीव में प्राण-प्रतिष्ठा[५] आदि। इन कथानकों के माध्यम से देवी-देवताओं के प्रति श्रद्धा, पूजाभाव एवं विश्वास की व्यंजना की जाती है।

उपर्युक्त आठ कथावर्गों में सामान्य रूप मे निम्नांकित विशेषताएँ देखी जा सकती हैं —

१. उनकी आकृति छोटी और बड़ी, दोनों प्रकार की है।

२. उनके कथाविधान में एक व्यापक तारतम्य दिखाई पड़ता है।

---

१. अँगरेजी मे इसे 'मिथ' कहते है। डॉ० सत्येन्द्र ने इसे 'गाथा' की संज्ञा दी है। —ब्र० लो० सा० अ०, पृ० ८६।

२. अनन्त चतुर्दशी के पर्व में थाली में पानी लेकर व्रती हौंडते हैं। पुरोहित और व्रती में वार्त्ता चलती है : पुरोहित—का मथऽ हऽ ? व्रती—छीर समुन्दर (क्षीर समुद्र)। पु०—केकरा खोजऽ हऽ ? व्रती—अनन्त देवता के। पुरोहित—पयलऽ ? व्रती—हाँ, पयली।

३. रामावतार, कृष्णावतार, नृसिंह अवतार आदि की कथाएँ।

४. ब्रह्मा।

५. दे० म० लो० सा०, 'जितिया के महातम' पृ० ८-९।

अझला कहती है—सुपती पनिया लगलो जी भइया,
तइयो न पेलूँ कमल के फूल।

भाई कहता है—आऊ जो बहिनी, आऊ जो।

अझला क्रमशः घुटना, कमर, छाती, मुँह और सिर तक पानी छूने और कमल न पाने का वर्णन उपर्युक्त छन्दोबद्ध पंक्तियो की शैली में करती जाती है और अन्त तक भाई एक ही टेक दुहराता जाता है :

आऊ जो बहिनी, आऊ जो।

अझला के डूबने के बाद उद्धार का प्रसंग आता है। इसमे एक सुग्गा और अझला के बीच वार्त्ता चलती है —

सुग्गा—अझला गे ! तोरा माय कानऽ हउ,
तोरा बाप कानऽ हउ।
तोरा पढ़ल सुगवा सेउ कानऽ हउ,
तोरा गुरु पुरोहित सब कानऽ हउ।
तोरा टोला पड़ोसिन सब कानऽ हउ।

अझला—सुगवा रे !
हथा छानल हउ।
गोड़ा बाँधल हउ।
भइया हारल हउ
डोमा जीतल हउ
छतिया पर पाथर परल।

यह वार्त्ता-क्रम सभी परिजनों के सामने चलता है। पंवितयों की आवृत्ति का क्रम तबतक चलता रहता है, जबतक अझला का उद्धार नहीं हो जाता।

ऐसी ही एक कहानी दो शिशुओ के प्रसंग मे आती है, जिनकी सौतेली माताएँ, उन्हें मरवा कर गड़वा देती हैं। लड़का इमोला और लडकी चम्पा के गाछ में परिणत हो जाते हैं। एक दिन कौआ इस चम्पा का एक फूल राजा की पगड़ी पर गिरा देता है। राजा इस पेड़ का पता लगवा लेते है। वे और फूल तोडवाना चाहते हैं, पर चम्पा का गाछ आकाश छूता जाता है। इस क्रम मे फूल तोड़नेवाले का नाम—बदल-बदलकर निम्नांकित पक्तियाँ दुहराई जाती हैं—

चम्पा के गाछ से आवाज आती है—

अहो इमोला भइया हो।

अप्पन बाबा के पेठवल मलिया फुलवा तोड़न आवे हो।

इमोला के वृक्ष से उत्तर मिलता है —

अहे चम्पा बहिनी हे।
डारे-पाते लगऽ न आकास हे।

इन पंक्तियों की आवृत्ति का क्रम तब टूटता है, जब दोनों शिशुओं की अपनी माँ आती है—

चम्पा—**अहो इमोला भइया हो।**
अप्पन मइया फुलवा लोढ़न आवे हो।
इमोला—**अहे चम्पा बहिनी हे।**
डारे-पाते भुइयाँ सोहरऽ हे।

वस्तुतः, आकाश छूनेवाली चम्पा की शाखाएँ अब धरती पर लोटने लगती हैं। वृक्षों पर माँ का दूध पड़ता है, तो सुन्दर राजकुमार और राजकुमारी खड़े हो जाते हैं।

२. क्रम-संवर्द्धित लघु छन्द-कहानी में 'सुग्गा और उसके दाल की कहानी' प्रसिद्ध है। यह कहानी विविध भाषा-क्षेत्रों में केवल पात्र और उपकरण बदलकर चलती है। उसमें कथावस्तु, तन्त्र और उद्देश्य में कोई अन्तर नहीं होता। मगही कहानी इस प्रकार है—

एक तोता था, जिसने एक बूँट पाया। उसे लेकर वह चक्की के पास गया और बोला—इसकी दाल बना दो। उसने दाल बनाकर एक दाल सुग्गे को दिया और एक दाल स्वयं रख ली।

यहीं से छन्दःक्रम चलता है। वह क्रमशः बढ़ई, राजा, रानी, सर्प, लाठी, आग, समुद्र, हाथी और चींटी के पास पहुँचकर अपनी फरियाद सुनाता है और अपना काम न कर देनेवाले को दण्डित करने की प्रार्थना करता है। यथा :

बढ़ई के पास—

बढ़ई बढ़ई खूँटा चीर, खूँटा में दाल हे।
का खाऊँ का पीऊँ, का ले परदेस जाऊँ ?

राजा के पास—

राजा-राजा बढ़ई डाँट, बढ़ई न खूँटा चीरे,
खूँटा में दाल हे, का खाऊँ, का पीऊँ
का ले परदेस जाऊँ।

अन्त में, सबसे निराश होकर चींटी के पास पहुँचता है—

चूँटी-चूँटी हाथी के सूँढ़ में घुस,
हाथी न समुन्दर सोखे, समुन्दर न आग बुझावे
आग न लाठी जारे, लाठी न साँप मारे
साँप न रानी डँसे, रानी न राजा से रूठे
राजा न बढ़ई डाँटे, बढ़ई न खूँटा चीरे
खूँटा में दाल हे, का खाऊँ, का पीऊँ,
का ले परदेस जाऊँ ?

चींटी को दया आ जाती है। वह मदद करने को तैयार हो जाती है। फिर तो सारा छन्दःक्रम उलट जाता है। चींटी के भय से हाथी, हाथी के भय से समुद्र, और इसी

क्रम से सभी कोई एक दूसरे के भय से सुग्गे का काम करने को तत्पर हो जाते हैं। अन्त मे, खूँटे से दाल मिल जाती है। उसे लेकर सुग्गा परदेश जाता है।

उपर्युक्त कथा का नायक सुग्गा है, जो पक्षी होने के कारण खाद्य वस्तुओ के प्रति अधिक आकृष्ट होता है। उसमे भी सुग्गे को बूँट बहुत प्रिय होता है, जिसे वह कही से पा लेता है। उसे दाल बनाकर सम्पूर्ण हिस्सा पाने के क्रम मे, वह पशु-पक्षी, मनुष्य, जड या चेतन प्राणियों से सहायता की प्राथना करता है, पर सारी प्रार्थनाएँ व्यर्थ जाती है। तब वह प्रतिहिंसा से भरकर अपनी सहायता न करनेवालों को अधिक शक्तिशाली से दण्ड दिलाकर लक्ष्य की पूर्त्ति करना चाहता है। अन्त मे, एक बहुत क्षुद्र जीव (चींटी) की सहायता से उसका लक्ष्य पूर्ण होता है।

चींटी के पास पहुँचते ही कथा पीछे की ओर लौटती है। अभी तक जो पद्य-क्रम चल रहा था, वह भंग हो जाता है। क्रम-संवृद्धता टूटती जाती है। प्रत्येक प्राणी अपनी हानि की आशंका से भयभीत होकर मुख्य पात्र के कार्य के लिए तैयार होता जाता है। भयभीत होने पर सभी पद्य छोड़ कर गद्य मे बातें करते हैं। इससे कथा का अन्त गद्य से होता है। अन्त मे कथा का नायक सुग्गा अपने अभीष्ट फल को पाकर चला जाता है। कहानी सुखान्त हो जाती है।

कहानी की निर्माण-भूमि ग्राम है। सभी पात्र अति परिचित हें। यथा—

खूँटा, बढ़ई, राजा, रानी, साँप, लाठी, आग, समुन्दर, हाथी, चींटी और सुग्गा।

यह कहानी बाल-प्रकृति के अनुकूल है। इसमे ऐसे ही तत्त्वों, पदार्थो एवं स्थानो को रखा गया है, जो बालकों की सुकुमार बुद्धि के लिए ग्राह्य हैं।

इस कहानी मे सन्देश भी है। क्षुद्र जीव का सहायता के लिए तत्पर हो जाना अनुभवगम्य सत्य है। अनेक बार बड़ी एवं भरोसे की वस्तु सहायता नही कर पाती, जब कि तुच्छ वस्तु काम आ जाती है। बड़ी और शक्ति-सम्पन्न वस्तुओं के ठीक सामने छोटे और शक्तिहीन प्राणियों की उदारता का दृश्य अद्भुत व्यंग्य प्रस्तुत करता है।

सप्तम अध्याय

मगही का प्रकीर्ण लोक-साहित्य

प्रकीर्ण साहित्य के अन्तर्गत मगही कहावतों, मुहावरों एवं पहेलियों को स्थान दिया गया है। इनके अध्ययन से मगही-वासियों के जीवन के विभिन्न पहलुओं का परिज्ञान आसानी से हो जाता है।

१. मगही-कहावतें[1]

उद्भव :

कहावतों का प्रचलन कब हुआ, सहसा इस प्रश्न का समाधान प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। सच पूछा जाय, तो कहावतों के उद्भव एव विकास का इतिहास उतना ही प्राचीन है, जितना मनुष्य के अन्य वाग्व्यवहार का इतिहास।

कहावतों का जन्म कैसे हुआ। इस प्रश्न का समाधान उनके तत्त्व-परीक्षण के आधार पर किया जा सकता है। सामान्यतया प्रत्येक कहावत के चार अंग होते हैं—

१. उसका कथ्य,

---

१. भिन्न-भिन्न भाषाओं एवं बोलियों में 'लोकोक्ति' के भिन्न-भिन्न पर्यायवाची नाम मिलते हैं। यथा—

भाषा या बोली	पर्याय
संस्कृत	आभाणक, प्रवाद, लोकोक्ति, लोकप्रवाद, लौकिकी गाथा आदि।
हिन्दी	कहावत, कहनावत, कहाउत, कहनूत, उपखान, पाखाना, लोकोक्ति।
बँगला	प्रवाद, वचन, प्रवचन, लोकोक्ति, प्रचलित वाक्य।
गढ़वाली	पाखाणा।
लहदी	अखाण।
राजस्थानी	आखाणा, कहवत, केवत, कुवावत, कुवावट।
मालवी	केवात।
आसामी	लंबोर, लंबारम।
मराठी	म्हण, म्हणणी, आणा, आहणा, न्याय, लोकोक्ति।
गुजराती	कहेवत, कहेणी, कहेती, कथन, उखाणु।
उर्दू	जर्बुल, मिस्ल।
भोजपुरी	कहावत, कहाउत, कहानी।
मैथिली	कहावत, कहाउत, लोकोक्ति।
मगही	कहावत, कहाउत, कहनी।
तेलुगु	Semeta (Proverb)
मलयालम	Pazam chol.
तमिल	Pazamoli (Old saying)
अँगरेजी	Proverb.

२. उद्देश्य,

३. कथन की शैली एवं

४. भाव-संवेग की मात्रा।

उदाहरण के लिए निम्नांकित मगही कहावत को लें—

कहाँ राजा भोज आउ कहाँ गाँगू तेली।

इसका कथ्य है— 'कहाँ राजा भोज आउ कहाँ गाँगू तेली।' उद्देश्य है—अनधिकारी होने पर भी कीर्त्ति-लालसा से पीडित व्यक्ति का उपहास करना। कथन-शैली, कथात्मक है, कारण कि इसके मूल मे एक कथा छिपी है, जिसका आश्रय लेकर उद्देश्य-सिद्धि का प्रयास किया गया है एवं भावसवेग है—उपहास-भावना, जिसकी विशिष्ट 'मात्रा' के प्रेषण के लिए ही इस कहावत का जन्म हुआ।

उपर्युक्त पद्धति के आधार पर कहावतों के उद्भावक हेतु इस प्रकार हो सकते है—१. भाव-संवेग, २. लोक-कथाएँ, ३. अनुश्रुतियाँ, ४. लोक-मान्यताएँ, ५. ऐतिहासिक तथ्य, ६. प्राज्ञवचन और ७. अनुकरण-वृत्ति।

कहावतों के जन्म का सर्वप्रमुख कारण भावसवेग ही है। आधुनिक मनोविज्ञान-शास्त्रियों ने मानव-मन के तीन खण्ड किये हैं—चेतन (Conscious), अवचेतन या उपचेतन (Subconscious) एवं अचेतन (Unconscious)। इनमें चेतन मन वह है, जिसे मनुष्य अपने दैनन्दिन जीवन में संचालित होता रहता है। अवचेतन या उपचेतन इससे सूक्ष्म स्तर पर सक्रिय रहता है और विभिन्न भावसवेगों द्वारा चेतन को हमेशा प्रभावित करता रहता है। ये भावसंवेग मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं—रागात्मक एवं अरागात्मक, जिन्हे सुखात्मक एवं दुःखात्मक भी कहा जा सकता है। इन दोनो मुख्य भेदों से अनेक अवान्तर भेद प्रस्फुटित होते हैं और हर्ष, उल्लास, विनम्रता, स्वाभिमान, शोक, अवसाद, अहंकार, द्वेषादि की संज्ञा प्राप्त करते हैं। कहावतों के मूल मे मुख्यतः ये भावसंवेग ही सक्रिय रहते हैं। उदाहरण के लिए, ऊपर उद्धृत कहावत के उद्भव के मूल में 'लालसा' एवं 'द्वेष' नामक भावसवेग ही सक्रिय हैं। उनमे 'लालसा' निर्बल भावसंवेग है एवं 'द्वेष' प्रबल। कीर्त्ति पाने की लालसा सभी में होती है और राजा भोज के कीर्त्ति-प्रसारक कार्यों (दानादि) को देख गाँगू तेली के मन मे वह भाव जगा। पर, वह अनधिकारी था, इसलिए उसके आलोचक का मन द्वेष से भर उठा और उपर्युक्त कहावत का जन्म हो गया। कहावत की सज्ञा उसे तब मिली, जब वह प्रथम किसी के मुख से कही गई और बाद मे हजारों मुख से हजारों बार मिलते-जुलते प्रसंगों पर कही जाती रही।

कहावतों के उद्भव मे लोक-कथाएँ भी सहायक होती हैं। लोक-कथाएँ लोकानुभव से सम्बन्ध रखती हैं, जो किसी घटना-विशेष से सम्बद्ध होती हैं। सम्भवतः, इसीलिए कहावतों के पर्याय 'आभाणक', 'प्रवाद', 'लौकिकी गाथा', 'उपखान', 'ओखाणो', 'उखाणु' जैसे शब्द हैं। उदाहरण के लिए, मगही की एक कहावत है—

कोयरिन के बेटी राजा घर गेल, तो बैंगन के टैंगन कहलक।

अर्थात्, कोयरी की बेटी राजा के घर गई, तो 'बैंगन' को 'टैंगन' कहने लगी। इसके उद्भव के पीछे यह लोककथा वर्त्तमान है—एक कोयरिन की बेटी थी। वह अत्यन्त रूपवती थी। राजा ने उसके लावण्य पर मुग्ध होकर, उससे ब्याह कर लिया और वह उसे राजमहल में ले गया। उसे अब अपनी वर्त्तमान स्थिति पर बहुत अहंकार हो आया था। एक दिन वह राजमहल की छत पर टहल रही थी कि नीचे से किसी तरकारी वाली (जो कि कोयरिन ही थी) ने आवाज दी 'ले बैंगन', इसपर वह भुनभुनाई—'ऐंह बैंगन, टैंगन।'

अनुश्रुतियो से तात्पर्य वैसे कथात्मक विश्वासों से है, जिनकी घटनाएँ कब घटीं, कोई नहीं जानता; पर वे अनुश्रुतियों के रूप मे प्रवहमाण हैं। उदाहरणार्थ, मगही पर्व-त्योहार-सम्बन्धी कहावतों - यथा 'उनकर माय खरजितिया कैलथिन होत', 'उ चौठी के चाँद देखलक हल' आदि को देखा जा सकता है।

लोकमान्यताओं और अनुश्रुतियों मे अन्तर है। अनुश्रुतियों का विश्लेषण पहले किया जा चुका है। लोकमान्यताओं के मूल में असम्भव घटनाएँ बैठी रहती हैं। ये घटनाएँ घट नहीं सकती, पर लोकमान्यता उन्हें मिली हुई है। उदाहरण के लिए, मगही के एक कहावत-मिश्रित वाक्य-प्रयोग को देखें—'ऊ सब हँसऽ हल ता ओकर मुँह से मोती झरऽ हलइ।' इसके पीछे जो घटना या कथा सन्निहित है, वह यह है—किसी राजा की एक बेटी थी। वह बड़ी ही रूपवती थी। जब वह हँसती थी, तब उसके मुख से मोती झरते थे।......' यह घटना असम्भव ही मानी जायगी, कारण कि किसी के हँसने पर मोती का झरना कैसे सम्भव है, फिर भी इसे लोकमान्यता प्राप्त है।

कहावतों के उद्भव में ऐतिहासिक तथ्यों या घटनाओ का भी बहुत दूर तक हाथ होता है। उदाहरण के लिए, 'कहाँ राजा भोज कहाँ गाँगू तेली', 'अनकर धन पर बिकरम राजा' जैसी मगही कहावतों मे ऐतिहासिक तथ्य ही आधार का काम कर रहे हैं।

प्राज्ञवचन से तात्पर्य है महान् या समादरणीय व्यक्ति की वह सूक्ति, जो अपने सारतत्त्व के कारण लोगो की जिह्वा पर निवास करने लगती है और अनुकूल प्रसंगो पर बार-बार उदाहृत होती रहती है। प्रभावसिद्ध कवियो के देशकालपात्र-निरपेक्ष वचन भी इसी वर्ग में आते हैं। उदाहरणार्थ, मगही की यह कहावत—'का बरखा जब किरखी सुखानी'—गोस्वामी तुलसीदास की सूक्ति 'का बरसा जब कृषि सुखाने' का किञ्चित् परिवर्त्तित रूप है।

अनुकरण-वृत्ति से तात्पर्य है, कहीं कोई वस्तु देखकर उसी के अनुरूप वस्तु गढ़ लेना। यह प्रवृत्ति कहावतों के उद्भव के मूल में भी बहुधा सक्रिय पाई जाती है। उदाहरण के लिए पालि की एक प्रसिद्ध कथात्मक कहावत यों है—

जीवकं च मतं दिस्वा धनपालिं च दुग्गतं।
पन्थकं च वने मूल्हं पापको पुनरागतो॥
[जीवकं च मृतं दृष्ट्वा धनपालं च दुर्गतम्।
पन्थकं च वने भ्रष्टं पापको पुनरागतः॥]

अर्थात्, 'जीवक को मृत, धनपाल को दरिद्र और पन्थक को वन में मार्गभ्रष्ट देखकर पापक लौटकर चला आया।' इसके मूल में कथा यह है कि एक युवक को अपने 'पापक' नाम से बड़ी आपत्ति थी और उसने अपने आचार्य से अपना नाम बदल देने को कहा। इसपर आचार्य ने कहा कि जाओ, सर्वत्र घूमकर कोई मगलवाचक सार्थक नाम ढूँढ़ लाओ। इस सार्थक नाम को ढूँढ़ने के क्रम मे उसने तीन व्यक्तियो को पाया, जिनके नाम क्रमशः जीवक, धनपाल एव पन्थक (मार्गदर्शक) थे, किन्तु वे मृत, दरिद्र एवं मार्गभ्रष्ट थे। इसपर उसने समझा कि नाम का अपने-आपमें कोई महत्त्व नहीं और लौटकर चला आया। यह दृष्टान्त इतना अधिक लोकप्रिय प्रमाणित हुआ कि मगही[1], राजस्थानी[2], मराठी[3], बुन्देलखण्डी[4], भोजपुरी[5], छत्तीसगढ़ी[6] आदि मे इसके अनुकरणात्मक रूपान्तर प्राप्य हैं।

परम्परा :

परम्परा की दृष्टि से अन्वेषण करने पर वैदिक साहित्य मे अनेक ऐसे वाक्यखण्ड मिलते है, जिन्होंने आगे चलकर सूक्तियों का रूप ले लिया होगा। उसकी उत्तराधिकारिणी संस्कृत में ऐसी लोकोक्तियों का विपुल भाण्डार सरक्षित है, जिनका प्रयोग कर कवियो ने न केवल अपनी काव्य-साधना को स्थान-काल-सम्बन्धी व्यापकता प्रदान की है, अपितु सस्कृत के अभिव्यंजना-सामर्थ्य में भी वृद्धि की है। उदाहरणार्थ—

अविवेकः परमापदां पदम्। सर्वः स्वार्थं समीहते।
विषस्य विषमौषधम्। शाठं शठ्यं समाचरेत्।

---

१. (क) रंथी चढल हम अम्मर देखली, खेत कोड़इत धनपाल।
लछमिनियाँ के रोवइत पयली, भल रे भल ठनठनमें भल॥ (मगही)
(ख) जनम के दरिद्दर, नाम धनेस। (मगही). ('मगही कहावत-संग्रह', पृ० २१)

२. अमरो तो मैं मरतो देख्यो भाजत देख्यो सूरो,
चादेर तो मैं खुसती देखी, लाछ बहारै कूड़ो।
आगे टूँ पाछो भलो, नाम भलो लैटूरो॥ (रा० क०, पृ० ४६)

३. अमरसिंह तो मर गये, भीक माँगे धनपाल।
लक्ष्मी तो गोंबरया बैंधी, भले बिचारे ठणठणपाल॥ (Marathi Proverbs : R. A. Manwaring.)

४. लकरी बेचत लाखन देखे, घास खोदत धन धनरा।
अमर हते ते मारतन देखे, तुमहं भले मेरे ठनठन रा॥ (लोकवार्ता, अप्रैल, १९४६, पृ० १४०)

५. बिनिया करत तब मिनिया देखली, हर जोतत धनपाल।
खटिया बढ़ल हम अमर देखली, सबसे निमन ठट्टपाल॥ (भोजपुरी)

६. अम्मर ल मर्य मरत देखें व, लछमन जतिल काँवर बोहत देखें व, त ठुनठुनिया उतरगे पार।
(छत्तीसगढ़ी)

आदि ऐसी ही सूक्तियाँ (कहावतें) हैं। इनकी समृद्ध परम्परा प्राकृत, अपभ्रंश एवं आधुनिक विभिन्न भारतीय भाषाओं में प्रवहमाण दीखती है। मगही कहावतें भी इसी प्रवाह-परम्परा में हैं।

महत्त्व :

लोक-साहित्य में कहावतों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कारण यह है कि लोक-साहित्य के अन्य रूपों में एक विस्तृत भावना को दीर्घरूपता एवं व्यापकता के साथ प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति वर्त्तमान रहती है, पर कहावतों में 'गागर में सागर' की सूक्ति चरितार्थ होती दीखती है। उसमें हजारों वर्षों से परम्परा-रूप में प्रवहमाण सञ्चित लोकानुभवों एवं जीवन के सामान्य तथा गम्भीर सत्य तथ्यों को स्पृहणीय सामासिकता के साथ उद्घाटित करने की अद्भुत क्षमता विद्यमान रहती है। यही कारण है कि अनेक विद्वानों ने कहावतों को लोक-साहित्य का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग माना है।[1]

जैसा कि उपर्युक्त सन्दर्भ से ध्वनित है, संसार के सभी देशों में प्रचलित भाषाओं एवं उनके लोक-साहित्य में 'कहावतों' को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। भाषा-विशेष से अनुशासित समाजविशेष के मनुष्यों को लोकोक्तियों की यह विपुल एवं समृद्ध परम्परा अपने पूर्वजों से उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त होती है। उनके जीवन को व्यावहारिक दृष्टि से सुखी एवं सम्पन्न बनाने में सक्षम इन लोकोक्तियों में बहुमूल्य सीखें भरी रहती हैं। उनका अनुसरण कर वे अपने जीवन-मार्ग को प्रशस्त करते आगे बढ़ते हैं। संस्कृत की एक उक्ति है—

---

१. (क) 'वास्तव में लोकोक्तियाँ अनुभूत ज्ञान की निधि हैं। शताब्दियों से किसी जाति की विचार-धारा किस ओर प्रवाहित हुई है, यदि इसका दिग्दर्शन करना हो, तो उस जाति की लोकोक्तियों का वर्गीकरण करके राजनीतिक तथा भाषा की इतिहास-सम्बन्धी सामग्री प्रचुर परिमाण में उपलब्ध की जा सकती है।'

—डॉ० उदयनारायण तिवारी : भोजपुरी लोकोक्तियाँ, हिन्दुस्तानी, १९३९, पृ० १६१।

(ख) 'गाँव के समाज का सारा अनुभव कहावतों के अन्दर सुरक्षित है। कहावत ही हमारे अपढ़ और अशिक्षित किसानों के अँधेरे घर के जगमगाते हुए दिये हैं। कहावतों में उनके पूर्वजों के हजारों वर्षों के अनुभव भरे हुए हैं।'

—श्री० रा० न० त्रि० : ह० गा० सा०, पृ० २५४।

(ग) 'लोकोक्तियाँ मानवी ज्ञान के चोखे और चुभते हुए सूत्र हैं। अनन्तकाल तक धातुओं को तपाकर सूर्यरश्मि नाना प्रकार के रत्न-उपरत्नों का निर्माण करती है, जिनका आलोक सदा छिटकता रहता है। उसी प्रकार लोकोक्तियाँ मानवी ज्ञान के घनीभूत रत्न हैं, जिन्हें बुद्धि और अनुभव की किरणों से फूटनेवाली ज्योति प्राप्त होती है। लोकोक्तियाँ प्रकृति के स्फुलिंगों (रेडियो ऐक्टिव) तत्त्वों की भाँति अपनी प्रखर किरणें चारों ओर फैलाती रहती हैं। लोकोक्ति-साहित्य संसार के नीति-साहित्य (विसडम लिटरेचर) का प्रमुख अंग है।'

—डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल : लोकोक्ति-साहित्य का महत्त्व, 'मधुकर' में प्रकाशित।

(घ) 'सांसारिक व्यवहारपटुता और सामान्य बुद्धि का जैसा निदर्शन कहावतों में मिलता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।'

—डॉ० कन्हैयालाल सहल : रा० क०, पृ० ०१।

किं चानर्घ्यं ? यदवसरे दत्तम् ।

कौन-सी वस्तु बहुमूल्य है ? जो समय पर दी जाय ।

'कहावतें' ऐसी ही देन हैं, जो उपयुक्त अवसर पर प्राप्त होकर मानव-जीवन के लिए अमूल्य वस्तु प्रमाणित होती हैं । उदाहरणार्थ, मगही की एक प्रसिद्ध कहावत है—

मोटा दतुमन जे करे, नित उठ हर्रे खाय ।
बासी पानी जे पिये, ता घर बैद न जाय ।।

इसके पीछे एक कथा सन्निहित है - एक आदमी बहुत रुग्ण रहता था । उसकी स्थिति ऐसी दयनीय हो गई थी कि वह जीवन से ही निराश हो चला था । किसी वैद्य या डॉक्टर पर भी उसे भरोसा न रहा । पेट की बीमारी, उसके दुःख का मूल कारण थी । एक दिन संयोगवश एक साधु उससे आ मिले । उन्होंने उसे उपर्युक्त कहावत मे स्वास्थ्य की मानों कुजी ही दे दी । इस छोटे से, किन्तु बहुमूल्य नुस्खे ने उसे हमेशा के लिए नीरोग बना दिया ।

इसी तरह मगही की एक दूसरी प्रसिद्ध कहावत है—

कर केतारी निंबुआ, बिन चँपले रस नहीं दे ।

जमींदारी-युग की कथा इस कहावत के मूल मे सुरक्षित है ।

एक सीधा जमीन्दार अपनी सरलता के कारण रैयतों से परेशान रहता था । उसकी सरलता का लाभ उठाकर उसकी प्रजा उसे मालगुजारी नहीं देती थी । उसके मित्र ने उसे उपर्युक्त सीख दी । कहावत का सार है—विना दबाव डाले न मालगुजारी

(ङ) 'कहावतें लोक की सम्पत्ति होती है । उनका सम्बन्ध लोकजीवन से होता है । इसीलिए, कहावतों को लोकोक्ति भी कहा जाता है, अर्थात् कहावतें विद्वानो की प्राज्ञोक्ति नही होती । वह लोक-जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली लोक की उक्ति होती है ।'

—श्रीबैजनाथ सिह विनोद : भो० लो० सा० : एक अध्ययन, पृ० १७७ ।

(च) कहावतें अपनी प्राचीनता के लिए लोक-साहित्य के अन्य अंगो की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण हैं । हर समय में, सभ्य, किंवा असभ्य, सभी प्रकार के लोगों मे कहावतों का प्रयोग देखा जाता है । जीवन के स्वभाव से उनका निकटतम सम्बन्ध है । उत्साह और जिन्दादिली कहावत अथवा लोकोक्ति के जनन मे सहायक होते है । जिस तरह नमक के विना भोजन रसहीन प्रतीत होता है, वैसे ही भाषा और बोलियों के क्षेत्र में विना कहावतो के प्रभावी तत्त्व नष्ट हो जाता है ।'

—श्रीश्याम परमार : भारतीय लोक-साहित्य, पृ० १८५ ।

(छ) 'लोकोक्ति-साहित्य मे गागर में सागर भरने की प्रवृत्ति काम करती है । इनमें जीवन के सत्य बड़ी खूबी से प्रकट होते हैं ।'

—श्रीकृष्णानन्द गुप्त : लोकवार्ता-पत्रक, संख्या ३, पृ० १ ।

(ज) 'लोकोक्तियाँ अनुभवसिद्ध ज्ञान की निधि है । मानव ने युग-युग से जिन तथ्यों का साक्षात्कार किया है, उनका प्रकाशन इनके माध्यम से होता है । ये चिरकालीन अनुभूत ज्ञान के सूत्र है । समास-रूप में चिरसंचित अनुभूत ज्ञानराशि का प्रकाशन इनका प्रधान उद्देश्य है ।'

—डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय : लो० सा० भू०, पृ० १३७ ।

वमूल हो सकती है, न ऊख और नींबू से रस निकल सकता है। कहने की अपेक्षा नहीं कि एक सीख ने उस सरल जमीन्दार की सारी समस्या हल कर दी।

इस प्रकार, कहावतों में ऐसे तर्क और ऐसी युक्तियाँ मिलती हैं कि उनसे आदमी निस्सन्देह बहुत लाभ उठा सकता है। डॉ० कन्हैयालाल सहल ने ठीक ही लिखा है—'न्याय मे आप्त-वाक्य को प्रमाण माना गया है, किन्तु कहावत (लोकोक्ति) का महत्त्व किसी भी आप्त-वाक्य से कम नहीं। वस्तुतः, कहावत की अदालत ऐसी सबल है कि उसके निर्णय के बाद फिर कहीं और आगे जाने की जरूरत नहीं है। कहावत के प्रमाण के सम्मुख सभी प्रमाण फीके हैं।'[1]

यूरोपीय शिक्षण-पद्धति में कहावतों (Proverbs) का बहुत अधिक उपयोग होता है। इनका आश्रय ले विद्यार्थी अनेक कथानकों की उद्भावना करते हैं। उनकी सार्थकता प्रमाणित करने के लिए विविध घटनाओं की योजना करते हैं। इतना ही नहीं, उनको विषय के रूप मे चुनकर वाद-विवाद करते हैं। इन सबका परिणाम यह होता है कि उनकी बुद्धि बहुत अधिक तर्क-प्रवण और तीक्ष्ण हो जाती है। कुछ देशों मे शिक्षा के साथ ही खेल-कूद के क्षेत्र में भी इन कहावतों का व्यवहार किया जाता है। जैसे, जापान के एक प्रोफेसर, जिनका नाम कोची दोई है, ने अपने अनुभवों का इस प्रकार उल्लेख किया है—'मेरे बचपन मे बच्चे जिन ताशों से खेलते थे, उनकी संख्या पचास होती थी। हरेक पत्ते पर कहावत प्रदर्शित की जाती थी। बच्चों के बीच इन कहावतों को लेकर बडी प्रतिस्पर्धा चलती थी।'[2] इस प्रकार, लोकोक्तियो का संसार विलक्षणताओं से परिपूर्ण है।

मानव-जीवन के अन्धकार को जीवन-पर्यन्त विच्छिन्न करने में रत ऋषि-मुनियों की सूक्तियाँ भी लोकोक्तियों के पद पर अधिष्ठित हो जाती हैं। यथा, गोस्वामी तुलसीदास की यह सूक्ति द्रष्टव्य है—

का बरसा जब कृषि सुखाने।

इस सूक्ति को सहज भाव से स्वीकार कर मगही-भाषी जनता ने उसे लोकोक्ति का गौरव प्रदान किया है। अब यह लोकोक्ति के रूप में मगही-भाषी जनता के मध्य इस प्रकार प्रचलित है—

का बरखा जब किरखी सुखानी।

कहावतों का ऐतिहासिक महत्त्व भी है। इनके गम्भीर अध्ययन से मालूम होता है कि इनमें बहुत-सी ऐसी कहावतें भी हैं, जो भाषा के भावगत सम्बन्धों पर प्रकाश डालती हैं। यथा, संस्कृत में एक लोकोक्ति है—

निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते।

---

१. राजस्थानी कहावतें, पृ० १, २।

२. Introduction to the Proverbs of Japan by Prof. Kochi Doi.

इसका मगही रूप यों है—

जहाँ पेड़ न बगाध, हुआँ रेंड़ पुरधान।

हिन्दी मे इसका रूप यों है—

जहाँ बड़ नहिं, वहाँ रेंड़ प्रधान।

अँगरेजी मे इसी भाव की व्यंजना इस लोकोक्ति से की गई है—

Figure among ciphers.

इसी प्रकार संस्कृत में एक दूसरी लोकोक्ति है—

अर्द्धो घटो घोषमुपैति नूनम्।

इसका मगही रूप है—

अधजल गगरी छलकत जाय।

यही रूप हिन्दी में प्रचलित है। अँगरेजी में इस भाव की व्यंजना इस लोकोक्ति में की गई है—

An empty vessel makes much noise.

भाषाविज्ञान के विद्यार्थियों के लिए कहावतों का अत्यधिक महत्त्व है। बोलचाल और साहित्य में व्यवहृत होनेवाले बहुत-से शब्द समय पाकर अप्रचलित हो जाते हैं। परन्तु, कहावतों में ऐसे शब्दों के लोप का अवकाश कम रहता है। उदाहरणार्थ, डॉ०वासुदेवशरण अग्रवाल[1] ने 'बैल' शब्द को प्रस्तुत किया है। बैल के लिए 'पोठ्यो' शब्द संस्कृत 'प्रोष्ठ' का सूचक है। राजस्थानी में यह 'पोठ्यो' शब्द सुरक्षित है। हिन्दी की अनेक बोलियों में अब यह शब्द प्रचलित नहीं है। यह भी वैदिक युग का शब्द है—प्रोष्ठपद, अर्थात् प्रोष्ठ के पैर के आकारवाला। यह एक नक्षत्र का प्रसिद्ध नाम था। मगही में यही 'पोठयो' 'पाठा' के रूप में सुरक्षित है।

इस प्रकार, कहावतों या लोकोक्तियों का अनेक दृष्टियों से महत्त्व प्रतिपादित किया जा सकता है। वस्तुतः, इनमें जन-जीवन की सम्पूर्ण अनुभूतियाँ संक्षिप्त रूप से संरक्षित रहती हैं। अतः, मगही-भाषी जन-समुदाय के जीवन के सर्वांगीण अध्ययन के लिए उनकी लोकोक्तियों का अध्ययन बहुत महत्त्वपूर्ण है।

कहावतों के संग्रह

सन् १८८६ ई० में फैलन ने हिन्दी की कहावतों का एक बृहत् कोश[2] प्रकाशित किया था। इसमें मारवाड़ी, पंजाबी, भोजपुरी और मैथिली कहावतों का संग्रह किया गया है, परन्तु भोजपुरी की कहावतों को प्रमुख स्थान दिया गया है। यह लोकोक्ति-संग्रह बहुत ही महत्त्वपूर्ण और उपयोगी है। कश्मीरी लोकोक्तियों पर जे० एच्० नोवल्स का काम उल्लेखनीय है। श्रीरामनरेश त्रिपाठी ने 'हमारा ग्राम-साहित्य' में हिन्दी की

१. भूमिका (मेवाड़ की कहावतें), पृ० १२, १३।

२. फैलन : डिक्शनरी ऑव हिन्दुस्तानी प्रोवर्ब्स, सन् १८८६ ई०।

अनेक कहावतों का विविध वर्गों में संग्रह किया है। खेती से सम्बद्ध लोकोक्तियों का एक सुन्दर संग्रह इस पुस्तक में मिलता है। उनके लोकोक्ति-संग्रह से अनेक लोगों ने तद्गत प्रेरणा पाई है। श्रीरामनरेश त्रिपाठी का 'घाघ और भड्डरी' की कहावतों का संग्रह भी स्तुत्य है। श्रीमती सुमित्रा देवी शास्त्री ने 'ओझा-अभिनन्दन-ग्रन्थ' मे 'देरेवाली कहावतें' प्रकाशित किया है। इसमें उनका प्रयास प्रशंसनीय दीख पड़ता है। शालिग्राम वैष्णव ने 'नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका' (संवत् १९९४ विक्रम) मे 'गढ़वाली भाषा में पाखाणा' लिखकर गढ़वाली लोकोक्तियों पर अच्छा प्रकाश डाला है। श्रीलक्ष्मीलाल जोशी ने मेवाड़ की लगभग एक हजार कहावतों का सुन्दर संकलन किया था, जो 'मेवाड की कहावतें' शीर्षक से प्रकाशित है। श्रीकृष्णानन्द गुप्त की अध्यक्षता में बुन्देलखण्डी लोकोक्तियों का सुन्दर संकलन हुआ है। सन् १८९२ ई० में श्रीउपरेती ने 'प्रोवर्ब्स ऐण्ड फोकलोर ऑव कुमाऊँ ऐण्ड गढ़वाल' नामक ग्रन्थ लिखा था। इसमें गढ़वाल और कुमाऊँ की लोकोक्तियों का गम्भीर संग्रह उपलब्ध है। विद्वान् लेखक ने इसमें विषयों के क्रम से लोकोक्तियो का संग्रह किया है। उन्होंने प्रत्येक लोकोक्ति का अँगरेजी-अनुवाद भी दिया है और उसकी सुन्दर व्याख्या की है। यह पुस्तक लगभग ४५० पृष्ठों की है और बहुत उपयोगी है। श्रीरतनलाल मेहता ने मालवी कहावतों का एक अच्छा संग्रह 'मालवी कहावतें' रूप में प्रस्तुत किया है। ब्रजलोक-साहित्य के अध्ययन-क्रम मे डॉ० सत्येन्द्र ने भी ब्रज की लोकोक्तियों का संग्रह और विश्लेषण किया है। डॉ० उदय-नारायण तिवारी ने भोजपुरी लोकोक्तियों का सुन्दर संग्रह[1] किया है। 'भोजपुरी लोक-साहित्य : एक अध्ययन' मे श्रीबैजनाथ सिंह 'विनोद' ने भोजपुरी कहावतो का अच्छा संग्रह, वर्गीकरण और विश्लेषण किया है। 'राजस्थानी कहावतां : एक अध्ययन' में श्रीकन्हैयालाल सहल ने राजस्थानी कहावतों का सुन्दर संग्रह और विश्लेषण किया है। श्रीनरोत्तमदास स्वामी और मुरलीधर व्यास का 'राजस्थानी कहावतां' तथा 'राजस्थानी कृषि-कहावतें' (श्रीजगदीशसिंह गहलोत-लिखित) इस दिशा मे सराहनीय प्रयास हैं। डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने 'भोजपुरी लोक-साहित्य का अध्ययन' मे अनेक भोजपुरी कहावतों का संग्रह और विश्लेषण किया है। इससे भोजपुरी कहावतों के अध्ययन में बडी सहायता मिलती है।

जहाँतक मगही कहावतों का प्रश्न है, इनका अद्यावधि एक भी उल्लेखनीय संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ है। 'श्रीराजगृह तपोवन तीर्थवाचनालय' मे मुझे 'मगही कहावत-संग्रह' नाम की एक लघु पुस्तिका मिली है। इसका प्रकाशन सन् १९१९ ई० में बाबू धनेशलाल के सम्पादकत्व में हुआ और मागध शुभंकर प्रेस, गया मे पं० वृन्दावन दीक्षित द्वारा मुद्रित कराया गया था। संग्रहकर्त्ता डॉ० उमाशंकर भट्टाचार्य थे। यह लगभग पचास पृष्ठों की पुस्तिका है, जिसमें अक्षरानुक्रम से मगही कहावतों का संकलन किया गया है। मगही का यह प्रथम कहावत-संग्रह है, इस दृष्टि से इसका बड़ा महत्त्व है।

---

१. हिन्दुस्तानी, १९३९, पृ० १५९–२९०।

'हिन्दी-साहित्य का बृहत् इतिहास : षोडश भाग'[१] में 'मगही लोक-साहित्य'[२] के अन्तर्गत कुछ मगही लोकोक्तियों का संग्रह प्रकाशित हुआ है, परन्तु वह नगण्य है। जॉन क्रिश्चियन के 'बिहार प्रोवर्ब्स' में कुछ मगही कहावतें संगृहीत हैं। मगही कहावतों का एक अच्छा संग्रह इन पंक्तियो की लेखिका ने अपने ग्रन्थ 'मगही-लोक-साहित्य' में प्रकाशित किया है।

मगही-लोकोक्तियों के निर्माता

मगही-लोकोक्तियों के रचयिताओं के नामों का पता अभी तक नहीं चला है। पुनश्च, अधिकांश लोकोक्तियो का उद्‌भव जन-जीवन के दैनन्दिन व्यवहार-सम्पादन, आदान-प्रदान और विविध कार्य-कलापों में अनुभूत ज्ञान से हुआ प्रतीत होता है। कुछ ऐसी लोकोक्तियाँ भी मिलती हैं, जो घाघ और भड्डरी के नाम पर प्रचलित हैं। इन दोनों के नाम से अन्य भा० आर्यभाषाओं में भी लोकोक्तियाँ प्रचलित हैं। इसका कारण इन दोनो की लोकप्रियता है। इनकी कहावतें किसानो में इतनी अधिक लोकप्रिय हुईं कि सबने अपनी बोली मे इनका रूपान्तर कर लिया है।[३]

घाघ

घाघ बादशाह अकबर के समकालीन थे। ये जाति के ब्राह्मण थे। इनका सम्बन्ध गोरखपुर एवं छपरा जिले से बताया जाता है।[४] परन्तु, वस्तुस्थिति यह है कि घाघ की भाषा से उनके जन्मस्थान का पता नहीं चलता। घाघ की कहावतें हिन्दी की प्रायः सभी बोलियों में वर्त्तमान है।

घाघ की कहावतों में सच्ची अनुभूतियाँ भरी हैं। कृषक-जीवन का उनमें यथार्थ चित्र मिलता है। घाघ की नीति-विषयक कहावतों मे भी सच्ची सीखें भरी हैं। मगही में प्रचलित, घाघ की कहावतों के कुछ नमूने निम्नांकित हैं—

१. दिन में गरमी, रात में ओस। कहे घाघ बरखा सौ कोस॥

अर्थात्, दिन मे गर्मी रहे और रात मे ओस पड़े, तो वर्षा की सम्भावना नहीं रहती।

२. उलटा बादर जे चढ़े, बिधवा ठड़ा निहाय।
कहे घाघ सुन भड्डरी, ई बरसे ऊ जाय॥

अर्थात्, यदि बादल उलटी दिशा मे जाय और विधवा स्त्री खड़ी होकर स्नान करे, तो बादल के बरसने की सम्भावना होती है और विधवा के पुनर्विवाह कर लेने की।

३. छिन पुरवइया छिन पछियाँव। छिन-छिन बहइ बबूला बाव।
बादर ऊपर बादर धावे। तबे घाघ पानी बरसावे॥

---

१. सम्पादक : म० पं० राहुल सांकृत्यायन : डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय।

२. मगही लोक-साहित्य : सम्पत्ति अर्याणी, श्रीश्रीकान्त मिश्र, श्रीरामनन्दन, पृ० ३९–८१।

३. रा० न० त्रि० : हि० ग्रा० सा०, पृ० २५४–२५५।

४. वही।

अर्थात्, पुरवैया हवा बहे, बाद तुरन्त पछिया हवा बहे और फिर गर्म हवा चले। इसके बाद बादल के टुकडे एक के बाद एक दौड़ते दिखाई पडें, तो वर्षा होने की पूरी सम्भावना रहती है।

४. सुक दिन की बादरी, रहे सनीचर छाय।
कहे घाघ सुन घाघिनी, बिन बरसे नहिं जाय॥

अर्थात्, शुक्रवार को आसमान में बादल आयें और शनिवार तक छाये रहें, तो वर्षा अवश्य होती है।

५. धन ऊ राजा, धन ऊ देस। जहवाँ बरसे अगहन मास॥
पूस में दूना माघ सवाइ। फागुन बरसे घर से जाई॥

अर्थात्, जिस देश में अगहन में वर्षा हो, वह देश धन्य है और वहाँ का राजा सौभाग्यशाली है। कारण कि अगहन की वर्षा का फसल पर बहुत अच्छा प्रभाव पडता है। पूस में पानी बरसने से फसल दूनी हो जाती है। माघ में बरसने से फसल में सवाई वृद्धि होती है, पर फाल्गुन मे पानी बरसने से सारी फसल ही नष्ट हो जाती है।

६. ओछा बैठक, ओछा काम। ओछा बात आठों जाम॥
घघा जाने तीनि निकाम। भूलि न लेवे इनका नाम॥

अर्थात्, बुरी संगति, असुन्दर कृत्य और अशोभन भाषण त्याज्य हैं।

भड्डरी

कहा जाता है कि भड्डरी के पिता ब्राह्मण जाति के थे। उनकी माता अहीर जाति की थी। भड्डरी के सम्बन्ध मे विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती। इतना ही पता चलता है कि 'भड्डरी' नाम की एक जाति चल पड़ी है, जो भड्डरी की कहावतों के आधार पर, वर्षा का भविष्य बतलाया करती है। इस जाति के लोग गोरखपुर जिले में अधिक मिलते हैं। राजपुताने मे भड्डली नाम की एक स्त्री की कहावतें प्रचलित हैं। भड्डरी और भड्डली की कहावतों मे प्रायः समानता है।

भड्डरी की नीति, स्वास्थ्य, शकुन, वर्षा आदि से सम्बद्ध बहुत-सी कहावतें मगही मे प्रचलित हैं। उदाहरणार्थ, कुछ निम्नांकित हैं—

१. बादर ऊपर बादर धावे। कहे भड्डरी जल बरसावे।

अर्थात्, बादल के टुकड़े एक के बाद एक दौड़ें, तो पानी अवश्य बरसता है।

२. उतरे जेठ जे बोले दादर। कहे भड्डरी बरसे बादर।

अर्थात्, जेठ की समाप्ति पर मेढकों की टरटराहट अधिक वर्षा की सूचना देती है।

३. रात निर्मली, दिन को छाँही। कहे भड्डरी पानी नाहीं।

अर्थात् रात्रि मे आसमान निर्मेघ हो, परन्तु दिन में बादल छाये रहें, तो पानी नहीं बरसता।

४. हथिया बरसे चित मँडराय। कहे भड्डरी किसान रिरियाय॥

अर्थात्, हथिया मे वर्षा हो और चित्रा नक्षत्र मे बादल मँडराते हो, तो किसान का परिश्रम व्यर्थ जाता है।

५. सनमुख मेघ पवन से लरे। हँसि के बात नारि जे करे।
से बरसे, ऊ करइ भतार। बैठ भड्डरी करइ विचार॥

अर्थात्, यदि मेघ और पवन का संघर्ष हो, तो पानी अवश्य बरसता है और कोई स्त्री यदि हँसकर बातें करती है, तो उसके चंचल स्वभाव की व्यंजना होती है।

मगही कहावतों का वर्गीकरण

कहावतों के लिए वर्ग का निर्धारण एक कठिन कार्य है। कारण उनमे विषय की इतनी विविधता दीख पड़ती है कि उनकी स्पष्ट सीमा का निर्धारण नहीं किया जा सकता। फिर भी, उनके वर्गीकरण का प्रयास विभिन्न विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से किया है। 'फैलन' ने अपने लोकोक्ति-कोश मे जिस सिद्धान्त को अपनाया है, वह बड़ा सरल है। उन्होने कहावतों के पहले शब्द को लेकर उनका अकारादि क्रम से विन्यास कर दिया है। लेकिन, इस पद्धति मे दोष यह है कि एक लोकोक्ति को सर्वत्र एक ही ढग से प्रारम्भ नहीं किया जाता और उसकी पुनरावृत्ति की सम्भावना रहती है।

अनेक विद्वानों[1] ने कहावतों का वर्गीकरण किया है और इस सम्बन्ध में विविध पद्धतियों का उल्लेख किया है, परन्तु उनके वर्गीकरण मे कहीं एकरूपता नहीं है। इस सम्बन्ध में मतभेद की सम्भावना दूर हो भी नहीं सकती। कारण, वर्गीकरण का प्रश्न बडा जटिल है। एक ही लोकोक्ति की, भिन्न-भिन्न विद्वान् भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से व्याख्या करते हैं। यथा, एक मगही कहावत है—

डॉ० सत्येन्द्र ने लोकोक्तियों के उपयोग के लिए चार दृष्टियों का उल्लेख किया है—

१. पोषण की दृष्टि, इसमें किसी कार्य की पुष्टि करनेवाली लोकोक्तियाँ रहती है।

२. शिक्षण की दृष्टि, इसमे नीति और सीख से सम्बद्ध लोकोक्तियाँ रहती है।

३. आलोचन की दृष्टि, इसमें आलोचनाओ से सम्बद्ध लोकोक्तियाँ रहती है।

४. सूचन की दृष्टि, इसमे ऋतु, खेती, व्यवसाय, व्यवहार आदि से सम्बद्ध ज्ञानवर्द्धक कहावते रहती है।

इनके अतिरिक्त उन्होंने व्रज मे प्रचलित कुछ विशेष वर्ग की लोकोक्तियो का भी उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है—

१. अनभिल्ला, २. भेरि, ३. अचका, ४. औठपाव, ५. खुंसि, ६—गहगड्ड और ७. ओलना।।

—व्रजलोक-साहित्य का अध्ययन, पृ० ५३०–५४२।

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकोक्तियों का वर्गीकरण निम्नांकित प्रकार से किया है—

१. स्थान-सम्बन्धी, २. जाति-सम्बन्धी, ३. प्रकृति तथा कृषि-सम्बन्धी, ४. पशु-पक्षी-सम्बन्धी और ५. प्रकीर्ण। प्रकीर्ण के अन्तर्गत नीतिप्रधान लोकोक्तियाँ हैं।

—लोक सा० की भूमिका, पृ० १४३।

सामन मास बहे पुरवइया, वेचऽ बरदा कीनऽ गइया।

अर्थात्, सावन मास में जब पुरवैया हवा बहती है, तब जलाभाव के कारण कृषि की कोई आशा नहीं रह जाती है। ऐसी स्थिति में बैल (बरदा) का कोई उपयोग नहीं रह जाता। उसे बेचकर गाय रखना लाभदायक होता है।

श्रीश्याम परमार ने लोकोक्तियों का वर्गीकरण इस प्रकार से किया है—१. विषयानुसार, २. स्थानानुसार ३. भाषानुसार एवं ४. जात्यनुसार।

—भारतीय लोक-साहित्य, पृ० १८८।

श्रीरामनरेश त्रिपाठी ने निम्नांकित वर्गों मे लोकोक्तियों को रखा है—

१. निर्माताओं के नाम से प्रचलित लोकोक्तियाँ; जैसे घाघ, भड्डरी, लाल बुझक्कड़, माधो दास और हृदयराम की लोकोक्तियाँ।

२. अनेक तरह के अनुभवों की लोकोक्तियाँ।

३. खेती-सम्बन्धी लोकोक्तिया।

४. वर्षा-विज्ञान-सम्बन्धी लोकोक्तियाँ।

५. बैल-सम्बन्धी लोकोक्तियाँ।

६. जोताई, खाद, बीज, बोआई आदि से सम्बद्ध लोकोक्तियाँ।

—हमारा ग्राम-साहित्य, पृ० २५४।

डॉ० कन्हैयालाल सहल ने राजस्थानी लोकोक्तियों के वर्गीकरण में दो आधार अपनाये हैं—१. रूपात्मक और २. विषयाश्रित। रूपात्मक वर्गीकरण में, उन्होंने विभिन्न लोकोक्ति-रूपों के अन्दर तुक, छन्दोयोजना आदि पर विचार किया है। विषयानुसार वर्गीकरण में उन्होंने लोकोक्तियों का अध्ययन निम्नांकित शीर्षकों में किया है—

१. ऐतिहासिक लोकोक्तियाँ,

२. स्थान-सम्बन्धी लोकोक्तियाँ,

३. समाज-सम्बन्धी लोकोक्तियाँ,

४. शिक्षा-ज्ञान और साहित्य-सम्बन्धी लोकोक्तियाँ,

५. धर्म और जीवन-दर्शन-सम्बन्धी लोकोक्तियाँ,

६. कृषि-सम्बन्धी लोकोक्तियाँ,

७. ऋतु-सम्बन्धी लोकोक्तियाँ और

८. प्रकीर्ण लोकोक्तियाँ।

—राजस्थानी कहावतें—पृ० ५७-२६१।

'बिहार प्रोवर्ब्स' के सम्पादक ने लोकोक्तियों को छह वर्गों मे रखा है—

१. मनुष्य की कमजोरियों, त्रुटियों तथा अवगुणों से सम्बद्ध।

२. सांसारिक ज्ञानविषयक।

३. सामाजिक और नैतिक।

४. जातियों की विशेषताओं से सम्बद्ध।

५. कृषि और ऋतुओं से सम्बद्ध।

६. पशु और सामान्य जीव-जन्तुओं से सम्बद्ध।

—बिहार प्रोवर्ब्स।

मैनवारिंग ने लोकोक्तियों को चौदह वर्गों के अन्तर्गत रखा है—कृषि, जीवजन्तु, अंग-प्रत्यंग, भोजन, नीति, स्वास्थ्य, रुग्णता, गृह, धन, प्रकृति, सम्बन्ध, धर्म, व्यापार, व्यवसाय और प्रकीर्ण।

—मराठी प्रोवर्ब्स : मैन वारिंग।

प्रश्न है, इस कहावत को किस वर्ग में रखा जाय ? इसे पशु-सम्बन्धी कहा जाय अथवा सांसारिक ज्ञान-सम्बन्धी अथवा नीति और शिक्षा-सम्बन्धी। वस्तुतः, यह व्यक्ति के दृष्टिकोण पर निर्भर है कि वह इसे किस श्रेणी मे रखे।

अतः, विचारणीय विषय है कि वास्तव मे वर्गीकरण की कौन-सी पद्धति अधिक उपादेय है। लोकोक्तियों के आधारभूत विषयों को लेकर उनका वर्गीकरण किया जाय या कि उनके बाह्याकार को आधार बनाकर।

विचार कर देखने पर विषयाधृत वर्गीकरण ही सर्वाधिक उपादेय प्रतीत होता है। इस दृष्टि से मगही कहावतो का निम्नांकित वर्गीकरण सम्भव है—
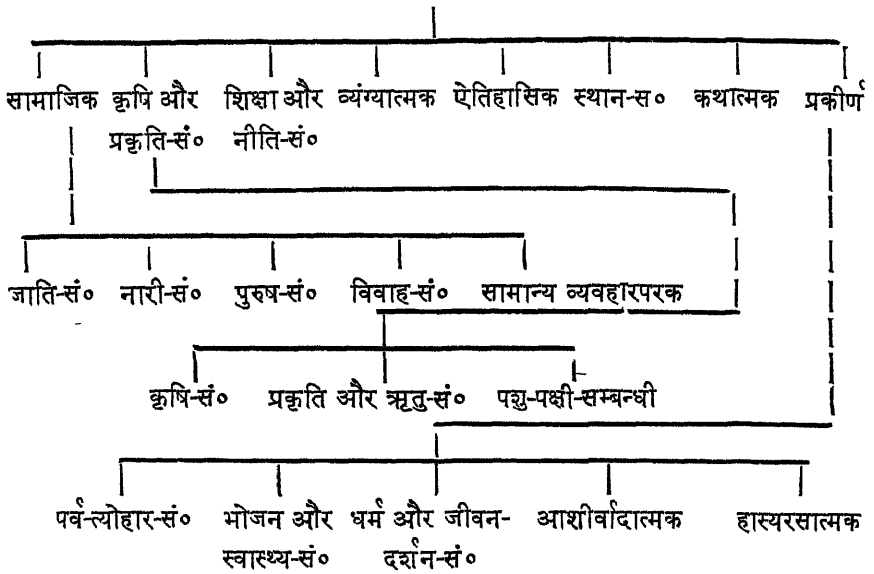
मगही की सामाजिक कहावतें :

कहावतों के माध्यम से ही किसी देश या प्रदेश की सामाजिक संस्थाओं, व्यक्तियों के जीवनादर्शों, जातीय परम्पराओं, सामाजिक धारणाओ, पुरुष-नारी के पारस्परिक दृष्टिकोणों एवं व्यवसायों आदि के विषय में जाना जा सकता है।

अध्ययन की सुविधा के लिए, मगही की सामाजिक कहावतों को पाँच उपवर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

१. जाति-सम्बन्धी, २. नारी-सम्बन्धी, ३. पुरुष-सम्बन्धी, ४. विवाह-सम्बन्धी एवं ५. सामान्य व्यवहार-सम्बन्धी।

मगही की जाति-सम्बन्धी कहावतें :

सर हर्बर्ट रिजले[१] ने कहावतों को दो वर्गों में रखा है—१. सामान्य और। २. विशेष।

१. **The people of India : Sir Herbert Risley, P. 125-126.**

सामान्य वर्ग की कहावतें वे हैं, जिनसे किसी सार्वकालिक या सार्वदेशिक सत्य की अभिव्यक्ति होती है। ये कहावतें काल-परिवर्त्तन की गति से पूर्णतः अप्रभावित रहती हैं। उदाहरणार्थ एक मगही कहावत है—

नींद के आगु खरहर का।
भूख के आगु बासी का॥

यही कहावत मैथिली मे इस प्रकार है—

नींदक आगु खरहर की।
भूखक आगु बासी की॥

हिन्दी मे इसका रूप है—

प्रीत न जाने जात-कुजात, भूख न जाने बासी भात।
नींद न जाने टूटी खाट, प्यास न जाने धोबी घाट॥

उपर्युक्त कहावतों में क्षेत्र-भेद से भाषा-भेद और रूप-भेद स्पष्ट है। पर, भाव की एकरूपता सर्वत्र वर्त्तमान है। एक दूसरा उदाहरण है—

१. काम भेल, दुख गेल, बैरी भेलइ बैध। (मगही)
२. काज सर्‍या दुख बीसर्‍या, वैरी होगा बैद। (राजस्थानी)
३. गरज सरी के वैद वैरी। (गुजराती)
४. अर्थ री सर्‍यो ने वैद रो वैरी। (कच्छी)
५. गरज सरो, वैद्य मरो। (मराठी)
६. उपाध्यायश्च वैद्यश्च ऋतुकाले वरस्त्रियः।
सूतिका दूतिका नौका कार्यान्ते ते च शष्पवत्॥ (संस्कृत)

उपर्युक्त सभी कहावतों में भिन्न-भिन्न शब्दों के माध्यम से एक ही अनुभूति का सम्प्रेषण किया गया है।[1]

विशेष वर्ग में वे कहावतें आती है, जिनका क्षेत्र सीमित होता है। उनका आधार भी लोकानुभव ही है, परन्तु वह देश, काल और समाज की सीमाओं मे आबद्ध होता है। मगही की जाति-सम्बन्धी कहावतें[2] इस विशेष वर्ग के अन्तर्गत ही आती हैं। इनमें शताब्दियों के तद्विषयक लोकानुभव एवं दृष्टिकोण संरक्षित हैं। यथा :

ब्राह्मण

हिन्दू-जाति के विभिन्न भेद-उपभेदों में 'ब्राह्मण जाति' का सर्वोपरि स्थान वैदिक काल से सुरक्षित है। वेदों में चतुर्वर्ण (ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र) की उत्पत्ति का रहस्य इस प्रकार वर्णित है—

---

१. (क) The danger past, and god forgotten. (English)
(ख) When The wound is healed, the pain is forgotten. (Danish)
(ग) The river past, the saint forgotten. (Spanish)
(घ) The peril past, the saint mocked. (Italian)

२. मगही कहावतों के लिए देखिए म० लो० सा०, पृ० १७१–१८५।

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रोऽजायत॥[१]

अर्थात्, 'उस ब्रह्म के मुखप्रदेश से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, उसकी जंघाओं से वैश्य एवं चरणों से शूद्रों का प्रादुर्भाव हुआ।'

मनुस्मृति मे महाराज मनु ने ब्राह्मणों के कर्त्तव्यों का निर्देश करते हुए लिखा है—

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्॥[२]

अर्थात्, 'अध्ययन, अध्यापन, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना एवं लेना—ये छह ब्राह्मणों के कर्त्तव्य हैं।'

ब्राह्मणों ने अपनी यह गौरव-परम्परा वैदिक काल से स्मृतिकाल तक अक्षुण्ण रखी, पर पौराणिक काल में आकर वह परम्परा छिन्न-भिन्न हो गई। ब्राह्मणों के दो स्पष्ट वर्ग हो गये। प्रथम वर्ग अपनी गौरव-परम्परा को अक्षुण्ण बनाये हुए था (और इस वर्ग के सदस्यों की आज भी कमी नहीं है), पर दूसरे वर्ग मे अकर्मण्यता ने घर कर लिया था। अध्ययन-अध्यापन, यजन-याजन एवं दान में अपनी कर्त्तव्य-भावना का पालन न कर, यह केवल प्रतिग्रह (दान लेना) का अभिलाषी बन गया था, जबकि उपर्युक्त छह कर्मों में साभिलाष प्रतिग्रह को अत्यन्त हेय बतलाया गया था।[३] बड़े-बड़े यज्ञानुष्ठानों को इस वर्ग के ब्राह्मणों ने कपोल-कल्पित कथाओं, व्रतो आदि से ग्रथित कर दिया और वे उनकी ओट में अपने ऐहिक उद्देश्यों की सिद्धि करने लगे।[४] सत्यनिष्ठ, कर्त्तव्य-परायण ब्राह्मण की आलोचना पापों का मूल माना जाता था, पर वे जब अपनी सत्यनिष्ठा

---

१. यजुर्वेद, ३१।११।

२. मनुस्मृति, १।८८।

३. ऋतमुञ्छशिलं ज्ञेयममृतं स्यादयाचितम्।
मृतं तु याचितं भैक्षं प्रकृतं कर्षणं मतम्॥—मनु०, ४।५।
अर्थात्, 'उञ्छशिल' (चुन-बीनकर अन्न और कन्दमूलादि के रूप में अनायास प्राप्त) भिक्षा को 'ऋत' (ब्रह्मप्रदत्तवत्) माना गया है, विना माँगे मिली हुई भिक्षा को 'अमृत' एवं माँगी हुई भिक्षा को 'मृत' और खेती को 'प्रकृत' कहा गया है।'

४. इसी (पौराणिक) युग में कुछ ऐसी कथाएँ भी कल्पित हुई, जो ब्राह्मणों की जीविका से सम्बद्ध थीं। ये व्रत और उद्यापनवाली कथाएँ हैं। कार्त्तिक-माहात्म्य; एकादशी-कथा आदि, जिनमें (दक्षिणा) दानादि की महत्ता का दिग्दर्शन है, इसी श्रेणी की है। किन्तु, ब्राह्मणों ने एक बात ठीक की। उन्होंने इन व्रत, उद्यापनवाली कथाओ को सभी पुराणो में नहीं जोड़ा। ये प्रायः स्कन्दपुराण, पद्मपुराण, भविष्यपुराण या ब्रह्मवैवर्त्तपुराण के अंग हैं। आगे चलकर ऐसी कथाएँ भी कल्पित हुईं, जिनको किसी-न-किसी पुराण का अंग घोषित किया गया, पर देखने पर उन पुराणों में वे नहीं पाई जाती। उदाहरणार्थ : सत्यनारायण की कथा, जो स्कन्दपुराण की मानी जाती है, पर उस पुराण में नही पाई जाती।
—डॉ० भोलाशंकर व्यास : भारत में कथा-साहित्य की परम्परा, पृ० २६३।

एवं कर्त्तव्यपरायणता से भ्रष्ट हो गये, तब सामान्य जनता में उनकी आलोचना की प्रवृत्ति आने लगी, जो स्वाभाविक थी।[1]

मगही का आविर्भाव-काल ऊपर चित्रित ब्राह्मणों के नैतिक ह्रासकाल के बाद पड़ता है, अतः उसकी कहावतों मे, जिनका आविर्भाव ही जन-जीवन में लोक-संवेदनाओं से होता है, उपर्युक्त स्थिति का वैविध्यपूर्ण निरूपण स्वाभाविक है। मगही की ब्राह्मण-सम्बन्धी कहावतों को देखने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि पुराणों के परवर्त्ती काल में हीनोन्मुख परम्परावाले ब्राह्मण-वर्ग का और ह्रास ही होता चला गया और इस वर्ग के ब्राह्मण आर्थिक लिप्सा, भिक्षावृत्ति, अकर्मण्यता, पेटूपन, चाटुकारिता, परोपजीवी प्रवृत्ति, धूर्त्तता एवं अविश्वास के पर्यायवाची बनते चले गये।

यहाँ मगही की कुछ एतत्सम्बन्धी कहावतें दी जाती हैं—

१. हाँथ सुक्खल, बराहमन भुक्खल।

अर्थात्, 'भोजनोपरान्त हाथ धोते ही ब्राह्मण पण्डित को फिर से भूख लग जाती है।'

२. अनकर चुक्का, अनकर घी
पाँड़े के बाप के लगल की।

अर्थात्, 'घी यजमान का था और चुक्का (जिससे घी निकाल-निकालकर गरमागरम पूरियाँ छानी गईं) कुम्हार का, खानेवाले पाँड़ेजी के पिता का क्या लगा?'[2]

३. तीन कनौजिया, तेरह चूल्हा।

अर्थात्, कनौजिया ब्राह्मण इतने टिपोरी होते हैं कि वे संख्या में तीन होने पर भी तेरह चूल्हे की व्यवस्था कर लेते हैं।

४. चौबे जी गैलन छब्बे होवे, दूबे हो के अयलन।

---

१. शूद्रे तु यद्भवेल्लक्ष्म द्विजे तच्च न विद्यते।
न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो न च ब्राह्मणः॥
—(महा०, वन०, १८०।२५-२६)

अर्थात् "यदि शूद्र में सत्यनिष्ठादि ब्राह्मणोचित लक्षण हो एवं ब्राह्मण में न हों, तो वह शूद्र शूद्र नहीं (ब्राह्मणवत्) है, और न वह ब्राह्मण ही ब्राह्मण (शूद्रवत्) है।"

२. अन्य भाषाओं की जाति-सम्बन्धी कहावतों के साथ इन कहावतों के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि ब्राह्मणों के वर्गविशेष का उपर्युक्त नैतिक ह्रास देशव्यापी था। यही कारण है कि प्रायः सभी भाषाओं के लोक-साहित्य मे लोकमानस प्रभावित होता दीखता है। पुनश्च, ऐसे अकर्मण्य लोगों का वर्ग केवल भारतीय समाज में ही नही, अन्यत्र भी सक्रिय रहता है। यथा—

(क) अनकर आटा अनकर घीव।
चाबस चाबस बाबा जीव॥ (भोजपुरी)

(ख) करवा कोंहार के घीव जजमान के।
बाबा जी कहेले, स्वाहा, स्वाहा॥ (भोजपुरी)

(ग) फूल्स मेक फीस्ट एण्ड
वाइज मेन ईट देम। (अँगरेजी)

अर्थात्, चौबे जी[१] छब्बे बनने के लिए यजमान के घर गये थे, परन्तु दूबे[२] बन कर लौटे।

५. सड़ल गाय बराहमन दान।[3]

अर्थात्, गई-गुजरी गाय ब्राह्मण देवता को दान कर दी गई।

६. गाय आउ बराहमन के घुमले पेट भरे हे।[४]

अर्थात्, गाय और ब्राह्मण यत्र-यत्र भोजन पाकर ही तृप्ति का अनुभव करते हैं।

७. बराहमन बेटा लोटे-पोटे, मूर ब्याज दुन्नों सरपोटे।

अर्थात्, ब्राह्मण-पुत्र धरना देकर मूल और ब्याज दोनों ही हजम कर जाता है।

८. जे पाँड़े के पतरा में, से पँड़ियाइन के अँचरा में।

अर्थात्, जिसकी जानकारी के लिए पण्डितजी पत्रा पलटते हैं, उसकी जानकारी पँड़ियाइन (पण्डितजी की पत्नी) को सहज ही हो जाती है। तात्पर्य यह है कि पाँड़ेजी की पत्नी उनसे भी चतुर होती है।

९. करिया बराहमन गोर चमार, इनका पर न करे एतबार।

अर्थात्, काला ब्राह्मण और गोर चमार विश्वसनीय नहीं माने जा सकते।

१०. पांड़े के गाय न हल, बाय हल।

अर्थात्, पण्डितजी अपनी गाय पर बहुत दम्भ रखते थे, इसी कारण वे दूसरों के लिए दुःखदायी भी बन जाते थे।

बाभन :

बिहार-प्रान्त में यह बहुसंख्यक जाति है। इन्हें कुछ लोग ब्राह्मण भी कहते हैं। परन्तु, ब्राह्मणों से इनके व्यवसाय, स्वभाव और संस्कार में भिन्नता है। ये अपनी समृद्धि, प्रतिभा और सुन्दर व्यक्तित्व के लिए प्रसिद्ध हैं। मगही-भाषी क्षेत्र में इनसे सम्बद्ध जो कहावतें प्रचलित हैं, उनसे इनकी स्वभावगत विशेषता का परिचय मिलता है। यथा—

१. सड़लो बाभन तो ऐंचा ताना।
पड़ला मारे तो तीन जना॥[५]

अर्थात्, गया-गुजरा बाभन भी प्रकृति से टेढा होता है और पीछे पड़ जाने पर अकेले एक साथ तीन जनों को मार सकता है।

२. केतनो बाभन सीधा, तो हँसुआ ऐसन टेढ़ा।

अर्थात्, बाभन कितना भी सीधा हो, तो हँसुआ से कम टेढ़ा नहीं होता।

---

१. ब्राह्मणों की एक शाखा-विशेष, जो अपनी भोजनभट्टता के लिए प्रसिद्ध है।

२. ब्राह्मणों की एक विशेष शाखा, जो पद में चौबे से नीचे की होती है।

३. मरी बछिया, बाभन के सिर (व्रजभाषा)। —ब्र० लो० सा० अ०, पृ० ५३५।

४. गाई बाभन के घुमले से पेट भरेला (भोजपुरी)। —भो० लो० सा०, पृ० २०७।

५. हि० सा० बृ० इ०, म० लो० सा०, पृ० ४८।

३. जे करे बाभन के भल, से परे देवी के बल।

अर्थात् , बाभन का भला करनेवाला भी मारा जाता है।

४. बाभन, कुत्ता, हाथी, अपने जात के घाती।

अर्थात् , बाभन, कुत्ता और हाथी अपनी ही जाति के लिए अहितकारी प्रमाणित होते हैं।

इस भाव का बोधक एक भोजपुरी कहावत[1] है—

बाभन, कुकुर, भाँट, जाति-जाति के काट।

५. करिया बाभन, गोर चमार, इनका से रहऽ होसियार।

अर्थात् , काले बाभन और गौर वर्णवाले चमार से होशियार रहना चाहिए। इसीसे मिलती हुई एक भोजपुरी लोकोक्ति[2] है—

करिया बाभन गोर चमार, भूरा छतरी[3] महा हतियार[4] ॥

६. बिन लस्सा के बझाऊँ, बिना पर के उड़ाऊँ,
तब बाभन कहाऊँ।

अर्थात् , बाभन चतुराई से फन्दे डालता है और निराधार प्रचार करता है। उपर्युक्त कहावत बाभन की आत्मगर्वोक्ति के रूप मे है।

७. बेंग के सरदी न आउ बाभन के पंचैती न।

अर्थात् , न बेंग को सर्दी हो सकती है, और न बाभन की पंचायत ही बैठाई जा सकती है।

८. भइयन छओ भकार से सदा रहऽ होसियार।
भाई, भतीजा, भगीना, भाट, भाड़, भूमिहार ॥

९. बाभन भइया जान लेबइया।
सेर भर खेसारी के तीन रुपइया ॥

अर्थात् , बाभन जान के ग्राहक होते हैं। अनाजो में निकृष्ट खेसारी की सेर भर तौल के तीन रुपये चाहते है।

१०. बाभन भइया जान लेबइया
तीन सुअर के रोज खबइया।

अर्थ स्पष्ट है।

राजपूत :

राजपूत-जाति अपनी वीरता, अक्खड़पन, शक्ति और वचन की दृढता के लिए

---

१. भोज० लो० सा०, पृ० २०६।

२. भो० लो० सा०, पृ० २०७।

३. क्षत्रिय।

४. महाहत्यारा।

प्रसिद्ध है। राजपूतों से सम्बद्ध कहावतों की संख्या राजस्थानी[१] में बहुत है, मगही में कम। जो थोड़ी वर्त्तमान हैं, उनसे राजपूतों के स्वभाव-संस्कार की व्यंजना होती है। यथा—

१. जहँ रजपूत, हुँआ बात मजबूत।
जहँ चार कुरमी, हुआ बात घुरमी[२]॥

अर्थात्, जहाँ राजपूत है, वहाँ बातें पक्की रहती हैं। जहाँ चार कुरमी होते है, वहाँ बातें सदा अस्थिर रहती हैं।

२. मुसहर भगत न, राजपूत के धुनही।
टूटे तो टूटे, नेवे न कबहीं॥

अर्थात्, मुसहर-जाति भगत नहीं होती। राजपूतों के धनुष-बाण सधे होते हैं। ये दोनों मिट सकते हैं, झुक नहीं सकते।

कायस्थ :

कायस्थ-जाति का विशेष व्यवसाय नौकरी है। मगही की कहावतों में कायस्थ-जाति की धन-लोलुपता पर गहरा व्यंग्य मिलता है। उदाहरणार्थ, कुछ मगही कहावतें निम्नांकित है—

१. कायस्थ के बच्चा, कभी न सच्चा,
जे सच्चा, तो हरामी[३] के बच्चा।

अर्थ स्पष्ट है।

व्रजभाषा[४] में इससे मिलती-जुलती एक कहावत है—

कायस्थ बच्चा, कभी न सच्चा,
जो सच्चा तो गदहे[५] का बच्चा।

२. कायथ के लावा कोयरी खाय।

३. घर घर नाचे तीनों जन,
कायथ, बैद, दलाल॥[६]

४. बज्जर परे कहाँ, तीन कायथ जहाँ।

५. मुर्गी मिलान कहूँ कायथ पहलमान।

६. कायथ के इयारी, भादो मास उजारी।

अर्थात्, कायस्थ से मित्रता की आशा वैसी ही व्यर्थ है, जैसी भादो मास में चाँदनी की आशा।

---

१. राजस्थानी कहावतें : कन्हैयालाल सहल, पृ० १३८।
२. घूमनेवाली, अस्थिर।
३. वर्णसंकर।
४. व्रज-लोक-साहित्य का अध्ययन, पृ० ५३५।
५. मूर्ख।
६. मगही-कहावत-संग्रह, पृ० १६।

भोजपुरी में यही कहावत[1] इस प्रकार कही जाती है—

८. कायस्थ के यारी, भादो मास उजारी।

गोआर[2] :

गोआर से तात्पर्य गोपवंश से है। निम्नांकित मगही कहावतों से इसका स्वभावगत अध्ययन हो सकता है—

१. केतनो गोआर पिंगिल पढ़े, तो तीन बात से हीन।
उठना, बैठना आउ बोलना, लेलन बिधाता छीन॥

२. केतनो गोआर पिंगिल पढ़े, एक बात जंगल के कहे।

३. केतनो अहीर पढ़े पुरान, लोरिक छोड़ न गावे गान।

४. जेऊ तरहत्थी में जनमे बार, तइयो न करे गोआर के एतबार।

५. गोआर साठ बरिस में बालिग होवे हे।

बनिया :

मगही की जाति-सम्बन्धी कहावतों से बनिया जाति की अवसरवादिता, चातुरी, चाटुकारिता आदि की जानकारी होती है। इसके सम्बन्ध में कुछ मगही कहावतें निम्नांकित हैं—

१. नामी बनिया बदनामी चोर[3]

अर्थात्, नाम की आड़ में बनिया चोरी करता है, पर बदनाम होने के कारण चोर दण्डित होता है।

२. ठग मारे अनजान, बनिया मारे जान।[4]

३. आम, नींबू, बनिया, बिन चँपले रस नहिं दे।[5]

४. बनिया रीझे तो हँस दे।[6]

५. दादा कहे से कहूँ बनिया गुड़ दे हे ?

---

१. भो० लोक० साहित्य, पृ० २०७।

२. ग्वाला, अहीर।

३. सरनाम बनिया, बदनाम चोर (भोजपुरी)। —भो० लो० सा०, पृ० २०६।

४. (क) जानी मारे बनिया। पहिचानी मारे चोर (व्रजभाषा)। —व्र० लो० सा० अ०, पृ० ५३५।
(ख) जाण मारै बाणियो, पिछाण मारै चोर (राजस्थानी)। —राज० कहा०, पृ० १४१।

५. (क) नीबू बनिया आमियाँ, मसके ही रस देई (व्रजभाषा)। —व्र० लो० सा० अ०।
(ख) आम नीबू बाणियो, कंठ भीच्यां जाणियो (राजस्थानी)। —राज० कहा०, पृ० १३६।

६. (क) बनिया मित्र न वेश्या सती (व्रजभाषा)। —व्र० लो० सा० अ०।
(ख) वाणयो मीत न वेस्या सती। कागा हंस न गधा जती (राजस्थानी)॥
—राज० कहा०, पृ० १४१।

६. **नामी बनिया कमा खाय, बदनामी चोर मारल जाय।**[1]

तेली :

यह जाति मुख्य रूप से वाणिज्य पर निर्भर है। ऐसा कहा जाता है कि यह पैसा जमा करने मे चतुर है और खरचने में पूरा कंजूस। निम्नांकित उदाहरणों में उसकी विशेषताओं का उल्लेख है—

१. **कौड़ी-कौड़ी साव बटोरे, राम बटोरे कुप्पा।**

२. **सड़लो तेली तो फाँड़ा में अधेली।**

३. **जे ला कइली तेलिया भतार, से बहतौनी लगले रहल।**

व्रजभाषा मे यही कहावत इस प्रकार है—

तेलिया खसम करि के का पानी ते हाथ धोवे।[2]

अर्थ स्पष्ट है।

सोनार :

यह जाति सोने-चाँदी के व्यवसाय से जीवन-यापन करती है। इसके सम्बन्ध में निम्नांकित मगही कहावतें मिलती हैं—

१. **सौ सोनार के, एक लोहार के।**

अर्थात्, सोनार की सौ चोट और लोहार की एक चोट बराबर होती है।

२. **अनारी के घोड़ा, सोनारी के सोना न पटे।**

अर्थात्, अनाड़ी का घोड़ा और सोनार का सोना पटना कठिन है।

लोहार :

लोहार, लोहे का कारोबार करते हैं। उनका हथौड़ा बड़ा मजबूत होता है। इस सम्बन्ध मे निम्नांकित मगही कहावत प्रसिद्ध है—

सौ सोनार के, एक लोहार के।

कुम्हार :

कुम्भकार-जाति बड़ी गरीब होती है। कुम्हार मिट्टी के बरतन बनाकर अपने दिन काटते हैं। मरने पर कुछ भी धन नहीं छोड़ जाते, जिससे उनकी विधवा पत्नी दिन काट सके। मगही की निम्नाकित कहावतों से उनकी इस विपन्नता का परिचय मिलता है—

१. **राँड़ कुम्हइन मरे हे, राँड़ कानुन जिये हे।**

अर्थात्, विधवा कुम्हारिन गरीबी से मरती है, परन्तु कानुन (भड़भूँजे की पत्नी) सुख से दिन काट लेती है।

---

१. नामूंद बाण्यो कमा खाय, नामूंद चोर मार्‌यो जाय। (राजस्थानी)

—राज० कहा०, पृ० १४०।

२. ब्र० लो० सा० अ०, पृ० ५३६।

२. ढील धोती बनिया, उल्टा मोछ सुबीर,
बेंड़ा पैर कुम्हार के तीनू के पहिचान।

अर्थात्, तीन जातियों की पहचान यह है—बनिया ढीली धोती पहनता है, वीर मूँछ उलटकर रखता है और कुम्हार नगे पाँव रहता है।

धोबी :

धोबी जाति का प्रधान कारोबार कपड़ा धोना है। कुछेक मगही कहावतें इनके सम्बन्ध मे भी मिलती हैं—

१. नई धोबिनिया आवे हे, लुगरिये साबुन लावे हे।

अर्थात्, नई धोबिन अपनी कुशलता दिखाने के लिए, कपड़े पर अधिक साबुन खर्च करती है।

२. नया धोबी, नाई पुराना।

अर्थात्, धोबी नया अच्छा होता है और नाई पुराना अच्छा होता है।

३. धोबी के कुत्ता घर के न घाट के।

यह कहावत हिन्दी की सभी बोलियों मे वर्त्तमान है। राजस्थानी मे इसका यह रूप है—

धोबी के कुत्ता न घर के न घाट के।[1]

४. अनकर कपड़ा पर रानी धोबिनिया।

अर्थात्, धोबिन दूसरो के कपड़ों पर रानी बनी फिरती है।

५. न धोबी के दोसर जानवर न गदहा के दोसर मालिक।

भोजपुरी में यही कहावत इस प्रकार है—

ना धोबिया का दोसर पसुआ ना गदहवा का दोसर मोआर[2]।[3]

कोयरी :

कोयरी-कुरमी पिछड़ी जाति के सदस्य माने जाते हैं। हाल-हाल तक उच्च वर्णवाले उन्हें हेय दृष्टि से देखते रहे हैं। उदाहरणार्थ, निम्नांकित मगही कहावत देखी जा सकती है—

कोयरी-कुरमी जन का, मरुआ-मकई अन्न का?

अर्थात्, कोयरी-कुरमी जातिवालों का क्या मोल? मरुआ-मकई का अन्न क्या मूल्य? (कुछ नहीं।)

परन्तु भोजपुरी में इनकी प्रशंसा मिलती है—

कोयरी-अहीर खेती करे, अवरी करे बरियाई।

---

१. राज० कहा०, पृ० १४७।

२. मालिक।

३. भो० लो० सा०, पृ० २०६।

चमार :

चमार-जाति चमड़े का कारोबार करती है। उनकी स्त्रियाँ बच्चा पैदा कराने का काम करती हैं, इसका परिचय इस मगही कहावत से मिलता है। यथा—

चमइन से पेट न छिपे हे।

अर्थात्, चमाइन से गर्भ नहीं छिप सकता है।

भोजपुरी में यह कहावत इस प्रकार है —

चमइन से पेट न पचे ला।[1]

मुसहर :

मुसहर अछूत जाति का सदस्य माना जाता है। यह मांसाहार से विरत नहीं हो सकता। निम्नांकित मगही कहावत इस विषय में प्रचलित है—

मुसहर भगत न, राजपूत के धनुहि।
टूटे तो टूटे, नेवे न कबहिं॥

जोल्हा :

जोल्हा अर्थात् जोलहा मुसलमानों की एक गरीब जाति है, जो कपड़े बुनकर अपनी जीविका चलाती है। दूसरा काम उससे नहीं लिया जा सकता। उसकी इस विशेषता का उल्लेख निम्नांकित मगही कहावत में हुआ है—

१. जोल्हा जाने जौ काटे के हाल।

२. खेत खाय गदहा, मार खाय जोल्हा।

नाई :

लोकजीवन में नाई का महत्त्वपूर्ण स्थान है। हमारे जातीय संस्कार विना नाई के सम्पन्न नहीं किये जाते। नाई जाति अपनी धूर्त्तता के लिए प्रसिद्ध है। इस जाति से सम्बद्ध निम्नांकित कहावतें मगध में प्रचलित हैं—

१. अलबेली नउनियाँ, बाँस के नहरनी।

ब्रजभाषा में इसी का यह रूप है—

नई नाइन, बाँस को नहन्ना।[2]

२. नाउ बिना नगर न मुड़इतई।

अर्थात्, क्या नाऊ न होगा, तो नगर के लोग बाल ही न कटायेंगे।

३. धोबी, नाऊ, दरजी, ई तीनों अलगरजी।[3]

४. बाभन, कुत्ता, नाइ, जाति देखी घुराइ।

अर्थात्, बाभन, कुत्ते एवं नाई अपनी जाति के दूसरे सदस्यों को देख गुर्राने (वैर करने) लगते हैं।

---

१. भोज० लो० सा०, पृ० १९३।

२. ब्र० लो० सा० अ०, पृ० ५३६।

३. मगही-कहावत-संग्रह, पृ० २८।

विविध जाति-सम्बन्धी कहावतें

विविध जातियों की विशेषताओं का उल्लेख करनेवाली कहावतों की प्रचुर संख्या मगही में वर्त्तमान है। उदाहरणार्थ—

१. मल्लिक, माहुरी आउ मल्लाह।
इ तीनूँ से न करे सलाह।

२. मल्लाह के हाल अल्लाह जाने।

३. माल महाराज के आउ मिरजा खेले होली।

अर्थात्, दूसरे के धन पर आनन्द करना अनुचित है।

४. कोयरिन के बेटी राजा घर पड़े हे,
तो बैगन के टैगन कहे हे।

अर्थात्, कोयरिन (सामान्य व्यक्ति) की बेटी राजा के घर मे जाकर स्वाभाविक विनम्रता छोड़ बैठती है।

वर्णसंकर :

हमारे समाज में एक प्रचलित विश्वास है कि वर्णसंकर बडे तेज और धूर्त्त होते हैं। इसकी व्यंजना निम्नाकित कहावतों मे होती है—

१. खरबूजा डाल के, बेटा छिनाल के।

या

अमरूद डाल के, आम पाल के, बेटा छिनाल के।

अर्थात्, डाल में लगा हुआ खरबूजा बड़ा अच्छा होता है। इसी प्रकार, वर्णसंकर सन्तान प्रतिभाशाली होती है।

२. सात हाथ हाथी से डरे, चौदह हाथ मतवाला।
अगगिनती हाथ तेकरा से डरे, जेकर जात फेटवाला॥

अर्थात्, हाथी के डर से सात हाथ दूर रहना चाहिए, यदि वह मतवाला हाथी हो, तो उससे चौदह हाथ दूर रहना चाहिए, पर यदि वह वर्णसंकर हो, तो उससे अनगिनत हाथ दूर रहना चाहिए (कारण वह बहुत चालाक व्यक्ति होता है)।

(क) जाति-सम्बन्धी कहावतों का निष्कर्ष

उपर्युक्त कहावतों के भाव-तत्त्व के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि प्रायः वे आलोचनात्मक एवं व्यंग्यात्मक ही हैं। सम्भवतः, जाति-विशेष के दुर्गुणों को लक्ष्य कर दूसरी जाति ने व्यंग्यात्मक उक्तियों का सर्वप्रथम निर्माण किया होगा, फिर बाद मे जन-समाज में ये लोकोक्तियों के रूप में प्रचलित हो गई होगी। मनुष्य का ऐसा स्वभाव भी होता है कि अपनी त्रुटियाँ उसे कम दिखाई पड़ती हैं, दूसरे की अधिक। न केवल भारतीय भाषाओं की कहावतों के अध्ययन से, अपितु भिन्न-भिन्न देशों की कहावतो के अध्ययन से

भी यही निष्कर्ष निकलता है। यथा—टेंच ने स्पेनवालों की एक कहावत[1] का उल्लेख किया है, जिसका सार यह है कि स्पेन की ओर से या तो देर से मदद मिलती है या मिलती ही नहीं। यदि मदद देने का वचन वे देते भी हैं, तो उसे पूरा नहीं करते और यदि पूरा करते भी हैं, तो समय के बाद। यही कारण है कि इटलीवाले स्पेनवालों का उपहास अपनी कहावत[2] में करते हैं, जिसका भाव है—यदि मेरी मृत्यु आये, तो वह स्पेन की ओर से आये। कारण, स्पेनवालों की दीर्घसूत्रता के अनुसार या तो वह नहीं आयगी या आयगी तो देर से।[3] इस उल्लेख से स्पष्ट है कि एक देश या जाति के लोग दूसरे देश या जाति पर किस प्रकार आक्षेप करते हैं। इस वर्ग की अनेक कहावतों की सृष्टि उपर्युक्त आक्षेपवृत्ति से ही होती है।

मगह-क्षेत्र मे ऐसी अनेक कहावतें मिलती हैं, जिनकी समानार्थी अनेक कहावतें भारत के दूसरे क्षेत्रों में भी वर्त्तमान हैं। इनसे भारतीय जन-जीवन की भावात्मक एकता का परिचय मिलता है। भारत में जातिप्रथा सामाजिक जीवन को किस प्रकार एव कितना जकड़कर बैठी है, इसका गम्भीर परिचय विविध क्षेत्रों मे प्रचलित कहावतों के अध्ययन से मिलता है। एक जाति के प्रति दूसरी जाती की दृष्टि कितनी कटु है, कितनी आलोचनात्मक है, इसका अनुभव भी जाती-सम्बन्धी कहावतो के अवलोकनोपरान्त होने लगता है।

कुछ समाजशास्त्री ऐसा विश्वास रखते हैं कि जाति-सम्बन्धी कहावतें हमारे समाज में जाति-प्रथा को सुदृढ करती हैं। परन्तु, हमारा विश्वास है कि इन कहावतों में वर्त्तमान व्यंग्य और कटु आलोचना के तत्त्व हमारे समाज को जातिवाद के कीड़ों से खोखला होने से बचायेंगे, कारण कोई जाति ऐसी नहीं दीख पडती, जिसके ऊपर आक्षेप न किया गया हो। विष की दवा विष ही होती है। जातीय कहावतों में वर्त्तमान व्यंग्यात्मक एवं आलोचनात्मक तत्त्व विभिन्न जातियों के नैतिक संशोधन मे सहायक होंगे, ऐसी आशा की जा सकती है।

(ख) मगही की नारी-सम्बन्धी कहावतें

मगही कहावतों मे नारी-जीवन के विविध पहलू चित्रित मिलते हैं। कुछ कहावतें स्त्रियों की सामाजिक स्थिति और उनके पारिवारिक महत्त्व का बोध कराती हैं। कुछ कहावतें ऐसी हैं, जिनसे स्त्रियों की प्रकृति का बोध होता है।

जन्म के साथ ही कन्या को प्रायः मौन उपेक्षा का शिकार होना होता है। थाल बजाकर नवजात पुत्र का जो स्वागत होता है, वह कन्या के लिए दुर्लभ है। उसके पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा मे भी मगह का ग्रामीण समाज आगे कही गई कहावत की सीख मानकर, उदासीन ही रहता है—

---

१. So Crros de Espana, O'trade, O'nunca.

२. Mi Vengalia Morte de Spagna.

३. केहवते विषे निबन्ध केहवत माला, पेहलो भाग (जमशेदजी नशरवानजी—पीतीत), पृ० २८।

कन्या पराया धन हे।

या

बेटी पराया घर के सोभा हे।

अतः, उसपर अधिक व्यय करना वह व्यर्थ मानता है।

कन्या का पिता, उसके विवाह की चिन्ता से सदा मुरझाया रहता है। यहाँतक कि उसे नींद भी नहीं आती—

बेटो के बाप के आँख में नींन[1] न रहे हे।

बेटी के विवाह के लिए चिन्तित पिता के दर्शन केवल मगही कहावतो मे नही होते, अन्य भाषाओं मे भी होते हैं। यथा राजस्थान में निम्नांकित कहावतें प्रचलित हैं—

कै जागै जैंके घर में साँप, कै जागै बेटी को बाप।[2]

अर्थात्, या तो वह जागता है, जिसके घर में साँप रहता है या वह जगता है, जो लड़की का पिता है।

इसी से सस्कृत में कहा गया है—

कन्यापितृत्वं खलु नाम कष्टम्।

अर्थात्, कन्या का पिता होना बडा कष्टदायक है।

इसी तरह मगही मे एक और कहावत प्रचलित है—

बेटी के बाप के पगड़ी सदा नीचे रहे हे।

इससे 'बेटी के बाप' की हीन सामाजिक स्थिति पर प्रकाश पडता हे।

नारी की पराधोनता को व्यंजित करनेवाली कहावतें भी मगही मे प्रचलित हैं। यथा—

लड़की गाय हे, जौन खूँटा पर बाँध दऽ।

अर्थात्, कन्या गाय के समान मूक और पराधीन है। उसकी व्यवस्था उसके माता-पिता जहाँ चाहें, कर दें।

भारतीय इतिहास मे एक ऐसा स्वर्णयुग था, जब पुरुष और नारी के मध्य विषमता न थी। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' जैसे कथनो से उसके प्रति आदर की व्यंजना की जाती थी। परन्तु, आगे चलकर नारी को पराधीनता की बेड़ी मे जकड़ दिया गया। इसका प्रमाण मनुस्मृति का निम्नाकित निर्देश है—

पिता रक्षति कौमारे भर्त्ता रक्षति यौवने।
पुत्रो रक्षति वार्धक्ये न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति॥

---

१. नीद।

२. राजस्थानी कहावतें, पृ० १५६।

अर्थात्, कुमारावस्था मे पिता, यौवन में पति तथा वृद्धावस्था मे पुत्र स्त्री की रक्षा करता है, स्त्री स्वतन्त्र होने के योग्य नही।

हिन्दू-समाज ने स्मृति-ग्रन्थो के निर्देश को अक्षरशः मान लिया। इसका प्रमाण हिन्दी की विविध बोलियों में प्रचलित कहावतो में मिलता है। जैसे, मगही में निम्नाकित कहावत प्रचलित है—

बेटी गाय हे, जन्ने हाँक दऽ।

इसी भाव की व्यजक निम्नाकित राजस्थानी कहावत है—

गाय अर कन्या ने जिन्नै हॉक दे उन्नै ही चाल पड़ै।

अर्थात्, गाय और कन्या को जिधर हॉक दिया जाय, उधर ही चल पड़ते हैं।

इन कहावतो के अतिरिक्त मगही में प्रचलित नारी-सम्बन्धी कुछ अन्य कहावतें निम्नाकित हैं—

१. हे घरनी घर सोभे हे, ना घरनी घर रोवे हे।

अर्थात्, नारी ही घर की शोभा है। उसके अभाव मे वह अवसाद-ग्रस्त दिखाई देता है।

२. मइया के जीउ गइया ऐसन, पूता के जीव कसइया ऐसन।

अर्थात्, नारी का मातृरूप गौ की नाईं दया, ममता आदि गुणों से पूर्ण रहता है। पुत्र उसके प्रेम का बदला नहीं दे सकता। उसका हृदय कसाई जैसा होता है।

३. नहिरा जो बेटी, ससुरा जो, जंगरा चलाव बेटी सगरो खो।

अर्थात्, कन्या नैहर या ससुराल मे परिश्रम करके ही सुखी रह सकती है।

४. बॉझ का जाने परसौत के पीड़ा।

अर्थात्, बॉझ स्त्री को सन्तान का जन्म देने की पीडा का ज्ञान नहीं होता।

५. औरत के पेट कुम्हार के आवा हे,
जेकरा से कभी गोर कभी करिया निकसे हे।

अर्थात्, नारी के सभी बच्चो का रूप-रंग एक-सा नहीं हो सकता।

६. अइली न गेली, फलनमा बहू कहयली।

अर्थात्, बिना दूसरे के घर सोद्देश्य आये-गये, किसी स्त्री को दोष नहीं लगाना चाहिए।

७. बिना बुलाये मत जाहु भवानी, न मिलतो तोरा पीढ़ा-पानी।

अर्थात्, जो स्त्री विना बुलाये कहीं जाती है, वह असम्मानित होती है।

८. जैसन माय, ओयसन धीया, पोंछ पाछ नतिनियाँ के दिया।

अर्थात्, माँ का ही गुण पुत्री और नतिनी को संस्कार-रूप से प्राप्त होता है।

९. गाँव के बेटी बड़ ठगनी।

अर्थात्, ग्रामीण कन्याएँ बड़ी चतुर होती हैं।

१०. जनमते लड़का, ढुकते बहुरिया, जे लत लगावे से लगे।

अर्थात्, नवजात शिशु और नववधू को जो आदत लगाई जाती है, वह संस्कार का रूप ले लेती है।

११. अबरा के माउग, सबके भौजाई।

अर्थात्, निर्बल पुरुष की स्त्री सबके मनोरंजन का साधन बन जाती है।

१२. आयल बहुरिया फूलल गाल, फिन बहुरिया ओही हाल।

अर्थात्, नई बहू आडम्बर के साथ रहती है। फिर, पुरानी होने पर उसमें स्वाभाविकता आ जाती है।

१३. अरवा चाउर फँकना की, बुढ़वा भतार के ठगना की ?

अर्थात्, बूढ़े पति को छलना अरवा चावल खाने के समान सहज है।

१४. मड़हा मरदी, फकनी जोय, ते घर सरियत कभी न होय।

अर्थात्, पौरुषहीन पुरुष और लालची स्त्री जिस घर में होगी, उसका भला नहीं होगा।

१५. जे घर पड़े करकसा नारी, ते घर सब धन जाये।

अर्थात्, कर्कशा नारी के कारण घर की सारी समृद्धि विलट जाती है।

१६. जे घर में मरदा ढेर, ते घर में बरदा उपास।
जे घर में मेहरी ढेर, ते घर में मरदा उपास॥

अर्थात्, जिस घर में पुरुष अधिक होते हैं, वहीं फूट के कारण जानवर भूखे रहते हैं। जिस घर में स्त्री का आधिक्य होता है, उस घर में मरदों को भोजन नहीं मिलता।

१७. कामी औरत काम करे, फुहरी बहलावा देवे।

अर्थात्, फूहड़ स्त्री घर के काम-काज को हमेशा टालती रहती है।

१८. तेल बनावे तरकारी, नई बहुरिया नाम।

अर्थात्, तेल के आधिक्य से तरकारी स्वादिष्ठ बनती है, पर नाम होता है नववधू की पाक-कुशलता की।

१९. असल के बेटी केवाल के खेती, कभी न धोखा देती।

अर्थात्, कुलीन वंश की कन्या और केवाल की खेती सदा विश्वासभाजन सिद्ध होती है।

२०. बेलदार के बेटी न नहिरे सुख, न ससुरे सुख।

अर्थात्, गरीब की बेटी सब जगह दुख पाती है।

२१. बिन घरनी घर भूत के डेरा।

अर्थात्, विना स्त्री के घर प्रेतों के डेरा-सा हो जाता है।

२२. जो विधवा होके करे सिंगार, तिनका से रहऽ होशियार।

अर्थात्, विधवा होकर शृंगार करनेवाली स्त्री से होशियार रहना चाहिए।

२३. फूहड़ी उठे, दुपहरी सोये।
हाथ बढ़िनिया देवे रोये॥

अर्थात्, फूहड़ स्त्री घर के कार्य की अवहेलना करती है।

२४. जोरू टटोले गठरी, माय टटोले अँतड़ी।

अर्थात्, पत्नी पैसे की भूखी होती है और माँ पुत्र के सुख-दुःख को जानने की।

२५. पहिली बहुरिया, दूसरी पतुरिया, तीसरी कुकुरिया।

अर्थात्, पहली ब्याहता पत्नी ही सम्मान पाती है। बाद में होनेवाली पत्नियों का सम्मान घटता ही जाता है।

(ग) पुरुष-सम्बन्धी कहावतें

हमारे समाज मे पुरुष का स्थान श्रेष्ठतर रहा है, फिर भी मगही में पुरुषों से सम्बद्ध कहावतो की संख्या, नारी-सम्बन्धी कहावतो से कम है। जितनी उपलब्ध हैं, उनसे पुरुषों के प्रति सामाजिक धारणा और उनकी प्रकृति की अच्छी अभिव्यक्ति होती है।

पुत्रजन्म के साथ ही थाल बजाकर या बन्दूक की गोली दागकर पुत्र का स्वागत किया जाता है। विकलांग होने पर भी लड़का यह कहकर प्रशंसित होता है कि—

घीउ के लड्डू टेढ़ो भला।[1]

अर्थात्, जैसे घी के लड्डू के टेढा होने पर भी स्वाद मे अन्तर नहीं आता, वैसे ही विकलाग होने पर भी लड़के का महत्त्व नहीं घटता।

पुरुष से सम्बद्ध कुछ अन्य मगही कहावतें निम्नांकित हैं—

१. पुरुष आउ पहाड़ दूरे से लउके हो।

अर्थात्, तेजस्वी पुरुष और उँचे पहाड़ के व्यक्तित्व की महत्ता दूर से ही झलकती है।

२. बाढ़े पूत पिता के धरमा।

अर्थात्, पिता के धर्म से पुत्र की वृद्धि होती है।

३. एगो जोरू के मरद लरुआ, दुगो जोरू के मरद भरुआ।

एक स्त्री का पति प्यारा होता है। दो स्त्रियों का पति हमेशा अपमानित होता रहता है।

---

१. मगही-कहावत-संग्रह, पृ० १६।

४. घर में आवे मेहरी, सीधा होवे पगड़ी।

अर्थात्, घर मे स्त्री के आने से पुरुष बोझ से दब जाता है, उसके पास साज-शृंगार के लिए अवकाश नहीं बच पाता।

५. पतुरिया रूठे, धरम बचे।

अर्थात्, वेश्या के रूठने से पुरुष का धरम वचता है।

(घ) विवाह-सम्बन्धी कहावतें

हमारे समाज में विवाह का बडा महत्त्व है। इसके माध्यम से दो जीवन-धाराएँ एक होकर गृहस्थ-जीवन को सुखी और सम्पन्न बनाती है। अतः, वैवाहिक जीवन की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि वर और कन्या दोनों रूप, गुण, शील और अवस्था में एक दूसरे के अनुकूल हो। उदाहरणार्थ, कुछ कहावतें नीचे दी जाती हैं—

१. कन्या बारह, बर अट्ठारह।

अर्थात्, वर और कन्या के बीच छह साल की बड़ाई-छोटाई आवश्यक है।

२. पछिला भँवर जब घुमले, धीया तोहार (हे)।

अर्थात्, अन्तिम भँवर के साथ कन्या पराई हो जाती है।

विवाह के अवसर पर, 'भाँवर' देने के समय, गाये जानेवाले गीत की यह एक कड़ी है। इसका व्यवहार, कहावत के रूप मे होता है।

३. तिरिया तेल, हमीर हठ, चढ़े न दूजो बार।[1]

अर्थात्, विवाह मे कन्या को तेल और हल्दी चढ़ाने की प्रथा है और ऐसा अवसर जीवन मे एक ही बार आता है।

४. एगो जोरू के मरद लड़ुआ, दुगो जोरू के मरद भँड़ुआ।

अर्थात्, एक स्त्रीवाला पुरुष आदर पाता है और दो स्त्रियोंवाला पुरुष अपमानित होता रहता है।

५. अरवा चाउर फँकना की ?
बुढ़वा भतार के ठगना की ?

अर्थात्, युवती स्त्री वृद्ध पुरुष के शासन मे नहीं रह सकती है। इस कहावत में वृद्ध-विवाह पर तीखा व्यंग्य है।

(ङ) सामान्य व्यवहार-सम्बन्धी कहावतें

सामान्य सामाजिक जीवन-व्यवहार से सम्बद्ध अनेक कहावतें मगही मे प्रचलित है। इनसे हमारे विश्वास, परम्पराएँ, घरेलू जीवन आदि पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। उदाहरणार्थ, कुछ मगही कहावतें निम्नाकित हैं—

१. अहारे बेहवारे लाज न करे।

अर्थात्, भोजन एवं अन्य आवश्यक व्यवहार मे लजाना नहीं चाहिए।

२. अहार ला अदमी पहाड़ चढ़े हे।

३. कदुआ पर सितुआ चोखा।

[1] दे० परिशिष्ट २।

४. कमाय लँगोटीवाला, खाय टोपीवाला ।
५. चार गोडा बाँधल जाये, दु गोड़ा न ।
६. असकत खेती किसाने नासे, चोरे नासे खाँसी ।
लिबड़ी आँख पतुरिया नासे, मिरगी नासे पासी ॥
७. आम के आम आ गठुली के दाम ।
८. उलट बैना पुलट बैना, बाँझ घर कैसन बैना ।
९. नाधा तो आधा ।
अर्थात्, कार्यारम्भ होने के बाद उसे आधा समाप्त ही समझना चाहिए ।
१०. काठ गढ़ले चिक्कन, बात गढ़ले रूखड़ ।
अर्थात्, काठ गढ़ने से चिकना होता है । बात गढ़ने से बिगड़ जाती है ।
११. कुल अउ कपड़ा जोगवले भल ।
अर्थात्, कुल और कपडे को बचाकर चलने में ही भलाई है ।
१२. जे गुड़ से मरे, ओकरा जहर देवे के कौन काम ?

अर्थात्, जिसका सहज ही निबटारा हो सकता है, उसके लिए उलझन बढ़ाने से क्या लाभ ?

१३. कमाये से बरक्कत होवे हे, न तो हरक्कत होवे हे ।
अर्थात्, कमाने से वृद्धि होती है, अन्यथा हानि होती है ।
१४. नीपल पोतल देहरी, पेन्हल ओढ़ल मेहरी ।

अर्थात्, लिपी-पुती देहरी वैसी ही भली लगती है, जैसी शृ गार-प्रसाधन से युक्त नारी ।

१५. जनमते लइका, ढुकते बहुरिया ।
जे लत लगावे, से लगे ॥
१६. जादा नींबू मल्ले से तित्ता हो जाहे ।
१७. थकल पैराकू फेन चाटे हे ।
१८. दरबे में सरबे बसल ।
१९. दुसमन दाना भल, दोस्त नादान न भल
२०. दुधारू गाय के दू लातो भल ।
२१. पढ़ऽ पूत चण्डिका, जेमें चढ़ो हण्डिका
२२. बंस बढ़े हे तो रोग बढ़े हे ।
२३. बरिया हारे तो हूरे, जीते तो थूरे ।
२४. राँड़ के बेटा साँढ़ ऐसन ।
२५. लड़िका मालिक, बूढ़ देवान ।
ममला होय साँझ-बिहान ॥
२६. साँझ के बादल अउ पहुना बिन बरसले न जाहे ।
२७. हरियर खेती, गाभिन गाय ।
जे न देखे, तेकर जाय ॥

२८. सहर सिखावे कोतवाली।
२९. राँड़ आदमी लतियेले भल।
३०. होती के धोती न तो फेंटा में लँगोटी।

मगही की कृषि और प्रकृति-सम्बन्धी कहावतें

मगही मे ऐसी अनेक कहावतें मिलती हैं, जिनमें कृषि और कृषक-जीवन की अनुभूतियाँ संचित है। इनके अतिरिक्त इसमें प्रकृति के विविध रूप, पशु-पक्षी के गुण, स्वभाव आदि से सम्बद्ध कहावतों का भी विपुल भाण्डार प्राप्त होता है। प्रकृति के विविध रूपों तथा पशु आदि से कृषि का अनिवार्य सम्बन्ध है। इन कहावतों के तीन उपवर्ग हो सकते हैं—

(क) कृषि-सम्बन्धी
(ख) प्रकृति और ऋतु-सम्बन्धी एवं
(ग) पशु-पक्षी-सम्बन्धी।

(क) मगही की कृषि-सम्बन्धी कहावतें

भारतवर्ष मे कृषि की प्रधानता है। इसे संसार के सभी व्यवसायों मे श्रेष्ठ कहा गया है।

उत्तम खेती, मध्यम बान।
निखिद चाकरी भीख निदान॥

कृषि की महिमा का वर्णन धर्मग्रन्थों मे भी हुआ है।

कृषेरन्यतमो धर्मो न लभेत् कृषितोऽन्यतः।
न सुखं कृषितोऽन्यत्र यदि धर्मेण कर्षति॥ (पराशरस्मृति, ५।१८५)

अर्थात्, कृषिकर्म अन्यतम धर्म है, जो खेती के अतिरिक्त अन्यत्र लभ्य नही। यदि धर्मपूर्वक कृषि की जाय, तो उससे बढ़कर सुख का साधन अन्यत्र नहीं मिलता।

मगहीभाषी क्षेत्र में भी कृषि ही प्रधान व्यवसाय है। यहाँ के किसानों ने अपने कृषि-सम्बन्धी सम्पूर्ण अनुभवों को कहावतों मे भर रखा है! छोटे-छोटे छन्दों और साधारण बोलचाल की भाषाओं मे निर्मित कहावतें प्रायः सभी किसानों को याद रहती हैं। अवसर के अनुकूल वे उनका व्यवहार करते है। खेती करने के लिए उन्हें पुस्तकों से ज्ञान उपलब्ध करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। ओष्ठस्थ कहावते ही सदा उनकी सहायिका होती हैं।

प्रकृति के विविध रूपों का कृषि पर प्रभाव पड़ता है। किस समय कैसी हवा कृषि पर कैसा प्रभाव डालेगी, किस नक्षत्र की वर्षा का कृषि पर कैसा असर होगा, इसका ज्ञान कहावतों से भली भाँति हो जाता है। कृषक ऋतुओं के सम्बन्ध मे महत्त्वपूर्ण जानकारी वैज्ञानिक अनुसन्धानों के सहारे नहीं करते, अपितु वर्षों के सञ्चित व्यक्तिगत और सामूहिक अनुभवो के आधार पर ही करते है। इसीलिए, उनकी जानकारी बड़ी पक्की होती है।

मगही की ऋतु और कृषि-सम्बन्धी कहावतों का कोष अत्यन्त समृद्ध है। इसमें विविध कृषिकार्यों, यथा सिंचाई, जोताई, बोआई, निराई, कटाई, दँवाई, मड़ाई, ओसाई, खाद डालना, फसल के रोग आदि से सम्बद्ध प्रचुर कहावतें उपलब्ध हैं। उदाहरणार्थ—

१. असल के बेटी, केवाल के खेती, कबहुँ न धोखा देती।

२. अगहन बरसे दोबर, पूस बरखे ड्योढ़ा।
   माघ बरसे सवाई, फागुन बरखे घर से जाई॥

३. अदरा गेल, तीन गेलन, सन, साठी, कपास।

४. चैत के बरखा आउ चमार के मट्ठा कोई न पूछे।

५. धान दुद्धा, रबी बुड्ढा।

६. धान, पान नित असनान।

७. पूस पुनर्वस बूनऽ धान,
   असलेसा मग्घा कादो सान।

८. पूरबा रोपे पूरा किसान,
   आधा खखरी आधा धान।

९. बाला सड़े तो मोती झरे,
   रेहड़ा सड़े तो का न करे।

१०. सामन मास बहे पुरबइया,
    बेचऽ बरदा कीनऽ गइया।

११. हरियर खेती, गब्भिन गाय,
    जे न देखे, तेकर जाय।

१२. हथिया बरसे चित मँडराय,
    घर बैठल किसान डड़ियाय।

(ख) मगही की प्रकृति और ऋतु-सम्बन्धी कहावतें

मगही की प्रकृति और ऋतुओं के विविध पक्षों से सम्बद्ध कुछ कहावतें निम्नांकित हैं—

१. काना में कान में जाड़ा, हथिया में हाथ में जाड़ा।
   आउ चित्रा में चित्त में जाड़ा॥

२. जे दिन भादो पछिया चले,
   ते दिन माघ पाला पड़े।

३. जे पुरबा पुरवइया पावे,
   सुखल नदी में नाव दौड़ावे।

४. दु कहार डोली, राँड़ के बोली,
   चित्रा के घाम दैवो से न सहाय।

५. पूस के दिन फूस नियन,
   माघ के दिन बाघ नियन।

६. माघ ...
७. माघ के उक्खम, भाई के हिस्सा अजर है।
सावन कुँआ धोवे धोबी, ... पहिले भर गेल नदी नाला।
८. सौ बरस अड़ल, सौ बरस खड़ल। ... होयब जोगी॥
सौ बरस पड़ल, तो जौ भर सड़ल॥
९. साँझ के बादल आउ पहुना, बिना बरसले न जाहे।
१०. साधु अउ नदी के चाल जानल बड़ मोसकिल हे।

(ग) मगही की पशु-पक्षी-सम्बन्धी कहावतें

किसानों के कृषि-कार्य के सर्वश्रेष्ठ साथी हैं—बैल। स्वभावतः, कृषक अपने बैलों को पुत्र से कम प्यार नहीं करते। चिरकाल तक बैलों के जीवन से सम्बद्ध रहने के कारण उन्हें, उनकी जाति, प्रकृति, बीमारी आदि सभी चीजो की जानकारी हो जाती है। कृषकों ने बैलों के सम्बन्ध में उपलब्ध सारे अनुभव कहावतों मे बाँध दिये हैं।

'गौ' भी हमारे जीवन मे मातृपद की अधिकारिणी मानी गई है। कृषक 'गोमाता' की पूजा बड़ी श्रद्धा से करता है, अतः 'गौ'-सम्बन्धी मगही कहावतों में उनके गुण-दोषो का यथोचित विवेचन मिलता है।

कुछेक दृष्टियों से पक्षी भी महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। 'नीलकण्ठ' का दर्शन शुभ माना जाता है। कौओं के बोलने से प्रियजन के आने की सूचना मिलती है। कुत्तों के रोने से एवं गीदड और कागों के बोलने से अशुभ की सूचना मिलती है। हमारे जीवन के ये सारे संस्कार और हमारी अनुभूतियाँ हमारी कहावतों मे संचित हैं। यथा—

१. उदन्त घोड़ी, दुदन्त गाय, माघे भैंस, गोसइयाँ खाय।
२. कैल के रुपैया गेल हे, साँवर के रुपैया धैल हे।
३. बेच खइह मीरा, मगर मँगनी मत बटिह।
४. रट के खाये बैलवा, बैठ के खाय तुरंगवा।
५. सामन मास बहे पुरवइया, बेचऽ बरदा कीनऽ गइया।

अर्थात्, सावन में पुरवइया हवा बहने पर फसल खराब हो जाती है। ऐसे समय मे बैल से अधिक गाय का ही कृषक के लिए महत्त्व रहता है।

६. हरियर खेती, गब्भिन गाय।
जे न देखे तेकर जाय॥

अर्थात्, हरी-भरी खेती और गर्भवती गाय की रक्षा न करनेवाले धोखा उठाते हैं।

७. हिसके-हिसके गोइयाँ बियाये, गोइयाँ के बचवा मरल जाय।
८. मोरवा चारों तरफ से नाच आवे हे।
अप्पन गोड़वा देख के मुरझा जाहे॥
९. बूढ़ सुग्गा कहुँ पोस माने हे।
१०. बाघ चीन्हे हे कहूँ बराहमन के लड़का।
११. दुधारू गाय के दू लातो भल।

३. शिक्षा और नीति-सम्बन्धी क...

...पूर्ण साधन माना जा सकता है।

कहावतों को जनता की शिक्षा का; वह जीवन से निरपेक्ष नहीं रहता। उनका कारण, इनमे जो सत्य सन्निहि। घटनाओं का सार तत्त्व उनमे सन्निहित होता है। ये आधार घटनाएँ उनसे उद्भूत सत्य जीवन से ही सम्बद्ध होते हैं। परिणामतः, कहावतों से जीवन को सन्देश मिलना स्वाभाविक ही है।

कहावतो मे जो नीति-सम्बन्धी सूक्तियाँ है, वे तो जैसे सीख देने के लिए बनी ही हैं। नीति का अर्थ है—जीवन मे बुद्धिमत्तापूर्वक प्रगति। नीति से मनुष्य आत्मरक्षा, सकल्पमय कर्म, धन-समृद्धि, उत्तम विद्या और मित्रता जैसी अमूल्य निधियाँ पाने मे समर्थ होता है।

मगही की शिक्षा और नीति-सम्बन्धी निम्नाकित कहावतें उपर्युक्त लक्ष्यों की पूर्त्ति में सहायक हैं:—

१. अँधरा आगे रोवे, अप्पन दीदा खोवे।
२. अनकर माल झमकौआ, छीन लेलक तो मुँह हो गेल कौआ।
३. आप रूप भोजन, पर रूप सिंगार।
४. आगे चलऽ तो राह बतावऽ।
५. एक बनिया से कहुँ बजार बसे हे।
६. कर, केतारी, निंबुआ, बिन चँपले नहि रस दे।
७. चँदरमा पर धूरी फेंके से, धुमैला न होबे हे।
८. चमइन के आगे कहूँ कोख छिपावल जा हे।
९. चाल चले सादा कि निबहे बाप-दादा।
१०. जतरा पर भेंटतो कान, बड़ भाग होयतो, तो बचतो परान।
११. जादे नींबू मल्ले से तीता हो जाहे।
१२. जे नगरी बहूरी बसे, से तेयाग करि देहु।
१३. जैसन खाय अन्न, ओयसन हो जाय मन।
१४. जोड़े राई रत्त, तब होबे सम्पत्ति।
१५. धुने-धाने तोड़े तान, ओकर रक्खे दुनियाँ मान।
१६. नहिरा जो बेटी ससुरा जो, जंगरा चलाव बेटी सगरो खो।
१७. निरिख अउ मउअत के कौन ठेकान।
१८. पहिला पहर सब्भे जागे, दुसरा पहर भोगी।
तीसरा पहर चोर जागे, चउथा पहर जोगी।
१९. पढ़ऽ पूत चण्डिका, जेमें चढ़ो हण्डिका।
२०. पुरुख अउ पहार दूर से लउके हे।
२१. बिन बोलाय मत जाहु भवानी।
न मिलतो तोरा पीढ़ा-पानी।

२२. बैठल से बेगारी भल।
२३. सदा देवाली सन्त घर जे गुर-गेहुम होय।
२४. साँझ के बादल अउ पहुना बिना बरसले न जाहे।

४. मगही की व्यंग्यात्मक कहावतें

मगही की अनेक कहावतों में गहरे व्यंग्य का पुट मिलता है। इन व्यंग्योक्तियों का उद्देश्य किसी को मात्र व्यंग्यबद्ध करना नहीं होता, अपितु आलोच्य व्यक्ति में वर्त्तमान दोषों को दूर करने की प्रेरणा देना होता है। ऐसी परिस्थिति मे तीखे-से-तीखे व्यंग्य भी कहावतो मे आकर निर्माणात्मक उद्देश्य से संयुक्त हो जाते हैं।

यथा—

१. अबरा के माउग सबके भौजाई।
२. अनकर भतार पर तीन टिकुली।
एगो कच्ची, एगो पक्की, एगो लाल बिंदुली।
३. एगो मिर्चाई अउ सौंसे गाँव खोंखी।
४. असकताहा गिरलन कुइयाँ में, कहलन हिएँ भल हे।
५. आयल बहुरिया फुलल गाल, फिन बहुरिया ओही हाल।
६. आझे बनिया, कल्हे सेठ।
७. उ बड़ा गरल गरई हे।
८. ऊँच बड़ेरी, खोखर बाँस।
९. एक भर गाजी मियाँ, दु भर दफाली।
१०. कहाँ राजा भोज, कहाँ गाँगू तेली।
११. कान आँख में काजर।
१२. खँस्सी के जान जाये, खबइया के सबादे न।
१३. खाय ला कुछ न अउ नहाय के तड़के।
१४. गोदी में लइका अउ नगर में ढिंढोरा।
१५. घर के मुरगी दाल बरोबर।
१६. घर के जोगी जोग न, बाहर के जोगी सिद्ध।
१७. चले न जाने अँगनमें टेढ़।
१८. चोरी आ ऊपर से सीनाजोरी।
१९. छुछुन्दर के सिर में चमेली के तेल।
२०. जादे जोगी, मठ उजार।
२१. देव न पित्तर, पहिले चमड़े मित्तर।
२२. देखे में साधु बाबा, खेलाबे पाँचो पीर।
२३. धान सुक्खे हे, कउआ टरटरा हे।
२४. नौ के लकड़ी, नब्बे खरच।
२५. पाप के पचित धन।

२६. पेट करे कुहुर-कुहुर, जूड़ा करे महमह।
२७. बिच्छा के मन्त्रे न जाने आउ साँप के बिल में हाथ डाले।
२८. बिना न्योता बिज्जे।
२९. बूढ़ सुग्गा कहूँ पोस माने हे।
३०. बाबा मरिहें, तो बैल बिकैहैं।
३१. बेटी चमइन के नाम रजरनिया।
३२. भर घर देवर, भतार से ठट्ठा।
३३. माल महराज के मिरज़ा खेले होली।
३४. सुआ न सुतारी, ठेंगा के बेपारी।
३५. हिसके-हिसके गोइयाँ बियाये गोइयाँ के बचवा मरल जाहे।
३६. मूँड़ काटीं, बाल के रच्छा।[1]
३७. बाप के गले लबनी, पूत के गले उदराछ।[2]

५. मगही की ऐतिहासिक कहावतें

मगह-क्षेत्र मे अनेक ऐसी कहावतें प्रचलित हैं, जिन्हे हम ऐतिहासिक कहावतों की संज्ञा दे सकते हैं। इनसे भारत की ऐतिहासिक घटनाओं, व्यक्तियों अथवा अन्य तथ्यों का संकेत मिलता है। यह आवश्यक नहीं कि जिस क्षेत्र मे ये ऐतिहासिक कहावतें प्रचलित हों, वहाँ के ही ऐतिहासिक तथ्यों को ये व्यंजित करें। लोक-साहित्य मे ऐसी अनेक ऐतिहासिक किंवदन्तियाँ मिलती है, जो विविध क्षेत्र की भाषा में समान रूप से वर्त्तमान होती हैं। ये ऐतिहासिक अनुश्रुतियाँ परम्परा के रूप मे एक पीढ़ी के बाद दूसरी पीढ़ी मे मौखिक रूप से चलती रहती हैं। मौखिक आदान-प्रदान के कारण इनमें बहुधा बहुत-से क्षेपकों का भी प्रवेश हो जाता है। कहावतों में इन क्षेपकों का अवकाश और भी अधिक होता है; क्योकि इनका व्यवहार घटनाओ के समर्थन अथवा विरोध के लिए बराबर किया जाता है। इस प्रकार, प्रायः ऐतिहासिक अनुश्रुतियो पर अतिशयोक्ति आदि का रंग चढ़ जाता है।

कहावतों का उद्देश्य प्रायः व्यंग्यात्मक शैली में किसी तथ्य अथवा परिस्थिति पर प्रकाश डालना होता है। ऐतिहासिक कहावतें भी इसी लक्ष्य की पूर्त्ति करती हैं। यथा—

१. कहाँ राजा भोज, कहाँ गाँगू तेली।

इस कहावत का सम्बन्ध मगध के इतिहास से नहीं है। यह उत्तरी भारत की प्रायः समस्त भाषाओ मे प्रचलित है। जैसे : राजस्थान मे इसका रूप है—

कठे राजा भोज, कठे गाँगलो तेली।[3]

इसी प्रकार विविध क्षेत्रों में इसके विभिन्न रूप प्रचलित है। यथा—

कहाँ राजा भोज, कहाँ गंगा तेली।

---

१. Behar Proverbs : By john christian.

२. वही।

३. राजस्थानी कहावतें : कन्हैयालाल सहल, पृ० ११२।

कहाँ राजा भोज, कहाँ गँगुवा तेली।
कहाँ राजा भोज, कहाँ गंगू तेली।

राजा भोज, धारा नगरी के राजा थे। इनकी प्रसिद्धि गुणग्राहकता, उदारता, दानशीलता आदि गुणों के लिए थी। कहा जाता है कि गंगू तेली इन्हीं के राज्यकाल में हुआ था। यह अपनी साधारण स्थिति का खयाल करके भोज की पद्धति पर दानादि करने की प्रवृत्ति रखता था। इसी तथ्य को लेकर यह कहावत प्रचलित हुई। प्रायः इसके माध्यम से दो भिन्न स्थितियों के लोगों तथा उनके कार्यों की तुलना की जाती है। इस तुलना में अल्पस्थितिवाले की दयनीय दशा की आलोचना छिपी रहती है। कोई साधारण स्थिति का व्यक्ति किसी समृद्धिशाली की तुलना मे कितनी उदारता दिखा सकता है। अतः, इस कहावत की यही व्यंजना है कि राजा भोज बनने का स्वप्न, एक साधारण व्यक्ति के लिए व्यर्थ है।[1]

२. अनकर धन पर बिकरम राजा।

विक्रमादित्य बड़े गुणग्राही और दानवीर सम्राट थे। भारत के इतिहास मे अनेक राजाओं को विक्रमादित्य की उपाधि मिली दीखती है, जो सूर्य के समान तेजस्वी, पराक्रमी, समृद्धि-सम्पन्न और शक्ति-प्रभुतावाले थे। उपर्युक्त कहावत मे वैसे लोगों की आलोचना की गई है, जो सामर्थ्य के अभाव में भी पराये धन पर विक्रमादित्य जैसा बनने का अभिनय करते हैं। इस प्रकार, एक ओर इस कहावत में विक्रमादित्य की प्रशंसा मिलती है, तो दूसरी ओर विक्रमादित्य बनने का अभिनय करनेवालों की आलोचना। साथ ही, अपनी स्थिति और परिस्थिति के अनुकूल चलने की सीख भी मिलती है।

३. सिंह गमन, सुपुरुख वचन, केदली फले एक बार।
तिरिया तेल, हमीर हठ, चढ़े न दूजो बार॥

अलाउद्दीन मुहम्मद शाह[2] से रंज हो गया था। मुहम्मद शाह ने जालौर के पास बगावत की। फिर वह रणथम्भौर पहुँचा। वहाँ उसे राव हमीर चौहान से सहायता मिली। चौहान ने निर्भीकता से उसको अपनी शरण दी। अलाउद्दीन ने हमीर को लिखा कि वह मुहम्मदशाह को अपने पास न रखे। परन्तु, हमीर ने जो उत्तर भेजा, वही उपर्युक्त कहावत में अंकित है।[3] इस कहावत का व्यवहार किसी दृढ और आनवाले व्यक्ति के चरित्र को व्यक्त करने के लिए किया जाता है। अन्त मे, चौहान मारा गया, परन्तु अपने वचन से वह पीछे न हटा।

४. बिन गाँगो झूमर।

गया जिला में एक प्रचलित अनुश्रुति है कि 'गाँगो' नाम की एक बड़ी प्रसिद्ध गायिका थी, जिसे झूमर गाने में विशेष प्रसिद्धि प्राप्त थी। जिस घर में उत्सव होता था, वहाँ झूमर बिना उसके सहयोग के गाया ही नहीं जाता था। झूमर गाने के लिए उसकी उपस्थिति की अनिवार्यता को लेकर यह कहावत चल पड़ी।

१. विस्तृत विवेचना के लिए दे० राजस्थानी कहावतें : कन्हैयालाल सहल, पृ० ११२।
२. यह नये मुसलमानो का नेता था।
३. राजस्थानी कहावतें, पृ० १०५-१०६।

६. मगही की स्थान-सम्बन्धी कहावतें

मगही में बहुत-सी ऐसी कहावतें भी मिलती हैं, जिनसे किसी देश अथवा स्थान-विशेष के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त होती है। इसी से इन्हें 'स्थान-सम्बन्धी कहावतों' की संज्ञा दी गई है। कुछ विद्वान् ऐसी कहावतों को भौगोलिक कहावतों की सज्ञा भी देते हैं। जैसे, स्वामी नरोत्तमदासजी ने अपने 'राजस्थान रा दूहा' में ऐसी ही कहावतों को भौगोलिक वर्ग के अन्तर्गत रखा है।

मगही की कुछ स्थान-सम्बन्धी कहावतें निम्नांकित हैं—

१. तुरुक, तेली, तार, इ तीनों बिहार।

अर्थात्, बिहार-प्रान्त मे तुर्क, तेली और ताड़ के वृक्षों की बहुलता है।

२. छाजा, बाजा, केस, इ तीनों बँगला देस।

अर्थात्, बंगवासी वेशभूषा, गीतवाद्य एवं साज-शृंगार के बड़े प्रेमी हैं।

३. सब तीरथ बार-बार, गंगासागर एक बार।

अर्थात्, सभी तीर्थों में अनेक बार जाने से जो पुण्यफल उपलब्ध होता है, वह गंगासागर की एक बार यात्रा से ही मिल जाता है।

४. राँड़, साँढ़, सीढ़ी, सन्यासी इनका से बचे तो सेवे कासी।

अर्थात्, काशी मे राँड़ (विधवा), साँढ़, सीढ़ी और संन्यासियों की बहुलता है। इनके कारण काशी-सेवन का आकांक्षी झंझट में पड़ सकता है। इनसे बचकर चलनेवाला ही अपने लक्ष्य की पूर्त्ति में वहाँ सफल हो सकता है।

५. घोड़ागाड़ी, खरछा पानी आउ राँड़ के धक्का।
इ तीनों से बचल रहे, तो बसे कलकत्ता॥

अर्थात्, कलकत्ता में बसनेवालों को तीन चीजों से परहेज करना चाहिए—घोड़ा-गाड़ी, खरछा पानी और विधवा औरतों का दल।

६. पूरब के बरधा, उत्तर कै नीर।
पच्छिम के घोड़ा, दखिन के चीर॥

अर्थात्, पूरब का बरधा, उत्तर का पानी, पश्चिम का घोड़ा और दक्षिण का कपड़ा उत्तम श्रेणी का होता है।

स्थान-सम्बन्धी कहावतें अन्य भाषाओं में भी मिलती हैं। इनका विवेचन अनेक विद्वानों ने किया है; जैसे डॉ० कन्हैयालाल सहल ने 'राजस्थानी कहावतें'[1] मे राजस्थान में प्रचलित स्थान-सम्बन्धी कहावतों का विवेचन किया है। इसी प्रकार, हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा ने 'मृगनयनी' की भूमिका में ग्वालियर राज्य के स्थानों के सम्बन्ध में एक कहावत को उद्धृत किया है। डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने भी 'भोजपुरी साहित्य का अध्ययन[2] में भोजपुर-क्षेत्र मे प्रचलित स्थान-सम्बन्धी कहावतों का उल्लेख किया है। रामनरेश त्रिपाठी ने 'हमारा ग्राम-साहित्य'[3] में ऐसी अनेक कहावतें उद्धृत की हैं।

१. पृ० १२४—१३३।
२. पृ० ४३२-४३३।
३. पृ० २७७।

स्थान-सम्बन्धी कहावतो में कुछ ऐसी भी मिलती हैं, जो स्थान-विशेष के प्रति आक्षेपपूर्ण धारणा को व्यंग्यात्मक शैली में अभिव्यक्त करती हैं। जैसे मगह-क्षेत्र में एक कहावत है—

उत्तर के लोगवा बड़ निरदइया, उलटि-पलटि दुख दे।

अर्थात्, उत्तर के लोग बडे निर्दयी होते हैं, उलट-पुलट कर विविध प्रकार से दुःख देते हैं। (इसलिए मगध-क्षेत्र मे बेटी को उत्तर मे व्याहना अच्छा नहीं समझा जाता।)

भोजपुर-क्षेत्र मे मगह के सम्बन्ध मे एक कहावत है—

उसॅना चावल, दाल खमौरी, मगध देस जनि जैहS मुरारी।

अर्थात्, मगध मत जाना, वहाँ भोजन अच्छा नहीं मिलता।

७. मगही की कथात्मक कहावतें

मगही में अनेक कथात्मक कहावतें मिलती हैं। कथा प्रायः किसी विशेष घटना से जुड़ी होती है। यह घटना जीवन के किसी भी पक्ष से सम्बद्ध हो सकती है। इस प्रकार कथात्मक कहावतो के विविध रूप हो जाते हैं; यथा—सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक आदि। कुछ कथात्मक कहावतें निम्नांकित हैं। मगही में एक कहावत है—

**१. बुरबक के घर गाय बियायल,
सब टहरी ले ले दौड़लन।**

एक मूर्ख के घर गाय ने बच्चा दिया। वह इसके लाभ से अपरिचित था। गाय के दूध से उसका परिवार पोषण और धन दोनों पा सकता है, यह उस वज्रमूर्ख को ज्ञात ही न था। पड़ोसी, उसकी मूर्खता से अभिज्ञ थे। वे सभी टहरी[1] लेकर, उसके घर पहुँच गये। उन्हें मालूम था कि दूध अवश्य मिल जायगा। अपनी उपयोगी वस्तु की रक्षा न करनेवाले किसी मूर्ख के उपहास के लिए इस लोकोक्ति का व्यवहार होता है।

२. कोयरिन के बेटी राजा घर गेल, तो बैंगन के टैंगन कहलक।

एक कोयरिन की बेटी थी। वह अत्यन्त रूपवती थी। राजा ने उसके रूप पर मुग्ध होकर उससे विवाह कर लिया। वह राजमहल मे आई। अपनी वर्तमान स्थिति पर उसे अहंकार हो गया। अब वह ऐंठ-ऐंठकर बातें करने लगी। सरल वस्तुओं के नाम भी इतराकर टेढ़ा करके लेने लगी। रानी का उच्च संस्कार वह सहसा कहाँ से लाती।

अकस्मात् सौभाग्य पानेवाले अनधिकारी व्यक्ति के गर्वीले स्वभाव पर इस कहावत में व्यंग्य किया गया है।

३. असकताहा गिरलन कुइयाँ में, कहलन हिएँ भल हे।

एक आलसी व्यक्ति कुएँ में गिर गया। उसने सोचा, यहाँ रहने से बुरा क्या है ? दयावान् भोजन दे ही देंगे। वह भी संसार के कामों से छुट्टी पाकर आराम से कुएँ में पड़ा रहेगा। इस कहावत मे आलसी व्यक्ति की अकर्मण्य मनोवृत्ति पर व्यंग्य है।

---

१. दूध का बरतन।

४. तेल बनौलक तरकारी, नयी बहुरिया नाँव[1] ।

एक नयी बहू ने तरकारी बनाई, जो बड़ी स्वादिष्ठ थी । सब लोगों ने उसकी पाक-कुशलता की प्रशंसा की । किसी ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि तरकारी को स्वादिष्ट बनाने में तेल का प्रधान हाथ था ।

दूसरों के मूल्य पर नाम पानेवालों के प्रति यह कटु व्यंग्योक्ति है ।

५. बदरा के बहुआ, कलेवो न केलन ।

एक बहू थी, जो देर से उठा करती थी । एक दिन प्रातःकाल घने बादल छाये हुए थे । उस दिन वह और देर तक इस बहाने सोती रही कि अभी तो प्रभात हुआ ही नहीं । जलपान और भोजन भी उसने नहीं किया । उसके लिए सबसे अधिक प्रिय थी उसकी नींद । इसके लिए वह सर्वदा बहाने ढूँढ़ा करती थी ।

प्रभात में देर तक सोने और इसके लिए बहाना ढूँढ़नेवालों पर इस कहावत द्वारा तीखा व्यंग्य किया जाता है ।

८. प्रकीर्ण कहावतें

मगही में कुछ ऐसी कहावतें भी मिलती हैं, जो सामान्य जन-विश्वास, धार्मिक आस्था, विशिष्ट सामाजिक विचारधारा आदि को अभिव्यक्त कर देती हैं । किसी भी एक प्रसंग पर बहुत कहावतें उपलब्ध नहीं है, पर जो हैं, किसी-न-किसी सत्य का उद्घाटन करती हैं । ऐसी कहावतों को यहाँ 'प्रकीर्ण कहावतों' की संज्ञा दी गई है । विभिन्न प्रसंगों पर उपलब्ध कुछ मगही कहावतें निम्नांकित हैं :

(क) पर्व-त्योहार :

मगध मे पर्व-त्योहार का उल्लास सालो-भर छाया रहता है । कोई ऐसा मास नहीं बीतता, जिसमें पर्व-त्योहार न हों । अतः, स्वभावतः बहुत-सी कहावतें ऐसी मिलती हैं, जो पर्वों के प्रति विशिष्ट धारणा और विश्वास को व्यक्त करती हैं । यथा—

रमणियाँ, सन्तान के दीर्घायु होने की कामना से प्रेरित होकर 'जितिया' व्रत रखती हैं । इसकी संज्ञा 'जीवत्पुत्रिका' भी है । ऐसा जन-विश्वास है कि जिसकी माँ जितिया-व्रत करती है, उसकी सन्तान पर विपत्ति नहीं आती । विपत्ति में यदि वह पड़ भी जाती है, तो उससे सहज ही मुक्त हो जाती है । ऐसी संकटापन्न स्थिति से बचे व्यक्ति को कहा जाता है—

तोहार माय खरजितिया कैलथुन हल ।

अर्थात्, तुम्हारी माँ ने शायद 'खरजितिया' किया होगा ।

यह कहावत भोजपुरी में भी इस प्रकार प्रचलित है—

आजु तोहार महतारी खर जिऊतिया कइले रहलीं[2] हा ।

इसी प्रकार, शीतला के प्रकोप से जो बच्चे निकल जाता है, उसे कहा जाता है—**इनका पर मइया के एकबाल हलइन ।**

---

१. नाम, प्रशंसा ।

२. भो० लो० सा० का अ०, पृ० ४३५ ।

भादो की चतुर्थी का चाँद देखना अच्छा नहीं माना जाता। यदि किसी ने देख लिया, तो समझा जाता है कि उसे कलंक लगेगा। किसी निर्दोष व्यक्ति पर जब कलंक लगता है, तब कहा जाता है—

ऊ चौठी के चाँद देखलक हल।

एक दूसरी कहावत है—

सदा देवाली संत घर, जे गुड़-गोहुम होय।

दिवाली पर्व में मिठाइयाँ खूब बाँटी जाती है। यदि गुड़ और गेहूँ उपलब्ध हो, तो सब दिन 'दिवाली' मनाई जा सकती है।

(ख) मगही की भोजन और स्वास्थ्य-सम्बन्धी कहावतें :

भोजन, हवा, पानी आदि के सम्बन्ध मे विभिन्न सामाजिक अनुभव कहावतों मे संगृहीत हैं। इनमे से कुछ कहावतों को उद्धृत किया जाता है—

१. खा के पसरे, अउ मार के सँसरे।

२. खिचड़ी के चार इयार, घी, पापर, दही, अचार।

३. आहारे बेहवारे लाज न करे।

अर्थात्, आहार और व्यवहार मे संकोच नहीं करना चाहिए।

४. तातल खाये, भीतर घर सोबे।
तेकर रोग बने-बन भागे॥

५. सामन साग न भादो दही।
आसिन दूध न, कातिक मही[1]॥

अथवा

आसिन ओस न, कातिक मही।

अर्थात्, सावन में साग[2], भादो में दही, आश्विन मे दूध तथा ओस और कार्त्तिक मे मछली खाना स्वास्थ्य के लिए हानिप्रद है।

६. बैंगन के संग दूध अउ मूरइ न खाये।

अर्थात्, बैंगन की तरकारी के साथ दूध और मूली खाना स्वास्थ्यप्रद नहीं है।

७. आपरूप भोजन आ पराये रूप सिंगार।

८. खाय चना तो रहे बना।

९. खाय गेहूँ न तो रहे एहूँ।

१०. मोटा दतुमन जे करे, नित उठ हर्रें खाय।
बासी पानी जे पिये, ता घर बैद न जाय॥

अर्थात्, प्रातःकाल उठकर, जो मोटे दतुवन से मुँह धोता है, हर्रें खाता है और बासी पानी पीता है, वह कभी अस्वस्थ नहीं होता है।

(ग) धर्म और जीवन-दर्शन :

---

१. मछली।

२. जनविश्वास है कि सावन में साग खाने से गोबरौरा (गोबर में जनमने और पलनेवाला एक पिल्लू-विशेष) में जन्म होता है।

कुछ कहावतें ईश्वर, धर्मभावना, शकुन, भाग्य आदि के सम्बन्ध में जनविचारों को अभिव्यक्त करती हैं। यथा—

१. माने तो देओता, न तो पत्थर।

अर्थात्, पत्थर में देवत्व के आरोप का प्रधान कारण मनुष्य की भावना ही है। इसी आशय का निम्नांकित श्लोक है—

न काष्ठे विद्यते देवो, न शिलायां न मृण्मये।
भावे हि विद्यते देवस्तस्माद् भावो हि कारणम्॥

अर्थात्, देवता न तो काठ में है, न पत्थर में और न मिट्टी में ही। उसका निवास तो वस्तुतः भाव में ही होता है; अतः किसी देवत्व का मूलाधार जन-सामान्य की तद्गत भावात्मक स्वीकृति ही है।

२. मन चंगा त कठौती में गंगा।

अर्थात्, मन की शुद्धता में ही गंगा-स्नान का पुण्यफल सन्निहित है।

३. साँच के आँच का।

अर्थात्, सच्चाई मे कोई भय नही रहता।

४. झुट्ठा के मुँह काला।

अर्थात्, झूठे व्यक्ति लज्जित होते है।

५ जतरा पर भेंटतो कान, बड़ भाग होय तो, बचतो परान।

अर्थात्, यात्रा के समय काने व्यक्ति का दर्शन अशुभ है।

६. नीलकण्ठ के दर्शन भल हे।

अर्थात्, किसी शुभ कार्य की सफलता के लिए नीलकण्ठ पक्षी के दर्शन को शुभ माना जाता है।

७. माय जलम दे हे, करम न दे।

अर्थात्, माता जन्म ही देती है। भाग्य का देनेवाला तो विधाता ही है।

८. करम के लिखल के मिटा सके हे।

अर्थात्, विधाता का कर्म-लेख कोई मिटा नहीं सकता।

(घ) आशीर्वादात्मक :

कुछ कहावतें आशीर्वादों से भी सम्बद्ध हैं। यथा, स्त्री को आशीर्वाद देने में निम्नांकित कहावतों का व्यवहार होता है—

१. दूधे, पूते हरल-भरल रहऽ।

अर्थात्, पुत्र और समृद्धि से हरी-भरी रहो।

२. आसा जुड़ा, माँगे-कोखे भरल रहऽ।

अर्थात्, जीवन में तुम्हारी आशाएँ पूरी हों और सौभाग्य तथा पुत्र से भरी-पूरी रहो।

३. दूधे नहा, पूते फलऽ।

अर्थात्, हमेशा तुम दूध मे स्नान करती रहो और पुत्र-पौत्र तुम्हारी समृद्धि को फलान्वित करते रहें।

४. सात पूत के माय होअ।

अर्थात् , सात पुत्रों की माता बनो।

पुरुष को निम्नांकित कहावतों से आशीर्वाद दिया जाता है--

१. जान जुआनी से बनल रहऽ।

अर्थात् , यौवन और जीवन से परिपूर्ण रहो।

२. रोजी-रोटी बनल रहे।

अर्थात् , जीविका तुम्हें अनायास ही प्राप्त होती रहे।

(ङ) हास्यरसात्मक :

हास्य का जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। मगही की कुछ कहावतें हास्यरसात्मक भी मिलती है, जिनका उद्देश्य व्यंग्यमिश्रित मनोरंजन है। यथा--

१. सभे रामायन पढ़ गेली, सीता केकर जोरु?

अर्थात् , सारी रामायण पढ़ने के बाद भी पता न लगा कि सीता किसकी पत्नी थीं।

२. भर घर देवर, भतार से ठट्ठा।

अर्थात् , घर देवरों से भरा है, उन्हें छोड़कर पति से दिल्लगी करती रहती है।

३. हे पिया नींकी ? खाक तोहर रूप कि लोग कहें नीकी।

अर्थात् , एक पत्नी शृंगार कर पति से पूछने गई—प्रिय ! क्या मैं भली लगती हूँ ? पति ने उत्तर दिया—मेरे कहने से क्या ? दूसरे लोग भली कहें, तब न।

४. ममानी चमानी, सुटुक लकड़ी, ममानी के पेट में तीन बकरी।

मामी से मजाक करने के लिए इस कहावत का व्यवहार किया जाता है।

२. मगही-मुहावरे[1]

उद्भव :

परमेश्वर द्वारा जो अमूल्य वरदान मानव को मिले हैं, उनमें 'वाक्शक्ति का वरदान' अन्यतम है। यह वाक्शक्ति मनुष्य को कब मिली, इस विषय में भाषाशास्त्रियों

१. मुहावरा का अर्थ है—"परस्पर बातचीत और सवाल जवाब करना।" भिन्न-भिन्न भाषाओ और बोलियो में इसके भिन्न-भिन्न पर्याय प्रचलित है। यथा—

भाषा या बोली	पर्याय
अरबी	मुहावरा, महाविरा
उर्दू	तर्जेकलाम, इस्तलाह, रोजमर्रा, मुहावरा।
अँगरेजी	Idioms, Sayings.
संस्कृत	वाक्-पद्धति, वाक्-रीति, वाक्-व्यवहार, वाक्-सम्प्रदाय, वाग्धारा, वाक्-वैचित्र्य, वाग्योग, भाषा-सम्प्रदाय, प्रयुक्तता, इष्ट प्रयोग, विशिष्ट प्रयोग। [वस्तुतः, संस्कृत मे 'मुहावरा' शब्द के वास्तविक अर्थ का बोधक कोई शब्द नही है। विद्वानो ने 'मुहावरा' के भाव के व्यंजक शब्दों को अपने-अपने ढंग से प्रयुक्त किया है।]
हिन्दी	सिद्ध प्रयोग, परम्परा-प्राप्त प्रयोग, साधु प्रयोग, इष्ट प्रयोग, वृद्ध-व्यवहार, व्यवहारसिद्ध प्रयोग, मुहावरा।
मगही	महवरा

द्वारा भी अन्तिम वक्तव्य अद्यावधि नहीं दिया गया। वैसे यह निर्विवाद कहा जा सकता है कि वाक्शक्ति मनुष्य की आदिशक्ति है और मुहावरे इसके आदिव्यक्त रूप है।[1]

सामान्य वाग्व्यवहार एवं मुहावरों में कुछ स्पष्ट अन्तर है। सामान्य वाग्व्यवहार का उद्देश्य कथ्य का सम्प्रेषण-मात्र होता है, जबकि मुहावरो का उद्देश्य कथ्य को अत्यन्त सशक्त ढंग से अनुभूत कराना होता है। यही कारण है कि मुहावरों में एक विशिष्ट प्रकार की सावेगिक तीव्रता एवं सामासिकता मिलती है। सावेगिक तीव्रता से तात्पर्य कथन की उस प्रभाव-क्षमता से है, जो राग-द्वेष-उत्साह-मात्सर्य-वात्सल्य-अवसाद आदि की भावानुभूतियो से व्युत्पन्न होती है। इस सावेगिक तीव्रता के अभाव मे मुहावरों की प्राणवत्ता जाती रहती है। इसी तरह सामासिकता से तात्पर्य मुहावरों मे दीख पड़ने-वाली शब्दों की मितव्ययिता से है। इसके अभाव मे मुहावरों की जातीयता ही समाप्त हो जाती है, यानी उक्त स्थिति में 'सामान्य वाक्यखण्ड' एवं 'मुहावरे' मे कोई अन्तर ही नहीं रह जाता है। मुहावरों के उद्भव के मूल में वस्तुतः उपर्युक्त दो तत्त्व ही सक्रिय रहते हैं।

परम्परा :

विश्व का प्राचीनतम उपलब्ध साहित्य ऋग्वेद माना जाता है। इसमे संस्कृत-भाषा का अत्यन्त व्यवस्थित एवं परिष्कृत रूप मिलता है, जिसको देखकर यह सहज ही सोचा जा सकता है कि भाषा (संस्कृत) का जन्म इससे बहुत पहले ही हो चुका होगा। ऋग्वेदकालीन जन-सामान्य की बोलचाल की संस्कृत-भापा का रूप क्या था, यह न तो आज हमें मालूम है और न इस विपय मे कोई सामग्री ही मिलती है, पर उसका साहित्यिक रूप ऋग्वेद के मन्त्रों में अवश्य देखने को मिलता है। ऋग्वेद-काल की सभ्यता बहुत ऊँची थी, शिक्षण-पद्धति का काफी विकास हो गया था एवं सामाजिक जीवन-यापन का स्तर भी बहुत उन्नत था। इस उच्च सभ्यता की समृद्धि उसके शिष्ट भाषा-प्रयोग मे भी झलकती है और मुहावरेदार अनेकानेक प्रयोग देखने को मिलते हैं। यथा—

१. अग्निनाग्निः समिध्यते।

आग से ही आग लगती है।

२. रोदसी विबाधते। (ऋ०, मं० १, अ० १०, सू० ५१ : १०)

जमीन-आसमान हिल उठते हैं।

३. उत्सवे च प्रसवे च।

उत्सव और प्रसव (सुख-दुःख) दोनों मे।

४. द्यौ रेजत। (ऋ०, मं० ४, अ० २, सू० १७ : २)

आकाश काँप उठता है।

५. दक्षिणा बाहुः असि। (य०, अ० १, मं० २४)

दाहिनी भुजा हो।

---

१. डॉ० ओमप्रकाश गुप्त : मुहावरा मीमांसा, पृ० ६।

६. रयिणां सदनम्। (सा०, उ० म्र० प्र०, अ० ८, खं० ३, २)
ऐश्वर्यो का घर।

७. अज अवय यथा। (अ०, कां० १, सू० २३, १२)
भेड़-बकरियो की तरह।

८. न इव दृश्यते। (अ०, कां० १, सू० ८, २५)
नही के बराबर दीखता है।

९. पुरु अर्णवं तिरः जगन्वान् (अ० १८, सू० १, १)
संसार-रूपी सागर को पार कर जाओ।

१०. अक्षिभुवः सत्यस्थः। (अ०, सू० १३६, ४)
आँखो देखा सत्य।

वेदो के बाद उपनिषदों का काल आता है। उपनिषदों की भाषा और समृद्ध दीख पड़ती है। यह एक ओर जहाँ अत्यन्त सरल एवं सारगर्भ है, वहाँ अपेक्षाकृत अधिक प्राणवन्त एवं मुहावरेदार। इसके कुछेक मुहावरेदार प्रयोग नीचे दिये जाते हैं—

१. मृत्युमुखात्प्रमुक्तम्। (कठ० अ० १, व० १, ११)
मृत्यु के मुख से निकला हुआ।

२. शशविषाणकल्पम्। (ईशावास्योपनिषद्)
खरहे के सींग के समान।

३. वर्षबुद्बुदसन्निभम्। (माण्डूक्योपनिषद्)
वर्षा की बूँद के समान।

४. प्राणस्य प्राणः। (मुण्डकोपनिषद्)
प्राणों का प्राण।

५. भस्मसात् कुरुते। (श्वताश्वतरोपनिषद्)
भस्म करता है।

६. भेर्यां तत्कर्णमूले नाड्यमानायाम्। (ऐतरेयोपनिषद्)
उसके कानो पर ढोल बजाये जाने पर।

७. शल्यमिव मे हृदयस्थितम्। (प्रश्नोपनिषद)
मेरे हृदय में काँटे की तरह चुभा है।

८. खपुष्पकृतशेखरः। (तैत्तिरीयोपनिषद्)
आकाश-कुसुम का शेखर धारण किये।

इनके पश्चात् भारतीय दृष्टि से विश्व के आदिकवि वाल्मीकि की रामायण, कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तलम् आदि संस्कृत की सुप्रसिद्ध रचनाओ से मुहावरेदार भाषा के प्रयोग की जो परम्परा शुरू होती है, वह प्राकृत, पालि, अपभ्रंश से वर्त्तमान भारतीय आर्य भाषाओं तक में निरन्तर प्रवर्द्धित और प्रवहमाण हो रही है।[1]

---

१. (क) क्रोधो व्यवर्धत।—क्रोध भड़क उठा। (वाल्मीकीयरामायणम्)।

महत्त्व

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट हो चुका है कि वाग्व्यवहार (चाहे वह लोकगत हो अथवा संस्कृत) मे मुहावरों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनके प्रयोग से भाषा की व्यजना-शक्ति बहुत बढ़ जाती है। मुहावरे किसी वाक्य के अंग होकर ही आते हैं। इनकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं होती। परन्तु, अंगरूप मे ही मुहावरों के प्रयोग से भाषा मे लाक्षणिकता आ जाती है, अभीष्ट भावों की सहज और सशक्त अभिव्यंजना हो जाती है एवं कथन की शैली आकर्षक, सरस और प्रभावपूर्ण हो जाती है।

'सुप्रयुक्त शब्द' की महत्ता निम्नांकित संस्कृत-सूक्ति मे व्यंजित है—

'एकः शब्दः सुप्रयुक्तः सम्यग्ज्ञातः स्वर्गे लोके च कामधुग्भवति।'

अर्थात् 'सुप्रयुक्त शब्द' अकेला ही इस लोक और परलोक दोनों में इच्छित फल देनेवाला होता है।

इसी भाव की पुष्टि निम्नांकित श्लोक से होती है—

> यस्तु प्रयुङ्क्ते कुशलो विशेषे
> शब्दान् यथावद् व्यवहारकाले।
> सोऽनन्तमाप्नोति जयं परत्र
> वाग्योगविद् दुष्यति चापशब्दैः।

अर्थात्, जो कुशल व्यक्ति (व्यवहारकुशल वक्ता) विशेष व्यवहार-काल में शब्दों का (शब्द, वाक्यांश, खण्डवाक्य, महावाक्य इत्यादि का) ठीक-ठीक प्रयोग करता है, उसे अनन्त जयलाभ होता है। इसके विरुद्ध वाग्योगविद् (इष्ट प्रयोग अथवा मुहावरों के जाननेवाले) को अपशब्दों से (जो सुप्रयुक्त शब्द नहीं है), परलोक (दिव्यलोक अथवा हृदयलोक) में दोष लगता है।

वस्तुतः, मुहावरा ही वह 'सुप्रयुक्त शब्द' है, जो भावों को यथोचित प्रेषणीयता प्रदान करता है। ऐसे 'सुप्रयुक्त शब्द' के व्यवहार के लिए वक्ता की कुशलता अपेक्षित है।

(ख) दृष्टां दुष्टेन चक्षुषा। (वाल्मीकीयरामायणम्) : बुरी नजर से देखी गई को।
(ग) लब्धं नेत्रनिर्वाणम्। (अभिज्ञानशाकुन्तलम्) : आँखों के होने का फल पा गया।
(घ) केवट्टा पंचे मच्छं विलोकन्ति। (पालि-प्राकृत) : मछुए बाजार मे मछली ही देखते है।
(ङ) ताउंजि बिरह गवक्खेहि मक्कडघग्घिऊ देई। (अपभ्रंश) : बन्दर घुड़की देता है।
(च) साव सलोणी गोरडी नरखी कवि विषगंठि। (अपभ्रंश) : विष की गाँठ होती है।

मुहावरों के इसी माहात्म्य को दृष्टिपथ में रखते हुए विद्वानों ने उन्हे 'भाषा का प्राण' एवं 'उसकी आत्मा' तक कहा है।[1]

जहाँतक मगही-भाषा का प्रश्न है, उसमें सशक्त अभिव्यंजना-शक्ति एवं गम्भीर अर्थ-वैभव की दृष्टि से स्पृहणीय एवं अत्यन्त समृद्ध मुहावरों का विपुल भाण्डार सुरक्षित है। शक्ति के विद्युत्कणों की भाँति ये मुहावरे समस्त मगही लोक-जीवन में व्याप्त हैं और उनसे स्फुरित होकर इसका वाङ्मय शरीर अहर्निश स्वास्थ्य-लाभ करता रहता है। उपर्युक्त उद्देश्य-सिद्धि के अतिरिक्त ये मुहावरे मगही लोक-जीवन के सांस्कृतिक पर्यालोचन को भी सामर्थ्य प्रदान करते हैं। सामान्यतया सांस्कृतिक, धार्मिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, राजनीतिक या सामाजिक आदि कोई भी ऐसा पहलू नहीं है, जिसपर ये मुहावरे प्रकाश न डालते हों।

मगही-मुहावरों का वर्गीकरण

मगही-भाषा मे मुहावरों का समृद्ध भाण्डार सुरक्षित है। मानव के अंग-उपांग, भाव-विचार, गति-विधि, क्रिया-अनुभूति, घर-गृहस्थी, प्रकृति-कृषि, इतिहास-पुराण, व्रत-त्योहार आदि कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं है, जिससे सम्बद्ध मगही-मुहावरे उपलब्ध नहीं होते हों। ऐसी स्थिति में इन्हें वर्गों की सीमा मे विभक्त करना एक दुष्कर कार्य है। यों, अध्ययन की सुविधा के लिए इन्हें निम्नांकित वर्गों मे विभक्त किया जा सकता है—

---

१. (क) 'मुहावरे भाषा के शृंगार है, सुविधा एवं सौन्दर्य-सृष्टि अथवा भाव-विकास के लिए उनका सर्जन हुआ है। उनकी उपेक्षा उचित नही। वे उस आधारस्तम्भ के समान है, जिनके अवलम्ब से अनेक सुविचार-मन्दिर का निर्माण सुगमता से हो सकता है।'

—पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' : 'बोलचाल', पृ० २१६।

(ख) 'मुहावरा अगर उमदा तौर से बाँधा जाये, तो बिला शुबहा पस्त शेर को बलन्द और बलन्द को बलन्दतर कर देता है।'

—मौलाना हाली : 'मुकद्दमा शेर व शायरी।'

(ग) 'मुहावरे हमारी बोलचाल के लिए जीवन की चमकती चिनगारी-स्वरूप और स्फूर्त्ति है। वे भोज्य पदार्थों की उस जीवन-प्रदायिनी-सामग्री (Vitamins) के समान हैं, जो उनको सुस्वादु तथा लाभप्रद बनाती है। मुहावरो से रिक्त भाषा या लेखन-शैली अमधुर, शिथिल तथा असुन्दर हो जाती है।'

—स्मिथ साहब : 'वर्ड्‌स ऐण्ड इडियम्स' (Words & Idioms)।

(घ) 'जीवित भाषाओं के मुहावरे प्राण है और इनके उचित प्रयोग से शैली तथा शक्ति की अभिवृद्धि होती है।'

—डॉ० उदयनारायण तिवारी : 'भोजपुरी मुहावरे', हिन्दुस्तानी, भाग १०, अंक, १, पृ० १६७।

(ङ) 'उचित मुहावरों के प्रयोग से शैली में माधुर्य, सौन्दर्य और शक्ति आ जाती है। विस्तृत भावो को थोडे शब्दों में प्रकट करना मुहावरो का ही काम है। इनके प्रयोग द्वारा कोई भी भाषा संस्कृत होकर चमत्कृत हो जाती है।

—डॉ० कृष्णदेव उपाध्यायः लो० सा० भू०, पृ० १५४।
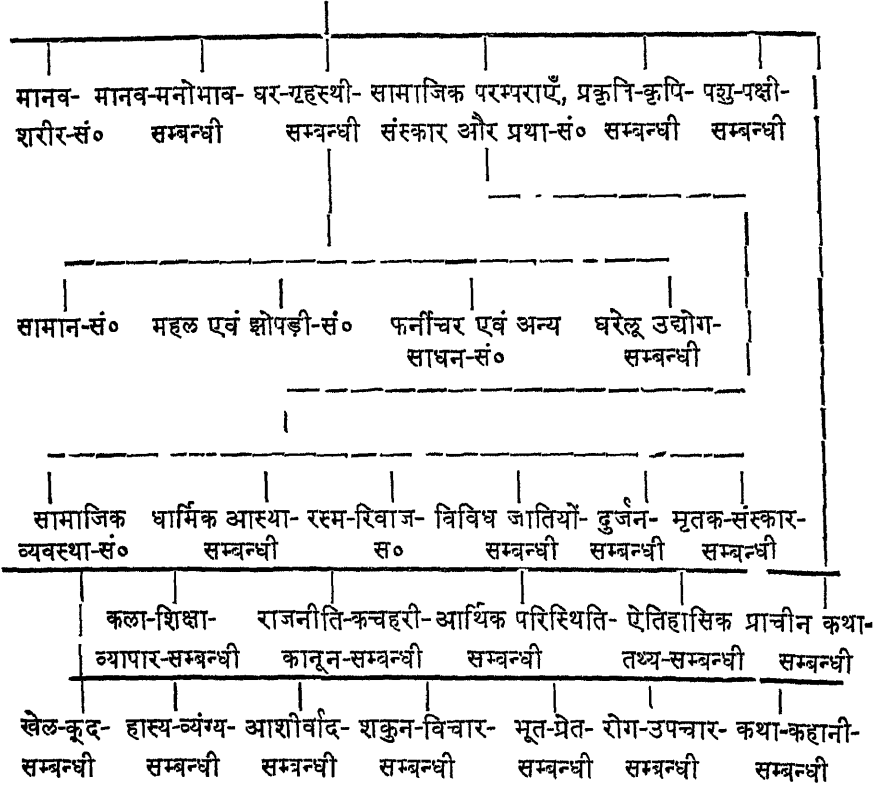
१. मानव-शरीर-सम्बन्धी[2]

मगही में मानव-शरीर से सम्बद्ध अनन्त मुहावरे भरे पड़े हैं। सामान्यतया मानव-शरीर के नख से शिख तक में ऐसा कोई अंग नहीं, जो मुहावरों से अछूता हो। सिर और उसकी बनावट, बाल, आँख, पलकें, नाक, कान, कोहनी, हाथ और उँगलियाँ, पाँव, टखने, अँगूठे, हृदय, मन, श्वास, छींक आदि से सम्बद्ध मुहावरेदार प्रयोग मगही-भाषा में वर्त्तमान हैं। यथा—

बाल[3]—बाले बाल बचना, बाल के खलड़ी निकालना, धुप्पा में बाल पकाना, बाल खिचड़ी होना, बालो भर न हटना, बाल बाँका होना, बार टेढ़ा न होना, बाले बाल उठा लेना।

---

१. म० लो० सा० में मगही-मुहावरों का एक लघु संकलन अक्षरानुक्रम से दिया गया है।

२. मानव-शरीर-सम्बन्धी मुहावरों के व्यापक अध्ययन के लिए देखिए—'बोलचाल' : श्रीअयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'।

३. 'बाल' के स्थान पर विकल्प से 'बार' का भी व्यवहार होता है।

सिर[1]—सिर नेमाना, सिर उतारना, सिर देना, सिर फिरना[2], सिर चकराना[3], सिर माथे चढ़ाना, सिर उठाना, सिर या माथे पर पहाड़ टुटना, ओखरी में सिर देना, सिर-तोड कोसिस करना, सिर पर काल नाचना, सिर चढ़ना, माथा पर पगड़ी बाँधना।

आँख—आँख के तारा होना, आँख के परदा होना, आँख के पानी ढरकना, आँख के जादू लगना या नजर लगना, आँख पर पट्टी पड़ना, आँख फटना, सिर-आँख पर बैठाना, आँख मे खून उतरना, आँख फड़कना, आँख खुलना, आँख चढ़ना, आँख आना, आँख मिलाना, नजर तुलना, दीदा काढ़ना, दीदा के पानी ढरकना।

नाक—नाक मे दम करना, नाक कटाना, नकचढ़ा, नाकवाला, नाक रखना, नाक के वार होना।

कान—कान न देना, कान फूँकना, कान में ठेपी देना, कान पकड़ना, कान भरना, कान के पतरा होना, कान पर हाथ धरना।

गाल—गाल से देबाल जीतना, गाल फुलाना, गाल बजाना, गाल पचकना।

मुँह—मुँह ताकना, मुँह में लेवा लगाना, मुँह से मोती झरना, मुँह टुटना, मुँह बन्द होना, मुँह नोचना, मुँह लेकर लौटना, मुँहजला, मुँह मे घी-सक्कर पड़ना, मुँह लाल होना, मुँह फेरना, मुँह बनाना, मुँह लगाना, मुँह लटकाना, मुँह चुराना।

दाँत—दाँत निपोरना, दाँत गड़ाना, दाँत पीसना, दाँत-कटल रोटी होना, दाँत लगना, दाँत तोड़ना।

जीभ—जिभचटोरी होना, जीभ कतरना, जीभ चलाना, जीभ ऐंठना, जीभ लपलपाना।

ओठ[4] **या ठोर**—ठोर चूसना, ठोर पर बात आना, ठोर फड़कना, ठोर बिचकाना, ठोर पर पपड़ी पड़ना।

साँस—साँस में आस होना, साँस टूटना, साँस चलना, साँस भरना।

दम—दम भरना, दम टूटना, दम लेना, बेदम होना।

मूँछ—मूँछ पर ताव देना, मूँछ ऐंठना, मूँछ उखाड़ना, मूँछ टेढ़ा न होना।

गरदन—गरदनिया देना, गरदन फसना, गरदन उड़ाना, गरदन बचाना, गरदन हिलाना, गरदन फेरना।

कन्धा—कन्धा देना, कन्धा चढ़ना, कन्धा पकड़ना, कन्धा छिलना।

हाथ—हाथ जोड़ना, हाथ सकड़ियाना, हाथ बाँधना, खुला हाथ होना, हाथ बढ़ाना, हाथ रखना, हाथ उठाना, हँथलपक होना, हाथ चलाना।

---

१. 'सिर' के स्थान पर विकल्प से 'माथा' का भी व्यवहार होता है।

२. माथा फिरना।

३. माथा चकराना।

४, ओठ' के स्थान पर मगही में 'ठोर' का प्रयोग होता है।

छाती—छाती जलना, छाती दरकना, छाती पर मूँग दलना, छाती के बोझ होना, छाती पर सवार होना, छाती धक-धक करना।

करेजा[1]—करेजा मसोसना, करेजा मसकना, करेजा खिखोरना, करेजा पर कोदो दरना, करेजा पर दाल दरना, करेजा फक-फक करना, करेजा हकर-हकर करना, करेजा हिलना, करेजा हुलसना, करेजा बैठना, पत्थल करेजा होना।

मन—मन मिलना, मन फटना, मन रहना, मन मे लड्डू खाना, मन का होना, मन टटोलना, मन मे बसना।

पेट—पेट डेंगाना, पेट फूलना या ढीढ़ा फूलना, पेट में बात न पचना, पेट चलना, दाई से पेट या ढीढ़ा छिपाना, पेट में छुरी भोंकना।

कोख—कोख भरना, कोख में आँच आना, कोख जली होना, कोख के भाग होना।

पाँव या गोर[2]—गोर रोपना, गोर अडाना, गोर पसारना, गोर फैलाना, गोर उठाना, गोर जमना, गोर काँपना, गोर में मेंहदी लगना, संसार के गोर रखना, गोर तोडना।

तरवा[3]—तरवा सहलाना, तरवा चाटना, तरवा खुजलाना या हगुआना, तरवा मे छेद होना, तरवा चलनी होना।

२. मानव-मनोभाव से सम्बद्ध

मगही में मानव की आकृति-प्रकृति, स्वभाव-संस्कार और भाव-मनोभावों से सम्बद्ध मुहावरे विपुल परिमाण मे मिलते है। इनसे व्यक्तित्व के अध्ययन में अच्छी सहायता मिलती है। अँगरेजी में एक कहावत है : Face is the index of mind. अर्थात्, मानव-मुख उसके मन की तालिका होता है। यह कहावत बहुत अंशों में सत्य है। क्रोध में मुखाकृति लाल हो उठती है, नथूने फड़कने लगते हैं, हाथों में जोश भरने लगता है एवं मुट्ठियाँ बँधने लगती हैं। आनन्दोल्लास मे मुखाकृति मृदु-मंजुल हो उठती है, नेत्रों से आनन्द-रस की वृष्टि होने लगती है। उद्वेग, आवेश, भय, विस्मय, घृणा आदि की अवस्था मे मुखाकृति विकृत हो उठती है। इस प्रकार, मानव-हृदय मे अनन्त भाव-तरंगें उठती हैं, जिनकी झलक मानव-मुख पर सहज ही देखी जा सकती है। बहुत-से मनोभाव मानव-हृदय में छिपकर और रहस्य बनकर ही रह जाते हैं। इन मनोभावों एवं भावात्मक प्रतिक्रियाओं को सशक्तता से सम्प्रेपित करनेवाले कुछेक मगही-मुहावरे नीचे दिये जाते हैं—

लाल-पीला होना, आह निकलना, करेजा मसकना, बाल खडा होना, मुँह ताकना, मुँह ऐंठना, दाँत देखाना, दाँत निपोरना, मोछ ऐंठना, सिहो-सिहो करना, उतान होके चलना, कठदलेली करना, करेजा खिखोरना, करेजा पर कोदो दरना, करेजा पर दाल

१. कलेजा।

२. मगही में 'पाँव' के लिए 'पैर', 'गोर' और 'टाँग' का भी व्यवहार होता है।

३. मगही में 'तलवा' के स्थान पर 'तरवा' का भी व्यवहार होता है।

दरना, करेजा फक-फक करना, करेजा हकर-हकर करना, कोठी में मूड़ी छिपाना, थेथर-दलेली करना, दीदा के पानी ढरकना, नानी मरना, बंस मे लेढ़ा लगाना, बनखुड़की देखाना, बोकनारी के काम करना, मध झरना, मुँह में लेवा लगाना, मोती झरना, रड़घौच करना, राँड़ी-बेटवारी करना, रेका-तोकी करना, लंगट छाव लाना, लंगट बोकारी कराना, लाल वनल रहना, लात्रा-फरहीं होना, लावा-धक्का न रखना, लास फूस न रखना, लुस-फुसायल चलना, हहास करना, हियाव होना, लहालोट होना, लोटपोट देना, हॉफे-फॉफे आना, हीक भरना, लाग-फॉस होना, रुसल-कोहागल होना, रट के सट जाना, सिहरी फटना, मटकी मारना, कठदलेली करना, कट्टीस करना, औरी-बौरी करना, ओरखन देना, उसकुन काढ़ना, उलट के धाग बाँधना, उतान होके चलना, उक्खी-बिक्खी होना, अरमेरा करना, अतहतह करना, कुत्ता काटना, कौआ-काँठी करना, कान न देना, खटवास-पटवास लेना, खोपसन देना, घोघना फूलना, छह-पॉच मे पडना, जट्टा काटना, झिक्का-तोरी करना, टर्रो होना, टाटी लगाना, टुकुर-टुकुर देखना, टुभुर-टुभुर बोलना, ठनगन करना, नुखुस निकालना, फीफीहा होना, फूल झरना, फूल के बारा होना, बह भर देना, बाह न होना।

३. घर-गृहस्थी-सम्बन्धी

मानव-जीवन परिवार में ही पुष्पित-पल्लवित होता है, इसीलिए उसके घर-गृहस्थी-सम्बन्धी मुहावरो पर पारिवारिक अनुभवों की छाप रहती है ! अपने जीवन-निर्वाह के लिए जिन आवश्यक उपकरणों एवं साधनों को वह व्यवहार मे लाता है, उसके वाग्व्यवहार पर उनका स्पष्ट प्रभाव दिखाई पड़ता है। वह अपने भावो को प्रकट करने के लिए प्रायः अपने आसपास के वातावरण से ही शब्दो को ढूँढ़ता है। मगही मे प्रचलित इस वर्ग के मुहावरो को निम्नाकित उपवर्गों मे प्रस्तुत किया जा सकता है—

क. घर-गृहस्थी के सामानो से सम्बद्ध मुहावरे।

ख. महल, सामान्य घर और झोपड़ी से सम्बद्ध मुहावरे।

ग. घर-गृहस्थी मे काम आनेवाले फर्नीचर तथा अन्य वस्तुओं से सम्बद्ध मुहावरे।

घ. लोहार, बढ़ई, सोनार, रँगरेज, धुनिया, हजाम, धोबी आदि घरेलू उद्योग-धन्धोंवाली जातियों के व्यवसाय से सम्बद्ध मुहावरे।

(क) घर-गृहस्थी—रसोईघर, बरतन और अन्य सामानों से सम्बद्ध मुहावरे :

आग लगाकर तमासा देखना, आँच न आना, आधा पेट उठना, ओखरी में सिर देना, कच्चा रसोई खाना, कच्ची-पक्की खिलाना, कढ़ाई चढ़ाना, खा-पका डालना, खिचड़ी पकाना, गाढ़ी छनना, घोर-मट्ठा करना, चटनी होना, चिनगारी छोड़ना, चित्ती पड़ना, चिलम चढ़ाना, चिलम भरना, चुल्हा-चक्की करना, चुल्हा ठण्ढा होना, दाल गलना, दाल-रोटी से खुश होना, दिल से धुँआ उठना, निमक के सरियत देना, टाट बैठाना, ठौर लगाना, झीका देना, नून-तेल लगाना, नून-मिरचाई लगाना, पॉचो अंगुली घी मे पड़ना, सत्तू बाँध के पीछे पडना, सटक जाना, हाँड़ी मे छेद करना, जौन थाली

मे खाये, ओही में छेद करना, हुक्का-पानी बन्द करना, डगरा के बैगन होना, बेपेंदी के लोटा होना, सखरी करना, एक से दू करना।

(ख) महल, सामान्य घर और झोपड़ी से सम्बद्ध मुहावरे :

राजा घर होना, राजा के अटारी होना, घर बसना, घर बसाना, घर उठाना, घर भरना, चुन्ना फेराना, जी मे घर करना, डेरा डालना, डेरा उखाड़ना, झोपड़ी डालना, ड्योढ़ी न झाँकना, नेंव देना, देवार उठाना, लीप-पोत करना, चौका-चनन करना, भीत बनाना, बिना भीत के तसवीर बनाना।

(ग) घर-गृहस्थी के फर्नीचर तथा अन्य वस्तुओं से सम्बद्ध मुहावरे :

अरगनी बाँधना, आइना होना, खटिया तोड़ना, खटिया पर पड़ल खाना, खाट से सटना, चिराग-बत्ती करना, संझा देखाना, सँझौती देखाना, चिराग-गुल करना, सिकहर टूटना, चलनी कर डालना, ताले में रखना, पलंग से पैर न उतारना, झाँडा फूट जाना, बेपेंदी का लोटा होना, मचिया पर बैठना, चकरी चलाना, ढेकी कूटना, फूलकर बारा होना, कुरसी देना।

(घ) लोहार, बढ़ई, सोनार, रँगरेज, धुनिया, हजाम, धोबी आदि घरेलू-धन्धों-वाली जातियों के व्यवसाय से सम्बद्ध मुहावरे :

खराद पर चढ़ाना, खराद करना, सान चढ़ाना, सान देना।

आड़ी चलाना, बारनिस करना, पोटीन भरना, बरमा से छेदना, गुजिया देना, चाँदी-सोना से गहना गढ़ना, जिला करना, पहल करना, चमक-दमक लाना, मोती पिरोना।

रंग चढ़ाना, कलफ देना, अबरख देना, रंग जमाना, रुई नियर धुनना, रुई नियर तुनना।

उल्टा उस्तुरा से मुडना, हजामत बनाना, नहरनी से मट्टी कोडना।

धोबी का गदहा होना, नील देना, पाट पर कपड़ा पीटना, कपड़ा तहियाना।

४. सामाजिक परम्पराएँ, संस्कार और प्रथा-सम्बन्धी

हमारा समाज स्वतन्त्र व्यक्तियों की एक व्यवस्थित माला-सा है। इसमें सामाजिक रीति-रिवाज, आचार-विचार, पर्व-त्योहार, लोकाचार-लोकव्यवहार आदि वे तन्तु है, जो समाज को चिरकाल से संगठित बनाते चले आ रहे हैं। जिस प्रकार माला का प्रत्येक मोती एक ही सूत्र में स्यूत होता है और उसी के रंग में रँगा-सा रहता है, उसी प्रकार समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपने रीति-रिवाज, धार्मिक आस्था, प्रथा, आचार-व्यवहार आदि के समवाय में इतना घुल-मिल जाता है कि वह इनसे अलग अपने अस्तित्व का अनुभव ही नहीं कर पाता। यही कारण है कि वह अपने मनोभावों को स्पष्ट और ओजःपूर्ण शैली मे व्यक्त करने के लिए इन्हीं रीति-रिवाजों, आस्थाओं, प्रथाओं, आचारों-व्यवहारों आदि से शक्ति संचय करता है। इस उद्देश्य की सिद्धि इनसे सम्बद्ध मुहावरों के प्रयोग से होती है। मगही-क्षेत्र में प्रचलित इस वर्ग के मुहावरों के कुछ उदाहरण निम्नांकित उपवर्गों मे दिये जा सकते हैं—

क. सामान्य सामाजिक व्यवस्था, लोकाचार, नाते-रिश्ते आदि से सम्बद्ध ।
ख. धार्मिक आस्था, तीज-त्योहार, व्रत-पूजा, साधु-सन्त आदि से सम्बद्ध ।
ग. विवाह-शादी, दान-दहेज, शृंगार-प्रसाधन, पति-पत्नी-सम्बन्ध, प्रजनन, शिशुपालन आदि से सम्बद्ध ।
घ. विविध जातियों की विशेपताओं के अभिव्यंजक ।
ङ. सामाजिक व्यवस्था में अव्यवस्था लानेवाले दुर्जनों से सम्बद्ध ।
च. मृतक-संस्कार तथा तत्सम्बन्धी अन्य विधानों से सम्बद्ध ।

(क) सामान्य सामाजिक व्यवस्था, लोकाचार, नाते-रिश्ते आदि से सम्बद्ध मुहावरे :

आसरा देना या ताकना, अगुआनी करना, बखसीस देना, गडल मुरदा उखाड़ना, टहल करना, टिकट कटाना, धरमादे खाते होना, मुँह काला करना, मोंछ पर ताव देना, लोक-लाज रखना, साया देना, खानदानी होना, चद्दर उतारना, गोर पर टोपी रखना, टोपी-बदल भाई होना, दूर से सलाम करना, नानी इयाद आना, नानी मरना, परदा करना, परदा रखना, बाप-दादा के नाम बुड़ाना, बाप बनाना, बिरादरी से बाहर होना, बीड़ा डालना, बीड़ा उठाना, बेटी-रोटी करना, मेहमानी करना, साँझ-बिहान करना, विद्त होना, हुक्का-पानी बन्द करना, हेठार में पड़ना, खिस्सा झरना, गंगन होना, गँजोटा होना, गाहे-बेगाहे आना, घमलौर लगाना, जमात के करामात होना, तरिझार करना, तिक्खिड़-बिक्खिड़ होना, फटफुट होना ।

(ख) धार्मिक आस्था, तीज-त्योहार, व्रत-पूजा, साधु-सन्त आदि से सम्बद्ध मुहावरे :

घण्ट-घड़ियाल बजाना, राम-राम करना, रोजा खोलना, संकल्प छोड़ना, सिराघर होना, उदापन करना, परनाम करना, तिरसूल रखना, अगरासन काढ़ना, अरदसिया लगाना, गोड़ धोके पीना, चौका-चनन करना, पंढार करना, चरन छूना, सँझौती देखाना, खरजितिया करना, तीज करना, गोधन करना, त्योहार करना, परब करना, सौगात भेजना, फगुआ खेलना, होरी खेलना, होरी खेलाना, धुरखेली खेलना, मुहर्रमी पैदाइस होना, धुनी रमाना, निसान देना, निसान खड़ा करना, फकीर होना, फक्कड़ होना, भभूत रमाना, मूँड़ मुड़ाना, दिवाली मनाना, झोरी भरना, झोरी डालना ।

(ग) विवाह-शादी, दान-दहेज, शृंगार-प्रसाधन, पति-पत्नी-सम्बन्ध, प्रजनन, शिशुपालन आदि से सम्बद्ध :

मड़वा छाना, हाड़ में हरदी लगाना, चमुक जलाना, इमली घोंटना, घीढारी करना, आम-महुआ बिआहना, चूँटी-पिपरी न्योतना, नछुआ करना, परिछन करना, चौठारी करना, गाँठ जोड़ना, गौना करना, बिदागी करना, घर भरना, मुँह-देखाई करना, पैर-पूजी करना, सगुन चढ़ाना, दहेज मिलना, गीत नाधना, गीत उठाना, सिर पर सेहरा चढ़ाना, दहेज मिलना, मौर बाँधना, सुहागरात होना, सेंदुर चढ़ाना, हाथ पीला होना, काजर करना, मेंहदी लगाकर बैठना, ताग-पाक का ढोलना पहेनना, बिछिया पहेनना, अंगूठी बदलना, गल्ला के हार होना, चूड़ी पहेनना, चोटी करना, जनम-जनम

के नाता होना, चोली-दामन के साथ होना, जूड़ा के फूल होना, घूँघट उठाना, जनम-साथी होना, माँग भरना, संसारी होना।

थाली बजाना, गोद खेलाना, गोदी भरल रहना, दूध-पीता बच्चा होना, दाई से पेट छिपाना, नौबत बजाना, बधाई देना, बच्चा जनना, औरत के दिन चढ़ाना, पैर भारी होना, गोद लेना।

(घ) विविध जातियों की विशेषताओं के व्यंजक :

कण्टाहा होना[१], चौबे जी होना[२], तेली होना[३], गोआर होना[४], कोल्हू का बैल होना[५], बाभन होना[६], कोयरी के देओता[७]।

(ङ) सामाजिक व्यवस्था में अव्यवस्था लानेवाले दुर्जनों से सम्बद्ध :

उठायगिरा होना, गिरहकट होना, चोर लगना, चूहा लगना, छिछोरा होना, जेब तरासना, छापा मारना, नथनी उतारना, रखेल होना, लुटेरा होना, जेबकट होना, पत बिगाड़ना, सत बिगाड़ना, सेंध मारना।

(च) मृत-संस्कारादि से सम्बद्ध :

मुर्दा होना, रन्थी सजाना, रन्थी पर रखना, कफन देना, चिता बुनना, चिता पर रखना, चिता सुलगाना, आग देना, चूड़ी फोड़ना, सेंदूर मिटाना, तिरितिया करना, तेरही करना, पानीदेवा न नामलेवा होना, पिण्ड-पानी देना, पिण्ड छोड़ना, फूल चुनना, सराध करना, बराहमन-भोज कराना।

५. प्रकृति और कृषि-सम्बन्धी

भारतवर्ष सर्वदा कृषि-प्रधान देश रहा है। एक कृषक अपने जीवन के जितने दिन अपने झोंपड़े में बिताता है, उससे अधिक खेतों और खलिहानों में। उसके जीवन का सम्पूर्ण सुख प्रकृति की कृपा पर ही आश्रित रहता है। कृषक के लिए पुरवा-पछुवा हवा ही मौसम का ज्ञान करानेवाला बैरोमीटर है। ध्रुवतारा, शुक्र, मंगल, सप्तर्षि आदि आकाश के ग्रहों के द्वारा ही वह 'घड़ी' का ज्ञान प्राप्त करता है। प्रकृति के चप्पे-चप्पे की जानकारी उसके मुख पर विराजती रहती है। यही कारण है कि मगही में प्रकृति एवं कृषि-सम्बन्धी अनन्त मुहावरे उपलब्ध होते हैं। यथा—

असमान में उड़ना, तारा गिनना, मीन-मेख निकलना, रासी बैठाना, सनिच्चर सवार होना, भाग चमकना, दीया बुझाना, राहु गरसना, गरह खराब होना, गहन-

१. भोजनभट्ट होना।
२. भोजनभट्ट होना।
३. सूम होना।
४. मूर्ख होना।
५. मूर्ख होना।
६. धूर्त्त होना।
७. सीधा और शान्त होना।

लगुआ होना, अन्धर के आम होना, खेत मरना, कद्दू-ककरी होना, गुल खिलना, गुल्लर के फूल होना, घास-फूस समझना, छाँह में बैठना, जंगल में मंगल होना, जड़ खोदना, जड़ जमना, जड़ पकड़ना, टपकल आम होना, डाल का चूका होना, फूल लोढ़ना, हर चलना, चौठ के चाँद देखना, तुफान में फँसना, झपसी लगना, आँधी-पानी आना, ओला पड़ना, पत्थर पड़ना, दाँत किटकिटाना, लू लगना, सूरज ढलना, सूरज पर धूल फेंकना, चौराहा देना, करहा धुराना, टिड्डी बैठना।

६. पशु-पक्षी-सम्बन्धी

मानव-प्रकृति का सुन्दरतम पुष्प है। उसका साहचर्य प्रकृति के अन्य जीव-जन्तुओं से किसी-न-किसी रूप मे रहता ही है। घर के पिंजड़े में बन्द तोते, मैने, तीतर, कोयल आदि उसे अनुरंजित करते हैं। गोमाता अपने दुग्ध से उसका पोषण करती है। बैल कृषि के अनिवार्य अंग है। जंगल मे जाकर शेर-चीते का शिकार करके वह अपने वीरत्व की व्यावहारिक अनुभूति प्राप्त करता है। इतना ही नहीं, कीट-पतंगों, जल-जन्तुओं आदि के गुणों-अवगुणों की भी उसे विस्तृत जानकारी रहती है और उनकी सहायता से वह अपने विभिन्न मनोभावों एवं भावात्मक प्रतिक्रियाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। इस वर्ग के कतिपय मगही मुहावरे ये हैं—

केकड़ा के चाल चलना, कुइयाँ के मेंढक होना, जोंक होना, मछली बझाना, जानवर के अंकुस देना, कुत्ता काटना, घोड़ा बेचकर सोना, बैल होना, दुम हिलाना, दुधार गाय होना, नकेल पहनाना, बधिया करना, भींगल बिल्ली होना, बकरा चढ़ाना, गीदड़-भभकी देना, घात लगाना, रँगल सियार होना, सिकार हाथ लगना, अण्डा सेना, अण्डा-बच्चा होना, सियार होना, आधा तीतर और आधा बटेर होना, तोता पढ़ाना, बटेर लड़ाना, बाज छोड़ना, बूढ़ा सुग्गा पढ़ाना, आस्तीन का साँप होना, कलेजा पर साँप लोटना, केंचुल बदलना, पेट में चूहा कूदना, छाती पर साँप लोटना, छान-पगहा तोड़ाना, न्योती चरना।

७. प्राचीन कथा-संकेतों से सम्बद्ध

हमारे समाज में मानव-जीवन को सुखी और सफल बनानेवाले सभी साधनों को धर्म के अंग के रूप में स्वीकृत किया गया है। यही कारण है कि हमारी वार्त्ता में प्रायः धार्मिक कथाओं, कथा-संकेतों और किंवदन्तियों का विशेष हाथ रहता है। मुहावरे भी इस प्रभाव से वंचित नहीं हैं। उदाहरणार्थ—

मिट्टी में मिल जाना[१], रामबान होना[२], औतारी पुरुष होना[३], आसन डोलना[४],

---

१. मर जाना। हिन्दुओं का विश्वास है कि शरीर मिट्टी का बना है, अन्त में उसी में मिल जाता है।

२. अचूक प्रभाववाला होना। राम के बाण का सन्धान कभी व्यर्थ नहीं जाता था।

३. जब-जब धर्म का क्षय होता है, ईश्वर अवतार लेते है :
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽत्मानं सृजाम्यहम्॥ (गी० ४।७)

४. ऋषियों की अपूर्व तपस्या से इन्द्र का सिंहासन डोल जाता था अथवा अप्सरा के नृत्य से ऋषियों का आसन डोल जाता था।

कर्म का फल पाना[1], कण्ठी देना[2], गंगा जल देना[3], चनाइमरित लेना[4], चोला छोड़ना[5], चौउठी के चान देखना[6], चौरासी के चक्कर खाना[7], नरक का कीड़ा होना[8], नारद मुनि होना,[9] जमलोक देखाना[10], राम-लखन के जोड़ी होना[11], सीता के घेरा खींचना[12], बिधना के अक्खर होना[13], श्रीगनेस करना[14], सती सवितरी होना[15], सत के सीता होना[16], सीता के सत परीच्छा होना[17], राम होना[18]।

८. ऐतिहासिक तथ्य-सम्बन्धी

मगही में ऐसे अनेक मुहावरे मिलते हैं, जो ऐतिहासिक तथ्यों पर प्रकाश डालते हैं। यह आवश्यक नहीं कि ये मुहावरे मात्र मगध के इतिहास से ही सम्बद्ध हों। कहने की अपेक्षा नहीं कि कभी मगध का इतिहास ही सारे भारतवर्ष का इतिहास था।[19] इसीलिए, मगही में केवल क्षेत्रीय ऐतिहासिक तथ्यो पर पल्लवित मुहावरे स्थान नहीं पा सके, अपितु उनका आधार व्यापक रहा। यथा—

---

१. हिन्दुओं का विश्वास है कि मनुष्य कर्म के अनुसार फल पाता है। इस सम्बन्ध में हिन्दू-धर्म-शास्त्रों में अनेक कथाएँ आती हैं।

२. वैष्णव धर्म में कण्ठी देने की व्यवस्था है। कण्ठी लेनेवाले शाकाहारी हो जाते है।

३. हिन्दुओं के यहाँ मृत्यु के समय गंगाजल मुख में डाला जाता है। ऐसा जन-विश्वास है कि गंगा-जल मनुष्य के पापों को नष्ट कर देता है।

४. सत्यनारायण भगवान् की कथा के अवसर पर हिन्दू लोग चरणामृत लेते है।

५. शरीर छोड़ना। चोला का अर्थ है—वस्त्र। मनुष्य की आत्मा शरीर को वैसे ही छोड़ती है, जैसे मनुष्य चोला को। गीता में एक श्लोक है—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥ (गीता, अ० २, श्लो० २२)

६. निष्कलंक मनुष्य को कलंक लगना। इस मुहावरे के पीछे एक पौराणिक उपाख्यान है कि एक बार भगवान् कृष्ण ने भाद्रपद मास के शुक्ल-पक्ष की चतुर्थी के चाँद के दर्शन कर लिये थे। फलतः, निर्दोष होने पर भी उनपर मणि चुराने का दोष लगाया गया था।

७. हिन्दुओं का विश्वास है कि मनुष्य अपने कर्म-फल के अनुसार चौरासी योनियों में भटकता है। प्रभु-भक्ति की चरम-सिद्धि से ही संसार के आवागमन-चक्र से मानव मुक्ति पाता है।

८. पापी होना। पापी नरकवासी होता है, ऐसा हिन्दुओं का विश्वास है।

९. इधर का भेद उधर देनेवाला। हिन्दुओं के धर्मशास्त्रों में नारद ऋषि का बार-बार उल्लेख आता है। ये त्रिलोक में भ्रमण करते थे और इधर का भेद उधर पहुँचाते थे।

१०. नरक के दर्शन करना। ११. दो भाइयों में अपूर्व मैत्री होना। कथा सर्व-परिचित है। १२. किसी के लिए विशिष्ट परिधि बनाना। १३. किसी बात का अमिट होना। छठी के दिन विधाता भाग्य-अक्षर लिखते हैं, उसे मिटाया नहीं जा सकता, ऐसा हिन्दुओं का विश्वास है।

१४. शुभारम्भ करना। कथा सर्वज्ञात है। १५. सावित्री-सी पवित्र चरित्र एवं सतीत्व-बलवाली होना।

१६. किसी नारी के सतीत्व की परीक्षा होना।

१७. सती नारी की अग्निपरीक्षा होना।

१८. राम के समान होना।

१९. दे० 'मगध : ऐतिहासिक पीठिका' (इसी ग्रन्थ में)।

हमीर के हठ होना[1], उजबुक होना[2], बुद्ध भगवान होना[3], चण्डाशोक होना[4], अशोक होना[5], मुगल होना[6], काबुलीवाला होना[7], तैमूरलंग होना[8], नादिरशाह होना[9] ।

९. आर्थिक परिस्थिति से सम्बद्ध

इस वर्ग के मुहावरों का सम्बन्ध मगही-जन-जीवन की आर्थिक समृद्धि, विपन्नता, वस्तु-विशेष के आर्थिक अवमूल्यन, आशा-लाभ, पूँजी, अर्थोपार्जन की लालसा एवं दौड़-धूप, आर्थिक प्रलोभन से प्राप्त हीनता, क्रय-विक्रय आदि से है । उदाहरणार्थ—

कंचन बरसना, छप्पर फाड़ के देना, कौड़ी के मोल बिकना, तीन कौड़ी का न होना, खोटा पैसा होना, चाँदी काटना, चॉदी पीटना, टेंट में धन होना, दमड़ी-दमड़ी के मोहताज होना, पैसा-पैसा करना, हाय पैसा करना, पैसा खींचना, रुपया पानी में फेंकना, रुपया के मार लगना, लाल उगलना, सोना उगलना, सोना के घड़ा मिलना, धूरी से सोना बनाना, पेट डेंगाना, बोहनी-बट्टा होना, लाल बनल रहना, भाग चरचराना, संस-बरक्कत न मिलना, हाँथ सकड़ियाना, ठनठन गोपाल होना, मक्खीचूस होना, पेट बाँधना, अँतड़ी कुलकुलाना, गरीबी मे आटा गील होना, ऑटा-दाल के भाव मालूम होना, लू-लू-छू-छू होना ।

१०. राजनीति और कचहरी-कानून आदि से सम्बद्ध

मगही में राजा, प्रजा, राज्य-व्यवस्था, अदालत, कानून आदि से सम्बद्ध अनेक मुहावरे वर्त्तमान हैं । इन्हें दो उपवर्गों में रखा जा सकता है—

१. राजा, प्रजा और राज्य-व्यवस्था से सम्बन्ध रखनेवाले मुहावरे ।

२. अदालत, कानून, पुलिस, तत्सम्बन्धी कार्यों, कागज-पत्रों आदि से सम्बन्ध रखनेवाले मुहावरे ।

१. राजा, प्रजा और राज्य-व्यवस्था से सम्बद्ध मुहावरे :

रामराज होना, काँगरेसी राजा होना, गॉधी बाबा के राज होना, हाकिम होना, कलट्टर होना, हुकुम में रहना, राज में रहना, हरा झण्डा देखाना, लाल झण्डा देखाना,

---

१. रणथम्भौर के महाराज हम्मीरदेव के हठ की ओर संकेत है ।

२. मूर्ख होना । यह शब्द 'उज़्बुक' या 'उजबेक' से व्युत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है : रूस देश-स्थित उज़्बेकिस्तान के निवासी । ये कुछ दिन पहले मुसलमानी धर्म को मानते थे । ये आधुनिक सभ्यता के प्रकाश से पूर्णतः वंचित थे । इसी कारण सम्भवतः रूसवाले इन्हें असभ्य और मूर्ख समझकर उज़्बेक कहते हैं ।

३. साधु प्रकृति का होना ।

४. कलिंग-युद्ध के पूर्व के अशोक के समान निर्मम होना ।

५. दयावान् और धर्मी होना ।

६. कठोरता से रुपये वसूलनेवाला होना ।

७. पाई-पाई ब्याज सधानेवाला होना ।

८. पराजय से न हारनेवाला होना ।

९. नृशंस अत्याचारी होना ।

पिंसिल देना[१], जाँच करना, पड़ताल करना, टकसाल चढ़ना, झण्डा फहिराना, झण्डा गाड़ना, जमानत माँगना, जवाब-तलबी करना, चौकी बैठाना, चुँगली खाना, कागजी घोड़ा दौड़ाना, कागजी हुकुम चलाना, ऊपरी आमदनी करना, अमलदारी होना, अमन-चैन रखना, औरंगजेबी राज होना, अकबरी राज होना।

२. अदालत, कानून, पुलिस, तत्सम्बन्धी कार्यों और कागज-पत्रों से सम्बद्ध मुहावरे :

अदालत करना, कचहरी बैठाना, इजलास करना, कचहरी चढ़ना, डिगरी होना, कानून छाँटना, कानून तोड़ना, कुर्की करना, कैद करना, जब्ती में आना, जिरह करना, जेहल[२] के हवा खाना, जेहल काटना, डिगरी जारी कराना, डुगडुगी पिटाना, दावा-खारिज होना, नियाय[३] के भीख माँगना, पकड़-धकड़ होना, पक्का रसीद देना, फरार होना, फाँसी चढ़ना, मियाद पूरा होना, हिरासत में लेना, कागज के राज होना, काम-कागज मे लटकना, तूती बोलना।

११. कला-शिक्षा-व्यापार आदि से सम्बद्ध

मगही में अनेक मुहावरों का उद्‌भव कलाओं, विशेषकर ललित कलाओं, यथा नृत्य, संगीत, चित्रकला इत्यादि, पठन-पाठन तथा व्यापार आदि से सम्बद्ध भावना, व्यापारों एवं तद्‌गत प्रतिक्रियाओं से हुआ है। इन्हे निम्नाकित तीन उपवर्गों में प्रस्तुत किया जा सकता है :

१. कलाओं से सम्बद्ध।
२. पठन-पाठन, इतिहास-भूगोल आदि से सम्बद्ध।
३. व्यापार से सम्बद्ध।

१. कला-सम्बन्धी मुहावरे :

अप्पन राग गाना, अप्पन अलपना[४], आँख नचाना, आवाज बैठना, अप्पन ढोल अलगे बजाना, अंगुली नचाना, अंगुली पर नाचना, खटराग फैलाना, बेसुरा राग छोड़ना, गीत रेघाना, गीत नाधना, गीत उठाना[५], घुँघरू बाँधना, तसबीर उतारना, चेहरा-मोहरा बदलना, चेहरा बिगड़ना, चैन के बंसी बजाना, छम-छम करना, छमक्को बीबी बनना, ठेका भरना, ढोल पीटना, तान भरना, तान मारना बेताल होना, थाप देना, नाच नचाना, परदा उठना, परदा के आड़ में सिकार खेलना, मल्हार गाना, रतजग्गा करना, जगौनी गाना, राग अलपना, राग छेड़ना, रास करना, साज मिलाना, साज छेड़ना, समाग[६] बनाना, समांग होना, सुर में सुर मिलाना, समांग[७] काम देना।

---

१. पेंशन देना।
२. जेल।
३. न्याय।
४. अलापना।
५. गीत आरम्भ करना।
६. स्वांग।
७. देह।

२. पठन-पाठन, इतिहास-भूगोल आदि से सम्बद्ध मुहावरे :

अक्खड़[1] घोटना, किताब के कीड़ा होना, खिस्सा झरना,[2] खबर उड़ना, खबर रखना, गप्प उड़ाना, चुटकुला छोड़ना, तुक जोड़ना, तुकबन्दी करना, दुनियाँ गोल होना, नाम चढ़ाना, पहेली बुझाना, पोथी बाँचना, पतरा[3] बुझाना, पुछते-पुछते कलकत्ता पहुँच जाना, फारसी मे बतियाना, बस्ता बाँधना, सबक देना, भीम होना, राना परताप[4] होना, राजा भोज होना, कालिदास होना।

३. व्यापार-सम्बन्धी मुहावरे :

दुकान बढ़ाना, रोजगार बढ़ाना, बाहरी माल मँगाना, माल बेचना, सौदागरी करना, दलाली करना, फाटका करना, सैंतवन करना[5]।

१२. खेल-कूद-सम्बन्धी

खेल-तमाशों, अखाड़ों, पहलवानी, कुश्ती, युद्ध आदि से सम्बद्ध अनेक मुहावरे मगही-भाषा में प्रचलित हैं। अपनी सार्थकता, सरलता और भाव-गम्भीरता के कारण इन मुहावरों ने मगही-साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान ही बना लिया है। यथा—

गोटी जमाना, गोटी लाल होना, कच्ची गोटी न खेलना, पासा फेंकना, सतरंजी चाल चलना, गुड़िया के खेल समझना, गुड्डी उड़ाना, आँखमिचौनी खेलना, दंगल में पछाड़ना, टाँग अड़ाना, दाँव पर लगाना, पेंग मारना, पतंग काटना, अखाड़ा जमाना, अखाड़ा में उतरना, अस्तीन चढ़ाना, हड्डी-पसली एक करना, दाँव-पेच खेलना, हाथा-पाई होना, पैंतरा बदलना, लँगोट कसना, चित्त करना, ओस्तादी हाथ चलाना।

१३. हास्य-व्यंग्य-सम्बन्धी

मगही में हास्य-व्यंग्यात्मक मुहावरो का विपुल भाण्डार है। हास्यरसात्मक मुहावरे लोगों का मनोरंजन करते हैं, हँसा-हँसाकर पेट में बल ला देते हैं। इसके विपरीत व्यंग्यात्मक मुहावरे कलेजे में तीर चुभो देते हैं। इन मुहावरों की अभिव्यंजना इतनी शक्तिशाली होती है कि वे वांछित प्रभाव डाले विना नहीं रह सकते।

१. हास्यरसात्मक :

बगुला भगत होना[6], हाथ सुमरनी, बगल कतरनी होना[7], अकेला घर में छकेला करना[8], मुँह चिकनी होना[9], घोघना फुलाना, चौका पुरना, बनरघुड़की दिखाना।

---

१. अक्षर।
२. किस्सा का कोश समाप्त होना।
३. पत्रा।
४. राणा प्रताप।
५. अनाज का संग्रह करना।
६. झूठी भक्ति का दावा करना।
७. धोखेबाज होना।
८. अकेले रहकर मौज करना।
९. मीठी बातें करनेवाली।

२. व्यंग्यात्मक :

गड़ल मुरदा उखाड़ना[१], कोल्हू के बैल होना[२], कानून छाँटना[३], बिख बोकरना[४], नून-तेल लगाना, मिट्ठा माहुर होना, मुँह में लेवा लगाना, रँड़घोंच करना।

१४. आशीर्वाद-सम्बन्धी

मगही में ऐसे बहुत मुहावरे वर्त्तमान हैं, जो आशीर्वचन के रूप में काम आते हैं। यथा—

दूधे-पूते बनल रहना, अहिवात रहना, गोदी भरल रहना, जीउ हरा रहना, जान-जुआनी से बनल रहना, कलेजा जुड़ायल रहना, माँग हरा रहना, सदा सोहागिन रहना, धन-सम्पत्ति से बढ़ल रहना, लखिया होना, बिरधी होना, मुँह में घी-सक्कर पड़ना, हाड़ में हड़दी लगाना, भाग चरचराना, लाल बनल रहना, माथा पर पगड़ी बाँधना, संस-बरक्कत मिलना, देह-समाग काम आना।

१५. शकुन-विचार से सम्बद्ध

किसी कार्य के करने में शुभाशुभ अपने विचार मनुष्य-संस्कारों से प्रेरित होकर करता है। मगही जन-जीवन भी स्वाभाविक रूप से इन संस्कारगत प्रेरणाओं के वशीभूत है। किस तिथि को कौन कार्य मंगलकारी है, कहाँ की यात्रा सुखद है आदि धारणाओं से प्रेरित होकर उसके बहुत-सारे कार्य होते हैं। यथा—

जतरा पर भरल घड़ा देखना[५], मछली देखना[६], दही देखना[७], दही के टीका लगाना[८], टोटका करना[९], तरवा खुजलाना या हगुआना[१०], राई-नोन निहुछना[११], नजर लगना[१२], टोक लगना[१३], जोग करना[१४], सगुन खराब होना, सगुन बेस होना, रात मे कुत्ता रोना[१५], बिल्ली के राह काटना[१६], छींक पड़ना[१७], कउवा बोलना[१८], उल्लू

---

१. बीती बातें दुहराना।
२. दूसरों की इच्छा पर मूर्खतापूर्वक कार्य करना; इसमे मंदबुद्धिता पर व्यंग्य है।
३. निरर्थक कानून की बातें करना
४. जहरीली बातें उगलना।
५—८. ये शुभ शकुन माने जाते है।
९. बुरे शकुन छुड़ाने का यत्न करना।
१०. पुरुष का दाहिना और स्त्री का बायाँ तलवा खुजलाना शुभ शकुन का द्योतक होता है।
११. बुरे शकुन छुड़ाने का यत्न करना।
१२. किसी की कुदृष्टि या टोक से अशुभ होना।
१३. किसी की कुदृष्टि या टोक से अशुभ होना।
१४. जादू करना।
१५—१७. ये अशुभ शकुन माने जाते है।
१८. किसी प्रिय जन के आगमन की सूचना मिलना।

बोलना[1], काग बोलना[2], आँख फरकना[3], निलकण्ठ पंछी के दरसन करना[4], भोरे बन्दर के मुँह देखना[5], उतार-पुतार के फेंकना[6], बद्धी पहेनना[7], काजर के टीका लगाना[8], मिरचाई निहुछना[9], काना के जतरा पर दरसन न करना[10], बाँह फरकना[11], जाँघ फरकना[12]।

१६. भूत-प्रेत से सम्बद्ध

मगह-क्षेत्र की जनता रूढ़ियों और अन्धविश्वासों से मुक्त नहीं है। यथा—भूत, डाइन, जोग, टोना, टोटका, झाड़-फूँक आदि ऐसे तत्त्व हैं, जिनसे सम्बद्ध मुहावरों के माध्यम से उसके भय और अन्धविश्वास की व्यंजना होती है—

भूत के उद्धम मचाना, औघड़पन करना, ओझा से झड़ाना, भूत खेलाना, भूत झडाना, देह पर देओता आना, कटोरा चलाना, पढ़कर बूँटी खिलाना, जादू से मत मारना, चेला मुरना, टोना-टोका करना, फूँक मारना, भूत उतारना, मसान जगाना, चुड़ैल लगना, राकस आना।

१७. विभिन्न रोग-उपचार-सम्बन्धी

मगही में विभिन्न रोगो, उनके उपचार और औषधियों तथा शरीरविज्ञान आदि से सम्बद्ध मुहावरों की संख्या अनन्त है। जैसे—

अंग टूटना, देह जलना, अंग फड़कना, देह में ऐंठन होना, हूल बड़ना, कलकल होना, रतौंधी होना, छुतहा रोग होना, अगिनवाय होना, सूल पड़ना, अगिनबाय निकलना, जहर उगलना, टीस मारना।

नुसखा बताना, पथ मिलना, सिकायत दूर करना, खाज मिटाना, घाव भर जाना, चंगा होना, समांग में घुन लगना, लार-पोर होना, रस्सी छूना, बिक्ख होना, चन्दन लगना, नाड़ी छोड़ना।

१८. कथा-कहानी से सम्बद्ध

इस भाषा में बहुत मुहावरे ऐसे हैं, जो किसी-न-किसी कथा या कहानी से

१. घर उजाड़ होना।
२. किसी की मृत्यु की सूचना मिलना।
३. पुरुष का दाहिना और स्त्री का बायाँ नेत्र फड़कना शुभ शकुन का द्योतक है।
४. मंगलसूचक शकुन होना।
५. दिन-भर भोजन नहीं मिलना।
६. बुरे शकुन उतारकर फेंकना।
७. पूजा में देवता पर चढाये गये लाल धागे की लड़ी पहनना।
८. नजर न लगे, इसका यत्न करना।
९. लगी हुई नजर छुड़ाने का यत्न करना।
१०. यात्रा पर काने को देखना अशुभ शकुन का द्योतक होता है।
११. बाँह फड़कना लाभ होने की सूचना देता है। पुरुष की दाहिनी बाँह एवं नारी की बाईं बाँह का फड़कना शुभ माना जाता है। विपरीत स्थिति में अशुभ की सूचना मिलती है।
१२. प्रिय के आगमन की सूचना मिलना।

सम्बद्ध हैं। यों तो मुहावरों के उद्भव के पीछे किसी-न-किसी सुनिश्चित घटना या कथा-प्रसंग का हाथ रहता है, फिर भी ये घटनाएँ या कथा-प्रसंग इतने गौण हो जाते हैं कि मुहावरों का व्यवहार करते समय इनका स्मरण तक नहीं आता। परन्तु, कुछ मुहावरे ऐसे घटना-प्रसंगो एवं कथा-कहानियों पर आधृत हैं कि मुहावरे का प्रयोग करते ही वे प्रसंग नेत्रों के सम्मुख नाच उठते हैं। यथा—

चौबेजी होना[1], कण्टाहा ब्राह्मण होना[2], खटकिन होना[3], देह पर चुड़ैल आना[4], गुल्लर के फूल होना[5], डपोरशंख होना, अंगूर खट्टे होना, अन्धे के हाथ बटेर लगना, गले में ढोल डालकर पीटना, जड़ में मट्ठा देना, अढ़ाई दिन के बादशाह होना, बन्दर-बाँट होना, भीगी बिल्ली बनना, मक्खीचूस होना, मार-मार के हकीम बनाना, लकीर का फकीर होना, शेखचिल्ली होना, सोना के अंडा देना, त्रिसंकु रहना, धन्ना सेठ होना, पंच-परमेसर होना, काला कउआ खाना, जलते आग मे घी डालना, दीवार में चुनना।

---

१. भोजनभट्ट होना।

२. भोजनभट्ट और लालची होना। कण्टाहा ब्राह्मण मृतक-श्राद्ध में दान-दक्षिणा लेते है।

३. झगड़ालू होना। खटकिन जाति की स्त्रियाँ तरकारी बेचती है। ये बडे कडे स्वभाव की होती है।

४. असंयत व्यवहार करना। कहा जाता है कि जो स्त्री अकालमृत्यु से, अपूर्ण आकांक्षा लेकर मर जाती है, वह चुड़ैल का रूप धारण कर लोगो के शरीर पर आती है। ऐसी स्थिति मे आदमी के अंग ऐंठने लगते है, आँखें लाल हो जाती है तथा मुखाकृति विकृत हो जाती है। जब कोई मनुष्य क्रोध के वशीभूत होकर असंयत व्यवहार करने लगता है, तब व्यंग्य से इस मुहावरे का उसके लिए व्यवहार किया जाता है।

५. किसी मनुष्य का दुर्लभ होना। ऐसा जन-विश्वास है कि गूलर के फूल को कोई नही देखता। जो देख लेता है, वह धन-धान्य से भरा रहता है। जब कोई व्यक्ति दिखाई नहीं पड़ता, तब 'गूलर का फूल' कहकर उसपर व्यंग्य किया जाता है।

पहेलियाँ

३. मगही-पहेलियाँ[1]

उद्‌भव

'राग' एवं 'कौतुकप्रियता' मानव-मन की प्रधान वृत्तियाँ हैं। शास्त्रीय दृष्टि-कोण से विचार करने पर पता चलेगा कि शृंगार एवं हास्य रसों के मूल में 'राग-भावना' ही बैठी है। प्रथम में यदि रागभावना का हृदय-प्रधान उदात्त एवं गम्भीर रूप स्पष्ट होता है, तो द्वितीय मे उसका सरल, व्यावहारिक एवं अगम्भीर स्वरूप। इसी तरह 'अद्‌भुत रस' की धारणा के मूल मे कौतुकप्रियता ही सक्रिय है, जिसे आचार्यों ने 'विस्मय' के नाम से पुकारा है। पहेलियों का तात्त्विक विश्लेषण करने पर स्पष्ट होगा कि उनके उद्‌भव के मूल में ये दो प्रधान तत्त्व सक्रिय रहते है, अर्थात् 'मनोरंजन' एवं 'कौतुकप्रियता'।

परम्परा

पहेलियों की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। सम्भवतः, जिस दिन मानव ने होश सँभाला होगा, अपनी उपर्युक्त दोनों वृत्तियों के वशीभूत होकर उसने पहेलियों का आविष्कार किया होगा। जहाँतक लिखित साहित्य का प्रश्न है, वैदिक साहित्य से ही पहेलियों की परम्परा दिखाई पड़ती है। वैदिक युग में ब्रह्मोदय आनुष्ठानिक क्रिया का अंग समझा जाता था। अश्वमेध-यज्ञ में अश्व की बलि के पूर्व 'होतृ' और 'ब्राह्मण' 'ब्रह्मोदय' पूछते थे। उपनिषद्-साहित्य से ऐसे अनेक उदाहरण उद्‌धृत किये जा सकते हैं, जो उच्चकोटि की भाव-सम्पदा से सम्पन्न रहने पर भी स्वरूपतः पहेलियों-जैसे लगते हैं। यथा—

---

१. विभिन्न भाषाओं और बोलियो मे पहेलियों के विभिन्न पर्याय प्रचलित है—

भाषा या बोली	पर्याय
संस्कृत	ब्रह्मोदय, प्रहेलिका, अन्तर्लापिका, बहिर्लापिका
हिन्दी	पहेली, मुकरी, कहमुकरी, बुझौवल
उर्दू	बुझौवल
अँगरेजी	रिड्‌ल (Riddle)
मालवी	पारसी, प्याली, उखाणा
मगही	बुझौवल
भोजपुरी	बुझौवलि
मैथिली	बुझौवल

द्वा सुपर्णाः सयुजाः सखायाः
समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्य-
नश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥
(मुण्डकोपनिषद्, तृतीय मु०, प्र० खं० १)

अर्थात्, दो पक्षी हैं, जो एक साथ रहनेवाले हैं, परस्पर सखाभाव रखते हैं और एक ही वृक्ष का आश्रय लेकर रहते हैं। उनमें एक तो पीपल (वृक्ष) के फल को खा रहा है, पर दूसरा न खाता हुआ केवल देखता है।

इसमे प्रथम पक्षी है—जीवात्मा। द्वितीय है—ब्रह्म। पीपल-वृक्ष है—संसार। उसके फल हैं—सांसारिक भोग।

परवर्त्ती संस्कृत-साहित्य में भी पहेलियाँ बड़ी लोकप्रिय रहीं और न केवल संस्कृत-लोकसाहित्य, अपितु उसके शिष्ट साहित्य में भी उनका महत्त्व स्वीकार किया गया है। उदाहरणार्थ कुछ संस्कृत पहेलियाॅ निम्नांकित है—

१. अपदो दूरगामी च साक्षरो न च पण्डितः।
अमुखः स्फुटवक्ता च यो जानाति स पण्डितः ॥

अर्थात्, 'उसे पैर नहीं होते, फिर भी वह दूर-दूर तक चला जाता है; वह साक्षर होता है, पर पण्डित नहीं होता; उसे मुख नहीं होता, फिर भी वह सारी बाते साफ-साफ कह डालता है—जो उसे जानता है, वह पण्डित है।' इसका उत्तर है—पत्र (चिट्ठी)।

२. काले वारिधराणामपतितया नैव शक्यते स्थातुम्।
उत्कण्ठिताऽसि तरले ? नहि नहि सखि पिच्छिलः पन्थाः ॥

अर्थात्, '(कोई अपनी सखी से कहती है) पावस-ऋृतु में 'अपतितया' ('विना गिरे हुए' अथवा 'विना पति के') रहना असम्भव ही है। (इसपर उसकी सखी पूछती है) चंचले ! क्या पति के लिए उत्कण्ठित हो उठी हो ? (इसपर वह कहती है) ना, ना, सखि। मार्ग बहुत ही पिच्छिल है।'

३. तरुण्यालिङ्गितः कण्ठे नितम्बस्थलमाश्रितः।
गुरूणां सन्निधानेऽपि कः कूजति मुहुर्मुहुः ॥

अर्थात्, 'वह कौन है, जिसके गले मे वह सुन्दरी बाॅहे डाले है, जो उसके नितम्ब-भाग पर विश्राम कर रहा है, और जो गुरुजनों के समक्ष भी बार-बार कूजन करता रहता है ?' इसका उत्तर है—घड़ा (घट)।

उपर्युक्त विभिन्न प्रकार के संस्कृत-उदाहरण 'प्रहेलिका' को व्यापक स्तर पर लेते हुए दिये गये हैं। संस्कृत-पहेलियो की यह परम्परा पालि-साहित्य[1] में भी प्रवहमाण होती दीखती है। यथा, 'महाउम्मग्ग' के इन प्रश्नों को देखा जा सकता है—

हन्ति हत्थेहि पादेहि मुखं च परिसुम्भति।
स वे राजा पियो होति कं तेनमभिपस्ससीति ॥ १ ॥
अक्कोसति यथा कामं आगमं यस्स इच्छति।
स वे राजा पियो होति कं तेनमभिपस्ससीति ॥ २ ॥

१. डॉ० बाबूराम सक्सेना : कहमुकरी की प्राचीन अवस्था (हिन्दु०, भाग १, अं० ४, पृ० ३१७)

अब्भक्खाति अभूतेन अलीकेनमभिसारये ।
स वे राजा पियो होति कं तेनमभिपस्ससीति ॥ ३ ॥
हरं अन्नं च पानं च वत्थसेनासनानि च ।
स वे राजा पियो होति कं तेनमभिपस्ससीति ॥ ४ ॥

अर्थात्, 'वह हाथो और पैरों से मारता है, चेहरे पर भी चोट पहुँचाता है, फिर भी वह प्रिय है—हे राजा! तू उसे क्या समझता है? ॥१॥ वह उसे जी भरकर बुरा-भला कहती है और फिर भी चाहती है कि उसका आगमन होता रहे, कारण वह प्रिय है—हे राजा! तू उसे क्या समझता है? ॥२॥ वह उसपर झूठा आरोप लगाती है और विना कारण ही उसे गाली देती है, फिर भी वह प्रिय है—हे राजा! तू उसे क्या समझता है? ॥३॥ वह खाना खा लेता है, जलपान करता है एवं शय्या और आसन से भी सम्मानित होता है, कारण वह प्रिय है—हे राजा, तू उसे क्या समझता है? ॥४॥'[1]

मगही पहेलियाँ उपर्युक्त परम्परा मे ही है, पर पूर्व-परम्परा जहाँ इनके लिए उपजीव्य रही है, वहाँ मनोरंजन एवं कौतुकप्रिय मगहवासी जन-समुदाय भी इनके भाण्डार को निरन्तर समृद्ध करता रहा है।

महत्त्व

लोक-साहित्य मे पहेलियों को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है; कारण, ये भी लोक-साहित्य के अनिवार्य अंग है। डा० सत्येन्द्र ने 'पहेली' को लोकोक्ति-साहित्य का ही एक अंग माना है। जिस प्रकार लोकोक्तियो में शब्द-संकोच द्वारा अर्थ-विस्तार का तत्त्व वर्त्तमान रहता है, उसी प्रकार पहेलियों मे भी। परन्तु, पहेलियो में वस्तुविशेष के सम्बन्ध में कुछ विशेष सूचनाओं के संकेत भरे रहते है। इनमें वर्ण्य वस्तु के रूप, रंग, गुण और आकार-प्रकार भी सांकेतिक रूप मे ही व्यक्त किये जाते हैं। उन संकेतों को ही आधार बनाकर प्रश्न के उत्तर निकाले जाते हैं। पहेली को लोकोक्ति-साहित्य में अन्तर्भूत करने के लिए डॉ० सत्येन्द्र ने ये तर्क दिये हैं—'पहेली भी लोकोक्ति है।......... लोकोक्ति केवल कहावत ही नहीं है, प्रत्येक प्रकार की उक्ति लोकोक्ति है। इसलिए, पहेली लोकोक्ति है। लोकमानस इसके द्वारा अर्थगौरव की रक्षा करता है और मनोरंजन प्राप्त कराता है। यह बुद्धि-परीक्षा का भी साधन है।......भाव से इसका सम्बन्ध नहीं होता, प्रकृत को गोप्य करने की चेष्टा रहती है, बुद्धि कौशल पर निर्भर करती है।'[2]

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि पहेली का अर्थगौरव, मनोरंजन और बुद्धि-परीक्षा के साधन की दृष्टि से बड़ा महत्त्व है। इसकी सम्पुष्टि अनेक विद्वानों[3] ने की

---

१. म० जातक, छठी जिल्द, पृ० ३७६–३७८।

२. ब्र० लो० सा० अ०, पृ० ५२०

३. (क) पहेलियाँ 'बुद्धि पर सान चढ़ाने का यंत्र' या 'स्मरण-शक्ति और वस्तु-ज्ञान बढ़ाने की कलें' हैं।

—श्रीरामनरेश त्रिपाठी

है। पहेलियो में वर्तमान उपर्युक्त विशेषताओं के कारण ही वैदिक युग से ही उनका आनुष्ठानिक महत्त्व रहा है। भारत की सभी जातियों में पहेलियाँ आनुष्ठानिक क्रिया का अंग रही हैं। संसार के अन्य देशों मे भी इनका कम महत्त्व नहीं रहा है। वस्तुतः मनुष्य स्वभाव से ही बुद्धिचातुर्य दिखाना चाहता है। इसके लिए वह ऐसी रहस्यात्मक भाषा का प्रयोग करता है, जिसे सामान्य व्यक्ति समझ नहीं पाता। यही भाषा पहेली का रूप धारण कर लेती है। इस तथ्य की पुष्टि डॉ० फ्रेजर के निम्नांकित कथन से होती है— "पहेलियाँ उस समय रचित हुई होंगी, जब वक्ता को कुछ कारणों से स्पष्ट शब्दों में अपनी भावाभिव्यंजना करने में किसी प्रकार की बाधा की अनुभूति होती होगी।"[1] पहेलियों के आनुष्ठानिक प्रयोग मे भी इसी बुद्धि-चातुर्य-प्रदर्शन की आकाक्षा दीख पड़ती है। "भारतवर्ष के मूल निवासियों मे मध्यप्रदेश के मंडला जिले के गौंड़ और प्रधान तथा बिरहोर जातियों के विवाह के अनुष्ठानो में पहेली पूछना (बुझाना) एक आवश्यक कार्य माना गया है।"[2] "वैवाहिक अवसरों पर पहेलियों द्वारा परिजनों की बुद्धिपरीक्षा समान रूप से सभी प्रकार की जातियों में विद्यमान है। किन्हीं अंशों मे आर्येतर जातियों में भी इसका प्रचलन था। कालान्तर की आर्येतर जातियों में यह प्रथा उसी तरह विद्यमान थी, जिस प्रकार आर्य-जातियों में।"[3] विवाह के अवसर पर 'बुझौवल बुझाने' की प्रथा मगही-भाषी क्षेत्र मे भी प्रचलित है। विवाह के बाद जब वर-वधू प्रथम बार 'कोहबर-घर' में प्रवेश करने लगते हैं, तो उनकी राह बहनों और भावजों द्वारा रोक ली जाती है। इस कार्य को 'द्वार-छेकाई' कहा जाता है। कोहबर-घर के द्वार पर खड़े वर से 'बुझौवल बुझाया' जाता है। जब वह अपने कुशल उत्तर द्वारा सबको सन्तुष्ट कर देता है, तब कोहबर-घर में प्रवेश पाता है। अन्यथा सभी रमणियाँ

(ख) "ये बुद्धिमापक भी हैं और मनोरंजक भी है।"

—अ० लो० सा० अ०, पृ० ५२०।

(ग) "भोजपुरी में—इन बुझौवलों की मौखिक परम्परा ही प्रचलित है। इनमें उक्ति-वैचित्र्य है। .... पहेलियो में वार्त्तालाप विचित्रता से खाली नहीं।"

—डॉ० उदयनारायण तिवारी : हिन्दुस्तानी, १६४२; भा० १२, अंक २, पृ० २६८।

(घ) "इन पहेलियो में सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति का परिचय मिलता है और देहात के जीवन का विवरण। .... देहात की अधिकांश पहेलियों में चतुरता है, सूक्ष्म दृष्टि हैं और रसात्मक अनुभूति है।"

—श्री रामाज्ञा द्विवेदी : हिन्दु० : भाग २, अंक १, 'अवधी की पहेलियाँ' पृ० २६८।

(ङ) पहेलियाँ वाग्विलास की वस्तु है। ये बुद्धि-परीक्षा के अन्यतम साधन हैं। जिस प्रकार आधुनिक मनोवैज्ञानिक प्रश्नों द्वारा किसी बालक की बुद्धि की माप (Intelligence test) करते है, उसी प्रकार से प्राचीनकाल में मनुष्यों की बुद्धि-परीक्षा के लिए इनकी रचना की गई होगी।"

—लो० सा० भू०, पृ० १६४

१. फ्रेजर-लिखित : दी गोल्डेन बाऊ, भाग ६, पृष्ठ १२१।

२. मैन इन इण्डिया का 'ऐन इण्डियन रिड्ल-बुक', भाग १३, संख्या ४, पृ० ३१६; दिसम्बर १६४३ में बेरियर एलविन तथा डब्ल्यू० जी० आर्चर द्वारा लिखित 'नोट ऑन दी यूज ऑव रिड्ल्स इन इण्डिया।'

३. मौ० लो० सा० : श्री श्याम परमार, पृ० १६४।

वर को मूर्ख बनाकर हँसती हैं। सम्भवतः ऐसी प्रथा वर की बुद्धि-परीक्षा के लिए ही प्रचलित हुई होगी।

कभी-कभी तो महिलाओं की पहेलियों की झड़ी में, अपनी स्मृति पर भरोसा रखनेवाले, अनुभवी और बुद्धिमान जमाई भी हार मान जाते हैं।

उपर्युक्त अध्ययन के परिमाणस्वरूप पहेलियों में निम्नांकित विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं :

१. सूक्ष्म निरीक्षण-शक्ति।
२. बुद्धि-चातुर्य का कलात्मक प्रयोग।
३. मनोरंजन का पुट।
४. ग्रामीण जीवन की झाँकी एवं
५. रसात्मक अनुभूति का संपर्क।

मगही-पहेलियों में भी उपर्युक्त सभी विशेषताएँ वर्त्तमान हैं। दिन-भर के परिश्रम के बाद, रात्रि में भोजनोपरान्त कृषक अपने बाल-गोपाल के साथ ग्राम के चौपाल मे बैठता है। यहाँ मनोरंजन के अन्य साधनों के साथ 'बुझौवल बुझाने' का भी कार्यक्रम चलता है। बुझौवल का क्रम तबतक जारी रहता है, जबतक कोई उसका उत्तर देता जाता है। 'बुझौवल बुझाने' का खेल हार-जीत के खेल-जैसा होता है। जब कोई बुझौवल का उत्तर देने में असमर्थ हो जाता है, तब उसे हारा हुआ समझा जाता है। अपने को बुद्धिमान समझनेवाले लोग भी बुझौवल के कौतूहल-मिश्रित अर्थगौरव के सामने सिर झुका देते हैं। मनोरंजन का यह कार्यक्रम तबतक चलता रहता है, जबतक सभी थककर सो नहीं जाते।

पहेलियों के निर्माता

मगही-भाषा में पहेलियों का विपुल भाण्डार है। परन्तु इनका रचयिता कौन है, इसकी जानकारी अभी नहीं हो सकी है। यह अभी भी शोध का विषय है। श्रीरामनरेश त्रिपाठी ने[1] कुछ बुझौवल 'सवासी खेरे' के 'घासीराम' के नाम से दिये हैं। श्रीरामाज्ञा द्विवेदी[2] ने अयोध्या के पास के अरोढ़ा स्थान के राजवंश के सबलसिंह के नाम से कुछ अवधी की पहेलियों को प्रचलित बतलाया है। हिन्दी में अमीर खुसरो और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के नाम से मुकरियाँ मिलती हैं। मगही पहेलियों के रचयिताओं का नाम अभी तक अंधकार-गर्भ में तिरोहित है। उनके शोध के साथ ही मगही-पहेलियों के व्यापक संग्रह की भी आवश्यकता है। आधुनिक युग में नवीन मनोरंजन (सिनेमा-गृहों आदि) के साधनों ने ग्राम-चौपालों का उत्साह ठंडा कर दिया है। फलतः वृद्धजनों के साथ ही पहेलियों का विपुल भाण्डार विस्मृति के गर्भ में विलीन होना चाह रहा है। पर इस अमूल्य रत्नागार के रक्षण की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए; कारण, इनके मनोरंजन-प्रधान लघ्वाकार में ही हमारी कुछ शालीन सांस्कृतिक परम्पराएँ अक्षुण्ण हैं, जो अतीत और वर्त्तमान की मिलन-रेखा का कार्य सम्पन्न करती हैं।

---

१. ह० ग्रा० सा०, पृ० २८०।
२. हिन्दु०, भाग २, अंक १, पृ० २६८।

मगही-पहेलियों का वर्गीकरण

मगही-लोक-साहित्य में पहेलियों का क्षेत्र इतना व्यापक है कि जीवन की सामान्य वस्तु भी इनकी पकड़ से नहीं बची है। परन्तु अभी तक इनका कोई संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ है। फिर नित्य नवीन पहेलियों का निर्माण होता चलता है, सो अलग। कारण, बुद्धि-कौशल की साधना तो रुकनेवाली वस्तु नहीं है। परम्परा-पोषित लोक-साहित्य के आत्मीय वातावरण मे उसका विकास होता रहता है। उसके लिए सूक्ष्म एवं तीक्ष्ण दृष्टि, उक्ति-वैचित्र्य और विनोद की प्रवृत्तियाँ अपेक्षित हैं। ये सभी हमारे लोक-जीवन में प्राप्य हैं। यही कारण है कि पहेलियों के निर्माण का क्रम वर्त्तमान मे भी अक्षुण्ण है।

मगही में पहेलियों के प्रामाणिक संग्रह के अभाव में उनके वर्गीकरण का अभी तक प्रयास भी नहीं हुआ। डॉ० सत्येन्द्र ने 'ब्रज' मे प्राप्त पहेलियो को निम्नाकित सात वर्गों में विभाजित किया है—

१. भोजन-सम्बन्धी
२. खेती-सम्बन्धी
३. घरेलू वस्तु सम्बन्धी
४. प्राणी-सम्बन्धी
५. प्रकृति-सम्बन्धी
६. अंग-प्रत्यंग-सम्बन्धी
७. अन्य।

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने भी पहेलियों का वर्गीकरण उपर्युक्त सात भागों में ही किया है।[1]

मगही की पहेलियों का वर्गीकरण भी उपर्युक्त विद्वानों के वर्गीकरण के आधार पर ही किया जा सकता है। कारण, उपर्युक्त वर्गों के अन्तर्गत वे सभी वस्तुएँ आ जाती हैं, जिनका हमारे दैनिक जीवन से सम्बन्ध है। जो पहेलियाँ प्रथम छह वर्गों में समाविष्ट नहीं हो पाती हैं, उन्हें 'प्रकीर्ण' के अन्तर्गत रखा गया है :—
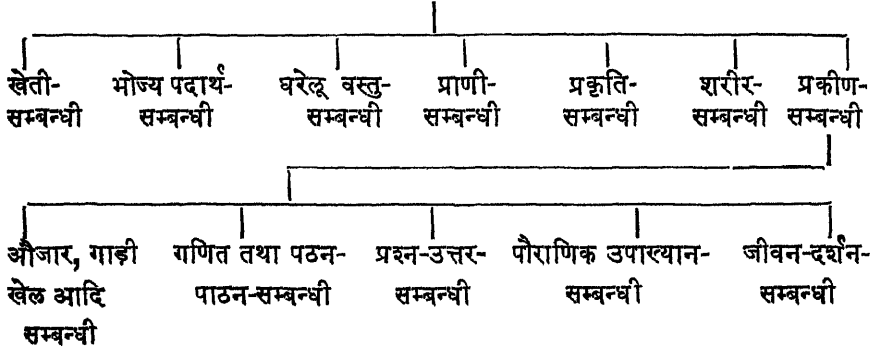
१. लो० सा० भू०, पृ० १६४।
२. मगही पहेलियों के लिए देखिए—म० लो० सा०, पृ० १८६–१९२

१. खेती-सम्बन्धी पहेलियाँ

इस वर्ग मे वे वस्तुएँ आती है, जो खेती से सम्बद्ध हैं। यथा—बूँट, गेहूँ, अन्य अनाज, करिंग, ताड़, कुदाल, केराव, मसूर, पोस्ता, मिट्टी, हल, बैल, खेती के औजार, भुट्टा, ईख, उड़द, अरहर, मूँग की दाल आदि।

बुझौवल का प्रधान उद्देश्य मनोरंजन होता है, अतः इसमे कुछ ऐसी शब्द-योजना रहती है और कहने की शैली ऐसी वक्र होती है कि सुननेवाला हँसे विना नहीं रह सकता। उदाहरणार्थ—

१. एक छौंरा के नकिए टेढ़।
एक छौंरा के पेटवे कटल।—बूँट और गेहूँ।

अर्थात् एक ऐसा लड़का है, जिसकी नाक ही टेढ़ी है। (इसका उत्तर है—बूँट)। दूसरा ऐसा लड़का है, जिसका पेट ही बीच से कटा होता है। (उत्तर है—गेहूँ)।

२. करिया कुत्ता बन में सुत्ता।
मारइ लात, चेहा के उट्ठा।—करिंग।[1]

अर्थात् एक काले रंग का कुत्ता खेत मे सोया रहता है। लात से मारने पर वह चौंककर उठता है और क्रियाशील हो जाता है।

३. करिया बिलाई के हरियर पुच्छ।— ताड़।

अर्थात् एक बिल्ली है, जो विल्कुल काली है, पर उसकी पूँछ काली होने के बजाय बिल्कुल हरी है। (ताड के मूल से लेकर पत्तोवाले भाग के नीचे के हिस्से को बिल्ली माना गया है और हरे भाग को उसकी पूँछ।)

४. चरटंग पूछे एकटंग से, दुटंग कहाँ गेल।
अठरंग जनावर मार के आग लावे गेल॥

—बाघ, कुदाल, आदमी, केंकड़ा।

अर्थात् चार टाँगवाले बाघ ने एक टाँगवाली कुदाल से पूछा कि दो टाँगवाला मनुष्य कहाँ गया है? उसने उत्तर दिया कि आठ टाँगवाले केंकड़ा को मारकर आग लाने गया है।

५. छोटे गो टुइयाँ पटक देली भुइयाँ।
फूटे न फाटे, बाह रे टुइयाँ॥—केराव।

अर्थात् एक छोटा टुइयाँ है, जिसे जमीन पर पटक देने पर वह नहीं फूटता। (टुइयाँ गोल होता है और केराव भी। इसी सादृश्य के आधार पर टुइयाँ से 'केराव' की व्यंजना की गई है।)

६. तनी गो डिबिया में लाल-लाल बिटिया।—मसूर।

अर्थात् छोटी-सी डिबिया में लाल-लाल बिटिया रहती है। (मसूर के छिलके के अन्दर लाल-लाल दाल सुरक्षित रँहती है। वह छिलका ही छोटी-सी डिबिया है, जिसमे लाल-लाल दाल सुरक्षित रहती है।

---

१. खेत में पानी पटाने का एक यंत्र।

७. पहिले ढेरी जमे देलक पीछे दुहलक गाय,
बचल रहल, गेल पेट में, मक्खन हाट बिकाय। —पोस्ता, अफीम।

अर्थात् पहले पोस्ते की ढेरी पौधे में जमती है। इसके बाद उसे पाछकर अफीम निकाली जाती है। उससे ही दाने भी निकलते हैं। दाना सामान्य भोजन के काम में आता है और अफीम बहुत मँहगे मूल्य पर बाजार में बिकती है।

८. लइका हे पेट में दाढ़ी उड़े हवा में। —भुट्टा।

अर्थात् कितनी विचित्र बात है कि लड़का तो अभी पेट में ही है, पर उसकी दाढ़ी हवा मे लहरा रही है। (हरे पत्तों के पेट में भुट्टे के दाने पलते हैं। इन पत्तों के मुँह पर बाल होते हैं, जो हवा में उड़ते रहते हैं।)

९. एतबड़ से हम एतबड़ भेली।
खनखन मुंदरी पेन्हते गेली। —ईख।

अर्थात् एक गाछ है, जो बड़ा होता जाता है और उसमें अँगूठी की तरह गिरह थोड़ी-थोड़ी दूर पर पड़ती जाती है।

१०. तनिगो लइका बराहमन के।
तिलक लगावे चंदन के। —उड़द।

अर्थात् ब्राह्मण का एक छोटा-सा बालक है, पर फिर भी वह तिलक चंदन का ही लगाता है। (उड़द की दाल काफी सफेद होती है, जैसे चंदन मे लिपटी हो।)

११. गोल-गोल गोटी, सोपारी ऐसन रंग।
इगारह देवर के छोड़ के, गेल जेठ के संग। —अरहर।

अर्थात् सुपारी के रंग की बहुत-सी गोल-गोल गोटियो के दल होते हैं। ये जेठ मास में पुष्ट होने पर काटे जाते हैं। ग्यारह महीने इन्हें पुष्ट होने के लिए छोड़ दिया जाता है।

१२. गेलन सखियन मार के झुंड। खूब नहेलन शीतल कुंड।
कपड़ा पेन्हले भीतर गेलन, लँगटे होके बाहर भेलन।[1]
—उड़द या मूँग की दाल।

अर्थात् बहुत-सी सखियों का दल शीतल जल-कुंड में स्नान करने गया। जाते समय सबके शरीर पर वस्त्र थे, पर स्नान के बाद वे सभी नंगी लौटीं। (इस पहेली मे छिलके से उड़द या मूँग की दाल के अलग होने की कहानी है।)

२. भोज्य पदार्थ-सम्बन्धी पहेलियाँ

इस वर्ग में वे सभी वस्तुएँ आती है, जो भोजन से सम्बन्धित हैं। यथा—कौर, अंडा, ताड़ी, केला, नारियल, गोलमिर्च, अन्य मसाले, भात, रोटी, शकरकन्द, बेल, पूड़ी, मूली, लालमिर्च, कटहल आदि। उदाहरणार्थ नीचे कुछ ऐसी पहेलियाँ दी जाती हैं—

१. अँतड़ी पर पतड़ी, पाँच गो मजूर।
घुर जो मजूर, हम जा हिअ दूर। —कौर।

---
१. इ० ग्रा० सा०, पृ० २६९

अर्थात् अँतड़ी में भोजन पहुँचाने का कार्य पाँच मजदूर (पाँच अंगुलियाँ) करते हैं। मुँह में भोजन डालकर वे मजदूर लौट जाते हैं।

२. एक घड़ा में दुरंग पानी। —अंडा।

अर्थात् एक ऐसा घड़ा है, जिसमे दो रंग (सफेद और पीतवर्ण) का पानी एक साथ है।

३. एक गाँव में ऐसन देखली, बानर दूहे गाय।
छाली काट के बीग दे, दही लेलक लटकाय। —ताड़ी।

अर्थात् एक ऐसा गाँव देखा, जिसमे वानर गाय दूहता था। वह छाली काटकर जमीन पर फेंक देता था और दही लटकाकर ले आता था। (वानर से तात्पर्य पासी का है और गाय से ताड़ के पेड़ का। छाली फेन है और दही गाढ़ा सफेद रस।)

४. एगो फूल छिहत्तर भतिया, जे न बूझे मूरख के नतिया। —केला।

अर्थात् एक पेड़ में एक ही फूल लगता है, पर उसमें फल अनेक लगते हैं।

५. गछिया पर रहिला, बकि चिरई न ही,
पानी से भरल ही, बकि बदरी न ही,
दूठो आँख हे, पर मनुस न ही। —नारियल।

अर्थात् एक ऐसी वस्तु है, जो वृक्ष के सिरे पर रहती है, उसमें पानी भरा रहता है, साथ ही उसमे दो आँखें भी होती हैं, पर वह न तो चिड़िया है, न बादल और न आदमी। ऐसा वह वस्तु खुद कहती है। वस्तुतः वह क्या है ?

६. कटोरा पर कटोरा, बेटा बाप से भी गोरा। —नारियल।

अर्थात् एक कटोरे पर दूसरा कटोरा रखा है, जो उसके बेटे के समान है। यह बेटा अपने बाप से भी गोरा है। (बाप-बेटे में अन्तर मुख्यतः वजन का होता है, अर्थात् बाप हमेशा बड़ा होगा, बेटा हमेशा छोटा। नारियल मे ऊपरी परत उतनी साफ नहीं होती, पर उसके नीचे की छोटी परत बहुत साफ होती है।)

७. मटर गोल गोल, मटर काला,
मटर सिबसिब। —गोलमिर्च।

अर्थात् एक ऐसा मटर-दाना है, जो गोल और काला होता है, पर इसका स्वाद सिबसिब होता है।

८. मिट्टी के घोड़ा, मिट्टी के लगाम।
ओकरा पर चढ़े, खदबदिया जवान। —भात।

अर्थात् मिट्टी का ही घोड़ा है, मिट्टी की ही लगाम। इस घोड़े पर वह जवान रहता है, जो 'खदबद-खदबद' आवाज करता है। (मिट्टी का घोड़ा 'चूल्हा' है और मिट्टी की लगाम 'हाँड़ी'। भात पकाने के समय खदबद आवाज करता है।)

९. लरबर के डाल देली, कड़ा करके निकाल लेली। —रोटी।

अर्थात् मैंने उस वस्तु को लरबर (गीली होने के कारण लचीली) रूप मे डाल दिया और जब निकाला तो वह कड़ी हो चुकी थी।

१०. लाल घोड़ा, करिया जीन,
गोर सिपाही उतरे चढ़े। —रोटी।

अर्थात् एक लाल घोड़ा है, जिसपर काली जीन कसी है और उसपर गोरा सिपाही सवार है। (लाल आग पर काला तवा चढ़ाया जाता है। सफेद आटा-रूपी सिपाही की इसपर सवारी होती है।)

११. लाल छड़ी, मैदान गड़ी। —शकरकन्द।

अर्थात् एक लाल रंग की छड़ी होती है, जो मैदान मे गड़ी रहती है। (शकरकन्द जमीन के अन्दर जमता है।)

१२. हरदी के गाद-गूद, पीतल के लोटा।
जे न बूझे से, बानर के बेटा। —बेल।

अर्थात् पीतल के लोटे के समान वस्तु में हल्दी के समान पीली-गीली वस्तु सुरक्षित रहती है। वह कौन-सी वस्तु है?

१३. करिया नद्दी, करिया पानी।
डूब मरल अलबेली रानी। —पूड़ी।

अर्थात् नदी में काला पानी सचित रहता है। उसमे गोरे रंग की अलबेली रानी डाली जाती है। वह जाते ही मर जाती है। (काली नई कड़ाही है, काला पानी कड-कड़ाया घी एवं अलबेली रानी पकने के पहले पूरी।)

१४. एगो बाग में ऐसन भेल।
आधा सुआ, आधा बकुल। —मूली।

अर्थात् एक ऐसा बाग है, जिसमे एक साथ आधा तो सूआ जनमता है और आधा बगुला। (मूली का ऊपरी आधा हरा हिस्सा तोते से वर्ण-साम्य रखता है एवं नीचे का आधा उजला हिस्सा बगुले से।)

१५. हरा डंटी लाल कमान।
तोबा तोबा करे पठान। —लालमिर्च।

अर्थात् हरी डंडी में लाल रंग का कमान लगा रहता है। इसे देखकर पठान-जैसे बहादुर भी घबरा जाते हैं।

१६. एगो संदूक काँटा जड़ल।
खोलऽ तब चम्पाकली भरल। —कटहल।

अर्थात् एक ऐसा संदूक है, जिसपर काँटे बिछे होते हैं। परन्तु काटने पर चम्पा-कली (फूल) के रंग की वस्तु निकलती है।

१७. एक चिरैया चट, ओकर पंख दुनो पट्ट।
ओकर खलड़ी उजाड़, ओकर मांस मजेदार। — केला।

अर्थात् एक ऐसी चिड़िया है, जिसके दोनों पंख बंद रहते हैं। इन पंखों को उजाड़कर फेंकने के बाद बडा मीठा मास खाने को मिलता है। (कुछ लोग इसका उत्तर ऊख भी बतलाते हैं।)

३. घरेलू वस्तु-सम्बन्धी पहेलियाँ

इस वर्ग के अन्तर्गत वे वस्तुएँ आती है, जो हमारे घरेलू जीवन से सम्बद्ध हैं। यथा—चाकू, खटिया, लबनी, नारियल-चिलम, ढोलक, चलनी, ढेंकी, बहरना, धुआँ, चूल्हा, ताला, दीपक, चक्की, सुई, पैबन्द, कड़ाही, तवा, सिकड़ी (जंजीर), पोतना। यथा—

१. अँउठा नियर पेड़ हे, दउरा नियर पत्ता।
एके एक फरे हे, घउद लग के पके हे। —कुम्हार का चाक।

अर्थात् वृक्ष अँगूठे की तरह पतला है, परन्तु पत्ता दौरे की तरह गोल तथा छितनार। इस वृक्ष मे एक-एक फल फलता है, परन्तु घौद-का-घौद पकता है।

२. आधा धुप्पा, आधा छइयाँ,
बतवे जे होवे बतवइया। —खटिया।

अर्थात् जिससे आधी धूप आती है और आधी छाँह, वह कौन-सी वस्तु है ?

३. काठ के मैया, मिट्टी के बउआ।
खड़े-खड़े, दूध पीए जे बऊआ। —लबनी।

अर्थात् काठ की माता है और मिट्टी का बालक। वह (बालक) अपनी माँ का दूध खड़े-खड़े पीता है। (काठ की माता ताड का पेड़ है एवं मिट्टी का बालक लबनी। यह ताड़ चुआने के काम में लाया जानेवाला मिट्टी का पात्र है, जो ताड़ मे खड़ा लटका दिया जाता है।)

४. गोरा बेटा करिया बाप, भीतर पानी ऊपर आग। —नारियल-चिलम।

अर्थात् बाप (नारियल) काला है, जिसमे पानी भरा रहता है। बेटा (चिलम) गोरा है, जिसमे आग भरी रहती है।

५. जब मारई तो जी उठइ, बिन मरले मर जाये। —ढोलक।

अर्थात् एक ऐसी वस्तु है, जो मारने पर बोल उठती है और नहीं मारने पर मर जाती है।

६. झाँझर कुइयाँ अजब फुलवारी
न बुझबऽ, तो परतो गारी। —चलनी।

अर्थात् एक अजीब बाग है, जिसमें झाँझर (छेदवाला) कुआँ है। वह क्या है ?

७. दू खड़ा एक पट, ओकर सवा हाथ के कट,
मारे फटाफट, बुझऽ तऽ का ही ? —ढेंकी।

अर्थात् दो खड़े आधारो का सहारा लेकर एक वस्तु पट पड़ी है। उसका मुँह सवा हाथ का होता है, जिससे वह फटाफट मारती है। बूझो तो क्या है ?

८. फरइ न फूलई, सूप भर झरई। —बहरना।

अर्थात् एक ऐसी वस्तु है, जो फूलती-फलती नहीं, पर झाड़िये तो सूप-भर निकले।

९. बिन हाथ, बिन पैर, पहाड़ चढ़ल जा हे,
बूझऽ जी लोगन, जनावर के जा हे। —धुँआ।

अर्थात् एक ऐसा जानवर है, जो बिना हाथ-पैर के पहाड़ पर चढ़ता जाता है।

१०. लाल गइया खर खाये।
पानी पिये मर जाये।— आग।

अर्थात् एक ऐसी गाय है, जो लाल रंग की है और खर-पत्ते खाती है। यह पानी पीने पर मर जाती है।

११. सब कोई चल गेल, भकोला दाई घर में। —चूल्हा।

अर्थात् घर से सबके जाने पर भी एक भोली सेविका रह ही जाती है।

१२. सब कोई चल गेल, बुढ़वा रह गेल लटकल। —ताला।

अर्थात् घर से सब कोई चले जाते हैं, पर एक बूढ़ा द्वार-रक्षक बनकर लटकता रह जाता है।

१३. तेली के तेल कुम्हार के हडा।
हाथी के सूँढ़, नवाब के झंडा। —दीपक।

अर्थात् एक ऐसी वस्तु है, जिसके स्वरूप को खड़ा करने के लिए तेली ने तेल दिया, कुम्हार ने हाँड़ी दी, हाथी ने सूँड़ दिया और नवाव ने झंडा दिया।

१४. दुब्बर पातर गुन भरल, माथा चले झुकाय।
इ नारी जब हाथ में आवे, बिछुड़ल दे मिलाय।—सूई।

अर्थात् एक ऐसी दुबली-पतली गुणकारी नारी है, जो सिर झुकाकर चलती है। यह जब हाथ में आती है, तो दो बिछुड़ों को मिला देती है।

१५. लगौला से लाज लागे, बिनु लगाये बने नहीं।
धन हे ओकर भाग, जेकरा इ लगे नहीं। —पेबन्द (पेबन)।

अर्थात् यह ऐसी चीज है, जिसे लगाने पर लज्जा होती है और बिना लगाये काम बनता भी नहीं। वह भाग्यवाला धन्य है, जिसे इसे नही लगाना पड़ता।

१६. चच्ची के दू कान, चच्चा रहे बेकान।
चच्ची चतुर सुजान, चच्चा बड़ा नादान। —कड़ाही और तवा।

अर्थात् चाची (कड़ाही) दो कानवाली है, इसी से चतुर है। चाचा (तवा) विना कान के हैं, अतः स्वभावतः मूर्ख है।

१७. दिन में लटके, रात में चिपटे। —सिकड़ी, जंजीर।

अर्थात् एक ऐसी चीज है, जो दिन मे लटकती है, परन्तु रात में चिपट जाती है।

१८. बिनु दादा के पोता।
भित्ती-भित्ती रोता। —पोतना।

अर्थात् एक ऐसा दीन-हीन-अनाथ व्यक्ति है, जो घर के प्रत्येक हिस्से में रोता (गीला) चलता है।

४. प्राणी-सम्बन्धी पहेलियाँ

इस वर्ग मे वे सभी पहेलियाँ आती हैं, जो विविध प्राणियों, जीवो और जन्तुओं से सम्बन्धित है। यथा—आदमी, जूँ (ढील), केंकड़ा, बाघ, गिरगिट, बिढ़नी (हरें), मच्छर, चींटा, बिच्छू, जोंक, सींग, खटमल आदि।

१. करिया ही हम करिया ही,
करिया बन में रहऽही
ललका पनिया पीअऽही। —ढील या जूँ।

अर्थात् मेरा रंग काला है और निवास-स्थल भी काला जंगल (बाल) ही है, परन्तु मैं लाल पानी (खून) पीता हूँ।

२. चाँदिलपुर में चोरी होल, चुटकी से पकरायल।
तरहत्थी पर हाजिर होल, नोह पर पिटायल। —ढील।

अर्थात् चाँदिलपुर (सिर) मे चोरी हुई। चोर चुटकी से पकड़ लिया गया। उसे तुरन्त तरहत्थी पर हाजिर किया गया और नाखून पर उसको सजा मिली।

३. लाठी पर कोठी, कोठी पर हबहब।
हबहब पर गुजगुज, ओपर करिया पहाड़। —आदमी।

अर्थात् लाठी-सी टाँगो पर कोठी-जैसा पेट है। कोठी के ऊपर हबहब खाने के लिए मुँह है। मुँह के ऊपर गुजगुज आँखें हैं। सबसे ऊपर सिर-रूपी पहाड़ है, जिसपर काले बालों का जंगल है।

४. 'लाल मौर हे, बकि मुरगा न ही,
चार टाँग हे, बकि घोड़ा न ही।
लम्बा पूँछ हे, बकि हनुमान न ही।' —गिरगिट।

अर्थात् सिर पर लाली है, चार टाँगें हैं और लम्बी पूँछ है, फिर भी न मुरगा हूँ, न घोड़ा और न हनुमान ही। तो क्या हूँ ?

५. लाल लाल मुरी, हरदी ऐसन पीरी।
चटाक चुम्मा ले गेल। बड़ा दुख दे गेल। —बिढ़नी, हड्डे।

अर्थात् सिर तो लाल है, पर देह पीली है। झटके से आकर उसने चूम लिया, परन्तु इस चुम्बन ने बड़ी पीड़ा दे दी। वह क्या है ?

६. भारी परेमी परेम न जाने।
खाय गाय, बराह्मन न माने।
फुलुक गोर देही पर धरे।
काम कसाई ऐसन करे। —मच्छर।

अर्थात् एक ऐसा जीव है, जो रूप प्रेमी का रखता है, पर प्रेम का मर्म नहीं पहचानता। गाय और ब्राह्मण-जैसे पूज्य भी उसके आहार हैं। देह पर हल्के से पैर रखता है, पर काम कसाई से कम निष्ठुरता का नहीं करता !

७. रंग हे काला बकि कौआ न हि।
पेड़ चढ़िला बकि बन्दर न हि।
मुँह हे मोटा बकि बिढ़नी न हि।
कम्मर हे पतरा बकि चीता न हि। —चींटा।

अर्थात् मेरा रंग काला है, मैं पेड़ पर चढ़ता हूँ, मेरा मुँह चौड़ा है और कमर पतली है। परन्तु न कौआ हूँ, न बन्दर, न बिढ़नी और न चीता ही। तो क्या हूँ ?

८. सोना ऐसन चटक। बहादुर ऐसन मटक।
बहादुर गेलन भाग, लगा गेलन आग। —बिच्छू।

अर्थात् एक ऐसा जीव है, जिसका रंग सुनहरा है और चाल बहादुरों की-सी है। परन्तु यह तुरन्त वार कर कायर की तरह गायब हो जाता है। इसके बाद तो देह में आग ही लग जाती है।

९. एगो जीव असली, जेकरा न हाड़-पसली। —जोंक।

अर्थात् एक ऐसा जीव है, जिसे हड्डी-पसली कुछ नहीं होती।

१०. खड़ा तो खड़ल। बैठे तो खड़ल। —सींग।

अर्थात् एक ऐसी वस्तु है, जो कभी झुकती-मुड़ती नहीं। यदि जानवर खड़ा है तो भी यह खड़ी ही रहती है और यदि बैठा है, तो भी खड़ी ही रहती है।

११. देह से कोमल, मुँह से जोर।
चाल चले जैसे तुरकी घोड़। —खटमल।

अर्थात् एक ऐसा जीव है, जिसका शरीर बड़ा कोमल है, परन्तु जो मुँह का बड़ा तेज है। इसकी चाल तुरकी घोड़े की-सी हल्की होती है।

५. प्रकृति-सम्बन्धी पहेलियाँ

इस वर्ग में प्रकृति के विविध रूपों से सम्बद्ध पहेलियाँ आती हैं। यथा—ओस, वर्षा की बूँदें, सिंघाड़ा, नाव, महीना, ऋतु, साल, चन्द्रमा, गूलर का फूल, तारे, अंधकार, बबूल, अमरबेल, नदी, समय, तारों से भरा आकाश आदि।

उदाहरणार्थ नीचे कुछ ऐसी पहेलियाँ दी जाती हैं :—

१. अवघट घाट घड़ा न डूबइ,
हाथी खड़े निहाय।
आग लगइ इ घाट में,
कि चिड़इ पियासल जाय। —ओस।

अर्थात् एक बड़ा कठिन घाट है, जिसमें घड़ा तो नहीं डूबता, पर हाथी नहा लेता है। कितना व्यर्थ है यह घाट, जहाँ एक चिड़िया की प्यास भी नहीं बुझाती।

२. नौ सै बढ़ही, नौ सै लोहार।
तइयो न कटे, झुनझुनमा पहार। —ओस।

अर्थात् कितने ही बढ़ई और लोहार हों, पर एक ऐसा भी पर्वत है, जिसे काटने में वे समर्थ नहीं हो सकते।

३. उमत के फूल, कोई चूमऽ न हइ।
झरझर गिरइ, कोई चूनऽ न हइ। —वर्षा की बूँदें।

अर्थात् ऐसे सुन्दर फूल हैं, जो झर-झर बरसकर चले जाते है, परन्तु उन्हे न चूमा जा सकता है और न चुना ही जा सकता है।

४. एन्ने नदी, वन्ने नदी, बीच में ककैया।
फरे के लदबुद, मुँह के मिठैया। —सिंघारा।

अर्थात् चारों ओर नदी ही है, बीच में काँटेदार फल भरे हैं। हैं तो वे काँटेदार, पर खाने में बड़े मीठे होते है।

५. एन्ने नदी, ओन्ने नदी, बीच में हवेली।
करे लगल डगमग, धर दे अधेली। —नाव।

अर्थात् चारों ओर नदी है। बीच मे हवेली है, जिसमें आदमी आदि सुरक्षित बैठे हैं। परन्तु यह हवेली तो डगमगाने लगी, फिर मल्लाह पैसे क्यो न लौटायें ?

६. चार लरम चार गरम, चार झराझर।
एक हिरन के बारह टँगरी, अलगे अलगे चर। —महीना, ऋतु, साल।

अर्थात् एक ऐसा हिरन है, जिसकी बारह टाँगें हैं और जिनका स्वभाव अलग-अलग है। इनमे चार टाँगें सर्द हैं, चार गर्म हैं और चार पानी मे भींगी।

७. जल काँपइ, जलवैया काँपइ,
पानी में कटोरा काँपइ,
चोर न सके चोराइ। —चन्द्रमा।

अर्थात् जल मे कंपन होता है, तो उसमें की सारी वस्तुएँ प्रकंपित होने लगती हैं। पानी के साथ-साथ उसमे जो चाँदी का कटोरा है, वह भी काँप रहा है, पर कोई उस रजत-कटोरे को चुरा नहीं सकता।

८. धरती से साम सुन्नर, बादर में लेखा,
हाय रे परान तोरा, कहियो न देखा। —गूलर के फूल।

अर्थात् गूलर का विशाल वृक्ष धरती से आकाश तक फैला रहता है, पर उसका फूल कभी दिखाई नहीं पड़ता।

९. भगवान बाबा के अनगिनित गाय,
रात बिआये, दिन कहाँ जाये ? —तारे।

अर्थात् ईश्वर की अनगिनत गायें हैं, जो रात में अनन्त बच्चे देती हैं, पर सबेरे गाय और बच्चे सभी अदृश्य हो जाते हैं।

१०. राजा के बेटी, करिया चोटी,
रात बँधावे, भोर खुलावे। —अंधकार।

अर्थात् राजा की एक बेटी है, जिसकी चोटी काली है। रात में वह चोटी बाँध लेती है, जिससे अंधकार घनीभूत हो जाता है। पर भोर मे चोटी खोल देती है, तो अंधकार दूर हो जाता है।

११. सामन फूले चैत में फरे।
ऐसन पेड़ बोई का करे। —बबूल।

अर्थात् ऐसे पेड़ को रोपकर क्या होगा, जिसमे सावन मे तो फूल लगे, पर चैत में फल आयें।

१२. एगो पेड़ अगड़धत्ता, जेकर न मूल-पत्ता। —अमरबेल।

अर्थात् एक पेड़ बड़ा जबर्दस्त है, जो विना मूल और पत्तों के फैलता रहता है।

१३. टेढ़ मेढ़ बाँसुरिया, बजवइया नाहीं कोई।
बेटी चलल ससुर-घर, रोकबइया नाहीं कोई।—नदी।

अर्थात् टेढ़ी-मेढ़ी एक अजीब बाँसुरी है, जिसे कोई बजानेवाला नहीं, पर जिससे मधुर स्वर फूटता रहता है। यह एक ऐसी बेटी है, जो श्वसुर के घर जा रही है, पर इसे रोकनेवाला कोई नहीं है।

१४. आठ टाँग के अजबे घोड़ा।
चले रैन-दिन फिरे न मोड़ा।—समय।

अर्थात् एक विचित्र घोड़ा है, जिसकी आठ टाँगे है और जो दिन-रात चलता ही रहता है, कभी नहीं फिरता। (समय यानी दिन-रात के समस्त काल को आठ प्रहरों में विभाजित किया गया है। एक प्रहर तीन घंटों का होता है।)

६. शरीर-सम्बन्धी पहेलियाँ

इस वर्ग में वे पहेलियाँ आती हैं, जिनका सम्बन्ध मानव के अंग-प्रत्यंगों से है। यथा—नाक, जीभ, आँख, ओठ, अँगूठा, अंगुलियाँ आदि।

उदाहरणार्थ नीचे इस वर्ग की कुछ पहेलियाँ दी जाती हैं—

१. इक मंदिल में दू दरवाजा। —नाक।

अर्थात् एक ऐसा मंदिर है, जिसमे दो द्वार हैं।

२. एन्ने गेली, ओन्ने गेली, गेली कलकतवा।
बत्तीस गो पेड़ देखली, एके गो पतवा।—जीभ

अर्थात् चारों दिशाओं मे घूमा, पर सब जगह यही देखा कि पेड़ बत्तीस हैं, पर पत्ता एक ही।

३. तनिगो कीया, पेटारी भर जाये रे।
लाख गो दाम मिले, तइयो न बिकाय रे।—आँख।

अर्थात् छोटी-सी डिबिया है, पर उससे ही पिटारी भरी दिखाई पड़ती है। लाखों रुपये के मूल्य पर भी उसे बेचा नहीं जा सकता।

४. लगा कहई तो ना लगई, बम्बा कहई लग जाये।—ओठ।

अर्थात् 'लागा' कहने पर नहीं सटता, पर 'बम्बा' कहने पर सट जाता है।

५. एगो मरद के नारी चार।
सबे चतुरी मिलि करे बिहार।
केकरो घर नहीं जाये कोई।
खानपान संग-साथे होई।—अंगूठा और अंगुलियाँ।

अर्थात् एक ऐसा पुरुष है, जिसके चार पत्नियाँ हैं। सभी चतुर हैं और मिलकर विहार करती हैं। कोई किसी दूसरे के घर नहीं जातीं। सब एक साथ मिलकर खान-पान में अपने पुरुष का साथ देती हैं।

७. प्रकीर्ण पहेलियाँ

इस वर्ग के अन्तर्गत फुटकर और विविध विषयों से सम्बद्ध पहेलियाँ रखी गई हैं। इन्हें निम्नांकित उपवर्गों में रखा जा सकता है—

(क) हथियार, औजार, गाड़ी, खेल आदि सम्बन्धी ।
(ख) गणित तथा पठन-पाठन सम्वन्धी
(ग) प्रश्न-उत्तर-सम्वन्धी
(घ) पौराणिक उपाख्यान-सम्बन्धी
(ङ) जीवन-दर्शन-सम्बन्धी

(क) औजार, गाड़ी, खेल-सम्बन्धी

१. एक चिरैयाँ रसनी, खूँटा पर बसनी ।
जब चलइ रंग-ढंग, तब कमर कसनी । —तलवार ।

अर्थात् एक चिड़िया बड़ी रसिक है। वह खूँटी पर रहती है। जब किसी से संघर्ष होता है, तो कमर में कसा जाती है ।

२. उठे त झनझन बज्जे, बैठे त फहराय ।
दिन भर लाखों जिउ मारे, अपने कुछ न खाय । —जाल ।

अर्थात् एक ऐसी वस्तु है, जो उठाने पर झनझन बजती है, और रखने पर फैल जाती है । दिन-भर लाखों जीवो को मारती है, पर स्वयं कुछ नहीं खाती ।

३. कारी गइया, आरी धैले जाय ।
बापे किरिया एक्को धान न खाय । --रेलगाड़ी ।

अर्थात् एक काली गाय है, जो आरी पकड़कर चलती है, फिर भी एक भी धान नहीं खाती ।

४. लाल ढकना, खरताल ढकना,
खोल खिड़की पहुँचाओ पटना । —रेलगाड़ी ।

अर्थात् रेल का फाटक लाल है, जो बंद रहता है। निर्दिष्ट स्थान पर इसका फाटक खुलता है और आदमी अपनी जगह पहुँच जाता है ।

५. इत गेल बित गेल । कोना में दबक गेल । —लाठी ।

अर्थात् एक ऐसी वस्तु है, जो इधर आई, उधर गई और उसने काम किया । फिर कोने में रख दी गई ।

६. तनी गो चीज टुकटुक करे ।
लाख रुपया के बानिज करे । —हथौड़ी ।

अर्थात् एक ऐसी वस्तु है, जो छोटी-सी है और ठुक-ठुक काम करती है, पर लाख रुपये का व्यापार करती है ।

७. छोटा गो मुँह, बड़ा गो बात । —तोप ।

अर्थात् एक ऐसी वस्तु है, जिसका मुँह छोटा है, पर बातें बड़ी-बड़ी करती है ।

८. एगो अजबे नार दक्खिन से आयल ।
सोरह बेटी तीन जमाइ संघे लायल । —चौपड़ ।

अर्थात् एक अजीब औरत है, जो दक्षिण से आई है। उसे सोलह बेटियाँ हैं, पर दामाद तीन ही हैं, जो उसके साथ ही आये हैं ।

९. **चार कोन के चबुतरा,**
चौंसठ घर ठहराये।
चतुर-चतुर सौदा करे,
मूरख फिरि-फिरि जाये।—शतरंज।

अर्थात् एक ऐसा चबूतरा है, जिसके चार कोण हैं और उन चार कोणों में चौंसठ घर बने है। जो व्यक्ति चतुर हैं, वे तो आकर यहाँ मन-लायक सौदा करते हैं, पर जो मूर्ख हैं, वे शीघ्र ही वापस हो जाते हैं।

(ख) गणित तथा पठन-पाठन-सम्बन्धी

१. **कबूतर के अगारी ही, चोंच न समझि हऽ।**
बकरी के बीच ही, पेट न समझि हऽ।
बूझ न पइहऽ, त मुँह न समझि हऽ। —'क' अक्षर।

अर्थात् मैं कबूतर का अगला भाग हूँ, पर उसकी चोंच नहीं हूँ, बकरी के बीच का भाग हूँ, पर उसका पेट नहीं हूँ। फिर क्या हूँ?

२. **थक गेल मुरगी चलते दूरी,**
लावइ चाकू काटइ मूरी।—कठपेंसिल।

अर्थात् एक मुर्गी चलते चलते थक गई। इसके बाद तेज चाकू से उसका सिर काटा गया, तो फिर काम के लायक हुई।

३. **चार आना बकरी, आठ आना गाय।**
चार रुपया भैंस बिकाय, बीस रुपइया बीसे जीऊ ॥[1]
—३ भैंस, १५ गाय, २ बकरी।

अर्थात् चार आने मे बकरी, आठ आने मे गाय और चार रुपये मे एक भैंस बिकती है। कुल बीस रुपये हैं और कुल बीस ही जानवर खरीदने हैं। तो प्रत्येक जानवर कितने-कितने में खरीदने होंगे?

४. **एक मन दाना, चार गो बाट।**
जेतना तौलऽ, परे घाट।[2] **—१, ३, ९, २७ सेर के बाट।**

अर्थात् एक मन दाना है, चार बाट हैं। चारों से पूरा-पूरा तौलना है, जिससे किसी प्रकार कमी न पड़ने पाये।

५. **तीतर के आगू दू तीतर। तीतर के पाछू दू तीतर।**
आगू तीतर पाछू तीतर। त बतावऽ केतना तीतर।[3] **—तीन।**

अर्थात् तीतर के आगे दो तीतर हैं और पीछे भी दो तीतर हैं। तो बताओ कितने तीतर हैं? उत्तर है—तीन।

६. **बाप बेटा दू। रोटी बटल तीन।**
सबके बराबर मिलल। —दो बेटा, एक बाप[4]**।**

---

१. भोज० लो० सा० अ०, पृ० ४४१ तथा इ० ग्रा० सा०, पृ० २८३।
२. लो० सा० भू०, पृ० १६७ तथा इ० ग्रा० सा०, पृ० २९२।
३. इ० ग्रा० सा०, पृ० २८३।
४. इ० ग्रा० सा०, पृ० २९२।

अर्थात् बाप है और बेटे दो हैं। तीन रोटियाँ बँटी हैं। सबको बराबर रोटी मिली। तो बताओ किसको कितनी मिली? दो बेटा, एक बाप, अतः प्रत्येक को एक रोटी मिली।

७. हाथ से बोये, मुँह से चुने।—अक्षर।

अर्थात् वह कौन-सी वस्तु है, जो हाथ से बोई जाती है, परन्तु मुँह से चुनी जाती है।

(ग) प्रश्न-उत्तर-सम्बन्धी

प्रश्न

१. बरखा बरखे रात में, भींजल सब बनराय।
घड़ा न डूबल लोटिया, काहे पंछी पियासल जाय।

उत्तर

ओस पड़ल हल रात में, भींजल सब बनराय।
घड़ा न डूबल लोटिया, अउ पंछी पियासल जाय।

प्रश्न

२. के चाहे बरखा, आउ के चाहे धूप।
के चाहे बोलना, आउ के चाहे चुप।

उत्तर

माली चाहे बरखा, आउ धोबी चाहे धूप।
साहु चाहे बोलना, चोर चाहे चुप।

प्रश्न

३. कउन तपसी तप करे, आउ कउन जे नित्त नहाय।
कउन जे सब रस उगिल दे, आउ कउन जे सब रस खाय।

उत्तर

सूरज तपसी तप करे, बरह्मा नित्त नहाय।
इन्दर जे सब रस उगिल दे, धरती सब रस खाय।

प्रश्न

४. कउन सरोवर पाल बिनु, कउन पेड़ बिनु डाल।
कउन पखेरू पंख बिनु, कउन नींद बिनु काल।

उत्तर

नैन सरोवर पाल बिनु, धरम मूल बिन डाल।
परान पखेरू पंख बिनु, मउअत नींद बिनु काल।

(घ) पौराणिक उपाख्यान-सम्बन्धी

१. साम बरन मुख उज्जर केतना? रामन सीस मंदोदर जेतना।
हनुमान बाबा कर लेम, तब राम पिता भर देम।[1]

अर्थात् प्रश्न है—श्याम रंगवाले उड़द का भाव क्या है? उत्तर है—जितने रावण और मन्दोदरी के सिर हैं अर्थात् ग्यारह सेर। प्रश्न है— हनुमान के पिता अर्थात्

१. ह० ग्रा० सा०, पृ० २७२।

पवन से साफ करके लूँगा। उत्तर है -राम के पिता दशरथ के बराबर दूँगा—अर्थात् दस सेर। इस पहेली मे पौराणिक उपाख्यान जानने की अपेक्षा इस रूप में है कि रावण के दस सिर थे, मन्दोदरी रावण की पत्नी थी। हनुमान के पिता का नाम पवन था और राम के पिता का नाम दशरथ था।

२. दू बेकती मिलि बाइस कान।[1]

अर्थात् जिन दो व्यक्तियों के कुळ मिलाकर बाईस कान थे, वे कौन हैं? उत्तर है—रावण-मन्दोदरी। यहाँ भी यह जानने की अपेक्षा है कि रावण के दस सिर, अतः बीस कान थे और मन्दोदरी को एक सिर, अतः दो कान। दोनों के मिलाकर बाईस कान हुए।

(ङ) जीवन-दर्शन-सम्बन्धी

१. सोना के मन रामा सोने के पिंजड़ा।
उड़ गेल मन राम रह गेल पिंजड़ा। —प्राण।[2]

अर्थात् शरीर सोने का पिंजड़ा है और मन सोने का पंछी। प्राण-पंछी के उड़ जाने पर पिंजड़ा खाली रह गया।

२. कोमल नार पिया संग सूतल, अंग में अंग मिलाय।
पिया बिछुड़ते देखि के, संग सती होइ जाय।
—बत्ती और तेल।[3]

अर्थात् एक कोमल नारी पति के साथ सोई है। दोनों के अंग मिलते हैं। पति को बिछुड़ते देखकर, वह भी सती हो जाती है। अर्थात् तेल के जल जाने पर बत्ती भी जल जाती है।

---

१. भोज० लो० सा० अ०, पृ० ४४२।

२. वही, पृ० ४४२।

३. ह० ग्रा० सा०, पृ० २८४ तथा भोज० लो० सा० अ०, पृ० ४४३।

अष्टम अध्याय

मगही का मुद्रित साहित्य

इस साहित्य-वर्ग मे दो कालों की रचनाओ को रखा गया है—

(१) प्राचीन, जिसके अन्तर्गत सिद्ध, नाथ तथा संत-साहित्य आता है, और

(२) नवीन, जिसमे आधुनिक काल में रचित होनेवाला साहित्य (पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएँ तथा उनमें छपी रचनाएँ) आता है।

प्राचीन साहित्य

सिद्ध-साहित्य :

मगही-साहित्य की परम्परा ८वीं शती के सरहपा, भुसुकुपा आदि सिद्ध कवियों से चली आ रही है। इन्हीं कवियों के काव्य को प्राचीन हिन्दी के नमूने के रूप में भी उदाहृत किया जाता है। इससे यह माना जा सकता है कि हिन्दी-साहित्य का प्रादुर्भाव मगही-साहित्य द्वारा हुआ।[1] सरहपा आदि के दोहाकोश और चर्यापद हिन्दी को मगही की देन हैं।[2]

नाथपंथ का साहित्य :

सिद्धों के बाद नाथ-सम्प्रदाय के कवियों का समय आता है। इनके काव्य पर सिद्धों के दर्शन एवं भाषा का पर्याप्त प्रभाव दिखाई देता है। मुख्य सन्त गोरखनाथ, भरथरी आदि हैं, जिनके नाम से कुछ रचनाएँ प्रचलित हैं। ये प्राय: भ्रमण ही करते रहते थे, इसलिए इनकी भाषा पर कई बोलियों का प्रभाव दिखाई देता है। यथा—गोरखनाथ का जन्म पछाँह की घाटियों में हुआ था, पर उनका कार्यक्षेत्र 'पूरब देश' बना, यह उनके ही कथन से स्पष्ट है—

पूरब देश पछाहीं घाटी (जनम) लिख्या हमारा जोगं।
गुरु हमारा नावंगर कहिए ये है भरम विरोगं।[3]

अत: उनकी भाषा 'मगही' से भी प्रभावित हुई। निम्नांकित पदों में रेखांकित शब्द मगही के हैं—

जिहि घर चंद-सूर नहिं उगे, तिहि घरि होसी उजियारा।
तिहाँ जे आसण पूरौ तौ सहज का भरौ पियाला मेरे ज्ञानी॥

× × ×

घरबारी सो घर की जाणे। बाहरि जाता भीतरि आणे।
सरब निरंतरि काटै माया। सो घरबारी कहिए निरंजन की काया॥[4]

---

१. डॉ० रामकुमार वर्मा ने सिद्धो के साहित्य को मगही का साहित्य माना है।—हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डॉ० रामकुमार वर्मा, पृ० ६५।

२. इसी ग्रन्थ में देखिए—'सिद्ध-साहित्य और मगही'-प्रसग।

३. 'गोरखबानी', पृ० २१२ में 'ग्यानतिलक' के १९ नम्बर का छन्द—बड़थ्वालजी द्वारा सम्पादित।

४. हिन्दी-काव्यधारा, पृ० १५७-१५८।

गोरखनाथ के नाम से अनेक ग्रन्थ प्रचलित हैं।[1] इनकी भाषा पूर्णतः मगही है, ऐसा कहना भ्रामक होगा। केवल इतना ही कहा जा सकता है कि इनमें बहुत-से शब्द मगही के हैं और इस प्रकार गोरखनाथ के ग्रन्थों एवं साहित्य पर मगही का भी उतना ही अधिकार है, जितना पूरब-क्षेत्र की अन्य भाषाओं का।

भर्तृहरि या भरथरी :

इनके गीत गोसाईं लोग सम्पूर्ण मगध-क्षेत्र में गाते है। इन्होंने 'वैराग्यशतक, श्रृंगारशतक एवं नीतिशतक' की रचना की। इनका सम्बन्ध उज्जैन से बताया जाता है।[2]

भरथरी के नाम से मगही मे बहुत पद प्रचलित हैं। यथा—निम्नांकित बारहमासे में भरथरी का नाम आया है। इसमे मगही का रूप दर्शनीय है—

> **चैत फूले बन टेसू हो, जब टुण्ड हहराय।**
> **फूलत बेला गुलबवा हो, पिया बिनु मोहि न सोहाय।**
> **बैसाखहि बँसवाँ कटइतों हो, रच के बँगला छवाय।**
> **तहि में सोइतें बलमुआ हो, करितों अँचरवन बयार।**
> **जेठ तपे मिरहहवा हो, बहे पवन हाहाय।**
> **'भरथरी' गावे 'बारहमासा' हो, पूजे मन के आस।**

इस पद मे भरथरी की भाषा का नवीन रूपान्तर कर दिया गया है। इसमे भाषा आधुनिक मगही है। सम्भव है, गायकों ने भरथरी की मूल कृति का रूप पूर्णतः परिवर्त्तित कर दिया हो, पर मूल कवि के प्रति श्रद्धा के कारण उनके नाम की परम्परा बनाये रखी हो। 'जगनिक'-रचित 'आल्हा' से आज उत्तर भारत के विविध क्षेत्रों में प्रचलित 'आल्हा' में बहुत अन्तर है, पर आज भी जगनिक कवि का नाम विस्मृत नहीं किया जा सका है।

सन्त-साहित्य

सन्त-साहित्य पर सिद्ध एवं नाथ-सम्प्रदाय के साहित्य का स्पष्ट प्रभाव लक्षित होता है। सन्त कवियों में प्रथम नाम कबीर का है, जिनकी भाषा 'सधुक्कड़ी' कही गई है। अपने भ्रमण-क्रम में ये मगह एवं मगही भाषा के निकट सम्पर्क में अवश्य आये थे; क्योंकि इनकी भाषा मे मगही का पर्याप्त मिश्रण मिलता है। यथा—

> **कौन ठगवा नगरिया लूटल हो।**
> **चन्दन खाट के बनल खटोला,**
> **तापर दुल्हिन सूतल हो।**
> × × ×
> **कहत कबीर सुनो भाई साधो,**
> **जग से नाता छूटल हो।**

---

१. भोजपुरी के कवि और काव्य, पृ० १८-१९।

२. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी : नाथ-सम्प्रदाय, पृ० १६६-१६८।

इनके अनेक पद मगही में प्रचलित हैं। इनके पदों को इस भाषा में 'कबीरा' कहा जाता है।

सन्त कवियों की परम्परा में कई मगही-कवि हुए हैं, जिनका अति संक्षिप्त विवरण दिया जाता है—

धनी धरमदास[1] :

ये व्रजभाषा, अवधी या भोजपुरी के कवि कहे जाते हैं, पर इनके नाम से अनेक पद मगह में प्रचलित हैं। बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग से 'धनी धरमदास जी की शब्दावली' नामक पुस्तक निकली थी। इसमें भोजपुरी और मगही दोनों भाषाओं के पद हैं। वे मगध के निवासी नहीं थे; पर सम्भव है, अपने गुरु कबीर के साथ मगध में आकर कुछ दिन रहे हों। उन्होंने अपने मगह-आगमन के सम्बन्ध में लिखा भी है—

'कासी से मगहर आये, कोई नहिं चिन्हिया।'[2]

इनका निम्नांकित मगही-सोहर मगह-क्षेत्र में बहुत प्रचलित है—

गंगा रे जमुना के ऊँचा पनघटवा हो रामा,
अहो रामा हो, ओहि घाटे बिआधा चिड़ियाँ फँसावऽहइ हो राम।
तोहरा पुछिअउ बिआधा दिलवा के बतवा हो रामा,
अहो रामा हो, कउन नगरिया हमरा के भेजबऽ हो राम।
तोहरा रे कहिअउ चिड़ियाँ दिलवा के बतवा हो राम।
अहो राम हो, कायापुर नगरिया तोहरा के भेजब हो राम।
मास मोरा खइहऽ बिआधा खलड़ी जोगा के रखियऽ हो राम।
अहो राम हो, अरे ओही रे खलड़िया हरिगुन गएतइ हो राम।
'धरमहिंदास' गुरु से अरजिया करबन हे सखिया।
अहो राम हो, अरे गुरु के चरनवा गहले रहबइ हो राम।

बद्रीदास :

ये पटना नगर के सालिमपुर मुहल्ले में रहते थे। ये जाति के कायस्थ थे। मगही में इनके अनेक गीत प्रचलित हैं। सत्यसुधाकर प्रेस, पटना सिटी से छपा हुआ (ईसवी सन् १९५२) 'झूमर दिलदार' में इनके अनेक गीत संगृहीत हैं। यथा—निम्नांकित झूमर-गीत देखें—

नइहरा में रही दिन खेलहीं बितौली,
पियवा सुरति भूल गेल सुनु हे सजनी।
अब मोर गवना के दिन निअरैलई,
हम धनि जयबो अकेल सुनु हे सजनी,

---

१. 'मगही के पुरान कवि'—ले० श्री राजेन्द्र कुमार 'यौधेय'।—'बिहान' पत्रिका : अगस्त-सितम्बर, १९५८ : वर्ष १, अंक ४।

२. 'धनी धरमदास जी की शब्दावली' (बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग)

कउन संदेस लेइ पियवा मनइबो,
एही सोंच मन दुखी भेल सुनु हे सजनी।
'बदरी' सनेस हाल कुच्छो नहीं जनली,
नइहरा के लोग दुख देल सुनु हे सजनी।

चन्दनदास :

ये जहानाबाद के रहनेवाले थे। इनके प्रेमी 'बदरीदास' जी की रचना से ऐसा ही पता चलता है—

जब मोही आवे इयाद, गया के जहानाबाद,
अहो अहो प्रेमी।
दिलवा उमड़ी मिलन के धावत रे की।
अहो प्रेमी चन्दनदास अब न मिलन आस,
अहो अहो राम,
'बदरी' नयनवा लोर ढरकावत रे की।

चन्दनदास का एक झूमर निम्नांकित पंक्तियों में उदाहृत है—

दसरथ नन्दना खेलत निज अँगना,
से झुनुर-झुनुर बाजे पैजनियाँ ए सँवलिया, से झुनुर० ॥
× × ×
देखि अनूप छबि लज्जित मदनवाँ,
'चन्दन' हिय करुआई मकनियाँ ए सँवलिया, से चन्दन० ॥

अमरितदास :

इनके अनेक गीत 'झूमर दिलदार' में छपे हुए हैं। ये मगह के गाँवों मे बहुत प्रचलित हैं। एक मगही-गीत निम्नांकित है—

छोरी हम गोरिया चढ़न यही अटरिया,
चढ़ाइयो न ले रे बलमुआ, चढ़ाइयो०।
चंचल चित न थीर रहतु हैं,
सम्हालियो न ले रे बलमुआ, सम्हालियो० ॥
× × ×
'अमरितदास' दुख जनम बिताओली,
बचाइयो न ले रे बलमुआ, बचाइयो० ॥

श्री बोधीदास एवं अन्य पाँच साधुओं की वाणियों के हस्तलिखित संग्रह का पता चला है। ये संग्रह सौ वर्ष पूर्व के हैं, जो अप्रकाशित हैं।

कवि हरिनाथ[1] :

सन्त तुलसीदास की रामायण के प्रचार के बाद मगह के लोगों का 'अवधी' की ओर झुकाव हुआ था। गया जिले के शाकद्वीपीय ब्राह्मण के घर में उत्पन्न कवि 'जनहरि-

१. 'मगही के पुरान कवि' : ले० श्री रा० कु० 'यौधेय'।
—बिहान-पत्रिका : फरवरी, १९५९, वर्ष १, अंक ६।

नाथ' ने अपनी 'ललित रामायण' की रचना अवधी मे ही की। परन्तु मगही में भी इनके कुछ गीत उपलब्ध होते हैं। ये जहानाबाद स्टेशन से पाँच कोस पश्चिम 'पाठक-बीघा' गाँवों के रहनेवाले थे। टेकारी से सटे पश्चिम अहियापुर गाँव की ठाकुरबाड़ी मे ये रहते थे। इनका 'ललित भागवत' भी छपा था। मगही के नमूने के रूप मे इनका निम्नांकित 'सुमंगली-गीत' प्रस्तुत है—

जनकपुरी सुखदाइक सब गुनलाइक हे।
जँहवाँ बसत मिथलेस से हरि गुन गाइक हे।
जनक कुँअर वरभामनी सखी धनदामनी हे।
जिनकर चरन पराग सेवे सुर कामनी हे।
× × ×
जनक नगर नर नागरी मंगल गावित हे।
करित सुमंगलचार जनक हरखावित हे।

कवि भिभेकानन्द :

ये बिहारशरीफ के रहनेवाले थे। इन्होंने अनेक 'हरिकीर्त्तन' मगही मे लिखे। वे बहुत प्रचलित हैं। यथा—

काया नगरिआ में लागल बजरिया सउदा खरिदबइ ना।
सत्तगुरु चललन सउदा खरीदे खुल गेलइ हटिया ना।
सत्तगुरु चललन बाँधी गेठरिया सउदा खरीदी ना।
काया नगरिया में बसल डकएतवा, खोलइ गेठरिया ना।
कहथी 'भिभेखानन्द' मती भूल मती भूल हमरो अरजिया ना।
आवित-जाइत कोइ न देखलक झूठो पिरितिआ ना।

इनके अतिरिक्त मगही में पद लिखनेवाले अन्य सन्त कवियों के नाम है—बाबा कादमदास, बाबा सोहंगदास, बाबा हेमनाथदास, कवि खंगबहादुर आदि। कुछ दिनों पहले जमुआँवा तथा गरुआ के भी अनेक सन्त कवि हुए। बिलारी (पटना) के महन्त बाबा कासीदास द्वारा रचित 'खेमराज-भूषण' नामक पुस्तक की पाण्डुलिपि बिहार-राष्ट्र-भाषा-परिषद् को मिली है। इन्होंने मगही मे कुंडलियाँ और छन्दोबद्ध कविताओं की रचना की है।

इस प्रकार मगही में सिद्ध-साहित्य से लेकर सत-साहित्य तक साहित्य-रचना की अविच्छिन्न परम्परा चली है। पर यह इतनी समृद्ध नहीं रही कि लोग विशेष रूप से इस पर ध्यान देते। अनेक कवियों के सम्बन्ध में तो यह विवाद ही है कि ये भोजपुरी कवि या मैथिल या मगही कवि हैं। इनपर सबके दावे है। अतः इस सम्बन्ध मे स्वतंत्र खोज की अपेक्षा है।

उपर्युक्त कवियों के अतिरिक्त अन्य कवियों की रचनाएँ भी अप्रकाशित रूप में उपलब्ध हैं। यथा—

नवादा जिले मे एक धोबी-रचित 'रामायण' प्रसिद्ध हो चुकी है। गया के पास के एक कुम्हार की कृति 'रामायण' भी हस्तलिखित रूप में बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना को मिली है।

ग्राम हरसेनी, परगना तेलहाड़ा, जिला पटना के श्रीप्रयाग लाल की कृपा से मुझे मगही की एक रामायण का पता चला है। यह कैथी लिपि मे हस्तलिखित है। इस रामायण के रचयिता का नाम—श्री जवाहिर राम है, जो उल्पट बगान, कलकत्ता मे काम करते थे। इन्होंने रामायण की इस हस्तलिखित प्रति मे अपना नाम, रचना-तिथि एवं पता निम्नांकित रूप में दिया है :

'जवाहिर राम, पो० कलकत्ता, उल्पट बगान,
जिमीदार कचहरी मो खास; सो जानब।'
'मिति बैसाख सुदी १० मी, सन् १२९७ साल।'
(यह फसली साल है।)

इस रामायण मे रामजन्म की कथा एवं भरत-विलाप की कथा है। रामायण के अतिरिक्त 'रामरतन-गीता' एवं 'हनुमान-चालीसा' की रचना भी इन्होंने की है। इनकी सारी रचनाएँ दोहा-चौपाई मे हैं। रचना के अन्त मे सर्वत्र ये लिखते हैं—

'पण्डित जन सो विनती मोरी,
टूटल अच्छर लेब जब जोरी।'
लिखा रहे बहुत दिन, मेटि सके नहि कोई।
लिखनीहारा बावरा, गलि गलि माँटि होई॥

ऐसी अनेक अमूल्य कृतियों का पता चल सकता है, जो अभी तक अन्धकारावृत हैं।

नवीन साहित्य

अठारहवीं शताब्दी से फिर मगही मे छिटपुट रूप से कार्यारम्भ हुआ। इस क्षेत्र में ईसाई मिशनरियों के कार्य श्लाघनीय हैं। उन्होंने जनता मे प्रचारार्थ, मगही में बाइबिल का अनुवाद किया। यह सिरीरामपुर मिशन में सुरक्षित है। पलामू के किसी चेरो राजा का १७८४ ई० का मगही में लिखित एक डॉकुमेंट, डाल्टेनगंज के जिलाकोर्ट के रेकॉर्ड के रूप में विद्यमान है।[१]

मगही-साहित्य-रचना-सम्बन्धी आधुनिक प्रयास हिन्दी और मगही—दोनों माध्यमों से हुए। हिन्दी के अंग के रूप में मगही को साहित्यिक मान्यता इस युग में तब मिली, जब सन् १९४३ ई० में मैट्रिक-परीक्षा के लिए पटना-विश्वविद्यालय के पद्य-संग्रह में स्वर्गीय श्रीकृष्णदेव प्रसाद की लिखी हुई 'जगउनी' और 'चाँद' शीर्षक कविताएँ शामिल की गईं। ये पटना हाईकोर्ट मे एडवोकेट थे। इन्होंने स्वयं मगही कविताओं, गीत आदि की रचनाएँ कीं और इन्हीं की प्रेरणा से अन्य लोग भी मगही-साहित्य-निर्माण की दिशा में अग्रसर हुए। इनका निबन्ध 'मगही-भाषा और साहित्य' बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना से प्रकाशित 'पंचदश लोकभाषा-निबन्धावली' नामक ग्रन्थ में संगृहीत है। मगही-साहित्य-सम्मेलन (एकंगरसराय, पटना) के अवसर पर ६ जनवरी, १९५७ को श्रीरमाशंकर शास्त्री ने 'मगही' नामक एक पुस्तिका प्रकाशित की, जिसमें 'मगही-भाषा' पर संक्षिप्त रूप में विचार प्रस्तुत किया गया है। सन् १९५७ ई० में हिन्दी के माध्यम

१. मगही-संस्कार-गीत, पृष्ठ २८

से, मगही-साहित्य का एक सुव्यवस्थित वैज्ञानिक प्रकाशन सामने आया। यह है प्राचीन मगही-कवि सिद्ध सरहपा का 'दोहाकोश', जिसका सम्पादन एवं अनुवाद महापण्डित राहुल साकृत्यायन द्वारा एवं प्रकाशन बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्, पटना द्वारा हुआ।

इसके बाद तो मगही में अनेक मौलिक प्रकाशन हुए। इन्हें दो भागो में बाँटा जा सकता है—(१) लोक-साहित्य एवं (२) उच्चतर साहित्य।

१. लोक साहित्य :

मगही-लोकसाहित्य के अन्तर्गत कई छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ सामने आईं। इनमें बहुत-से गीत एवं भजन संगृहीत हैं, जो मगही जन-समाज मे बहुत लोकप्रिय हैं। कुछ उल्लेखनीय पुस्तिकाएँ हैं—

(१) श्रीधर प्रसाद मिश्र लिखित 'गिरिजा-गिरीश-चरित' एवं उमाशंकर-विवाह-कीर्त्तन। इनमे शिव-पार्वती के चरित्र का क्रमबद्ध परिचय विनोदपूर्ण शैली मे दिया गया है। इनकी और भी इक्कीस पुस्तिकाएँ प्रकाशित हुईं। यथा—राम-वन-गमन, लंका-दहन, पनघट-लीला, गाँधी-विरह-लहरी आदि। अनेक ग्राम-कवियों ने ऐसी अनेक छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ प्रकाशित की हैं, पर अभी तक इनकी कोई सूची तैयार नहीं की जा सकी है। अतः इनका उल्लेख यहाँ सम्भव नहीं।

(२) मगही की विविध पत्रिकाओं में संगृहीत मगही-लोकसाहित्य के विविध रूप सर्वदा प्रकाशित होते रहे हैं। यथा—कथा, गीत, कहावत, मुहावरे, शब्दकोश आदि।

(३) 'बिहान' पत्रिका का एक 'मगही-लोकगीत'-अंक भी प्रकाशित हो चुका है। इसमें विविध अवसरों पर गाये जानेवाले अनेक मगही-गीत संगृहीत है।

(४) लोकसाहित्य-संग्रह एवं प्रकाशन की दिशा में बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद् का कार्य अत्यन्त श्लाघनीय है। इसने लोकभाषा एवं साहित्य के अध्ययन-अनुसन्धान के लिए एक अलग विभाग ही खोल रखा है, जिसके सर्वप्रथम निर्देशक डॉ० विश्वनाथ प्रसाद रहे। इनके निर्देशन एवं सम्पादकत्व मे 'मगही-संस्कार-गीत' का प्रकाशन सितम्बर, १९६२ ई० मे यहाँ से ही हुआ।

(५) 'झाँझ के झनक' नामक एक लोकगीत-संग्रह श्रीमुनीश्वर राय 'मुनीश' के सम्पादकत्व मे निकला है। इसके गीत बड़े सुन्दर एवं उपयोगी हैं।

(६) श्रीजयनाथपति ने, श्रीमहावीर सिंह के साथ मिलकर 'मगही मुहावरे और बुझौवल' प्रकाशित कराया था।

(७) डॉ० उमाशंकर भट्टाचार्य ने 'मगही-कहावत-संग्रह' नाम की पचास पृष्ठो की एक पुस्तिका प्रकाशित कराई थी।

(८) स्वर्गीय श्रीकृष्णदेव प्रसाद ने 'चाँद' और 'जगउनी' तथा अन्य बहुत-से मगही-गीत प्रकाशित कराये थे।

२. उच्चतर साहित्य :

कविता—काव्य-रचना के क्षेत्र में **श्री रामप्रसाद 'पुण्डरीक'** की मगही-कविताएँ विशेष महत्त्व रखती हैं। सन् १९५२ ई० मे 'पुण्डरीक-रत्नमालिका' के नाम से इनकी काव्य-रचनाएँ प्रकाशित हुईं। इनमें हिन्दी के साथ मगही-कविताएँ भी थीं। इस

पुस्तक के प्रथम दो भागों मे हिन्दी की कविताएँ और तृतीय भाग मे मगही की कविताएँ थीं। इनकी कविताओं मे लोक-साहित्य एवं शिष्ट-साहित्य की सन्धिरेखा दिखाई पडती है। इनमे विषय प्रायः धार्मिक एवं राष्ट्रीय है, पर लोकरुचि के अनुकूल लयों एवं छन्दों का प्रयोग हुआ है। यथा—सोहर, जँतसारी, झूमर, बारहमासा, होली, बिरहा, चैती, कजरा आदि।

निम्नांकित 'स्त्रीकर्त्तव्य' शीर्षक मगही-गीत सोहर की धुन में है—

विनय करौं कर जोरि अरज सुनि लेहु न हे।
बहिनों सुनि लेहु अरज हमार परन करि लेहु न हे।
कलह करब नहिं भूलि कलह दुख कारण हे।
बहिनो कलह तुरत घर फोरि विपति गुहरावत हे।[1]

बिरहा, आल्हा, कुअँरविजयी, सोहर आदि की धुन मे इन्होंने श्रीमद्भगवद्गीता का मगही में अनुवाद किया है। यथा—'सोहर' मे 'स्थितप्रज्ञ' की परिभाषा देखिए :

अर्जुन पुछलन—

कउन हइ पुरुषवा अइथिर बुधिया, डूबल परमेश्वर में हे।
भगवन्! कइसे बोले-चाले अइथिर बुधिया,
कइसे उठे कइसे बइठे हे॥२।५४॥

श्रीकृष्ण भगवान् कहलन—

मनवाँ में रहे जब कामना न, भोगवा बिलसवा के हे।
ललना! हिरिदा में हरदम अनन्दवा,
त होवे बुधिया अइथिर हे॥२।५५॥[2]

पुण्डरीक जी ने गीता के अतिरिक्त 'मेघदूत' का भी मगही-अनुवाद किया है।

श्रीरामसिंहासन विद्यार्थी-कृत कविताओं का संग्रह 'जगरना' के नाम से प्रकाशित हुआ है। इसमे राष्ट्र-निर्माण, ग्रामोद्धार, सर्वोदय आदि विषयो के साथ पर्व-त्योहार, प्रेम, सौंदर्य, विरह, प्रकृति-चित्रण आदि सम्बन्धी कविताएँ भी हैं। 'जगरना' काव्य मे जीवन का सपना, आदर्श, हर्ष-विषाद सभी भावपूर्ण शैली में उपस्थित किये गये हैं। काव्यक्षेत्र मे इनका यह संग्रह अभिनन्दनीय है।

श्रीसुरेश दूबे 'सरस' की कविताओं का संग्रह 'निहोरा' नाम से प्रकाशित हुआ है। इसमें कविताएँ बड़ी भावपूर्ण एवं सरस है। श्रीरामदयाल पाण्डेय ने इसके सम्बन्ध में ठीक ही कहा है --"'निहोरा' की रचनाएँ स्वयं ही इतनी आकर्षक है कि इन्हें देखने के लिए 'निहोरा' करने की आवश्यकता नहीं।"

उपन्यास :

नवादा के मुख्तार श्रीजयनाथपति ने 'सुनीति' एवं 'फूल बहादुर' के नाम से दो उपन्यास लिखे थे। इन उपन्यासों के विषय सामाजिक हैं। ये दोनों पुस्तकें अब भी यत्र-तत्र प्राप्य है।

---

१. पुण्डरीक-रत्नमालिका, पृष्ठ ४६

२. श्रीमद्भगवद्गीता (पद्यानुवाद), पृष्ठ ८१

नाटक :

अक्टूबर, १९६० ई० में डॉ० रामनन्दन (पटना-विश्वविद्यालय) का प्रथम ऐतिहासिक नाटक 'कौमुदी-महोत्सव' प्रकाशित हुआ। यह तीन अंकों का नाटक है। इसका मूल कथानक यह है—'मगधराज सुन्दरवर्मन के पुत्र कल्याणवर्मन को परिस्थिति-वश वनवासी बनना पड़ा था। उसका पालन-पोषण एक दासी ने किया था। जब वह बड़ा हुआ, तब लोग उसे वापस ले आये और मगध के राज-सिंहासन पर बैठाया। सूरसेन देश के राजा कीर्त्तिसेन की पुत्री कीर्त्तिमती से, उसे राजगद्दी पर बैठने के पूर्व ही, प्रेम हो गया था। उससे उसने विवाह कर लिया।' इन घटनाओं का सुन्दर चित्रण नाटककार ने किया है।

राजा कल्याणवर्मन के सम्मुख आश्विन-पूर्णिमा की शुभचन्द्रिका में उपर्युक्त घटना पर आधारित नाटक खेला गया। उसी रात से पाटलिपुत्र मे 'कौमुदी-महोत्सव' प्रतिवर्ष मनाया जाता है।

यह नाटक अभिनयोपयोगी है। इसके संवाद बड़े सशक्त, प्रवाहपूर्ण एवं मगही की स्वाभाविक प्रकृति के अनुकूल हैं। नाटक में शृंगार, वीर और हास्य-रसों का अच्छा संयोग हुआ है।

पत्र-पत्रिकाएँ :

सर्वप्रथम **'तरुणतपस्वी'** नामक त्रैमासिक पत्रिका श्रीकान्त शास्त्री (एकंगर-सराय, पटना) के संपादकत्व मे प्रकाशित हुई। इसमें खड़ी बोली के साथ मगही-गद्य-पद्य की रचनाएँ मुद्रित होने लगीं। यह पहला अवसर था, जब मगही का गद्य के रूप में प्रकाशन आरम्भ हुआ। यही पत्रिका बाद में त्रैमासिक 'मागधी' मे रूपान्तरित हो गई। इसके सम्पादक श्रीकान्त शास्त्री एवं रामवृक्ष सिंह 'दिव्य' थे। कुछ दिनों के बाद इसका प्रकाशन बन्द हो गया। फिर सन् १९५२ ई० में मगही-परिषद् के तत्त्वावधान में यह पत्रिका पटना से प्रकाशित होने लगी। कुछ ही दिनों में इसका निकलना बन्द हो गया। सन् १९५५ ई० के नवम्बर में पं० श्रीकान्त शास्त्री एवं ठाकुर रामबालक सिंह के सम्पादकत्व में पुनः **'मगही'** नाम की मासिक पत्रिका प्रकाशित होने लगी। इसका प्रकाशन बिहार-मगही-मण्डल के तत्त्वावधान में होता था। कुछ अंकों के बाद इसका प्रकाशन बन्द हो गया।

सन् १९५५-५६ ई० में औरंगाबाद (गया) से 'महान मगध' के ९ या १० अंक श्रीगोपाल मिश्र केसरी के सम्पादकत्व मे निकले। इसमें मगही के साथ मैथिली और भोजपुरी की रचनाएँ भी प्रकाशित होती थीं। इसी में पं० श्रीकान्त शास्त्री का मगही-नाटक 'नयागाँव' छपा था, जो बड़ा ही लोकप्रिय हुआ। फिर इसका भी प्रकाशन बन्द हो गया।

इसके बाद बिहार-मगही-मण्डल के तत्त्वावधान में **'बिहान'** नामक मासिक शोध-पत्रिका प्रकाशित होने लगी, जिसका प्रकाशन पं० श्रीकान्त शास्त्री एवं डॉ० रामनन्दन के सम्पादकत्व में अभी तक हो रहा है।

पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित रचनाएँ :

कथा-साहित्य—इन पत्रिकाओं मे अनेक कहानीकारो की कथा-कहानियाँ छपी हैं। इनमें कुछ उल्लेखनीय कहानीकारों के नाम हैं—सर्वश्री राधाकृष्ण, लक्ष्मण

प्रसाद दीन, मैथिलीशरण विद्यार्थी, पुष्पा अर्याणी, सुरेश प्रसाद सिंह, रामनन्दन, प्रेमेन्दु, विजयकुमार मिश्र, शंभुनाथ जायसवाल, पांडेय नर्मदेश्वर सहाय, हरिदास 'ज्वाल', पालिपुत्त, रवीन्द्रकुमार, तारकेश्वर भारती, रामनरेश पाठक, शिवेश्वर प्रसाद अम्बष्ठ, जयेन्द्र, लाला ठाकुर प्रसाद, सत्यदेव शान्तिप्रिय, राधाकान्त भारती, बदरीनारायण मिश्र, सूर्यनारायण शर्मा, शालिग्राम सिंह आदि।

इनकी कहानियों में जीवन के पारिवारिक, सामाजिक, दार्शनिक, धार्मिक, राष्ट्रीय आदि पक्षों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। यथा—श्रीराधाकृष्ण की कहानी 'ए नेउर तू गंगा जा' में ईर्ष्या-जलन के कुफल को एवं मेल की महिमा को दर्शाते हुए अप्रत्यक्ष रूप से 'मगह' की दुर्दशा का कारण फूट को बताया गया है। श्रीरवीन्द्र कुमार द्वारा रचित 'दुरवा', 'मन के पंछी' तथा 'सभ्मे सोआहा' में दलित श्रमिक-वर्ग के जीवन की मार्मिक झाँकी दी गई है। श्रीतारकेश्वर भारती की रचना 'नैना-काजर' में मनोवैज्ञानिक आधार अपनाकर सामाजिक कुरीतियों पर व्यंग्य किया गया है। श्रीमती पुष्पा अर्याणी की 'बोझ' नामक कहानी में 'तिलक' की सामाजिक कुप्रथा पर करारी चोट की गई है। उनकी अन्य कहानियों—'रामसखी', 'फूलमनी' आदि में भी सामाजिक कुरीतियों पर व्यंग्य किया गया है। प्रो० रामनन्दन की 'लुट गेलिये', श्रीविजयकुमार मिश्र की 'जस बाप तस बेटा', श्रीलक्ष्मण दीन की 'आफत की पुड़िया' आदि हास्य-व्यंग्य-विनोदपूर्ण कहानियों के अच्छे नमूने हैं। श्रीहरिदास 'ज्वाल' की 'सूरजोपासना' पौराणिक कथावस्तु पर आधारित है। इसमें 'सूर्य-उपासना' के धार्मिक पक्ष पर प्रकाश डाला गया है।

इन पत्र-पत्रिकाओं में छपी मगही-कहानियों में विषय के वैविध्य, भाषा एवं भाव की सफल व्यजनाओं से स्पष्ट पता चलता है कि आज के मगही-कहानी-साहित्य का स्तर काफी उँचा उठ चुका है।

नाटक :

इन पत्र-पत्रिकाओं में कहानियों की तरह नाटकों की संख्या अधिक नहीं है। फिर भी, जो नाटक छपे हैं, वे उल्लेखनीय हैं। पं० श्रीकान्त शास्त्री का 'नयागाँव' ग्रामीण जीवन के लिए नवजागरण का सन्देश देता है। प्रो० रामनन्दन का 'लफन्दर भगत' तथा 'खइनी' नामक प्रहसन हास्य की व्यंजना में पूर्ण सफल है। प्रो० वीरेन्द्र प्रसाद सिंह के 'विप्लव के थारी परसाल हइ' में सामाजिक कुप्रथा पर करारा व्यंग्य है। इनके अतिरिक्त अन्य उल्लेखनीय प्रहसन हैं—श्रीउदय का 'सेनुरदान', प्रो० शत्रुघ्न प्रसाद शर्मा का 'गुरु-दक्षिणा', श्रीशम्भुनाथ जायसवाल का 'चलनी दुसलक बढ़नी के', श्रीमती बरनवाल का 'मुड़वा मूसन', श्रीमुन्नी प्रसाद का 'कुबेर के भण्डार', 'ओकील के परवाना' आदि।

निबन्ध :

इन पत्र-पत्रिकाओं में अनेक व्यक्तिगत तथा ज्ञानवर्द्धक निबन्ध आरम्भ से ही प्रकाशित होते रहे हैं। यथा—डॉ० शिवनन्दन प्रसाद के व्यक्तिगत निबन्ध 'मञ्जर' तथा 'मुरगा आउ बिहान', और प्रो० रामनन्दन का 'परिकरमा' उल्लेखनीय हैं। भ्रमण, यात्रा एवं शिकार से सम्बद्ध निबन्धों में डॉ० विश्वनाथ सिंह का 'अहेर' तथा श्रीलक्ष्मण

प्रसाद का 'घुमक्कड़ के डायरी' उल्लेखनीय हैं। ज्ञानवर्द्धक निबन्धों की संख्या तो बहुत है। यथा—डॉ० एस्० ए० मजीद का 'मगध के मूर्त्तिकला', डॉ० विन्देश्वरी प्रसाद सिन्हा का 'अम्बपाली' तथा 'मगध के बड़प्पन आउर हम्मर जिम्मेदारी', डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल का 'मगही भाषा आउर साहित्य', प्रो० रामनन्दन का 'मगही ककहरा' और 'पाठ्यक्रम में मगही'; डॉ० नर्मदेश्वर प्रसाद का 'ललित कला के शिक्षा', प्रो० कामेश्वर प्रसाद अम्बष्ठ का 'सबसे पहिले पूजा केकर होवे के चाही', भिक्खु जगदीश काश्यप का 'पटना कइसे बसल', श्री सुमन वात्स्यायन का 'पुराचीन मगही-साहित्य', प्रो० रमाशंकर शास्त्री का 'मगही', श्रीहरिदास 'ज्वाल' का 'मगही के मनोरंजन', 'महान् मगध', 'हम्मर साल-संवत्', 'मगही के मुहावरा', श्रीयौधेय का 'मगही-व्याकरण-विचार', श्रीमती सम्पत्ति अर्याणी का 'मगही-व्याकरण' एवं 'बुद्ध भगवान के सासन', ठाकुर रामबालक सिंह का 'असोक के लेख', प्रो० कपिलदेव सिंह का 'मगही-भाषा आउर साहित्य', डॉ० सूर्यदेव शास्त्री का 'मगही-जन-जीवन में जोगी', श्रीगणेश चौबे का 'कैथी लिपि के संकेतोक्ति', श्रीविश्वनाथ प्रसाद जगदीशपुरी का 'लोकनाटक आउर रंगमंच', डॉ० रामशरण शर्मा का 'पहिला मगध समराज के उठान' आदि। इन ज्ञानवर्धक निबन्धों के विषय इनके शीर्षकों से ही स्पष्ट हैं।

इनके अतिरिक्त परिचयात्मक निबन्ध भी लिखे गये। यथा—डॉ० विन्देश्वरी प्रसाद सिन्हा का 'हम्मर पुरखा-पुरनिया' क्रम मे 'स्वर्गीय कृष्णदेव बाबू का परिचय', यौधेय का 'मगही के पुरान कवि', स्वर्गीय कृष्णदेव प्रसाद का 'हम्मर पुरखा-पुरनिया', श्रीसुरेश दूबे 'सरस' का 'मगही-कवि कासीदास', डॉ० विन्देश्वरी प्रसाद सिन्हा का 'मगध में भगवान् बुद्ध', श्री चतुर्भुजदास का 'भगवान बुद्ध' आदि। इन निबन्धों में मगही के साहित्यकारों के जीवन एवं उनके काव्य तथा महान् पुरुषों के जीवन का परिचय दिया गया है।

पर्व-त्योहार एवं विविध तीर्थ-सम्बन्धी निबन्ध भी इन पत्र-पत्रिकाओं में मिलते है। यथा—श्रीरामनारायण शास्त्री का 'सिरी पंचमी परब', श्रीयोगेश्वर प्रसाद सिंह 'योगेश' का 'विजयादसमी', प्रो० रामनन्दन का 'दिवाली के महातम', श्रीहरिदास 'ज्वाल' का 'गोरथगिरि' (मगह का तीर्थ), श्रीशम्भुनाथ जायसवाल का 'बुद्धगया', श्रीसुमन वात्स्यायन का 'नालन्दा-विद्यापीठ' आदि।

कविता :

इन पत्र-पत्रिकाओं में अनेक मगही-कवियों के मुक्तक पद उपलब्ध होते हैं। इन कविताओं एवं गीतों मे अँगरेजी, बँगला, संस्कृत के अनुवाद, प्रकृति के विविध रूपो के चित्रण, ग्रामीण जीवन के अनेक पहलुओं की झाँकियाँ, शृंगार-रस का वर्णन, हास्य-व्यग्य-विनोदपूर्ण चित्रण आदि प्रस्तुत किये गये हैं।

मगही के कवियों में सर्वप्रथम नाम आता है स्वर्गीय श्रीकृष्णदेव प्रसाद का, जिन्होने न केवल 'मगही-काव्य', प्रत्युत 'मगही-साहित्य' का बीजारोपण किया। इनकी काव्य-रचनाएँ दो प्रकार की हैं : (१) अनूदित और (२) मौलिक। इन्होने सर्वप्रथम

अँगरेजी तथा बँगला से अनुवाद करना प्रारम्भ किया, फिर मौलिक रचनाएँ करने लगे। इनकी कविताओं मे प्रकृति के मनोरम रूप-चित्र एवं सामाजिक जीवन के सुन्दर विश्लेषण मिलते हैं। यथा—निम्नांकित पंक्तियों में फागुन की रमणीय छटा देखिए—

आइ गेल मास फगुनवा निरमल स्वच्छ अकास।
पाते-पाते अमवा के झबरे मँजरिया,
कारतरु डरिया परास।
सिमर के लाल-लाल लुल्हुआ सुहावन,
महुआ के पसरे सुवास।[1]

इनकी रचनाएँ शीघ्र ही बिहार-मगही मण्डल के तत्त्वावधान में प्रकाशित होनेवाली हैं।

श्रीश्रीकान्त शास्त्री ने भी उपर्युक्त शैली में अनूदित एवं मौलिक काव्य-रचनाएँ कीं। इन्होंने 'एगो मस्त मगहिया' नाम से 'सिलवर पेनी' का अनुवाद 'चकमक पानी के एकनिया' शीर्षक में किया। कवि रवीन्द्र की कविता 'एकला चलो रे' का मगही-अनुवाद 'अकेले चलू मनुआँ, जो कोई चले ना' शीर्षक मे किया।

इनकी मौलिक काव्य-रचनाओं के विषय विविध हैं। इनमें कहीं कृषक-जीवन का मनोहारी चित्र[2] उपस्थित हुआ है, कहीं 'सावन की छटा[3] के वर्णन में रसधारा ही बहती दिखाई देती है; कहीं १५ अगस्त के 'मुक्ति-दिवस'[4] का सन्देश मिलता है और कहीं ग्रामीण जीवन की विविध अनुभूतियाँ व्यञ्जित होती हैं। इनके काव्य में विविध छन्दों के प्रयोग एवं विविध रसों के उद्रेक मिलते हैं।

इनके अतिरिक्त हिन्दी के अनेक लब्धप्रतिष्ठ कवियों ने भी मगही में काव्य-रचनाएँ कीं। इनमें उल्लेखनीय है—श्रीरामगोपाल शर्मा रुद्र, श्रीगोवर्धन प्रसाद 'सदय', श्रीजगदीश नारायण चौबे आदि। इन कवियों ने प्रायः खड़ीबोली के छन्द और लय मे मगही-कविताएँ लिखीं। इनकी कविताओं में तत्सम शब्दों का प्राधान्य है। यथा—रुद्र जी की निम्नांकित कविता देखें :—

बापू आज कहाँ चल गेलन।
ई पापी धरती पर आके
धरम-पुन्न के जोत जगा के
हमनी सबके चाँद बना के,
अपने आज अमावस भेलन।
सत्त-अहिंसा-बरती बन के
अइसन लगन लगौलन जन के

१. मगही, मार्च, १९५६ ई०
२. बिहान, मई-जून, १९६०; पृ० ९
३. वहीं, अगस्त-सित०, १९५८
४. वहीं

चरखा चक्र बनल मोहन के
भारत के आरत हर लेलन।[1]

श्रीजगदीश नारायण चौबे के 'गाँव के किरिंग'[2] में कल्पना का बाहुल्य, गीतात्मकता एवं स्वाभाविक अभिव्यंजना मिलती है। इस गीत मे उन्होंने प्रकृति का मानवीकरण किया है। श्रीश्यामनन्दन शास्त्री के 'आभास'[3] नामक गीत में रहस्यात्मक संकेत भरे हैं।

उपर्युक्त कवियों की कविताओं एवं गीतों में खड़ीबोली की शब्दावली, छन्दों एवं लयों का मोह दिखाई पड़ता है। इनमे मगही की लोच, सरलता और कोमलता का अभाव रह गया है।

इस अभाव की पूर्त्ति दूसरे वर्ग के कवियों ने की, जिन्होंने लोकगीतों के ही छन्दों और लयों को अपनाया, काव्य-भाषा को मगही की प्रकृति के अनुकूल रखा और ग्रामीण वातावरण की सृष्टि पर पूर्णरूपेण ध्यान दिया। इनमें प्रमुख कवि हैं—डॉ० रामनन्दन, रामनरेश पाठक, रामचंद्र शर्मा 'किशोर', हरिश्चन्द्र प्रियदर्शी, डॉ० शिवनन्दन प्रसाद, सुरेश दूबे 'सरस', सुरेन्द्र प्रसाद 'तरुण', राजेन्द्र 'यौधेय', रामसिंहासन विद्यार्थी आदि।

यथा—डॉ० रामनन्दन की 'सगखोंटनी'[4] शीर्षक कविता प्रस्तुत है, जिसमें ग्रामीण वातावरण के अनुकूल विषय का चुनाव, शब्दों का चयन एवं छन्द-योजना हुई है—

निहुकि निहुकि टुंगइ साग सुघड़ साँवरी॥ निहुकि०॥
कारी-कारी केसिया के लटिया लरकलइ,
केरइ लतरि जइसे छुए ला ललकलइ,
बुँटिया झबरिया के नयन होलइ टुसे टुसे,
अँगिया के ढिलिर ढिलिर बँदिए बिल्हमलइ,
नयना मिलइते कूर हथवा लफावइ,
लोमइ हँसुइये बेल्लाग बनल बाँवरी॥निहुकि०॥

रामनरेश 'पाठक' के गीतों में तो जैसे 'रस-गगरी' भरी है। इसीसे वे मगही के 'गीतिकवि' कहे जाते हैं। इनके गीत मगध-जनपद की आत्मा का सच्चा स्वरूप प्रस्तुत करने में समर्थ हैं। अलंकारों की सफल योजना, प्रकृति एवं मानवीय भावों के आदान-प्रदान तथा ग्रामीण जीवन की सरल-स्वाभाविक अनुभूतियाँ इनके गीतों में अत्यधिक सप्राणता ला देती हैं। यथा—'अधरतिया के गीत'[5] देखें—

नदिया के तीरे तीरे, पीपरा के छैयाँ तरे,
मनमा में रोइए-रोइए बँसुली बजावइत ही,
केकरो बुलावइत ही।

---

१. मगही, नवम्बर, १९५५ ई०
२. मगही, अक्टूबर, १९५६ ई०
३. वही, फरवरी, १९५६ ई०
४. विहान, मई, १९५८ ई०
५. मगही, नवम्बर, १९५५ ई०

नेहिया के बगिया में लोढ़इत फुलवा,
गड़ि गेलई पोरे-पोरे, बिछी अइसन शुलवा,
सेई रे दरदिया के गीतिआ बनाके भइया,
बँसुली में फुँकि-फुँकि जिउआ जुड़ावइत ही ।।केकरो०।।

डॉ० शिवनन्दन प्रसाद के गीत 'भोरे-भोरे' में प्रभातकालीन प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ ग्रामीण जीवन के सहज रूप को प्रस्तुत किया गया है—

भेल भिनसार, जगे के बेला।
फूटल किरिन, फटल पौ,
जागल अब बुधुआ अलबेला।
पंछी मंगल गीत सुनावथ
भौंरा सब सहनाई बजावथ
हरसिंगार के पेड़ राह में,
उज्जर केसर फूल बिछावथ
मँगरू के अँगना में लगलइ, लड़कन सबके मेला

धुँआ उठइ छप्पर-छप्पर से
भजन कढ़ रहल अधर-अधर से
सुकनी बुढ़िया पर एतवरिया,
भोरे-भोरे लगलइ बरसे।
हमुँ सोच रहली रजाई में, ओह! उठूँ अभिए काहे ला?

इस प्रकार मगही की पत्र-पत्रिकाओं मे अनेक कवियों के बड़े भावव्यंजक, सरस, ग्रामीण जीवन एवं वातावरण को चित्रित करनेवाले गीत एवं कविताएँ बहुलता से प्रकाशित होती रही हैं। यहाँ स्थानाभाव से सबका विस्तृत परिचय नहीं दिया जा सकता, और न गीतों को ही उदाहृत किया जा सकता है। अतः कुछ और कवियो के नाम-भर देकर सन्तोष करना पड़ता है। यथा—प्रो० केसरी कुमार, श्रीलक्ष्मण प्रसाद दीन, सरयू प्रसाद 'करुण', 'योगेश', कुमारी राधा, श्रीयमुना प्रसाद शर्मा, 'ज्वाला', श्रीकामेश्वर शर्मा 'नयन', पार्वती रानी सिन्हा, धर्मशीला देवी, शशिकला आदि।

मगही-साहित्य के विकास का एक बड़ा माध्यम 'आकाशवाणी' का पटना-केन्द्र है, जहाँ से मगही के विविध साहित्य-रूपों की रचना को प्रोत्साहन दिया जाता है। ये रचनाएँ यहाँ से प्रसारित की जाती हैं। इनके अतिरिक्त ग्राम-गोष्ठियों, ग्राम के चौपालों, ग्राम-सम्मेलनों आदि में मगही के साहित्यकारों को अपनी प्रतिभा के प्रदर्शन का अच्छा अवकाश मिलता है।

उपसंहार :

उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि क्रमशः आधुनिक मगही-साहित्य का गद्य-पद्य क्रमबद्ध एवं सुव्यवस्थित शैली में विकसित हो रहा है। समय की गति के साथ विकास की सम्भावनाएँ बढ़ती जायेंगी।

मगही-साहित्य के विकास-कार्य में बिहार-मगही-मण्डल का कार्य श्लाघनीय है। इसीके तत्त्वावधान में मगही की पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होती रही हैं, जिनमें मगही के साहित्यकार अपनी रचनात्मक प्रतिभा को प्रकाश में लाने का अवकाश पाते रहे हैं। इस संस्था का कार्य मूलतः दो रूपों मे चल रहा है—(१) इसके तत्त्वावधान में प्राचीन परम्परागत साहित्य के संकलन का कार्य हो रहा है। (२) मगही-भाषा में युगोचित नया साहित्य लिखा जा रहा है। इस प्रयत्न का उद्देश्य यही है कि मगही के प्राचीन साहित्य एवं नवीन रचनाओं की सम्भावनाएँ देखकर उसे भी साहित्यिक मान्यता एवं प्रतिष्ठा प्रदान की जाय। बिहार-मगही-मण्डल की योजना यह है कि वह मगही की रचनाओं को क्रमशः पुस्तकाकार रूप प्रदान करे। यह कार्य अभी कुछ अंशों में ही सफल हो सका है, पर आशा है कि भविष्य मे मण्डल की यह योजना अधिक सफल होगी।

नवम अध्याय

मगही-लोकसाहित्य का साहित्यिक सौन्दर्य

लोकसाहित्य में साहित्यिक सौन्दर्य का अन्वेषण एक दुष्कर कार्य है; क्योंकि सामान्यतया 'लोकसाहित्य' एवं 'शिष्ट साहित्य' के पार्थक्य का आधार ही 'कलात्मक सौन्दर्य का अभाव या सद्‌भाव' होता है। पर 'अनगढ़' व्यक्तियों द्वारा निर्व्याज-भाव से गढ़े गये लोकसाहित्य में 'कलात्मक सौन्दर्य' का सर्वथा अभाव नहीं होता। कारण, 'सौन्दर्य-भावना' मानव-जीवन की एक सात्त्विक एवं शाश्वत 'वृत्ति' है और यह अप्रशिक्षित व्यक्तियों के जीवन में भी पूर्णतः सक्रिय रहती है। यही कारण है कि उनके अपरिपक्व मस्तिष्क पर सहज ही द्रवित हो जानेवाले हृदय से फूटे उद्‌गारों में भी एक विशिष्ट सौन्दर्य होता है। इस 'सौन्दर्य' में उस 'कृत्रिम कलात्मकता' का किंचित् अभाव अवश्य होता है, जो शिष्ट साहित्य में सायास या सचेष्टता के फलस्वरूप उद्‌भूत होती है, पर जहाँ तक साहित्य के चरमलक्ष्य 'रस-परिपाक' का सम्बन्ध है, लोकसाहित्य शिष्ट साहित्य से अधिक सक्षम होता है।

हम जिसे साहित्यिक सौन्दर्य कहते हैं, उसके दो स्थूल विभाग किये जाते हैं— भावपक्ष एवं कलापक्ष। भावपक्ष में वर्ण्य वस्तु के स्वरूप एवं भावगत सौन्दर्य पर विचार किया जाता है एवं कलापक्ष में उसकी संप्रेषणीयता को प्रभावशाली बनानेवाले रूपात्मक तत्त्वों (Formal elements) पर।

मगही-लोकसाहित्य में व्यापक जीवनानुभव

लोकसाहित्य की भावराशि का अनुमान लगाना कठिन है। शिष्ट साहित्य की तरह उनकी भाव-दिशाएँ सीमित एवं उचित-अनुचित के भेदोपभेद से आबद्ध नहीं होतीं। साधारणतया जीवन का प्रत्येक क्षण उनमें मूर्त्त हो उठता है। जीवन में सुख-दुःख, राग-विराग आदि के क्षण हमेशा आते रहते हैं। इन क्षणों मे मनुष्य की भावनाएँ पूर्णतः वेगशील हो जाती हैं और हर्ष या शोक से पूर्ण नैसर्गिक उद्‌गारों के रूप मे फूट पड़ती है। सुख-दुःख के इन क्षणों की न तो सीमा ही कूती जा सकती है और न इनका वर्गीकरण ही किया जा सकता है। ये अनन्त हैं और इनके रूप अनन्त हैं। प्राकृतिक सुषमा को देखकर जहाँ मानव-मन विमुग्ध होता है, वहाँ उसकी भयंकरता से संत्रस्त भी होता है। दैनिक जीवन की बहुत-सारी घटनाएँ आनन्द, शोक, विस्मय, अश्रु, कम्पादि का उद्रेक करनेवाली होती हैं। फिर सामाजिक परिवेश में भी कई घटनाएँ ऐसी आती हैं, जो मानव-मन को तरलित एवं उसकी वृत्तियों को गतिशील कर देती हैं। ऐतिहासिक घटनाओं एवं राजनीतिक परिवर्त्तनों के विषय में भी यही बात कही जा सकती है। लोकसाहित्य की यह विशेषता 'मगही-साहित्य' में भी पूर्णतः वर्त्तमान है और उसमें अभिव्यञ्जित व्यापक जीवनानुभव के रूप में परिलक्षित होती है। सामान्यतया मानव-जीवन का कोई भी पक्ष ऐसा नहीं है, जो मगही-लोकसाहित्य में चित्रित होने से

शेष रहा हो। यह अवश्य है कि इस चित्रण में हृदय की संवेदनाओं का ही एकच्छत्र साम्राज्य है, निर्गुण पदों को छोड़ प्रौढ़ मस्तिष्क के फलस्वरूप उद्भूत होनेवाले चामत्कारिक तत्त्वों का वहाँ अभाव है।

मगही-लोककथाओं मे जो जीवनानुभव व्यक्त हुए है, उनका सम्बन्ध मुख्यतः तीन से है—१. उन स्थितियों के चित्रण से, जो जीवन मे किसी वस्तु या घटना के धार्मिक महत्त्व का प्रतिपादन करती हैं। २. उन स्थितियों के चित्रण से, जो जीवन के नैतिक पक्ष के उत्कर्ष पर प्रकाश डालती हैं एवं ३. उन स्थितियों के चित्रण से, जो जीवन के मनोरंजन-पक्ष से सम्बन्धित हैं। इन तीनों के उदाहरण-स्वरूप 'जितिया के महातम', 'धरम के जय' एवं 'डपोर शंख' शीर्षक लोककथाओं[1] का अवलोकन किया सकता है।

मगही-लोकगीतों मे अभिव्यक्त जीवन का पाट बहुत चौड़ा है। इनमें जहाँ लोक-जीवन का सामान्य सामाजिक धरातल वर्त्तमान है, वहाँ उनके विशिष्ट सम्बन्धो के सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण भी उपलब्ध हैं। जहाँ मगही-जन-जीवन के अंधविश्वासो एवं रूढ़ियों को अभिव्यक्ति मिली है, वहाँ उसकी धार्मिक आस्थाओं का भी चित्रण हुआ है। जहाँ उनका शोक एवं विषाद मुखरित है, वहाँ उनके जीवन का मनोरंजन-पक्ष भी चित्रित हुआ है।

मगही-लोककथा, गीतों एवं लोकगाथाओं में मगह के सामन्ती जीवन के कटु-मधुर अनुभव सुरक्षित हैं। जीवन का व्यापक अनुभव इसकी कहावतो एवं मुहावरों मे भी सुरक्षित है। लोकनाट्य-गीतों एवं बुझौवलों का मुख्य सम्बन्ध मगह-जीवन के मनोरंजन-पक्ष से ही है। वैसे लोकनाटय-गीतों में पारिवारिक जीवनानुभव की समृद्ध थाती संरक्षित है।

मगही-लोकसाहित्य में चरित्रों की योजना

मगही-लोकसाहित्य में प्राप्य चरित्रों को प्रथमतः दो स्थूल वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—मानव-चरित्र एवं मानवेतर चरित्र। मानव-चरित्र के भी दो उपवर्ग किये जा सकते हैं—स्त्री-चरित्र एवं पुरुष-चरित्र।

स्त्री-चरित्रों में उल्लेख्य हैं—सती स्त्री, सामान्य स्त्रियाँ, भावज, ननद, बहिन, परपुरुष में अनुरक्ता स्त्रियाँ, कुलटा आदि। सती स्त्रियों की विशद चर्चा मिलती है और सभी साहित्य-रूपों में उनके शील-माहात्म्य का गम्भीर निरूपण मिलता है। इनके सतीत्व की गम्भीर परीक्षाएँ ली जाती हैं और वे उनमें खरी उतरती दीखती हैं। वे अपने पातिव्रत्य धर्म को किसी भी मूल्य पर लांछित होने देना नहीं चाहतीं। उनके सतीत्व में दिव्य शक्ति का निरूपण भी खूब किया गया है।

भावज एवं ननद का प्रायः सम्मिलित चित्रण मिलता है। भावजें सुन्दर, सुगृहिणी एवं उदार प्रकृति की मिलती हैं, पर उनमे अधिकाश की अपनी ननदों से नहीं पटती। ब्याही जाने पर ननद की विदाई के समय उनकी आँखों में आँसू तक नहीं आते। लोक-साहित्य मे इस स्थिति का खूब चित्रण मिलता है। ननदें सरल, भावुक एवं हास-परिहास

१. देखिए—म० लो० सा०, पृ० १–३२

पसन्द करनेवाली दीखती हैं। उनमे कुछ संकुचित मनोवृत्तिवाली दीखती हैं, पर अधिकाश प्रेममयी हैं।

बहिन का चित्रण सर्वदा भाई के साथ हुआ है। इन दोनों में अपूर्व स्नेह निरूपित किया गया है। बहिन ससुराल में भी भाई की निरन्तर प्रतीक्षा करती मिलती है और उसके कल्याण के लिए कर्मा-धर्मा आदि व्रत करती है।

परपुरुष में अनुरक्ता स्त्रियों की चर्चा मगही-लोकसाहित्य में बहुत कम मिलती है। उदाहरणार्थ 'लोरकाइन' की 'चन्दवा' अपने पति को छोड़कर लोरिक से प्रेम करती है और अन्ततः उसकी 'पत्नी' बन जाती है। पर उसके ऐसा करने का कुछ आधार भी है। उसके ही शब्दों में उसका पूर्व पति नपुंसक है, जिससे उसका विवाह जबरदस्ती कर दिया गया है। 'सीत-बसन्त' की सौतेली माँ एक साधु से प्रेम करती है। इसी तरह किसी की स्त्री अपने देवर पर अनुरक्त है। ये चरित्र सामान्य स्त्री-चरित्रों का प्रतिनिधित्व करते है और जीवन की यथार्थता के निकट हैं। कारण, आदर्श स्त्री-चरित्रों के रूप में लोक-साहित्य में इन्हें मान्यता मिली नही दीखती। स्वयं चन्दवा को लोरिक एवं कागा बादरिल 'तिरिया चरित्र' कहकर लांछित करते है।[1] यत्र-तत्र कुलटा स्त्रियों का सांकेतिक चित्रण भी मिलता है, पर उसकी मात्रा नही के बराबर है।

पुरुष-चरित्र दो प्रकार के है—१. उच्च और २. सामान्य।

१. उच्च वर्ग के अन्तर्गत आनेवाले पुरुष-चरित्रो में राजकुमार, सिद्ध, सन्त आदि है। राजकुमार प्रायः साहसपूर्ण कार्यो के लिए घर से निकल पड़ते है, मार्ग में अनेक कठिनाइयों का सामना करते है एवं लौकिक-अलौकिक साहाय्य पाकर अपने उद्देश्य में सफल होते हैं। इसी भाँति वे सिद्ध-सन्त भी, जो चमत्कार दिखाते है और अपने भक्तों पर सहज ही आतंक जमा लेते है, इस वर्ग में परिगणनीय है। इनके आशीर्वाद से भक्त मनोवांछित फल पाते पाये जाते है। इसी वर्ग मे वे 'राजा' भी होते है, जो बड़े ही प्रजावत्सल एवं आर्त्तजनों के रक्षक है।

२. सामान्य वर्ग मे आनेवाले पुरुष पात्र हैं—सेवकजन, प्रणयी आदि। सेवकजन अपने स्वामी के कार्यो के लिए प्राणों की बाजी लगाते दीख पड़ते है। वे कौशल एवं बुद्धि के बल पर अपने उत्तरदायित्वों के निर्वाह मे भी सफल होते पाये जाते है। ऐसे प्रणयी लोगों के चित्रण मगही-लोकसाहित्य में खूब मिलते हैं, जिनसे एक से अधिक स्त्रियाँ प्रेम करती है और अपने-अपने अधिकार में रखने का पूरा प्रयास करती है या जो पुरुष अपनी प्रेमिकाओ के लिए अपने सर्वस्व की बाजी लगा देते है और उन्हे 'स्वर्ग' तक से लौटा लाते है।

मानवेतर चरित्रों के दो उपवर्ग किये जा सकते है—प्रकृति-सम्बन्धी चरित्र एवं देव-दानव चरित्र। इनमें प्रकृति-सम्बन्धी चरित्रों की चर्चा अन्यत्र की जाएगी। देव-दानव चरित्रों का लोक-साहित्य में बाहुल्य स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। विभिन्न देवी-देवता—पार्वती, शिव, विष्णु, इन्द्र, अप्सरा आदि हैं। ये लौकिक नायक-नायिकाओं की अपेक्षित अवसरों पर सहायता करते एवं उन्हें उनके उद्देश्य में सफल बनाते मिलते है। 'दानव' अनेक रूपों में मिलते है। ये बड़े ही आततायी, खूनी एवं अलौकिक चमत्कारों से सम्पन्न होते हैं। इनके प्राण सामान्यतः ऐसी अन्य वस्तुओं में निहित होते है, जिन्हे क्षति पहुँचाने से उनकी मृत्यु हो जाती है। प्रायः ये नायक के हाथों मारे जाते दिखाई पड़ते हैं।

---

१. स्त्रीणां चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं दैवो न जानाति कुतो मनुष्यः।

मगही-लोकसाहित्य में नाम-प्रयोग की प्रक्रियाएँ

समस्त मगही-लोकसाहित्य में, विशेषतः इसके 'सोहर' एवं तद्वत् अन्य लोकगीतों में, नाम-प्रयोग की निम्नांकित प्रक्रियाएँ मिलती है—

१—जातिवाचक संज्ञापदों के प्रयोग; यथा—दुलहिन, बहू, परसौती, जच्चा, बच्चा, चाचा, बाबा, भइया, भउजी, ननद, गोतिनी, पति आदि।

२—व्यक्तिवाचक संज्ञापदों (नाते-रिश्तेदारों के वास्तविक नामों) के प्रयोग; यथाप्रसंग, संवर्धनीय 'व्यक्ति' के पति, पिता, भाई, देवर, बहन आदि के वास्तविक नाम।

३—प्रतीकात्मक संज्ञापदों के प्रयोग; यथा—सुग्गी, नन्दलाल आदि।

जहाँ व्यक्तिवाचक संज्ञापदों का प्रयोग अपेक्षित होता है, वहाँ उनका आरोप किया जाता है। मूल लोकगीत में उनका प्रयोग नहीं होता, अपितु उनकी जगह 'कउन', 'अनजानु' आदि पदों का प्रयोग हुआ रहता है। लोकगीत का गायन करनेवाले व्यक्ति इन पदों की जगह अपेक्षित व्यक्तियों के नाम भर लेते हैं। यथा—

(क) 'कउन' बेरिया सेजिया डँसावल, दियरा बरावल हे।
अरे 'कउन' बैरिन भेजलइ दरदिया, करेजा मोरा सालय हे।

अथवा

(ख) 'कहाँ के' हहु तोहिं हजमा, त केकर पेठावल हे।
ललना, 'कउन' बाबू के भेल नन्दलाल, लोचन लेइ आवल हे?'
'कउन' पुर के हम हिअइ नउआ, 'कउन' बाबू पेठावल हे।
ललना 'कउन' बाबू के भेल इन नन्दलाल, लोचन लेइ आवल हे।

उपर्युक्त पंक्तियों में प्रयुक्त 'कउन' पद के स्थान पर उसके गायन के समय अपेक्षित व्यक्ति के नाम (व्यक्तिवाचक संज्ञापद) का प्रयोग किया जाता है।

जहाँ जातिवाचक संज्ञापदों का प्रयोग किया जाता है, वहाँ मूल लोकगीतों में 'कउन' या 'अनजानु' पदों का प्रयोग नही मिलता। वहाँ तो दुलहिन, परभु, ननद, सास आदि पदों के प्रयोग से ही विविध सम्बन्धों का बोध हो जाता है।

मगही-लोकसाहित्य में, विशेषतः लोकगीतों में, नाम-प्रयोग की जो उपर्युक्त दो विशिष्ट विधियाँ प्रचलित हैं, उनके फलस्वरूप ही उन्हें सारे जनपद की 'आत्मीयता' प्राप्त हुई है। इसीमें समस्त मगध-जनपद में प्रचलित अनुष्ठानों, विविध भावों, कृत्यों आदि की 'सामान्यता' का वह रहस्य छिपा है, तो जो उन्हें सम्पूर्ण 'जनपद' मे एक-सा 'लोकप्रिय' बनाये हुए है। जब कोई लोकगीत गाया जाता है उसमें वर्णित अनुष्ठान एवं नाते-रिश्तेदारों के सूचक सामान्य नाम इस प्रकार आते हैं, जैसे तत्सम्बद्ध घर के बाबा, चाचा, देवर एवं अनुष्ठान आदि ही उसके अभिप्रेत प्रतिपाद्य हैं।

प्रतीकात्मक संज्ञापदों के प्रयोग से तात्पर्य ऐसे संज्ञापदों के प्रयोग से है, जिनका अभिधार्थ कुछ और है, पर सांकेतिक अर्थ कुछ और। यथा—मगही-लोकगीतों में 'सुगही' या 'सुग्गी' शब्द बारम्बार आता है। इसकी व्युत्पत्ति 'सुगृहिणी' से मानी जाती है। यथा—सुगृहिणी—सुगहिणी—सुगही। यही शब्द 'सुग्गी' के रूप में भी प्रयुक्त होता है। इससे 'सुगृहिणी' के

कोमल भाव की व्यंजना तो होती ही है, इसका अभिधार्थ 'सुगृहिणी' है, जबकि संकेतार्थ 'वर्ण्यवधू'। इसी तरह ऊपर उदाहृत दूसरे लोकगीतांश में 'नन्दलाल' पद का प्रयोग हुआ है। इसका अभिधार्थ 'श्रीकृष्ण' है, पर सांकेतिक अर्थ 'नवजात शिशु'; जो किसी भी व्यक्ति का हो सकता है।

मगही-लोकसाहित्य में मनोवैज्ञानिक तत्त्व

लोक-साहित्य, सामान्य 'लोक' का साहित्य है, अतः इसकी कोई भी अभिव्यक्ति तबतक लोकोन्मुख नही हो सकती, जबतक उसमें लोकव्यापिनी 'सामान्यता' न हो। इस लोकव्यापिनी सामान्यता का आधार मनोवैज्ञानिक होता है, अतः लोक-साहित्य में मनोवैज्ञानिक तत्त्व अनिवार्यरूपेण वर्त्तमान होते है। मगही-लोकसाहित्य में इस मनोवैज्ञानिकता के दो रूप मिलते है—१. व्यक्तिनिष्ठ मनोवैज्ञानिकता एवं २. समष्टिनिष्ठ मनोवैज्ञानिकता।

१. **व्यक्तिनिष्ठ मनोवैज्ञानिकता** के निम्नांकित तीन स्तर मिलते हैं :

(क) प्रथम स्तर—यह वह स्तर है, जिसे हम आदिम मानव के 'मानस' का 'अवशेष' कह सकते है। इस स्तर से व्युत्पन्न मगही-लोकसाहित्य में हमें एक ऐसी 'लोक-चेतना' के दर्शन होते हैं, जिसमें 'कार्य-कारण-सम्बन्ध से रहित विश्वास-परम्परा' का प्रभुत्व है। इस 'विश्वास-रक्षण' के परिणामस्वरूप ही वह अपने चतुर्दिक विभिन्न उपादानों में ऐसी 'शक्तियों' के दर्शन करता है, जो रुष्ट हो जाने पर उसे ('लोक' या 'सामान्य जन' को) अपार हानि पहुँचा सकती हैं और प्रसन्न हो जाने पर मनोकामनाएँ भी पूरी कर सकती है। लोक-मानस इन शक्तियों को हमेशा प्रसन्न रखना चाहता है और इसी के लिए विभिन्न लोकगीतों में विभिन्न 'अनुष्ठानों' के विधानात्मक संकेत उसने प्रस्तुत किये हैं। किसी वस्तु के स्पर्श करने या खाने से अथवा किसी के वरदान से सन्तान का होना या किसी के स्पर्श से अथवा रक्त की बूँदों से पीड़ित के प्राणों की प्रतिष्ठा आदि से सम्बन्धित विश्वास ऐसे ही है।

(ख) द्वितीय स्तर—यह वह स्तर है, जिसमें 'प्रथम बौद्धिक उन्मेष की झाँकी मिलती है। कार्य-कारण-सम्बन्ध के तार्किक ज्ञान का इसमें भी सर्वथा अभाव है, पर कल्पना का आश्रय लेकर उसकी पूर्त्ति का प्रयास स्पष्ट है। यही कारण है कि प्रथम स्तर के लोक-साहित्य में जहाँ अंधविश्वासों एवं भयमूलक रूढ़ियों से परिपूर्ण नीरस पुनरुक्तियों की प्रधानता होती है, वहाँ इस द्वितीय स्तर के लोक-साहित्य में अद्‌भुत वार्त्ताओं, असम्भव संघटनाओं एवं विषम परिणामों की।

(ग) तृतीय स्तर—यह स्तर 'भावमयी अभिव्यक्ति' का है। इसमें मनोवेगों की प्रधानता होती है, जिनके मूल में हर्ष या विषाद का उद्रेक होता है। सामान्य चित्रण इन्हीं की पृष्ठभूमि के रूप में आते है। इस स्तर के लोक-साहित्य में रागात्मक चित्रण की प्रधानता स्पष्ट दीख पड़ती है।

(२) समष्टिनिष्ठ मनोवैज्ञानिकता :

'व्यक्ति' से 'समष्टि' का निर्माण होता है। दोनों मे आधाराधेय सम्बन्ध है। एक के अभाव में दूसरे की सत्ता शेष नहीं रह जाती। अतः लोकसाहित्य में प्रतिफलित 'व्यक्तिनिष्ठ मनोवैज्ञानिकता' एवं 'समष्टिनिष्ठ मनोवैज्ञानिकता' में कोई तात्त्विक अन्विति ही न हो, ऐसी

बात नहीं। फिर भी 'सामूहिक मानस' 'व्यक्ति-मानस' से किंचित् भिन्न होता है। 'व्यक्ति' एकाकी रूप में जिन बातों की अभिव्यक्ति में, वह अभिव्यक्ति वाचिक हो या कायिक, लज्जा या मर्यादाहीनता का अनुभव करता है, उन्हे ही सामूहिक स्तर पर निर्भीकता के साथ व्यक्त करता हुआ आनन्द का अनुभव करता है। यथा — होली या विवाह के अवसर पर की जानेवाली अनेक अश्लील अभिव्यक्तियों को देखा जा सकता है। यह उदाहरण 'व्यक्ति-मानस' एवं 'सामूहिक मानस' के अन्तर को स्पष्ट करने-भर के लिए प्रस्तुत किया गया है, वैसे इसका यह तात्पर्य नही कि प्रत्येक सामूहिक अभिव्यक्ति अश्लील ही होती है।

सामान्यतया कोई अभिव्यक्ति निम्नांकित परिस्थितियों में 'सामूहिक अभिव्यक्ति' का स्वरूप ग्रहण करती है :

(क) कोई गीत अपनी लय के कारण 'सामूहिक अभिव्यक्ति' का स्वरूप ग्रहण कर लेता है।

(ख) कोई गीत अपनी उदात्त भावनाओं के कारण 'सामूहिक अभिव्यक्ति' में परिणत हो जाता है।

(ग) कोई गीत अपनी उद्दीपक शृंगार-भावना के कारण 'सामूहिक अभिव्यक्ति' को श्रेणी में चला आता है। सामूहिक गीतों में 'वस्तु' की दृष्टि से कोई कथाभाग भी स्वीकार कर लिया जाता है।

उपर्युक्त लक्षणों के घटित होने के कारण 'लोकगीतों' को सामूहिक अभिव्यक्ति के रूप में ही स्वीकार किया जा सकता है, वैसे उनमें व्यक्तिनिष्ठ मनोवैज्ञानिकता के उपर्युक्त तीनों स्तर मिल जाते है। वस्तुतः व्यष्टि, समष्टि के अन्तर्गत ही उपर्युक्त तीनों स्वरों का विकास प्राप्त करता है।

मगही-लोकसाहित्य में आदर्श-स्थापन की प्रवृत्ति

आदर्श-स्थापना की प्रवृत्ति यद्यपि शिष्ट साहित्य में सचेष्ट भाव के साथ मिलती है, तथापि लोकसाहित्य में भी उसका सर्वथा अभाव नहीं होता। लोकसाहित्य का स्रष्टा भी एक 'सामाजिक प्राणी' होता है और अपने सामाजिक परिवेश में जीवन की गरिमा का मूल्यांकन करनेवाले प्रतिमानों से अनायास भाव से परिचित होता है। अपने 'चरित्रों' को वह जहाँ अधिक-से-अधिक लोकोन्मुख रूप में प्रस्तुत करता है, वहाँ उनमें 'लोक-सामान्य' के धरातल पर मान्य 'आदर्शों' के स्थापन की नैसर्गिक प्रवृत्ति भी स्पष्ट झलकती रहती है। इस आदर्श-स्थापन के लिए अवसर उसे घटना-वैचित्र्य की योजना से प्राप्त होते है।

इस दृष्टि से स्त्री-चरित्रों में सतीत्व, कुल-मर्यादा, प्रेम पर बलि होने की भावना, भाई के लिए त्याग, वात्सल्य आदि के आदर्शों के स्थापन का सहज स्वरूप दीखता है। इसी तरह पुरुष-चरित्रों में पितृभक्ति, मित्र-प्रेम, परदुःख-कातरता, उपकार-भावना, साहस, आपत्ति में धैर्य, प्रत्युत्पन्नमतित्व, स्वामिभक्ति आदि के आदर्शों का 'शील' रूप में स्थापन मिलता है। इससे जहाँ 'चरित्रों' में 'विविधता' का आधान होता है, वहाँ वे अधिक सूक्ष्म, गम्भीर एवं प्रभावशाली भी हो जाते हैं।

मगही-लोकसाहित्य में 'प्रकृति'

मनुष्य मननशील प्राणी है। उसका 'प्रकृति' के साथ अविच्छिन्न एवं सनातन सम्बन्ध है। जन्म लेते ही वह प्रकृति के दर्शन करता है और उसीका दर्शन करते हुए वह आँखें भी

मूँदता है। उसकी 'मननशीलता' का विकास भी इसी प्रकृति के साहचर्य से होता है। इसके साधन हर्ष एवं विषाद है। प्रकृति के कतिपय व्यापारों को देखकर वह आनन्दोल्लास से भर-भर उठता है। पर ऐसे भी दृश्य आते हैं, जो उसे 'भय' एवं 'विषाद' से परिपूर्ण कर देते हैं। 'प्रकृति' के सन्दर्भ में उसकी यह स्थिति 'द्रष्टा' एवं 'भोक्ता' की है। इस स्थिति में 'प्रकृति' चेतनाविभूषित 'सजीव प्राणी' के रूप में उपस्थित होती है। मनुष्य इस 'प्रकृति' को अपने हर्ष में 'हर्षित' और विषाद में 'खिन्न' होते पाता है। साहित्य में इन दोनों रूपों में प्रकृति के दर्शन होते हैं।[1] पर 'शिष्ट साहित्य' एवं 'लोक-साहित्य' के प्रकृति-चित्रण में कुछ अन्तर है। यह अन्तर वही है, जो दोनों के निर्माताओं में है। 'शिष्ट साहित्य' का साधक जहाँ 'संस्कार' की कृत्रिमता से आच्छन्न होने के कारण 'प्रकृति' का किंचित् तटस्थ भाव से साक्षात्कार कर पाता है, वहाँ लोक-साहित्य का सर्जक सहज नैसर्गिक होने के कारण स्वयं 'प्रकृति' के अत्यन्त समीप होता है, लोक-साहित्य में प्रकृति का 'आलम्बन' एवं 'उद्दीपन' विभावों के रूप में चित्रण मिलता है, पर इसमें जो मर्मस्पर्शिता मिलती है, वह 'शिष्ट साहित्य' में अपवादतः ही मिलती है। मगही-लोकसाहित्य के प्रकृति-चित्रण में भी यह मर्मस्पर्शिता पर्याप्त मात्रा में वर्त्तमान है।

मगही-लोकसाहित्य में प्रकृति-चित्रण का वह रूप, जिसमें उसके सर्जक की स्थिति 'तटस्थ द्रष्टा' एवं 'भोक्ता' की है, अत्यन्त विस्तृत एवं वैविध्यपूर्ण है। प्रकृति के विभिन्न उपादानों का विभिन्न प्रसंगों में बड़ी तन्मयता के साथ वर्णन किया गया है। उदाहरणार्थ उनका एक संक्षिप्त सर्वेक्षण प्रस्तुत किया जाता है।

वृक्ष-पौधे :

मगही-लोकसाहित्य में आम, महुआ, पीपल, नीम, अनार, नीबू, इमली, नारियल, इलायची, लवंग, कदम्ब, बैर, गूलर, चन्दन आदि के वृक्षों या पौधों का बराबर उल्लेख हुआ है। विशेषतः 'लोकगीत' तो इनके अभाव में जैसे मुखर ही नहीं हो सकते हैं। आम और महुआ की शीतल-मादक छाँह में लोग प्रायः विश्राम करते या विचार-विमर्श करते दीख पड़ते हैं—

(क) नदिया किनारे रे दुइ रे बिरिछिया,
एक महुआ एक आम हे।
ओहि तर उतरल दुइ रे मनुसवा,
एक लखन एक राम हे।

(ख) अमवा महुवा के घनी बाग,
तेही रे बीचे राह लगल।
तेहीं रे बीचे एक सुन्नर ठाढ़,
नैनमा दुनों लोर ढरे॥

---

१. 'शिष्ट साहित्य' में प्रकृति का वर्णन प्रधानतः दो रूपों में उपलब्ध होता है—(क) आलम्बन-विभाव के रूप में एवं (ख) उद्दीपन-विभाव के रूप में। संस्कृत-साहित्य में प्रकृति का चित्रण प्रधानतः आलम्बन-विभाव के रूप में हुआ है, गौणतः उद्दीपन-विभाव के रूप में। पर हिन्दी-साहित्य में ठीक विपरीत स्थिति है।

एक अन्य लोकगीत है, जिसमें एक गर्भवती स्त्री फले आमों को देखकर खाने की इच्छा प्रकट करती है :

अमवा जे फरलइ घउद सयँ,
ओही मोरा मन भावे हे।

नीम का वृक्ष अपनी घनी एवं आरोग्यदायिनी शीतल छाया के लिए प्रसिद्ध है। भीषण उत्ताप एवं वेदना की देवी शीतला का झूला नीम के घने वृक्ष की डाल में ही लगाया जाता है :

नीमियाँ के डलिया मइया लगलो हिंडोलवा,
झुली झुली मइया गावल गीत कि झुली झुली॥

विप्रलम्भ शृंगार के प्रसंगों में भी नीम के वृक्ष का उल्लेख हुआ है। उदाहरणार्थ एक विरहिणी नीम की घनी एवं फैली छायादार शाखाओं को देखकर अपने प्रिय के चिरप्रवास का स्मरण करती है और कसकती वेदना से भर-भर जाती है :

फरि गेलइ नीमिया, लहसि गेलइ डरिया,
तइयो न आयल, मोर बिदेसिया हो राम।

स्पष्ट है, यहाँ नीम के वृक्ष का प्रयोग उद्दीपन-विभाव के रूप में हुआ है। उसे देखकर उसके हृदय में भी फलने-फूलने एवं गदराने की भावना बलवती हो उठती है।

कदम्ब, लवंग, गूलर एवं चन्दन के वृक्षों के वर्णन प्रायः सम्भोग-शृंगार के प्रसंगों में हुए हैं। यथा—श्रीकृष्ण कदम्ब-वृक्ष के नीचे ही अपनी वंशी बजाते हैं। गोपी राग-विभोर होकर उसकी छाँह में चली जाती है, फिर तो वातावरण ही बदल जाता है—

जबहिं गोआरिन कदम बीचे गेलन,
कान्हा बँसिया बजावे हे।
खाइ लेबउ गोआरिन मीठ दहिया,
फोड़ि देबउ सिर मटुक हे॥

कदम्ब-वृक्ष के उपर्युक्त उल्लेख में पौराणिक परम्परा का पालन अक्षुण्ण दीखता है। श्रीकृष्ण के प्रेम-प्रसंग में कदम्ब-वृक्ष का उल्लेख अपरिहार्य भी है। 'लवंग' का उल्लेख प्रायः वहाँ होता दीखता है, जहाँ नायिका विशेष सक्रिय दीख पड़ती है। सम्भवतः 'लवंग' से उसके गदराये यौवन का संकेत भी किया जाता है—

मोरा पिछुअरवा लवंगिया के गछिया,
लवंग चुअइ सारी रात हे।
लवंग चुनि-चुनि सेजिया डँसवली,
बीचे-बीचे रेसमा के डोर हे।
ताहि पइसि सुतलइ दुलहा कउन दुलहा,
जउरे सजनवा केरा धिया हे॥

'गूलर' के वृक्ष का उल्लेख प्रायः किसी नदी के तीर पर किया गया है। नायक-नायिका इसके नीचे प्रेम-संलाप करते दृष्टिगत होते है—

नदी किनारे गूलर के गछिया,
छैला तोड़े गोरी खाय।
छैला जे पूछे दिल के बतिया,
गोरी के जिउवा लजाय ॥

पुष्प :

मगही-लोकसाहित्य में विभिन्न पुष्पों की भी सोत्साह चर्चा मिलती है। इनमें प्रमुख हैं— इलायची, जाफर, लवंग, जूही, कचनार, जीरा, चम्पा, चमेली, बेला, अरगस, अड़हुल आदि के फूल। इन पुष्पों का उल्लेख जहाँ प्राकृतिक उपादानों के रूप में हुआ है, वहाँ इनसे उद्दीपन-विभाव का उद्देश्य भी साधा गया है। पर एक अन्य उद्देश्य भी अन्तर्हित है। वह यह कि प्राय: ये वर्ण्य नायिका के रूप-सौन्दर्य-यौवन की प्रतीकात्मक व्यंजना करते दीखते है। सुकुमार भावों एवं शृंगार-भावनाओं की अभिव्यंजना को मर्मस्पर्शी बनाने में ये 'सबल साधन' का कार्य करते हैं। प्राय: इनका उल्लेख सम्भोग-शृंगार के प्रसंगों में हुआ है। नववधू अपने प्रियतम की मानवती प्राणप्रिया है। वह अपने मोद-शृंगार के लिए इलायची, जाफर एवं लवंग के फूलों के लिए आग्रह करती है :

अउरी झउरी करथिन दुलरइतिन सुगवे हे।
हम लेबइ इलायची फुलवा हे।
हम लेबइ जाफर फुलवा हे।
हम लेबइ लौंग के फुलवा हे।

अन्यत्र वर्णन आता है कि नदी के किनारे जीरे के पौधे फुला गये है। फूलों के भार से वे झुक-झुक गये है। घोड़े पर चढ़कर दुलारा दुलहा आया है। उसकी पाग जीरे के फूलों से सुवासित हो रही है :

नदिया किनारे जिरवा जलमि गेलइ,
फर-फूले लबधि गेलइ हे।
घोड़वा चढ़ल आथिन दुलरइता दुलहा हे,
उनकर पगड़ी अमोद बसे हे ॥

'पुष्प-चयन' सम्भोग-शृंगार का एक मनोरम प्रसंग है। शिष्ट साहित्य में इस प्रसंग का बारम्बार चित्रण होता दीखता है। लोक-साहित्य भी इस प्रसंग के चित्रणों से अछूता नहीं है। इसका आश्रय लेकर बड़े ही कोमल शृंगार-स्थलों की उद्भावना की गई है, जो रसविभोर किये विना नहीं रहते। उदाहरणार्थ—सीता फुलवारी में फूल चुनने गई हुई हैं। उनके साथ, उनकी दस सखियाँ भी है। वे चटकीले रंगवाले चम्पा एवं चमेली के फूल चुन रही हैं। तभी उनपर श्रीराम की दृष्टि जा पड़ती है :

जनक दुलारी गेलन फुलवारी,
लेले सखियन दस संग।
चम्पा चटक चमेली तोड़लन,
चीर गुलाबी रंग।
भले रघुनाथ के दीठ पड़ल।

गोपीचन्द में—वनस्पति देवी को देखा जा सकता है।

लोरिक की सिंगालाख गायें अपने दूध की धार में प्रवाहित करती हुई मृत सामर को 'बोहीबथान' पहुँचा देती हैं। ऐसा करते समय वे उपकार-भावना से ही पीड़ित हैं। कागा बादरिल और बिरना बैल सामर को अपशकुन की सूचना देते हैं। उसे बचाने की लाख कोशिशें करते हैं, पर जब सामर नहीं मानता और पाली पिपरी के जंगल में मारा जाता है, तब कागा बादरिल विना अन्न-जल ग्रहण किये हरदी-बाजार मंजरी का पत्र लोरिक को पहुँचाता है। वह चंदवा को दुतकारता और लोरिक को घर लाता है। छतरी घुघुलिया की हैकलघोड़ी एवं कुँअर विजयी की हिछली घोड़ी अपने नायकों के लिए अभिन्न सहचर-गुरु एवं ममत्व की दृष्टि से जननी के रूप में सर्वसमक्ष आती है। वे युद्धों में अपनी अलौकिक शक्ति से उनकी प्रभूत सहायता भी करती है। यथा—कुँअर के मरने पर हिछली घोड़ी सोनामन्ती के पास सारा समाचार पहुँचाती है और सम्पूर्ण रहस्य से उसे परिचित कराकर कुँअर को जिला देती है। इसी तरह 'गोपीचन्द' वाली लोकगाथा में वनस्पति देवी (वनदेवी) उसपर दया दर्शाती है। वे उसे जंगली पशुओं और भयानक कदली-वन के घटाटोप अंधकार से बचाती हैं। स्वयं हंस का रूप धारण कर और गोपीचन्द को तोता बनाकर बहन के देश पहुँचा आती हैं।

ऊपर 'प्रकृति' के इन सजीव 'चरों' में पूर्ण मानवीय चेतना के दर्शन तो होते ही हैं, उनमें अलौकिकता का अंश भी कम समाविष्ट नहीं है। पर मगही-लोकसाहित्य में, विशेषतः इसके लोकगीतों में ऐसे स्थलों की भी कमी नहीं है, जहाँ मानव-जगत् के साथ पशु-पक्षियों का भी चित्रण किया गया है और उनके मध्य सहानुभूति-सम्बन्ध का अत्यन्त स्वाभाविक विकास दिखलाया गया है।

ऐसे प्रसंग प्रायः सम्भोग एवं विप्रलम्भ शृंगार के अन्तर्गत आते है। एक जगह गोरी अपने प्रियतम से उसे छोड़कर न जाने का अनुरोध तो करती ही है, चाँद, सूरज एवं मुर्गे से भी सहानुभूति-भरा निवेदन करती है :

> आज सुहाग के रात, चन्दा तुँहूँ जगिह।
> चन्दा तुँहूँ उगिह, सुरुज मति उगिह॥
> करिह बड़ी तुहूँ रात, मुरुग जनि बोलिह।
> आज सुहाग के रात, पिया, मत जइह॥

उसके निवेदन का रहस्य अन्तिम पंक्ति में छिपा है। आज उसके सुहाग की रात है। उसके स्वर में स्नेह, आग्रह एवं सम्मान का जो मिश्रित भाव है, वह किसी को भी द्रवित कर सकता है।

अन्यत्र एक काग किसी आँगन के चन्दन के गाछ पर आ बैठता है और काँव-काँव करने लगता है। नायिका अशुभ की आशंका से भयभीत हो जाती है। वह झाड़ू लेकर कौए को मारने के लिए धमकाती है। इसपर कौआ कहता है—

> 'काहे लागी मारमें गे भरल बढ़नियाँ,
> हमरे बोलिया औतिन पिया परदेसिया।'

इसपर गोरी कहती है—

> 'तोहरे जे बोलिया औतन पिया,
> दही-भात-मिठवा खिलायम सोने थरिया।'

कौए की बात सत्य निकलती है। कौआ उड़कर नीम के गाछ पर जा बैठा। तभी गोरी का परदेशी आ पहुँचा—

'उड़ि-उड़ि कगवा हे गेलइ नीम गछिया,
धम से पहुँची गेलइ पिया परदेसिया।'

मगही-लोकसाहित्य मे दो अन्य रूपों में भी प्रकृति-चित्रण मिलता है—१. अलंकार-योजना के रूप में एवं २. प्रतीकात्मक प्रयोग के रूप में। अलंकार-योजना के रूप में प्राकृतिक उपादान प्रायः 'अप्रस्तुतों' के रूप में आते हैं। यथा—

बाबू के फटलइ करेजवा,
रे जैसे भादो काँकड़।
मइया के ढरे नयना लोर,
रे जैसे भादो ओरी चुए।

यहाँ उपमालंकार है। 'काँकड़' (कँकड़ी) एवं ओरी (ओलती) अप्रस्तुतों के रूप में आये हैं। ये प्राकृतिक उपादान है।

प्रकृति का प्रतीकात्मक प्रयोग प्रायः तीव्र एवं गम्भीर भाव-व्यंजना के लिए होता है। इस तीव्र भाव-व्यंजना का सम्बन्ध प्रायः नायिका के यौवनागम, गर्भवती होने या नायक की रसिकता के सूचन से होता है। यथा—

(क) बाबा के हइ रे घानी फुलवरिया,
जुहिया फुलल कचनार।
घोड़वा चढल आवइ दुलरइता दुलहा,
जुहिया लोढ़इ कचनार।
(ख) मालिन के अँगना कसइलिया के गछिया,
रने-बने पसरल डार हे।
घर से बाहर भेल दुलहा दुलरइता,
तोड़ऽहइ कसइलिया के डार हे॥

यहाँ 'जूही', 'कचनार' एवं 'कसैली की डाल'—ये तीनों नवयौवन से गदराई नायिका के प्रतीकात्मक सूचन के लिए आये है। इसी तरह—

लटकल देखलूँ लेमुआ त पकल अनार देखलूँ हे।
गोले गोले देखलूँ नौरंगिया, जच्चा रे दरद बेयाकुल हे॥

गर्भवती ने लटकते पूर्ण नीबू, पके अनार एवं गोल नारंगी को देखकर प्रसव-वेदना का अनुभव किया। यहाँ प्रतीकात्मक व्यंजना यह है कि जिस प्रकार समय आने पर नीबू, अनार और नारंगी सम्पूर्ण होकर टूटने की सूचना देते है, उसी प्रकार समय पूरा होने से मेरा गर्भस्थ शिशु भी अब विश्व के दर्शन करना चाहता है। यह प्रतीकात्मक योजना कितनी सहज, मनोरम एवं अर्थ-गम्भीर है।

मगही-लोकसाहित्य में रस-परिपाक

'रस' का सम्बन्ध हृदय से है। सहृदय सामाजिक के हृदय में जो रत्यादि स्थायीभाव संस्कारों के रूप में चिरसंचित होते है, वे ही विभाव, अनुभाव एवं संचारी भावों के संयोग से

'रस' रूप में परिणत हो जाते है ।[१] लोक-साहित्य में हृदय-पक्ष एवं भाव-संवेगों की प्रधानता होती है, बुद्धिपक्ष या तो अत्यन्त गौण होता है अथवा पूर्णतः शून्य । अतः बौद्धिक चमत्कार वहाँ भले न मिले, पर हृदय से सम्बद्ध रस-परिपाक तो अनायास भाव से मिलता है। दूसरे, यद्यपि शिष्ट साहित्य में रस-परिपाक की जो सचेष्टता उसके सर्जक में दीख पड़ती है, उसका लोक-साहित्य के सर्जक में अभाव-सा होता है। फिर भी लोक-साहित्य में भी विभाव, अनुभाव एवं संचारी भावों का अन्वेषण सम्भव है।[२] लोक-साहित्य की यह सामान्य विशेषता मगही लोक-साहित्य मे भी वर्त्तमान है।

मगही-लोकसाहित्य में लोककथा, लोकगीत, लोककथा-गीत, लोकनाट्य-गीत एवं लोकगाथा—ये सभी सम्मिलित है। मगही-लोककथाओं मे प्रायः श्रृंगार, करुण, शांत एवं हास्य रसों का परिपाक मिलता है। उदाहरणार्थ क्रमशः 'राजा झोलन', 'अझला', 'बिसवास के महिमा' एवं 'डपोर संख'[३] शीर्षक लोककथाओं को देखा जा सकता है।

रस-परिपाक विशेषतः मगही-लोकगीतों में मिलता है। रौद्र एवं बीभत्स को छोड़कर प्रायः सभी रसों का परिपाक यहाँ दीख पड़ता है। इनमें भी श्रृंगार एवं करुण रसों की प्रधानता स्पष्ट है।

श्रृंगार रस :

मगही-लोकगीतों मे श्रृंगार रस के उभयपक्षों-सम्भोग एवं विप्रलम्भ श्रृंगार-का चित्रण मिलता है। यों तो प्रेम-सम्बन्धों का विश्लेषण करनेवाले चित्रों का सब प्रकार के गीतों में प्राधान्य है, पर विवाह, कोहबर-सम्बन्धी एवं ऋतु-गीतों में श्रृंगार के सम्भोग-पक्ष की प्रधानता स्पष्ट दीखती है। एतत्सम्बन्धी चित्रण सहज स्वाभाविक उल्लास से भरे दिखाई पड़ते हैं। कहीं श्रृंगार-वर्णन प्रच्छन्न रूप से हुआ है, कही उत्तान श्रृंगार के भी दर्शन होते हैं। यौन-सम्बन्धों के विश्लेषण अन्यान्य लोकगीतों की तरह ही हैं। उदाहरणार्थ :

> **फूल लोढ़े गेली ससुर फुलवरिया,**
> **बगिया में पियवा अइलन हमार।**
> **एक खोइँचा लोढ़ली, दूसर खोइँचा लोढ़ली,**
> **बगिया में फुलवा देलन छितराय॥**

---

१. विभावेनानुभावेन व्यक्त. संचारिणा तथा ।
रसतामेति रत्यादिः स्थायिभावः सचेतसाम् ॥
—साहित्यदर्पण : तृतीय परिच्छेद— २, लो० १

२. इस विषय में डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय का कथन है—"लोकसाहित्य में रस की प्राप्ति ही नहीं होती, प्रत्युत यह तो रस से ओतप्रोत होता है। परन्तु 'रस' की सृष्टि के लिए जिन विभाव, अनुभाव और संचारियो की आवश्यकता होती है, उनका इसमें अभाव होता है।" (लोक-साहित्य की भूमिका, पृ० १६०) हम इस कथन से सहमत नहीं हैं। कारण, लोकसाहित्य में भी श्रृंगारादि रसों के प्रसंग में नायक-नायिका रमणीय प्रकृति, अश्रुपात, चिन्तादि की चर्चा होती है और इनके सद्भाव में भी लोक-साहित्य में विभाव (आलम्बन-नायक-नायिका; उद्दीपन : रमणीय प्रकृति), अनुभाव (अश्रुपातादि) एवं संचारी भावों (चिन्तादि) का अभाव बतलाना अनुचित है। यह सम्भव है कि लोक-साहित्य में ये सभी अंग सर्वत्र पुष्ट रूप से स्पष्ट न हों। पर, ऐसी स्थिति तो शिष्ट साहित्य मे भी वर्त्तमान दीखती है। यथा : बिहारी के दोहों में 'रस' के सभी 'साधन' स्पष्टरूपेण नहीं मिलते।

३. देखिए म० लो० सा०, पृ० १—३२।

कितना सरस एवं स्वाभाविक चित्र है ।

'कोहबर' के गीतों में प्रायः नवविवाहित दम्पती के हास-परिहास का चित्रण मिलता है। नवेली वधू के भावों का वर्णन लोककवि बड़े मनोयोग से प्रस्तुत करता है । यथा : एक गीत का भावार्थ प्रस्तुत है :

वधू अपने पति से कहती है कि मै तो इलायची और लवंग के फूल लूँगी । पति पूछता है—मैं उसे पाऊँगा कहाँ ? वधू कहती है—प्यारे पंछी का रूप धारण कर बाबाजी की फुलवारी में चले जाना और फूल ले आना । भौरे का रूप धारण कर चले जाना और रस चूसकर ले आना । वर चला गया । उसने एक फूल तोड़ा, फिर दूसरा फूल भी । इतने में वेष बदलकर उसका साला पहुँच गया । उसने उसे लवंग के गाछ में बाँध दिया और सोने की छड़ी से अपने 'जीजा' जी को मारने लगा । पति ने रोते हुए अपनी प्रिया को पत्र लिखा—प्राणप्यारी ! प्राणों के लाले पड़ गये है । लवंग के गाछ में बाँध दिया गया हूँ, जरा अपने भाई को भेजकर छुड़ा दो न । हँसते हुए वधू ने पत्र लिखा— ऐ माली ! अपने चोर को छोड़ दो । उसे सोने की छड़ी से मत मारो ।

मगही-लोकगीतों में वर-वधू के जो शृंगार-चित्र मिलते है, उनमें गार्हस्थ्य-जीवन को पृष्ठाधार बनाया गया है । रीतिकालीन कवियों की तरह उत्तरदायित्व-विहीन शृंगार-चित्रण यहाँ शायद ही कहीं मिले । इसमें आये सभी चित्र लोकोन्मुख एवं उद्देश्य की दृष्टि से गार्हस्थ्य-जीवन की पूर्णता के साधक है ।

शिष्ट साहित्य के काव्य में नायिका भेदों के निरूपण मे जैसी गहरी अभिरुचि के दर्शन होते हैं, उसका लोककाव्य में सर्वथा अभाव है, जो स्वाभाविक है । नायक-नायिकाओं के सूक्ष्म अवान्तर भेदों की तो कथा वृथा है । पर, नायक-नायिका-भेद-निरूपण का आधार भी 'सामान्य सामाजिक जीवन' ही है, जिससे लोककवि भी सम्बद्ध होता है । मगही का लोककवि भी मगह के 'सामान्य सामाजिक जीवन' के सम्पर्क से वंचित नही है, अतः मगही-लोकगीतो में यत्र-तत्र स्थूल नायिका-भेदों के दर्शन हो जाते है । यथा : स्वकीया[1] एवं परकीया दोनों ही नायिकाओं के चित्र मगही में मिलते है । स्वकीया में भी मुग्धा[2], मध्या[3] एव प्रगलभा[4]—तीनों के चित्र अस्तव्यस्त रूप में प्राप्त होते है ।

'मुग्धा' का एक चित्र देखिए । नायक-नायिका 'कोहबर' में शयन करने गये । नायक ने विभिन्न वस्तुओं का प्रलोभन देकर नायिका से अपनी ओर घूमकर सोने का आग्रह किया, पर

१. विनयार्जवादियुक्ता गृहकर्मपरा पतिव्रता स्वीया ।

—सा० द०, प० ३, श्लो० ५७ ।

२. प्रथमावतीर्णयौवनमदनविकारा रतौ वामा ।
कथिता मृदुश्च माने समधिकलज्जावती मुग्धा ॥

—सा० द०, प० ३, श्लो० ५८ ।

३. मध्या विचित्रसुरता प्ररूढस्मरयौवना ।
ईषत्प्रगल्भवचना मध्यमा व्रीडिता मता ॥

—सा० द०, प० ३, श्लो० ५६ ।

४. स्मरान्धा गाढतारुण्या समस्तरतकोविदा ।
भावोन्नता दरव्रीडा प्रगल्भाक्रान्तनायका ॥

—सा० द०, प० ३, श्लो० ६० ।

वह थी कि चाँद पूरब के बजाय पश्चिम में क्यों न उगने लगे, वह उसकी ओर मुख कर सोने को तत्पर न थी :

पहिल पहर राती बीतल, इनती मिनती करथिन हे।
लेहु बहुए सोने के सिन्होरवा तो उलटि पुलटि सोवऽ हे।
अप्पन सिन्होरवा परभु जी बहिन के दीहऽ हे।
पच्छिम मुँह उगले जो चान तइयो नहीं उलटि सोयबो हे।

इस पराङ्मुखता का कारण लज्जा का अत्यधिक भार ही था। शास्त्रीय दृष्टि से यह नायिका 'मुग्धा' में भी 'समधिकलज्जावती' कही जायगी। एक दूसरा उदाहरण 'प्रथमावतीर्ण-मदनविकारा' मुग्धा का है :

दँतवा लगवलूँ हम मिसिया, नयन भरि काजर हे।
डंटी भर कयलूँ सेन्दुरवा बिंदुलिया से साटि ले लूँ हे।
सेजिया बिछयलूँ हम अंगनमा से फूल छितराइ देलूँ हे।
रसे-रसे बेनिया डोलयलूँ, बलम गरे लागलूँ हे।

'मध्या' में लज्जा एवं निर्भीकता दोनों का सम्मिश्रण होता है। विलास में वह गहरी अभिरुचि लेने लगती है, केवल शालीनता का त्याग नहीं करती है। नीचे 'मध्या' का जो उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है, वह शास्त्रीय दृष्टि से 'ईषत्प्रगल्भवचना' मध्या का माना जायगा :

चउठा पहर रात बीतल,
भोर भिनिसरा भेल हे।
भिनसारे लागल सनेहिया,
तो कागा बैरी बोले हे।।

यहाँ नायिका ने प्रगल्भ वचनों के द्वारा अपनी असन्तुष्टि का बोध कराया है।

नायक के प्रति व्यवहार की दृष्टि से 'उत्तमा' नायिकाओं की मगही-लोककाव्य में प्रधानता दीखती है। कारण, पति के 'परस्त्री' में अनुरक्त हो जाने पर, ये उन्हें क्षमादान करती पाई जाती हैं।

'परकीया' का जो स्वरूप लोककाव्य में मिलता है, वह इसके शास्त्रीय रूप से किंचित् भिन्न है। 'परकीया' विवाहिता भी हो सकती है एवं अविवाहिता कन्या) भी। 'लोरिक' की चन्दवा विवाहिता 'परकीया' का अन्यतम उदाहरण है, जहाँ 'परकीया' के विवाहिता या अविवाहिता होने का कोई निर्देश नही पाया जाता, वहाँ उनमें किसी की भी कल्पना की जा सकती है। मगही-लोककाव्य में चित्रित ये 'परकीया' बड़ी ही निर्भीक एवं ढीठ स्वभाव की दीख पड़ती है। कहीं-कही तो 'स्वकीया' नायिकाओं को उनके पति को हमेशा के लिए हर लेने की धमकी देती भी पाई जाती है।

'कुलटा' या 'वेश्या' वर्ग की नायिकाओं का मगही-लोककाव्य में अभाव है। समाज में इस वर्ग की नारियों को सम्मान की दृष्टि से देखा ही नहीं जाता, अतः उनके चित्रण में लोककवि की अरुचि स्वाभाविक है।

अवस्था-भेद की दृष्टि से भी विभिन्न नायिका-भेदों के मगही लोक-साहित्य में दर्शन होते हैं। यथा : स्वाधीन भर्तृका, खण्डिता, प्रोषितभर्तृका, वासकसज्जा एवं विरहोत्कण्ठिता के।

पत्नी के कहने पर जहाँ अपने ससुर की फुलवारी में जाकर फूल चुनता एवं वेष बदले साले के द्वारा ताड़ना पाता परिलक्षित होता है, वहाँ 'स्वाधीनभर्तृका' नायिका मानी जा सकती है; क्योंकि उसका भर्त्ता (पति) उसके इतना अधीन है कि उसकी आज्ञा टाल नहीं सकता।

'खण्डिता' नायिका का चित्रण तो बारम्बार मिलता है, पर उसका स्वरूप खण्डिता के शास्त्रीय स्वरूप से किंचित् भिन्न दीखता है। शास्त्रीय दृष्टि से 'खण्डिता' नायिका वहाँ होती है, जहाँ प्रतीक्षा-रता नायिका के पास रात्रि में नायक न आये, अन्यत्र सम्भोग-विलास करता रहे। मगही-लोकगीतों में जो खण्डिता नायिका दीख पड़ती है, वह कुछ इस प्रकार की है। वह अपने स्वामी से अत्यधिक अनुराग करती है, पर नायक होता है कि उसे छोड़कर अन्य में अनुरक्त हो जाता है। यथा : निम्नांकित लोकगीत को देखा जा सकता है, जिसमें कोई वर (नायक) गंगा-स्नान करने जाता है। मार्ग में चलने से थककर किसी कदम्ब वृक्ष की छाया में विश्राम करता है। पर वहाँ एक मालिन पहुँच जाती है, जिसके साथ वह शयन करता है। इधर पान का पनबट्टा लिये पत्नी (नायिका) खड़ी है। वह पति से पान स्वीकार करने का अनुरोध करती है। पर, जो दृश्य देखती है, उससे उसका कलेजा टूक-टूक हो जाता है और वह मानिनी नैहर के लिए चल पड़ती है :

गंगा असननिया चलऌन दुलरइता दुलहा हे।
बास लेऌन कदमियाँ तरे हे।
सूत गेऌन मलिनियाँ कोरे हे।
पान के पनबट्टा लेले धनि खड़ा भेऌन हे।
लेहु परभु पान के बिरवा हे।
देखि के मलिनिया कोरे नइहरवा चलऌन हे।

वस्तुतः, यही 'खण्डिता' नायिका का अधिक स्वाभाविक रूप है। उसका शास्त्रीय रूप तो मध्यकालीन आभिजात्य संस्कृति परम्परा से दूषित, अतः अस्वाभाविक है। इस लोकगीत के अन्त में, जैसा कि शास्त्रीय खण्डिताओ के साथ होता पाया गया है, लोककाव्य की इस 'खण्डिता' नायिका को भी नायक (उसका पति) समझा-बुझाकर मना लेता है।

'प्रोषितभर्तृका' एवं 'विरहोत्कण्ठिता' की चर्चा अन्यत्र की गई है। 'वासकसज्जा' नायिका का एक चित्र देखिए :

दँतवा लगवलूँ हम मिसिया, नयन भरि काजर हे।
डंटी भर कयलूँ सेनुरवा, बिदुलिया से साटि लेलूँ हे।
सेजिया बिछयलूँ हम अंगनमा से फूल छितराई लेलूँ हे।

वर-वधू के उपर्युक्त शृंगारिक चित्रों के अतिरिक्त उनके प्रणय-सम्बन्धों पर प्रकाश डालनेवाले ऐसे भी अनेक चित्र मगही-लोककाव्य में मिलते है, जिनका रूपालोचन शास्त्रीय दृष्टि से पूर्णतः अछूता-सा रह जाता है। यथा—प्रकृति के प्रांगण मे स्वच्छन्द भाव से क्रीड़ा हेतु आये एक प्रणयी-युगल को देखिए :

नदिया किनारे गूलर के गछिया
छैला तोड़े गोरी खाय।
छैला जे पूछे दिल के बतिया
गौरी के जिडआ लजाय।

सारांशतः, कहा जा सकता है कि श्रृंगार रस के 'संयोगपक्ष' का चित्रण करनेवाले अनन्त लोकगीत मगही में वर्त्तमान है। उनके रस-परिपाक की सबसे बड़ी विशेषता उनका दाम्पत्य जीवन के 'रागतत्त्व' पर आश्रित होना है, जो एक ओर तो रसविभोर करता है, दूसरे उन सामाजिक उत्तरदायित्वों के रक्षण पर भी आघात नहीं पहुँचाता, जो श्रेयस्कर हैं।

विप्रलम्भ श्रृंगार :

मगही-लोकगीतों में 'सयोग' की अपेक्षा वियोग-पक्ष के चित्र अधिक मिलते है। इन चित्रों मे विरह-व्यंजना का अत्यन्त उदात्त एवं स्वाभाविक स्तर मिलता है, जिसमें हृदय को सहज ही छू लेने की क्षमता है। विरह-निवेदन में विरहिणी की समस्त वेदना, उसकी तड़प, उसकी एक-एक साँस जैसे मुखरित हो उठी है। इसपर उस कृत्रिमता एवं आलंकारिकता का भार नहीं है, जो अलंकृत शैली के महाकाव्यों में प्रस्तुत विरह-वर्णनों पर दीखता है।

मगही-लोकगीतों में हुए विरह-वर्णन की दूसरी भारी विशेषता यह है कि विरह-व्यंजनाएँ प्रायः 'स्वकीया' नायिकाओं की प्रस्तुत की गई हैं। वे सुन्दर है, सुशील है, अपना सर्वस्व पति को समर्पित कर चुकी हैं और विश्व का कोई प्रलोभन उनके सतीत्व पर आँच नहीं ला सकता है।

अवस्था-भेद की दृष्टि से प्रवत्स्यत्पतिका, प्रोषितपतिका (प्रोषितभर्तृका) एवं विरहोत्कण्ठिता—इन तीनों का चित्रण मगही-लोकगीतों में मिलता है। प्रवत्स्यत्पतिका (जिसका पति परदेश जा रहा हो) का एक मनोरम चित्र निम्नांकित लोकगीत में प्रस्तुत किया गया है :

"भोर भेलइ हे पिया भिनसरवा भेलइ हे,
उठु न पलँगिया से कोइलिया बोलइ ना।"
"कोइलिया बोलइ गे धनी कोइलिया बोलइ ना,
देहि ना पगड़िया हम कलकतवा जैबइ ना।"
"कलकतवा जैबऽ हो पिया, कलकतवा जैबऽ ना,
बाबा के बोला के हम नैहरवा जैबइ ना।"

गोरी कहती है—हे पिया ! भोर हुई, पलंग से उठिए न। कोयल कू-कू कर रही है। पति कहता है—हाँ गोरी ! कोयल तो बोल रही है, जरा पगड़ी दो न ! कलकत्ता जाऊँगा। इसपर गोरी कहती है— आप कलकत्ता जायेंगे, तो मैं बाबा को बुलाऊँगी और नैहर चली जाऊँगी।

मगही-लोकगीतों मे सर्वाधिक चित्र प्रोषितपतिका के ही मिलते है। लोककवि ने उसकी विरह-वेदना का इतना मर्मस्पर्शी एवं वैविध्यपूर्ण चित्र खींचा है कि उसके सामने बड़े-बड़े कवियों के विरह-वर्णन फीके और नीरस पड़ जायेंगे।

एक गोरी का प्रियतम परदेश चला गया है, पर जिस दिन से वह गया है, उसकी क्या स्थिति है, इसकी अभिव्यक्ति उसके ही शब्दों में प्रस्तुत है :

जहिया से पिया मोरा गैलऽ तू बिदेसवा,
बलमुआ हो, तोरा बिन अँखियो न नींद।
बलमुआ हो, कइली न सोरहों सिंगार।

कहियो न सजौली हम फुलवा सेजरिया,
बलमुआ हो सपना भे गेल मोर नींद ॥

एक दूसरा गीत है, जो प्रोषितपतिका का और अधिक मर्मस्पर्शी चित्र प्रस्तुत करता है। इस नायिका ने अपने प्रियतम के दर्शन भी नही किये है। ऐसी उम्र में विवाह हुआ कि उसके महत्त्व का पता तक न चला। जब वह गया था, तब नीम का पौधा लगाया गया था। वह पौधा बढ़कर विशाल नीम का गाछ हो गया, पर उसका परदेशी प्रियतम अबीतक न लौटा :

कउने उमरिया सासु निमिया लगौलन,
कउनी उमरिया गेलन बिदेसवा हो राम ॥
खेलते कूदते बाबू निमिया लगौलन,
रेघिया भिजइते गेल बिदेसवा हो राम ॥
फरि गेलइ निमिया, लहसि गेलइ डरिया,
तइयो न आयल मोर बिदेसिया हो राम ॥

विरहिणी को भादों की झर-झर झरती गीली अँधेरी रात और घहराये बादलों में रह-रहकर विद्युत्-रेखाओ का कौंधना एवं उनका भीम गर्जन सब बड़े भयावने प्रतीत होते हैं, उसका 'जी' डर से थरथरा जाता है :

भादो हे सखी! रइनि भेयामन,
दूजे अँधेरिया रात हे।
ठनका जे ठनके रामा, बिजुरी जे चमके,
सेई देखि जियरा डेराय हे।

उसका प्रियतम कमाने के लिए विदेश गया है। वहाँ से वह हर महीने तलब भेजता है। पर, वह तो स्नेह की भूखी है, रुपये की नहीं। उसे तो वह सलोनी सूरत चाहिए, जिसे देख वह अपना तन-मन भूल जाय, 'सूखी' तलब नही :

काहे लागि अहो प्राभु तलबिया तुहुँ भेजबऽ
सुरतिया कहाँ पयबो रे नैहरवा ॥

उसकी इस अभिव्यक्ति मे जैसे उसकी सारी विरह-वेदना छलक पड़ी है। कितनी कसक है :

टिकवा भेलइ अपना, से सुखवा भेलइ सपना,
पिया भेलई डुमरी के फूल।

वह अपने परदेशी प्रियतम के पास अपना विरह-सन्देश भेजना चाहती है, पर समस्या है कि कागज कहाँ से आये, स्याही कौन-सी हो, कलम किस वस्तु की बनाई जाय, जिससे दो बातें उससे लिखी जा सकें :

कथिए फारि-फारि कोरा कगदवा पिया,
कथिए केरा मसिहान हे।
कथिए चीरी-चीरी कलमा बनाई पिया,
कथिए लिखि दुई बात हे।

एक सखी उसे उपाय सुझाती है :

आँचर फारि-फारि कोरा कगदवा प्यारी,
नयने कजरवा मसिहान हे ।
अंगुरी चीरी-चीरी कलमा बनाई प्यारी,
लिखि न देहु दुई बात हे ।।

(आँचल फाड़कर कोरा कागज बना लो । आँखों में जो काजल लगा है, वह स्याही का कार्य करेगा । अंगुलियों को चीरकर कलम बना लो, और दो बातें लिख डालो, जो लिखना चाहती हो ।)

मगही-लोककाव्य के विरह-वर्णन में एक विशेषता और है । वह यह कि यत्र-तत्र सर्वत्र विरह-जीवन झेलती नारी के सतीत्व की परीक्षा होती है, जिसमे वह पूर्णतः सफल होती पाई जाती है । कई बार तो यह परीक्षा लेनेवाला स्वयं उसका परदेशी पति ही होता है, जो वेश बदले होता है । यथा : एक सुन्दरी आम-महुआ के घने बाग में विरह के आँसू रो रही है । तभी एक राही आता है और पूछता है—ऐ सुन्दरी ! क्यों रो रही हो ? वह कहती है—मेरा प्रियतम परदेश गया है । राही ने कहा—डाला-भर सोना लो और मोतियों से श्रृंगार करो, फिर मेरे साथ चलो । सुनकर वह आगबबूला हो जाती है :

आगि लगउ डाला-भर सोनमा, मोतियन बजड़ा पड़उ ।
हमरो सामी लौटतन बनिजिया, घर लूटी लउतऊ ।

शास्त्रीय दृष्टि से विरहिणी की काम-दशाओं का भी विचार किया जाता है । लोककवि की वृत्ति नैसर्गिक होती है । वह काम-दशाओं का वर्णन पढ़कर अपनी नायिका की विरह-दशाओं का चित्रण नही करता, बल्कि विरही जीवन की जो स्वाभाविक दशाएँ होती हैं, उनका वह चित्रकार होता है । इस क्रम में वह 'मलिनता', 'कृशता' 'पाण्डुता' आदि काम-दशाओं का भी चित्रण कर जाता है, जिनका निरूपण शास्त्रीय दृष्टि से विपलम्भ श्रृंगार में अत्यन्त महत्त्व का माना जाता है । उदाहरणार्थ, 'पाण्डुता' की दशा का एक चित्र देखिए :

पिया पिया रटि के पियर भेलइ देहिया,
लोगवा कहइ कि पाण्डु रोग ।

करुण रस :

मगही-लोकगीतों में श्रृंगार रस के बाद सर्वाधिक गम्भीर परिपाक करुण रस का मिलता है । करुण रस है भी इस श्रेय का भागी । कुछ कवि-आचार्यों ने तो इसे श्रृंगार से भी उच्च स्थान दिया है और अन्य सभी रसों का उद्भव इसी एक रस से माना है ।[१] मगही-लोकगीतों में करुण रस-परिपाक के सुपरिचित प्रसंग है :

(क) कन्या की विदाई का प्रसंग;

(ख) वन्ध्या की पीर;

(ग) वैधव्य का शोकोद्गार;

---

१. एको रसः करुण एव निमित्तभेदाद्
भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्त्तान् ।
आवर्त्तबुद्बुदतरङ्गमयान् विकारान्
अम्भो यथा सलिलमेव हि तत् समग्रम् ॥
—उत्तररामचरित, ३।४७

(घ) अन्धविश्वासों के परिणामस्वरूप सम्भव हुए करुण प्रसंग;

(ङ) सामन्तशाही से प्राप्त उत्पीडन आदि।

कन्या की विदाई का बड़ा ही मर्मस्पर्शी चित्रण मगही-लोकगीतों में मिलता है। बेटे की तरह ही बेटी का भी जन्म होता है, पालन-पोषण होता है, पर एक दिन वह पराई हो जाती है। बिछुड़ते समय उसके परिजनों की जो दशा होती है, वह किसी भी सहृदय को रुला दे सकती है। शकुन्तला-जैसी पालिता कन्या की विदाई के समय जब कण्व जैसे वीतराग महर्षि भी साश्रुनयन दीख सकते है, तब सामान्य गृहस्थों की व्यथा की क्या कथा !

यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया
कण्ठः स्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्।
वैकल्यं मम तावदीदृशमहो स्नेहादरण्यौकसः
पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनया विश्लेषदुःखैर्नवैः ॥

आज बेटी शकुन्तला अपने पति के घर जायगी, यह सोचकर ही हृदय उत्कण्ठित हो गया है, गला रुद्ध-सा होता जा रहा है और आँखों में छलछला आये आँसुओं से दृष्टि बोझिल हो गई है। जब स्नेह के कारण मुझ वनवासी की भी यह दशा है, तब उन गृहस्थों को कितनी व्यथा होती होगी, जिनकी कन्याएँ पहली बार उनसे बिछुड़ती होंगी।

सीता की शादी हो रही है। कन्यादान का प्रसंग है। व्यामोह, विकलता और चिन्ता के कारण राजा जनक की बड़ी ही करुण स्थिति है। लोककवि इसका वर्णन करता है :

थर थर कँपथिन भूप जनक जी, जुगल नयन ढरे नीर हे।
केहि विधि दान करब हम सिय के चित न रहत मोर थीर हे।

निम्नांकित पंक्तियो में उस समय के दृश्य को कवि ने और भी मूर्त्त-सा कर दिया है—

गउनमा के दिनमा धरायल, गउना नगिचायल हे।
सब सखी करथिन चतुरइया,
बाबू के फटलइ करेजवा, रे जैसे भादों काँकर,
मइया के ढरे नयना लोर, रे जैसे भादों ओरी चुए॥

हिन्दू-समाज में वन्ध्या की स्थिति बड़ी कारुणिक होती है। बाँझ होने के कारण उसे न तो पारिवारिक सम्मान मिलता है, न सामाजिक ही। वह 'अशुभ' एवं 'अमंगलमयी' मानी जाती है एवं दारुण अवहेलनाओं का भार उसे सहना पड़ता है। मगही-लोकगीतों में इसके अनेक उदाहरण मिलते है। यथास्थान इस प्रसंग की विस्तृत चर्चा की जा चुकी है।

विधवा का विलाप तो स्वभावतः करुण रस का सागर उमड़ानेवाला होता है। लोकगीतों में ऐसी विधवाओं के चित्र मिलते हैं, जिनका बालविवाह हुआ, जो सौभाग्यवती हुईं, पर अपने पति की एक झलक न पा सकीं, उनका पति मर गया और वे विधवा भी हो गईं। उदाहरणार्थ, एक बालविधवा अपनी माँ से पूछती है—माँ ! तुमने सबकी शादी कर दी, पर मेरी नहीं। मेरी शादी कब करोगी ? इसपर माँ उत्तर देती है :

तोहरो बियहली गे मैना, बाले जब पनमा
तोहरो बियहुआ मरिए गेलउ रे कि।

बेचारी रुआँसी होकर बोली—

हमरा बियहुआ मइया मरिए जे गेलन,
उनकर चैतियों दे बतलइए रे कि।

अर्थात्, माँ! मेरे स्वामी तो मर ही गये, पर यह तो बता दो, उनकी चिता कहाँ सजी थी? माँ ने कहा—सावन-भादो की भयंकर बाढ़ आई थी, उसी में बह गई। बालविधवा ने आँसुओं में डूबकर पूछा—

रोइए रोइए मैना मइया से बोललई,
अगे चैतिया दहि गेलइ धरतिया न कि।

अर्थात्, माँ! मेरे स्वामी की चिता तो बह गई, पर वह धरती तो नहीं बही, जहाँ चिता सजी थी।

अन्तिम पंक्ति में जैसे करुण अभिव्यक्ति अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गई है। विधवा की पीर एवं पातिव्रत्य की ऐसी मर्मस्पर्शी भावनाएँ अनेक मगही-लोकगीतों में अभिव्यक्त हुई हैं।

अन्धविश्वासों के परिणामस्वरूप सम्भव हुए करुण प्रसंग भी कम मार्मिक नहीं हैं। कुछ करुण प्रसंग सामन्तशाही उत्पीड़न से उद्भावित है। ऐसे प्रसंगों में प्रायः किसी दुर्जन कामुक की दृष्टि किसी नारी पर पड़ती देखी जाती है और अपने सतीत्व की रक्षा के लिए वह अपना अन्त करती पाई जाती है। करुण रस के कतिपय प्रसंग अन्य कारणों से भी उद्भावित पाये जाते है। यथा: कही पति की उपेक्षा से पीड़ित पत्नी के आँसू से गीले लोकगीत मिलते हैं, तो कहीं सास-ननद के अत्याचार से पीड़ित वधू की मार्मिक व्यथा से ओतप्रोत लोकगीत। कही पति पत्नी के भाई की निर्मम हत्या कर उसकी आत्मा को सन्ताप देता और अन्ततः आत्महत्या का मार्ग प्रशस्त करता मिलता है, तो कहीं किसी अन्य सामाजिक प्रताडना के वशीभूत होकर कोई सुकुमारी आत्महत्या करती दीखती है।

करुण विप्रलम्भ :

करुण रस का यह एक भेद है। इसमें 'करुण रस' की प्रधानता तो होती है, पर अन्ततः मिलन हो जाने के कारण वह विप्रलम्भ श्रृंगार में परिणत हो जाता है। करुण विप्रलम्भ श्रृंगार का परिपाक भी मगही-लोकगीतों में खूब हुआ है। एक विरहिणी का निम्नांकित चित्र देखिए:

फोड़बइ मैं संखा चुड़िया,
फाड़बइ मैं चोलिया।
धरबइ जोगिनिया के भेस।

लोककवि ने कतिपय पौराणिक प्रसंगों को भी उठाकर इस 'रस' की अच्छी उद्भावना की। सीताहरण के पश्चात् राम की मनःस्थिति का चित्रण एक ऐसा ही पौराणिक प्रसंग है। उन्हें सीता के पुनः मिलने की आशा नहीं के बराबर है। परिणामतः वे 'उन्माद' की दशा में पहुँच जाते हैं और वन के पशु-पक्षियों से उसके विषय में पूछते चलते हैं। ऐसे समय में उनकी आँखों से झर-झर आँसू भी झरते रहते हैं।

हास्य रस

हास्य रस के परिपाक का भी मगही-लोकगीतों में अभाव नहीं है। ऐसे अनेक सामाजिक सम्बन्ध हैं, जिनके मध्य हास-परिहास का पर्याप्त अवकाश मिलता रहता है। ऐसे सामाजिक सम्बन्ध हैं—पति-पत्नी, भाभी-देवर, भाभी-ननद, साला-बहनोई, सरहज-ननदोसी, समधी-समधिन आदि के। प्रायः इन सम्बन्धों पर आश्रित लोकगीतों में हास-परिहास को प्रधानता दी जाती है।

कहीं पत्नी पति को फूल चुनने के लिए पिता की फुलवारी में भेजती है और वहाँ उसका साला वेष-परिवर्त्तन कर उसे पकड़ लेता है, धमकियाँ देता है और छकाता है, तो कहीं देवर 'भाभी' से छेड़-छाड़ कर आनन्द लेता है। कहीं भाभी ननद को सौत कहकर चिढ़ाती है, तो कहीं समधिन समधी को गालियाँ देती आनन्द लेती है। यथा—

ये हो समधी के मुँहमा कैसन लगई ?
जैसन बानर के मुँहमा ओयसन लगई।
जैसन लंगुर के मुँहमा ओयसन लगई ॥
ये ही समधी के दढ़िया कैसन लगई ?
जैसन फेदवा के झोंटवा ओयसन लगई ॥

वीर रस :

वीर रस से परिपूर्ण लोकगीतों के उदाहरण मगही में कम मिलते हैं। वस्तुतः मगही-गाथाओं में वीर रस के परिपाक की प्रधानता दीख पड़ती है, लोकगीतों में नहीं। यथा—लोरिक मे मल्ल-युद्ध का एक चित्र देखिए—

एहि जे अखरवा के मटिया से देहिया पोसल हो राम।
बाँधिए लँगोटवा बिरवा अखरवा कुदइ हो राम ॥
दुनो जब भइया में होवे लगलइ कुस्ती और बहिया मिलाव हो राम।
दुनो जब लड़ऽहइ कि भीम लगइ अउ जरासंध बलमान हो राम ॥

शान्त रस :

मगही के देव-सम्बन्धी लोकगीतों एवं उन लोकगीतों मे, जिन्हें फकीर गाते चलते हैं, शान्त रस का परिपाक मिलता है। भक्तजन विभिन्न देवताओं को अपनी श्रद्धा-भक्ति का समर्पण करते हैं। शास्त्रीय दृष्टि से विवेचना करने से ये देवता भक्तों के 'आलम्बन विभाव' के रूप में दीख पड़ते हैं एवं स्वयं भक्तजन 'आश्रय' के रूप में। पूजा की सामग्री, यथा—धूप-दीप, फूल-फल, नैवेद्य-पकवान आदि, उद्दीपन विभाव का कार्य करते हैं। पूजन के समय की विभिन्न मुद्राएँ एवं आनन्दाभिव्यक्ति अनुभाव-रूप हैं। चिन्ता-हर्ष आदि संचारिभाव होते हैं। इन सबके समवाय से 'शान्त' रस का परिपाक शिव, पार्वती, सरस्वती, लक्ष्मी, श्रीराम, सीता, श्रीकृष्ण, गणेश आदि देवताओं एवं अन्यान्य स्थानीय ग्रामदेवताओं से सम्बद्ध लोक-साहित्य में मिलता है।

'निर्गुणिया' लोकगीतों के अलौकिक तत्त्व-चिन्तन में भी 'शान्त रस' का सम्यक् परिपाक मिलता है। ब्रह्म क्या है ? विश्व को किसने बनाया ? जीवात्मा को कौन प्रेरित करता है ? आदि जिज्ञासाओं की विशद चर्चा उनमे मिलती है।

मगही-लोकसाहित्य का कलापक्ष

लोक-अभिव्यक्ति में कला का स्वरूप :

'कला' का स्वरूप क्या है ? यह एक विवादास्पद विषय है और इसपर विद्वानों में मतैक्य नहीं है। उन्होंने इसकी विभिन्न परिभाषाएँ दी हैं। प्रत्येक परिभाषा देनेवाले ने इस कार्य का अपने विचारों के अभाव में निर्वाह किया है। पर 'कला' के पारिभाषिक स्वरूप में जो भी अन्तर दृष्टिगोचर हो, यह निर्विवाद है कि प्रत्येक अभिव्यक्ति के दो पहलू होते हैं—१. वस्तुगत एवं २. रूपगत। इनमें कला का सम्बन्ध अभिव्यक्ति के के 'रूपगत' पक्ष से होता है। यह सत्य है कि 'वस्तु' या 'विषय' ही रूप-पक्ष का प्रधान आश्रय होता है, पर कलात्मक विवेचन के क्रम में इसपर उतना ही ध्यान दिया जाता है, जितना कि उसके आधार होने एवं उससे प्रेरणा पाने का सम्बन्ध है। रूप-पक्ष का वास्तविक एवं अनिवार्य सम्बन्ध 'बाह्यसौन्दर्य-विधान' से है। 'रूप' ही सौन्दर्य का आश्रय है। साहित्य में इस रूप-सौन्दर्य का विश्लेपण रीति-गुण, अलंकार, दोषाभाव, शैली, लय और छन्द आदि के अन्वेपण द्वारा किया जाता है। शिष्ट-साहित्य में इनकी स्वीकृत रूढ़ियाँ होती हैं। इनके बन्धन को स्वीकार करके ही, 'कवि' सृष्टि करता है। पर लोक-साहित्य में ऐसी शास्त्रीय रूढ़ियों का अभाव है। वह शास्त्रीय नियमों मे बँधकर नहीं चलता। उसकी सृजन-प्रेरणा लोककवि के अपने अन्तर से ही प्राप्त होती है। इस 'प्रेरणा' के अन्य स्रोत हैं—

(क) लोक-जीवन की भावभूमि;
(ख) लोक-जीवन के संस्कार;
(ग) इनकी सम्मिलित सुदीर्घ परम्परा।

अतः लोककला की मर्यादाएँ शास्त्रानुशासित न होकर लोकानुशासित होती हैं। लोक-साहित्य में कला का स्वरूप उपर्युक्त कारणों से शिष्ट साहित्य मे कला के स्वरूप से भिन्न होता है।

कलोकला की मर्यादाएँ :

लोककला की मर्यादाओं को कतिपय सूत्रों के रूप में यों प्रस्तुत किया जा सकता है—

(क) लोककला में लोकमानस की परम्परा का अविच्छिन्न प्रवाह होता है।

(ख) शिष्ट साहित्य के सर्जन के कतिपय प्रयोजन होते हैं। यथा—यश, अर्थ-लाभ, व्यवहार-ज्ञान, अमंगल-निवारण, आनन्द-लाभ एवं उपदेशोपलब्धि।[1] पर लोककला के सृजन का कोई ऐसा प्रयोजन नहीं होता।

---

१. काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृत्तये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे॥

—का० प्र० उ०, १, श्लोक २।

(ग) लोककला चूँकि 'नैसर्गिक' एवं स्वान्तःसुखाय होती है, इसलिए अस्वाभाविक प्रभावों एवं कृत्रिम विधानों से पूर्णतः मुक्त होती है।

(घ) लोककला में हृदय-तत्त्व की प्रधानता स्पष्ट झलकती रहती है। इसका कारण यह है कि लोक-व्यवहार में बुद्धितत्त्व की अपेक्षा हृदय के स्पन्दन की स्पष्ट प्रधानता दृष्टिगोचर होती रहती है।

(ङ) शब्द-योजना एवं वर्णना की दृष्टि से लोककला सामान्यतया व्यास-शैली की होती है, वैसे अपेक्षाकृत उत्तरदायित्वपूर्ण जीवन-प्रसंगों के वर्णन में उसमे अद्भुत सामासिकता एवं सांकेतिकता के भी दर्शन होते हैं।

(च) लोककला की साकेतिकता का मूल कारण उसमें 'सुरुचि' का सद्भाव होता है। उसमे यत्र-तत्र जो 'अश्लीलता' या 'ग्राम्यता' दीख पड़ती है, वह सामूहिक मनोविज्ञान से समर्थित एवं स्वाभाविक होती है तथा उसके उपयोग और काल-सन्दर्भ का यदि ध्यान रखा जाय तो आपत्ति का अवकाश नहीं मिल सकता।

(छ) लोककला में जीवन की विभिन्न आवश्यकताओं से 'अनुकूलता' या 'संगति' पाने की एक विशिष्ट प्रवृत्ति देखी जाती है, जिसके परिणामस्वरूप उसकी अभिव्यक्ति मे तदनुकूल 'विविधता' का आधान हो जाता है।

लोक-अभिव्यक्ति मे सामान्यतः प्राप्त कला का स्वरूप मगही-लोकसाहित्य में भी अक्षुण्ण है। उसकी समस्त मर्यादाएँ इसमें भी लक्षण-रूपेण वर्त्तमान दीखती हैं। यद्यपि ऊपर यह कहा गया है कि लोककला की मर्यादाएँ शास्त्रानुमोदित नहीं होतीं, फिर भी उसमें उन तत्त्वों का, जिनका अन्वेषण कर शिष्ट साहित्य के कलात्मक सौन्दर्य का मूल्यांकन किया जाता है, विश्लेषण सर्वथा 'असंभव' नहीं है।

मगही-लोकसाहित्य का शिल्प-विधान :

शिल्प-विधान का सम्बन्ध रूपाकृति-निर्माण से होता है। साहित्य के विभिन्न 'रूपों' की तरह लोक-साहित्य के भी विभिन्न रूप होते है। दूसरे शब्दों में साहित्य में, जिन्हें हम 'विधाएँ' कहते हैं, उनकी स्थिति लोक-साहित्य मे भी वर्त्तमान है। लोककवि यद्यपि इसके लिए कृत्रिम रूप से सचेष्ट नहीं होता, फिर भी लोकसाहित्य की विभिन्न 'विधाओं' के पार्थक्य का कुछ 'आधार' अवश्य है और अन्ततः उद्देश्य भी। मगही-लोकसाहित्य में जो विभिन्न 'विधाएँ' मिलती हैं, उनमे प्रमुख हैं—लोककथा, लोकगीत, लोककथा-गीत, लोकनाट्य-गीत, लोकगाथा, कहावत-मुहावरा एवं पहेलियाँ। शिल्प-विधान की दृष्टि से नीचे संक्षेप मे इनपर विचार किया जाता है—

लोककथा

प्रारम्भ :

इन कथाओं का प्रारम्भ उस व्यक्ति की भूतकालिक स्थिति के सूचन से होता है, जिसके विषय में 'कथा' चलती है। यथा—

(क) एगो राजा हला आ एगो डोम के बेटा हला।

(अझला)

(ख) गंगा के किनारे गाँव में एगो पंडित जी रहते हलथिन।

(बिसबास के महिमा)

(ग) एगो कानू हलन। (लड़ाकिन मेहरारू बस में)

(घ) एगो हलन चूल्हो अउर एगो हलन सियारो।

(जितिया के महातम) आदि।

कभी-कभी इन लोककथाओं का आरम्भ सहसा होता दीखता है और कभी-कभी प्रतिपाद्य दृष्टिकोण के प्रकाशन से। यथा, निम्नांकित उदाहरण देखे जा सकते हैं –

(क) 'कोई आदमी एगो देओता के तपस्या करके एगो अइसन संख पैलकइ कि ओकरा से जो माँगऽ हलइ, उ मिलऽ हलइ।'

(डपोरसंख)

(ख) 'बनिया सब सुभाव के कमजोर होब हइ। जरी-जरी सा बात में डेरा जा हइ।' (डरपोक बनिया)

मध्य :

मध्य में मूल कथा होती है। इन कथाओं का विकास कभी तो स्वाभाविक घटनाक्रम से होता है और कभी दैवी घटनाक्रम से। प्रथम की प्रधानता सामाजिक तत्त्वों पर पल्लवित लोककथाओं में मिलती है एवं द्वितीय की उन लोककथाओं में, जिनमें किसी अद्भुत कार्य का होना या दैवी शक्ति की महिमा का प्रतिपादन होता है।

अन्त :

इन लोककथाओं का अन्त कभी तो कथा के अवसान के सूचन से होता है, कभी उसके अवसान एवं उसपर चिन्तन करने की अपेक्षा के विज्ञापन से, कभी मंगलकामना और कभी प्रतिपाद्य उपदेश से। यथा, क्रमशः—

(क) 'सौदागर घर चल आयल। छोटकी पुतोहिया के बड़ी असीस देलक जे अप्पन धरमो बचैलक आ ससुर के जान भी।' (धरम के जय)

(ख) 'खिस्सा गेलन बन में, सोचऽ अप्पन मन में।' (धोखा के बदला)

(ग) 'जैसन ओकर दिन फिरल, ओयसन सबके फिरे।' (राजा झोलन)

(घ) 'सो के सवाई भल, बकि गजड़ा के दूना न भल।'

(सेठ आउ कुँजड़ा)

लोकगीत :

शिल्प-विधान की दृष्टि से मगही-लोकगीतों का अध्ययन करने पर यह कहा जा सकता है कि ये प्रायः छोटे चार से तीस पंक्तियों में फैले होते हैं। इनका प्रारम्भ प्रायः वर्ण्य प्रसंग के स्पष्ट या सांकेतिक आरम्भ से होता है। यथा—

(क) आज सुहाग के रात, चन्दा तुहूँ उगिहऽ।[१]

(ख) पारहिं ऊपर कसैलिया एक बोयली।[२]

---

१. और २. देखिए—म० लो० सा०, पृ० ३३-३७।

मध्य में इन लोकगीतों का विकास या तो वर्ण्य भाव के पुनरावृत्तिमूलक विस्तार से होता है अथवा कथात्मक वर्णना का आश्रय लेकर। देवगीतों मे प्रायः कथात्मक वर्णना से ही उनका विकास होता दीख पड़ता है।

इनका अन्त प्रतिपाद्य आकांक्षा. कर्म, घटना या परिणाम के सूचन से होता है।

लोककथा-गीत :

जैसाकि इनके नाम से स्पष्ट है, ये गीत तो होते है, पर इनमें 'कथा' की प्रधानता होती है। इनका प्रारम्भ प्रायः उस घटना के किंचित् विस्तृत वर्णन से होता है, जो सम्पूर्ण कथा-भाग का बीज-रूप होती है। मध्य मे इन कथाओं का विकास चलता रहता है। अन्त प्रायः किसी कारुणिक अभिव्यक्ति से होता है, जो उस व्यक्ति की होती है, जो कथा के परिणाम का भोक्ता होता है।

लोकनाट्यगीत :

वस्तुतः ये लोकगीत हैं। 'नाट्य' विशेषण पद के प्रयोग का मुख्य कारण इनका इतिवृत्तात्मक एवं कथोपकथन में निबद्ध होना ही है। दूसरे, ये विभिन्न पर्वों के अवसर पर अभिनीत किये जाते हैं, अतः इस दृष्टि से भी इनका 'नाट्यगीत' कहलाना अर्थ-संगति रखता है। 'लोकनाट्यगीत' दो रूपो मे होते हैं। प्रायः ये 'कथोपकथनों' मे होते हैं। विभिन्न पात्रों का, जो प्रायः दो से अधिक नहीं होते, इनमें अभिनय किया जाता है। यथा—बगुली, जाट-जाटिन आदि लोकनाट्यगीत देखे जा सकते हैं। कुछ नाट्यगीतों में कथनोपकथनों का अभाव होता है। सम्बद्ध पात्रों की मूर्त्तियाँ बीच में रख ली जाती हैं। उनसे सम्बन्धित 'इतिवृत्त' को औरतों का दो दल दोनों ओर से गाता है। उदाहरणार्थ 'सामा-चकवा' नामक लोकनाट्यगीत को देखा जा सकता है।

ये नाट्यगीत बहुत छोटे होते हैं—प्रायः छह पंक्तियों से लेकर बत्तीस पंक्तियों के। संवादों की संख्या पाँच से लेकर तेईस तक होती है। ये संख्याएँ घट-बढ़ भी सकती हैं। इन लोकनाट्यगीतों का प्रारम्भ प्रायः किसी ऐसी घटना के वर्णन या उपदेश-दान से होता है, जो उनके इतिवृत्त-पक्ष को विस्तार देता है। उदाहरणार्थ— 'बगुली' लोकनाट्य-गीत में 'बगुली' के रूठकर जाने का कारण पूछा जाता है, जिसके फलस्वरूप कथा-विकास होता है। जाट-जाटिन लोकनाट्यगीत का प्रारम्भ उपदेश-दान से होता है। मध्य में कथा का विकास-मात्र फैला होता है। अन्त प्रायः पुनरावृत्तिमूलक होता है और कथा-समाप्ति का संकेत देता है।

लोकगाथा :

लोकगाथाओं को लोकसाहित्य का 'महाकाव्य' माना जा सकता है। शास्त्रीय महाकाव्य के सभी लक्षणों का अन्वेषण इन लोकगाथाओं में नहीं किया जा सकता है; कारण, ये 'लोककाव्य' के अन्तर्गत हैं। पर वे चारित्रिक विशेषताएँ, जो 'मुक्तक' (गीत) एवं 'प्रबन्ध' को एक-दूसरे से पृथक् करती हैं, यहाँ भी वर्त्तमान हैं।

उदाहरणार्थ 'लोकगीतों' से जीवन के आंशिक रूप की ही अभिव्यक्ति हुई दीखती है, जबकि 'लोकगाथाओं' में 'जीवन का व्यापक रूप' चित्रित होता है। इसके कथानक में

विस्तार, वैविध्य, प्रवाह एवं गाम्भीर्य—ये चारों तत्त्व वर्त्तमान होते हैं, जो शिष्ट साहित्य में 'महाकाव्य' की प्रधान शर्त्तें हैं।

महाकाव्य के लक्षणों को दृष्टिपथ में रखते हुए विचार करने पर स्पष्ट होता है कि लोकगाथाएँ सर्गबद्ध नहीं होतीं। वे प्रवाह-शैली में प्रस्तुत की गई होती हैं, अर्थात् एक विशिष्ट 'शैली' में आरम्भ होकर उनकी कथा का 'प्रवाह' अन्त तक चलता रहता है। इनका प्रधान 'नायक' होता है, जो धीरोदात्त, गुणान्वित एवं पराक्रमी होता है। इनका कथानक प्रायः प्रख्यात सज्जनाश्रित होता है। इनका प्रारम्भ प्रायः 'नमस्क्रिया' से होता है। बीच-बीच में यत्र-तत्र खेलों की निन्दा एवं सज्जनों की प्रशंसा भी मिल जाती है। इनमें वीर, शृङ्गार अथवा शान्त रस प्रधान भाव से स्थित होते हैं एवं हास्य रसादि गौण भाव से। सन्ध्या, सूर्योदय आदि के वर्णन आकस्मिक रूप से आते दीखते हैं।

उदाहरणार्थ 'लोरिकाइन' को देखा जा सकता है। यह प्रवाह-शैली में प्रस्तुत लोक-महाकाव्य है। इसका नायक लोरिक है। वह यद्यपि क्षत्रिय नायक नहीं है, तथापि महाकाव्य के नायक के अधिकांश गुण उसमें वर्त्तमान हैं। नायकत्व की दृष्टि से उसे 'धीरललित' माना जा सकता है। वह बलिष्ठ देह, सौन्दर्य, पराक्रम, प्रत्युत्पन्नमतित्व आदि विभिन्न गुणों से मण्डित है। 'लोरिक' की कथा लोक-जीवन में 'प्रख्यात' है। उसका प्रारम्भ देव-वन्दना से होता है (यद्यपि संकलन में यह अंश हटा दिया गया है)। बीच में यत्र-तत्र भले-बुरे की प्रशंसा-निन्दा भी मिल जाती है। इस दृष्टि से यह 'वीररस-प्रधान' है एवं शृंगार, हास्य तथा शान्त रस इसमें गौण भाव से स्थित हैं। सन्ध्या, सूर्योदय आदि के सचेष्ट भाव से किये गये वर्णनों का इसमें अभाव है। वे आकस्मिक रूप से कहीं आ जायँ तो आ जायँ। इसका नामकरण 'नायक' के 'चरित्र' को प्रधान मानकर हुआ है।

शास्त्रीय तत्त्व[1]

रीति :

शास्त्रीय दृष्टि से 'रीतियाँ' तीन हैं—वैदर्भी, गौडी एवं पांचाली। साहित्य-दर्पणकार आचार्य विश्वनाथ ने एक भेद 'लाटी' भी बतलाया है। वैदर्भी समासहीन, सरल एवं प्रवाहयुक्त होती है; गौडी ठीक उसके विपरीत अत्यन्त जटिल, लम्बे समासोंवाली; पांचाली अपेक्षाकृत कम दीर्घ समासोंवाली एवं लाटी वैदर्भी तथा पांचाली के के मध्य स्थित। लोक-साहित्य में क्या गद्य, क्या पद्य—दोनों की पदशय्या 'समास-योजना' से कोसों दूर होती है। तात्पर्य यह कि सम्पूर्ण लोक-साहित्य 'वैदर्भी रीति' में निबद्ध माना जायगा।

उदाहरणार्थ—

(क) 'एगो राजा हला आ एगो डोम के बेटा हला।
दुनो सिकार खेले गेलन।' (लोककथा)

---

१. रीति, गुण, अलंकार, शैली, लय और छन्द।

(ख) 'पारहिं ऊपर कसैलिया एक बोयली,
हे गोरी के लाल, फुलवा फूले हे कचनार।' (लोकगीत)

(ग) 'मिलहु सखिया सलेहर हे चपिया,
अहे मिली-जुली सैरो निहेबइ हे न।' (लोककथागीत)

(घ) 'कहवाँ से रुसल कहाँ जाहऽहे बगुलो ?
ससुरा के रुसल नहिरा जाहि हे दीदिया।' (लोकनाट्यगीत)

(ङ) 'बिहँसि के बोलिया बोलऽहइ खुलनी बुढ़िया हो राम।
सुनहु न सुनऽ सामी कहनियाँ एक हमार हो राम॥' (लोकगाथा)

गुण :

शास्त्रीय दृष्टि से गुण तीन हैं—माधुर्य, ओज एवं प्रसाद। इनमें जिससे चित्त को सहज भाव से द्रवित करनेवाला आह्लाद प्राप्त हो, उसे 'माधुर्य' कहते हैं। यह सम्भोग श्रृंगार, करुण रस, विप्रलम्भ श्रृंगार एवं शान्त रस में क्रमशः अधिक होता है। इसमें कोमल वर्णों की प्रधानता होती है एवं समास का अभाव होता है। चित्त को विस्तार-स्वरूप दीप्ति प्रदान करनेवाला गुण 'ओज' कहलाता है। यह वीर रस, बीभत्स रस एवं रौद्र रस में क्रमशः अधिक होता है। इसमें कठोर वर्णों की प्रधानता होती है, लम्बे समासों की सचेष्ट योजना होती है एवं रचना औद्धत्यपूर्ण होती है। जो गुण चित्त को क्षिप्रगति से उसी प्रकार व्याप्त कर ले, जिस प्रकार सूखी लकड़ी को अग्नि व्याप्त कर लेती है, वह 'प्रसाद' कहलाता है। यह गुण सभी रचनाओं में एवं सम्पूर्ण रसों में वर्त्तमान हो सकता है। इस गुण के व्यंजक वे शब्द हैं, जो श्रवणान्तर ही अर्थ का बोध करा दें।

उपर्युक्त दृष्टि से विचार करने पर मगही-लोकसाहित्य में तीनों गुणों का सद्भाव दीखता है। 'ओज' गुण की स्थिति गुणात्मक रूप से ही है, 'रूपात्मक' नहीं। 'रूपात्मक स्थिति' से तात्पर्य उसके बाह्य लक्षणों से है। यानी जहाँ 'ओज गुण' वर्त्तमान भी हो, वहाँ कठोर वर्णों के प्रयोग, लम्बे समासों की योजना एवं औद्धत्यपूर्ण रचना का पूर्णतः अभाव दृष्टिगोचर होगा। माधुर्य एवं प्रसाद गुणात्मक रूप से तो मिलते ही हैं, उनके बाह्य लक्षण भी घटित होते पाये जाते हैं। नीचे इनके उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं—

माधुर्य : (क) जैसन चिकना पीपर के पतवा,
ओयसने चिकना घीऊ।
ओयसने चिकना गोरी के जोबना,
पिया के ललचइ जीऊ।

(ख) कोठरिया जे लिपली ओसरा जे अउरो देहरिया हे।
ललना तइयो न चुनरिया मइल भेल, एक रे होरिलवा बिनु हे॥

(ग) जे हम जनती पिया,
जैबऽ तूँ बिदेसवा।
बाँधती हम रेसम के डोर।

ओज : (क) "ओही घड़ी-बेलवा बोलइ अघोरी के सभे जवान हो राम।
सुनऽ हलिअइ कि गउरा में बड़ा-बड़ा बीर हइ पहलवान हो राम ।।
एतना जे बोलिया सुनऽहइ लोरिकवा मनिआर हो राम।
मरबा में बैठले मारऽहइ गरजवा लोरिक हो राम ।।
सुनऽहिं न सुन अघोरिया के बड़ा-बड़ा बीर जमान हो राम।
देखियो कि केकर भुजवा में हउ ताकत हो राम ।।
एतना बोलिया सुनऽहइ अघोरिया के चुनल जमान हो राम।
बीचे जे मड़वा में होवे लगलइ लोहवा के भिड़ान हो राम।
खुनमा के धरवा मड़वा से बहि गेलइ हो राम।"
(लोरकाइन)

(ख) "सैरा पोखरा पर जूमि गेलइ छतरी घुघुलिया, सातो गेल घबराय,
अब जल्दी सनी तेगवा खींच के दुलरु मामू पर देलन चलाय।
छओ मामू के मारि बिरवा सतवाँ पर दौड़इ खिसियाय।
तब छोटकी ममनिया कहइ भगिना सेनुरा के लाज बचाव ।।"
(छतरी घुघुलिया)

प्रसाद : (क) गवना के दिनमा धरायल,
गवना नगिचायल हे।
सखिया सलेहर करथिन चतुरइया,
गौरा के मनमा हेरायल हे।

(ख) नदी किनारे गूलर के गछिया।
छैला तोड़े गोरी खाय ।।
छैला जे पूछे दिल के बतिया।
गोरी के जिउआ लजाय ।।

अलंकार-योजना

'सौन्दर्य-भावना' एक शाश्वत एवं सर्वजनीन भावना है। प्रशिक्षण के परिणाम-स्वरूप उसके स्वरूप में अन्तर दृष्टिगोचर हो सकता है, पर तात्त्विक दृष्टि से लोक-साहित्य एवं शिष्ट साहित्य की अभिव्यक्ति में झलकनेवाला 'सौन्दर्य' एक ही होता है। इस 'सौन्दर्य' के परिणामस्वरूप ही कोई 'काव्य' ग्राह्य हो पाता है।[1] यह सौन्दर्य ही अलंकार है।[2] अलंकारमूलक इस 'सौन्दर्य का अन्वेषण लोक-साहित्य मे भी सहज सम्भव है। मगही-लोकसाहित्य में यह 'सौन्दर्य' स्पृहणीय मात्रा मे वर्त्तमान है। नीचे मगही-लोक-साहित्य की अलंकार-योजना का संक्षिप्त अध्ययन प्रस्तुत किया जाता है—

मगही-लोककथाओं में अलंकार-योजना :

लोककथाएँ गद्य-प्रधान होती हैं और गद्य का प्रधान लक्षण वर्णनात्मक एवं विचारात्मक होना है, भावात्मक होना कम। पर लोककथाओं का गद्य हृदय-पक्ष-प्रधान

---

१. काव्यम् ग्राह्यमलंकारात्।—काव्यालं० सू० वृ० १।१।१

२. सौन्दर्यमलंकारः।—काव्यालं० सू० वृ० १।१।२

लोककवियों की अभिव्यक्ति का माध्यम होने के कारण वर्णनात्मक होने के साथ-साथ भावात्मक भी होता है। बीच-बीच में आनेवाले पद्यात्मक संवादों से भी यही सिद्ध होता है। मगही-लोककथाओं में 'भावात्मकता' प्रचुर मात्रा मे है, जिसके परिणाम-स्वरूप उसका गद्य 'आलंकारिक' हो गया है। पर, अलंकारों के प्रयोग-वैविध्य का वहाँ अभाव है, जो सचेष्टता के अभाव में स्वाभाविक है। जिन अलंकारों का प्रचुर प्रयोग हुआ है, वे हैं—अनुप्रास, वक्रोक्ति, उपमा, रूपक एवं तुल्ययोगिता। यथा—

(क) **सहल गुने देहवा कटर-मटर बोलऽहइ, पटर-पटर बोलऽहइ।** (वृत्त्यनुप्रास)

(ख) **जब तों मरमें करमऽ, तब हम बचके रहम की।** (काकुवक्रोक्ति)

(ग) **नौकरवा देखे हे तो सूरज के जोत नियर कनतरकी।** (उपमा)

(घ) **कथा में पण्डितजी कहलथिन कि राम के नाम लेवे वाला भौसागर से तर जा हे।** (रूपक)

(ङ) **हम चाही एगो बकरी, एगो सूप आउर एगो छड़ी।** (तुल्ययोगिता)

प्रथम उदाहरण मे वृत्त्युनुप्रास है, कारण 'ट, र' व्यंजनों की अनेक बार स्वरूपतः क्रमशः आवृत्ति की गई है। दूसरे उदाहरण मे 'काकुवक्रोक्ति' होने के कारण 'काकु' या 'कण्ठध्वनि-विकार' का प्रयोग स्पष्ट ही है। तीसरे उदाहरण में अप्रस्तुत (सूरज के जोत) प्रस्तुत (कनतरकी) एवं वाचक पद (नियर) के स्पष्ट होने के कारण धर्मलुप्तोपमा है। चौथे में चूँकि 'भव में सागर' का आरोप किया गया है, इसलिए 'रूपक' अलंकार है। अन्तिम में चूँकि एकाधिक प्रस्तुतों (बकरी, सूप एवं छड़ी) का एक ही धर्म 'चाहा जाना' से सम्बन्ध दिखलाया गया है, इसलिए 'तुल्ययोगिता' अलंकार है।

मगही-लोककाव्य में अलंकार-योजना :

मगही-लोककाव्य से तात्पर्य मगही-लोकगीत, लोककथागीत, लोकनाट्यगीत एवं लोकगाथा से है। समीक्षा करने पर स्पष्ट हो जाता है कि मगही-लोककाव्य में शास्त्रीय अलंकारों के प्रायोगिक रूप वर्त्तमान हैं। इनमें प्रमुख अलंकार हैं— उपमा, मालोपमा, रूपक, सांगरूपक, उत्प्रेक्षा, दीपक, प्रतिवस्तूपमा, पर्यायोक्ति, लोकोक्ति आदि।

मगही-लोककाव्य मे सर्वाधिक पाया जानेवाला अलंकार उपमा ही है। मगही-लोककाव्य में इसके बड़े ही मार्मिक उदाहरण मिलते हैं—

बाबू के फटलइ करेजवा,
रे जैसे भादो काँकर॥
मइया के ढरे नयना लोर,
रे जैसे भादो ओरी चुए॥

यहाँ पूर्णोपमालंकार स्पष्ट है; कारण, 'उपमा' के चारों तत्त्व यहाँ वर्त्तमान हैं— उपमान (काँकड़, ओरी), उपमेय (पिता का हृदय/माता का हृदय), वाचक पद (जैसे) एवं धर्म (फटना/ढरना या चूना)।

मालोपमा के सुन्दर प्रयोग लोकगीतों के शृंगारिक वर्णनों में मिलते हैं, विशेषकर सम्भोग-शृंगार के प्रसंगों में किसी तरुणी के नवयौवन के वर्णन में।

उदाहरणार्थ—

जैसने चिकना पीपर के पतवा,
ओयसने चिकना घीऊ।
ओयसने चिकना गोरी के जोबना,
पिया के ललचई जीऊ॥

यहाँ गोरी के यौवन के लिए एक से अधिक उपमान (पीपल का पत्ता एवं घी) आये हैं, अतः मालोपमा है।

रूपक-अलंकार का प्रयोग प्रायः उन्हीं प्रसंगों मे हुआ मिलता है, जिन प्रसंगों में 'उपमा' का। यह वहाँ होता है, जहाँ 'उपमेय' एवं 'उपमान' के मध्य अभेद का स्थापन किया जाय। यथा—

अँखिया दुलहिन के आमि के फँकवा,
नकवा सुगवा के ठोर हे।

(दुलहिन की आँखें आम की फाँक हैं और नाक सुग्गे की चोंच।) स्पष्ट है कि यहाँ उपमेय (दुलहिन की आँख एवं नाक) तथा उपमान (आम की फाँक तथा सुग्गे की चोंच) के मध्य अभेद-स्थापन कर दिया गया है।

पारिवारिक प्रसंगों में यत्र-तत्र सांगरूपक के बड़े ही मसृण प्रयोग मिलते हैं—

सास ससुर हथी गंगाजलिया,
साला सरहज कमलफूल हे।

(सास-ससुर की गंगा की जलराशि के समान हैं एवं साला-सरहजें उसमें विकसित कमल-फूल के समान।) कितना सुन्दर और सारगर्भि चित्र है! एक सुभग सरित्प्रवाह का दृश्य नयनों के सम्मुख साकार हो उठता है। 'गंगाजल' उपमान का प्रयोग साभिप्राय है, अतः यहाँ 'परिकर' अलंकार भी है। उपर्युक्त दोनों अलंकारों की क्षीर-नीर न्याय-संचलित परस्परमिश्रित स्थिति के कारण यह 'संकर' अलंकार का भी उदाहरण माना जा सकता है।

'दीपक' अलंकार का प्रयोग सामाजिक वर्णनों के क्रम में प्रायः दीख पड़ता है। दीपक का सम्बन्ध 'दीपन' से है और जहाँ इसका लक्षण घटित होता दीखता है, वहाँ स्वभावतः उल्लास-प्रसंग चित्रित होता है। यथा—

जलवा में चमकइ चिल्हवा मछलिया,
रैनिया चमकइ तरवार।
सभवा में चमकइ सामी के पगड़िया,
हुलसऽहइ जियरा हमार॥

यहाँ प्रस्तुत (स्वामी की पगड़ी) एवं अप्रस्तुतों (चिल्हवा मछली तथा विद्युत्) का सम्बन्ध एक ही धर्म (चमकना) से स्थापित किया गया है, अतः दीपक अलंकार है। 'तरवार' या 'तलवार' विद्युत् का 'अप्रस्तुत पद' है और मात्र अप्रस्तुत के कथन से 'अतिशयोक्ति' अलंकार की भी योजना हो गई है। ये दोनों अलंकार उपर्युक्त छन्द में तिल-तण्डुल-भाव से स्थित हैं, अतः 'संसृष्टि' अलंकार भी है।

'देहली-दीपक' का प्रयोग भी मिलता है। इसमें एक ही पद दो वाक्यों में अन्वित होता है। यथा —

बाबा के हइ रे घानी फुलवरिया।
जुहिया फुलल कचनार॥
घोड़वा चढ़ल आवइ दुलरइता दुलहा।
जुहिया लोढ़इ कचनार॥

[पिताजी की रंग-विरंगी फुलवारी है, जिसमें जूही के फूल फूले हैं और कचनार के फूल भी। घोड़े पर चढ़कर दुलारा दूल्हा आया। वह जूही के फूल तोड़ता (लोढ़ता) है और कचनार के भी।] यहाँ 'फुलल' एवं 'लोढ़इ' पद ऐसे हैं, जो वाक्यभाव से स्थित पद-समूहों के मध्य वर्त्तमान हैं और अपने अगल-बगल स्थित पदो को वैसे ही प्रकाशित करते हैं जैसे घर की देहली पर रखा गया दीपक उसके दोनों भागों में प्रकाश फैलाता है।

विशुद्ध 'अतिशयोक्ति' अलंकार के प्रयोग भी मिलते हैं। प्रसंग प्रायः सम्भोग-श्रृंगार का होता है—

बगिया में अयलन दुलरइता सखा हे।
इलयची के डरवा भौंरा बाँधि देलन हे।
सोबरन सटिया सखा मारी देलन हे।

(बगिया में दुलारा साला आया। उसने इलायची की शाखा में 'भौंरे' को बाँध दिया और सोने की छौंकनी से उसे मारा।) यहाँ प्रस्तुत (नायक) का कोई उल्लेख नहीं है, केवल उसके लिए आये अप्रस्तुत पद (भौंरा) का कथन किया गया है, अतः यहाँ 'अतिशयोक्ति' अलंकार है।

उत्प्रेक्षालंकार का प्रयोग प्रायः देवी-देवता या नायिका के रूप-वर्णन के क्रम में मिलता है। सीता का रूप-वर्णन करते हुए मगही-लोककवि कहता है—

का हथी सीता हे सुरुज के जोतिया,
का हथी चान के जोत हे।

यहाँ उपमेय (सीता) में उपमानों (सूर्य की ज्योति एवं चन्द्र की ज्योति) की सम्भावना की गई है, अतः उत्प्रेक्षालंकार है।

सारूप्यनिबन्धना 'अप्रस्तुत प्रशंसा' अथवा 'अन्योक्ति' अलंकार का प्रयोग वहाँ मिलता है, जहाँ वर्ण्य वस्तु की सांकेतिक अभिव्यंजना की आवश्यकता लोककवि अनुभव करता है—

(क) मालिन के अँगना कसइलिया के गछिया,
रने बने पसरल डार हे।
घर के बाहर भेल दुलरइता दुलहा,
तोड़ऽहइ कसइलिया के डार हे।
(ख) लटकल देखलूँ लेमुआ त पकल अनार देखलूँ हे।
गोले गोले देखलूँ नौरंगिया, जचा रे दरद बेयाकुल हे॥

उपर्युक्त उदाहरणों में 'कसैली की डाली' नवयौवन से गदराई तरुणी के लिए प्रयुक्त हुई है। नायक द्वारा उसके तोड़े जाने से तात्पर्य 'विलास करने' का है। इसी तरह गर्भवती जब सम्पूर्ण हुए लटकते नींबू, पके अनार एवं सुडौल गोल नारंगियों को देखती है, तो वेदना से व्याकुल हो जाती है। उपर्युक्त सभी अप्रस्तुतों की योजना 'पूर्ण हुए गर्भ' (अप्रस्तुत) का संकेत देने के लिए की गई है—अतः उभयत्र 'अन्योक्ति' अलंकार स्पष्ट है।

'प्रतिवस्तूपमा' अलंकार का प्रयोग प्रायः विप्रलम्भ-श्रृंगार के चित्रणों में मिलता है। उदाहरणार्थ एक नायिका का विरहोद्‌गार देखिए—

पीपर के पत्ता फुलंगिया डोले,
अब जिया डोले रे ननदो,
तोहरा भइया रे बिनु ॥

(पीपल का पत्ता उसकी फुलंगी पर थरथरा रहा है। ऐ मेरी प्यारी ननद! तुम्हारे भैया के बिना मेरा हृदय भी वैसे ही डोल रहा है।) प्रतिवस्तूपमालंकार वहाँ होता है, जहाँ परस्पर साम्यभाव रखनेवाले दो वाक्यों मे एक ही सामान्य धर्म का निर्देश किया जाय। यहाँ उभयत्र निर्देशित सामान्य धर्म है 'डोलना', अतः यहाँ 'प्रतिवस्तूपमा' है।

मगही-लोककाव्य में प्राप्त होनेवाले कुछ अन्य अलंकार हैं—लोकोक्ति एवं लोकोक्तिगर्भित पर्यायोक्ति आदि। 'लोकोक्ति' अलंकार वहाँ होता है, जहाँ प्रसंगवश किसी लोकोक्ति का सुन्दर प्रयोग किया जाय। मगही-लोककाव्य मे इस अलंकार का एक-से-एक सुन्दर प्रयोग दीख पड़ता है। यथा—

टिकवा भेलई अपना,
से सुखवा भेलई सपना,
पिया भेलई डुमरी के फूल।

[सौभाग्यसूचक 'मागटीक' तो नायिका को मिल गया, पर सौभाग्य का सुख सपना हो गया; क्योंकि प्रियतम (परदेशी) तो गूलर (डुमरी) के फूल ही हो गये। 'डुमरी का फूल होना' एक लोकोक्ति है और इसका यहाँ सुन्दर प्रयोग दीखता है।]

'पर्यायोक्ति' अलंकार का प्रयोग प्रायः करुण रस के प्रसंगों मे दीख पड़ता है। एक वन्ध्या का निवेदन देखिए—वह सन्तान चाहती है, पर इसे ही वह काफी घुमाकर कहती है। परिणामतः 'पर्यायोक्ति' अलकार की योजना हो गई है—

चिड़िया बियाए चिरमुनियाँ,
गंगा मइया तो बियाये रेत।
चरहुर के फुलवा चढैवइ देवी मइया,
बाँझि के अँचरवा देव ॥

मगही-कहावतों, मुहावरों एवं पहेलियों में अलंकार-योजना

कहावतें

मगही-कहावतों में 'सालंकारता' एक सहज गुण के रूप में वर्त्तमान मिलती है। अलंकार केवल वाणी-प्रसाधन के साधन नहीं हैं, उसकी अभिव्यक्ति के विशेष द्वार

भी हैं। कहावतों की अभिव्यक्ति भी हमेशा एकरूप नहीं होती। अभिव्यक्ति की प्रकारगत भिन्नता ही 'अलंकारत्व' की पुष्टि करती है। मगही-कहावतों के विविध रूपों के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि उनमे अनुप्रास, उपमा, अप्रस्तुत प्रशंसा, दीपक आदि अलंकार का स्वरूप संरक्षित है। चूँकि उनकी तद्गत स्थिति का कारण प्रयोक्ता की कृत्रिम सचेष्टता नहीं थी, इसलिए उनमें वह स्वाभाविकता वर्त्तमान है, जिसके सद्भाव मे शिष्ट साहित्य का मूल्य काफी बढ़ जाता है। यथा—

(क) **चाकरी चकरदम, कमर कसे हरदम।**
न रहे के हम, न जाये के गम॥ (वृत्त्यनुप्रास)

(ख) **मइया के जीऊ गइया ऐसन।**
पूता के जीऊ कसइया ऐसन॥ (धर्मलुप्तोपमा)

(ग) **जेने सुरुज उगे हे, तेन्हीं आदमी गोड़ लागे हे।** (अप्रस्तुतप्रशंसा)

(घ) **चन्दरमा पर धूरी फेंके से उ धुमैला न होवे हे।** (अप्रस्तुतप्रशंसा)

(ङ) **असल के बेटी, केवाल के खेती, कबहुँ न धोखा देती।** (दीपक)

(च) **ऊ बड़ा गरल गरई हे।** (अतिशयोक्ति)

(छ) **औरत के पेट (मनो) कुम्हार के आवा हे,**
जेकरा से कभी करिया कभी गोर लइका निकसे हे।
(उत्प्रेक्षा) आदि

मुहावरे

मगही-मुहावरों में भी आलंकारिकता का सर्वथा अभाव नहीं है। यथा—

(क) **औरी-बौरी करना** (वृत्त्यनुप्रास);

(ख) **मिट्ठा-माहुर होना** (उपमेयवाचक लुप्तोपमा);

(ग) **मोती झरना** (अतिशयोक्ति) आदि।

पहेलियाँ

मगही-पहेलियाँ प्रायः आलंकारिक होती हैं; कारण, इनमे अप्रस्तुत का कथन कर प्रस्तुत की जिज्ञासा की जाती है। इस जिज्ञासा का आधार कभी तो सादृश्यमूलक होता है और कभी विरोधमूलक। परिणामतः दोनों वर्गों के कुछ अलंकार अपने विशुद्ध रूप में इन पहेलियों में प्राप्त होते हैं—

(क) **अँउठा नियर पेड़ हे, दउरा नियर पत्ता।**
एके एक फरे हे, घउद लगके पके हे। ('अधिक' अलंकार)

(ख) **जब मारइ तो जी उठइ।**
बिन मरले मर जाये॥ (विरोधाभास)

(ग) **लाठी पर कोठी, कोठी पर हबहब।**
हबहब पर गुजगुज, ओपर करिया पहार॥ (अतिशयोक्ति)

(घ) **लाल घोड़ा, करिया जीन**
गोर सिपाही, उतरे चढ़े। (रूपकातिशयोक्ति)

(ङ) करिया ही हम करिया हो,
करिया बन में रहऽही,
ललका पानी पीअऽही । (मानवीकरण)

शैली

शैली की दृष्टि से मगही-लोककथाएँ निम्नांकित शैलियों में निबद्ध होती हैं—

(क) चम्पू शैली (गद्य-पद्य मिश्रित) : यथा—अझला ।

(ख) वर्णनात्मक शैली (सीधे-सादे रंग से) : यथा—धरम के जय ।

(ग) पंचतन्त्र-शैली (उपदेशान्त) : यथा–सेठ आउ कुँजड़ा ।

(घ) मंगल शैली (मंगल वाक्यान्त) : यथा–राजा झोलन ।

शब्द-प्रयोग अत्यन्त स्वाभाविक एवं सरल होते हैं। वस्तुतः इसके निर्देश की भी शायद अपेक्षा नहीं है; कारण, 'प्रकृत' जन का सहज कल्पनोच्छ्वास होने के कारण उनमें स्वाभाविकता एवं सरलता का न होना ही अस्वाभाविक है। अभिव्यक्ति प्रायः अभिधात्मक है, पर कहीं-कही 'लक्षणा' एवं 'व्यंजना' शब्दशक्तियों का भी सद्भाव मिल जाता है।

शैली की दृष्टि से मगही-लोककाव्य के स्थूल भेद हैं—गीत, कथागीत, नाट्यगीत एवं गाथा। 'गीत' छोटे होते हैं, 'कथागीत' अपेक्षाकृत बडे, नाट्यगीत नातिदीर्घ एवं गाथाएँ प्रभूत विस्तार समेटनेवाली। वर्ण्य विषय के निरूपण को प्रधान बनाने पर इसमें यथार्थवादी शैली एवं आदर्शवादी शैली—दोनों ही के प्रयोग मिलते हैं। यथार्थवादी शैली के उदाहरण तो अनन्त हैं। यथा—

गउनमा के दिनमा धरायल,
गउना नगिचायल हे।
सखिया सलेहर करथिन चतुरइया,
गौरा के मनमा हेरायल हे ॥
बाबू के फटलइ करेजवा,
रे जैसे भादो कॉंकड़ ।
मइया के ढरे नयना लोर,
रे जैसे भादो ओरी चुए ॥

आदर्शवादी शैली का एक उदाहरण लीजिए—

मांगो गंगाजी के टिकवा सोभे,
बचवा अजब विराजे गंगा मइया,
खेलती चौघटिया ।

शैली की दृष्टि से मगही-कहावतों, मुहावरों एवं पहेलियों पर भी विचार किया जा सकता है। इस दृष्टि से मुख्यतः उल्लेखनीय तथ्य हैं—उनकी शब्द-योजना, 'अध्याहार' की प्रवृत्ति एवं शब्दशक्तियों का विनियोग।

शब्द-योजना

अन्य भाषाओं की कहावतों की तरह मगही भाषा की कहावतों में शब्द-योजना बड़ी ही सशक्त सामासिक तीव्रता के साथ सम्पन्न एवं लयात्मक होती है। शब्द प्रायः

गिने-चुने एवं अर्थ-गम्भीर होते हैं। उनके चुनाव का आधार या तो व्यंग्यात्मक रीति से कोई सादृश्य उपस्थित करना होता है या प्रभाव-विशेष का सम्प्रेषण। उदाहरणार्थ कुछ कहावतों की भाषा देखिए—

१. मन चंगा त कठौती में गंगा;

२. घर के मुरगी दाल बरोबर।

अपने निरपेक्ष रूप में शब्द-योजना की दृष्टि से मगही-मुहावरों में दो ही पद दीख पड़ते हैं संज्ञापद एवं क्रियापद। यथा—

संज्ञा	क्रिया
१. उसकुन	काढ़ना
२. करेजा	खिखोरना
३. गीत	उठाना
४. तरिझार	करना
५. दीदा का पानी	ढरकना

पर जब इन मुहावरों का प्रयोग 'वाक्य' में होता है तब ये 'निरपेक्ष' नहीं रह पाते एवं वाक्य के लिंग, वचनादि के अनुसार 'विधेय' रूप में इनका स्वरूप परिवर्त्तित होता रहता है। इस क्रम में सर्वाधिक प्रभाव उद्देश्य-रूप मे आये संज्ञापदों की विभक्ति एवं उनके अनुसार परिवर्तित होनेवाले क्रियापदों का पड़ता है। यथा—

१. तू काहे उसकुन काड़ऽ हऽ ?

२. ई बात हम्मर करेजा खिखोरल करऽ हे।

३. उनखा गीत उठावे न आवऽहइ।

४. ऊ त तरिझार करके छोड़लक।

५. ओकर दीदा के पानी त ढरक गेलइ हे, लाज की अयतइ।

अन्य भाषा के मुहावरों की तरह मगही-मुहावरों में प्रयुक्त शब्द सावेगिक तीव्रता एवं विशिष्ट कोटि की सामासिकता से सम्पन्न होते हैं। उनका संगठन अपरिवर्त्तनीय होता है। परिवर्त्तन होते ही उनकी प्राणवन्तता का रहस्य जन-परम्परा की स्वीकृति में निहित होता है, जिसके सद्भाव में ही वे व्यापकता एवं उपयोगिता प्राप्त करते हैं।

मगही-मुहावरों की शब्द-योजना की कतिपय अन्य विशेषताएँ निम्नांकित हैं—

१. किसी तथ्य पर विशेष जोर डालने के लिए कहीं तो एक ही शब्द का दो बार प्रयोग किया जाता है। यथा—

(क) करेजा हकर-हकर करना;

(ख) टुकुर-टुकुर देखना;

(ग) छू-छू-छू-छू होना आदि।

२. और कहीं दो भिन्न शब्दों का एक साथ प्रयोग किया जाता है। यथा—

(क) चौका-चनन पुरना;

(ख) छान-पगहा तोड़ना;

(ग) हुक्का-पानी बन्द होना आदि ।

३. कहीं-कहीं एक ही शब्द का दो बार प्रयोग करने पर भी उसमें अर्थगत सूक्ष्म व्यंजन लाने के लिए प्रथम शब्द के अन्तिम वर्ण को एकारान्त कर दिया जाता है। यथा—

(क) बाले बाल उठना;

(ख) हाँथे हाँथ लोकना;

(ग) काने कान बात फैलना ।

४. कहीं-कहीं किसी तथ्य पर जोर डालने के लिए एक ही पद की द्विरुक्ति न कर उससे अनुप्रासात्मक साम्य रखनेवाले किसी दूसरे व्यर्थ पद का सह-प्रयोग कर दिया जाता है। यथा—

(क) तिक्खिड़-विक्खिड़ होना;

(ख) हाँफे-हाँफे आना;

(ग) उक्खिम-विक्खिम होना आदि ।

मगही-पहेलियों की शब्द-योजना बड़ी ही सरल एवं नादात्मक होती है। वर्ण्य-साम्य के कारण उसमें सहज लालित्य आ जाता है। उनके वर्ण्य विषय विस्तृत एवं अन्ततः कौतूहल-मिश्रित मनोरंजन के साधक हैं। यथा—चाक, कौर, ओस, खटिया, जाल, जीन, सिंघाड़ा आदि। इनके अनुसार ही शब्दावली परिवर्द्धित होती है, जो वर्ण्य का एक सशक्त चित्र खड़ा कर देती है और हास्य-पुट रखने के कारण सहज मनोरंजन भी करती है। वर्ण्य के अनुकूल शब्दों का विन्यास सांकेतिक होता है, जो कौतूहल-वृत्ति को जगाता है। उदाहरणार्थ एक-दो पहेलियाँ देखिए—

१. उमत के फूल, कोई चूमऽ न हइ।
   झर-झर गिरइ, कोई चूनऽ न हइ॥ (वर्षा की बूँद)

२. छोटे गो टुइयाँ, पटक देली भुइयाँ।
   फूटे न फाटे के, वाह रे टुइयाँ॥ (केराव)

३. लाल गइया, खर खाये।
   पानी पिये, मर जाये॥ (आग)

अध्याहार

अध्याहार का सम्बन्ध सामासिकता से है। मगही-कहावतों एवं मुहावरों में 'अध्याहार' की सहज प्रवृत्ति दीख पड़ती है। मगही-कहावतों में इस संक्षेप वृत्ति की सतर्कता के परिणाम-स्वरूप प्रायः 'उद्देश्य' या 'विधेय' पदों में न्यूनता ला दी जाती है। न्यूनता लाने के बावजूद इनकी सम्प्रेषणीयता पर कोई आघात नहीं होता। कारण, वे 'समझ लिये गये-से' (understood) पद होते हैं। यथा—

१. अँधरा आगे रोवे, अप्पन दीदा खोवे।

२. अनकर माल झमकौआ,

छीन लेलक तो मुँह हो गेल कौआ।

३. आज्झे बनिया, कल्हे सेठ।

उपर्युक्त वाक्यों में प्रथम में 'उद्देश्य' का 'अध्याहार' स्पष्ट है। कारण कि वाक्य सम्पूर्ण तब होता जब यों होता—'जे अँधरा आगे रोवे, से अप्पन दीदा खोवे।' पर उद्देश्य ('जे' एवं 'से') गायब हैं। इसी तरह दूसरे उदाहरण में 'उद्देश्य' एवं 'विधेय' दोनों का 'अध्याहार' कर दिया गया है। सम्पूर्ण वाक्य यों होता—('जे') अनकर माल (पर कयलक) झमकौआ, ('उ') छीन लेलक तो (ओकर) मुँह हो गेल कौआ (नियनकाला)। तीसरे वाक्य में केवल 'विधेय' का 'अध्याहार' किया गया है। इस 'अध्याहार' का कारण सम्भवतः 'भाव-संवेगों' का प्राबल्य एवं सामासिक अभिव्यक्ति का मोह ही है।

मगही-मुहावरों में इस संक्षेप वृत्ति के कारण अत्यधिक सांवेगिक तीव्रता वर्त्तमान मिलती है। यहाँ 'विश्लेषक पदों' की न्यूनता दीखती है। इस न्यूनता के कारण उनमें किसी प्रकार की कमी नहीं आती। यथा—

१. बरफ होना;

२. पथ्थल होना;

३. मुरुत[1] होना।

यहाँ पहले मुहावरे का तात्पर्य है—'बरफ के समान ठण्ढा होना।' दूसरे का तात्पर्य है—'पत्थर के समान कठोर होना' एवं तीसरे का तात्पर्य है—'मूर्त्ति के समान निश्चल हो जाना,' पर तीनों में वाचक-धर्म पदों का 'अध्याहार' स्पष्ट दीख रहा है।

लय-छन्द

लोकसाहित्य में छन्दों का अन्वेषण विरोधाभास-सा प्रतीत होता है; क्योंकि लोककवि न तो छन्दशास्त्र का अध्ययन ही सम्पन्न किये होता है और न छन्द-निर्वाह की उसे विशेष चिन्ता ही होती है। लोककाव्य तो हर्ष-विषाद के क्षणों में उसके कण्ठ से फूटा स्वाभाविक उद्गार होता है।

पर छन्द का प्राण 'लय' है और 'लय' एक 'तुक' मिलकर रूढ़ अर्थ में 'छन्द' की सृष्टि करते है। पुनश्च 'तुक' छन्द का अनिवार्य तत्त्व नही है। अतः छन्दों का अन्वेषण लोक-साहित्य में भी सम्भव है। मनुष्य स्वभाव से ही रागात्मक वृत्तिवाला होता है और राग का ही मुखर रूप 'लय' है। चूँकि यह छन्दःस्पन्दन समग्र सृष्टि में व्याप्त है,[2] इसलिए अशिक्षित मानव की अनगढ़ उक्तियों में भी यह स्वाभाविक ढंग से अवतरित हो जाता है।

छन्द की परिभाषा देते हुए डॉ० पुत्तूलाल शुक्ल ने कहा है—"छन्द वह वैखरी ध्वनि है, जो प्रत्यक्षीकृत निरन्तर तरंग-भंगिमा से आह्लाद के साथ भाव और अर्थ की अभिव्यंजना कर सके।"[3] इस कसौटी पर मगही-लोकगीतों, लोककथा-गीतों, लोकनाट्यगीतों, लोकगाथाओं, कहावतों एवं पहेलियों को कसने पर हम पाते हैं कि उनमें छन्द के तत्त्व वर्त्तमान हैं।

---

१. मूर्त्ति।

२. 'हिन्दी-कविता और छन्द'—दिनकर; 'पारिजात', फरवरी, १९४९।

३. आधुनिक हिन्दी-काव्य में छन्द-योजना, पृ० २१।

लोकगीत

मगही-लोकगीत आकार-प्रकार की दृष्टि से विभिन्न रूपों में मिलते है। यथा—सोहर, जँतसार, ऋतुगीत (होली, चैती, बरसाती, छौमासा, बारहमासा), देवगीत (संझा, कर्मा-धर्मा, जितिया, छठ), झूमर, बिरहा, कजरी, गोदना, लहचारी, लोरी, मनोरंजन-गीत आदि। आकार-प्रकार के साथ इनकी छन्द-योजना का अपरिहार्य सम्बन्ध है। नीचे इनकी छन्द-योजना पर संक्षिप्त प्रकाश डाला जा रहा है।

सोहर

'सोहर' शब्द संस्कृत पर 'शोकहर' से व्युत्पन्न है—शोकहर > सोअहर > सोहर। अतः इसका व्युत्पत्तिगत अर्थ हुआ—वे गीत, जो शोक हर लें। इसकी व्युत्पत्ति के मूल में 'शुभ' धातु है, जिससे 'शोभन', 'शोभा' आदि तत्सम एवं 'सोहना', 'सुहावना' आदि तद्भव-रूप निःसृत हुए हैं। सोहर में प्रधानतया गार्हस्थ्य-जीवन के मनोहर चित्र अंकित मिलते है। सन्तान-कामना, तद्हेतु की गई देवस्तुति, पुत्रजन्म के उपरान्त परिलक्षित होनेवाला आनन्दोल्लास, ननद-भाभी का हास-परिहास, पति-पत्नी का प्रेम-संलाप आदि इनके वर्ण्य विषय हैं। इनकी विस्तृत चर्चा 'सोहर' गीतों के अध्ययन-क्रम में की जा चुकी है।

'सोहर' छन्द एक विशेष राग में गाये जाते है। 'सोहर' का साहित्यिक प्रयोग तुलसीदास जी के 'रामललानहछू' में मिलता है। इसके प्रत्येक चरण में २२-२२ मात्राएँ होती हैं। पर लोकगीतों में मात्रा-प्रयोग के इस नियम के पालन का अभाव दीखता है, जो स्वाभाविक है; क्योंकि लोकगीत तो लोककवि के नैसर्गिक भावोच्छ्वास ही हैं।[१] भावोच्छ्वास कभी तो दीर्घ होता है और कभी स्वल्प भी। इसी तरह इन 'सोहर' छन्दों में कभी तो मात्राएँ २२ से बहुत अधिक होती हैं और कभी उसी के आस-पास रह जाती हैं।

दूसरे, 'सोहर' के विभिन्न चरणों में दृष्टिगोचर होनेवाली मात्रा-मैत्री की इस कमी को गायन के समय 'ह्रस्व-दीर्घ-उच्चारण-पद्धति'[२] का आश्रय लेकर समान कर लिया जाता है। कारण, उनकी लयात्मक एकता सभी चरणों में एकरस एवं अक्षुण्ण होती है। डॉ० विश्वनाथ प्रसाद ने इसीलिए 'सोहर' को 'तालवृत्त' माना है, जिसमें लयबद्ध बलाघातपूर्ण इकाइयाँ ही महत्त्वपूर्ण होती हैं।[३] उदाहरणार्थ—

---

१. 'लोकगीत' जंगल के फूल की तरह वातावरण में उत्पन्न होते हैं और उसी वातावरण में इनका विकास भी होता है। ये छन्दविधान के बन्धनों से परे होते हैं।

—डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय : लो० सा० की भूमिका, पृ० २१३

२. 'ह्रस्व-दीर्घ-उच्चारण-पद्धति' से तात्पर्य लोकगीतों के गायन में सहज भाव से परिलक्षित होनेवाली वह पद्धति है, जिसके अनुसार काल-मात्रा की पूर्ति के लिए ह्रस्व मात्रा का दीर्घ या दीर्घ मात्रा का ह्रस्वसा उच्चारण किया जाता है।

३. वस्तुतः सोहर एक तालवृत्त है, जिसका मापदण्ड पृथक्-पृथक् मात्राएँ और वर्ण नहीं, वरन् लयबद्ध बलाघातपूर्ण इकाइयाँ ही हो सकती है। इन्हीं इकाइयों की आवृत्ति से राग की सृष्टि होती है। प्रत्येक आवर्त्तक बलाघात पर ताल पड़ता जाता है। ये ताल समान रागात्मक मात्राओं द्वारा नियन्त्रित रहते हैं, जिससे प्रत्येक इकाई की उच्चरित अवस्थिति समतोलक बनी रहती है।

—डॉ० विश्वनाथ प्रसाद : मगही-संस्कार-गीत, पृ० ५१-५२।

पलँ/ 'गा बइ/ठल/' हथ/ 'महा/' देवो/ 'मचि/' या ग/ उरा/ 'देइ/' हे/
'हम/रा पु/त'र/ 'वाके/' सा/ 'धपु/' तर/ 'कइसे/' 'पा/ यब/' हे/

उपर्युक्त उदाहरण में सोहर की दो पंक्तियों को ११ तालखण्डों में नियोजित किया गया है। मात्रा-गणना की दृष्टि से ये तालखण्ड विभिन्न मात्राओं वाले हैं, पर प्रत्येक ताल-खण्ड के गायन में ली जानेवाली काल-मात्रा समान है। रुचि-भेद के अनुसार उपर्युक्त पंक्तियों को अन्यान्य विभिन्न तालखण्डों में भी नियोजित किया जा सकता है, पर प्रत्येक स्थिति में लयात्मक संगति विद्यमान रहेगी।

'सोहर' नाम से जो मगही-लोकगीत मिलते है, उनमें पर्याप्त छन्दोवैविध्य दीख पड़ता है। 'तालखण्डों' अथवा मात्राओं के नियोजन की दृष्टि से न केवल उनके चरण वैविध्य-पूर्ण हैं, बल्कि उनके चरणों का शृंखलात्मक आयोजन भी परस्पर स्वतन्त्र है। नीचे कतिपय प्रमुख मगही-सोहरों का छन्दःस्वरूप दिखलाया जाता है—

१. **पारहि/ उपर क/ सैलिया एक/ बोयली**
ऽ। ।।।। ऽ। ऽऽ। ऽ।ऽ
(हे गोरी के लाल) फुलवा/ फूले/ हे/ कच/ नार
।।ऽ ऽऽ ऽ ।। ऽ।
फूल लो/ ढ़ेगे/ लन छौं रो/ अल/ बेलिया
ऽ। । ऽऽ ।। ऽ ऽ ।। ऽ।ऽ
(हे गोरी के लाल) फुलबे/ गरभऽ/ रहिऽऽ/ जाय
।।ऽ। ।।। ।।।। ऽ।
लेबे/ लागी/ पैलन/ सासुजी/ बड़ैतिन
ऽऽ ऽऽ ऽ।। ऽ।। ।ऽ।।
(हे गोरी के लाल) तीनऽ/ मुरबा/ देख के झ/माय
ऽ।। ।।ऽ ऽ। ऽ ऽ।

उपर्युक्त सोहर में चतुर्मात्रिक लयात्मक खण्डों का प्रयोग किया गया है। चरणान्त में प्रायः विषम मात्राएँ आई हैं। इनमें प्रथम पंक्ति में विषम मात्राएँ। ऽ क्रम से हैं, तो द्वितीय पंक्ति में ऽ। क्रम से; तृतीय, पंचम एवं षष्ठ चरणों में ह्रस्व-दीर्घ उच्चारण-पद्धति का आश्रय लेकर कुछ वर्णों के दीर्घ स्वरूप का 'ह्रस्व' उच्चारण किया गया है। गायन के क्रम में किये जानेवाले 'मात्रा-विस्तार' को 'गरभऽ', 'रहिऽऽ' एवं 'तीनऽ' पदों के साथ देखा जा सकता है। उसी तरह—

२. **केकर/ नदिया में/ झिलमिल/ पनिया/** ४ + ६ + ६ + ४
ऽ।। ।।ऽ ऽ ऽ।ऽ। ।।ऽ
केकर/ नदिया में/ चेल्हवा म/ छरिया ४ + ६ + ६ + ४
ऽ।। ।।ऽ ऽ ऽ।ऽ । ।।ऽ
कौन दुलहा फेंके/ महाजालऽ हे/ १० + १०
ऽ। ।।ऽ ऽ। ऽऽऽ।। ऽ

एक जाल/ नवले/ दुलरुआ/ दुइजाल/ नवले ६+४+५+५+४
ऽ। ऽ। ।।ऽ ।।।ऽ ।।ऽ। ।।ऽ

तीसरा में/ बझ गे/ लऊ घों/ घवा से/ वारऽ ६+४+५+५+४
ऽ।।ऽ ।।ऽ ।ऽ ऽ ।ऽ ऽ ऽ।।

से बझ/ गेलउ/ कनियाँ/ कुँआर ४+४+४+४
ऽ ।। ऽ।। ।। ऽ । ऽ ।

केकरा भ/रोसे/ जलवा जे/ नवलें दु/ लरुआ ६+४+५+५+४
ऽ।ऽ । ऽऽ ।।ऽ । ।।ऽ । ।।ऽ

ओही जँ/ घिया भ/ रोसेऽ/ जलवा जे/ नवली ६+४+५+५+४
ऽ ऽ ऽ ।ऽ । ऽऽ। ।।ऽ । ।।ऽ

से बझ/ गेलउ/ कनियाँ/ कुँआर ४+४+४+४
ऽ ।। ऽ।। ।।ऽ ।ऽ।

उपर्युक्त सोहरगीत में तालखण्डों के मात्रागत वैभिन्य के बावजूद लयात्मक संगति किस प्रकार अक्षुण्ण रखी गई है, यह देखने से स्पष्ट हो जाता है। प्रथम पंक्ति के 'झिलमिल' का उच्चारण गायन-क्रम में 'झीलमील' जैसा किया जाता है। तृतीय, पंचम, सप्तम एवं अष्टम पंक्तियों में दीर्घमात्राओं (क्रमशः 'के', 'रा', 'जे' एवं 'जे') का ह्रस्व उच्चारण किया गया है। 'महाजाल' (तृतीय पंक्ति) की ह्रस्वमात्रा 'म' का उच्चारण दीर्घ मात्रा 'मा' के रूप में किया जाता है। मात्रा-विस्तार तृतीय (महाजालऽ), पंचम (वारऽ) एवं अष्टम पंक्तियों (रोसेऽ) स्पष्ट है।

३—आज सुहाग के रात
ऽ। ।ऽ। ऽ ऽ। —१२ मात्राएँ
चन्दा तुँहुँ उगिहऽ
ऽ ऽ ।। ।।।। —१० मात्राएँ
चन्दा तूहूँ उगिहऽ
ऽ ऽ ऽऽ। ।।। —१२ मात्राएँ
सुरुज मति उगिहऽ
।।।।।।।।।। —१० मात्राएँ
करिह बड़ी तुहूँ रात
।।।। ऽ।ऽऽ। —१२ मात्राएँ
मुरुग जनि बोलिहऽ
।।। ।। ऽ ।।। —१० मात्राएँ
आज सुहाग के रात
ऽ । ।ऽ। ऽ ऽ। —१२ मात्राएँ
पिया मत जइहऽ
।ऽ ।ऽ ।।।। —१० मात्राएँ

जँतसार

'जँतसार' क्रियागीत है। जाँता चलाते समय विशेषकर जो गीत गाये जाते थे, उन्हीं का नाम 'जँतसार' पड़ गया। इनकी लयात्मक गति मृदु, मन्थर एवं बीच-बीच में कभी-कभी हिचकोले लेकर बढ़नेवाली होती है। स्वभावतः प्रत्येक चरण में मात्राओं की संख्या ३० से ऊपर ही होती है। नीचे एक-दो जँतसार-गीतों का छन्दोविधान दिखलाया जाता है—

१. बाबा गेलन परदेसवा/सदा रे सुख दे के गेलन—१५ + १५ = ३० मात्राएँ
S S S I I I I S I S I S S I I S S S I I
दुअरे चननमा के गाछहि/नडोलवा लगा के गेलन—१५ + १५ = ३०
I I S I I I S S S I I I S I S I S S S I I
पिया गेलन परदेसवा/सदा रे दुख देके गेलन—१५ + १५ = ३०
S S S I I I I S I S I S S I I S S S I I
छतिया रे बजड़ा केवड़िया/जंजीरिया लगा के गेलन—१५ + १५ = ३०
I I S S I I S I I I S I S I S I S S S I I

२. कथिए फारि-फारि/कोरा कगदवा पि/या—१० + १० + २
I I S S I S I S S I I I S I S
कथिए केरा मसि/हान हे।—१० + ५
I I S S S I I S I S
कथिए चोरि चीरि/कलमा बनाई पि/या—१० + १० + २
I I S S I S I I I S I S S I S
कथिए लिखिअइ दुइ/ बात हे/—१० + ५
I I S I I I I I I S I S

ऋतुगीत

ऋतुगीतों में होली, चैती, बरसाती, चौमासा, बारहमासा आदि आते हैं। होली एवं चैती के अन्तर्गत आनेवाले लोकगीतों में समप्रवाही छन्द की प्रधानता होती है। चरण छोटे-छोटे एवं ९, १०, १५ और १६ से लेकर २० मात्राओं तक के होते हैं। उदाहरणार्थ नीचे एक-दो 'होली-चैती' (मगही-लोकगीतों) का छन्दःस्वरूप दिखलाया जाता है—

होली १—फागुन महिनमाँ
S I I I I I S —९ मात्राएँ
आयल सुदिनमाँ
S I I I I I S —९ मात्राएँ
देवरबा भिं/गावइ चुनरिया
I I I S I S I I I I I S —६ + ९ मात्राएँ
पटना सहरवा से
I I S I I I S I —१० मात्राएँ
अबइ रँगरेजवा
I I I I I S I S —१० मात्राएँ

रंगवा डु/बावइ जोबनमा —६ + १० मात्राएँ
। । S S S । । S । । S

होली २—नकबे/सर का/गा ले/भागा —४ + ४ + ४ + ४
। । S । । S S S S S

सइयाँ अ/भागा न/ जागा — ५ + ५ + ४
। । S । S S । S S

नकबे/सर का/गा ले/भागा —४ + ४ + ४ + ४
। । S । । S S S S S

उड़ि उड़ि/ कागा/ कदम प/र बैठल् —४ + ४ + ४ + ४
। । । । S S । । । । । S ।

जोबना/ के रस ले/ भागा — ५ + ५ + ४
S । S । । । S S S

चैती ३—कुसुमो/लोढ़न/हम जा/यब हो/रामा —४ + ४ + ४ + ४ + ४
। । S S । । । । S । । S S S

राजा/ केरऽ/ बगिया - ४ + ४ + ४
S S S । । । । S

मोर चु/नरिया/सैंया/तोर प/गड़िया —४ + ४ + ४ + ४ + ४
S । । । । S S S S । । । । S

(हाँ) एक /हि रंग/ रँगा/यब हो/ रामा —४ + ४ + ४ + ४ + ४
S । । । S । S S । । S S S

'बरसाती' छौमासा एवं बारहमासा के छन्दों का विधान किंचित् जटिल होता है। होली एवं चैती की तरह इनके चरण छोटे-छोटे चपलगति से नर्त्तित होनेवाले न होकर दीर्घ एवं ३२ (१८ + १४) एवं ३५ मात्राओं से लेकर ४२ (२४ + १८) मात्राओंवाले तक होते हैं। ये मात्राएँ संख्यात्मक दृष्टि से विभिन्न चरणों से घटती-बढ़ती रहती हैं, पर इनमें लयात्मक संगति वर्त्तमान रहती है, जो इनके गायन के समय परिलक्षित होती है। कारण, प्रत्येक चरण के गायन में काल-मात्रा बराबर ली जाती है, उनकी मात्राएँ कितनी भी घट-बढ़कर क्यों न हों।

देवगीत

ऋतुगीतों की तरह देवगीतों में भी दीर्घ छन्दों का विधान होता है और उन्हें काफी रेघाकर गाया जाता है, जिसके फलस्वरूप प्रत्येक चरण के अन्त में साँस पूर्णतः समाप्त हो जाती है। कहीं-कहीं अपवादत. लघु चरणोंवाले छन्दों का अनायास विधान भी मिलता है। यथा, 'गंगा मैया' की छवि-महिमा के वर्णन में —

मांगो/ गंगा/ जी के/टिकवा/ सोभे/ —४ + ४ + ४ + ४ + ४
S S S S S S । । S S S

बचवा/ अजब वि/ राजे/ गंगा/ मइया —४ + ४ + ४ + ४ + ४
। । S । । । । S S S S । । S

खेलतीऽ चौ/घटिया —८+४
ऽ।ऽ। ऽ ।।ऽ

'जितिया' को छोड़कर 'संझा', 'कर्मा-धर्मा' एवं 'छठ' से सम्बद्ध लोकगीतों में इन लघु छन्दों का ही विधान दृष्टिगोचर होता है। मूल भावना के रूप में कल्याण-कामना रहने के कारण इनमें सहज उमंग-उल्लास की प्रधानता होती है, जो क्षिप्र गतिवाले लघु छन्दों में मूर्त्त होती है।

झूमर :

'झूमर' वे लोकगीत है, जिन्हें झूम-झूमकर टोलियों में गाया जाता है। इनमे आनन्द-उल्लास, हास-परिहास की प्रधानता होती है एवं तदनुकूल ऐसे छन्दों का विधान होता है, जो न तो अत्यन्त क्षिप्रगतिवाले होते हैं और न सुदीर्घ चरणोंवाले ही। झूम-झूमकर गायन करने में जो क्षिप्रता एवं मन्थरता का गम्भीर समन्वय दीखता है, कुछ वही झूमर छन्दों में भी दृष्टिगोचर होता है। ये विशुद्ध ताल-मात्रिक छन्द है। झूम-झूमकर गायन, जो एक सीमा तक नर्त्तन में प्रवेश करता प्रतीत होता है, ताल-मात्रिक संगति के अभाव में असम्भव ही है। उदाहरणार्थ—

पीपर के पत्ता/-फुलुंगिया डोले/ अबऽ जिया डोले/ रे ननदो
ऽ।।ऽ ऽ ऽ ।ऽ। ऽ ऽ ऽ ।।। ।ऽ ऽ ऽ ऽ ।।ऽ
—१०+१०+१०+६

तोहर भइया बिनु/
ऽ।। ।।ऽ ।। —१० मात्राएँ

माँगो के टिकबा/ सेहु भला तेजम/ पिया नहीं तेजम/ रे ननदो !
ऽऽ ऽ ।।ऽ ऽ। ।ऽ ऽ।। ।ऽ ।ऽ ऽ।। ऽ ।।ऽ
—१०+१०+१०+६

तोहर भइया (रे) बिनु/
ऽ।। ।।ऽ ।। —१० मात्राएँ

नाको के नथिया/ से हु भला तेजम/ पिया नहीं तेजम/ रे ननदो !
ऽ ऽ ऽ ।।ऽ ऽ। ।ऽ ऽ।। ।ऽ ।ऽ ऽ।। ऽ ।।ऽ
—१०+१०+१०+६

तोहर भइया (रे) बिनु
ऽ।। ।।ऽ ।। —१० मात्राएँ

बिरहा :

इसके अन्तर्गत आनेवाले लोकगीतों को डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने अहीरों का राष्ट्रीय गान बतलाया है।[1] सम्भवतः उनका तात्पर्य उनमें 'बिरहा' के अत्यधिक प्रचलित होने से है। कारण, 'वस्तु' या 'भावव्यंजना' की दृष्टि से 'बिरहा' में विप्रलम्भ-शृंगार या करुण रसात्मक उद्‌गारों की प्रधानता होती है। 'बिरहा' को 'चरकड़िया' भी कहते हैं; कारण, इसमें 'चार कड़ियाँ' (चरण) होती हैं।

१. भोजपुरी-लोक-साहित्य का अध्ययन, पृ० ३३५

डॉ० ग्रियर्सन के अनुसार 'बिरहा' वर्णिक छन्द है, जिसके प्रथम एवं तृतीय चरणों में १६-,६ (६+४+४+२) एवं द्वितीय तथा चतुर्थ चरणों में क्रमशः ११ (४+४+३) एव १२ (४+४+४) वर्ण होते हैं।[1] पर डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय द्वारा इसके विभिन्न चरणों का संख्यात्मक विधान किंचित् भिन्न है। उनके अनुसार इसके प्रथम तथा तृतीय चरणों में १६-१६ वर्ण होते हैं और द्वितीय तथा चतुर्थ चरणों में १०-१० वर्ण।[2]

'बिरहा' के विषय में डॉ० ग्रियर्सन का यह वक्तव्य ध्यातव्य है : "पढ़ते समय ये बिरहे शायद ही छन्द के नियमों के अनुसार मिलें, जबतक हम यह याद न रखें कि बहुत-से दीर्घ स्वर पढ़ते समय लघु कर दिये जाते हैं। इनमें कभी-कभी कुछ ऐसे भी व्यर्थ के शब्द होते हैं, जो छन्द के अंगभूत नहीं होते।" नीचे एक-दो उदाहरण दिये जाते हैं—

१. नन्हेंपन से भौ/जी लगल/इ पिरिति/या
१२३४ ५ ६ १ २३४ १ २ ३ ४ १ २ —१६ वर्ण
टूट केवो/ललवो न/हिं जाये
१२ ३ ४ १ २ ३ ४ १ २ ३ —११ वर्ण
हमरा तोहरा/छुटतइ/पिरितिया/कब (भौजी)
१ २ ३ ४ ५ ६ १२३४ १ २ ३ ४ १ २ १ २ —१६ वर्ण + २ वर्ण
(कि) दुइ में ए/क तो मरि/जाये
१२ ३ ४ १ २ ३ ४ १ २ —१० वर्ण

इसके प्रथम एवं द्वितीय चरणों में तो क्रमशः १६-११ वर्ण है, पर तृतीय-चतुर्थ चरणों में क्रमशः १६-१२ वर्ण न होकर १८-१० हैं।

२. पिया पिया रटि/के पियर/भेलइ दे/हिया
१ २ ३ ४ ५ ६ १ २ ३ ४ १ २ ३ ४ १ २ —१६ वर्ण
लोगवा क/हइ कि पांडु/रोग
१ २ ३ ४ १ २ ३ ४ १ २ ३ —११ वर्ण
गाँमा के लोगवा/ऽऽ मर/मियों न जा/नइ
१ २ ३ ४ ५ ६ १ २ ३ ४ १ २ ३ ४ १ २ —१६ वर्ण
भेलइन/ गओनमा/ मोर
१ २ ३ ४ १ २ ३ ४ १ २ ३ ४ —१२ वर्ण

इसके प्रथम एवं द्वितीय चरणों में क्रमशः १६-११ मात्राएँ हैं, पर तृतीय-चतुर्थ चरणों में आये वर्णों की संख्या क्रमशः १०-१४ ही है। वस्तुतः तृतीय चरण के गायन-क्रम में 'लोगवा' के 'वा' वर्ण को इतने दीर्घकाल तक उच्चरित किया जाता है कि दो वर्णों का अभाव उससे पूरा हो जाता है। इसी तरह चतुर्थ चरण में आये 'गओनमा' के 'मा' वर्ण में सन्निहित 'आ' स्वर को दो अतिरिक्त वर्णों के उच्चारण-काल तक प्रवाहित रखा जाता है, जिससे चरणपूर्ति हो जाती है।

---

१. भोजपुरी-लोक-साहित्य का अध्ययन, पृ० ३३८
२. लोक-साहित्य की भूमिका, पृ० २१५

'कजरी' का वर्ण्य प्रधानतः विप्रलम्भ श्रृंगार होता है। इसके गायन में एक कसकती टीस-सी भरी होती है। अतः इसके छन्दों की गति अपेक्षाकृत मृदु, मन्थर एवं रिस-रिस कर रस प्रवाहित करनेवाली होती है। 'गोदना' के अन्तर्गत मगही-लोकगीत 'क्रियागीत' ही माने जायँगे। कारण, इनका गायन 'गोदना' गोदते समय गोदहारिनें गोदने की व्यथा से गोदानेवाली के मन को मुक्त करने के उद्देश्य से करती हैं। इसके छन्दों में समप्रवाही ताल-मात्रिक खण्डों का श्रृंखलात्मक प्रयोग मिलता है, जो अपनी तरंगों पर 'गोदने' की पीर से व्यथित मन को उतराता दूर ले जाता है। 'लहचारी' नृत्यगीत है, परिणामतः इसके छन्द के चरणों में नृत्य का-सा चापल्य वर्त्तमान होता है, जो सांगीतिकता का पर्याप्त पुट लिये होता है। चरण बहुत छोटे, क्षिप्रगति से नर्त्तन करनेवाले एवं लयात्मक एकता रखने पर भी विषममात्रिक होते हैं। यथा—

छोटी/ मोटी/ कुइयाँ
ऽ ऽ ऽ ऽ । । ऽ —१२ मात्राएँ
पाता/ ल बसे/ पनियाँ/
ऽ ऽ । । ऽ । । ऽ —१२ मात्राएँ
मोरऽ/ देवर/ बा हो/
ऽ । । ऽ । । ऽ ऽ —१२ मात्राएँ
जरी डोरिया/ दऽबढ़ाय/
। ऽ ऽ । ऽ । । । ऽ । —८ + ६ = १४ मात्राएँ
पनियाँ/ के भर/ ल हमऽ/
। । ऽ ऽ । । । । । । —१२ मात्राएँ
गऽ गरि/या जे/ रखली/
। । । । ऽ ऽ । । ऽ —१२ मात्राएँ
सिरप/ गगरिया/ दऽउठाय/
। । । । । ऽ । । । । ऽ । —८ + ६ = १४ मात्राएँ

तृतीय चरण में 'मोर' पद के 'र' वर्ण को दुगुने काल तक उच्चरित किया जाता है, जिससे छन्द का समप्रवाह स्थिर होता है। यही स्थिति चतुर्थ, पंचम, षष्ठ एवं सप्तम चरणों में क्रमशः 'द', 'म', 'ग' एवं 'र' के उच्चारण में दीख पड़ती है। अन्तिम चरण में 'पर' पद के सिर्फ 'प' वर्ण का ही उच्चारण किया जाता है, अतः वही लिखा गया है।

लोरी :

लोरी के छन्द 'चरणों' की दृष्टि से दीर्घ भी होते हैं एवं लघु भी, पर दोनों ही स्थितियों में जिन ताल-मात्रिक खण्डों से उनका निर्माण होता है, वे चार, छह या आठ मात्राओं से अधिक के नहीं होते। ऐसा होने का प्रमुख कारण उनका क्षिप्रप्रवाही होना होता है, जो बच्चों का ध्यान किसी वस्तु या 'भाव'-विशेष से क्रमशः विकेन्द्रित कर उछालता चलता है। यथा—

१. आरे/ आवऽ/ बारे/ आवऽ/
ऽ ऽ ऽ । । ऽ ऽ ऽ । ।
नदिया/ किछारे/ आवऽ/
। । ऽ । ऽ । ऽ । ।

यहाँ द्वितीय चरण में 'किछारे' के दीर्घ 'रे' का ह्रस्व उच्चारण किया जाता है, अतः एक ही मात्रा गिनी गई है।

२. बउ/ आ रे तूँ/ कत्थी के ? —२ + ६ + ६ मात्राएँ
।। ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
कँकरो के/ दुस्सा के/ —६ + ६ मात्राएँ
।।ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

मनोरंजन-गीतों के भी छन्द इसी भाँति क्षिप्रप्रवाही होते है और बालोचित भावनाओं या घटनाओं के क्षिप्र विकास के लिए उपयोगी सिद्ध होते है।

'लोककथागीत', 'लोकनाट्यगीत' एवं 'लोकगाथा' में अपेक्षाकृत दीर्घ चरणोंवाले छन्दों की नैसर्गिक योजना दीखती है। ये तीनों ही प्रबन्धात्मक लोकगान है, अतः इनमें अभिव्यंजित भावनाओं के माध्यम-स्वरूप दीर्घ छन्दों का आना स्वाभाविक प्रतीत होता है।

लोककथा-गीत :

लोककथा-गीतों में प्रायः किसी आदर्श के स्थापन का प्रयास दीखता है, जो गम्भीर प्रकृति का होने के कारण चपल चरणोंवाले छन्दों में सम्भव ही नही है। उदाहरण के लिए निम्नांकित लोककथा-गीत में १४ वर्णों के छन्द का प्रयोग किया गया है। पर इस बन्धन के पालन की अनिवार्यता स्वभावतः लोककवि के सामने नहीं है, अतः किसी-किसी चरण में वर्णों की संख्या १८-१९ भी हो गई है। वैसे उनमें १४ वर्णोंवाली पंक्तियों से लयात्मक संगति वर्तमान मिलती है—

मिलहु सखिया सलेहर के चपिया —१४ वर्ण
आहे मिली जुली सैरो निहैवइहे न। —१४ वर्ण
सब सखिया मिली घर चलि ऐलइ —१४ वर्ण
अरे असग/र चपिया झाड़इ लामी केसिया हे न —५ + १४ वर्ण
झर रे झरोखा चढ़ि राजा निरेखेई —१४ वर्ण
अरे केक/र तिरियवा झारे लामी केसिया हे न —४ + १४ वर्ण

लोकनाट्यगीत :

'लोकनाट्यगीत' में पद्यात्मक संवादों की योजना की जाती है। ये संवाद प्रायः एक या दो पंक्तियों के होते हैं। इन संवादों में लघु चरणोंवाले छन्दों का प्रयोग नहीं होता। सामान्यतया १४ से २९ वर्णों के छन्दों का प्रयोग किया जाता है। उदाहरणार्थ निम्नांकित लोक-नाट्यगीत में १६ वर्णों के चरणों का प्रयोग किया गया है—

एक महिला : कहवाँ से रूसल कहाँ जाहऽ हे बगुलो —१६ वर्ण
बगुली : ससुरा से रूसल नहिरा जाहि हे दीदिया —१६ वर्ण
दूसरी महिला : कौन कारन में नहिरा जाहऽ हे बगुलो —१६ वर्ण
बगुली : चउ/रवा छटइते खुदिया खैलियो हे दीदिया —२ + १६ वर्ण

प्रथम एवं तृतीय चरणों में 'जाह' का उच्चारण इस प्रकार किया जाता है कि वे तीन वर्णों (जाहऽ) के उच्चारण का काल लेते हैं। अन्तिम चरण में दो वर्णों का प्रयोग अधिक है, पर उनसे लयात्मक व्याघात उत्पन्न नहीं होता।

परिशिष्ट

मगही के पुराने कागज-पत्र

पुरानी मगही के अध्ययन के लिए यहाँ कुछ पुराने कागज-पत्रों की प्रतिलिपि दी जा रही है। यद्यपि ये बहुत पुराने नहीं हैं, १०० (सौ) साल से अधिक का तो कोई नही है; तथापि इनका इस दृष्टि से महत्त्व है कि इनके द्वारा मगध की स्थिति का पता चल जाता है। सभी कागज-पत्रों की भाषा प्रायः उर्दू-फारसी-प्रधान है। कही-कहीं ही मगही का प्रयोग मिलता है। इसका कारण यह है कि मगध मे विदेशी राज्यकाल में कभी मगही को प्रश्रय नहीं दिया गया। सर्वदा उर्दू-फारसी, अँगरेजी और हिन्दी में ही सारे कारबार चलते रहे। मगही सामान्य जनता के व्यवहार की भाषा के रूप में जीवित रही। जो कृषक-मजदूर आदि मगही का ही सर्वदा व्यवहार करते थे, उनके भी मालगुजारी, बँटवारे आदि के कागज उर्दू-फारसी में ही तैयार किये गये।

ऐसी परिस्थिति में वांछित सामग्री नही उपलब्ध हो सकी। मगध-क्षेत्र के देहाती रजवाड़ों में भी मैंने खोज की, परन्तु वहाँ पता चला कि सारे पुराने कागज व्यर्थ जानकर जला दिये गये। संभव है, इन नष्ट किये हुए कागजों मे पुरानी मगही के कुछ नमूने भी हों।

जो कागज-पत्र मुझे मिले है, उन सबकी लिपि उर्दू या कैथी अथवा महाजनी है। उनके पढ़ने में राजगीर-कुण्ड के पण्डा पं० युवराज उपाध्याय एवं पटवारी श्रीप्रयागलाल जी से पर्याप्त सहायता मिली है। प्रस्तुत कागज-पत्र का विवरण निम्नांकित है—

संख्या १—यह, ता० १७ जुलाई, सन् १८५९ ई० में किये गये बँटवारे का कागज है। राजगीर के एक माली ने अपने पूर्वजों के बँटवारे का यह कागज मुझे पढने के लिए दिया था। इसमें भाषा उर्दू-फारसी-प्रधान है। इसकी लिपि कैथी थी।

संख्या २—यह भी पट्टीदारी का कागज है। इसमें पुनीत उपाध्याय एवं जमाहिर उपाध्याय (राजगीर) के बीच बँटवारे का ब्योरा है। यह कागज ता० १५ भादो, सानी, सन् १२७८ का है। यह फसली साल है। इसकी भाषा भी उर्दू-फारसी-प्रधान है। लिपि कैथी है। यत्र-तत्र ही मगही-शब्द आये है।

संख्या ३—यह, ता० ३ माघ, रोज-मंगल, फसली सन् १३१५ का एक पत्र है। इसमें उर्दू, फारसी एवं मगही के शब्दों का कुछ अंशों में मिश्रण है। पत्र लिखने की शैली भी मगध-क्षेत्र की ही है। लिपि कैथी है।

संख्या ४—ता० ७-४-१९१३ ई० की यह एक दरख्वास्त है। दरख्वास्त देनेवाली महिला का नाम 'नौरतन कुँअर' है। इसकी भाषा बिलकुल उर्दू-फारसी-प्रधान है। कहीं-कहीं ही मगही-शब्द आये हैं। लिपि कैथी है।

संख्या ५— ता० ८, माह पूस, फसली सन् १३०७ साल का यह एक हुकुमनामा है। इसकी भाषा उर्दू-फारसी-प्रधान है। इसमें मगही का केवल पुट-भर आया है। इसकी लिपि कैथी है।

संख्या ६—फसली सन् १२६८ साल, महीना आसिन दूसरा, पहिला पख का लिखा यह एक पत्र है। राजगृह के पण्डा श्रीयुवराज उपाध्याय के दादा की बही से यह पत्र मुझे उपलब्ध हुआ था। इस पत्र में मगही और उर्दू के शब्दों का मिश्रण है। इसकी लिपि कैथी है।

संख्या ७—इस पत्र का समय फसली सन् १२३४ साल है। पत्र-लेखक बाबू डोमन सिंह गया-निवासी है। इन्होंने इसमें मगही का व्यवहार किया है। लिपि कैथी है।

संख्या ८—इस पत्र का समय ता० १४ बैसाख, सानी, फसली-सन् १२७६ साल है। इसमें मगही-शब्दों का व्यवहार हुआ है। लिपि कैथी है।

संख्या ९—फसली सन् १२६८ साल, ता० २७ आसिन का लिखा हुआ यह एक पत्र है। इसमें कही-कही मगही का व्यवहार हुआ है। लिपि कैथी है।

संख्या १०—यह विक्रम-संवत् १९०४, ज्येष्ठ शुक्ल-द्वादशी का लिखा हुआ शिला-लेख है, जिसे बाबू सीताराम जी ने लिखवाया था। यह राजगृह के सप्तधारा-कुण्ड में वर्त्तमान है। इसकी भाषा संस्कृतनिष्ठ है, यद्यपि यत्र-तत्र मगही का भी व्यवहार हुआ है। लिपि कैथी है।

आगे क्रमशः कागज-पत्रों की प्रतिलिपि दी जाती है। मगही-शब्दों को मोटे टाइपों में कर दिया गया है :—

संख्या—१

बँटवारा

मन के दोदन माली वलद लीला माली साकीन कसवा वो प्रगना राजगीर जीले गया का हूं चू मीन मोकीर को सीन वोसाल करीव साठपैंसठ **वरस** का हुआ वासते ववाजीव सवा वीगहा अराजी जागीर मै दरखत तार वो वीरीत **जज मनकइ** जो कुछ के मीनमोकीर का है वो ताहबीज कवजते हमने रखता है। उसको बखोसरजाय वो जपत अपने रासते के झगड़ा वो तकरार अपने जींदगी हेआत मे हर दोपेसर मेगर माली वो वुटाई माली को निसफानीसफ तकसीम करके देता हूं वो लीख देता हूं की अपने अपने हिस्से का मजकूर को दर आवे जजमन कई का कीआ करे। वो पैंदावार अराजी जागीर कानीसफानीसफ वोजजमनकईका अपने अपने इलाके के अपने अपने तसरुफ मो दर ल्याआ करे वो झगड़ा वो तकरार आपस में किसी माली का न करे। अगर झगड़ा वो तकरार किसी माली का हमारे नवीसते से वरखीलाफ हो कर दोनो भाई में करेगा। तो वरसरे अदालत में झूठा होगा। इस वासते यह वसीकात सकली आना मा वासतेरफे झगड़ा वो तकरार के अपने जीदगी हेआत मे लीख दिया के वखतजरुरत के काम आवे।

कातिब तसफीयाना भभीछनलाल, सा० हाल मोकाम राजगीर परगना राजगीर

गवाह—

गो० कारु माली सकरी गो० धनपत माली सीलाव प्रगने तेलहाड़ा मुखाते दोदन माली वा० भभीछन लाल गो० सीरी माली साकीन सीलाव प्रगने तेलहाड़ा मुखाते भभीछन लाल

गोपाल चन्द राय सा० कसवे राजगीर वो प्रगने राजगीर मुखाते दोदन माली वा० रीसी लाल

गो० कलकीसरवास कसवे राजगीर प्रगने राजगीर मुखाते दोदन माली वा० भभीछन लाल

सही दोदन माली साकीन राजगीर तसफीआनामा लीखा सो सही वा० खास तारीख १७ जुलाई सन् १८५९ इसवी अट्टारसे उनसठ इसवी

संख्या—२

पट्टीदारी का कागज

लि० पुनीत पधेया वल्द दामोदर पधेया कौम ब्राह्मण साकिन कस्वे राजगीर, परगने राजगीर, जिला पटना।

आगे बखुशरजाय से अपने जेतना चीज हासिल करदगी बुजुरगान का था और पिता दामोदर पधेया का था, उसको दुन्नों भाई तकसीम कर लिया के आइन्दे करार बखल्लिस नहीं रहे।—औ मकान को इस तौर पर तकसीम कर लिया कि एक कोठरी दखिन अलंग तेहरा में दुमंजिला खपरेपोश औ एक कोठरी पूरब अलंग में पछिम रुख का दुमजिला, पोखते दखिन तरफ औ एक घिड़सेरी जो पिंडा के नजदीक है, सो पुनीत पधेया का रहा औ एक कोठरी पूरब पट्टी मो पच्छिम रुख का है दुमंजिला पोखते औ एक कोठरी मय साहबान दोमंजिला उत्तरवारी आंगन मो और एक ओसारे का जगह बिचला दरवाजे से पूरब है, सो जमाहिर पधेया को दिया। औ सादी औ विआह में आर खनने (चूल्हा बनाने) मो और सिरापिंडा को गोड़ लगने मों और पूजने मों उजुर नही। हमारा औ नहीं जमाहिर पधेया को होगा औ बकिए तीनों दरबाजा औ कुआँ औ पखाना औ सीढ़ी कोठा पर चढ़ने की सराकत रहा। और मरम्मत तीनों दरवाजा औ कुंआ औ पेखाना औ नाली औ सीढ़ो का दुनो भाई आधा २ दिया करें। औ एक घिड़सिढ़ी उत्तरवारी आंगन मों सराकत से जमाहिर उपाधेया को बना दिया जाये।

चीज का फेहरिश्त

दस्तखत पुनीत पधेया
जमाहिर पधेया
ता० १५ भादो, सानी, सन् १२७८

संख्या—३

पत्र

श्री सोसती श्री सरब उपमा जोग श्री धरमावोतार, धरममूरत, धरमदेह नाम उदित नामधारी श्री जनाब भाई साहब हरिहरलाल जी को लि०। आगे हजूर के आसीरबाद से फिदवी (छोटा) साथ खैरियत के है। हुजूर का खैरियत मिजाज का नेक श्री रघुनाथ सामी जी सो नेक मनाते रहते है। आगे हमर हालचाल यह है के हम आजकल कही कोई काम धन्धा न कर रहे हैं। खाने-पीने का घर पर बहुत तकलीफ हुआ। तब फरीदा (एक गाँव का नाम जो पटना जिला में है) गये। मामू हमको गोनमा (एक गाँव, जिला पटना) में सर्वे का कागज लिखने में रखवा दीहिन हैं। मुसहरा के निस्बत लिखिन था कि अभी ठीक न भेल है। हम क्या करें। अधपढ़े रह गेया। जो मरजी भगवान का।

आगे हाल यह है कि भाई साहेब इसलामपुर में साथ खैरियत के हैं। पटना से भी खत आया था, बड़का बाबू ओ विहारी लाल गुजरते फागुन मकान जायेंगे। आगे गाई मौजे दोघरा (गया जिला) मे सोमार के रात बाछा बियाली है। मकान पर सब सूरत से खैरियत है। तरदुद नहीं कीजिएगा। खत का जबाब लिखियेगा।

ता० २ माघ, रोज मंगल, सन् १३१५ साल

संख्या—४

दरखास्त

गरीब परवर सलामत

गुजारिश फिदवी का यह है कि जिम्मे धनुधारी लाल वारिस के फिदवी का हिसाब ४२) रुपया निकलता है। २४) रु० तो हमारे सौहर के बखत का बरामद करके ले गये। आठ चार महीना काम कीहिन। जब गैर सख्स हमको साढ़े चार रुपइया का महीना गछीस है तो इनको देने मे क्या उजूर है। ४२) रुपइया हुआ। फिदवी कईएक वार बास्ते मिलने मासहरा औ कमीशन के लिए दरखास्त दिया। उसपर यह हुकुम हुआ कि दोनों आदमी सामिल आवो तब दिया जायेगा।

जनाब आली चन्दबार हमने उनसे कहा कि चलो। मगर नहीं आते है। हीलाहवाला करके निकल जाते हैं। अब उनका मुसहरा भी सर्किल में जा चुका है। वह इस फिकिर मों हैं कि अकेला जाकर किसी तरह से रुपइया ले लें। मगर मोसेमात का जाने देने का नीयत नहीं है। इसलिए सरकार के इजलास मे हाजिर होकर अर्ज करते है कि हमारा रुपइया दे दिया जाये। बाजिब था सो अर्ज किया। आइन्दे हजुर मालिक है। जैसा इंसाफ किया जाये।

अर्जी—मोसेमात नौरतन कुँअर
जौजे—हरिहर लाल पटवारी
मौजे—भोरी
वाकलम—चमरुलाल
ता० ७-४-१९१३ ई०

संख्या—५

हुकुमनामा या चिट्ठी

हु०—बनाम लाले हरिहरलाल पटवारी, मौजे बाजिदपुर खिरौटी, परगना तेलहारा जिला पटना आके चूँ जरकसीर बाबत मालगुजारी ठीकेदारी मौजे बाजिदपुर खिरौंठी जिम्में मुंशी जगरनाथ सहाय ठीकेदार के बाकी गिर गई है। ओ बावजूद तलब औ तकाजाय के बसूल नहीं होता है। इसलिए बन्देअली प्यादा को तुम्हारे पास रवाने किया है। मुनासिब है कि तुम ओ प्यादा मसकूर बकोसिस तमाम तहसील वसूल नगदी औ भावली की करके जरतहसीली टेना महतो के पास अमानत रखोगे। ओ एक खरमोहरा-ठीकेदार खाँह अमला ठीकेदार को हरगिज न दोगे। इसकी जवाबदेही जिम्मे तुम्हारे होगी। ओ जिसकदर रुपइया आज तक के

तहसील हुआ होवे, वो गल्ला खुदकाश्त वगैरह का बिका होवे, उसको हमारे पास फौरन मेहरचन्द महतो से समझ करके इरसाल करोगे। ओ हर हफ्ते सामिल चालान दस्खती अपने सरकार में जर तहसीली भेजा करोगे। वो रसीद वसूली रुपये की यहाँ से दस्खती सरकार भेजा जायेगा। इन सब अमरातों में ताकीद मजीद जानोगे।

ता० ८ माह—पुस, सन् १३०७ साल।

संख्या—६

पत्र

सन् १२६८ साल महिना आशीन दुसरा पहिला पख मो अस्नान करे राजगीर छेतर पर अयली। हमार के साथ पन्डा दामोदर पन्डा के मोकर्रर कैली जो कोई हमार घर के आवे सो दामोदर पन्डा को पैर पुजा करे।

लि० माधोराम बेटा मुनशी तुलसी राम, पोता लाला जगरूप सिंह, भाइ लाला ठाकुर परसाद वा जैजै राम वा क काशीनाथ कायथ सीरीवासतव साकिन मवजे पोदील परगने अरवल जिले विहार में चटी कुरथा से कोस भर।

संख्या—७

पत्र

ली० बाबू डोमनसिंह राजपुत सिरमौर मालिक मौजे कसतुरीपुर धामुखाय कठपैंताली में तपेसरी दास परगने मेहर। आगे हम राजगीरही तीरथ किया औ राजगीरही के नेमचन्द पधेया के पुजलीओ औ लीख देली जे हमर वंश जो कोई होए बेटा नाती सो पुजे दुसरा पन्डा के न पुजे। इस वासते लीख देली जो सानोन हाल पर काम आवे सन् १२३४ साल

संख्या—८

पत्र

सोस्ती श्री दामोदर पन्डा जी के ली० वावु विजैविहारी सिंह के प्रनाम। आगे हम ता० १४ वैसाख सानी सन १२७६ साल के असनान राजगीर करेके अैली से असनान भेल। औ जातरा सुफल भेल से आज तारीख से हमर कोई भाइ वो वेरादर जो असनान ला आवे से अपने सो पुजावै इस वास्ते चीठी अपने के लीख देली है जे वोखत जरूरत के काम आवे ता० १४ वैसाख शानी सन् १२७६ साल गो० धनुपधेया।

संख्या—६

पत्र

राम

सन् १२६८ साल, ल० २० / आसिन, दखत हरसहाय सिंघ के असनान करे आइल रही राजगिरही बाबू हरसहाय सिंघ सा० कोरबइ, परगने भेलाओर आगे दामोदर पंडा मोकर्रर किया। जो कोइ हमरे गाँव को आवे, से सो दामोदर पन्डा के पूजल करे।

ल० २७ / आसिन स० १२६८ साल

संख्या—१०

शिलालेख

॥ श्री हरेऽव ॥

विमल भक्ति रत जानि जेहि कृपा करहि रघुवीर।
तेपि धरत पगु धर्म्म मंगल हेत सुजस मति धीर॥
राजग्रिही से कोस दश अग्निकोण अभिराम।
वकसंडापुर वसत है जह बाबु सीताराम॥
धर्म्म धुरन्धर रघुवर विमल राजराज सुखदेन।
अष्टपुत्र पौत्रादि युतः भोगत राज सुखेन॥
सो सुदर्वनिज खर्च करि सुरनर मुनि सुख हेतु।
राजग्रिही शुभ तीर्थ महँः बाँधे भव निधि सेतु॥
कुण्ड सप्तधारा विरचिः सप्त मुनिन को रूप।
रचि नवीन मन्दिर रुचिरः स्थापे सब मूर्ति भूप॥
वेद १९०४ गगन अरूग्रह ससिहि सुभ सम्बत अनुमान।
ज्येष्ट सुक्ल तिथि द्वादसी सप्तधारा निर्मान॥

सम्वत १९०४ जेष्ट सुकल द्वादसी।

लिखा नौवत लाल आत्मज बाबू सीताराम

सहायक सामग्री

खण्ड १ : भाषा

हिन्दी

१. अंगिका भाषा और साहित्य : डॉ० माहेश्वरी सिंह 'महेश'
२. नागपुरी भाषा और साहित्य : प्रो० केसरी कुमार सिंह
३. प्राङ् मौर्य बिहार : डॉ० देवसहाय त्रिवेद
४. प्राकृत-व्याकरण : हेमचन्द्र
५ पाटलिपुत्र की कथा : डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार
६ पुरातत्त्व-निबंधावली : महापण्डित राहुल सांकृत्यायन
७. ब्रजभाषा : डॉ० धीरेन्द्र वर्मा
८. व्याकरण-मयंक : श्रीसुरेश्वर पाठक विद्यालंकार
९. बौद्धधर्म और बिहार : श्री हवलदार त्रिपाठी 'सहृदय'
१०. भारत का भाषा-सर्वेक्षण : डॉ० उदयनारायण तिवारी
११. भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी : डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी
१२. भाषा-विज्ञान : डॉ० मनमोहन गौतम
१३. भाषा-विज्ञान : श्रीश्यामसुन्दर दास
१४. भोजपुरी भाषा और साहित्य : डॉ० उदयनारायण तिवारी
१५. मगही-भाषा और साहित्य : श्रीकृष्णदेव प्रसाद
१६. मगही-भाषा के बेआकरन : श्रीराजेन्द्र कुमार यौधेय
१७. मैथिली साहित्यक इतिहास : प्रो० कृष्णकान्त मिश्र
१८. संक्षिप्त हिन्दी-व्याकरण : श्रीकामता प्रसाद गुरु
१९. सामान्य भाषा-विज्ञान : डॉ० बाबूराम सक्सेना
२०. हिन्दी-भाषा का विकास : श्रीश्यामसुन्दर दास
२१. हिन्दी-काव्यधारा : महापण्डित राहुल सांकृत्यायन
२२. हिन्दी-भाषा का इतिहास : डॉ० धीरेन्द्र वर्मा
२३. हिन्दी-भाषा का उद्गम और विकास : डॉ० उदयनारायण तिवारी
२४, मगही-व्याकरण-कोश : डॉ० सम्पत्ति अर्याणी

अँगरेजी

1. A Grammar of the Hindi Language : Rev. S. H. Kellogg.
2. A Comparative Dictionary of the Bihari Languages (Part I and II) : A. E. R. Hoernle and G. A. Grierson.
3. A New Hindustani-English Dictionary : S. W. Fallon.

4. A History of Maithili Literature, Vol. I : Jaykant Mishra.
5. A Handbook to the Kayathi character : G. A. Grierson.
6. Ancient Geography of India : S. M. Shastri.
7. Bihar Peasant Life : G. A. Grierson.
8. Bhasa : His age and Magadhi : A. Banerjee Shastri.
9. Essays on Bihari Declension and Conjugation : Grierson.
(Journal of the Asiatic Society of Bengal, Vol. III, 1883, Pt.I, pp. 119 and ff.)
10. Evolution of Magadhi : A Banerjee Shastri.
11. Linguistic Survey of India, Vol. I, Part I : G. A. Grierson
12. ,, ,, ,, Vol. V, Part II : ,, ,,
13. Linguistic Survey of Sadar sub-division of Manbhum and Dhalbhum (Singhbhum) : Dr. Bishwanath Prasad and Dr. Sudhakar Jha.
14. Magadhan Literature : Hara Prasad Shastri,
15. Rural and Agricultural Glossary for the N. W. Provinces and Oudh. : Crooke, B. A.
16. Specimens of Languages of India including those of the aboriginal tribes of Bengal, the Central provinces and the Eastern Frontier. : Sir G. Campbell.
17. Seven Grammars of the dialects and sub-dialects of the Bihari Language, Part I ; Part III and Part VI : G. A. Grierson.
18. The Origin and Development of the Bengali Language : Dr. S. K. Chatterjee.
19. The Formation of the Maithili Language: Introduction : Dr. Subhadra Jha.
20. The Geographical Dictionary of Ancient and Mediaeval India : Nandu Lal Dey.
21. The Glory of Magadh : J. N. Samaddar.

खण्ड २ : साहित्य

हिन्दी

१. ईसुरी के फाग : लोकवार्त्ता-परिषद्, टीकमगढ़
२. कविता-कौमुदी, भाग ५ : पं० रामनरेश त्रिपाठी
३. गोरखबानी : सं० डॉ० बड़थ्वाल
४. छत्तीसगढ़ी-लोकगीत : डॉ० श्यामाचरण दूबे

५. जीवन के तत्त्व और काव्य के सिद्धान्त : श्रीलक्ष्मीनारायण 'सुधांशु'
६. धरती गाती है }
७. धीरे बहो गंगा } : देवेन्द्र सत्यार्थी
८. नाथ-सम्प्रदाय : पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी
९. पृथ्वीपुत्र : डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल
१०. प्रकृति और हिन्दी-काव्य : डॉ० रघुवंश
११. ब्रज-लोक-साहित्य का अध्ययन : डॉ० सत्येन्द्र
१२. ब्रज की लोक-कहानियाँ : डॉ० सत्येन्द्र
१३. ब्रज-लोक-संस्कृति : डॉ० सत्येन्द्र
१४. बुन्देलखण्ड की कहानियाँ : श्रीशिवसहाय चतुर्वेदी
१५. बेला फूले आधीरात : देवेन्द्र सत्यार्थी
१६. बोलचाल : पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'
१७. व्रत-चन्द्रिका : श्रीगौरीशंकर उपाध्याय
१८. भारतीय प्रेमाख्यान की परंपरा : श्रीपरशुराम चतुर्वेदी
१९. भारतीय लोक-साहित्य : श्रीश्याम परमार
२०. भोजपुरी ग्रामगीत, भाग १ }
,, ,, , भाग २ } : डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय
२१. भोजपुरी-लोकगीतों में करुण रस : श्रीदुर्गाशंकर प्रसाद सिंह
२२. भोजपुरी-ग्राम्यगीत : डब्ल्यू० जी० आर्चर
२३. भोजपुरी-लोक-साहित्य का अध्ययन : डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय
२४. भोजपुरी के कवि और काव्य : श्रीदुर्गाशंकर प्रसाद सिंह
२५. भोजपुरी-लोक-साहित्य : श्रीबैजनाथ सिंह 'विनोद'
२६ भोजपुरी-लोकगाथा : डॉ० सत्यव्रत सिन्हा
२७. मगही-संस्कार-गीत : डॉ० विश्वनाथ प्रसाद
२८. मालवी-कहावतें : श्रीरतनलाल मेहता
२९. मारवाड़ी-ग्रामगीत : श्रीजगदीश सिंह गहलौत
३०. मुहावरा-मीमांसा : डॉ० ओमप्रकाश गुप्त
३१. मैथिली-लोकगीत : श्रीरामएकबाल सिंह 'राकेश'
३२. रामचरितमानस : तुलसीदास
३३. राजस्थान की लोककथाएँ : पुरुषोत्तम मेनारिया
३४. राजस्थानी भीलों की कहानियाँ : श्रीमोहनलाल मेनारिया
३५. राजस्थानी-कहावतें : डॉ० कन्हैयालाल सहल
३६. राजस्थानी-लोकगीत : श्रीसूर्यकरण पारीक
३७. राजस्थान का दूहा, भाग १–२ : श्रीनरोत्तमदास स्वामी
३८. लोक-साहित्य की भूमिका : डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय
३९. लोक-साहित्य : श्रीझबेरचन्द मेघाणी
४०. संस्कृत-साहित्य की रूपरेखा : डॉ० शान्तिकुमार ; नानूराम व्यास

४१. सोहर : पं० रामनरेश त्रिपाठी
४२. हमारा ग्राम-साहित्य : ,, ,,
४३. हिन्दी-लोकगीत : श्रीमती रामकिशोरी श्रीवास्तव
४४. हिन्दी-काव्यधारा : महापण्डित राहुल सांकृत्यायन
४५. हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : डॉ० रामकुमार वर्मा
४६. हिन्दी-साहित्य का बृहत् इतिहास भाग १६ } महापण्डित राहुल सांकृत्यायन एवं डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय
४७. हिन्दू-संस्कार : डॉ० राजबली पाण्डेय
४८. हिन्दी-साहित्य का आदिकाल : पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी
४९. मगही-लोक-साहित्य : डॉ० सम्पत्ति अर्याणी

पत्र-पत्रिकाएँ

१. 'हिन्दुस्तानी', प्रयाग (अप्रैल, १९३९ ई०, पृ० १५९–२१६; जुलाई, १९३९ ई०; पृ० २४५–९०): 'भोजपुरी-लोकोक्तियाँ' : डॉ० उदयनारायण तिवारी
२. 'हिन्दुस्तानी' (अक्टूबर — दिसम्बर, १९४२ ई०) : 'भोजपुरी पहेलियाँ' : डॉ० उ० ना० तिवारी
३. 'हिन्दुस्तानी' (भाग १, अंक ४) : 'कहमुकरी की प्राचीन अवस्था' : डॉ० बाबूराम सक्सेना
४. 'मगही' ; 'मागधी' ; 'बिहान' (बिहार मगही-मंडल द्वारा प्रकाशित) नामक पत्रिकाओं की विविध प्रतियाँ।
५. 'सम्मेलन-पत्रिका' (प्रयाग) : लोक-संस्कृति-अंक।
६. 'मधुकर'
७. 'लोकवार्त्ता'

संस्कृत

अथर्ववेद
आश्वलायनगृह्यसूत्र
उत्तररामचरित : महाकवि भवभूति
ऋग्वेद
ऐतरेयब्राह्मण
केनोपनिषद्
ताण्डवब्राह्मण
महाभारत
मनुस्मृति
यजुर्वेद
वाल्मीकीयरामायणम्
वेदान्तसूत्र : शांकरभाष्य
शतपथब्राह्मण

अँगरेजी

1. A Handbook of American Folklore : B. A. Botkin.
2. A Handbook of Folklore : Sophia Burn.
3. Anthology in Folklore : G. L. Gomme.
4. Bihar Proverbs (London, 1891) : J. Christian.
5. Dictionary of Hindustani Proverbs : Fallon.
6. Eastern Proverbs and Emblems : James Long.
7. Elements of the Science of Language : Dr. Tarpurbala
8. English and Scottish Popular Ballads : F. J. Child.
9. Folk Songs of Chhattisgarh : V. Alwin.
10. Folk elements in Hindu culture : B. K. Sarkar.
11. Field Songs of Chhattisgarh : S. C. Dube.
12. Hindi Folk songs (Hindi Mandir, Allahabad, 1936) : A. G. Shirriff.
13. Handbook of Proverbs : English & Bengali : U. K. Banerjee.
14. Introduction to the Proverbs of Japan : Prof. Kochi Doi.
15. Myth, Ritual and Religion : Andrew Long.
16. Old English Ballads : Francis B. Gummare.
17. Religion and Folklore of Northern India : W. Crook.
18. The Folk-tale : Stith Thompson.
19. The Golden Bough : Frazer.
20. The tribes and castes of Bengal : H. H. Risley.
21. The Ballad : Frank Sidgwick.

Journals :

1. J. R. A. S. ; vol. 16 (Page 156) : 'Some Bihari Folk Songs'.
2. J. A. S. B.; Part I, vol. LIV, Page 35 (1885) : 'Two versions of the song of Gopichand.'
3. Indian Antiquary ; vol. 14, Page : 209 : 'The Song of Alha's Marriage.'
4. Bulletin of the School of Oriental Studies, Page 87, vol. I, Part 3 (1920) : 'The Popular Literature of Northern India.'

●

अनुक्रमणिका

ठेठ-मगही-शब्द

अ

व

स